2.21

२०५

॥ ॐ श्री १००८ जगद्गुरु श्रीचन्द्राय नमः ॥



श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदय महाकाव्यम्

(मुनिमानस) भाषा टीका सहितम्

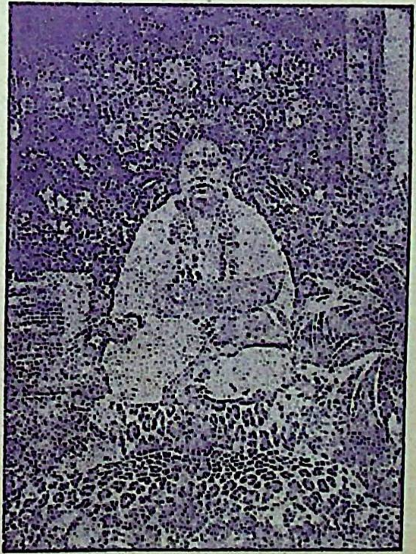
लेखक और प्रकाशक

श्रीमद् परमहंस परिव्राजकाचार्य उदासीनवर्य पंडित

श्री १००८ स्वामी हरिनाम दास जी महाराज

गद्दीधर (महन्त) सद्गुरु बनखण्डि आश्रम श्री साधुबेला तीर्थ

सक्खर (सिन्धु)



आचार शिक्षण मिदृक्षा
अहर्निशं मे ।
यद्धर्म गुद्ध गमनं हि
मदीय कर्म ॥
यज्जाति रक्षण शरीर
विमोचनञ्च ।
धर्मः सनातन स एव
निगमागमोक्तः ॥

हिन्दुत्व संस्कृत
विकाशन रूपकार्यं ।
ध्यानं त्रिवक्त्र अपि
विश्वधराः समं च ॥
राष्ट्रोन्नतिर्भवतु मे
हरिनामदासो ।
विश्वम्भरा हिंदमहं
निराकरणं च ॥

प्रथमावृत्ति १०००

वि० सं० २००४ आषाढ़ वदी २ गुरुवार

मूल्य १०)

पुस्तक मिलने का पता—

श्रीमद् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ उदासीनवर्य
पण्डित स्वामी हरिनाम दास जी सद्गुरु बनखण्डी
आश्रम महंत श्री साधुबेला तीर्थ
सक्खर (सिंधु-देश)

The book can be had from :—

Paramhans Paribrajkacharya Shri 108 Udasinvarya Pandit Swami Harinamdasji Sadguru Bankhandi Ashram, Mahant Shri Sadhubella Tirth Sukkur (Sind.)

मुद्रकः—
पं० रामभरोस मालवीय,
अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

❀ ॐ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रायनमः ❀

॥ अनुक्रमणिका ॥

श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदयम्

जो बोले सो तरे—श्री सत्य नाम हरे

ॐ

श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रोविजयतेतराम्

भूमिका

लेखन कला वै सुमहत्व पूर्णा गौरव प्रदाऽऽनन्द प्रदातथास्ति ।
ख्यातो यशीनां निज जाति सेवासौभाग्य माप्नोति तथाऽनया च ।१।
प्रचार यद्वै सुविचार वृन्दं देशे विदेशे जनता समचे ।
सम्वध्यतेऽसौ च कलायतोवै बुद्धया सदा ह्येतल्लेखकस्य ॥२॥

अर्थ—लेखन कला महत्व पूर्ण एवं गौरव और आनन्द देने वाली है इससे ख्याति और यश प्राप्त होता है तथा अपने विचारों को देश विदेश में जनता के सामने प्रकट करते हुये मनुष्य को जाति और देश सेवा का सौभाग्य मिलता है इस कला का सम्बन्ध लेखक के मस्तिष्क से है ॥१-२॥

अतो हि लेखीनिज बुद्धि शुद्धयै स्यादेव ह्येतद्गुण युक्त बुद्धिः ।
समदर्शकः शुद्ध सु शान्तचित्तो निर्दोषको युक्ति युतोऽजडश्च ॥३॥

अर्थ—इसलिये लेखक अपना मस्तिष्क शुद्ध बनाने के लिये शुद्ध चित्त शान्त चित्त सम दृष्टि निर्दोष युक्ति पूर्ण लोक धर्म जाति रक्षक जड़ता रहित ॥३॥

पर प्रशंसाप्रिय उद्यमी च सर्व सहो जाति स्वधर्म रक्षकः ।
सुहृद्सदाचार उदार चित्तः सत्यं वदो देशसुकाल विज्ञः ॥४॥

अर्थ—दूसरे की प्रशंसा से प्रेम सत्य भाषी देश काल का ज्ञाता उद्यमी सहन शील उदार सुहृदय सदाचार प्रभृति गुण युक्त होना लेखक का भूषण माना गया है ॥४॥

दुष्टेन द्यूतप्रिय मद्यपाभ्यां चौरेण नृप सज्जन द्वेष्टिना च ।
पैशुन्य युक्ते न च दुश्चरित्रैः कदाचिदप्यत्र न सङ्गतः स्यात् ॥५॥

अर्थ—दुष्ट जुवारी मद्यप चोर, राजा और श्रेष्ठ सत्पुरुषों से द्वेष करने वाले चुगुल खोर व्यभिचारियों से बचकर रहना चाहिये ॥५॥

निर्दोषाश्च भवन्त्यस्य ग्रन्था विद्वन्महात्मनः ।
तस्य चै वापि वाणी वै मुख पद्माद्विनिः सृता ॥६॥

अर्थ—उपरोक्त गुण सम्पन्न लेखक के लिखे ग्रन्थ प्रायः निर्दोष होते हैं तथा उस विद्वान महात्मा के अन्दर की जो ईश्वरीय वाणी निकलती है ॥६॥

भवति सर्व सम्मान्या सर्व कल्याण हेतु का ।
ईदृशा नाञ्च सद्भाव प्रेरिताः शब्द संग्रहाः ॥७॥

अर्थ—वह जन साधारण के कल्याण का हेतु होती है एसे पुरुषों के जीवित अवस्था में ही नहीं प्रत्युत् मरने के पश्चात् भी उनके सद्भाव प्रेरित शब्दों का संग्रह ॥७॥

जनतायाः सदैवेह मन आकर्ष यन्ति वै ।
एतद्गुण सामर्थ्यं तेषा मुद्यम तपः फलम् ॥८॥

अर्थ—जनता के मनको सदैव अपनी तरफ आकर्षित करते रहते हैं इस सामर्थ्य का गुण होना उनके शुभ सत्य संकल्प और तपस्या का फल है ॥८॥

कश्चिदंशस्तथा चैषां नैवास्ति मयि तत्र च ।
लेखनी ग्रहणं कीदृग् उपहास प्रदं मम ॥९॥

अर्थ—उपर्युक्त किसी भी गुण का किंचित् अंस भी मैं अपने अन्दर नहीं देखता. फिर लेखनी उठाना कितना उपहासप्रद है ॥९॥

यत्नोत्युन्नति श्रेष्ठत्वं प्राप्तुं सर्वो जनः परम् ।
अतो भगवताश्रित्य पुस्तकं लिख्यते मया ॥१०॥

अर्थ—किन्तु संसार में प्रत्येक प्राणी ऊँचा और श्रेष्ठ कहाने का प्रयत्न करता है ऐसा विचार कर भगवत् आसरा पकड़ पुस्तक लिखने का कार्य आरम्भ किया गया है ॥१०॥

एषो हि दृढ़ विश्वास श्चित्ते मम सदास्ति यत् ।
श्रेष्ठेषु सर्व कार्येषु सहायो भगवान् हरिः ॥११॥

अर्थ—यह हमारे चित्त में दृढ़ विश्वास है कि भगवान् श्रेष्ठ कार्यों में सदैव सहारा दिया करता है ॥११॥

ग्रन्थे यथा संभव मुद्यमो वै हरिनाम दासेन् कृतोऽस्मिनेतत् ।
स्व हिन्दु जातेश्च सनातनस्यह्युदासि वेषस्य प्रकाशनं स्यात् ॥१२॥

अर्थ—हमने (हरिनामदासजी ने) इस पुस्तक में हिन्दू जाति सनातन धर्म उदासीन भेष की महत्त्वता पर प्रकाश डालने का यथा सम्भव उद्योग किया है ॥१२॥

हिन्दुर्यतो विस्मृत वान् स्वधर्मं स्वत्वञ्च पाश्चात्यविलासितायाम् ।
यथोन्नतं सर्व जगद् वयञ्चोदासीनकाः स्याम तथोन्नताहि ॥१३॥

अर्थ—कारण कि हिन्दू जाति आज पश्चिम की चका चौंधी विलासिता में अपने को दिन प्रति दिन भूलती जा रही है और उसके धार्मिक भाव लुप्त होते जा रहे हैं समस्त संसार उन्नति के पथ पर दौड़ रहा है, इसी प्रकार हम हिन्दू उदासीन साधुओं को भी दिनप्रति दिन उन्नति करनी चाहिये ॥१३॥

ये पूर्वजा नश्च समाप्तप्रायां निजो पदेशैरिह हिन्दु जातिम् ॥
आजीवयन् भूरि वयं तथैव किन्नैव तेषामनु गामिनः स्म ॥१४॥

अर्थ—जो उदासीन साधुओं के पूर्वज महात्मा अपने भजनोपदेश से मिटती हुई हिन्दू कौम को पुनः जीवन दान दे गये उन्हीं महात्माओं का अनुसरण करने वाले क्या हम नहीं हैं ॥१४॥

निर्विवाद मिदं सर्वं मान्यं यद् भारतस्य वै ।
प्राचीनायां नवीनायां दशायां बहु चान्तरम् ॥१५॥

अर्थ—यह लोक मान्य निर्विवाद बात है कि भारत में प्राचीन दशा और वर्तमान् में बहुत अन्तर है ॥१५॥

सम्भवति च यत्

न रोचते साधु सु सङ्गति हिं स्थूले च प्रत्यक्ष प्रमाण वादिनि ।
युगेऽत्र नृभ्योऽद्य यतो हि तेषां नास्तिक्य भावावृत मस्ति चेतः ।१६।

अर्थ—सम्भव है इस स्थूल और प्रत्यक्ष दलील बाज जमाने में नास्तिकता के वातावरण से घिरे तथा विषय विकारों में चूर्ण लोगों को साधु महात्माओं का संग नीरस प्रतीत हो रहा हो ॥१६॥

तथापि चेदं तु सु सत्य मस्ति यत्साधवोऽ वन्ति सदैव धर्मम् ।
रक्षां करिष्यन्ति तथाऽप्रतोऽतः समूल नाशोस्ति हि साध्ववज्ञा ॥१७॥

अर्थ—परन्तु यह बात सर्वथा सत्य है कि हिन्दू धर्म की रक्षा सदैव साधु महात्माओं से होती आ रही है, तथा आगे भी होनी है, साधुओं का तिरस्कार अपना समूल नाशक है अर्थात् अपने पैरों पर आप ही कुठाराघात करना है ॥१७॥

एतच्चावश्यं मन्यतेऽस्माभिर्यत् ।

अर्थ—यह बात हम अवश्य मानते हैं कि ।

नाह्युदासीन वेषस्येतिहासः क्रमिक इह ।
उदासीनाश्च येनेह सर्वदा कष्ट भोगिनः ॥१८॥

अर्थ—इस समय उदासीन वेष का शृङ्खला बद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है जिससे उदासीन भेष को हर समय कष्ट उठाना पड़ता है ॥१८॥

कारणं चेद मस्त्यत्र यावनामत्र राज्यता ।
येनाऽन्योन्य परिद्वन्द्वैरीर्ष्यं या यवने वृथा ॥१९॥

अर्थ—इसका मुख्य कारण यह है कि भारत वर्ष में मुसलमानों का आधिपत्य होने से आपस के लड़ाई झगड़ों में तास्सुब वाजी से एक का एक विरोधी बन ॥१९॥

दाहितानि सुशास्त्राणि भस्म साच्च कृतानि वै ।
इतिहास मुदासीनां साधूना मप्य नाशयत् ॥२०॥

अर्थ—मुसलमानों ने हिन्दू धर्म शास्त्रों को अग्नि दाह कर दिया जिसमें उदासीन भेष का इतिहास भी न बचा अर्थात् सब ग्रन्थ जलाकर भस्मसात् कर दिये गये ॥२०॥

यत्संस्मृत्य भवामोऽश्रुप्रवाहि लोचना वयम् ।
यद्भावि तद भूत्सर्वं गतं शोचेन्न बुद्धिमान् ॥२१॥

अर्थ—जिस दुर्घटना के आज भी स्मरण आने पर नेत्र बिना जल बहाये नहीं रहते शास्त्र का कहना है कि "गतं शोचेन्नबुद्धिमान्" गई बात का शोक नहीं किया जाता जो होना था सो सब हो गया ॥२१॥

ममद्यापि चेद्भूयो वयमुद्युज्याम वै तदा ।
शिला लेखैश्च पत्रैश्च ताम्रस्य तीर्थ वासिनाम् ॥२२॥

अर्थ—किन्तु यदि अब भी हम उद्यमी बन अपने पूर्वजों के इतिहास की खोज पुराने शिला लेख ताम्र पत्र तीर्थों के पंडों की वही आदि के लेखों से करें ॥२२॥

गुरुणां चैवपत्राद्यै (वाह्याद्यैः) रितिहासो मार्गेभवेत् ।
एवम्भूतश्च सोऽपीह पर्याप्तः स्यान्न संशयः ॥२३॥

अर्थ—तो वह भी कम पर्याप्त नहीं इतिहास का रास्ता मिल जाय तो आगे के इतिहास कारों को अच्छी सहायता देगा इसमें कोई संशय नहीं है ॥२३॥

ईदृश्यां मप्य वस्थाया मुदासीनां समुज्ज्वलम् ।
इतिहासमितो ऽन्येभ्यः कोटिशतं गुणी भवेत् ॥२४॥

अर्थ—आज भी इस गई गुजरी अवस्था में औरों से शत कोटि गुणा उदासीन साधुओं का इतिहास अधिक उज्वल और पवित्र निकलेगा ॥२४॥

शृणु पूर्वज वृत्त कथां पठं च यदि मार्ग मकण्टक मिच्छसि हे ।
वयमत्र भवाम सदा सुखिनौ निज पूर्वज वृत्त समाश्रयिणः ॥२५॥

अर्थ—यदि संसार में अकण्टक मार्ग बनाना चाहते हो तो अपने पूर्वजों के इतिहासों को पढ़ो और सुनो जिससे हम (उदासीन लोग) अपार और अखंड सुख के अधिकारी बन सकेंगे ॥२५॥

साधारणोऽपीह जनो यदाश्रितो विख्याति माप्नोति चकर्म वीरताम् ॥
सजाति रेवाधिकरोति जीवतुं या पूर्व जानामितिहासश्च विज्ञा ॥

अर्थ—जिसके आश्रित हो सामान्य व्यक्ति भी विश्व में विख्यात हो जाता है ऐसा कर्म बनाने वाला संसार में केवल अपना इतिहास ही है विश्व में वही जाति जीने की अधिकारी मानी जाती है जिसे अपने पूर्वजों के इतिहास का सर्वथाज्ञान हो ॥२६॥

तदैव ज्ञास्याम अतीतसभ्यतां आत्मीयतां गौरवतां विवेकताम् ।
आदर्श मत्रत्यहि समाजिकश्चोदासीन सुवेषस्य च धार्मिकत्वम् ॥२७॥

अर्थ—हम अपने धार्मिक तथा सामाजिक आदर्शों को ठीक ठीक तभी समझेंगे औरउदासीनों की प्राचीन सभ्यता आत्मीयता,गौरवता और विवेकता का पूर्ण ज्ञान तभी हो सकता है ॥२७॥

यदेतिहासो निज पूर्वजानां विवेक पूर्वं पठितो भविष्यत् ।
ज्ञास्याम एतच्च हि नः पुरोजाः सदेश सम्मान स्वधर्मरत्वम् ॥२८॥

अर्थ—जब हम अपने पूर्वजों के इतिहासों का अध्ययन विवेकता पूर्ण रीति से करेंगे तब हमें यह भी पता लगेगा कि हमारे पूर्वज अपनी धर्म रक्षा मान रक्षा के और देश रक्षा के ॥२८॥

हिन्दुत्व रक्षार्थं मथो नुदेहं उत्सृष्ट वन्तः कथ मात्मनोऽत्र ।
दौर्वल्य भीति रहित स्तथाऽऽत्मा येषामज्ञानी दिह कृष्ण गीताम् ॥

अर्थ—साथ साथ हिन्दुत्व रक्षा में किस तरह आत्मोत्सर्ग कर गये हैं जिनमें दुर्बलता और भय का नाम तक भी न था उनकी आत्मा गीता वाले ज्ञान को समझ चुकी थी ॥२६॥

शाश्वतो निर्भयो नित्यः शक्ति मांश्चाजरोऽमरः ।
निर्विकारोऽहमस्मीति गीता ज्ञान मिदं सदा ॥३०॥

अर्थ—कि मैं शाश्वत हूँ मैं निर्भय हूँ मैं नित्य हूँ मैं शक्तिमान हूँ मैं अजर हूँ मैं अम हूँ मैं निर्विकार हूँ यह सदा ही गीता का ज्ञान प्रकाश कर रहा था ॥३०॥

निर्वाद मेतच्च सुसिद्धमस्ति विनाऽग्र जानामितिहास ज्ञानम् ।
न धर्म नीति र्न च कूट नीतिः व्यवहार नीतिर्न चराज नीतिः ॥३१॥

अर्थ—यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जब तक अपने पूर्वजों के इतिहास को नहीं पढ़ेंगे तब तक हम में धर्म नीति कूट नीति व्यवहार नीति और राज नीति ॥३१॥

सम्पत्ति का नैव दशा न शौर्य मैश्वर्यमत्रापि बलोद्यमौ च ।
एतेषु कश्चिदपि वै गुणो नैं वास्मासु सम्पूर्णतया प्रवेद्यत् ॥३२॥

अर्थ—साम्पतिक दशा शौर्य बल उद्योगादि कोई भी गुण सम्पूर्णतया नहीं आ सकता ॥३२॥

सर्वस्य हीयं मम सम्मति श्चोदासीन साधुरितिहास शिक्षाम् ।
पठेद्धि ध्याये दुपयोगि ताञ्च पुरा तनस्याऽद्यतनस्य चैव ॥३३॥

अर्थ—कई एक विद्वानों ने स्वीकार किया है तथा मेरा भी यह मत है कि उदासीन साधु को अपने प्राचीन तथा अर्वाचीन ऐतिहासिक शिक्षा को ग्रहण कर उसकी उपयोगिता पर ध्यान रखने की परमावश्यकता है ॥३३॥

ददात्यसौ नागरिकं विवेकं बुद्धिश्चते (उदासीन) दार्शनिका वदन्ति ।
पाठेतिहासस्य च लाभ मेतत् ज्ञानस्य यद् वर्धयतेहि शक्तिम् ॥३४॥

अर्थ—दार्शनिक उदासीन महात्माओं का कथन है कि इतिहास बुद्धि तथा नागरिक ज्ञान का जन्म दाता है इतिहास पढ़ने से तीन लाभ हैं एक तो यह कि विचार शक्ति की कल्पना को स्फुटित करके ज्ञान की शक्ति को बढ़ाता है ॥३४॥

यत्स्फोट यत्येष विचार शक्तेः सुकल्पनां यत्र रसोऽनुभूयत् ।
अध्ययन् ग्रन्थेषु नरस्य चेह सर्वो परिस्थंहि निजेति वृत्तम् ॥३५॥

अर्थ—जिससे कि रस (आनन्द) का अनुभव होता है (प्राप्ति होती है) दूसरे मनुष्य के अध्ययन के जितने भी विषय हैं उन सब में इतिहास का सर्वोपरि स्थान है ॥३५॥

नरः सदा चार युतोभवेद्धेऽध्ययन तश्चास्य मनः परिश्रमः ।
विस्तीर्य ते दृष्टि रथात्मनश्च संस्कार भावाः प्रवलाः भवन्ति ॥३६॥

अर्थ—अतः इससे सदाचार की शिक्षा प्राप्त होती है तीसरे इतिहास के अध्ययन से मन का व्यायाम होता है और साथ ही दृष्टि कोण विस्तृत होता है और आत्म संस्कार की प्रवल भावना उत्पन्न होती है ॥३६॥

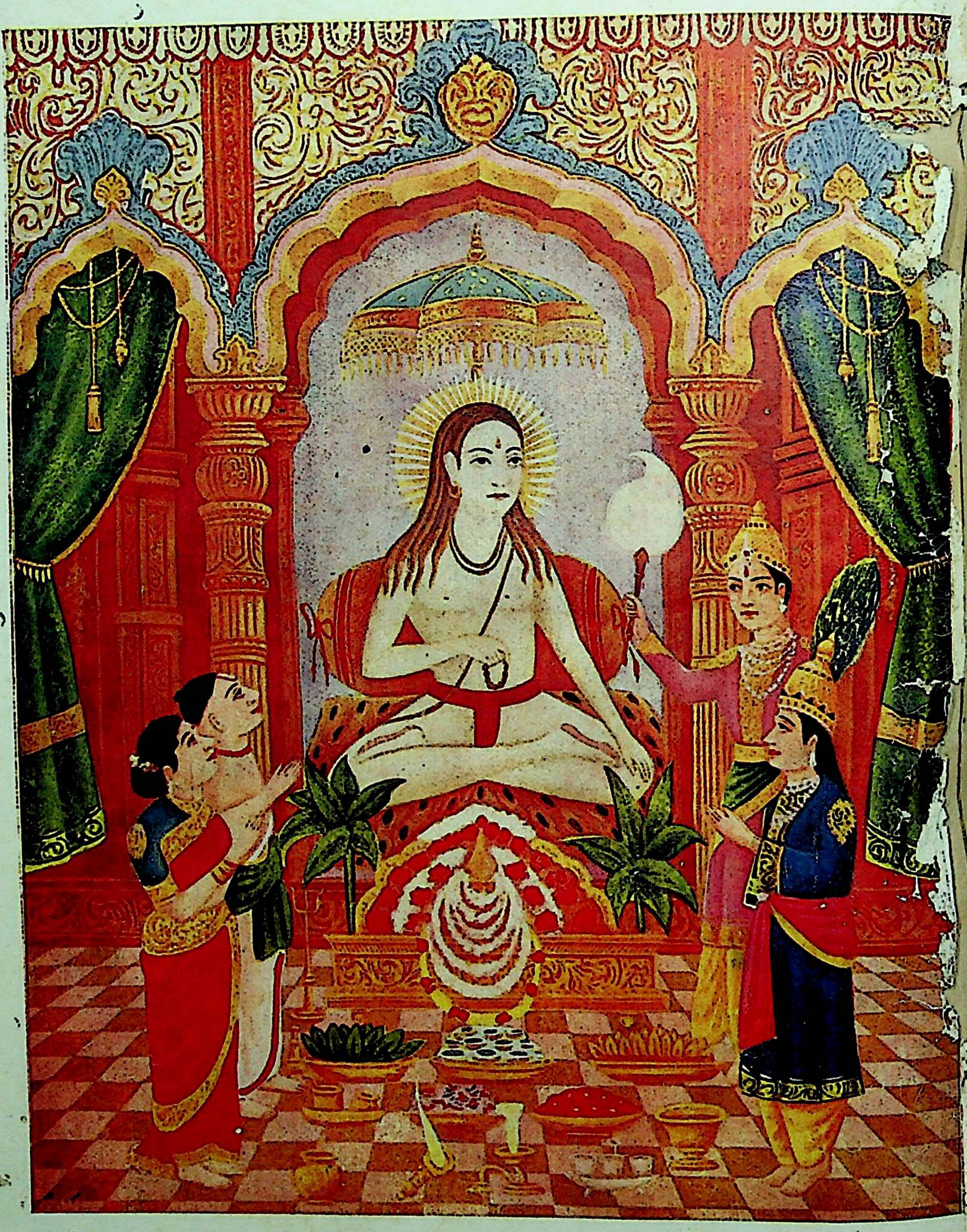
ऐनानुभूयेह रसं स्व बुद्धया व्यतीयते जीवन मत्र सौख्यात् ।
एवं विचार्याश्रयिता हरिञ्च प्रारब्ध वानस्मि पुरोज वृत्तम् ॥३७॥

अर्थ—जिससे बुद्धि सम्बन्धी सर्व आनन्द (रस) प्रकट होकर जीवन सुख मय व्यतीत होता है इस प्रकार विचार कर भगवान् हरि का आश्रय लेकर अधम उधारण भवभय टारण हिन्दू कौम रक्षक श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य के जीवन चरित्र के साथ २ संक्षेप से अपने पूर्वजों के इतिहास का लिखना आरम्भ करदिया है ॥३७॥

श्री साधुबेला तीर्थ सद्गुरु
बनखण्डी आश्रम सक्खर
(सिन्धु) मिति आषाढ़ कृष्ण
२ गुरुवार वि० सं० २००४

संसार का हितचिन्तक
ह०—स्वामी—हरिनामदास उदासीन ।

उदासीनाचार्य श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान हिन्दू धर्म रक्षक



Udasina charya Shri 1108 Jagatguru (World-Teacher
Shrichandra Bhagwan Hindu Dharam Rakhshak

ॐ

श्री ११०८ जगद्गुरुभ्यः श्रीसनकादिकोभ्य उदासीनाचार्य्येभ्यो नमोनमः ॥
श्री ११०८ जगद्गुरुभ्यः श्रीचन्द्रेभ्य उदासीनाचार्य्येभ्यो नमोनमः ॥
श्री १००८ सद्गुरुभ्यो बनखण्डिभ्यः उदासीनेभ्यो नमोनमः ॥

श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदयं महाकाव्यं
(मुनिमानसं) भाषाटीका सहितम्

* अथ मङ्गलाचरणम् *

नत्वा साम्ब सदा शिवं शिवमयं नैर्गुण्यं धारात्मकं
लोकेशं त्रिगुणावतार तरणिं व्याप्यं तथा व्यापकम् ॥
सृष्टि स्थित्यवसान तान तननं मायाकला कौतुकं
सर्वैराढ्यतमं दयागुणनिधिं भक्तप्रजुष्टं भवम् ॥ १ ॥

अर्थ—साम्ब (सदा अम्बा अनादि शक्ति सहित) कल्याण स्वरूप, सदाशिव निर्गुण-धारामय, नौकास्वरूप, व्याप्य व्यापक, उभयरूप, सर्वलोक स्वामी, गुणातीत होने के लिये त्रिगुण अवतार स्वरूप, बारम्बार सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, उपसंहार का विस्तार करनेवाले, मायाकला के सञ्चालक, सर्वस्तुत्य, दयासागर, भक्तों से सेवित ॥ १ ॥

अद्वैतं सुभयोग चारणाचरं वेदैरगम्यं विभुं
यल्लीलाम्बुधलेशतः प्रकटितो यावान्प्रपञ्चो भुवि ॥
संदृष्टाः सकलाः कलाः कलकलाः कल्लोललीलांताः
यत्सत्वं शुभसत्यसत्य लसितं तज्जिम्भराजृम्भणम् ॥ २ ॥

अर्थ—अद्वैतयोग कला के आचरण करनेवाले, वेदों से भी अगम्य, जिसके लीला-रूप-अम्बुध के कणमात्र से प्रगटित यावन्मात्र दृष्यमान संसाररूपी प्रपञ्च है। जिसकी परिस्थिति सकल-कला (सह विज्ञान सहिता) चंचल चपल-तरंगों के सदृश्य है। तथा जो सत्व है, अथवा सत्ययुक्त है। वह सब जिस देव का जिम्भणमात्र है ॥ २ ॥

यन्निःस्वासतमः समस्तविभवा वेदाः पुराणानि च
ग्रन्था धर्म्मतरङ्गवर्णनपराः सर्वेतिहासा स्तथा ॥
स्थूल सूक्ष्मतरं जदेवम निसं दृश्याति दृश्यं महत्
तत्सर्वं गिरीशदेव महिमा प्रोद्दीपनं दीपनम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसके स्वास से समस्त वेद पुराणादि धर्म्मग्रन्थ इतिहास स्थूल सूक्ष्म जो भी दृश्यमान है। वह सब भगवान् शंकर का ही प्रकाशरूप है ॥ ३ ॥

श्रीमत्पुराणहंसरूपधरणो धाराधरं धार्म्मिकं
प्रख्यातं मुनिपुङ्गवञ्चसनकं श्रीनारदादिप्रभम् ॥
औदासीन कलाललामलसितं पूज्यं महान्तं त्वजं
व्यासाख्यं भगवन्त नाम महिमा हिन्दूधराधारणम् ॥ ४ ॥

अर्थ—परम पूज्य पुराण स्वरूप हंस भगवान् मेघ के समान धर्म्म की धारा प्रवाहित करनेवाले समस्त लोक प्रख्यात मुनियों में श्रेष्ठ हंस भगवान के चेले शनकादि (सनक-सनंदन-सनातन-सनत्कुमार), नारदादि से लेकर समस्त उदासीन महामुनि जिन्होंने सृष्टिप्रारम्भ से लेकर आज तक उदासीन सम्प्रदाय को गगन चुम्बित बना के हिन्दू कौम को धरा में सुरक्षित बनाये रखने में सफल हुये ॥ ४ ॥

श्रीचन्द्रं गुरुदेव देवसदनं मायाकला वर्जितं
दान्तं दान्ततमं जितेन्द्रिय महाज्वाला समुद्भासकम् ॥

औदासीन मतप्रवाह तरणे शान्तं मुनिः तारकं
आचार्य्यं बनखण्डि देवदयन मरिभके सत्कथाम् ॥ ५ ॥

अर्थ—श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् शिवावतार समस्त माया कला से अलिप्त शान्त क्षमा दमादिगुणयुक्त जितेन्द्रियों के महाज्वाला की पवित्र शक्ति में प्रकाश डालनेवाले उदासीन सम्प्रदाय के बढ़ानेवाले महामुनि संसार तारक तथा श्री सिन्धु सप्त गंगामध्यवर्त्ति श्रीसाधुबेला-तीर्थ संस्थापक आचार्य्य श्री बनखण्डि महामुनि को नमस्कार करके सत्कथा युक्त परमपवित्र जगत तारक ग्रन्थ का आरम्भ करता हूँ ॥ ५ ॥

श्रीचन्द्रदेवो प्रणमामि नित्यं
हिंदुजनाना मुपकार वृद्धैः ॥
नथे तरेषाँ शुभहेतवे च
भक्तिप्रभावे लसितः कविश्च ॥ ६ ॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रदेव को नित्य प्रणाम है जो कि हिन्दूजनों का सदा उपकार किया करते हैं जिससे कि वह वृद्धि पाते हैं। उन्हीं हिन्दुओं का मैं भी शुभ चिन्तक होता हुआ सद्गुरु की भक्ति से प्रभावित होकर कविता करने में प्रवृत्त हुआ हूँ ॥ ६ ॥

नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यः
सरस्वती लोक फल प्रदायकः ॥
विष्णु गणेभ्यः शिवशक्ति सूर्य्य
मंगल प्रदानानि चपञ्च देव ॥ ७ ॥

अर्थ—गुरु तथा गुरु की पादुकाएँ जो लोक में फल प्रदायक हैं सरस्वती, विष्णु, गणेश, शिव, शक्ति, सूर्य्य, इन पंचदेवों को नमस्कार है। जो कि नित्यप्रति स्मरणीय तथा मंगलप्रद हैं ॥७॥

ध्यात्वा च साम्ब शिव माद्यमशगं
अंशवतारादि समस्त देवम् ॥
जगद्गुरुर्णा भगवन्निभानां
श्रीचन्द्रदेवेति महत्मनाश्च ॥ ८ ॥

अर्थ—ध्यात्वा च साम्बमिति आदि अंश (निराधार) शक्ति के सहित आदि शिव भगवान् को तथा अंशांशेन अवतरित समस्त अवतारों को और देवताओं को नमस्कार करके

जगद्गुरु शंकर अवतार रूप श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रदेव महान् आत्मा का जीवन चरित्र लिखता हूँ ॥ ८ ॥

हिन्दू प्रजाप्राण सुपोसकाणां
साक्षाच्छिवाना भवतारकाणाम् ॥
ज्ञानप्रभोलासन भासितानं
समस्तदेवै रभिवन्दितानाम् ॥ ९ ॥

अर्थ—हिन्दू प्रजा के प्राणाधार साक्षात् शिवस्वरूप संसारमात्र के तारक ज्ञानछटा से देदीप्यमान समस्त सुरवृन्द संपूजित श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

श्रीगुरू श्रीचन्द्रोदयं महाकाव्यं सुखाकरम् ॥
हिन्दूपकारधाराभि र्मार्जितं शुभवाञ्छितम् ॥१०॥

अर्थ—यह जगगुद्रु श्रीचन्द्रोदय नामक संस्कृत महाकाव्य समस्त सुखों का निधि हिन्दूधर्म्म का उपकारक, तथा शुभकामनाओं का प्रयच्छक है ॥१०॥

श्री सिन्धु गंगा सलिलेच मध्ये
श्री साधुबेला शुभतीर्थ वासः ॥
विद्वद्वरिष्ठा सत्कर्मनिष्ठो
कथन्ति गाथा हरिनामदासः ॥११॥

अर्थ—श्री सिन्धु गंगा, जिसका विशाल माहात्म्य वेदों में वर्णित है। उसके पवित्र जल के मध्य श्रीसाधुबेला परम पावन तीर्थ है। उसमें विद्वद्वरिष्ठ सत्कर्म्म में निष्ठा रखनेवाले महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन अपनी गद्दी पर विराजमान हुए कथा प्रवचन कर रहे हैं ॥११॥

त्रेतायुगे द्वापर तुर्ययोश्च
श्रीरामचन्द्रोऽजनि कृष्णचन्द्रः ॥
श्रीचन्द्र चन्द्रश्च जगन्नियन्त्री
चन्द्रत्रयी चेतसि मे चकास्तु ॥१२॥

अर्थ—जिस भगवान् ने अपनी प्रतिज्ञा (यदा यदा हि धर्म्मस्य) के अनुसार त्रेता, द्वापर और कलियुग में क्रमशः श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीचन्द्र चन्द्र के रूप में अवतार

लेकर संसार का नियन्त्रण किया है। वे भगवान् तीनों रूपों से मेरे मन मन्दिर में सदा निवास करें। तथा अपने पवित्र प्रकाश से मेरे अज्ञानान्धकार को दूर कर अभिनव अर्थों को प्रकाशित करें ॥१२॥

भेदो यद्यपि देवेसु न मनागिति मन्महे ॥
तथापीदं चकोरोऽयं चेत श्चन्द्रं न मुञ्चति ॥१३॥

अर्थ—यद्यपि देवताओं में भेद बुद्धि रखना शास्त्रों ने महादोष बतलाया है। तथा मैं भी धर्म्मशास्त्रों में अटल विश्वास और श्रद्धा रखता हूँ। तो भी मेरा यह मनरूपी चकोर श्रीचन्द्ररूपी चन्द्र की ओर बरबश खिंचा जा रहा है। अर्थात् मेरे वश का नहीं रहा ॥१३॥

सुविचित्र-पदन्यासा नानाऽलङ्कारशोभिता ॥
कविता वनिता साध्वी कस्य नाऽऽह्लादकारिणी ॥१४॥

अर्थ—सुन्दर विचित्र पदों से युक्त, अनेक उपमा-अलंकारों से अलंकृत तथा सम्पूरण-च्युत संस्कृतत्व आदि दोषों से रहित, कविता-कामिनी किसको आह्लादित नहीं करती अर्थात् सब को कर लेती है ॥१४॥

कदाचिदन्तरे गुप्ता कदाचिद् दृश्यतां गता ॥
नित्यं सरस्वती पुण्या पुनाति सात्वतां कुलम् ॥१५॥

अर्थ—आत्माराम महात्माओं की सरस्वती वाणी कभी २ भीतर ही एक तत्वाभास में लगी हुई लोगों का कल्याण करती रहती है। और कभी २ प्रगट होकर भक्तजनों के कुलों को पवित्र करती रहती है ॥

(दूसरा अर्थः) भगवती सरस्वती नदी कहीं-कहीं गुप्तरूप से भारत के कल्याण में लगी हुई है और कहीं-कहीं प्रगट होकर श्रद्धालु भक्तों के कुलों का उद्धार कर रही है ॥१५॥

सा जिह्वा या हरिं स्तौति हस्तौ तौ तत्परायणौ ॥
तत्सेवैवं परं कर्म श्रेये तत्पावनं यशः ॥१६॥

अर्थ—वही वास्तव में जिह्वा है, जो कि भगवान् के कल्याणकारी गुणों का निरन्तर गान करती रहे। तथा वे ही वास्तव में हाथ हैं, जोकि भगवान् की सेवा में सदा सर्वदा लगे रहें। और भगवान् (जनता जनार्दन) की सेवा ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य होना चाहिए। इसलिये मैं भी यथाशक्ति भगवान् के पवित्रतम यश का वर्णन करके अपने आप को पवित्र करने की चेष्टा करता हूँ ॥१६॥

अथ कथाऽऽरम्भः—

एकदा सत्यलोकस्थं मुनयः सनकादयः ॥
प्रपच्छु र्हंसदेवं हि लोकानां हितकाम्यया ॥१७॥

अर्थ—एक समय भगवान् हंसमुनि जी सत्यलोक में विराज रहे थे। सनकादि मुनियों ने लोगों की कल्याण कामना के लिये अद्भुत प्रश्न किया ॥१७॥

हे प्रभो जगतां नाथ सर्वभूत हितेरतः ॥
त्रिकालज्ञ दयासिन्धो चिन्तां दूरीकुरुद्रुतम् ॥१८॥

अर्थ—हे भगवन् ! जगत् के स्वामी ! समस्त प्राणियों की भलाई में लगे हुए दया के सागर ! तीन काल (भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान) की जानने वाले आप हमारी चिन्ता को दूर करने को शीघ्र कृपा करें ॥१८॥

आयास्यति महाघोरः कलिकालो भुवस्तले ॥
दुःखदग्धा भविष्यन्ति हिन्दवः परपीडिताः ॥१९॥

अर्थ—आप जानते हैं कि भारतवर्ष में महाघोर कलिकाल आयेगा। उसमें शत्रुलोग नाना प्रकार से हिन्दुओं पर विपत्ति ढायेंगे ॥१९॥

स्मारं स्मार मिदं तेषां दूयते हृदयं परम् ॥
उपायं तं प्रभो ब्रूहि मोद्यन्ते येन हिन्दवः ॥२०॥

अर्थ—हिन्दुओं की उस विपत्परम्परा को याद कर करके हृदय टूक-टूक हो रहा है हे भगवन् ! उस उपाय को बतलायें। जिससे कि हिन्दुओं का कल्याण हो ॥२०॥

"श्री हंसमुनिरुवाच"

साधु साधु महाभाग परानुग्रहतत्पर
कोऽन्योऽस्ति त्वादृशो लोके परदुःखेन दुःखितः ॥२१॥

अर्थ—श्री हंसमुनिजी बोले हे उदासीन मुनियो ! आपने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया। आप सदा से दूसरों पर दया करते आये हैं। आपके समान दूसरा कौन होगा, जोकि दूसरों के दुःख से दुःखी हो ॥२१॥

नवनीतोपमं साधो हृदयं कथ्यते जनैः ॥
द्रवति स्वात्म तापेन नवनीतं परेण तत् ॥२२॥

अर्थ—लोग साधुजनों के हृदय को माखन के समान कोमल कहते आ रहे हैं । परन्तु आज पता चला कि साधुओं का हृदय माखन से कहीं कोमल अधिकतर होता है। कारण कि माखन तो अपने ही ताप से पिघल जाता है। परन्तु साधुओं का हृदय तो पर- (दूसरे के) ताप से पसीज उठता है ॥२२॥

या कथा सुखदा लोके धनधन्य प्रवर्धिनी ॥
वर्त्तते परमं गुह्या सा ते स्नेहात् प्रकाश्यते ॥२३॥

अर्थ—सुनिए ! जो कथा संसार में नाना प्रकार के सुखों को देने वाली है । और जिसके सुनने से धनधान्य की बढ़ती होती है। आज तक मैंने उसे परम गुह्य रखा, परंतु आज आप लोगों के स्नेह के वशीभूत होकर उस को प्रकाशित करता हूं ॥ २३॥

यस्याः श्रवणमात्रेण सद्य सिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥
कीर्त्तिश्च विमला लोके जायते तत्प्रभावतः ॥२४॥

अर्थ—जिस कथा के सुनने मात्र से ही मनुष्यों की सब प्रकार की सिद्धियाँ पूरीहो जाया करेंगी। और जिस कथा के पवित्र प्रभाव से संसार में निर्मल यश कीर्ति फैल जाया करेगी ॥२४॥

यावत्सौख्यं स्मृत्तं लोके यावच्च दुर्लभं मतम् ॥
तत्सर्वं विजानीहि हस्तगं तत्प्रभावतः ॥२५॥

अर्थ—जो भी संसार में सुख कहा है और जो भी कोई संसार की प्राप्तव्य वस्तु है वह इस कथा के प्रभाव से मनुष्यों के हस्तगत हो जायेगी ॥२५॥

तामहं परमां पुण्यां जननीं सर्वसम्पदाम् ॥
वर्णयाम्यद्य ते गाथां संश्रृणुस्व समाहितः ॥२६॥

अर्थ—आज मैं उस सर्व सम्पदाओं की देने वाली कथा का वर्णन करता हूँ । आप परम सावधान होकर श्रवण करें ॥२६॥

रोचिस्यते न पायेभ्यो गाथेयं लोकपावनी ॥
सूर्य्यस्य हि यथा तेजो नोलूकानां प्रियं भवेत् ॥२७॥

अर्थ—यह पवित्रतम कथा भी कई एक पापात्मायों को नहीं भायेगी । जैसे की सूर्य काप्रकाश उलूकों को नहीं भाता ॥२८॥

ह्द्यं लोकोत्तरं द्रव्यं दृष्टिदोषेण मानवः ॥
अन्यथा पश्यति तस्मात् द्रव्यं नात्रऽपराध्यति ॥२८॥

अर्थ—संसार की कितनी भी सुन्दर से सुन्दर वस्तु हो परंतु मनुष्य उसे अपने दृष्टिदोष से उल्टा ही देखता है। किंतु वास्तव में वस्तु का कोई अपराध नहीं होता। प्राणी अपने प्राक्तन संस्करानुसार ही संसार से संस्कार ग्रहण करता है हंस नरक में भी जाकर मोती चुगेगा और सूअर स्वर्ग में जाकर भी अपना खाद्य ढूँढैगा मिरच पृथ्वी में षट्रस रहते हुए भी कटुरस को ही ग्रहण करती है ॥२८

यथा शंखं महाश्वेतं नवनीतरुचेः समम् ॥
इच्चते पीतवर्णं हि पाण्डुरोगेण दूषितः ॥२६॥

अर्थ—जैसा पाण्डुरोगी अपने दृष्टिदोष से माखन के सामान स्वेत वर्ण वाले शंख को पीतवर्ण वाला देखता है। इस प्रकार ससार की पतितपावन, सुरनरमुनिजनमनभावन, हिन्दुधर्म्मोन्नतिकारक, ज्ञानविज्ञाग वैराग्य प्रदायक, उपासना, समदम, दया, क्षमा, श्रद्धाभक्ति, क्षांतिसमयुक्त, धर्म्मार्थकाममोक्षप्रसति, श्रद्धाभक्तिरससमुद्घाटिक, जप तप विद्याकला कौशल से परिपूर्ण, भगवन्नामरसिक, ब्रह्मविद्या, उदासीनसाधु शंकरावतार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का विमल, यशप्रद, जीवनचरित्र, त्रैयीतापविनाशक, लोकपरलोकसुधारक, उनको न भायेगा कारण छिद्रान्वेषी पुरुषों को समस्त भूषणों में दूषण ही दिखाई देता है ॥२६॥

उत्पत्स्यते कलौ काले वेदिवंश विभूषणः ॥
श्रीगुरुर्नानको नाम ज्ञानी भागवतोत्तमः ॥३०॥

अर्थ—अस्तु-सुनिये!—कलियुग में परम भागवत ज्ञानी श्री गुरुनानक देव जी वेदीवंश में वि० सं० १५२६ कार्तिक सुदी १५ को जन्म लेंगे ॥३०॥

साध्वी सुलच्चणा देवी सर्वलच्चणलक्षिता ॥
कल्याणीं कमला तुल्या तस्य भार्य्या भविष्यति ॥३१॥

अर्थ—सब लक्षणों के युक्त, सती शिरोमणि, लक्ष्मी के समान कल्याण करने वाली, सुलक्षणी नाम की भार्य्या उन की धर्म्म पत्नी होंगी ॥३१॥

तस्यां निरञ्जनो नाम साक्षाद् देवो महेश्वरः ॥
श्रीचन्द्रदेवरूपेणऽवतरिष्यति भूतले ॥३२॥

अर्थ—उन के गर्भ से साक्षात् निरंजन मायापति देवाधिदेव स्वयं भगवान् महादेव श्रीचन्द्र रूप से अवतार लेंगे ॥३२॥

तस्मिन् काले प्रजां दुष्टाः पीडयष्यिन्ति नित्यशः ॥
विशेषतश्च हिन्दूनां दुर्दशा सम्भविस्यति ॥३३॥

अर्थ—उस समय संसार में दुष्टों का बोल बाला होगा हिन्दुओं पर चारों ओर से दुःखों के बादल घिर आयेंगे ॥३३॥

तेषा मुपद्रवै र्नित्यं हाहाकारो गृहे गृहे ॥
धर्म्मस्थानेसु न क्वापि श्रोष्यते घण्टिकाध्वनिः ॥३४॥

अर्थ—दुष्टों के उपद्रवों से घर घर में हा हा कार मच जायेगा। मठ मन्दिरों में कहीं भी शंख घड़ियाल की ध्वनि सुनने में नहीं आयेगी ॥३४॥

अपराधो हरेर्नाम ग्रहणञ्चापि मन्यते ॥
गन्धमाल्यादिभि स्तस्य पूजनस्य तु का कथा ॥३५॥

अर्थ—भगवान् का नाम लेना भी अपराधों में गिना जायेगा माला चन्दनादिक से भगवान् का पूजन करना तो दूर रहा ॥३५

यदा विदल्यते वेदाः त्रोधन्ते देवमूर्त्तयः ॥
हन्यन्ते हिन्दवः क्रूरं तेसां त्राता न विद्यते ॥३६॥

अर्थ—चारों वेद पैरों में ठुकराए जायेंगे देव मूर्तियां तोड़ दी जायेंगी हिन्दुओं को हरप्रकार से तंग किया जाएगा उनका रक्षक कोई नहीं होगा ॥३६॥

करुणा-क्रंदनं श्रुत्वा तेसां कारुणिकः प्रभुः ॥
निराकारोऽपि मायेशः साकारत्वं गमिस्यति ॥३७॥

अर्थ—अपने भक्तों का करुणक्रन्दन सुनकर परम कारुणिक स्वयं भगवान् निराकार होते हुए भी माया को अपने आधीन करके साकार विग्रह धारण करेंगे ॥३७॥

एवं वहौ गते काले सत्या सा घटनाऽभवत् ॥
सत्यं सत्यप्रतिष्ठानां वाणीना श्याति मोघताम् ॥३८॥

अर्थ—इसके अनन्तर बहुत समय बीत जाने पर वह हंस भगवान् की वाणी अक्षरशः सत्य निकली। सच है किजिन की सत्य में प्रतिष्ठा है, उनकी वाणी सदा अमोघ होती है अर्थात् जैसा वह कुछ कह देते हैं ठीक वैसा ही होता है ॥३८॥

अधर्म्मं बहुलं दृष्ट्वा संसार सकला सुराः ॥
ब्रह्म-विष्णु-बलाराति - कुबेर वरुणादयः ॥३९॥

अर्थ—ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्रवरुण और कुबेरादि देवतागणों ने संसार में चारों तरफ होने वाले अधर्म्म को देखकर ॥३९॥

सम्भूय शम्भो रम्यर्णं कैलासं सदया ययुः ॥
लोकोपकार-निरता भवन्ति हि सतां धियः ॥४०॥

अर्थ—सब एकत्रित होकर कैलाश में शंकर भगवान् के पास गए कारण कि साधुजन स्वभावतः परोपकार रत होते हैं ॥४०॥

तत्र शैलाधिराजस्य शृङ्गे वद्धासनं विभुम् ॥
समाधिस्थं समालोक्य भक्त्या तं तुष्ठुवु सुराः ॥४१॥

अर्थ—वहां पर कैलास की चोटी पर आसन बद्ध, तथा समाधीलीन शंकर भगवान् को देखकर देवता लोग परम भक्ति से स्तुति करने लगे ॥४१॥

"देवा ऊचुः"

देव देव ! महादेव ! लोकानां हितकारक ! ॥
आशुतोष ! स्मराराते ! पार्बतीप्रिय ! शङ्करः ॥४२॥
समुद्रमथने देवाः सलोकाः सहदानवाः ॥
भस्मीभवितु मारब्ध स्त्वया त्राता विषादिना ॥४३॥

अर्थ—देवता लोग बोले कि हे देवाधिदेव महादेव सर्वप्राणिमात्र के हितकारक भोले नाथ काम देवनाशक पार्बतीपति सदाकल्याणदायक हे भगवन् समुद्रमथन के समय जब कि कालकूट की विकाल ज्वाला से देवदानवों के सहित त्रिलोकी भस्मीभूत होने लगी थी तो आपने उस भयंकर विष का पान कर सबकी रक्षा की थी ॥४२—४३॥

हालाहलं त्वया पीतं लोकरक्षणं काङ्क्षया ॥
कण्ठे तस्थौ न जठरं जरायामस ते विभो ॥४४॥

अर्थ—आप लोक कल्याण कामना से उस भयंकर हलाहल को देखते ही देखतेपी गए परन्तु वह आपका कुछ न बिगाड़ सका, कण्ठ में ही धारण कर लिया पेट तक भी न पहुँच पाया ॥४४॥

नीलकण्ठस्ततो लोके गीयस्ते सादरं जनैः ॥
अगोचराणि ते वाचां कर्माणि भक्तपालकः ॥४५॥

अर्थ—उसी दिन से लेकर आपको लोग परम श्रद्धा से नीलकण्ठ नाम से पुकारने लगे हे भक्तवत्सल ! आपके लोककल्याणकारी अद्भुत कर्म मनवाणी से परे हैं ॥४५॥

ब्रह्मप्रसादादुत्पन्नो मदान्धो लोकहिंसकः ॥
त्रिलोकीं कम्पयामास सगण स्त्रिपुरासुरः ॥४६॥

अर्थ—हे भगवन् ! वह घटना अभीनूतन सी प्रतीत होती है जो कि-ब्रह्मा जी के वरप्रदान से मदोन्मत्त होकर त्रिपुरासुर ने अपने साथियों को लेकर नाना प्रकार का नृशंस-घृणित-ऊधम मचाया था। जिस का कि नाम के श्रवण मात्र से त्रैलोक्य प्रकम्पित हो जाता था ॥४६॥

इन्द्रान्तक कुबेरादि पदवी तेन निर्जिता ॥
भूतले भ्रामिताः छन्ना देवता मानवा इव ॥४७॥

अर्थ—अपराध की भी कोई सीमा होती है। उसने क्या नहीं किया इन्द्र से लेकर कुबेर तक सब देवताओं को जीत लिया। देवता लोग पृथ्वी पर मनुष्यों के सदृश गुह्यरूप से मारे-मारे भटकते रहे ॥४७॥

अद्भुतं तत्तु कर्माणि धुनोति कस्य न शिरः ॥
वाह्योपकरणादनं मन्ये लोक विडम्बना ॥४८॥

अर्थ—उस समय के आपके विलक्षण कर्त्तव्य को देखकर किसका मस्तक श्रद्धा से नहीं झुक जाता हे भगवन् ! वाह्यसामग्री की सहायता लेना तो केवल आपकी लौकिक विडम्बना-मात्र है आप कर्तुम् अकर्त्तुं अन्यथा कर्त्तुं सर्वथा समर्थ हैं।॥४८॥

सूर्य्य चन्द्रो रथाङ्गे च धरणीं रथ मेव च ॥
विधाय चतुरो वेदान श्वान् शेषं खलीनकम् ॥४९॥
ब्रह्माणं सारथिं मेरुं कोदण्डं ज्याश्च वासुकिम् ॥
विष्णु शरश्च सन्धाय निमेषार्धेन भस्मसात् ॥५०॥

अर्थ—हे लीला धारिन् ! हमको भूल भूलैया में डालने के लिए उस समय आपने पृथिवी को रथ, सूर्य्य और चन्द्रमा को रथ के पहिए, चारों वेदों को घोड़े, शेषनाग को लगाम, ब्रह्मा को सारथी, मेरु को धनुष, वासुकि को मौर्वी, (प्रत्यंचा) तथा विष्णु को बाण, बना कर सबके देखते-देखते क्षणभर में त्रिपुरासुर को भस्म कर दिया । यह लोक भुलवानही तो और क्या है ॥४९—५०॥

पश्यता मेव सर्वेषां त्रिसरं कृतवान् भवान् ॥
देवाश्च लेभिरे स्वं स्वं पदं निष्कण्टकं तदा ॥५१॥

अर्थ—समस्त देवताओं के देखते ही देखते त्रिपुरासुर को भस्म कर दिया। और देवताओं ने निष्कण्टक हो अपने अपने स्थानों को पूर्ववत् प्राप्त किया ॥५१॥

इदानी मपि देवेश तथैव धरणीतले ॥
म्लेच्छैः क्रान्ता सदाचारा देशा धर्म्माः प्रजा स्तथा ॥५२॥

अर्थ—हे देवेश अब भी भारतवर्ष में म्लेच्छों ने देश-प्रजा-आचार और धर्म के विषय में विरुद्ध मनमानी करनी आरम्भ कर दी है ॥५२॥

क्लिश्यन्त्यनु दिनं दीना देवतान् त्रातु मर्हसि ॥
अन्यथा ते विभोः सर्वं नाशं पश्यति पश्यताम् ॥५३॥

अर्थ—विचारे हिन्दू परम पीड़ित हो रहे हैं, आप उनकी अवश्य रक्षा करें। नहीं तो आखों के देखते देखते सब नष्ट होने को हैं ॥५३॥

इत्येवं संस्तुतो देवैः शम्भु रुन्मील्य लोचने ॥
प्राह तान् सकलान् देवान् घनगम्भीरया गिरा ॥५४॥

अर्थ—इस प्रकार देवताओं की स्तुति करने पर भगवान् शंकर ने नेत्र खोले। और सब देवताओं को परम गम्भीरता से कहने लगे ॥५४॥

अभयं सर्वभूतेभ्यः स्वस्था स्तिष्ठत देवताः ॥
आशु तान् नाशयिष्यामि धर्म्मं विध्वंसकारिणः ॥५५॥

अर्थ—प्राणी मात्र का कल्याण होगा, आप कोई चिन्ता न करें। इन धर्म्मद्रोहियों का मैं शीघ्र नाश करूंगा हिन्दु धर्म्म की पूर्ववत् स्थापना करके पृथिवी का भार हरूंगा ॥५५॥

श्रीचन्द्रनाम्ना मम लोकमात्रे
ख्यातिश्च संपूज्यत मा भवेच्च ॥
आचारयिष्यामि समग्रवेदा
नृलोके प्रसिद्धाञ्छिथिलानिदानीम् ॥५६॥

अर्थ—गुरु श्रीचन्द्र नाम से समस्त भारत में मेरी प्रसिद्धि होगी। शिथिल हुए वेद मार्ग को पुनः चलावेंगे ॥५६॥

उदासीन मार्ग स्सदोङ्कासिद्ध
स्सदामोत्ततत्व-प्रभा-भासकश्च ॥
अयं सप्रम्दायश्च यो वेदसिद्धः
स मन्नामतो विश्वमात्रे प्रसिद्धः ॥५७॥

अर्थ—प्रणव ओंकार से जो उदासीन सम्प्रदाय चला आ रहा है। जो मोक्ष देने वाला वैदिक मार्ग है, जो संसार प्रसिद्ध है। उस सम्प्रदाय में हम भी रहेंगे ॥५७॥

नोट—यही बात उदासीनमात्रा में आई है। "ओं आदि उदासी आये" इस ॐ अक्षर को गीता अ० ८ श्लोक १३ में ब्रह्म कहा है। "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" ॐ अक्षर से उदासीन सम्प्रदाय चला। और ॐ अक्षर का नाम ब्रह्म है। तभी उदासीन सम्प्रदाय को ब्रह्मसंस्थ भी कहते हैं ॥५७॥

धर्म संस्थापयिष्यामि हरिष्यामि भुवो भरम् ॥
साहाय्यमत्र युष्माभिः निर्जरा मे विधीयताम् ॥५८॥

अर्थ—हिन्दू धर्म की पूर्ववत् स्थापना करके पृथ्वी का भार हरूँगा परन्तु इस में आप लोगों की भी सहायता अपेक्षित है ॥५८॥

नौकेन खलु चक्रेण रथं चलति कर्हिचित् ॥
इत्युक्त्वाऽऽज्ञापयामास देवान् गन्तुं लयान्प्रति ॥५९॥

अर्थ—आप जानते हैं कि एक पहिये से कभी रथ चला नहीं करता। ऐसा कह भगवान् शंकर ने देवताओं को स्व-स्व स्थान को जाने की आज्ञा दी ॥ ५९ ॥

निशम्य वचनं शम्भोः प्रष्टुकामो हरि स्ततः ॥
उवाच केन को नाम्ना देवस्ते सहकृद्भवेत् ॥६०॥

अर्थ—इस प्रकार भगवान् शंकर के वचन को सुनकर भगवान् विष्णु जी कुछ पूछने की इच्छा से बोले कि हे शङ्करजी कहिये किस किस नाम से कौन कौन देवता आपकी सहायता करें ॥ ६० ॥

"श्री महादेव उवाचः"

भवेत् ब्रह्मा गुरुदत्तः क्रमेण सनकादयः ॥
अलमस्तो बालहासो गोविन्दः फुल्ल इत्यपि ॥६१॥

अर्थ—श्री महादेव जी बोले ब्रह्मा जी गुरुदित्ता, सनक जी अलमस्त, सनन्दन जी

बालहास, सनातन जी गोविन्द देव और सनत्कुमार जी फूल साहब ये चार धूने के नाम से संसार में प्रसिद्ध होंगे ॥ ६१ ॥

भानुश्च भक्तभगवान् धर्म्मराजो महामुनिः ॥
धर्म्म चन्द्रेति विख्यातः कतृरायः सुरेश्वरः ॥६२॥
वरुणोऽप्यजितानन्दोऽवतरन्तु महीतले ॥
दिनप्रतिनिधिभूत्वा मन्त्रशिक्षा कलौयुगे ॥६३॥

अर्थ—सूर्य्य नारायण-भक्तभगवान् के नाम से, धर्म्मराज-धर्म्मचंद्र, इन्द्र-कर्त्तराय, वरुण-अजितानन्द के रूप में पृथिवी पर अवतार धारण करेंगे ॥६२-६३॥

त्रिशतानि सष्ठानि दिनान्यवतरन्तु च ॥
सम्प्रदायगतः शिष्या भवन्तु हितकाङ्क्षिणः ॥६४॥

अर्थ—३६० तीन सौ साठ दिन भी अवतरित हो उदासीन सम्प्रदाय मे श्री भक्त-भगवान् के शिष्य बन कर मेरी सहायता करें ॥६४॥

अग्निश्च सुथरा भूत्वा जलन्तु मीहासाहबाः ॥
बुद्धस्तु भक्तानन्दः स्यात् गणेशः सङ्गतो भवेत् ॥६५॥

अर्थ—अग्नि देव-सुथरा नाम से, जल का अवतार-मीहासाहब के नाम से, बुद्ध भक्तानन्द, तथा गणेश-सङ्गत साहब के नाम से भूमण्डल में प्रसिद्धि प्राप्त करें ॥६५॥

वीरभद्रः कृपालुःस्यात् बनखण्डी षडाननः ॥
दक्षः प्रियतमो भूयात् सन्तोषस्तु धनाधिपः ॥६६॥

अर्थ—वीरभद्र-कृपालदास, कार्त्तिकेय-बनखण्डी, दक्ष प्रजापति-प्रीतमदास, कुबेर-सन्तोषदास के नाम से अवतार लेंवे ॥६६॥

सर्वे देवा उदासीना भूत्वा कुर्वन्तु भूतले ॥
धर्मसंरक्षणं यान्तु कीर्त्तिं कल्पस्थिरां तथा ॥६७॥

अर्थ—सम्पूर्ण देवता पृथिवी में अवतरित हो उदासीन बन उदासीन संप्रदाय की उन्नति करें हिन्दु धर्म्म की रक्षा करें और अक्षय कीर्ति को प्राप्त करें ॥ ६७ ॥

इति गिरा खलु चन्द्रकलाधरः
सकरुणः क्षितिभार जिहीर्षया ॥

क्षितितलेऽवतरीतु मना स्तदा
सुरगणं विससर्ज मुदान्वितम् ॥६८॥

अर्थ—ऐसा कह कर भगवान् चन्द्रमौलिने करुणा से द्रवित हो पृथिवी का भार हरने की इच्छा से अवतार धारण करने का संकल्प किया, और सादर सप्रेम सप्रमोद देवताओं को विदा किया ॥ ६८ ॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्त नद सिंधु गङ्गा मध्य वर्ति सक्खनगरे श्रीमदुदासीनवर्य्य परम हंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डी देव गुरु चरण कमल चञ्चरीकाय मानमानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्रीगुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे मंगलाचरण हंस सनकादिक प्रश्नोत्तर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र अवतार कारण शिव विष्णु संवाद वर्णन नाम सकल कलिकल्मषनाशनी प्रथम किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥ १ ॥

अथ द्वितीय किरण

ततः प्रापतेषु दिनेषु शम्भुः
स्वल्पेषु देवैः सह भारतेऽस्मिन् ॥
प्रत्यूषकाले च शुभे मुहूर्ते
शुभे तिथौ शुभ्रदिने दिनेशे ॥१॥

अर्थ—देवताओं के विदा होने के कुछ ही दिन बाद भक्तभयहारीत्रिपुरारी भगवान् शंकर सब देवताओं को साथ लेकर इस भारतवर्ष में शुभ घड़ी शुभ मूहुर्त्त शुभ दिन शुभ वार में पधारे ॥ १ ॥

उदश्वति प्राणभृतां हिताय
विधाय कायं नयनाभिरामम् ॥
सुलक्षणायां गुरुनानकस्य
गेहावतारं भगवान् निनाय ॥२॥

अर्थ—तथा अपने सब प्राणियों को सुख देने के लिये बहुत ही मनोहर रूप से श्री गुरुनानक देव जी उदासीन के घर में माता श्रीमती सुलक्षणी जी की कोष से अवतार ग्रहण किया ॥ २ ॥

पञ्चाम्बुदेशे नयनाभिरामे
कपूर्थला दौलतखानराज्ये ॥
नीत्वावतारं च सुल्तानपुर्य्यां
श्रीचन्द्रदेवो भुवने प्रसिद्धः ॥३॥

अर्थ—पंजाब देश में एक बहुत सुन्दर कपूर्थला रियासत है। उस समय वहाँ का शासक नवाब दौलतखान था कपूर्थला राज्यान्तरगत सुलतानपुर में अवतार लेकर भगवान् शंकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुये ॥ ३ ॥

विधौ च वाणे च शरे च चन्द्रे
तिथौ नवम्याश्च तथैव शुक्रे ॥
भाद्रे च शुक्ले च सुलक्षणाऽमुं
प्रासूत पुत्रं शुभ लक्षणं सा ॥४॥

अर्थ—आप का शुभ जन्म सती शिरोमणि भगवती सुलक्षणी देवी के गर्भ से वि० सं० १५५१ भाद्रपद शुक्ला नवमी शुक्रवार को ५ घड़ी दिन चढ़े हुआ इस दिन नक्षत्र, योग, ग्रह और लग्न सभी अच्छे मंगलदायक थे ॥ ४ ॥

प्रासवीं वेदनां सद्यो विस्मृत्य पुलकाञ्चिता ॥
वेपमाना परानन्दात् स्वेद निर्झर सिञ्चिता ॥५॥
साक्षात् महेश्वरं दृष्ट्वा जननी विस्मय ययौ ॥
आनन्दवारि पूर्णाक्षी बद्धाञ्जलिरभाषत ॥६॥

अर्थ—अपने गर्भ से पैदा हुए साक्षात् भगवान् शंकर को देख कर पूज्यमाता जी अपनी सारी प्रसव वेदना को भूल गईं। शरीर रोमाञ्चित होगया आनन्द के मारे शरीर काँपने लगा मोतियों के समान आनन्द के स्वेद-बिन्दु चमकने लगे नेत्र डब डबा आये ऐसी अवस्था में पूज्य माताजी हाथ जोड़ कर आपकी स्तुति करने लगीं ॥५-६॥

॥ मातृ-स्तुति ॥

देहे गजाजिन मुदारभुजे त्रिशूलं
कण्ठे विषं शशिकला तव भालमूले ॥

प्रत्यङ्गसङ्गि भुजगा भुवनाधिपस्य
गङ्गाजटावनि विहार विलोलवीचिः ॥७॥

अर्थ—हे भगवन् ? आपके सुन्दर देह पर गजाजिन (गजचर्म) बहुत ही भला लग रहा है। हाथ में त्रिशूल; गले में विष, मस्तक में चन्द्रमा की कला, अङ्ग-प्रत्यङ्ग में लिपटे हुए साँप, जटाजूट से बहरही भगवती भागीरथी, यह सब के सब आपके सौन्दर्य्य को चार चाँद लगा रहे हैं ॥ ७ ॥

• अङ्गानि ते स्फटिक-मौक्तिव्य कुन्दहार-
ज्योत्स्नामयानि नवनीतमृदून्यमूनि ॥
पीयूष वर्ष मिव दिक्षु सृजन्ति भान्ति
कान्त्या कयापि वचसां परतः स्थितानि ॥८॥

अर्थ—और आपके माखन सदृश्य कोमल कोमल अङ्ग स्फटिकमणि-मोती-कुन्द-हार-चन्द्रमा की चाँदनी को भी अपनी शुभ्रता से मात कर रहे हैं। और सब दिशाओं में एक अमृत्त की बर्षा सी बर्षा रहे हैं। इस समय आपकी इतनी शोभा हो रही है जो वचन में नहीं आसकती ॥ ८ ॥

बद्धासना मुनिजना नयनेनिमील्य
ध्यायन्ति यं गिरिगुहासु मनो नियम्य ॥
साक्षादहं नगसुता-रहितं तमेव
पश्याम्यहो मम पुरातन पुण्य हेतोः ॥९॥

अर्थ—जिनका मुनिजन पर्वतों की कन्दराओं में जाकर दीर्घ काल तक आसन जमाकर, मन और इन्द्रयों को वश में कर, ध्यान करते हैं, 'आज उन पार्वती रहित भगवान् शंकर को मैं साक्षात् देख रही हूँ। इस में मेरे पूर्वजन्म के किये हुऐ शुभकर्म ही कारण हैं ॥

दक्षाध्वरान्धक-गजासुर नाश कारिन्
हेरम्बतात गिरिजाहृदयेश शम्भो
कर्पूर गौर करुणावरुणालयऽशु
मोहं विनाशय विभो शरणागतायाः ॥१०॥

अर्थ—हे दक्ष-यज्ञ, अन्धकासुर और गजासुर के नाश करने वाले, गणेश जी के पिता, श्रीपार्वती के प्राण-प्यारे ! कल्याण करने वाले? कपूर के समान गौर वर्णवाले करुणा

के सागर ? हे विभो ? मैं आप के परम पावन चरणारविन्दों की शरण हूँ । अब आप कृपाकर मेरे मोह को शीघ्र दूर कीजिये ॥१०॥

शैलाधिराज-तनया-कर-मञ्जु-कञ्ज-
संवाहितं तव पदं मुनिवन्दनीयम् ॥
वन्दे बलारिमुखदेव-गणोत्तमाङ्ग
सङ्गारुणं किमपि धाम रुचां निकामम् ॥११॥

अर्थ—मैं आप के उन मुनि वन्दनीय चरणों में प्रणाम करती हूँ जिनको भगवती पार्वती अपने कर कमलों से सदा सेवा करती रहती हैं। जो इन्द्र आदि देवताओं के साष्टांग प्रणाम करने के कारण एक अनिर्वचनीय शोभा को धारण कर रहे हैं ॥११॥

वाणासुरेण खलु ते करुणावलोका-
ल्लोकत्रये प्रकटितं चरितं विचित्रम् ॥
त्वत्पाद-धूलिजनितं सुकृतं दयालो
मूलं मनोरथ शतस्य सुदुलर्भस्य ॥१२॥

अर्थ—बाणासुर ने आप के कृपाकटाक्ष से ही तीनों लोकों में अपने विचित्र चरित्र को प्रकटित किया था। हे दयामय ? आप की चरण धूली के सेवन से पैदा हुआ पुण्य सैंकड़ों अत्यन्त दुर्लभ मनोरथों को पैदा करता है ॥१२॥

लङ्काधिपो नव नवानि शिरांसि तुभ्यं
पूज्याविधौ विहितवान् कमलानि यानि ॥
तान्येव तेन विहितानि सुरासुराणा
मुच्चैः सभासु नव-रत्न-किरीट-भङ्गि ॥१३॥

अर्थ—लङ्काधिपति रावण ने अपने जिन नूतन नूतन नौ मस्तकों को एक एक करके काट कर आप की पूजा में कमलों के समान चढ़ा दिया था। वे ही मस्तक सुर और असुर की सभा में सर्वोच्च सर्वश्रेष्ठ नये नये रत्नों से मण्डित हुये ॥१३॥

कैलाश शैलमपि कुन्दक वत्कराग्रे
धृत्वा ननर्त्त नवगीति मुदारवाचा ॥
गायन् तदेतदखिलं तव पाद भक्ते
सजाम्भितं फलमहो महनीय कीर्त्ते ॥१४॥

अर्थ—एक बार रावण कैलाश पर्वत को गेंद को समान हाथ पर रख कर नाचने लगा। और आप की नये नये श्लोकों से स्तुति की हे अचिन्त्यप्रभाव, यह सब आप के चरणों की भक्ति का एकमात्र फल था ॥१४॥

नन्दीश्वरो नव वयस्यपहाय गेहं
देहं तवार्चनविधौ बिदधौ विलीनम् ॥
तस्यापि यत्फलमभूत् भुवनेषु रूढं
तत्को न वेत्ति पुरुषः पुरुषावतार ॥१५॥

अर्थ—हे मनुज देहधारी भगवन्! होश संभालते ही नन्दीश्वर घर छोड़ कर आप की भक्ति में तत्पर हो गया था। और अपने शरीर को कांटा बना डाला था। उस का जो शुभ फल हुआ उसे तीनों लोक में कौन नहीं जानता ॥१५॥

रागावृत्तेन मनसा भवकाननेऽस्मिन्
भ्रान्ता चिरं नच कृता तव देव भक्तिः ॥
याचे मुहुर्मुहुरिदं प्रणिधाय कायं
भक्तिं प्रयच्छ विमलां कलिकल्मषघ्नीम् ॥१६॥

अर्थ—हे देव! मेरा मन राग द्वेष से भरा हुआ है, जिस के कारण मुझे इस संसार में बारबार जन्म लेना पड़ा है। हे भगवन्! आपकी भक्ति न कर सकी मैं बार बार हाथ जोड़कर आप से यही मांगती हूँ, कि आप जन्म मरण के काटने वाली अपनी अटल भक्ति प्रदान करें ॥१६॥

प्रायां यया श्रुतिनुतं तव पादमूलं
पारं परश्च भवनीरनिधेर्व्रजेयम् ॥
कामादि दोष-रहिता सहिता विरागैः
शम्भो भयेमथवा किमदेव मस्ति ॥१७॥

अर्थ—जिस आप की भक्ति से मैं इस संसार सागर को बड़ी आसानी से पार कर सकूँ। और आप के मुनि वन्दनीय चरणों में दृढ़ अनुराग प्राप्त हो सके। हे शम्भो आप मुझे वैराग्य दें जिस से कामक्रोधादि पर विजय प्राप्त कर सकूं हे भगवन्! ऐसी कौन चीज है जो आप दे न सकें अर्थात् सब कुछ दे सकते हैं ॥१७॥

त्वन्नाममात्रपर भक्तजनस्य भूयो
नास्त्येव जन्म मुनयः श्रुतयो वदन्ति ॥
तस्मादहं तव नताऽस्मि पदारविन्दे
नामानि सन्तु मरणेऽपि मुखे मदीये ॥१८॥

अर्थ—केवल आप के पवित्र नाम लेने से ही आप के भक्तों को जन्म मरण के चक्र में नहीं पड़ना पड़ता। ऐसा ऋषिमुनि और शास्त्र बतलाते है। अतः मैं आप के चरणों में प्रणाम करती हूँ कि मरण काल में भी आप का नाम मेरे मुख से सदा निकलता रहे ॥१८॥

कण्ठं गतै रसुभि रुत्तरलै स्तथाङ्गैः
गङ्गाधरस्य तव नाम न विस्मरेयम् ॥
नामैव नौरिति कलौ निगदन्ति सन्तो
वेदाः पुराण-निगमा अपि चाभनन्ति ॥१६॥

अर्थ—और जब मेरे प्राण निकने को हों तथा अंग छटपटा रहे हों तों आपकी इस बांकी झांकी की सदा स्मृति बनी रहे, और आप का पवित्र नाम जिह्वा पर हो। क्योंकि वेद पुराण ऋषि मुनि सौर साधुजन सब केवल नाम को ही कलियुग में संसार सागर को पार करने के लिए नौका बतलाते हैं ॥१६॥

नारी नितान्त लघुबुद्धि रहं प्रभोते
ते केऽप्यलोकिकगुणा बचसा मगम्याः ॥
नै ते गुणान् गणयितुं प्रभवन्ति ब्रह्म
शेषादयो बद परस्य कथैव काऽस्ति ॥२०॥

अर्थ—हे भगवन् मैं अतिसय कर स्वल्प मति नारी हूँ और आपके अद्भुत गुण मनवाणी से भी परे हैं। आपके इन गुणों को तो शेष-नारद-सनकादि नहीं गिन सकते इस लिये आप अब यह रूप अन्तर्धान करके लौकिक मर्य्यादा वाला बालस्वरूप धारण कीजिए ॥२०॥

इत्थं भवस्तवपरां जननीं विलोक्य
लोके चरित्र ममलं चरितुं नटेशः ॥
मातः तथास्त्विति निगद्य गिरा सुधीरं
वालो वभूव भगवान् मधुरं रुरोद ॥२१॥

अर्थ—इस प्रकार माता को स्तुति करते देख कर भगवान् नटराज संसार में विचित्र चरित्र करने के लिए "तथास्तु" (ऐसा ही होगा) कह कर बालक रूप धारण करके मधुर मधुर रोने लगे ॥२१॥

दक्षिणे श्रवणे दिव्यं रौक्मं भूरि विभास्वरम्
कर्णवत् कुण्डलं तस्य जन्मसिद्धं महाधिपः ॥२२॥

अर्थ—भगवान् के दायें कान में जन्म-सिद्ध, सोने का दिव्य एक कुण्डल लगा था। जैसे महादानी कर्ण के जन्म सिद्ध-कवच-कुण्डल आदि थे ॥२२॥

विसस्मार तदा ज्ञानं माता बत्सलमानसाः ॥
अङ्के निधाय तनयं स्तन्यं पाययतिस्मसा ॥२३॥

अर्थ—भगवान् की रोदन ध्वनि को सुन पूज्यमाता जी सब अपना ज्ञान भूला बैठीं। पुत्र वात्सल्य कीं नदी उमड़ आई भगवान् को गोद में लेकर दूध पिलाने लगीं ॥२३॥

देव स्तुति

देवा स्तदा घननिलीन-विमान-सङ्ख्याः
सम्भूय गद्गद गिरां गिरीशस्य चक्रुः
नत्वा स्तुतिं हरि विरञ्चिमुख्या हिताय
लोकस्य नन्दनभवैः सह पुष्पपातैः ॥२४॥

अर्थ—उसी समय देवता लोग अपने विमानो पर चढ़े, हुए जिनमें विष्णु, ब्रह्मा-आदिक मुख्य हैं, लोक कल्याण के लिए प्रणाम कर शिव भगवान् की स्तुति करने लगे। प्रेम से गला रुंध गया, और स्वर्गीय फूलों की वर्षा की ॥२५॥

हे हे त्रिलोचन जनार्तिहरः प्रसिद्ध
लोकेश शेषवलयं प्रमथाधिनाथ ॥
प्रालेय शैल विनिवास शशाङ्कमौले
मौलौ निधाय कर सम्पुटकंनमामः ॥२५॥

अर्थ—हे त्रिलोचन! हे अपने भक्तों की पीड़ा दूर करने वाले! भगवान् शंकर हे लोक स्वामी शेषका कङ्कण धारण करने वाले प्रमथनाथ हिमालय पर वास करनेवाले चन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले भगवान् शंकर हम सब आपको हाथ जोड़कर सादर नम्र प्रणाम करते हैं ॥२५॥

पादौ सरोरुह समौ, जघनं विशालं
क्षीणोदरं विपुल मांसल बाहुदण्डौ॥
वक्षो विशाल शिलया तुलितं त्वदीयं
ग्रीवोन्नता मुखमुदार सुधांशुबिम्बम् ॥२६॥

अर्थ—आपके चरण कमल के सामान हैं जघन भाग विशाल है कटि भाग क्षीण है दोनों भुजायें बड़ी सुडौल हैं, वक्षस्थल चट्टान के समान विशाल है, उन्नत ग्रीवा है आपका श्रीमुख पूर्णचन्द्र के समान देदीप्यमान है ॥२६॥

लोकत्रयं भृशमपीड्यत येन दर्पात्
उच्छृङ्खलेन बलिना त्रिपुरासुरेण ॥
सोऽपि त्वयैव निहतो हर शूलपाणे ?
मेरुं धनुः हरिमिषुञ्च दृढं विधाय ॥२७॥

अर्थ—हे भगवन् जब पहिले उद्दण्ड महाबली त्रिपुरा सुर ने अपने बल से संसार को बहुत तंग कर रखा था तो उस समय आपने ही मेरु की धनुष और विष्णु को बाण बनाकर उसका नाश किया था ॥२७॥

म्लेच्छा इमेऽपि सकलां विकलां विधाय
हिन्दु प्रजां प्रकटयन्ति निजासुरत्वम् ॥
नूनं त्वया यमपुरीं प्रतियापनीया
हिन्दुप्रजा च नियतं परिपालनीया ॥२८॥

अर्थ—हे शूलपाणे ! आज म्लेच्छ (मुसमान) लोग समस्त जंनता को तङ्ग करने पर तुले हुए हैं ये कोई असुरों से कम नहीं हैं। हे शंकर ! आप इनका नाश करके विचारी हिन्दु जनता की अवश्य और बहुत शीघ्र रक्षा करें ॥२८॥

यज्ञोपवीत मदयाः परिखण्डयन्ति
छित्त्वा शिखां तिलक मप्यय मार्जयन्ति ॥
उन्मूल्य देवनिलयान् निजभञ्जितानि
निर्मापय न्त्यपहरन्ति ततश्च हिन्दून् ॥२९॥

अर्थ—हे भगवान् देखो तो सही मनों के मन हिन्दुओं के यज्ञोपवीत उतारे जा रहे हैं चोटियों को काट काट कर ढेर के ढेर लगा दिये हैं, और बुरी तरह से उनके तिलक छापे

को जीभ से चाट लिया जाता है और देव मन्दिरों को गिरा कर उनके स्थान में मस्जिदें खड़ी कर दी गई हैं वहाँ से बिचारे हिन्दुओं को निर्दयतापूर्वक खदेड़ दिया जाता है ॥२६॥

वेदान् विनाश्च सकलानि पुराण शास्त्राण्या
मदयन्ति जल वह्निषु पातयन्ति ॥
हिन्दून् विधाय यवनान् नय मार्ग शून्या
धर्म्मं समूल मधुना विनिकर्त यन्ति ॥३०॥

अर्थ— वेद पुराणादि हिन्दू धर्म शास्त्रों को जल में आग में जैसे भी हो नष्ट किया जा रहा है नीति का काम नहीं जबरन हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाता है हिन्दूधर्म अब अपने अन्तिम स्वांस ले रहा है ॥३०॥

गावः पुराः भगवता यदुनन्दनेन
प्राणाधिका ब्रजवने परि पालितायः ॥
भूपा दिलीप-रघुराज युधिष्ठिराद्याः
प्राणै पणै युयुषु रित्यति सुप्रसिद्धम् ॥३१॥

अर्थ—जिन गायों को भगवान् श्री कृष्ण ने अपने प्राणों से बढ़ कर माना था और वृन्दावन की पवित्र भूमि में चराया था। दिलीप रघुराज और युधिष्ठिरादि राजाओं ने अपने प्राण से अधिक पालन किया वह किसी से छिपा नहीं है ॥३१॥

ता एव सम्प्रति विभो विनि हन्यमाना
रक्तै भुवं प्रति दिनं स्नपयन्ति दीनाः ॥
दृष्टुं न शक्यत इदं त्वयि वर्त्तमाने
बीभत्सकृत्य मसुरै रमिनीय मानम् ॥३२॥

अर्थ—हे भगवन् उन्हीं बिचारी मूक गायों के साथ जो अन्याय हो रहा है वह देखा और सुना नहीं जाता हर रोज लाखों मौत के घाट उतरती हैं हे भगवन् पता नहीं आप क्यों अभी तक इस अरुन्तुद असुरों को और इनके अभिनय को देख रहे हैं यह उचित नहीं ॥३२॥

लोक द्वये सुरभयो वितरन्ति भव्यं
हव्यं वहन्ति न सुराश्च विनातु ताभिः ॥

श्राद्धेषुवापिता एव नयन्ति कव्यं
गव्यं विना निखिल कृत्य मशुद्धमेव ॥३३॥

अर्थ—गायें दोनों लोक में कल्याण करती हैं बिना गायों के तो देवता अपना हव्य और पितर अपना कव्य ग्रहण नहीं करते क्यों कि पञ्चगव्य के बिना कोई पवित्र कर्म नहीं किया जाता ॥३३॥

देवा बसन्ति च गवां प्रति रोम कूपं
ब्रह्मर्षयो मुनिवरा वसवाश्च साध्याः ॥
तीर्थानि पुण्य सलिलानि समाश्च नद्यो
निष्यन्द वारि निवसन्ति गावां सदैव ॥३४॥

अर्थ—गौओं के एक एक रोम में देवता ब्रह्मर्षि, मुनिजन, वसु, और साध्य लोग सदैव निवास करते हैं तथा गोमूत्र में पवित्र तीर्थ और सब नदियाँ निवास करती हैं ॥ ३४ ॥

क्षीरादयो जलधियोऽपि गवां स्तनेषु
पादेषु ते प्रणिहिताः कुलपर्वत्ताश्च ॥
शेषोऽपि पुच्छ वसति खलु नागराजः
पृष्टे विरञ्चि रनिलः श्वसिते निलीनः ॥३५॥
विष्णु र्गले नयनयोरपि चन्द्रसूर्य्यौं
रुद्रो मुखे श्रवणयो रथ चाश्विने यौ ॥
नाशापुटद्वय मलंकुरुत स्तवैव
पुत्रौ कुमार गण नायक नामधेयौ ॥३६॥

अर्थ—गौ के चारो स्तनों में क्षीरादि चारो समुद्र, चारों पावों में कुलपर्वत, पूँछ में शेषनाग पीठ में ब्रह्मा श्वास में वायु, गले में विष्णु, दोनों आखों में चांद और सूर्य्य, मुख में रुद्र, कानों में अश्विनी कुमार, और दोनों नासिका छिद्र में आपके सुपुत्र कार्त्तिकेय और गणेश जी वास करते हैं ॥ ३५-३६ ॥

इत्थं समेष्ववयेषु वसाम आसां
सम्पूजने भवति नो निखिलापि पूजा ॥

यो हन्ति ताःससकलाम् विबुधान् निहन्ति
तस्मादवश्यमयते निरयं चिराय ॥३७॥

अर्थ—इस प्रकार हम सब देवता लोग गौओं के अवयवों में रहते हैं गौ की पूजा होने पर हमारी पूजा होती है। और गौ की मृत्यु होने पर हमारी मृत्यु होती है। इस लिये जो गऊ को मारता है वह अवश्य ही बहुत दिनों तक कुम्भीपाक नरक में पड़ा पड़ा सड़ता कष्ट उठाता रहता है ॥ ३७ ॥

माया तवैव भुवना न्यखिलानि भूयः
चित्रास्सृजत्यवति हन्त्यवसानकाले ॥
तस्माद्भवन्त मखिलाः श्रुतयः पुराण—
ब्रह्मर्षयः परम मायिन मामनन्ति ॥३८॥

अर्थ—हे भगवन् आप की अनुचरी माया सारे भुवनों को उत्पन्न करती है। पालती है, और अन्त में नाश कर देती है। इस लिये आपको सभी वेद पुराण ऋषि और मुनि परम मायाधिपति देवाधिदेव कहते हैं ॥ ३८ ॥

लीलां विधाय विमलां भुवनेदयालो !
कल्याण मार्ग मनुदर्शय सज्जनानाम् ॥
येन प्रयान्तु कलुषाणि विहाय स्वर्गं
ब्रह्मात्मताञ्च यमिन स्त्वीय लीनचित्ताः ॥३९॥

अर्थ—हे भगवन् आप अब अपनी पवित्र लीला का विस्तार करें सब को श्रेष्ठ मार्ग पर चालयें। जिस आप की पवित्र लीला का गान कर समस्तप्राणी पाप ताप से छुट जायें, और अन्त में स्वर्ग को पधारें। तथा योगी जन तो आपका ध्यान करते करते आपका ही स्वरूप बन जाते हैं ॥ ३९ ॥

वेदान् विहाय च पठन्ति विदेशभाषां
भूषा मपास्य पर धर्म्मरता मदान्धाः ॥
बल्गन्ति फल्गु मलिना न विदन्तिधर्मा
स्वैरं चरन्ति विषयेषु विमूढचित्ताः ॥४०॥

अर्थ—आजकल मनुष्यों की बुद्धि पर पर्दा पड़ा हुआ है। वेदों का पढ़ना पढ़ाना छोड़ दिया है दूसरों के धर्म्म को मानने लग गए हैं। विदेशी भाशा और भूषा में अपना

गौरव समझते हैं। निरर्थक बकवाद करते हैं। धर्म्म पर अनेक प्रकार की निन्दनीय कुतर्क करते हैं, मोह (अज्ञान) में पड़कर सब विषय में मनमानी मचा रखी है ॥४०॥

नो यान्ति देवनिलयं गुरुवेद-वाक्ये
हंहो विवेक-विकला नच विश्वसन्ति ॥
निंदन्ति केवल महर्द्दिव मुद्धतानि
कुर्वन्ति पापचरतानि विचारशून्याः ॥४१॥

अर्थ—मन्दिरों में आना जाना छोड़ दिया है अपने आपको महाज्ञानी समझते हैं। गुरु वाक्य और वेदवाक्य पर नाम मात्र भी श्रद्धा नहीं है। केवल निन्दा पर कमर कस रखी है पुण्यपाप उनके मत में कोई चीज नहीं है ॥४१॥

नो पञ्चयज्ञ-विधयो न च रामपूजा
नो कीर्त्तनं कलिमलापहरं हरेश्च ॥
सर्वं विपर्य्य मगादधुना पृथिव्यां
याहि प्रभो ! पुनरिदं भुवनं समस्तम् ॥४२॥

अर्थ—न आज वह पञ्च-यज्ञ विधि पूर्वक होते दिखाई देते हैं। न भगवान् की पूजा और नहीं कलिमल को दूर करने वाला हरिसंकीर्त्तन, चारों ओर गड़बड़ी मची हुई है। हे प्रभो इस पृथ्वी पर धर्म्म का पुनरुद्धार करो ॥४२॥

कान्ता भृशं कुकृतिनां धरणी भरेण
दीना मनो व्यथयतेऽनुदिनं सुराणाम् ॥
त्राता भवान शरणस्य दयार्द्रचेता
यामो वयं भव ? भवे वितनोतु लीलाम् ॥४३॥

अर्थ—पृथ्वी बुरे कामों के भार से दब गई है विचारी देवताओं के यहां आ आकर अपनी करुणा कहानी सुना कर देवताओं के हृदय को दुखलाती रहती है। आप दयालु हैं। अशरण शरण हैं। उसकी अवश्य और अति शीघ्र रक्षा करें। हम लोग जाते हैं और आप अपनी पवित्र लीला का विस्तार करें ॥४३॥

इत्येवं बहुधा स्तुत्वा पुष्प वृष्टिं विधाय च ॥
प्रसन्नमानसा देवाः सद्यः स्वर्गं प्रतस्थिरे ॥४४॥

अर्थ—देवता लोग इस प्रकार भगवान् शंकर की स्तुति करके और फूलों की वर्षा बरसा कर बड़े ही प्रसन्न मन से स्वर्ग को पधार गए ॥४४॥

शंकरस्यावतारोऽयं कलि शिवपुराणतः
सिद्ध स्स्पष्ट स्सदा मान्यो न तर्क्यो धार्म्मिकः क्वचित् ॥४५॥

अर्थ—यह भगवान् शंकर का अवतार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी महाराज का शिवपुराण से स्पष्ट है। इसमें कोई संदेह करने का काम नहीं है ॥४५॥

लैंगे • व्यासावताराहि द्वापरं तेषु सुवृत्ताः ॥
योगाचार्य्यावतारस्य तथा शिष्येषु शूलिना ॥४६॥
तत्र तत्र विभो शिष्य श्चत्वारः स्यु महौजसः ॥
शिष्या स्तेषां प्रशिष्याश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥५०॥
तेषां संभावनात् लोके शैवाज्ञाकरणादिभिः ॥
भाववन्तो विमुच्यन्ते भक्त्या चात्यन्त भाविताः ॥५१॥

शिव-महापुराण-वायव्य-संहिता ७ उत्तरार्द्ध अ० ६

अर्थ—लिंग पुराण के सातवें अध्याय में द्वापर के अन्त में व्यास का अवतार योगाचार्य्य का होगा। तथा कलियुग में भगवान् शिव का अवतार होगा प्रत्येक अवतार में विभु के चारचार शिष्य होंगे। उनके शिष्य प्रशिष्य सहस्त्रों होंगे। जिनके संभाषण से लोक में लाभ होगा, जो भाग्य मनुष्य शाली उनकी आज्ञा पर चलते हुए भक्ति करेंगे वह मुक्त हो जायेंगे ॥४६-५०-५१॥

नोट—उपरोक्त लक्षण प्रमाण से साफ स्पष्ट है कि कलियुग में भगवान् शंकर ने जगद्गुरू श्रीचन्द्र जी के नाम से अवतार धारण किया। शिवपुराण में चार शिष्य होने लिखे हैं। सो भगवान् श्री ११०८ जगद्गुरू श्रीचन्द्र जी के मुख्य चार शिष्य श्री धर्म्मचन्द्र जी १ श्रीभगत भगवान् जी २ श्रीकर्त्ताराय जी ३ और श्री बाबा गुरुदत्ताजी ४ हुए हैं, इन चारों शिष्य प्रशिष्यों के सहस्त्रों आगे चलकर हुए हैं जिनका उपदेश (आज्ञा) मानकर भक्त सेवक लोग अपना अपना कल्याण करते हुए लोक परलोक सुधारते हैं। भगवान् शंकर साक्षात् ब्रह्मस्वरूप जगत के तारने और कल्याण करने वाले हैं। अथर्व शिर उपनिषित् में ब्रह्मा-विष्णु-वायु-इन्द्र-अग्नि सबने रुद्र को शंकर स्वरूप मानकर नमस्कार किया है शुक्ल यजुर्वेद संहिता के १६वें अध्याय में भी इसका प्रमाण मिलता है—"ये भूतानामधिपतयः कपर्दिनः" (मं० ५६) समस्त भूतों के अधिपति कपर्दी नाम शंकर जी हैं वही शंकर जी ने आकर धर्म्म रक्षार्थ अवतार लिया ॥

"सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतहितरेताः ॥
सर्वेषा मुपकाराय साकारो भून्निराकृतिः" ॥

अगस्त-संहिता-अ० ३—

जो सर्वेश्वर सर्वमय सर्वभूतों के हित में लगे रहने वाले हैं वही (शंकर) जी सब के उपकार के लिए निराकार होते हुए भी साकार हुए हैं। भाव अवतार धारण किया है। (अवति स्वभक्तान् दुष्टेभ्यो रक्षति संसारसगरात्- तारयतीतः अवतारः) उपरोक्त प्रमाणों से साफ स्पष्ट है कि-भगवान् शंकर जी ही आय के गुरुनानक के घर पुत्र रूप में प्रकट हो श्रीचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुए। 'श्री' अक्षर स्वर्ग है 'च' आकाश, अर्धनकार मृत्युलोक, 'द्र' इन तीनों लोकों केजीत ने का वाचक है अथवा 'श्री, सूर्य्य, 'च' वायु, 'न' अग्नि, 'द्र' दमन करना। श्री नाम सामवेद च पुनः से भाव आया और तीनो वेद 'न' नारायण 'द्र' देने वाला है वेद वाणी से उचारे जाते हैं और इनके उच्चारण का फल जो मोक्ष है उस वाणी के फल को उपासक उपरोक्त कहे हुए प्रकार से श्रीचन्द्र अक्षरों के तत्व को जानता हुआ उपासना करेगा वह पुत्र अन्न धन तथा भोग मोक्ष को प्राप्त होगा ॥

अथ जन्मोत्सवे तस्य कृष्ण जन्मोत्सवे यथा ॥
समस्तं भुवनं मोदात् भुमुदे शकुनैः शुभैः ॥४६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के जन्म होने से आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथ्वी दशोदिशा चौदहो भुवन मंगलमय हो गये अच्छे अच्छे शुभशकुन दृष्टिगोचर हो समस्त विश्व को आनंदमय बनाने लगे ॥४६॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवाः सवासवाः ॥
कल्पपादप पुष्पौघैर्ववर्षुर्वसुधातलम् ॥४७॥

अर्थ—गगन मण्डल में देवगण दुन्दभी बजाने लगे गंधर्व गाने अप्सरा नाचने लगीं इन्द्रादि कल्प वृक्ष के पुष्पों की वर्षा पृथ्वी पर करते हुए वड़े प्रसन्न हो रहे हैं ॥४७॥

मन्दं वलाहका व्योम्नि जगर्जुर्जलसंभृताः ॥
क्षणं विद्युल्लतानेत्र मुन्मील्येव व्यलोकयन् ॥४८॥

अर्थ—आकाश में जल से भरे हुए बादल मन्दमन्द गर्जना करने लगे मानो अपनी बिजली रूपी आँख खोल कर भगवान् श्रीचन्द्र के जन्मोत्सव को देख के प्रसन्नता प्रगट करते फूले नहीं समाते ॥४८॥

अनृत्यन् केकया रम्या मेघनादानु लासिनः ॥
दिग्गजा बृंहितैर्धीरैर्धरणी सहमोदयन् ॥४९॥

अर्थ—मयूर पक्षी अपनी मीठी २ कलरव वाणी करते हुए नाचने लगे दिग्गजों ने अपने धीर गम्भीर गर्जन से पृथ्वी को आनन्दित किया ॥४९॥

ववौ वारिकणावही सलीलं मलयानिलः ॥
मकरन्दभाराक्रान्तो लतालिङ्गन मन्थरः ॥५०॥

अर्थ—मलयानिल (वायु) लताओं से अठखेलियां करता हुआ शीतल-मन्द-सुगन्ध-वह रहा था ॥५०॥

हरिणा दक्षिणावाते वातिनिर्भ्रान्त दृष्टयः ॥
हरणीभिः सशावाभिर्विचेरुः सह कानने ॥५१॥

अर्थ—दक्षिण-वायु चल रहा था मृग अपने स्त्री बच्चों के साथ बन में निर्भय विचरने लगे ॥५१॥

तस्मिन् काले पुरे पौरा विपनेषु तपस्विनः ॥
सम मेव महामोदं लेभिरे वीत कल्मषाः ॥५२॥

अर्थ—उस समय क्या नागरिक, क्या तपस्वी सभी एक साथ बाहर भीतर से प्रसन्न दिखाई देने लगे ॥५२॥

दिग्विजये समागन्ताऽस्माक मेष हरन् शुचम् ॥
परितो हरितो हासच्छुरिता इव रेजिरे ॥५३॥

अर्थ—दिशायें तो इस बात को स्मरण कर कर फूली हुई शोभा दे रहीं थीं कि—"दिग्विजय करते हुए शंकर भगवान् हमारे शोक को दूर करेंगे ॥५३॥

सरितो गिरितो यान्त्यः प्रसन्नाः परिभेजिरे ॥
गम्भीरं सागरं वीचि बाहुभिः कृतगूहनम् ॥५४॥

अर्थ—नदियां पहाड़ों से निकल कर सरपट दौड़ी जा रही थीं और बड़े प्रसन्न भाव से अपनी तरंगों रूपी भुजाओं के द्वारा अपने गम्भीर पति समुद्र का आलिंगन करने लगीं ॥५४॥

बहुलोत्कलिका क्रान्तो वेलामालिङ्ग्य लीलया ॥
उल्ललास मुदा सिन्धुः पूर्णचन्द्रोदयो यथा ॥५५॥

अर्थ—समुद्र भी परमोत्कण्ठा से अपनी बेला का आलिंगन कर ठाठां मारने लगा जैसे पूर्ण चन्द्र के उदय में ठाठां मारा करता है ॥५५॥

गावाः सवत्सा गोष्ठेषु च्चरत्चीर पयोधराः ॥
धरातलं समासिञ्चन् अमृतैरिव देवताः ॥५६॥

अर्थ—गौएँ अपने बछड़ों के साथ गो घरों में परम प्रसन्न थीं और उनके स्तनों से दूध बह रहा था मानों देवताओं ने पृथिवी पर अमृत की वर्षा की हो ॥५६॥

सप्रमोदं गवामिन्द्र निर्भया धीर-गर्जितैः ॥
अनुचक्रु रिवाऽऽमन्द्रं मेघनादं महाकुलाः ॥५७॥

अर्थ—अत्यंत प्रसन्न मदोन्मत्त गवेन्द्र (सांड़) अपने निर्भीक धीर गर्जन मेघ गम्भीर गर्जन की नकल कर रहे थे ॥५७॥

तपोवनेषु शष्ट्रेषु गोपाला गोकुलेषु च ॥
आवृद्ध-बालाः कालेऽस्मिन् सकलाः सुखिनोऽभवन् ॥५८॥

अर्थ—क्या बाहर, क्या अन्दर, क्या बूढ़े, क्या बाल, क्या तरुण स्त्री-पुरुष सभी उस समय परम प्रसन्न और सुखी दिखाई देने लगे ॥५८॥

जग्राह-दक्षिण-ज्वालो यज्ञशालासु हव्यवाट् ॥
मन्त्रपूतं हविर्दत्तं यज्वाभिर्नियतवृत्तैः ॥५६॥

अर्थ—यज्ञशाला में परम सदाचारी, याज्ञिकों के द्वारा दिए हुए पवित्र हवि को अग्नि देव ने दक्षिण की ओर से ग्रहण किया ॥५६॥

श्रीचन्द्रस्योदये जाते ह्यगस्त्यस्योदये यथा ॥
निष्पङ्कानि तदा रेजु मनासीव सरास्यपि ॥६०॥

अर्थ—जैसे अगस्त तारे के उदय होने पर सब तालाब निर्मल हो जाते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीचंद्र के प्रकट होने पर सब के मन निर्मल (पाप-रहित) हो गए ॥६०॥

वारीषु समदा नागा वाजिशालासु वाजिनः ॥
गर्जितैर्हिंषितैः प्रोचुर्माङ्गल्यै भावि मङ्गलम् ॥६१॥

अर्थ—गजशालाओं में हाथियों ने अपने गर्जन से और घुड़शालाओं में घोड़ों ने अपने स्वर (हिन हिनाने) से भावी (आने वाले) मंगल की शुभ सूचना दी ॥६१॥

अनाहता स्वयं चक्रु मृदाङ्गा मङ्गलध्वनिम् ॥
सम्पूर्णाः कलसा जग्मुर्दृष्टिपथं समन्ततः ॥६२॥

अर्थ—बिना बजाये मृदंग बज उठे, जो परम मंगल के सूचक हैं जिधर से निकलो जल के भरे घड़े सामने ही मिलते हैं ॥६२॥

गावो दुग्धैर्द्रुमाः पुष्पैः सरितो विमलैर्जलैः ॥
कोकिलाः काकलीगीतैः केकाभिश्चैव केकिनः ॥६३॥
सारसारसितै रम्यैर्नीलकण्ठाश्च कूजितैः ॥
चातका वासितैः क्रौञ्चाः कूजनैः समपूजयन् ॥६४॥

अर्थ—गौओं ने दूध से, वृक्षों ने पुष्पों से, नदियों ने निर्मल जल से, कोयलों ने काकलीगीत से, मयूरों ने केकावाणी से, सारसों ने रसित स्वर से, नीलकंठों ने कूजित रव से, चातकों ने वासित शब्दों से, और क्रौंचोंने कूजन से भगवान् का अभिनन्दन किया ॥६३-६४॥

तस्मिन् मोदमये काले मुदा मुकुलितेक्षणाः ॥
क्षणं विरम्य ननृतु रलसा अमराङ्गनाः ॥६५॥

अर्थ—ऐसे उस आनन्द के समय में प्रसन्नता से मुकुलित नेत्रों से क्षणभर विश्राम कर देवांगनाओं ने मनोहर नृत्य किया ॥६५॥

काञ्चनाचल कुञ्जेषु सुधापान गताऽऽमयाः ॥
रेमिरे ते निजस्त्रीभिः सिद्ध-गन्धर्व-किन्नराः ॥६६॥

अर्थ—सुमेरु पर्वत की गुफाओं में सिद्ध, गन्धर्व और किन्नरों ने अपनी अपनी स्त्रियों के साथ अमृत पान किया और मधुर क्रीड़ा की ॥६६॥

पुष्पैः पुष्पाञ्जलिं वृक्षाः फलैरर्घ्यं ददुस्तदा ॥
अचेतनेष्वपि कृतिः चेतनानां विभाविता ॥६७॥

अर्थ—वृक्षों ने अपने फूलों से पुष्पाञ्जलि और अपने फल से अर्घ दिया, उस समय जड़ वस्तुओं में भी प्राणियों की सी क्रिया दिखाई देने लगी ॥६७॥

मन्दिरेषु कपाटानि स्वय मुन्मुद्रितानि च ॥
प्रफुल्लवदना स्तत्र देवता-प्रतिमा बभुः ॥६८॥

अर्थ—मन्दिरों के किवाड़ अपने आप खुल गये और उनमें स्थित देवताओं की मूर्तियाँ बड़ी प्रसन्नवदन शोभा देने लगीं ॥६८॥

सूतिका-गृह-दीपानां शिखा निश्चलतां गता ॥
ध्यायतीव तदा देवं चन्द्रं चन्द्रकला धरम् ॥६६॥

अर्थ—सूतिका घर के दीपक की शिखा निश्चलभाव से स्थिर हो रही है। मानो शिवावतार भगवान् श्रीचन्द्र का निश्चलभाव से ध्यान कर रही हो ॥६६॥

जगुस्तदानीं शुचयः सस्वरं वेद-पाठिनः ॥
अथर्वणः तथर्चोऽपि सामानि च यजूंषि च ॥७०॥

अर्थ—उस समय वेदपाठी ब्राह्मणों ने सस्वर वेदपाठ किया किसी ने अथर्वण वेद, किसी ने ऋग्वेद, किसी ने यजुर्वेद और किसी ने साम वेद का गायन किया ॥७०॥

वैजयन्त्यो व्यराजन्त गृहशृङ्गेषु चञ्चलाः ॥
मङ्गलाचार-सम्भारैः पुरी चारूतराऽभवत् ॥७१॥

अर्थ—प्रत्येक घर और गली में मणियों के तोरणों के साथ पताकाएँ लहलहा रही थीं माङ्गलिक वस्तुओं के समूह से उस पुरी की शोभा बहुत बढ़गई थी गलियें केसरकेकीच से भरगई अरगजा अबीर और गुलाल उड़ रहा है पुर के नरनारी आनन्द में विभोर हो रहे हैं ॥७१॥

अपूज्यन्त तदा देवाःस्थाने स्थाने गृहे गृहे ॥
नानोपचार कुशलैर्गृहस्थैर्वनवासिभिः ॥७२॥

अर्थ—उस समय स्थान २ पर और घर घर में बनवासी और गृह (स्थानों) में देवताओं के षोड़शोपचार से पूजन किया गया आज बड़ा मङ्गल मयदिन है आज की शुभ घड़ी बड़ी सुहावनी है आज योग मार्ग के प्रवर्तक सांगीत उत्पादक, तपोमूर्ति विश्व के पालक संहारक त्रिपुरारी भगवान् शंकर आके भारतभूमि में प्रगट हुये हैं ॥७२॥

श्रुत्वा सुतोत्पत्ति मुदार-बुद्धिः
हारं वितीर्याऽऽशु निवेदकाय ॥
पूर्णेन पात्रेण चकार पूर्णं
मनोरथं यश्च जगाद तूर्णम् ॥७३॥

अर्थ—इधर श्री गुरु नानक देव जी को यह शुभ समाचार मिला और समाचार लाने वाले को गुरु जी ने एक अमूल्य रत्नों का हार दिया। तदनन्तर जिस जिस ने गुरु जी को आके बधाई दी उस उस के मनोरथों को सर्वप्रकार (दान-मान-सत्कार) से पूर्ण किया ॥७३॥

नृत्यानि गीतानि मृदङ्ग वाद्यं सन्मङ्गलादीनि भवन्तु सद्य ॥
मार्गेषु संस्कार विधिर्विधेयो देवार्चनं देवगृहेषु कार्य्यम् ॥७४॥

अर्थ—नाचने वाले नट नटी अपने अपने रंग में भरकर नृत्य कर रहे हैं तरह तरह के रूप धारण कर सुन्दर से सुन्दर नाच दिखा रहे हैं नाना प्रकार के छन्द, प्रबंध, गीत, पद राग और तान के क्रमों का चक्र चल रहा है घर घर सोहिला (बधाई के गीत) गाये जाने लगे सर्व ओर नक्कारों की गम्भीर ध्वनि होने लगी जहाँ तहाँ कलश ध्वजा चँवर तोरण पताका और मंडप बना के चौकैंपूर मंगलाचार मनाये जाने लगे श्री गुरु नानक जी ने कहा घर आँगन गली बाजार सुगंधित जलसे सीचें जांय देव मंदिरों में विधि पूर्वक देवार्चन किया जाय घर में पत्र, पुष्प, फल, दूब, दधि, रोली खीलें, अक्षत आदि मंगल द्रव्य उपस्थित किये जांय ॥७४॥

ततो विधेयाऽऽशु हिरण्यमायानि शृङ्गाणि कौशेय पटावृत्ता गाः ॥
लक्षं ददौ वेदविदां वरेभ्यो द्विजेभ्य उत्सर्ग-विधान-विज्ञः ॥७५॥

अर्थ—इस के बाद गुरु जी ने सोने से सींग मढ़वाकर और रेशमी वस्त्र पहना कर वेदवेत्ता ब्राह्मणों को लाखों गौएँ विधि पूर्वक दान कीं ॥७५॥

सौवर्ण पात्राणि तिलैर्भृतानि विश्राणयामास तथाऽऽसनानि ॥
दीनार भारं बसनानि माला इष्टानि मिष्टान्न-कदम्बकानि ॥७६॥

अर्थ—मोहरें - वस्त्र - मालायें, मिठाई, और तिलों से भरे सोने के घड़े गरीब हिन्दुओं को दान दिये गये ॥७६॥

यथाभिलाषं द्रविणानि दत्त्वा—सन्तोषयामास जनं समस्तम् ॥
कृतार्थ मात्मान ममंस्त धीरोदानाय चिन्वन्ति धनं हि सन्तः ॥७७॥

अर्थ—सबको मन चाहा दान देकर श्री गुरु जी ने प्रसन्न कर दिया जिससे मागध, सूत, भाट, नट नाऊ बारी तथा समस्त याचक गण धनवान हो गुरु जी का सुयश गायन करते कृतार्थ हो बालक चिरायु हो यहआशीश देते थे, सत्य ही कहा है श्रेष्ठ पुरुषों के पास धन दान करने के लिये ही आता है ॥७७॥

पुत्रोत्सवानन्द निमग्नचेताः श्री नानको वाचिकहारमाह ॥
पित्रोः सकाशं व्रज पुत्रजन्मोत्सवं तयोः सौम्य निवेदयेति ॥७८॥

अर्थ—पुत्रोत्पत्ति के उत्सव में निमग्न हुए श्री गुरु नानक जी ने एक आदमी को

कहा कि तुम तलवन्डी जाओ और यह आनन्द प्रद शुभ समाचार पूज्य श्री माता-पिताजी को तथा सब कुटुम्ब को सुनाओ ॥७८॥

पौत्रस्य जन्मेत्यमृतायमानं श्रुत्वा वचो दूतमुखेन वृद्धौ ॥
चन्द्रोदयेनेव मही समुद्रौ हर्षातिरेकेण समं प्रवृद्धौ ॥७६॥

अर्थ—दूत के मुख से अमृत के समान पौत्र-जन्म को सुनकर दोनों बूढ़े दादा-दादी अत्यन्त प्रसन्न हुऐ जैसे चंद्रमा के उदय होने से पृथिवी और समुद्र प्रसंन हो जाते हैं ॥७६॥

तस्मै समस्तानि च भूषणानि दत्वा तु तृप्ता समभूत्सुतृप्ता ॥
विधाय दानानि बहूनि शीघ्रं चचाल पत्न्या सह कालुरामः ॥८०॥

अर्थ—सन्देश लाने वाले को पूज्य श्री माता तृप्ता जी ने अनेक प्रकार के जड़ाऊ गहने और वस्त्र दिये बड़ी प्रसन्न हुईं पूज्य पिता श्री कालूराम जो बहुत सा दान देकर अपनी धर्म्म पत्नी के साथ पौत्र के दर्शनार्थ चल पड़े ॥८०॥

विलोकयन्तौ शकुनानि मार्गे वृद्धावपि क्लेश मबुध्यमानौ ॥
आगत्य पौत्रस्य मुखं विलोक्य लोकातिगं तौ सुख माप्रपन्नौ ॥८१॥

अर्थ—मार्ग में आते हुऐ बड़े अच्छे अच्छे शकुन देखते हैं बूढ़े होने पर भी खुशी के मारे मार्ग के कष्ट को भूल गये और घर आकर पौत्रके श्रीमुख को देखा उस से जो आनंद मिला, वह लेखनी के तले-नहीं आ सकता सब प्रकार से वैदिक लौकिक रीत हिंदू परम्परानुसार करते भये ॥८१॥

मौहूर्तिकं तथ्यगिरां तदानी माकारयामास जगाद भद्र ॥
समीक्ष्य पुत्रस्य शुभाशुभानि निश्शङ्क मावेदय लक्षणानि ॥८२॥

अर्थ—इस के अनंतर उन्होंने सत्यवक्ता ज्योतिषी को बुलाकर कहा हे महाराज आप इस बच्चे के शुभाशुभ लक्षणों को देख कर निःशंक भाव से फलादेश सुनायें ॥८२॥

ग्रहगणं गणयन् गणिकाग्रणीः क्षणमुवाच न किञ्चन विस्मितः ॥
हरदयालु रलौकिक लक्षणं स्मित पुरस्सर माह निशम्यताम् ॥८३॥

अर्थ—ज्योतिषी पं० हरदयाल जी ने सब ग्रहों की गिनती की, और थोड़ी देर आश्चर्य में मग्न हो, कुछ न बोले "अहो कितने उच्च ग्रह हैं" फिर प्रसन्न होकर बोले, सुनिये ॥८३॥

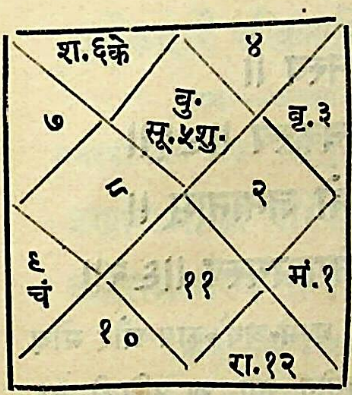
किं वच्मि मन्दः शुभलक्षणानि सरस्वती याति न पार मेषाम् ॥
शेषोऽपि शक्नोति न गातु मस्य गुणांस्तदा कैव कथा परस्य ॥८४॥

अर्थ—मैं साधारण बुद्धि वाला मनुष्य इनके शुभ लक्षणों का क्या वर्णन कर सकता हूँ, यदि साक्षात् वागीश्वरी देवी सरस्वती भी और शेषनाग जी भी वर्णन करें तो इनके गुणों का पार नहीं पा सकते और का तो कहना ही क्या है ॥८४॥

नायं मनुष्योऽपितु चन्द्रमौलिः गङ्गाधरो लोक हिताय देवः ॥
त्वदीय पुत्रत्व मुपेत्य लोके लीला मुदारां च विधातु काम ॥८५॥

अर्थ—आप सत्य समझें, ये मनुष्य नहीं हैं साक्षात् देवाधिदेव श्री महादेव हैं संसार में अपनी पवित्र लीला का विस्तार करने के लिए इन्होंने आपके घर में पुत्र रूप में अवतार धारण किया है ॥८५॥

जन्मकुण्डली श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की



नोटः—विद्या का मालिक बृहस्पति ११ घर में है और अपने घर को देखता है सो विद्या योग अच्छा है भाग्यस्थान में मंगल स्वगृही होने के कारण राजयोग है सू. शु. बु. एक स्थान में होने से और भी प्रबल राजयोग है जिसको बड़े-बड़े राजा महाराजा आकर मस्तक झुकाते हैं प्रतीत होता है कि यह पुरुष अवतारी होकर दिग्विजयी होगा और हिंदू धर्म्म की रक्षा करेगा ॥

विनीतमारं दुरितस्य हारं भूभारहारं नरलोकसारम् ॥
सद्धर्म्मधारं शुभकर्मकारं नीत्वाऽवतारं नयमार्ग चारम् ॥८६॥

अर्थ—इनका यह अवतार कामदेव को जीतने वाला, पाप को दूर करने वाला, संसार का सर्वस्व' पृथ्वी का भार हरने वाला, सद्धर्म्म का धारण करने वाला, शुभकर्म्म करने वाला, और नीति के प्रचार करने वाला होगा ॥८६॥

लोकानुवृत्तौ च कालासु दाने ध्याने विरागे परचित्तबोधे ॥
पदे च वाक्ये च तथा प्रमाणे सांख्ये च योगे च तथा निरूक्ते ॥८७॥
शिल्पे च कल्पे च तथा पुराणे वेदान्त शास्त्रे गणिते स्मृतौ च ॥
रामायणे भागवते च नातौ गीतासु शिक्षासु च भारते च ॥८८॥
सामुद्रिके वा कविताविधान वात्स्यामने नाद्यविधौ नटेशः ॥
अलौकिक कौशलमेष लब्धा शिवाऽवतारो ऽय मगम्यरूपः ॥८९॥

अर्थ—आपका यह पुत्र-लोकव्यवहार में, कला में, दान में, ध्यान में, विराग में, दूसरों के मन की जानने में, व्याकरण-मीमांसा-सांख्य-योग-निरुक्त में, शिल्पकला में; पुराण, वेदान्त, गणित-स्मृतिमें, रामायण, महाभारत, नीति में, गीता, शिक्षा, सामुद्रिक में, कविता कामशास्त्र में और नाद्य शास्त्र-में अद्भुत कौशल प्राप्त करेगा ये साक्षात शिव जी हैं इनके स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता।।८७।।८८।।८६।।

जितेन्द्रियो नैष्ठिक वृन्दवन्द्यो हितेरतः सर्वशरीरभाजाम् ॥
धर्म्मोपदेष्टा परिशुद्ध बुद्धिः नितान्त शान्तः सकलागमज्ञः ॥६०॥

अर्थ—ये नैष्ठिक ब्रह्मचारियों में मुख्य होंगे जितेन्द्रिय और सब के हित करने वाले होंगे सम्पूर्ण शास्त्रों तथा धर्म्म के उपदेष्ठा होंगे इन की बुद्धि शुद्ध होगी और इनका अपने मन पर विजय होगा ॥६०॥

ओंकार जातस्य मुनीन्द्रवर्य्यैः संसेवितस्य सनातनस्य ॥
कालेन लोपत्व मुपागतस्य पुमर्थदस्याऽऽशु विमोचकस्य ॥६१॥
चित्या मुदासीन पथस्य पोष्टा धर्म्मार्थकामेषु मनो जनानाम् ॥
योक्ता, स्वयं मोक्षपदे निषण्णःपाता प्रपन्नस्य निराश्रयस्य ॥६२॥

अर्थ—ओंकार से पैदा हुए, सदा चले आरहे (सनातन) धर्म्म-अर्थ-काम-और मोक्ष को देने वाले, समय-प्रभाव से जो लुप्त हो चुका है उस प्राचीन उदासीन मत का पृथिवी पर प्रचार करेंगे धर्म्म-अर्थादि में मनुष्यों के मन को लगायेंगे स्वयं वेदान्त चिंतन में लीन रहेंगे तथा अपने शरणागतों का सदा कल्याण करेंगे ॥६१॥६२॥

केचिन् न मंस्यंत इमं शिशुं ते शिवावतारं सनकादिसेव्यम् ॥
परन्तु का हानि रुलूक-लोके निन्दापरे भास्वर भास्करस्य ॥६३॥

अर्थ—कुछ लोग इस आपके पौत्र को साधारण बालक समझेंगे सनकादिकों के भी पूज्यनीय श्री महादेव जी का अवतार मानने में कुछ आना कानी करेंगे परंतु इससे इनका कुछ नहीं घटेगा यदि उलूक सूर्य्य की निंदा करे, तो इसमें सूर्य्य की क्या हानि है ।।६३।।

रामावतारं क्षितिभारहारं लङ्काधिराजो निगमैकसारम् ॥
कृष्णावतारं कलिकल्मषघ्नं कंसो न मेने विपरीत-बुद्धिः ॥६४॥
तथापि किं तौ कमलाधवस्य नावतारौ जगति प्रसिद्धौ ॥
निन्दन्ति मूढा महतां चरित्रम् स्वाभाव सिद्धेन गुणेन नद्धाः ॥६५॥

अर्थ—वेद प्रतिपाद्य भूभार हरने वाले श्रीरामावतार को रावण ने, तथा कलिकल्मष दूर करने वाले श्रीकृष्ण अवतार को कंस ने अपनी विपरीत-बुद्धि के कारण अवतार नहीं माना क्या वे दोनों ही श्री विष्णु का अवतार नहीं हुए किंतु दुर्जन लोग अपनी प्रकृति के वशी भूत होकर महापुरुषों के चरित्र की निन्दा करते ही रहते हैं ॥९४॥९५॥

हंसान् बका दुश्चरिताः कुलीनान् काकाः पिकान् मूर्खजनाश्च विज्ञान् ॥
द्विषन्ति नित्यं नतु पारयन्ति गुणानयाकर्तु मनात्मविज्ञाः ॥९६॥

अर्थ—बक हंसों की, अकुलीन कुलीनों की, काक कोयलो की, और पण्डितों की मूर्ख सदा निंदा करते ही रहते हैं परंतु आजतक वे उनके सद्गुणों को दूर नहीं कर सके ॥९६॥

श्रियां विधुं जेष्यति नूनमेषः श्रीचन्द्रनामा भविता तदूर्व्याम् ॥
गुणैरुदारै रखिलानि कान्तैर्जगन्ति सम्मोहयिता मनस्वी ॥९७॥

अर्थ—अपनी श्री से ये चन्द्र को जीतेंगे अतः इनका नाम श्रीचन्द्र होगा आप बड़े मनस्वी होंगे अपने सद्गुणों से समस्त प्राणियों के मन को बश में करेंगे ॥९७॥

वर्णाश्रमाणां परिपालनेन पुरातनस्याऽस्य वृषस्य धीरः ॥
अद्वैतमार्गस्य च विस्तरेण जगन्ति कर्त्ता विमलानि नूनम् ॥९८॥

अर्थ—आप वर्णाश्रम की रक्षा करेंगे, हिंदू सनातन धर्म्म की पुनः प्रतिष्ठा करेंगे, वेदान्त प्रचार के द्वारा सम्पूर्ण संसार का क्लेश दूर करेंगे ॥९८॥

शिवे च विष्णौ च दिनाधिनाथे शक्तौ गणेशे च निवार्य्य भेदम् ॥
श्रौतं तथा स्मार्त मनिन्दनीयं धर्म्मं पुनः स्थापयिता पृथिव्याम् ॥९९॥

अर्थ—शिव, विष्णु-सूर्य्य-गणेश-और दुर्गा के विषय में बढ़ रहे इस भेदभाव को सर्वथा मिटा देंगे और पृथिवी में अपने श्रौत-स्मार्त-पवित्र हिंदू धर्म्म का फिर से झंडा गगन चुम्बी लहरायेंगे ॥९९॥

धन्योऽसि येनाऽऽप्त उदारकीर्त्तिःसुतः स्वयं शम्भुरयं त्रिनेत्राः ॥
पुण्यानि ते पूर्वकृतानि नूनं फलन्ति संशीति लवोऽपि नास्ति ॥१००॥

अर्थ—आप परम धन्य हैं जिनके घरमें साक्षात् त्र्यम्बक महादेवजी ने अवतार लिया है इसमें कोई संशय नहीं है यह सब आपके पूर्व जन्मोंपार्जित अपूर्व पुण्यों का ही शुभफल है ॥१००॥

पुनीत वंशपानमलै श्चरित्रैः स एव पुत्रो नतु कायथस्य ॥
किं तेन पुत्रेण कुलानि येन पतन्ति धर्म्मान्नरकं प्रयान्ति ॥१०१॥

अर्थ—वही वास्तव में पुत्र है जो अपने विमल चरित्र से अपने पूर्व पुरुषों का सिर ऊँचा करे कुमार्गगामी न हो। उस पुत्र से क्या लाभ जिससे कुल पतित हो जाय और नरक में पड़े ॥१०१॥

वरं कुपुत्रा दनपत्यतैव विनापि पुत्रेण समाधिनिष्ठाः ॥
ज्ञानाग्नि शुद्धाः शुकनारदाद्याः याताः परं ब्रह्मपदं सुखेन ॥१०२॥

अर्थ—कुपुत्र के पैदा होने से तो अपुत्र रहना ही अच्छा है, पुत्र के विना भी शुकदेव नारदादि महिर्षिजन ज्ञानाग्नि से अपने शुभाशुभ कर्मों को नष्ट करके समान ब्रह्मपद को प्राप्त होते सुखी भये हैं ॥१०२॥

अयं तु ते नानक पुत्र ईशो वशी समस्तस्य भवस्यकर्त्ता ॥
तवापि लोके महनीय कीर्त्तिं ज्योत्स्ना मिवेन्दु धवलां विधाता ॥१०३॥

अर्थ—हे नानक देवजी आपका पुत्र साक्षात् महादेव है समस्त संसार के कर्त्ता हर्त्ता हैं संसार में चंद्रमा के समान आपकी पवित्र-कीर्त्ति कोमुदि (प्रकाश) को फैलायेगा ॥१०३॥

रामस्य भक्तिः प्रथिता यथौर्व्यां श्रीकृष्णचन्द्रस्यथथावदाता ॥
श्रीचन्द्रदेवस्य तथैव भक्तिः भविष्यति ख्यातगुणा जगत्याम् ॥१०४॥

मूर्त्तिं विधायस्य सुरालयेषु संस्थापयिष्यन्ति जना पवित्राम् ॥
सम्पूज्य कामा नखिलांश्च भक्ताः प्राप्स्यन्ति कल्पादिव वृक्षराजात् ॥

अर्थ—भगवान् राम और कृष्ण की भक्ति के समान मनुष्य इनकी भी भक्ति किया करेंगे इनके समान इनकी भी मूर्ति बनाकर मंदिरों में प्रतिष्ठित करेंगे और जैसे कल्पवृक्ष से सब मनमाना मनोर्थ प्राप्त करते हैं उसी भाँति इनकी मूर्ति की पूजा से भक्तजनता सब फल प्राप्त करेगी ॥१०४-१०५॥

वह्वनुदासीन् मठान् विधाय तेष्वात्मशिष्यान् विनियोज्य योग्यान् ॥
कीर्त्तिं परां ख्यापयिताऽत्रलोके कल्पस्थिरां कल्मषनाशदक्षाम् ॥१०६॥

अर्थ—बहुत से उदासीन स्थानों को बनाकर, उनमें अपने योग्य शिष्यों (साधुओं) को बैठा कर, कल्पस्थायी पापनाशिनी अपनी कीर्त्ति-ख्याति करेंगे ॥१०६॥

इत्थं स विज्ञाप्य भवावतारं स्तुत्वा मुहुः शङ्कर मग्नजन्मा ॥
आनन्द-पयोध-निमग्न-चेताः तूष्णीं मभूत् वक्तुमापारयन् सः ॥१०७॥

अर्थ—इस प्रकार पंडित हर दयाल ज्योतिषी ने भगवान् शंकरावतार के कुछ गुणों का

वर्णन किया, तदन्तर आनन्द विभोर हो गया कुछ न बोल सका चुपचाप एकटक बैठके बालक का मुख देखने लगा गया ॥१०७॥

ऐवं तेन निवेदितैर्गुणगणैर्विज्ञाय युक्तं सुतं
लोकानामवनाय मानववपुः कृत्वावतीर्णं हरम् ॥
चन्द्रस्योदय उद्भवोदधिरिवाऽऽनन्दा प्लुतो नानकः
नानालंकृति-गो-हिरण्य-धरणी जौतिर्विदे दत्तवान् ॥१०८॥

अर्थ—इस प्रकार ज्योतिषी के मुख से अपने पुत्र के गुणों को सुन कर कि "ये साक्षात् शिव हैं, संसार का भार उतारने के लिये ही मानव शरीर धारण किया है" चन्द्रोदय होने पर जैसे समुद्र आनन्द से आन्दोलित होता है। उसी प्रकार श्रीगुरु नानक देव जी ने भी श्रीचन्द्रजन्म से आनन्द विभोर होकर ज्योतिषी महाराज को नाना अलंकारयुत गौ-पृथिवी और साथ बहुत साधन दिया ॥ १०८ ॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य-वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमदुदासीनवर्य्य परमहंसावतंस-ब्रह्मनिष्ठ-निखिल-शास्त्रनिष्णात-योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डी देव गुरुचरणकमल-चंचरीकाय मान-मानस-महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जन्मस्तुति तथा भविष्यफल वर्णन सकलकलि कल्मषनाशनी द्वितीय किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२॥

॥ अथ तृतीय किरणप्रारम्भः ॥

ततः समग्र ग्रह-शान्ति कर्माणि समापिते तस्य शिशोर्विधानतः ॥
ददौ पिता भूरिधनं महाधनो दरिद्रता कापि पलायिता तदा ॥१॥

अर्थ—सम्पूर्ण ग्रहफल* सुनने के बाद श्री गुरुनानकदेव जी ने इस बालक का शांति कर्म (देव, पितर ग्रहों की पूजा) करवाया और मुक्तहस्त से विविध प्रकार के अन्न वस्त्र हीरा-मोती मुद्रादिका दान किया जिससे उस समय कोई दरिद्र न रहा ॥१॥

*बाल गृहादि दोषों के नाम यह हैं डाकनी, राक्षसी, कूष्मांड, बालगृह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक, कोटरा, रेवती, अलक्ष्मी, पूतना, मातृका, उन्माद, अपस्मार, स्वप्न देखे का भय आदि प्रभृति दोष बाल गृह के भागवत स्कन्ध १०अ० ६ श्लो० २७-२८ में लिखे हैं यह सब दोष जप, पाठ, पूजा, हवन, धूनी, श्राद्ध, पुण्य-दानादि करने से शांत होते हैं।

मुहुर्मुहुः दीनविधान तोषिता जना दरिद्राः शिशु माशिषां भरैः ॥
अवर्धयन् वृद्धमनोरथाः पिता महादयो मोद-महोदधिं गताः ॥२॥

अर्थ—दान से अत्यन्त प्रसन्न हुए २ दरिद्र लोग कोटिशः आशीर्वाद धन्यवाद और बधाई देने लगे और बालक जन्म से सफल मनोरथ दादा-दादी-माता-पिता-आदि समस्त बान्धव आनन्द सागर में निमग्न हो गए ॥२॥

अहो जनन्याः सुकृतस्य भूरिता न्युवास यस्या विमलोदरे हरः ॥
हिरण्य गर्भो भुवनाण्ड के यथा प्रजापतिश्चन्द्र कला धर स्तथा ॥३॥

अर्थ—अहो माता सुलक्षणी के कितने बड़े भाग्य हैं जिनकी पवित्र कोख से भगवान् शंकर प्रकट हुए, जैसे हिरण्यगर्भ प्रजापति भुवनाण्ड से प्रकट हुए थे ऐसे अनुपम तेजस्वी बालक को गोद में लिए हुए माता कभी शय्या पर लेट कर दुग्ध पान कराती है कभी हृदय से लगाती हुई प्रेमामृत पान करती पुलकित हो रही है ॥३॥

जनिर्जनन्याः सफला तदा मता सुतो हि यस्या सुकृती यदा भवेत् ॥
सुलक्षणा धन्यतरा किमुच्यते सुलक्षणा नून मियं न संशयः ॥४॥

अर्थ – उस माता का जन्म लेना धन्य है जिस का पुत्र परम धर्मात्मा हो सुलक्षणी तो वास्तव में सुलक्षणी (शुभलक्षणों वाली) है इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं जिसके गर्भ से साक्षात् जगत पूज्य भगवान् शंकर पुत्ररुप से आकर प्रगट हुए ॥४॥

इति प्रसन्नाखिल देहिनां तदा समन्ततः सुश्रुविरे शुभा गिरः ॥
निदाघ सन्ताप हरे सुखाकरे विधूदये कस्य मनो न हृष्यति ॥५॥

अर्थ—इस प्रकार चारों ओर से मनुष्यों की सुन्दर शुभ कहावतें कर्णों में पड़ रही थीं गर्मी को दूर कर शीतलता प्रदान करने वाले चन्द्रमा के उदय होने पर किसका मन प्रसन्न नहीं होता अर्थात् सभी का होता है ॥५॥

शनैः शनै स्तत्र शिशौ दिने दिने कलाधरीया अविशन् ध्रुवं कलाः ॥
विचीयमानावयवोऽधिकं बभौ पितु र्जनन्याश्च मनो विनोदयन् ॥६॥

अर्थ—इस प्रकार धीरे धीरे उस बालक में चन्द्रमा की कलायें प्रवेश करने लगी ज्यों ज्यों बड़े होते जाते थे त्यों त्यों माता पिता का मन भी बढ़ता जाता था वे अधिक सुन्दर लगते थे ॥६॥

मराल बालैः सह मानसे यथा मरालराजस्य शिशुर्विराजते ॥
तथाङ्गणे बालचरित्रचित्रणैः समं वयस्यैः समनन्दयज्जनान् ॥७॥

अर्थ—जैसे मानसरोवर हंस-शिशु हंस-शिशुओं के साथ शोभा देता है वैसे ही आँगन में अपने समान आयु वाले बालकों के साथ नानाप्रकार के खेल खेलते हुए भगवान् सब के मन को आनन्दित कर रहे थे ॥७॥

सितैः स्मितैः स्तोक विजल्पितैः शितैः शिखण्डकैः केकिशिखण्ड सन्निभैः
द्विजैश्चतुर्भिश्चलकञ्जलोचनः ततान कौतूहल मात्म दर्शिनाम् ॥८॥

अर्थ—भगवान् के सुफेद सुफेद चार दांत और मधुर मधुर हँसी थोड़ा थोड़ा तुतुला कर बोलना, कमल दल विशाल और चञ्चल लोचन बरबश देखने वालों को आश्चर्य में डुबा रहे थे तथा काले काले घुंघराले बाल, मयूर-शिखिण्डिमा के तुल्य मनोहर देखने वालों के मन को ललचा रहे थे ॥८॥

विशाल भाले तिलकं गले ललल्ललन्तिका व्याघ्रनखाङ्किताऽमला ॥
सुवर्ण काञ्ची जघने मनोहरा पादाब्जयोर्नूपुर शिञ्जितं मृदु ॥९॥

अर्थ—विशाल मस्तक पर लगा हुआ तिलक, गले में पड़ी हुई छोटी माला तथा बाघ-नखा, सौवर्णमयी तगड़ी तथा पावों में बड़े सुन्दर नूपुर मधुर २ बज रहे थे ॥९॥

न बाल चापल्य-कृतानि बालके बभूवरूद्दण्ड विचेष्टितान्यपि ॥
न रोदनं तस्य कदाप्य दृश्यत कथैव का क्रोध्र-पिशाचकस्य तु ॥१०॥

अर्थ—इस विलक्षण बालक में बाल चपलता आदि बाल सुलभ कोई चेष्टा बिलकुल नहीं थी न यह प्राकृत बालक की भाँति कभी रोते झगड़ते देखे गए क्रोध तो इन में नाम मात्र को भी नहीं था ॥१०॥

नवोदिते श्चन्द्र इवाततैः करैःसुधामयैः कैरवषण्ड-मण्डनैः ॥
गुणैःसमग्रैः शिशुरेष शैशवेऽप्यभूत् प्रसिद्धो जगतीतलेऽखिले ॥११॥

अथ—जैसे नवोदित चन्द्रमा कुमुदों को खिलाने वाली अपनी अमृत मयी किरणों से संसार में प्रसिद्धी पालेता है वैसे इस बालक ने भी बाल्यावस्था में ही अपने अद्भुत गुणों से समस्त संसार में प्रसिद्धी प्राप्तकी इस बालक के गुण नाम और बड़ाई कौन कह के पार पा सकता है ॥११॥

समागता द्रष्टु ममुं कुतूहलात् जना मनोज्ञश्च सुदूरवासिनः ॥
करेण स्पर्श सतान् स्मिताननो मुदान्विता स्तेऽपि गृहं विसस्मरूः ॥१२

अर्थ—बहुत दूर दूर से कौतुहल वश इस सुन्दर बालक को देखने के लिए लोग आने लगे और यह बालक जब हँस कर उनको हाथ से छूलेता था तो वे लोग आनन्द मग्न होकर अपने घर बार को भुला बैठते थे ॥१२॥

सुराःसमास्थाय वपूंषि देहिनां समागमंश्च विलोकनोत्सुकाः ॥
निमेष हीनान् क्षितिसङ्गवर्जितान् जनो न वेत्तिस्म तदा मुदाकुलः ॥१३

अर्थ—देवता लोग इस आनन्द के समय को कब हाथ से जाने देने वाले थे अतएव उस समय ही मानवी शरीर धारण कर श्रीचंद्र भगवान् को देखने आए उनकी पलकें नही पड़ती थीं और कुछ पृथिवी से ऊँचे थे परंतु मनुष्य वर्ग आनन्द मग्न होने के कारण उन्हें पहिचान न सका ॥१३॥

अथै कदा स्तन्यमनन्य मानसः समाधिनिष्ठो न पपौ स्तनन्धयः ॥
सुशो चचिन्ता कुलिता सुलक्षणा निशागमे तस्य पितुर्न्यवेदयत् ॥१४॥

अर्थ—इस लीला के पश्चात् एक दिन एक बिलक्षण ही घटना हुई कि भगवान् श्रीचन्द्रजी ने माता का दूध नहीं पिया वे निर्विकल्प समाधि में लीन थे माता को बड़ी चिंता हुई सायंकाल यह वार्ता माता ने श्री गुरु नानक देव जी अपने पति देव से कही ॥१४॥

प्रियां विषण्णा मवलोक्य नानकः उवाच नायं मनुज स्त्रिलोचिनः ॥
वृथा शुचं मैव कृथाः सुलोचने तनोतु योगं खलु तं पुरातनम् ॥१५॥

अर्थ—श्री गुरुनानक देव जी ने अपनी प्राण प्रिया धर्मपत्नि को इस प्रकार दुःखी देख कर बोले हे प्रिये ये कोई मनुष्य नही हैं साक्षात् देवाधिदेव महादेव हैं तुम वृथा शोक न करो ये अपने पुराने योगाभ्यास को कर रहे हैं ॥१५॥

प्रियस्य वाक्येन शुचं सुलक्षणा जहौ हरस्याथ रहस्य बोधनात् ॥
तथापि वात्सल्यवशात् स्वाभावजां दयामियं किं परिहर्तु मर्हति ॥१६॥

अर्थ—अपने पतिदेव के कहने से माता का शोक तो दूर होगया और वे भगवान् के रहस्य को भी कुछ कुछ समझ गई परंतु वे स्वाभाविक अपनी वात्सल्य मयी दया को कैसे छोड़ सकती थीं ॥१६॥

गते प्रिये सुत-समस्त-बान्धवे निशीथकाले जननीं भयातुरा ॥
विलोकयामास विचित्र वैभवंभवावतारस्य सुतस्य कौतुकम् ॥१७॥

अर्थ—पतिदेव चले गए, सारा परिवार सोगया रात्रि में भयभीत होकर माता ने अपने पुत्र का एक विलक्षण वैभवयुक्त स्वप्न देखा ॥१७॥

शशाङ्करत्नोपनिबद्ध वेदिका विशाल-सिंहासन-मध्य मास्थितम् ॥
सुधावदातावयवं सुराधिपैः रूपास्यमानं परितः स्थितैः नतैः ॥१८॥

अर्थ—चन्द्रकांत मणियों की वेदिका बनी हुई है उस पर आप एक विशाल सुसज्जित सिंहासन पर विराजमान हैं आपका शरीर चन्द्रमा के समान गौरवर्ण है चारों तरफ देवता खड़े हुए हैं और आपकी भांति भांति की सेवा कर रहे हैं ॥१८॥

गणै र्गणेशेन गुहेन नन्दिना गणेश पुत्र्या भुजगेश्वरेणच ॥
विरंचिना-विष्णु-कुवेरवह्निभिः विडौजसा पाशभृताऽप्सरोगणैः ॥१९॥
वशिष्ठ-कुम्भोद्भव-गौतमाऽसित पुलस्त्य-हारीत - पराशरादिभि ॥
उतत्थ्य-कात्यायन-कण्व-जैमिनी कणाद जावालि-शुकात्रि नारदैः ॥२०॥
मरीचि-वात्स्यायन - कौशिकाङ्गिरः कलाप्यगस्त्यारुणि पर्वतादिभिः ॥
निषेव्यमाणं सनकादिभिर्विभुं विलोकय ल्लोचन-सेचनं सुतम् ॥२१॥

अर्थ—जिनमें समस्त देवगण गणेश गुह-नन्दी-पार्वती, शेषनाग, ब्रह्मा, विष्णु, कुबेर, अग्नि, इन्द्र, वरुण, अप्सरायें, वशिष्ठ, अगस्त्य, गौतम, असित, पुलस्त्य, हारीत, पराशर, उतथ्य, कात्यायन, कण्व, जैमिनी, कणाद, जावालि, शुकदेव, अत्रि, नारद, मरीचि, वात्स्यायन, कौशिक, अंगिरा कलापी, आरुणि, पर्वतादि सभी उदासीन मुनि सम्मिलित थे सनकादिकों द्वारा सेवित आनन्दवर्धक अपने पुत्र को माता ने देखा ॥१९॥२०॥२१॥

स्वाभाव सिध्दं प्रविहाय हृद्गतं कुचेष्ठितं नम्र तरः कृताञ्जलिः ॥
क्षमापयन दौलतखान आत्मनः पुराकृतं दोष मुदश्रुरास्थितः ॥२२॥

अर्थ—एक तरफ अपनी जन्म सिद्ध दुष्टता को छोड़कर हाथ जोड़ अत्यंत नम्र भाव से दौलत खान खड़ा है आंखों से जल वहा रहा है और अपने पहिले किये हुए अपराधों को क्षमा करवाने की प्रार्थना कर रहा है ॥२२॥

विलोक्य भीता मुदिताश्च मातरं कृताञ्जलिं स्तोतु मलब्धसाहसम् ॥
स्वयं विहस्याऽहं न ते भयं क्वचित् कुतो नु मत्तो मम मातुरीश्वरात्

अर्थ—भयभीत माता जी को देख कर जोकि हाथ जोड़े खड़ी थीं और स्तुति करना चाहती थीं परंतु साहस नहीं होता था भगवान् श्रीचंद्र देव स्वयं ही मुसकराते हुए कहने लगे कि हे माता आप को कहीं से भी भय नहीं है मैं तो आप का पुत्र हूँ और आप मेरी पूज्य माता हैं फिर यह भय कैसा ॥२३

व्यपेतभीः शान्तमना मनस्विनी सतीगुणैः श्लाघ्यतराऽसि भूतले ॥
अतः परं नास्ति जनु र्भवाम्बुधौ तवात्र मात र्मम जन्मनाऽमुना ॥२४॥

अर्थ—आप सर्वदा भय को त्याग दें अपने मन को शांत रखें आप अपने सद्गुणों से सती शिरोमणियों में मुख्य हैं संसार आपका यश गाता है मेरे इस जन्म के कारण आगे के लिये आपको संसार में कोई जन्म लेना नहीं पड़ेगा ॥२४॥

इतिस्तुतेनाऽऽत्मसुतेन भाषिता भवेन साक्षादमृतांशु-मौलिना ॥
प्रसन्नचित्ता जननी जगन्मुदे महेश्वरं पृष्ठवतीत्थ मादरात् ॥२५॥

अर्थ—इस प्रकार अपने पुत्र श्रीचन्द्र को जो साक्षात् भगवान् शिव का अवतार हैं उनके कहने पर पूज्य श्री माता जी बड़ी प्रसन्न हुईं और संसार के कल्याणार्थ भगवान् से सादर कहने लगीं ॥२५॥

न ते विभो वेद्मि रहस्य मल्पधीः ततो नु पृच्छामि किमात्मतेजसा ॥
जगत्त्रयं दग्धवतां न शक्यते स्वधाम निष्ठेन विनाशनं द्विषाम् ॥२६॥

अर्थ—हे भगवन् मैं अल्पबुद्धि स्त्री हूं आपके अद्भुत रहस्य को नहीं जानती हूँ फिर मैं आप से एक बात पूछती हूँ। कि आप अपने तेज से स्वर्ग में ही बैठे बैठे क्या शत्रुओं का नाश नहीं कर सकते आप तो तीनों लोकों को भस्मी भूत करने की सामर्थ्य रखते हैं ॥२६॥

निमेषमात्रेण लयोदयौ भवान् करोति लोकस्य परं लघीयसीम् ॥
कृतिं विधातुं नवजनिं भजन् कुतः प्रयासं वितनोति केवलम् ॥२७॥

अर्थ—आप के इशारे मात्र से ही संसार की उत्पत्ति और विनाश होता है फिर आप छोटा सा काम करने के लिए मनुष्यों की भाँति शरीर धारण करने का कष्ट क्यों उठाते हो ॥२७॥

निशम्य मातुर्वचनं नटेश्वरः स्वरेण गम्भीर तरेण चाऽवदत् ॥
नमेऽम्ब शक्ति र्न, न वा वृथा कृतिःकरोमि लीलां भवभीति नाशनीम् ॥

अर्थ—इस प्रकार माता के शब्द सुनकर भगवान् अत्यंत गम्भीर स्वर से कहने लगे हे माता मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है अथवा मेरा शरीर धारण करना व्यर्थ है सो बात नहीं मैं तो एक मात्र संसार के कल्याणार्थ अपनी लीला किया करता हूँ ॥२८॥

अवश्य शक्यं जनि मन्तरा मया विधातु मल्पस्य खलस्य घातनम् ॥
तथापि मानुष्य शरीर मास्थितः करोमि लीलां भुवि ते वशंवदः ॥२९॥

अर्थ—हे माता मैं जन्म ग्रहण करने के बिना भी दुष्टों का नाश अवश्य कर सकता हूँ परंतु आपके प्रेम में बँध कर संसार में मनुष्यशरीर-ग्रहण कर के भक्त जनों की भावना के अनुकूल अपनी लीला करूंगा ॥२९॥

यदीदृशी नैव तनोति पावनीं कृतिं पुनः कामनु सृत्य देहिनः ॥
सृतिं भवाम्भोधि मपास्य लीलया महालयं यान्तु यमादिभिर्विना ॥३०॥

अर्थ—यदि मैं मनुष्य विग्रह धारण कर भिन्न भिन्न लीला न करूँ, तो भक्तजन मेरे किस विग्रह का गुण गान कैसे करेंगे तथा वह लोग यमनियमादि साधनों के बिना भी कैसे संसारसागर को आसानी से पार कर सकेंगे ॥३०॥

विनापि कृच्छ्रादितपः सुखादतो मदीयभक्ताः परमं ध्रुवं पदम् ॥
भवार्णवाद् यान्त्विति वीतकल्मषा वहामि भक्तैक वशंवदो जनुः ॥३१॥

अर्थ—बिना ही किसी कठिन तपस्या के मेरे भक्त जन संसार सागर को सुख पूर्वक तर कर परम धाम को प्राप्त हो जायेंगे इसलिए मैं अपने भक्तों की भावनानुसार शरीर ग्रहण करके तत्तत् लीला किया करता हूँ ॥३१॥

जनुः समाथाय नृणां निपीडिनो द्विषो विनाश्याशु नियम्य जीविनाम् ॥
चरित्रमत्रानु निजालयं प्रति ब्रजामि निस्सङ्ग जितेन्द्रियोऽमलः ॥३२॥

अर्थ—मनुष्य शरीर धारण करके निरपराध प्राणिओं के तंग करने वाले दुष्टों को नाश करता हूँ तथा प्रत्येक प्राणी को स्व स्व धर्म्म की शिक्षा देकर नियंत्रण में लाता हूँ फिर निस्सङ्ग भाव से अपने धाम को चला जाता हूँ ॥३२॥

मलावलिप्ता यदि मानवा नमे ब्रजन्ति पन्थान मकल्मषं मुदा ॥
मयावतारे न च विश्वश्सन्ति ये ध्रुवं श्वसन्तोऽपि मृताः स्मृताश्चते ॥

अर्थ—अज्ञानता के कारणजो अधम प्राणी मेरे पवित्र मार्ग का अनुसरण नहीं करते, तथा मेरे विषय में पूरा दृढ़ विश्वास नहीं करते, वे श्वास लेते हुए भी मुर्दा हैं ॥३३॥

अतोह मायामि विधाय मानवीं तनूं निजानन्दमयो ऽप्यजोऽपिसन् ॥
सनातनंधर्म्म मकण्टकं पुनः करोमि वर्णाश्रमधर्म्म रक्षणात् ॥३४॥

अर्थ—यद्यपि मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, आनन्द स्वरूप हूं अज हूँ तथापि वर्णाश्रम की रक्षा

के द्वारा इस हिन्दू सनातन धर्म की मर्य्यादा का पालना करता हूँ यही मनुष्य विग्रह ग्रहण करने का मुख्य प्रयोजन है ॥३४॥

त्वया च मातः सततं सतां मतं ममैव नामाऽखिल पापनाशकम् ॥
अनारतं जप्यमनन्य चेतसा भवे भवो नास्ति तवानघे परम् ॥३५॥

अर्थः—हे माता आप मेरे साधुजनों से स्तुत्य पापनाशक नाम का अनन्यभाव से निरन्तर जाप और ध्यान करती रहें हे अनघे इस के अनन्तर आपको दुवारा संसार में नहीं आना पड़ेगा ॥३५॥

नीपीय पुत्रस्य बचः सुलक्षणा विलक्षणं जन्म विभोरबुध्यत ॥
कृताञ्जलि र्गद्गदया गिरा ततः प्रचक्रमे भव्यनुतिं स्नुतस्तनी ॥३६॥

अर्थः—माता सुलक्षणी अपने पुत्र के ऐसे शब्द सुन कर भगवान् के जन्म की विलक्षणता समझ गईं स्तनों से दुग्ध झरने लगा हाथ बाँध कर गद्गद्वाणी से भगवान् की स्तुति करने लगी ॥३६॥

अरूप मस्पर्श मनन्त मव्ययं निरामयं शाश्वत मीड्य मीश्वरम् ॥
सनातनं मायिन माहु रागमा भवन्त मानन्द मयाय ते नमः ॥३७॥

अर्थः—हे भगवन् आप अरूप हैं, स्पर्शादिसेरहित हैं, अनन्त हैं, अव्यय अविनाशी हैं, निरामय रोग से रहित हैं, नित्य हैं, पूज्य हैं, स्तुति करने योग्य हैं, ईश्वर हैं, सनातन हैं, माया से रहित हैं, और आनन्दमय हैं, ऐसा शास्त्र बतलाते हैं अतः आपको बारम्बार मेरा नमस्कार है ॥३७॥

अनन्तनामा मनामधारिणं समस्तरूपं बचसा मगोचरम् ॥
अतीन्द्रियं ज्ञानमयं निरञ्जनं बदन्ति सन्तः श्रुतयः स्मृतिर्ध्रुवम् ॥३८

अर्थः—आपके नाम अनन्त हैं और आप अनन्त रूप हैं, फिर भी आप निरंजन हैं, ऐसा साधु स्मृति और श्रुतियों का मत (सिद्धान्त) है आप नाम रूप से परे, अतीन्द्रिय, और ज्ञान स्वरूप हैं, ऐसा भी प्रतिपादन श्रुतियाँ करती हैं ॥३८॥

अकारणं कारण मद्भुतं जगतत्रयस्य पश्यन्त मदृश्यमन्यतः ॥
ध्रुवं चलन्तं मगुणं गुणात्मकं गदीन्त गम्भीरधीयो महाजनाः ॥३९॥

अर्थः—आप संसार के अद्भुत कारण हैं जगत के द्रष्टा हैं आप दुसरों से अदृश्य हैं आप स्थिर हैं, क्रियाशील हैं, गुणों वाले तथा गुणों से अदृश्य हैं अर्थात् रहित हैं अनन्त हैं ऐसा महापुरुषों का कहना है ॥३९॥

अणो रणीयांस मगोचरं दृशो गुरो र्गरीयास मजं जनु र्जुषाम् ॥
लघो र्लघीयांस मगम्य मद्भुतं विरुद्धधर्म्मं न विरुद्धधर्म्मकम् ॥४०॥

अर्थः—आप अणु से भी अणु हैं अतः चक्षु से अगोचर हैं आप भारी से भारी हैं आप अजन्मा भी हैं और शरीर को धारण करने वाले भी हैं आप छोटे से छोटे हैं आप अगम्य और अद्भुत हैं आप में विरुद्धधर्म होने पर भी कोई विरोध नहीं आता ॥४०॥

त्वमेव सूर्य्योऽसि शशीन्द्रपाशिनः कुबेर नैर्ऋत्य यमानलानिला ॥
नगेश-नागेश खगेश-किन्नराः त्वमेव सर्वत्र विराजसे विभो ॥४१॥

अर्थः—आप सूर्य्य-चन्द्र-इन्द्र-वरुण-कुबेर-नैर्ऋत्ययम-अग्नि-पवन-नगेश-नागेश-गरुड़-और किन्नर हैं सर्वत्र आप विराजमान हो रहे हैं ॥४१॥

नमामि ते देव पदारविन्दयोः नागत्मजा मानसराजहंसयोः ॥
क्षमस्व मे ऽज्ञानकृतं त्वयि प्रभो सुतत्व मल्पज्ञतया दयानिधे ॥४२॥

अर्थः—मैं आपके उन चरणों में बार बार प्रणाम करती हूँ जो सदा भगवती पार्वती के मनमन्दिर में निवास करते हैं हे भगवन् दयानिधे मैंने अज्ञान से आप को अपना पुत्र मान लिया था मेरे इस अपराध को क्षमा करो ॥४२॥

इतीरयित्वा विरता सुलक्षणा ततः प्रपन्नार्तिहरो हरोऽवदत् ॥
रहस्य मस्याम्ब न भेद्य मद्भुतं सुरै स्वेद्यस्य जनान्तरे त्वया ॥४३॥

अर्थः—जब माता इस प्रकार कह कर चुप हो गई तो भगवान् बोले, हे माता इस रहस्य को देवता भी नहीं जानते अतः तुम्हें किसी दूसरे व्यक्ति के पास इस भेद को नहीं खोलना चाहिऐ ॥४३॥

ततः प्रबुद्धा जननी जनान्तरात् निवेदयन्नो सुरहस्य मात्मनः ॥
विवेद तत्वं निखिलं हि नानकः प्रसन्न कान्त्या न च भाषणादिभिः ॥४४

अर्थः—इसके अनन्तर माता जाग उठीं उन्होंने इस अद्भुत स्वप्न को किसी से नहीं कहा परन्तु श्री नानक देव जी उनके खिले हुए मुखमण्डल को देखकर बिना कहे ही इस रहस्य को कुछ कुछ समझ गये माता सुलक्षणी के स्वप्न देखने वाली वि० सं० १५५३ की कार्तिक वदी१५ दीवाली की रात थी ॥४४॥

सुविक्रमे रामबाणे बाणचन्द्र समान्विते ॥
माघमासे दर्शतिथ्यां श्रीचन्द्रो भगवान् गुरुः ॥४५॥

अर्थः—विक्रिमी सं० १५५३ माघ वदी अमावस्या के दिन बालरूप श्री गुरु श्रीचन्द्र जी के पास ।.४५॥

अथैकदा कोऽपि दरिद्र आगतो बुभुक्षितोऽयाचत भोजनं शिशुम् ॥
स चन्द्रमौलि चलकुण्डलोऽप्रसास्मिताननो मुष्टिमितान् चणान् ददौ॥४६॥

अर्थः—कहीं से थका माँदा भूखा एक हिन्दू भिखारी आया उसने कुछ खाने के लिये भिक्षा माँगी सुनते ही भगवान् श्रीचन्द्र जी भाग कर घर में गये और मुस्कराकर एक मुट्ठी चने की लाकर उसकी झोली में डाल दी ॥४६॥

निजालयं प्राप्य यदा क्षुधाकुलो विलोकयामास विवृत्य पोटलीम् ॥
स तत्र मुक्ता न चणा न लोकतः बुभुक्षितश्चापि परां मुदं ययौ ॥४७॥

अर्थः—जब घर जाकर उस भिखारी ने भिक्षा की झोली को खोल कर देखा तो चने के स्थान में मोती मिले, यह देख वह भिखारी अत्यन्त खुश हुआ ॥४७॥

इयं कथा ग्रामजनेषु सत्वरं विसृत्वरी दूरतरं तथा गता ॥
यथोदितस्योऽधवस्य पावनी विकाशयन्ती कुमुदानि कौमुदी ॥४८॥

अर्थ—यह कथा (घटना का समाचार) गाँव भर में झटपट फैल गया, दूर दूर तक इस की चर्चा चलने लगीं, जैसे नवोदित चन्द्रमा की चान्दनी कुमुदों को खिलावी हुई सर्वत्र फैल जाती है, उसी प्रकार भगवान् की कीर्त्ति सर्वत्र फैल जाती भई ॥४८॥

अथन्यदा वञ्चक एक आययौ अयाचताऽमु वलयं करस्थितम् ॥
यथेच्छदानादपि लोभसंकुलः परं छलेनाऽपजहार कङ्कणम् ॥४९॥

अर्थ—एक दिन एक ठग आया उसने भगवान् के हाथ में पड़े हुये कङ्कण को मांगा भगवान् ने उसे एक हाथ का उतार के दे दिया यथेच्छ दान मिल जाने पर भी अत्यन्त लोभ के कारण उसने भगवान् के दूसरे हाथ के कङ्कण को भी अपने मन से उतार लिया ॥४९॥

स चन्द्रदेवस्य तपः प्रभावतो गृहं गतो लोचन-हीनतां गता ॥
निवृत्य साष्टाङ्गनतं पदाब्जयोः सलोचनं तं विदधौ दयानिधिः ॥५०॥

अर्थ—वह जब घर आया तो अन्धा हो गया यह सब भगवान् की तपस्या का ही प्रभाव समझ कर वह ठग वापिस आकर भगवान् श्रीचन्द्र जी के चरणों में गिर पड़ा और अपने अपराध की क्षमा मांगी तब आशुतोष भगवान् ने पुनः उसके नेत्रों में प्रकाश होने की कृपा प्रदान की ॥५०॥

इयं च गाथा सहसा प्रसारिणी दिगन्तरं गन्तुमना मनस्विनः ॥
जलत्वमापद्य शनैःशनैः नवां दिने दिने कीर्त्तिलता मवर्धयत् ॥५१॥

अर्थ—यह घटना दिगदिगन्तर में फैल गई तथा जल स्वरूप बनकर प्रतिदिन भगवान् श्रीचन्द्र की कीर्त्तिलता को बढ़ाने लगी ॥५१॥

अन्धोऽपि स्वगृहं गत्वा नेत्रसौख्य मवापह ॥
एवंचरित्रं परमं यो वक्ति धरणी तले ॥५२॥
सर्व सौख्य मवाप्नोति ह्यन्ते स्वर्गं गमिष्यति ॥
रोगी नैरोग्य माप्नोति बद्धो मुच्यते वन्धनात् ॥५३॥

अर्थ—अंधे को नेत्र मिल गये यह परम पवित्र चरित्र जो संसार में पढ़ेगा वह सर्व सुख पाकर स्वर्ग में जायेगा रोगी रोग से छुट जायेगा बांधा हुआ बन्धन से छुट जायेगा ॥५२-५३॥

अधनो धनमाजश्च ह्यपुत्रः पुत्रतां ब्रजेत् ॥
निर्जीवको जीविकावान् अविद्यः पण्डितो भवेत् ॥५४॥

अर्थ—दरिद्री धनी हो जायेगा अपुत्री पुत्रवान् हो जायेगा निर्जीवका वाला जीवका पायेगा मूर्ख विद्वान् हो जायेगा ॥५४॥

लोभात्प्रतापी प्रबलस्तपस्वी विद्वान् शिवाराधन-तत्परश्च ॥
श्री रावणो वेद विवेकदक्षो लंकापति नष्टतमस्तु जातः ॥५५॥

अर्थ—शिवाराधन में तत्पर समस्त वेदों का जानने वाला प्रतापी लंकाधिपति रावण केवल लोभ से मारा गया ॥५५॥

मातरं पितरं बन्धुं गुरुं श्रीमन्तमेवच ॥
विवेक रहितो लोभी हन्ति हन्ति निरन्तरम् ॥५६॥
मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा सुहृत्तमम् ॥
लोभाकान्तो नरो हन्ति स्वामिनम्वा सहोदरम् ॥५७॥

अर्थ—लोभाक्रांत मनुष्य माता-पिता-भाई-बन्धु-पुत्र-मित्र-गुरु-स्वामी सबको मार डालता है ॥५६॥५७॥

लोभाच्च कंसः पितरश्च कारा गारे वबन्धेति विवेक हीनः ॥
श्री देवकीजान् शुभभागिनेयान् जघान पुत्रान मितप्रभावान् ॥५८॥

अर्थ—लोभ से कंस ने अपने पिता को कारागार में डाल दिया और स्वकीय भगनी देवकी की अनेक सन्तानों को मार डाला ॥५८॥

योद्धा च दुर्योधन नामधारी लोभाच्च हत्या मधिकां चकार ॥
सर्वाणि पापानि भवन्ति लोभात् स एव पापस्य प्रधान हेतुः ॥५६॥

अर्थ—दुर्योधन ने राज्य के लोभ में आकर बड़ी २ हत्यायें कीं यह सर्व अनर्थ का कारण लोभ ही है ॥५६॥

अनुष्ठते चौलविधौ विधानतो बभौ विशेषेण विशेष बालकः ॥
विमुक्तरागस्य कलावतः छविं पुपोष देहेन विवृद्ध कान्तिना ॥६०॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र का चौल कर्म (मुंडनसंस्कार) विधि पूर्वक सम्पन्न हुआ उस दिन से आपके शरीर से निर्मल चन्द्र की कान्ति सी छटा छिटकने लगी ॥६०॥

ततो व्यतीतेषु दिनेषु केषुचित् चमत्कृतिं चंद्रकला धरो हरः ॥
हरिस्तु तन्वन् तनयत्व मागतः सुलक्षणायाः शुभलक्षणान्वितः ॥६१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् महाराज साक्षात् शिव अवतार थे केवल मात्र मातासुलक्षणी के भावानुसार उनके पुत्र बने थे कुछ दिन व्यतीत होने पर वे अपना चमत्कार दशों दिशाओं में फैलाने लगे ॥६१॥

श्रीचन्द्रं चन्द्रकान्तं निखिल गुण गणैः सेवितं काम्य कम्यम् ।
सर्वाङ्गे भव्य लक्ष्माङ्कितममल जटा जूट रम्या ननाब्जम् ॥
अङ्के संवेश्य माता सुरधुनिपयसा पूत मूर्धानमस्य—
सऽऽघ्रायाऽऽलिङ्ग्य पुत्रं मुकुलित नयना स्नेहसान्द्रं चुचुम्ब ॥६२॥

अर्थ—चंद्रमा के सदृश्य देह वाले, सम्पूर्ण गुणों से मण्डित, सुन्दर सुन्दर चिन्हों से चिन्हित, जटा जूट के कारण आपके मुख कमल की शोभा दुगुनी हो रही है आपको पूज्य माता जी ने गोदी में बैठा कर अलिंगन किया और गंगा जल से पवित्र आपके मस्तक को सूंघा तथा अत्यंत स्नेह भाव में विभोर हो आपका मुख चुम्बन किया ॥६२॥

इति श्री साधुबेलतीर्थे सप्तनद-सिंधु, गंगा-मध्य-वर्त्ति-सक्खरनगरे, श्रीमदुदासीन वर्य परमहंसावतंस-ब्रह्मनिष्ठ-निखिलशास्त्र-निष्णात-योगिराज-श्रीसद्गुरु १००८ स्वामी बनखंडीदेव-चरणकमल-चंचरीकायमान-मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्दोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे माता स्वप्नस्तुति बाललीला वर्णनं सकल-कलि-कल्मष नाशनी तृतीय किरणसम्पूर्णता मधिगता ॥३॥

॥ चतुर्थ किरण प्रारम्भः ॥

वैक्रमे श्री वेद बाणे बाण चन्द्र समन्विते ॥
भाद्रशुक्ल द्वितीयायां श्रीचन्द्रो भगवान् गुरुः ॥१॥
मातामहे मूलचन्द्रै रानीतः सुलतानपुरे ॥
मात्रा च सहितो वीर बाल लालीत्य वृद्धये ॥२॥
पक्खो ग्राम महादिव्यो राज्यवाहक संयुतः ॥
उवास भगवान् तत्र देव देवो महेश्वरः ॥३॥

अर्थ—जगद्गुरु श्रीचंद्र भगवान् वि० सं० १५५४ भाद्र शुक्ला द्वितीया को अपने नाना मूलचंद तथा नानी चन्दो रानी के साथ, अपनी माता सुलक्षणी जी कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मीचंद के सङ्ग सुलतानपुर से पक्खो ग्राम नाना के घर आते भये ग्रामनिवासी अति तेजस्वी आपका रूप देख कर साक्षात् भगवान् शिव समझते हुये प्रसन्न हो गये ॥१-२-३॥

श्रीचन्द्रदेवस्य विशाल मूर्ति रूपं तथा पेशल सान्निकटयम् ॥
दृष्ट्वा च तद्ग्राम्यजनाः समग्राः प्रसन्नता मापु रधीर वीराः ॥४॥

अर्थ—श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की मनमोहक दिव्य मूर्ति के मुख का सौन्दर्य पीताम्बर पहिरे हुए पैरों में सुन्दर जूतियां पड़ी हैं जिनके पैंजनी और किंकिणी की दिव्य आभा भुजाओं में सुन्दर २ पहुँची बिजायठ अङ्ग अङ्ग में सुन्दर जड़ाऊ आभूषण जगमगाते हुए दर्शन करनेवालों के मन का समूह अज्ञान हरण करने वाले धीर वीर लोग प्रसन्न हो हो अपने जन्म सफल कर रहे हैं ॥४॥

मातामहायश्रुति पूजिताय श्रीमूलचन्द्राय च धन्यवादः ॥
दत्तश्च सद्वेद सुमन्त धीरैः धन्यं पुरं यत्र समागमोऽस्य ॥५॥

अर्थ—गांव के वेद पाठी ब्राह्मण तथा और लोगों ने मेहता मूलचंद जी को मन्त्रों के द्वारा धन्यवाद दिया ॥५॥

आलिलिङ्ग चिरं सोत्कं सुततां प्रणतां सुताम् ॥
पप्रच्छाऽनामयं भूयो विश्रान्तां हृष्टमानसाम् ॥६॥

अर्थ—प्रणाम करती हुई अपनी प्यारी पुत्री के सहित पुत्र को उत्कंठा पूर्वक आलिंगन किया फिर थोड़ी देर बैठने के अनन्तर आनन्द कुशल पूछा ॥६॥

अङ्के संवेश्य दौहित्रौ मूलचन्द्रोऽतिहर्षितः ॥
दधे लोकोत्तरां शोभां भास्वन् दिव्येन तेजसा ॥७॥

अर्थ—नाना जी ने अपने दोनो धेवतों (दौहित्र) को गोद में लिया उस दिव्य तेज के कारण आप की एक अलौकिक शोभा होगई जिसे देख कर सब के मन प्रसन्न होगये जैसे शरच्चंद्र को देखकर चकोर समूह चकित हो जाता है ॥७॥

आनीय ऽभ्यन्तरात् सद्यो भोजनं जनं संकुलात् ॥
कारयामास दौ स्नेहात् नानाव्यञ्जन संयुतम् ॥८॥

अर्थ—नाना मूलचन्द ने परम स्नेह से मनुष्यों से भरे घर के अन्दर से नाना प्रकार की मिठाइयाँ मँगवाईं और अपने ही हाथ से उन दोनों दोहित्रों को खिलाईं ॥८॥

कर्णाकर्णिकया प्राप्तः समाचारः प्रतिग्रहम् ॥
दिव्य-देह-धरो देवः श्रीचन्द्रोऽत्र समागतः ॥९॥

अर्थः—कानों कान यह समाचार बिजली की तरह सारे ग्राम में फैल गया कि भगवान् श्रीचन्द्र जी-जो अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी हैं वह हमारे यहाँ पधारे हैं ॥९॥

श्रुत्वा सर्वे समायाता द्रष्टुं चन्द्रं महाद्युतिम् ॥
आबाल वृद्धाः सोत्कंठाः कण्ठार्पितात्मजाः स्त्रियः ॥१०॥

अर्थः—यह सुनते ही सारा गाँव दिव्य दर्शन भगवान् श्रीचन्द्र को देखने के लिये चल पड़ा जिसमें सभी बाल वृद्ध सम्मिलित थे कई स्त्रियाँ तो बच्चों को गोद में लिये ही भाग पड़ीं ॥१०॥

यथा ज्ञानं यथाभावं यथावस्थं यथारुचि ॥
ददृशु ते महादेवं श्रीचद्रं चन्द्र सन्निभम् ॥११॥

अर्थः—उन सबों ने अपनी अपनी रुचि के ज्ञान के भाव के और अवस्था के अनुसार चन्द्र दर्शन के सदृश्य श्री गुरु श्रीचन्द्र को देखा ॥११॥

ज्ञानिभिः सज्जनैः साक्षात् नागेन्द्रतनयां विना ॥
गंगातरङ्ग-संगेन मण्डितोऽसौ विभावितः ॥१२॥

अर्थः—ज्ञानी और साधुओं ने उन को पार्वती से रहित गंगातरंग से विभूषित साक्षात् महादेव समझा ॥१२॥

वृद्धाभिः पौत्र भावेन भावितः स्निग्ध-चक्षुषा ॥
मध्यावस्थाः स्त्रियो देव मेनिरे तनयं निजम् ॥१३॥

अर्थः—अति बूढ़ी स्त्रियों ने अत्यन्त स्नेह के साथ उन्हें अपना पौत्रवत् समझा तथा बीच की उमर वाली स्त्रियों ने उनमें पुत्र की भावना की ॥१३॥

अन्ये च पुरुषाः चन्द्र इन्द्र सूर्य्येन्दु वन्हिषु ॥
एकोऽयमित्य मन्यन्त रूपदर्शन विस्मिताः ॥१४॥

अर्थः—कई लोग आप के विलक्षण तेज और ओज को देख कर विस्मित हुए इन्द्र-सूर्य्य-चन्द्र-और अग्नि में से कोई एक ही हैं ऐसा समझने लगे ॥१४॥

बाला बालवयु दृष्ट्वा हृष्टाः सजातसंस्तवाः ॥
भ्रातरं निज मैक्षन्त मुग्धा मुग्धश्चलोचनाः ॥१५॥

अर्थः—छोटे छोटे अत्यन्त भोलेभाले बालकों ने उन्हें अपना सखा सरीखा समझ कर सम्बन्ध जोड़ लिया और कोई २ तो अपना भाई मानने लगे ॥१५॥

गोवत्सा वत्सलं देवं स्तन्यं त्यक्त्वा व्यलोकयन् ॥
गावो हम्मा रवोपेताः परितः तस्थु सन्मुखाः ॥१६॥

अर्थः—बछड़ों ने दुग्ध पीना छोड़कर उन्हें बड़े स्नेह से देखा और गायें रम्भा शब्द करती हुईं श्रीचन्द्र भगवान् के चारों और मुख उठा उठा कर खड़ी होगईं ॥१६॥

शुक्लवर्णाः शुक्लवर्णं निर्भया भयवर्जितम् ॥
गर्जितै जितकामं ते वृषभा वृषभध्वजम् ॥१७॥

अर्थः—जो जैसा था उसे भगवान् श्रीचन्द्र जी वैसे ही दिखाई दिये गौरवर्ण वालों ने उन्हें अत्यन्त गौरवर्ण निर्भय व्यक्तियों ने अत्यन्त निर्भीक गवेन्द्रोंने कामारि महादेव के सदृश्य समझा और सुखी हुये ॥१७॥

नीलकण्ठा नीलकण्ठं सोत्कण्ठाः कण्ठकेकया ॥
रम्या रम्य मप्रच्छंश्च स्वागतं गतभीतयः ॥१८॥

अर्थः—नीलकण्ठों ने नीलकण्ठ और अति सुन्दर प्राणियों ने अति सुन्दर समझ कर निस्संकोच भाव से उनका कुशल मङ्गल पूँछ दर्शन कर अपना जीवन सफल बनाते भये ॥१८॥

ब्रह्मानन्दमये तस्मिन् समये विस्मयान्विता ॥
श्रीचन्द्र ग्रामणी प्राह हितेरन्धाव नामकः ॥१६॥

अर्थ:—उस समय ब्रह्मानंद के आनन्द में मग्न हो अत्यन्त आश्चर्य में डूब कर चौधरी हितेरन्धावा उस ग्राम का निवासी जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से कहने लगा ॥१६॥

शैशवेऽपि शिवस्येव प्रतिभा प्रतिभाति ते ॥
संभावयामि कामारिं भवन्तं भगवन्नहम् ॥२०॥

अर्थ—हे भगवन् आप की बिलक्षण प्रतिभा इतनी छोटी आयु में भी महापुरुषों को मात कर रही है मैं अपने हृदय से समझता हूँ कि आप साक्षात् कन्दर्प मर्दन महादेव हैं ॥२०॥

कौमुदीव मुदा दात्री कीर्त्ति स्तव विभो पुरा ॥
आगन्तुक जनेभ्यश्च मूलचन्द्रादपि श्रुतः ॥२१॥

अर्थ:—चाँद की चाँदनी के समान सब को आनंद देने वाली आप की कीर्त्ति को मैं आने जाने वाले लोगों से सुना ही करता था और कई बार मेहता श्रीमूलचंद जी ने भी आप की बड़ी प्रशंसा की थी ॥२१॥

अधुना तु तवानेन दर्शनेन विशेषतः ॥
कृतार्थोऽस्मीति महाभाग सुतरामात्मसात्कुरु ॥२२॥

अर्थ—परंतु आपके दर्शन आज स्वयं ही करके विशेष कृतार्थ हो रहा हूँ अब आप मुझे अवश्य अपनायें ॥२२॥

अनुशाधि प्रपन्नोऽस्मि कायेन मनसा गिरा ॥
उत्तरेयं विनाऽऽयासं येनाहं भवसागरम् ॥२३॥

अर्थ:—मैं मन वाणी और कर्म से आप की शरण में हूँ आप मेरे को उपदेश करें जिससे मैं अनायास इस संसार समुद्र को पार कर जाऊँ ॥२३॥

यदि स्यात् विद्यया वृद्धो वालोऽपि शुकवद्गुरुः ॥
यदि न स्यात् तया वृद्धः सितकेशोऽपि बालकः ॥२४॥

अर्थ:—आप आयु के लिहाज से कोई संकोच न करें कि मैं वालक हूँ आप बूढ़े हैं विद्या से वृद्ध ही गुरु हो सकता है जैसे शुकदेव जी गुरु हुऐ हैं. अन्यथा पके केशों वाला भी बालक ही है ॥२४॥

काल वृद्धा बालवृद्धा न वृद्धा ज्ञानतो यदि ॥
नूनं ते बालका ज्ञेया ज्ञान वृद्धो मतोऽधिकः ॥२५॥

अर्थः—एक काल (आयु) वृद्ध होते हैं दूसरे बालवृद्ध विद्या से हीन काल वृद्ध भी बालक ही है कारण कि-ज्ञान वृद्ध को ही शास्त्रों ने सर्वश्रेष्ठ और वृद्ध माना है ॥२५॥

क्रीडंश्च बालकैः सार्धं प्रह्लादः पूर्वसंस्कृतः ॥
मोक्षोपदेशं बाल्येऽपि चकार सात्वतां वरः ॥२६॥

अर्थः—भक्तश्रेष्ठ प्रह्लाद जी ने बालकों के साथ खेलते हुऐ छोटी आयु में ही उन्हें मोक्षोपदेश दिया था यह सब जन्मान्तरीय संस्कारों का ही प्रभाव था जो उनकी विलक्षण बुद्धि हुई थी ॥२६।

कल्पान्तरज्ञः कपिलो देवहूतिं स्वमातरम् ॥
शैशवे बोधयामास सांख्यंशास्त्रं सविस्तरम् ॥२७॥

अर्थः—सर्वज्ञ महामुनि कपिल देव उदासीन जी ने भी अपनी माता देवहुती जी को बाल्यावस्था में ही विस्तारपूर्वक सांख्यशास्त्र का उपदेश दिया था ॥२७॥

तद्वत्त्वमपि नो धर्म्मं मुपदेष्टु मिहार्हसि ॥
न जानीमः स्वयं तत्त्वं विचित्रा धर्म्मपद्धति ॥२८॥

अर्थः—हे भगवन् उसी प्रकार आपभी हमें हिंदू धर्म का तत्त्व बतलायें कारण कि हिन्दुओं के धर्म्म का तत्त्व अति गहन है हमारी उस में आपके समझाये वगैर कोई गति नहीं हो सकती है ॥२८॥

विद्वांसोऽपि न जानन्ति धर्म्मतत्त्वं यथार्थतः ॥
शास्त्राभ्यास विहीनानां ग्रामीणानान्तु का कथा ॥२९॥

अर्थ—विद्वान् लोग भी हिन्दू धर्म्म के तत्त्व को ठीक ठीक नहीं जान सके हम तो एक अनपढ़ ग्रामीण जनता हैं इसलिये हम हिन्दू धर्म्म के तत्त्व को कैसे जान सकते हैं ॥२९॥

पुराणे नारकादीनां गारुड़े श्रूयते कथा ॥
मुखादपि च वृद्धानां विचित्रा भयदायिनी ॥३०॥

अर्थः—गरुड़ पुराण में नरकों की बड़ी भयंकर कथायें सुनने में आती हैं और बड़े बूढ़े भी कुछ ऐसी ही विचित्र विचित्र कथा सुनाया करते हैं ॥३०॥

यां श्रुत्वा हृदयं देव कम्पये पापकर्मणः ॥
को धर्म्मः किञ्च पापं स्यात् न जानीमो महामते ॥३१॥

अर्थः—जिस को सुनकर हृदय एक दम कापने लगता है हे महामते धर्म्म क्या वस्तु है पाप क्या चीज है इस का हमें कुछ ज्ञान नहीं है सो आप कृपा कर इसका निर्णय हमें सुनायें ॥३१॥

भवादृशा महात्मानो लोके कल्याणकारिणः ॥
मुक्तस्वार्था जयन्ति ते ब्रह्मनिष्ठा विकल्मषाः ॥३२॥

अर्थः—आप जैसे लोक कल्याणकारी निस्वार्थ ब्रह्मनिष्ठ वीतराग तेजस्वीपूर्ण महापुरुष ही धन्य हैं ॥३२॥

अतो वयं समायाता उत्सुका वदनात्तव ॥
उपदेशं स्वधर्म्मस्य श्रोतुं श्रुतिविदां वर ॥३३॥

अर्थः—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हम सब आपके श्रीमुख से हिन्दू धर्म्म के तत्त्व को सुनने के लिये अत्यन्त उत्कंठित हो रहे हैं और आप की कृपा चाहते हैं ॥३३॥

इत्युक्त्वा प्राञ्जलि स्तस्थौ चकोर श्चन्द्रकं यथा ॥
पश्यन् निश्चलयां दृष्ट्या वृद्धोऽसौ ग्रामनायकः ॥३४॥

अर्थः—चौधरी हितेरन्धावा जो गाँव का नायक तथा वृद्ध था ऐसा कह कर हाथ जोड़ कर भगवान् श्रीचन्द्र की ओर निर्निमेष एक टक दृष्टि से देखने लगा जैसे कि चकोर चन्द्रमा को प्यासी आँखों से देखता है ॥३४॥

चित्रिता इव सर्वेऽपि जाता एकाग्रमानसाः ॥
स्वभावोऽयं हि जीवानां प्रधानानुकृतिस्तु यत् ॥३५॥

अर्थ—उस समय सब लोगों का मन एकाग्र हो गया था वे सब चित्र लिखित से बैठे रहे यह सब प्राणियों का स्वभाव है कि प्रधान का ही अनुकरण करते हैं ॥३५॥

श्रीचन्द्रो भगवान् ज्ञात्वा जिज्ञासुं ग्राम नायकम् ॥
अन्यांश्च सर्वान् धर्म्मस्य तत्त्वं बोद्धुं समुत्सुकान् ॥३६॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र जी चौधरी तथा दूसरों को अधिकारी (जिज्ञासु) जानकर जो कि हिन्दू धर्म के तत्व के जानने के लिए अति उत्कंठित हों जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी की ओर देख रहे हैं ॥३६॥

कौमुदी मिव तद्दृष्टिं सर्वेषु विनिपातयन् ॥
अब्रवीच्च गम्भीरार्थं धर्म्मं गम्भीरया गिरा ॥३७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी उन सब पर कौमुदी के समान अपनी शीतल दृष्टि से निरीक्षण करते हुए गम्भीरता पूर्वक अपने हिन्दू धर्म्म के अतिगहन तत्त्व का प्रतिपादन करने लगे ॥३७॥

विचित्रस्यापि धर्म्मस्य विरुद्धस्य परस्परम् ॥
तत्त्वं समास-व्यासाभ्यां श्रूयतां सावधानतः ॥३८॥

अर्थ—निस्सन्देह हिन्दू धर्म्म का तत्त्व विचित्र है परस्पर विरुद्ध सा प्रतीत होता है अस्तु आप लोग सावधान (एकाग्रचित्त) होकर संक्षेप के साथ सविस्तार से धर्म्म के वास्तिवक तत्त्व को श्रवण करिये ॥३८॥

यथा नद्यो नदाः कुल्याः प्रणाल्यो निर्झरास्तथा ॥
ऋजु-वक्र-पथैरन्ते मिलिता यान्ति सागरम् ॥३९॥
तथा सर्वाणि शास्त्राणि सर्वे धर्म्मा मतानि च ॥
परे ब्रह्मणि लीयन्ते तत्र भेदो न कश्चन ॥४०॥

अर्थ—जैसे नदियें, नद कुलें, प्रनालियें, और झरने सीधे टेढ़े रास्तों से सागर में जा मिलते हैं फिर उनमें कोई भेद नहीं रह जाता उसी प्रकार सारे शास्त्र, सारे धर्म्म, और सारे मत-मतान्तर अन्त में परब्रह्म में लीन हो जाते हैं उनमें परस्पर कोई भेद नहीं रह जाता ॥३९-४०॥

सर्वत्र भगवद्बुद्धि विधेया मोक्षकांक्षिभिः ॥
सर्वं विष्णुमयं विश्वं समासेनाऽवधार्य्यताम् ॥४१॥

अर्थ—मोक्ष कांक्षियों को चाहिये कि वे सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखें, यह सारा संसार भगवान का रूप है यही संक्षेप में हिन्दुओं के धर्म का तत्व है ॥४१॥

व्यासेन विविधा धर्म्मा भिन्ना इव न भिन्नकाः ॥
अल्पबोधस्य भासन्ते सर्वज्ञस्य न कर्हिचित् ॥४२॥

अर्थ—अब विस्तार पूर्वक आप सुनें अनेक धर्म्म हैं जो कि भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं वास्तव में भिन्न नहीं हैं अल्पज्ञों को ही भिन्न भिन्न भासमान होते हैं सर्वज्ञों को नहीं ॥४२॥

सांख्या विवेकमापन्ना योगिनो योग तत्पराः ॥
मीमांसिकाः क्रिया लग्नाः काणदा अनुवादिना ॥४३॥
बौद्धा बुद्धं जिनं जैनाः शिवं शैवा हरिं परे ॥
शक्तिं शाक्ता रविं सौर्य्याश्चन्द्रं चान्द्रा गुहं परे ॥४४॥

अर्थ—सांख्य प्रकृति पुरुष प्रत्यक्ष में योगी योग में मीमांसक कर्म में काणाद परमाणुओं में, बौद्ध बुद्ध में, जैन जिन में, शैव शिव में, वैष्णव विष्णु में शाक्तिक शक्ति में सौर्य्य सूर्य्य में, चान्द्र चन्द्र में, गुह्चक गुह में अपनी अपनी रुचि के अनुसार तत्पर हैं ॥४३-४४॥

गणेशं भैरवं काली मिन्द्र मग्निं प्रचेतसम् ॥
राजराजं यमं वायुं यक्ष-गान्धर्व-किन्नरम् ॥४५॥
विश्वे देवान् वसून् साध्यान् तुषित भास्वरान् तथा ॥
उपासते जनाः सर्वे यथा भावं यथागुणम् ॥४६॥

अर्थ—कई एक लोग अपने अपने स्वभाव और गुणों के अनुकूल गणेश भैरव काली इन्द्र अग्नि वरुण कुबेर यम वायु यक्ष गन्धर्व किन्नर विश्वेदेव वसु साध्य तुषित और भास्वरों की उपासना अपने अपने भावानुसार करते हैं ॥४५-४६॥

श्रेष्ठोऽस्मी त्यभिमानेन विवदन्ते परस्परम् ॥
अज्ञान चेष्टितं तत्तु त्याज्यं कल्याण काङ्क्षिभिः ॥४७॥

अर्थ—वे सब अपने अपने को श्रेष्ठ समझकर झगड़ा कर रहे हैं जो उचित नहीं है, यह सब अज्ञान के कारण हो रहा है कल्याण की कामना करने वालों को सदा इन झगड़ों से दूर रहना चाहिऐ ॥४७॥

विवाद स्तावदे वास्ते यावज्ज्ञानं मजायते ॥
अन्धकारो भवेत्तावत् यावन्नोदेति भास्करः ॥४८॥

अर्थ—तभी तक मतमतान्तरों का झगड़ा रहता है जब तक ज्ञान का प्रादुर्भाव होता जैसे सूर्य्योदय होने पर अन्धकार नहीं रहता ॥४८॥

वेदान्ते सर्ववादानां समुद्रे सरितामिव ॥
एकता जायते भूयः पार्थक्यं नास्ति किञ्चन ॥४९॥

अर्थ—जैसे सब नदियाँ समुद्र में मिल कर एक हो जाती हैं वैसे ही सब वाद वेदांत में मिलकर भेद भाव खो बैठते हैं आपस में कोई अंतर नहीं रहता ॥४९॥

किन्तु सर्वस्य सर्वत्र नाधिकारो विराजते ॥
वर्णाश्रम क्रमेणैव लभ्यते परमं पदम् ॥५०॥

अर्थ—यह सब कुछ होते हुऐ भी सब का सर्वत्र अधिकार नहीं हैं वर्णाश्रम के अनुसार ही परमपद मोक्ष प्राप्ति का साधन प्राप्त करना है मनमाने आचरण से नहीं ॥५०॥

राज्ञा यथा नियोज्यन्ते यथायोग पदे जनाः ॥
तथा धात्रा नियुक्तानि भूतानि च प्रथक् प्रथक् ॥५१॥

अर्थ—जैसे राजा लोग यथा योग्य व्यक्तियों को तत्तत्पदों पर नियुक्त करते हैं वैसे ही विधाता ने भी अलग अलग प्राणियों को गुणकर्म विभाग की योग्यता अनुसार कर्मक्षेत्र नियुक्त किया है ॥५१॥

इन्द्रियाणि यथा काये स्वां स्वां हि कुर्वते क्रियाम् ॥
वैपरीत्यं भवेत्तेषां महानर्थस्य कारणम् ॥५२॥

अर्थ—जैसे शरीर की प्रत्येक इन्द्रियाँ अपना अपना काम करती हैं यदि उन में परस्पर उलटफेर हो जाये तो महा अनर्थ खड़ा हो जाता है ॥५२॥

एवं विप्रादयो वर्णा विभागेन व्यवस्थिताः ॥
आश्रमा अपि वर्णानां ब्रह्मचर्य्यादय स्तथा ॥५३॥

अर्थ—इस प्रकार विप्रादि वर्णों के चार विभाग की व्यवस्था की गई है तथा उसमें भी ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों का निर्माण किया गया है ॥५३॥

वर्णधर्म्मा विभाज्यन्ते समासेन क्रमेण च ॥
श्रृणुध्वं श्रद्धयोपेताः सावधानेन मानसा ॥५४॥

अर्थ—अब हम वर्ण धर्मों का विभाग पूर्वक वर्णन करते हैं आप मन को एकाग्र कर परम सावधानता से सुनें ॥५४॥

स्वाध्यायोऽध्यापनं शान्तिर्यजनं याजनं यमाः ॥
अग्निहोत्रं तपश्चर्य्या दान मादान मेव च ॥५५॥
सन्तोषः शौच माचारो विषयाणां विवर्जनम् ॥
ब्रह्मनिष्ठत्व मित्येतद् ब्रह्मणानां विधिः स्मृतः ॥५६॥

अर्थ—वेद पढ़ना और पढ़ाना यज्ञ करना और कराना शांति अग्निहोत्र तपश्चर्य्या दान देना और लेना संतोष पवित्रता आचार विषय परित्याग और ब्रह्मनिष्ठ होना ये सब ब्राह्मणों के कर्म हैं ॥५५-५६॥

स्वाध्यायो यजनं दानं प्रजानां पालनं दमः ॥
शमः शौर्य्य मनाशक्तिः शौच माचार संयमः ॥५७॥

दाक्षिण्यं निरालस्यं तेजो धैर्य्यं मलोभता ॥
सौम्यताऽधृष्यता चेति क्षत्रियाणां विधिः स्मृतः ॥५८॥

अर्थ—स्वाध्याय यज्ञ दान प्रजापालन शम दम शौर्य्य अनासक्ति शौच आचार संयम दाक्षिण्य निरालस्य तेज धैर्य्य निर्मलता सौम्यता और अधृष्टता वीरता ये सब क्षत्रियों के कर्म हैं ॥५७-५८॥

स्वाध्यायो यजनं दानं गोरक्षा कृषिसेवनम् ॥
वाणिज्यं सत्य वादित्वं वैश्यानाञ्च विधिः स्मृतः ॥५९॥

अर्थ—स्वाध्याय यज्ञ दान गोरक्षा कृषि सत्य वाणिज्य आदिक वैश्य कर्म हैं ॥५९॥

त्रयाणामपि वर्णानां सेवा निश्छल-चेतसा ॥
शुद्राणाञ्च विधिरेष नान्यथा सद्गति र्भवेत् ॥६०॥

अर्थ—तीनों वर्णों की निश्छल भाव से सेवा करना शुद्रों का कर्म है इसके बिना सद्गति नहीं होती ॥६०॥

एव माश्रमधर्म्माणां व्यवस्था श्रूयतां जनाः ॥
श्रुति-स्मृत्युदिता धर्म्म्या पूर्ववद्विस्तरं विना ॥६१॥
उपनीतः समित्पाणिः शान्तो दान्तो जटो क्षमी ॥
आषाढी मेखली भिक्षु वल्कली स्थण्डिलेशयः ॥६२॥
मृगचर्माम्बरधरो भस्मी विनीतश्चाऽकुतोभयः ॥
अग्निहोत्री सदाचारी कन्द-मूल-फलाशनः ॥६३॥
अतिथेयः कृपाशीलः ऋजुर्द्रोह-विवर्जितः ॥
गुरुसेवी गोसेवी च मितभाषी प्रियंवदः ॥६४॥
त्रिसन्ध्यश्च त्रिसत्यश्च कमण्डलुधरस्तथा ॥
अनृत्त्य-गीत वाद्यश्च गन्धमाल्यादि वर्जितः ॥६५॥
अक्षमाली वीततृष्णो वीतकौतुहल स्तथा ॥
शुचि रुत्साह-सम्पन्नः स्वल्पाहार-विहारवान् ॥६६॥
ब्रह्मचारी ब्रह्मनिष्ठं गुरुं गुरुकुले वसन् ॥
उपासीत सपत्नीकं श्रोतीयं सर्वलक्षणम् ॥६७॥

अर्थ—अब श्रुति स्मृति प्रतिपादित आश्रम धर्मकी व्यवस्था संक्षेप से आप सुनें. उपनीत, समितपाणि, दांत, शांत, जटी, क्षमाशील, आशाढी, मेखली, भिक्षु, बल्कली, स्थाण्डिलेशय, मृगचर्म, भस्म धारण करने वाला, आतिथेय, कृपालु, सरल, द्रोह से रहित, गोसेवी, मितभाषी, प्रिय बोलने वाला, त्रिकाल सन्ध्याकरने वाला, तीन प्रकार का सत्य बोलने वाला (मन-वाणी-और कर्म से) कमण्डलुधारी, गीत-वाद्य नृत्य आदि से विमुख, सुगंध-चन्दन- मालादिक-शृंगार वर्धक-पदार्थों से उपराम रहने वाला, वीतराग, रुद्राक्षमाला धारी, कुतूहल-रहित, शांति-शुचि-उत्साह- शक्तिसम्पन्न, स्वल्पाहार-विहार, ब्रह्मचारी; गुरुकुल में रहता हुआ सपत्नीक-ब्रह्मनिष्ठ-गुरुकी-जो कि वेद-शास्त्रों में निष्णात हो-सेवा करे ॥६१-६२-६३-६४-६५-६६-६७॥

ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेद मथर्वणः ॥
कुलागतं च वा सर्वान् यथाकालं यथामतिः ॥६८॥

अर्थ—कुल परम्परागत एक वेद को सांगोपांग पढ़े तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद को यथाकाल यथामति पढ़े ॥६८॥

अधीत्य चतुरो वेदान् सरहस्यांश्च सव्रतान् ॥
साङ्गोपाङ्गा नसङ्कीर्णान् सगुणा ज्ञापितः सुधी ॥६९॥

अर्थ—गुरू की आज्ञा में रहता हुआ ब्रह्मचारी सरहस्य सवृत्त सांगोपांग सम्पूर्ण वेदों का विधि पूर्वक सुन्दर बुद्धि से अध्यन करे ॥६९॥

मातृदेवः पितृदेवो गुरुदेवा गृहं व्रजेत् ॥
अप्रमादी समावृत्तः मातापित्रादि सत्कृतः ॥७०॥

अर्थ—"मातृ देवोभव,, "पितृदेवो भव" "गुरुदेवोभव" "स्वाध्यान्माप्रमद," इत्यादि शिक्षाओं को ग्रहण कर, समावर्त्तन होने पर तथा माता पिता से अनुमति होकर ॥७०॥

पञ्चविंशतिवर्षीयः सवर्णां सर्वलक्षणाम् ॥
कन्यां परिणयेत् प्राज्ञः स्वस्मात् स्वलायुषंशुभाम् ॥७१॥

अर्थ—पच्चीस वर्ष की अवस्था में समानवर्णा, सुलक्षण, रूपगुणवती, पठित सोलह वर्ष अवस्था सम्पन्न वाली कन्या से पाणि ग्रहण करे ॥७१॥

गृहीभूत्वा सदाचारी सपत्नीकश्च साग्निकः ॥
आश्रम त्रयसेवी स्यात् अतन्द्रो नियतव्रतः ॥७२॥

अर्थ—गृहस्थी होकर दोनों पति पत्नी सदाचारी रहें अग्नि होत्र करें दृढवृत्त तथा आलस्य शून्य रहकर शेष तीनों आश्रमों की सेवा करें ॥७२॥

वैराग्ये सति गार्हस्थ्यं न कुर्यात् ज्ञानवान्पुमान् ॥
नैष्ठिक-ब्रह्मचारी सन् ब्रह्मनिष्ठो भवेत्कृती ॥७३॥

अर्थ—यदि पहले वैराग्य हो जाये तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश न कर ब्रह्मनिष्ठ होकर नैष्ठिक उदासीन ब्रह्म चारी रहे ॥७३॥

स्वाध्यादप्रमत्तः स्यात् न्यायाद्धन मुपार्जयेत् ॥
पञ्चयज्ञकरो नित्यं प्राणीना मविहिंसकः ॥७४॥

अर्थ—स्वाध्याय करने में प्रमाद न करे, न्याय से धन उपार्जन और संग्रह करे पञ्चयज्ञ का नितपति पालन करे, कभी किसी प्राणी को दुःख न दे ॥७४॥

ब्रह्मचारी यति र्दीनो न रिक्तोस्य ब्रजेद्गृहात् ॥
संबिभज्य भृत्येभ्यो भुञ्जीताऽनिन्दितव्रतः ॥७५॥

अर्थ—ब्रह्मचारी, यति, गरीबहिंदू' गृहस्थ के घर से खाली नहीं जाना चाहिए नित्य प्रति सेवकों में बांटकर ही भोजन करे ॥७५॥

धनं दानाय श्रेष्ठानां मध्यमानाञ्च भुक्तये ॥
अधमानान्तु नाशाय चौर भूपाल-बह्नितः ॥७६॥

अर्थ—श्रेष्ठ पुरुषों का धन दान के लिए ही होता है, मध्यम पुरुषों का धन भोग्य के लिए, नीच पुरुषों का धन चोर, राजा, अग्नि से नाश के लिए होता है ॥७६॥

नाऽपुष्पितां स्त्रियं गच्छेत् चतुर्थेऽहनि तामपि ॥
न गच्छेद्गर्भितां भार्य्यां पिशाचत्वं हि तन्मतम् ॥७७॥

अर्थ—ऋतु काल के बिना स्त्री के पास नहीं जाना चाहिये उसमें भी चौथे दिन गमन करे और गर्भवती भार्य्या के पास भी नहीं जाना चाहिए अन्यथा जाने वाला पिशाच माना गया है ॥७७॥

समुत्पाद्य सुतान्धर्म्म्यान् परिपोष्याऽवधानतः॥
सकृत्याऽध्याय सकलान् वेदान वेदपथेरतः ॥७८॥

अर्थ—धार्म्मिक पुत्रों को उत्पन्न करे, उनका पालन पोषण ठीक ठीक करे वेद मार्ग में रत हुआ उनका संस्कार कराकर सांगोपांग वेदों की शिक्षा दिलाये ॥७८॥

समावृत्तस्य पुत्रस्य भार्यायोग्यं कारयेत् ॥
सितकेशे सुतस्यापि सुतं दृष्ट्वा गृहं त्यजेत् ॥७९॥

अर्थ—पुत्र का समावर्तन संस्कार हो जाने पर उसका पाणिग्रहण करे तथा पुत्र के पुत्र का मुख देखने पर अपने केशों को सफेद देखकर घर का परित्याग कर देना चाहिए ॥७९॥

साग्निकश्च सभार्य्यश्च वनी स्यात् वन्यजीविकः ॥
यदि नेच्छेद्वनं गंतुं सूते भार्य्यां परित्यजेत् ॥८०॥

अर्थ—स्त्री के सहित वन में रहे वन के फलों से निर्वाह करे अग्नि को सदा पास रखे यदि पत्नि वन न जाये तो पुत्र के आधीन छोड़ दे ॥८०॥

त्यक्त्वा जानपदान् भोगान् कन्दमूलफलाशनः ॥
यायजुको वन्यधान्यैः आतिथ्ये तत्परः सदा ॥८१॥

अर्थ—नागरिक भोगों का परित्याग करे केवल जंगली फल पुष्पों से उदर का परिपोषण करे वन्यधान्यों से यज्ञ करे और अतिथियों का सदा सम्मान करे ॥८१॥

जञ्जपूकः चीणकायः भूशयनो द्वन्द्वान्मुनिः ॥
त्रिः स्नानः संहतकचः प्राणायाम परायणः ॥८२॥

अर्थ—निरंतर जप में लगा रहे पृथ्वी पर सोवे शीत-उष्ण-द्वंदों का सहन करे त्रिकाल स्नान करे बालों को बाँध कर रखे नित्य प्रति प्रणायाम का अभ्यास करे ॥८२॥

एकाशी मोचशास्त्राणां नित्यमध्ययने रतः ॥
तृतीयमायुषो भाग मतीय सन्न्यस्येत्परम् ॥८३॥

अर्थ—एक बार भोजन करे वेदांत का अध्ययन करे आयु के तीसरे भाग बीतने पर में संन्यास धारण करे अर्थात् साधु बने ॥८३॥

सन्न्यस्य सर्वकर्माणि मनसा वपुषा गिरा ॥
आचरेत केवलं भैक्ष्यं शरीर-स्थिति-हेतवे ॥८४॥

अर्थ—मन वाणी कर्म से सब कामों को छोड़ कर शरीर यात्रामत्र के लिये भिक्षा ग्रहण करे ॥८४॥

एकवारं सद्गृहभ्यो नान्यथानगरं व्रजेत् ॥
प्रणवस्य जपेसक्तः सर्व दापर्यटेद्वनम् ॥८५॥

अर्थ—सद्गृहस्थियों के घर केवल भिक्षार्थ ही जाये बाद में ओंकार का जप करता हुआ वन में ही घूमें शहर में न जाये ॥८५॥

निर्द्वन्द्वो निर्भयः शान्तः क्षमाशीला विमत्सरः
मुण्डितः स्वल्पवाणी को विगतेच्छो विकल्मषः ॥८६॥

अर्थ—निर्द्वन्द्व निर्भय शांत क्षमाशील विमत्सर मुण्डित मित भाषी निष्पृह बीतदोष रहना चाहिए ॥८६॥

निर्ममो निरहंकारो निसंगो नियतेन्द्रियः ॥
काषायवासा सत्त्वस्थ सर्व भूतोपकारकः ॥८७॥
जितेन्द्रियो निरालस्यो मुमुक्षुः समदर्शनः ॥
एकाकी विचरेन्नित्यं मानापमानयोः समः ॥८८॥

अर्थ—निर्मम निरहंकार निस्संग, नियतेन्द्रिय काषाय (भगवा) वस्त्रधारी। सब प्राणियों का उपकारक निरालस्य मुमुक्षु समदर्शी मानापमान में समान होकर एकाकी विचरण करे ॥८७-८८॥

धर्म्ममेतं समाश्रित्य मोक्षयाति न संशयः ॥
स्वधर्म्मस्य परित्यागात् नियतं नरकं व्रजेत् ॥८९॥

अर्थ—इस धर्म्म का पालन करने से मनुष्य अवश्य मुक्त होता है अन्यथा स्वकीय धर्म्म परित्याग करने से नरक में जाना होता है ॥८९॥

विशेषेणोदितो धर्म्म सामान्येना वधार्य्यताम् ॥
मानवानां समस्ताना मिहामुत्र सुखैषिणाम् ॥९०॥

अर्थ—जो मनुष्य इस लोग और परलोक में सुख चाहते हैं वे विशेष धर्म्मों का पालन करें सामान्य धर्म तो सबको सब प्रकार से पालन करना ही चाहिए ॥९०॥

दया दानं दमो धैर्य्यं सन्तोष शौच मार्जवम् ॥
सत्यं शान्ति सदाचारो विनयो विद्यया सह ॥९१॥

अर्थ—दया दान दम धैर्य्य संतोष शौच सरलता सत्य शांति सदाचार विनय विद्या ॥९१॥

अहिंसा ब्रह्मचारित्वं ज्ञानं विज्ञान मार्य्यता ॥
इति सप्तदशैतानि लक्षणानि समासतः ॥९२॥

अर्थ—अहिंसा ब्रह्मचर्य्य ज्ञान विज्ञान श्रेष्ठता ये सत्तरह हिन्दू धर्म्म के लक्षण संक्षेपरूप में समान्य धर्म माने गये हैं जिसका करना आवश्यक है ॥९२॥

अविरुद्धानि धर्म्माणि पावनानि मनस्विनाम् ॥
सर्वदा सर्वथा सर्वे सेवितव्यानि धर्म्मतः ॥९३॥

अर्थ—इन परम पवित्र धर्म्मों का परस्पर कोई विरोध नहीं है। सदा सब को इनका सेवन करना चाहिऐ ॥६३॥

स्व-स्व-धर्म्में सदालग्ना मनुजाः सुखभागिनः ॥
परधर्मे रता ये च पापयोनिं व्रजन्ति ते ॥६४॥

अर्थ—अपने अपने धर्म्म का यथाविधि पालन करने से ही मनुष्यों को सब प्रकार का सुख मिल सकता है। किन्तु अन्य धर्म्म का अंगीकार करने से नीच योनियों में जन्म लेना पड़ता है ॥६४॥

पितरौ नो तिरस्कुर्य्यात् गुरुं नैवापमानयेत् ॥
सेवितव्यः प्रयत्नेन सर्वदेवमयो गुरुः ॥६५॥

अर्थ—माता-पिता का कभी भी मन-वाणी-कर्म से निरादर न करे, तथा गुरु का अपमान न करे, तन-मन-धन से गुरू की सेवा करे। कारण कि गुरू सर्वदेवमय होता है ॥६५॥

अवमन्ता व्रजेत् योनिं सूकराद्यां विगर्हिताम् ॥
सत्कर्त्ता शाश्वतं यायात् परं ब्रह्म सनातनम् ॥६६॥

अर्थ—गुरूजनों का अपमान करने वाला सूकर-कूकर आदि योनियों में जाता है, और सत्कार करने वाला शाश्वत ब्रह्मपद को प्राप्त होता है ॥६६॥

अज्ञानेनान्धकारेण प्रच्छन्नस्यापि देहिनः ॥
ज्ञानदीपेन दीप्तेन प्रकाशं कुरुते गुरुः ॥६७॥

अर्थ—जब जीव अज्ञानान्धकार से अन्धा होता है। तो उस समय गुरुदेव उसको ज्ञानरूपी दीपक से प्रकाश करते हैं ॥६७॥

मोहजालनिवद्धस्य वित्ताशाभ्रन्तचेतसः ॥
नास्ति कल्पशतेनापि निस्तारो गुरूणां बिना ॥६८॥

अर्थ—मोह के दलदल में धंसे हुऐ धन की आशा से इधर उधर भटकते हुऐ प्राणी का बिना गुरू के सैकड़ों कल्पों में भी उद्धार नहीं होता है ॥६८॥

मोहगर्भाद्विनिष्कृष्य ब्रह्मजन्म प्रदो गुरुः ॥
तस्मात्सर्वेषु मान्येषु गुरोः स्थानं परं मतम् ॥६९॥

अर्थ—मोह के गर्त से निकाल कर गुरू ब्रह्मपद तक पहुँचा देता है। अतः एव सर्व माननीय व्यक्तियों में गुरू का ऊँचा स्थान है ॥६९॥

ऋते गुरो न कस्यापि ज्ञानं संश्रूयते क्वचित् ॥
नारदोऽपि सभामध्ये लेभे भूरी विमाननाम् ॥१००॥

अर्थ—बिना गुरू के आजतक किसी को भी ज्ञान नहीं हुआ, निगुरा होने से नारद जी को भी एक वार सभा में नीचा देखना पड़ा था ॥१००॥

गुरु-तल्प गतश्चन्द्रः क्षयरोगेण दूषितः ॥
तिरस्कृत्य गुरुं केन सौख्यं लब्धं जगत्त्रये ॥१०१॥

अर्थ—गुरू की शय्या पर गमन करने वाला विचारा चन्द्रमा आज तक भी क्षयरोग से नहीं छूट सका। गुरू का निरादर करने वाला प्राणी कभी भी तीनों लोक में सुखप्राप्त नहीं कर सकता ॥१०१॥

गुरोरनादरं कृत्वा देवेन्द्रस्यापि या दशा ॥
बभूव के न जानन्ति मानवा यक्षकिन्नराः ॥१०२॥

अर्थ—गुरू का अनादर करने से जो दशा इन्द्र की हुई, उस को तीनों लोकों में कौन नहीं जानता ॥१०२॥

गुरो रवज्ञया नष्टो रावणो लोक रावणः ॥
कंसो गुरु जनं बध्द्वा का दशा मगमच्छ्रुतम् ॥१०३॥

अर्थ—गुरू जनों का अनादर करने से महावली रावण समूल नष्ट हो गया, और गुरू जनों को तङ्ग करने के कारण कन्स की जो दशा हुई है, वह भी आपसे छिपी नहीं है ॥१०३॥

भीष्म-द्रोणादि-वृद्धानां गुरुणा मवमाननात् ॥
दुर्योधनो मदोन्मत्तो निधनं सानुजो ययौ ॥१०४॥

अर्थ—भीष्मपीतामह-द्रोणादि-गुरुजनों का अपमान करने से मदोन्मत्त दुर्योधन भाइयों के सहित नष्ट हो गया ॥१०४॥

तस्मात्सुखेप्सुना नित्यं निश्छलेन प्रयत्नतः ॥
गुरुः सर्वात्मना पूज्यो नापमानः कदाचन ॥१०५॥

अर्थ—अतः एव सुखेच्छु को चाहिऐ कि वह निश्छल भाव से गुरुदेव की सर्वविधि से, सेवा करे, कभी अपमान न करे तभी वेद ने आज्ञा दी है कि "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्, समित्पाणी श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" (१२ प्रथम मुण्ड के द्वितीयखण्डः) विज्ञान (ज्ञान) के जानने के वास्ते ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय ब्रह्म नेष्ठी गुरू के पास जाय ॥१०५॥

गुरुणापि सदा भाव्यं शिष्य-कल्याण-कांक्षिणा ॥
शुभञ्चाप्यशुभं सर्वं मनापृष्टो वदेत् गुरुः ॥१०६॥

अर्थ—गुरू को भी चाहिऐ कि सदा शिष्य का कल्याण चाहे । पूछे बिना पूछे, गुरू शिष्य को हित का उपदेश देता रहे अनहित से बचाता रहे ॥१०६॥

शिक्षयेत्तं सदाचारं येन शिष्यः सुखी भवेत् ॥
अधिकारानुसारेण नाधिकारं विपर्य्ययेत् ॥१०७॥

अर्थ—गुरु को चाहिए कि सदा शिष्य को सदाचार की पूर्ण शिक्षा दे, जिससे कि अधिकार का विपर्य्य न होकर भविष्य में सुखकारक हो गुरु इस बात का सदैव ध्यान रखे ॥१०७॥

काच-पात्र-गतं दुग्धं सिंह्याभिनत्ति तत्क्षणात् ॥
काञ्चने भाजने न्यस्तं तच्चातिहितकृद्भवेत् ॥१०८॥

अर्थ—अनधिकार उपदेश का महान् बुरा प्रभाव पड़ता है इसलिए अधिकारानुसार ही उपदेश देना चाहिए, जैसे सिंहनीके दूध को काच पात्र में रख दो तो झट पात्र टूट जाता है तथा स्वर्ण के पात्र में रख दो तो कुछ नहीं बिगड़ता, बड़े काम की चीज है ॥१०८॥

शिक्षयेतां सदाचारं पितरौ शैशवे शिशुम् ॥
आमे घटे कृता रेखा नान्यथा जायते कदा ॥१०९॥

अर्थ—माता पिता को चाहिए कि बच्चे को पहिली आयु में ही अच्छी अच्छी शिक्षायें देवें । कारण कि बाल्यावस्था की शिक्षा कच्चे घड़े पर की हुई रेखा की तरह स्थाई रहती है ॥१०९॥

मातृ शिक्षां विना बालः यौवने विकृतिं व्रजेत् ॥
शासितस्तु तया धर्म्मं धार्म्मिको जीवनावधिः ॥११०॥

अर्थ—माता की शिक्षा बिना बच्चा यौवन काल में बिगड़ जाता है, परन्तु माता से शिक्षित बालक आजीवन सदाचारी रहता है ॥११०॥

मन्दालसा निजान् बालान् बाल्ये ज्ञानमशिक्षयत् ॥
ऋषीणां दुर्लभं ब्रह्म लेभिरे ते स्तनन्धयाः ॥१११॥

अर्थ—पूज्यमाता मन्दालसा ने बाल्यकाल में ही अपने पुत्रों को सदुपदेश दिया था, जिसे वह छोटी उमर में ही मुनि-ऋषि-दुर्लभ ब्रह्मपद को प्राप्त करे गये ॥१११॥

रेणुका शिक्षया रामो यच्चकार भुवस्तले ॥
के पुनर्नैव जानन्ति कर्म तल्लोमहर्षणम् ॥११२॥

अर्थ—माता रेणुका की शिक्षा से जो लोमहर्षण अद्भुत काम परशुराम जी कर गये, वह भी भूमण्डल में एक आदर्श है ॥११२॥

अनसूया प्रभावेण दत्तात्रेयो जगत्त्रये ॥
विदितो ब्रह्मनिष्ठाना मग्रणी ज्ञानलोचनः ॥११३॥

अर्थ—माता अनुसूया के उपदेश से भगवान् दत्तात्रेय ब्रह्मज्ञानियों में शिरोमणि बनें ॥११३॥

कौशिल्या शिक्षितो रामो विरामो रावणश्रियः ॥
विख्यातः सप्तलोकेषु मर्य्यादा-पुरुषोत्तमः ॥११४॥

अर्थ—माता कौशल्या के उपदेश से ही राम भगवान् मर्य्यादा पुरुषोत्तम कहला गये, और समूल रावण का नाश कर सके ॥११४॥

सुमित्रा शिक्षितो वीरः सौमित्रः कुलनन्दनः ॥
मेघनाद निहन्ताऽभूत् भ्रातृभक्तो जितेन्द्रियः ॥११५॥

अर्थ—माता सुमित्रा की शिक्षा से ही जितेन्द्रिय भ्रातृभक्त, रघुवंशमणि, वीरपुंगव श्री लक्ष्मण जी महाबली मेघनाद के मारने में समर्थ हो सके ॥११५॥

सीता शिक्षा प्रभावेण सर्वविद्या कलासु च ॥
कुशलौ तौ कुशलवौ जितवन्तौ रणे हरिम् ॥११६॥

अर्थ—माता जानकी की शिक्षा के प्रभाव से ही सब विद्या और कलाओं में कुशल कुश लव ने युद्ध को जीता ॥११६॥

सेवितव्या ततो माता सर्वभावेन सर्वदा ॥
नार्यांकर्तुं मृणं शक्यं मातॄणां कल्पकोटिभिः ॥११७॥

अर्थ—अतएव माता की सेवा पुत्र को सर्वदा सर्वभाव से करनी चाहिए। यह सोलह आने सत्य बात है कि करोड़ो जन्म में भी पुत्र माता से उऋण नहीं हो सकता ॥११७॥

नोट—"यदि संसार में सच्चा प्रेम है तो माता का कोई भी पुत्र माता का दिल दुखाकर सुखी नहीं रह सकता माता के सुखी रखने पर जन्मान्तर में भी पुत्र सुखी रह सकता है।

वेदनां माता सहते प्रसवे यां सुदारुणाम् ॥
कर्तुं शक्नोति नाऽऽजीवं निष्कृतिः तस्या स्वजः ॥११८॥

अर्थ—प्रसव काल में जो दुःखदाई वेदना माता सहती है, उस का प्रतिफल क्या पुत्र चुका सका है ? अर्थात् कदापि नहीं ॥११८॥

मुच्यते स्वेन धर्म्मेण बध्यते परतोऽवशः ॥
अतो धर्म्मं निजं त्यक्त्वा नाश्रयेदपरं जनः ॥११९॥

अर्थ—अपने हिन्दू धर्म्म का पालन करने से प्राणी मुक्त हो सकता है। और दूसरे के धर्म्म से बँध जाता है, इस लिये अपने हिन्दू धर्म्म को छोड़कर प्राणी कभी दूसरे धर्म्म को अंगीकार न करे ॥११९॥

तस्मात् पतिव्रता माता शिक्षयेत् शैशवे शिशून् ॥
नान्यथा मातृभावोऽस्थाः सम्पूर्णो जायते क्वचित् ॥१२०॥

अर्थ—अतएव पतिव्रता माता को चाहिए कि शिशुपन में ही पुत्र को शिक्षित करे, इसके विना माता का अधिकार अधूरा ही रह जाता है ॥१२०॥

या या पतिव्रताः कन्याः सीताद्या भुवनेऽभवन् ॥
तास्ताः सर्वाः प्रभावेण शिक्षायाः पूज्यतां गताः ॥१२१॥

अर्थ—जितनी भी सीता प्रभृति कन्यायें पतिव्रता शिरोमणि हुई हैं वह सब मातृशिक्षा का ही प्रभाव था ॥१२१॥

माता वाथ पिता भ्राता पितृव्यो वा पितामहः ॥
शिक्षयेत् बालिकां नान्यो विधिरेषः सनातनः ॥१२२॥

अर्थ—माता, पिता, भाई, चाचा, दादा, मामा, आदि कोई भी कन्या को शिक्षा दे सकते हैं, हिन्दुओं में यही सनातन चाल है ॥१२२॥

शैशवे यौवने चान्ते पितुः पत्युः सुतस्य च ॥
सत्या धर्म्मज्ञयाऽवश्यं स्थातव्यं शाशने स्त्रियः ॥१२३॥

अर्थ—धर्म्मज्ञ कन्या को चाहिए कि शैशव में पिता की, यौवन में पति की, वृद्धावस्था में पुत्र की देख रेख में रहे ॥१२३॥

या च कन्या स्वतन्त्रा स्यात् निस्त्रपा बहुवादिनी ॥
तया कुलद्वयं नश्येत् नूनं लोकद्वयं पुनः ॥१२४॥

अर्थ—जो कन्या स्वतन्त्रा-निर्लज्जा, बहुभाषिणी होती है। उस से दोनों कुल नष्ट हो जाते हैं उसके लोक परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं ॥१२४॥

उदासीन साधुर्महाब्रह्मनिष्ठश्च सायुज्यमुक्तिप्रदाये समर्थः ॥
विना सद्गुरुं कोऽपि लोके मनुष्यो न मुक्ति प्रभाक् सत्यमेतद्वचोमे ॥

अर्थ—ब्रह्मनिष्ठ उदासीन श्रौतचतुर्थाश्रमी साधु होते हैं। जो सायुज्य मुक्ति देने वाले होते हैं बिना उनको गुरु धारण किये मुक्ति नहीं मिलती। यह बचन मेरा सत्य जानो ॥१२५॥

बिना गुरुं च यद्ज्ञानं तच्च क्षार समुद्रवत् ॥
गुरो मुखान्निस्सृतं तदमृत्तं भवतीति च ॥१२६॥

अर्थ—विना गुरु का ज्ञान खारा पानी समुद्र के समान है, वही गुरु मुख से निकलने पर अमृत सदृश्य होता है ॥१२६॥

विना सद्गुरुं जीवनं धर्म्म कर्म समग्रञ्च नष्टं प्रयातीति भावः ॥
अतो धारणीयो गुरु र्भावकैः तेन मुक्तिः सदा हस्तगा धावतीति ॥१२७॥

अर्थ—बिना देहधारी सद्गुरु धारण किये धर्म्म कर्म्म सब नष्ट हो जाता है। गुरु उपदेश से ही मुक्ति मिलती है ॥१२७॥

विचार्य्यैं तदेवं समग्रोपदेशं समाधाय चित्तं सदैवेश्वरे तु ॥
गुरुः कार्य्य एवं गुरुः कार्य्य एवं तदा तोषणान्ते जगत्यां प्रसिद्धम् ॥

अर्थ—हे चौधरी जी ! यह विचार करके गुरु धारण कर ईश्वर आराधन करो, तब तुम्हारे चित्त में शान्ति और समाधान होगा ॥१२८॥

इत्युक्त्वा भगवांश्चन्द्रः पर्जन्य इव शारदः ॥
अभिषिच्य धरा सर्वां विरराम कृतक्रियः ॥१२९॥

अर्थ—इस प्रकार भगवान् श्रीचन्द्र जी उपदेश देकर चुप हो गये, जिस प्रकार वर्षा ऋतु में वर्षा के बाद बादल कृतकार्य्य होकर शान्त निर्मल हो जाता है ॥१२९॥

श्रुत्वा च बालोन्मुखतः समग्रं महात्म्यमेतच्च सतां गुरुणाम् ॥
स चौधरी प्रेमकलाभिगद्गदः सम्प्रार्थयामास मुनीन्द्र बालम् ॥१३०॥

अर्थ—ऐसा उपदेश चौधरी सुन कर प्रेम में मग्न हो गया, और बालरूपी श्रीचन्द्र गुरु देव की प्रार्थना करने लगा ॥१३०॥

गुरु र्भवत्त्वं परलोकसिद्धये न त्वादृशो धर्म्मकला कलज्ञः ॥
विभाति सज्ज्ञान दयावशंवदो नाथ हे नाथ जगद्गुरु स्त्वम् ॥१३१॥

अर्थ—हे देव देव आप मेरे गुरु बनिये आपसे बढ़कर संसार में मेरे को सद्गुरु और कौन मिलेगा ॥१३१॥

रूप श्च ते·बालकलाभिमर्शि धर्म्मोपदेशः सनकादितुल्यः ॥
त्वमेव कृष्णो भगवान्हि रामः ते धर्म्ममूर्त्तिश्च कलेः कलायाम् ॥१३२॥

अर्थ—आप बालक होते हुए भी सनकादि उदासीन मुनियों के बराबर उपदेश दे रहे हैं, आप भगवान् राम कृष्ण के तुल्य हिन्दू धर्म्म रक्षक साक्षात् शिव हैं ॥१३२॥

तवावतारो जगदेव सर्वं पविष्यतीत्येव सतांविवेकः ॥
न बालक स्त्वं भगवान् पुराण वृद्धातिवृद्धो विपलो दयालुः ॥१३३॥

अर्थ—आपका अवतार समस्त जगत् को पवित्र करेगा, ऐसा विद्वानों का विचार है। आप बालक नहीं हैं वृद्धों में वृद्ध अतिदयालु पुराण पुरुष हैं ॥१३३॥

उपदेशामृतैः स्वच्छै रमृता इव मानवाः ॥
चन्द्रमौलिं नमस्कृत्य कृत्यकृत्या गृहं गता ॥१३४॥

अर्थ—इस प्रकार भगवान् श्रीचन्द्रजी के माधुर्य्य तथा सारगर्भित उपदेश अमृत रूपी वचनों से कृतार्थ होकर श्रोता गण देवताओं के तुल्य भगवान् श्रीचन्द्र जी को प्रणाम कर अपने अपने घर को चले गये ॥१३४

उपदिशित विचित्रं धर्म्ममर्मेति माता
विकसित सितनेत्रा पुत्रवात्सल्यपूर्णा ॥
समुदित मथ चन्द्रं द्यौरिवाऽलिङ्ग्य गाढं
चिरमतिशय - नित्यानन्द - सन्दोह माप ॥१३५॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र की धर्म्म मर्म के विश्लेषण करने की विचित्र भाषणभंगी वाणी को सुन कर पूज्य माता जी की आँखे खिल गईं और हृदय वात्सल्य प्रेम से भर आया जैसा चन्द्रमा को प्राप्त कर आकाश आनन्दित होता है उसी प्रकार भगवान् को गोद में लेकर पूज्य माता जी कितनी देर तक आनन्द सागर में डूबी रहीं ॥१३५॥

वाणवाण शरच्चन्द्रे वैक्रमे शुक्रवासरे ॥
जेष्ठ शुक्लरुद्रतिथ्या वयमेव महामते ॥१३६॥

अर्थ—अतः यह उपदेश थी ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का वि० सं० १५५५ जेष्ठ शुक्ल ११ शुक्रवार को दिन के दश बजे हुआ था ॥१३६॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद सिंधु गंगा मध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्री मदुदासीन वर्य्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिलशास्त्र निष्णात् योगिराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डीदेव गुरुचरणकमल चंचरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे पक्खो ग्राम आगमन हितेरंधावे चौधरी उपदेश हिन्दू धर्म-रहस्य वर्णनं सकल कलि कलमष नाशनी चतुर्थ किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥४॥

॥ पंचम किरण प्रारम्भः ॥

इत्थं श्रीचन्द्र देवस्य पक्खो ग्रामे सुखेन हि ॥
वसितो विगतं मात्रा सार्धवर्षद्वयं सह ॥१॥

अर्थ—इस प्रकार भगवान् श्रीचन्द्रजी को पक्खो ग्राम में रहते रहते ढ़ाई वर्ष सुख से बीत गया ॥१॥

भगिनी नानकस्याऽऽसीत् अग्रजा नानकी सती ॥
श्रीचन्द्रदर्श मिच्छन्ती सावदी देकदा पतिम् ॥२॥

अर्थ—उन दिनों में भगवान् श्रीचन्द्रको बुआ-श्री नानकीजी ने जो कि श्रीगुरुदेव नानक जी की बड़ी वहिन थीं—भगवान् श्रीचन्द्रदेव के दर्शनों की अभिलाषा प्रगट की, और अपने पतिदेव से कहने लगीं कि ॥२॥

श्रीचन्द्र मन्तरा नाहं स्थातुं शक्नोमि कर्हिचित् ॥
तमानयितु मद्यैव गच्छावः प्रिय सत्वरम् ॥३॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र के दर्शन बिना तो मेरे को यहाँ रहना कठिन होगया है चलो जल्दी चलें, भगवान् को अपने यहाँ ले आयें ॥३॥

आनन्द सागरे मग्नं श्रीचन्द्रजन्मना जगत् ॥
सुखं लप्स्ये वचोऽतीतं तस्मा दानीयतां गृहम् ॥४॥

अर्थ—जब कि सारा संसार भगवान् के दर्शन कर कर आनन्द लूट रहा है, तो हम और आप ही क्यों इस से वंचित रहें। अतः भगवान् को शीघ्र यहाँ ले आकर अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त करना चाहिए ॥४॥

जयरामदासः श्रुत्वा पक्खो ग्रामं मुदान्वितः ॥
श्रीचन्द्रानयने सोत्कः पत्न्या दास्या सहाचलत् ॥५॥

अर्थ—श्री जयराम दास जी यह सुन कर बड़े आनन्दित हुए। कारण कि वे तो पहिले ही से श्रीचन्द्र भगवान् के दर्शनों के लिये उत्कण्ठित थे। अपनी पत्नी तथा तुलसा दासी के साथ वे पक्खो गांम को चल पड़े ॥५॥

तत्र गत्वा च तं दृष्ट्वा हृष्टचित्तौ बभूवतः ॥
अङ्कमारोप्य सानन्दं नानकी नानकात्मजम् ॥६॥
पर्य्यचुम्बत् मुखश्चन्द्रं चन्द्रचन्दन शीतलम् ॥
जयरामोऽपि साह्लाद मालिलिङ्ग चिराय तम् ॥७॥

अर्थ—वहाँ जाकर भगवान् के दर्शनों का असीम आनन्द प्राप्त किया। बुआ नानकी जी ने भगवान् श्रीचन्द्रजी को गोद में लिया। और उनका मुख चूमा, जो चन्दन और चन्द्रमा के समान शीतल था। तत्पश्चात् जयराम दास जी ने भी वैसा ही किया ॥६—७॥

नष्टं मणिं पुनर्लब्धा यथा सर्पः प्रहृष्यति ॥
एवं चन्द्रं समालिङ्ग्य कृतकृत्यौ बभूवतुः ॥८॥

अर्थ—जिस प्रकार नष्ट हुई मणि को पुनः प्राप्त करके सर्प प्रसन्न हो जाता है। इसी प्रकार वे दोनों भगवान् को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥८॥

मूलचन्द्रेण साकं च जयरामोऽमिलत्ततः ॥
चन्द्रं नेतुं समायाता इत्युवाच विषादयन् ॥९॥

अर्थ—इसके बाद जयरामदास जी विषादयुक्त मेहता मूलचन्द जी से मिले। और कहने लगे कि मैं श्रीचन्द्र भगवान् को लेने के लिये आया हूँ। उनको साथ लिये बिना मैं वापिस नहीं जाऊँगा ॥९॥

चन्द्रं बिना न यास्यामि शून्यं गृहं कदाचन ॥
अतोऽर्हसि मया सार्धं प्रहितुं प्रियकृत्तमः ॥१०॥

अर्थ—उनके बिना घर खाने को आता है आप तो मेरा सदा प्रिय करते आये हैं। अतः भगवान् को मेरे साथ अवश्य भेजें ॥१०॥

चन्द्रं बिना यथाऽऽकाशः सत्सु तारागणेष्वपि ॥
चन्द्रं बिना तथा ग्रामो ध्वान्तच्छन्नो न शोभते ॥११॥

अर्थ—यह सुनते ही एक बार तो नाना मूलचन्द जी ठिठुर गये। वे जानते थे कि तारात्रों के होने पर भी चन्द्रमा के बिना रात सुहावनी नहीं लगती। इसी प्रकार भगवान् के चले जाने पर यह गाँव डरावना हो जायेगा ॥११॥

आग्रहं तस्या दृष्ट्वासौ श्रीचन्द्रं प्रैषयत् ततः ॥
यात्रा काले जनाः सर्वे बभूवु र्मुषिता इव ॥१२॥

अर्थ—परन्तु उनको अत्यन्त आग्रह करते देख कर हठात् भगवान् को उनके साथ भेजना ही पड़ा। भगवान् श्रीचन्द्र के गमन समय में सब लोग ठगे से रह गये ॥१२॥

मात्रा भ्रात्रा पितुः स्वस्रा तश्या पत्या सहैव सः ॥
चचाल रथमारुह्य श्रीचन्द्र श्चल कुण्डलः ॥१३॥

अर्थ—पूज्य माता, छोटे भाई, बुआ और फूफा के साथ भगवान् रथ में सवार होकर सुलतानपुर को चल पड़े ॥१३॥

सुलतानपुर मासाद्य गृहं तस्याऽभ्यशोभयत् ॥
उपदेशाः समारब्धाः पूर्ववत्तत्रतेन च ॥१४॥

अर्थ—वहाँ आकर बुआ के घर की शोभा बढ़ाई पक्खो ग्राम के अनुसार यहाँ भी भगवान् श्रीचन्द्रजी ने उपदेश करना आरम्भ किया ॥१४॥

एकदा दौलतःखानः सामात्यः सहचेटकः ॥
आखेट क्रीडिया भ्रामयन् मार्गे चन्द्रं व्यलोकयत् ॥१५॥

अर्थ—एक दिन नवाब दौलतखाँन अपने मन्त्रियों तथा कर्मचारियों के साथ शिकार खेलने जा रहा था तो मार्ग में उसने भगवान् श्रीचन्द्र जी को देखा ॥१५॥

वृक्षखण्डेषु क्रीडन्तं बालकैः सह बालकम् ॥
सूर्य्यकोटि-प्रकाशं तं दृष्ट्वा विसमय माययौ ॥१६॥

अर्थ—आप वृक्षों के झुंड में बालकों के साथ खेल रहे थे। आपका प्रकाश कोटि सूर्य्य के समान चमक रहा था। आपको देखकर नवाब आश्चर्य्य में डूब गया ॥१६॥

अमात्येभ्यो गुणांस्तस्य श्रुत्वा तं द्रष्टु मिच्छया ॥
गत्वा नत्वाऽवदच्चन्द्रं नवाबो विनयान्वितः ॥१७॥

अर्थ—उसने मन्त्रियों से भगवान् की गुणशाली प्रशंसा सुनी। देखने की इच्छा से आकर सविनय प्रणाम कर भगवान् से नवाब कहने लगा ॥१७॥

नानक स्ते पिता श्रीमान् धार्मिकोऽतिप्रतापवान् ॥
तद्वत्त्वमपि लोकेभ्यः श्रूयसे ज्ञानिनाम्वरः ॥१८॥

अर्थ—श्रीमान् नानक देव जी आप के पिता हैं जो कि बड़े धर्म्मात्मा हैं मैंने आपका यश उनसे भी अधिक सुना है ॥१८॥

कारणानुगतं कार्य्यं सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥
पितृतुल्यो भवेत्पुत्रः सन्देहो नाऽत्र विद्यते ॥१९॥

अर्थ—ठीक है कि कारण अनरूप ही कार्य्य होता है निशंसय पुत्र भी पिता के समान ही होना चाहिए ॥१९॥

दर्शनात्ते कृतार्थोऽसि तथापि वदताम्वर ॥
वद किं भूतले हेयं किमादेयञ्च मानवैः ॥२०॥

अर्थ—यद्यपि मैं आपके दर्शन मात्र से ही कृतकृत्य हो गया हूँ तथापि अब आप कृपा करके यह बतावें कि संसार में मनुष्यों को क्या करना क्या न करना चाहिए ॥२०॥

नवाबस्य वचः श्रुत्वा श्रीचन्द्रो मुनि-पुङ्गवः ॥
आशयं तस्य विज्ञाय प्रसन्न वदनोऽवदत् ॥२१॥

अर्थ—नवाब के विनीत शब्दों को सुन कर और उस के अभ्यन्तरीय भाव को समझ कर मुनिश्रेष्ठ भगवान् श्रीचन्द्र प्रसन्नता पूर्वक बोले ॥२१॥

"जगद्गुरु श्रीचन्द्र उवाच"

दौलतखान महाभाग ! श्रूयता मुच्यते मया ॥
यदादेयं यच्चहेयं जगत्यां मानवैः सदा ॥२२॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र जी बोले हे महाभाग आप सावधान होकर सुनें। मैं आप को सुनाता हूँ कि क्या संसार में कर्त्तव्य है, और क्या अकर्त्तव्य है ॥२२॥

सत्यं क्षमा च वैराग्यं विवेको विनयो नयः ॥
सन्तोषः प्रेम धैर्य्यश्च शान्तिः कीर्त्तिः पवित्रता ॥२३॥

नम्रतोदारताचैव विश्वासो भक्ति रुत्तमा ॥
परोपकार आचारः प्रजासु पुत्रभावना ॥२४॥

अर्थ—सत्य, क्षमा, वैराग्य, विवेक, विनय, नय, सन्तोष, प्रेम, धैर्य्य, शान्ति, कीर्त्ति, पवित्रता, नम्रता, उदारता, विश्वास, दृढ़भक्ति, परोपकार, सदाचार, प्रजा, में पुत्रभावना इन गुणों को ग्रहण करना चाहिए ॥२३॥

ग्राह्या गुणा सर्वं इमे त्याजांश्च वच्मि साम्प्रतम् ॥
धर्म्मद्रोहोऽभिमानश्च तृष्णा-भय मनादरः ॥२५॥
आलस्यं दुर्जनैः सङ्गो निन्दाऽनीति कुकर्मधीः ॥
विश्वासघातः कार्पण्यं रागद्वेष प्रवंचनम् ॥२६॥
पाखण्डःक्रूरता लोभो द्यूतं कलह एवच ॥
एतांस्त्यक्त्वा नरो लोके परलोके च शान्तिभाक् ॥२७॥

अर्थ—अब त्याज्य दुर्गुणों को सुनियेः—धर्म्मद्रोह मिथ्याभिमान, तृष्णा, भय, अनादर, आलस्य, कुसंगति, निन्दा, अनीति, कुकर्म, पाखण्ड, क्रूरता, लोभ, द्यूत, कलह, विश्वासघात, कृपणता, राग, द्वेष, प्रवञ्चना, इन दुर्गुणों को छोड़ने से मनुष्य इस लोक तथा परलोक में सुख का भागी बन जाता है ॥ २५-२६-२७॥

अलसः क्षम मायाति सोद्योगोः सुख मश्नुते ॥
उद्योगिना तदा भाव्यं जगत्यां जय मिच्छता ॥२८॥

अर्थ—आलसी सदा दुःखी रहता है और उद्योगी सदा सुख भोगता है अतः सुखार्थी को चाहिए कि सदा उद्योग शील रहे ॥२८॥

उपदेश मिमं श्रुत्वा दौलतखानः सवान्धवः ॥
नूनं कोप्यवतारोऽयं चिन्तयामास चेतसि ॥२६॥

अर्थ—इस विलक्षण उपदेश को सुनकर बान्धवों के सहित दौलतखाँन मन में सोचने लगा कि ये साक्षात् कोई अवतारी महापुरुष हैं ॥२६॥

प्रणिपत्य ततोऽवोचत् गृह्यतां मौक्तिकावली ॥
आशिषा योज्यतां दासः प्रपन्नोऽयं पदे तव ॥३०॥

अर्थ—इस के अनन्तर प्रणाम कर नवाब बोला, हे भगवन् आप कृपया इस मुक्ताहार को स्वीकार करें, मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे अपनायें और आशीर्वाद दें ॥३०॥

कयापि सेवया नाथ दासोऽनुगृहीयतां मुदा ॥
इत्युक्त्वा मालिकां दत्वा वाचं संहृत्य तस्थिवान् ॥३१॥

अर्थ—इस सेवक को किसी सेवा प्रदान से अनुग्रहीत करें ऐसा कह कर माला भगवान् के आगे रख दी और चुपचाप बैठ गया ॥३१॥

ततः श्रीचन्द्र देव स्तं बभाषे करुणाकरः ॥
परोपकारः संलग्नः मुक्तस्वार्थः प्रसन्नधीः ॥३२॥

अर्थ—तदनन्तर परम कारुणिक, परोपकार मूर्ति प्रसन्नात्मा, मुक्तस्वार्थ, भगवान् श्रीचन्द्र जी कहने लगे ॥३२॥

"जगद्गुरु श्रीचन्द उवाच"

अपराधं विना दीना प्रजा नो दण्ड्यतां त्वया ॥
इमां मन्ये परां सेवां नान्या मिच्छामि कामपि ॥३३॥

अर्थ—जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी बोले हे सौम्य मेरी तो यही परम सेवा है कि "आज से लेकर किसी भी निरपराध हिन्दू को आप तङ्ग न करें, और मुझे किसी सेवा की आवश्यकता नहीं ॥३३॥

किमस्माकं विरक्तानां मालया ते प्रयोजनम् ॥
दीनेभ्यो दीयतां दानं न पूर्णेभ्यः कदाचनः ॥३४॥

अर्थ—हम विरक्तात्माओं को माला की कोई आवश्यकता नहीं निर्धनों को दान देना चाहिए परिपूर्णों को नहीं ॥३४॥

वयं सन्तोषिणः शान्ता निस्पृहा ब्रह्मवादिनः ॥
किमन्येन पदार्थैन किमेतै र्वा शिलाकणैः ॥३५॥

अर्थ—हम शान्त है संतोषी निस्पृह और ब्रह्मवादी साधु हैं हमें इन शिला कणों से अथवा अन्य किसी पदार्थ से कोई प्रयोजन नहीं ॥३५॥

यावदज्ञानध्वान्तेन छन्नं ज्ञानं नृणां भुवि ॥
तावन्माला मनोज्ञेयं मौक्तिकैः परिगुम्फिता ॥३६॥

अर्थ—जब तक मनुष्य अज्ञानान्धकार से अभिभूत है तभी तक यह मोतियों की माला उसे सुन्दर प्रतीत होती है ॥३६॥

नष्टेऽन्धकार ज्ञानेन माला जालायते तराम् ॥
तृणवल्लघु सम्पूर्णं ब्रह्माण्डं ब्रह्मवादिनः ॥३७॥

अर्थ—अज्ञान अन्धकार के नष्ट होने पर यह मनोज्ञ माला एक प्रकार का बन्धनार्थ जाल प्रतीत होता है। अधिक क्या—ब्रह्मदर्शी पुरुष को तो एक माला क्या सारा ब्रह्माण्ड तृण समान तुच्छ प्रतीत होता है ॥३४॥

इत्थ माज्ञापितो गत्वा प्रजः पुत्रानि वौरसान् ॥
पालयामास धर्म्मेण शोधयन् कण्डकान् ततः ॥३८॥

अर्थ—इस प्रकार भगवान् से उपदेश ग्रहण कर नवाब साहब चले गये। और उस दिन से सब कंटकों को दूर कर प्रजा को औरस पुत्र के समान पालन करने लग गये ॥३८॥

यत्रोपदेशधाराभिः स्नापयामास मानवान् ॥
श्रीचन्द्र भगवांस्तत्र तीर्थं जातं सुपावनम् ॥३९॥

अर्थ—जहाँ बैठ कर भगवान् श्रीचन्द्र जी मनुष्यों को उपदेशामृत से तृप्त किया करते थे। आज वह पवित्र तीर्थ बन गया है ॥३९॥

उदासीनसतां हस्ते राजतेऽद्यापि तत्स्थलम् ॥
मेला च महती यत्र मान्यते प्रतिवत्सरम् ॥४०॥

अर्थ—आज भी वह स्थान उदासीन महात्माओं के हाथ में है। जहाँ पर प्रतिवर्ष बड़ा भारी मेला लगता है ॥४०॥

सद्गृहस्था महात्मानः स्नातु मायान्ति सादरम् ॥
स्नात्वा सद्यः फलं लब्ध्वा कृतार्था यान्ति ते पुनः ॥४१॥

अर्थ—सद्गृहस्थ और महात्मा जन दूर दूर से वहाँ स्नान करके पूतात्मा हो जाते हैं। तथा स्नानमात्र से उनकी समस्त कामनायें पूरी हो जाती हैं। अतएव कृतकार्य्य होकर वापिस चले जाते हैं वह स्थान आज तक सन्तघाट नाम से प्रसिद्ध है ॥४१॥

भगवतः श्रीचन्द्रस्य तत्र चित्रा विराजते ॥
प्रतिमाऽप्रतिभा सौम्या सद्यः पापविनाशिनी ॥४२॥

अर्थ—वहाँ अत्यंत अद्भुत भगवान् ११०८ श्रीचन्द्र जी की मूर्ति है। जिसके दर्शनमात्र से ही त्रिविध पाप-ताप शान्त हो जाते हैं ॥४२॥

श्रीचन्द्रदेवस्य पवित्र तीर्थं यो याति भक्त्या मनुजः पृथिव्याम् ॥
लब्ध्वा सुखं देहमपास्य भूयः स्वर्याति सानन्द मनिन्दितात्मा ॥४३॥

अर्थ—जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीचन्द्र जी के पवित्र तीर्थ की यात्रा करता है। वह इस लोक में आनन्द भोग कर अन्त में अतिदुर्लभ मोक्ष पद को प्राप्त करता है ॥४३॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमदुदासीनवर्य्य-परमहंसावतंस-ब्रह्मनिष्ठ-निखिल-शास्त्रनिष्णात-योगिराज-सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखंडीदेव गुरुचरणकमल चंचरीकायमान-मानस-महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन-विरचिते चन्द्राङ्किते श्रीजगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन-मानसहंसे सुलतानपुर आगमनं नवाब दौलतखान लोदी उपदेश वर्णनं सकल कलि कल्मषनाशनी पञ्चमकिरण सम्पूर्णता-मधिगता ॥५॥

॥ षष्ठ किरण प्रारम्भः ॥

श्रीचन्द्र देवस्य तृतीयवर्षे चौलाभिधं कर्म बभूवतस्य ॥
यज्ञोपवीतं खलु सप्तमेऽभूत् श्रौतप्रमाणेन सनातनेन ॥१॥

अर्थ—श्रीचन्द्र भगवान् का चौलकर्म (मुण्डन संस्कार) तीसरे वर्ष में तथा यज्ञोपवीत संस्कार सनातन श्रौत विधि के अनुसार सातवें वर्ष में सम्पन्न हुआ ॥१॥

श्रीचन्द्रदेवो गिरीशावतारो नास्तस्य संस्कार विधि रपेक्षा ॥
लोकानुवृत्तिं च विधातु कामः संस्कारयामास निजं महेशः ॥२॥

अर्थ—यद्यपि भगवान् श्रीचन्द्र साक्षात् देवाधिदेव श्री महादेव जी का अवतार थे उनको संस्कार की कोई आवश्यकता नहीं थी तथापि आपने लोकसंग्रह के लिए षोड़श संस्कारों का यथाविधि अनुष्ठान कराया ॥२॥

सर्वाणि कर्माणि मनुष्यलोके नो देवलोके नियतानि तानि ॥
स्वनैव आख्यापित धर्म्म मेतं श्रीचन्द्रदेवः स्वयमाचचार ॥३॥

अर्थ—इन सोलह संस्कारों का बिधान केवल मनुष्यों के लिए है देवताओं के लिए नहीं आप ने स्वयं देवाधिदेव होते हुए भी अपने चलाये धर्म्म का पालन किया ॥३॥

संस्कार कर्मण्यखिला निलिम्पा यजूंषि सामानि जगु र्दिविस्थाः ॥
अवाकिरन् कल्पलतासुभानि देवाङ्गना नृत्यविधिः मकुर्वन् ॥४॥

अर्थ—भगवान् के संस्कार कर्म में आकाश स्थित अखिल देवताओं ने चारों वेदों

का गान किया और स्वर्गीय फूलों की वर्षा बरसाई तथा देवांगनाओं ने नृत्यकला दिखा के अभिवादन किया ॥४॥

मनुष्यरूपेण सुराः प्रविष्टा ऋचः पठन्तः खलु यज्ञशालाम् ॥
काशीव सामादिकलेन रम्या सा यज्ञवेदी शुशुभे तदानीम् ॥५॥

अर्थ—देवता लोग मनुष्य विग्रह धारण करके यज्ञशाला में प्रविष्ट हो गये और ऋचाओं का गान करने लगे उस समय वह यज्ञवेदी काशी पुरी को भी मातकर रही थी ॥५॥

विरञ्चि सम्पादित पूतसूत्रं श्री विष्णुनायत् त्रिगुणीकृतश्च ॥
गायत्रिपाठै रभिमन्त्र्य पूर्वं यज्ञोपवीतं ग्रथितं शिवेन ॥६॥

अर्थ—ब्रह्मा जी ने (तीन वेदों से तीन तन्तु का) एक सूत्र बनाया, विष्णु ने (कर्म उपासना-ज्ञान-तीन कांडों से) तिगुना किया, और शिव जी ने गायत्री पाठ से अभिमन्त्रित किया जिससे कि यज्ञोपवीत नौ तार का बन गया ॥६॥

नक्षत्र-वारै स्तिथितत्त्ववेदैः कालगुणैः सम्मिलितैश्च मासैः ॥
तद्ब्रह्मसूत्रं कथितं मुनीन्द्रैः भवेच्चयत् षण्णवति प्रमाणम् ॥७॥

अर्थ १५तिथि ७वार २७नक्षत्र २५तत्व ४वेद ३काल १२मास सब का जोड़ ९६ हुआ अतएव इनके स्मरणार्थ यज्ञोपवीत ९६वे चौवा का होता है ॥७॥

चतुर्षु वेदेषु भवन्ति मन्त्रा लक्षप्रमाणाः किल कर्मकाण्डम् ॥
उपासना ज्ञानमिमानि भूयो भवन्ति कांडानि तथैव वेदे ॥८॥
अशीति साहस्रमिताश्च मन्ता ब्रह्मप्रयुक्ताः खलु कर्मकाण्डे ॥
उपासनायामपि षोडशैव चतुस्सहस्राणि तृतीयकाण्डे ॥९॥
ज्ञाने नियुक्तांश्च विहाय मन्त्रान् उपासना कर्म नियुक्त मन्त्रैः ॥
प्रमाणसिद्धा चतुरङ्गुलीनां सञ्जायते षण्णवतीति संख्या ॥१०॥

अर्थ—चारों वेदों में एक लाख सूत्र हैं (८०हजार कर्मकाण्ड के, १६हजार उपासना कांड के) जो सब मिलकर ९६ हजार होते हैं उन्हीं के स्मरणार्थ यज्ञोपवीत में ९६चप्पे रखेगये हैं इस में ज्ञान कांड के मन्त्रों की संख्या सम्मिलित नहीं की जानी चाहिए कारण कि ज्ञानी विधि-निषेध से परे होता है ॥८-९-१०॥

सम्पूर्ण वेदस्मरणाय नित्यं द्विजेनमान्येन विधान सिद्धम् ॥
तद्ब्रह्म सम्पादित पूतसूत्रं यज्ञोपवीतं भुवि धारणीयम् ॥११॥

अर्थ—सम्पूर्ण वेदों की स्मृति के लिए ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य को ब्रह्मा से निर्मित पवित्र ब्रह्मसूत्र यज्ञोपवीत को धारण करना आवश्यक है ॥११॥

ऋणत्रयं सूत्रवदेववेद्यं देवर्षि पित्र्यं श्रुतिभिः सुगीतम् ॥
यावन्न मुच्येत ततो मनुष्यः तावद्धि तद्धार्य्ये मिति सुपन्थाः ॥१२॥

अर्थ—ब्रह्मसूत्र के तीन तागे तीन ऋणों के बोधक हैं जब तक मनुष्य तीन ऋणों (देवऋण-पितृऋण-ऋषिऋण) से मुक्त नहीं हो जाता है तब तक इसे धारण करना चाहिए यह एक हिन्दू सनातन प्रथा है ॥१२॥

जाते च संस्कारविधौ विधानात् माता पितृभ्यां प्रणतिं विधाय ॥
काश्मीरगं श्रीनगरं जगाम विश्म्भराच्चार्य्य सकाश माशु ॥१३॥

अर्थ—यथा विधि उपनयन संस्कार होने पर भगवान् श्रीचन्द्र जी पूज्यमाता जी को प्रणाम कर वेदाध्ययन के लिए काशमीर पं० विश्वंभर दास उदासीन के यहाँ गये उस समय पण्डित जी श्रीनगर में रहा करते थे तथा सबसे अधिक विद्वान् माने हुए थे ॥१३॥

उदासीन वेष प्रसिद्धश्च विश्वंभरो वेदवेत्ता महापांडितश्च ॥
स जातो गुरु श्शंकरस्य तदानीं समध्यापयामास बेदेतिहासम् ॥१४॥

अर्थ—काशमीर देश श्रीनगर में पण्डित विश्वंभर दास जी उदासीन महात्मा वेद-बेदांग पारांगत रहा करते थे जो अपनी पण्डिताई में मुख्य माने जाते थे ऐसे सुयोग्य अध्यापक के पास गुरु श्रीचन्द्र जी विद्याध्यन करने गए ॥१५॥

मर्य्यादसंरक्षणहेतवे च विद्यार्थिभावं समुपागतश्च ॥
विद्याधिदेवो भगवान् शिवश्च पुराणमात्रे च कथा प्रसिद्धा ॥१५॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र जी का विद्याध्ययन करना एक लोक मर्य्यादा का संरक्षण करना था अन्यथा आप साक्षात् शिवरूप से समस्त विद्याओं के भन्डार स्वयम् थे यह गाथा सर्वपुराणों में प्रसिद्ध है ॥१५॥

निमित्तमात्रं खलु तस्य पाठनं मनुष्यभावस्य चरित्रपालनम् ॥
निसर्ग निश्वासविधौ स्वयं श्रुतिः वसत्यजस्याद्भुत-सर्गकारिणः ॥१६॥

अर्थ—आपका पढ़ना, पढ़ाना तो केवल निमित्तमात्र था यह सब मानव चरित्र पालन करना था आप अज अविनाशी हैं और संसार स्रष्टा हैं सर्गारम्भ में वेद आपके श्वास से प्रगट होते हैं ॥१६॥

'११

ज्ञानं महेशात् किल सर्वलोका लभन्त इत्थं श्रुतिवौ वदन्ति ॥
सैवाधुना ज्ञानविकाशनाय गुरुं व्रजत्यद्भुत मेतदेव ॥१७॥

अर्थ—आश्चर्य्य की बात है कि जिस शंकर भगवान् से सम्पूर्ण विद्यायें सब लो प्राप्त करते हैं आज वे ही कुछ सीखने के लिए गुरु जी के यहाँ आये हैं यह मनुष्य शरीर धरे का नियम पूरा करना है हे प्रभु आप की लीला को धन्यवाद है ॥१६॥

अधीत्य वेदान् सरहस्य साङ्गान् स्मृतिं पुराणं गृहसूत्रतर्कौ ॥
वेदान्तसिद्धान्त मधीत्य सम्यक् सांख्यञ्चयोगञ्च तथेतिहासम् ॥१८॥
रामायणं भारत मर्थशास्त्रं वात्स्यायनं शिल्पकला-कलायाम् ॥
काव्यञ्च नाट्यं जिनबुद्धशास्त्रे आख्यायिकाऽऽख्यानक लेख्यभेदान् ॥१९॥
व्याख्यान भाष्याणि विदेशभाषा यन्त्राणि मन्त्राणि विभिन्न मन्त्रान्।
विदामलङ्कार मुखां समग्रा मधीत्य विश्वम्भर तो वभौसः ॥२०॥

अर्थ—आपने पं० विश्वम्भर दास उदासीन जी से सरहस्य सांगोपांग चारों वेद स्मृतिये, पुराण, उपपुराण, गृह्यसूत्र, न्याय, वेदान्त, सांख्य, योग, इतिहास, रामायण, महाभारत अर्थ शास्त्र, वात्सायन शास्त्र, शिल्प कला, व्याख्यानप्रणाली, भाष्य, विदेशी भाषायें, यन्त्र-मन्त्र तन्त्र, काव्य नाटक, अलंकार, चम्पू, जैनशास्त्र, बौद्धशास्त्र, आख्यायिका, आख्यानक, कथा लेख्यभेद, आदि सबका ज्ञान प्राप्त किया ॥१८-१६-२०॥

वशिष्ठतो राम इव प्रगल्भो वृहस्पतेरिन्द्र इवाऽखिलानि ॥
शास्त्राणि विश्वम्भरतः पपाठ श्रीचन्द्र देवोऽपि कुशाग्रबुद्धिः ॥२१॥

अर्थ — जिस प्रकार गुरु वशिष्ठ जी से रामने और वृहस्पति जी से इन्द्र ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया था उसी प्रकार कुशाग्रबुद्धि भगवान् श्रीचन्द्र ने भी श्री विश्वम्भर दास जी उदासीन से विधि पूर्वक आद्योपांत समस्त शास्त्र का अध्ययन किया ॥२१॥

सकृत् श्रुतं कंठगतं न विस्मृतं स्मृतं समस्तं खलु पूर्वभावितम् ॥
गुरोः सकाशादमुनाद्भुत तदा वभूव सर्वस्य जनस्व मानसे ॥२२॥

अर्थ —एकवार सुनने से आपको पाठ कंठ होजाता था फिर कभी भी विस्मृति नहीं होती थीं पूर्व का समस्त ज्ञान प्रगट होगया था गुरु के पास रहते समय आपके इस अद्भुतता को देखकर मनुष्य आश्चर्य चकित हो जाते थे ॥२२॥

स्वल्पेन कालेन वभूव तस्य ख्यातिः समग्रे जगतीतलेऽस्मिन् ॥
विद्याभिमानात्परमं प्रसिद्धे काश्मीर देशे न्यवसंस्यदानीम् ॥२३॥

अर्थ—कुछ ही समय में आपकी कीर्ति-कौमुदी समग्र भूमंडल में छागई काश्मीर को उस समय अपनी विद्या पर बड़ा अभिमान था अतएव आप कुछ काल काश्मीर में रहे ॥२३॥

ते तस्य पार्श्वं समयुः समस्ताः शास्त्रार्थकामा मनसा च वामाः ॥
श्रीचन्द्र देवोऽपि मतिप्रकर्षात् सर्वेषु शास्त्रेष्व जयत् समस्तान् ॥२४॥

अर्थ—काश्मीरी पण्डित यह कब सहन कर सकते थे वे नाना प्रकार के प्रश्नों का आप पर तांता बाँधने लगे परन्तु आपने गम्भीरतापूर्वक उन प्रश्नों का हंसते हंसते यथोचित उत्तर देकर उन्हें परास्त किया ॥२४॥

स्वभावसिद्धेन निजेन धाम्ना विभ्राजमानोऽपि स चन्द्रदेव ॥
आश्वीनमासाद्य यथाहिमांशु विभ्राजते प्राप्य जयं विरेजे ॥२५॥

अर्थ—पहिले तो आप जन्म सिद्ध अपने तेज से सुशोभित हैं तथा दूसरे आपके उत्तर विद्वत्तापूर्ण थे जिससे सभी सन्तुष्ट होते थे अतएव आपका प्रसन्न चन्द्रमुख शारदीय चन्द्रबिम्ब के तुल्य शोभायमान भला मालूम होता था ॥२५॥

विद्यार्थिन स्तत्सविधेऽपिपेठु सर्वाणि शास्त्राणि पुराण सद्वान् ॥
विद्यार्थितायामपि सोऽन्वतिष्ठत् अध्यापकत्वं सफलं प्रवीणः ॥२६॥

अर्थ—आपकी छात्र काल में भी अध्यापकत्व शैली अति प्रशंसनीय थी । अच्छे सुयोग छात्र आपके पास अध्ययनार्थ आते थे । आपका पढ़ाया हुआ पाठ कम बुद्धि वाले छात्र के मस्तिष्क में घर कर जाता था । अतः आप एक उच्चकोटि के अध्यापक भी थे ॥२६॥

॥ अध्यापक-भेद ॥

उदासीन गुरुः १ उदासीनाध्यापक २, उदासीनाचार्य ३, उदासीन कुलपति ४

उदासीन स्स्वकुट्यान्च दशच्छात्रान् सुपाठयेत् ॥
धर्म्मकर्मानुगामी च गुरुरित्यभिधीयते ॥२७॥

अर्थ—गुरु उसको कहते हैं जो उदासीन अपनी कुटी में १०-१५ छात्रों को पढ़ाता हुआ धर्म्मानुगामी हो ॥२७॥

उत्तमेन प्रकारेण शतं छात्रान् सुशिक्षयेत् ॥
अध्यापकं पदं प्राप्तो ह्युदासीनो पथानुगः ॥२८॥

अर्थ—उदासीन अध्यापक उसको कहते हैं जो १०० सो छात्रों को पढ़ा कर धर्म्मानुकूल बनाये ॥२८॥

वक्ता धर्म्मस्य यो नित्यं वेदाङ्गादि सुपाठकः ॥
उदासीन मुनिश्शान्त आचार्य्य इति कथ्यते ॥२६॥

अर्थ—उदासीन आचार्य्य उसको कहते हैं कि जो वेद-वेदांग-वक्ता, शान्त, मुनि सदाचारी उपदेशक हो। तथा हजारों विद्यार्थियों को पढ़ा सकता हो ॥२६॥

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादि पोषणात् ॥
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपति स्मृतः ॥

अर्थ—उदासीन कुलपति उसको कहते हैं कि जो अन्नादि देकर दशहजार विद्यार्थि को पढ़ावे ॥

॥ मुनि-शब्दार्थ ॥

मन्यते वेदशास्त्राणि तत्वं यन्नवनीतभम् ॥
समाधिसिद्ध परमो दयालुश्च मुनि स्मृतः ॥३०॥

अर्थ—मुनि उसको कहते हैं कि जो समाधिस्थ होकर शास्त्र और वेदों से निष्कर्षि अध्यात्मतत्व का मनन करे और परम दयालु हो ॥३०॥

मनेरुच्चेति सूत्रेण मुनिशब्दश्च सिद्धयति ॥
तपरत्वाह गुणाभाव इति पाणिनिधारणा ॥३१॥

अर्थ—मन्-मननार्थक-धातु से "मनेरुच" इससूत्रसे उत्व-इत्व होकर मुनि शब्द बन हैं उत्व में तपरत्व ग्रहण होने से गुणाभाव हो जाता है ऐसा पाणिनि मुनि कहते हैं ॥३१॥

योगसिद्धान्त वेत्ता यो धर्म्मशास्त्र परायणः ॥
मनने कुशलो धीरो मुनिरेव प्रकीर्त्तितः ॥३२॥

अर्थ—योग सिद्धान्त जानने वाला धर्म्मशास्त्र परायण मनन कुशल को मु कहते हैं ॥३२॥

शब्दकल्पद्रुमे कोशे शापास्त्र स्सत्यवाक्शुचि ॥
जटाधारी मौनभावो मुनिरेव प्रकीर्त्तितः ॥३३॥

अर्थ—शब्द कल्पद्रुम कोश में लिखा है कि शाप कुशल हो, सत्यवक्ता हो, जटाधा मौनीहो, उसको मुनि कहते हैं ॥३३॥ निरुक्त पृष्ठ ७७ में लिखा है।

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः ॥
उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षा मित्रोदासीनशत्रवः ॥
स्वभावो देहिना मेष मुनीनां त्यागिनामपि ॥
शत्रु-मित्र-मुदासीनो नित्यं भवति सत्वता ॥

अर्थ—स्वकीय कर्मानुष्ठान तत्पर बनस्थ मुनि के शत्रु-मित्र-उदासीन-भाव वाले व्यक्ति हो जाते हैं (यह शरीरधारियों की स्वभाव सिद्ध प्रणाली है परन्तु तीनों पक्ष जिस को समकोटि हैं उसको मुनि कहेंगे यह निरुक्तीय परिभाषा है ॥

महाभारत शान्तिपर्व

सुखं जीवन्ति मुनयो भैक्ष्य वृत्तिं समाश्रिताः ॥
परोपकार कुशला मुनयश्शंसितवृत्ताः ॥ (१७८-११)

अर्थ—भिक्षावृत्ति से जीवन पावन (व्यतीत) करते हुए, सानन्द परोपकार कुशल, वृत्तधारी, उदासीन मुनि कहे जाते हैं ॥

चत्वारो आश्रमाः सन्ति ब्रह्मचर्य्यं गृहस्थकः ॥
बानप्रस्थो महायोगी ह्युदासीनो मुनि र्मतः ॥

अर्थ—आश्रम चार होते हैं ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, बानप्रस्थ, महायोगी उदासीन इस बात का प्रमाण आपस्तम्ब धर्म्म सूत्र में आता है ॥

चत्वार आश्रमा गार्हस्थ्य माचार्य्यं कुलं मौनं ॥
बानप्रस्थम् अग्निरनिकेतः स्यात् अशर्म्मा शरणोमुनिः ॥

इति ऋग्वेद (-१०-१३-६-२)

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसतेमलाः
वातस्यानु ध्राजियन्ति यद्देवासो अविक्षत ॥

संस्कृतभाष्य—मलाः मलिनानि-वल्कल रूपाणि-पिशंगाः वर्णानि-वस्त्राणि, वसते आच्छादयन्ति धारयन्ति मुनयः चतुर्थाश्रमिणः अनिकेतः स्यात् अशर्म्मा शरणो मुनिः (आप॰ प्र-२ पटल-६सूत्र १०) इति सूत्राणुसारेण मुनिपदेन तत्रभवतः चतुर्थो बोधनं सर्वत्र विज्ञेयम् 'पुनः की दशा महात्मनः, वातरसनाः (वातो वायु ब्रह्म नमस्ते वायोत्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासीत-इतिश्रुतेः) स एव

रसना बन्धन माश्रयो ऐषाम् ते तथा ब्रह्मपर इत्यर्थः। वातस्य ब्रह्मणः ध्राजि पदं देवासः आत्म-तत्वविदः अविज्ञत् योगेन प्रबिशन्ति॥

अर्थ—ऋग्वेद के इस मन्त्र से मुनि जन सेवित चतुर्थाश्रम का प्रतिपादन स्पष्ट ही सिद्ध है एक नहीं अनेक स्थल पर वेद में चतुर्थाश्रमी उदासीन मुनि का नाम आता है॥

तथा परमहंसानां मुनीनां चा मलात्मनाम्॥
भक्तियोग विधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥२०॥

(श्रीमद्भागवत स्कंध १ अ० ८)

अर्थ—कुन्ती माता भगवान् को मुनि और परमहंस साधु की तुलना देती स्तुति करती है॥

॥ ऋषि-महर्षियो तत्र भेदः॥

ऋषि १ महर्षि २ देवर्षि ३ परमर्षि ४ काण्डर्षि ५ श्रुतर्षि ६ ब्रह्मर्षि७ राजर्षि ८ ये आठ प्रकार के मुनियों के भेद हैं अब उनकी परिभाषा कहते हैं।:—

उदासीन सिद्धान्त मार्गानुकूलो गृहस्थः सपत्नीक वेदप्रवक्ता॥
सदाचार धर्म्मा महाप्राज्ञवर्य्यः ऋषिः कीर्त्तितो वेदमार्गवरेण्यैः॥३४॥

अर्थः—उदासीन सम्प्रदाय के अनुसार गृहस्थ सपत्नीक वेदवक्ता हो सदाचारी हो। बुद्धिमान हो वह ऋषि कहलाता है॥३४॥

तपस्वी च योगी सुसिद्ध प्रसिद्धः समाधेश्च सिद्धान्त भावानुगामी॥
सदा भक्ति तत्वाश्रितो देवतुल्यो महर्षिस्त्वसौ वर्णितो धार्म्मिकैश्च॥

अर्थः—तपस्वी योगी सुसिद्ध देवतुल्य भक्तिमान् विद्वान जो हो वह उदासीन महर्षि कहा जाता है॥३५॥

उदासीन मार्गीययोग्यच्छटाछन्नः मानप्रमाणैश्च संवृंहितश्च॥
विचित्रे तरङ्गे सदा सम्प्रलग्नश्च देवर्षि नामा प्रसिद्धश्च शास्त्रे॥३६॥

उदासीन सम्प्रदायके नियमानुसार तपोयोगी ब्रह्मनिमग्न ही देवर्षि कहा जाता है॥३६॥

चतुर्थाश्रमी सिद्धांतत्वानुगामी ह्युदासीन साधु प्रसेवा प्रवृत्तः॥
न मनापमान प्रभादत्त चित्तो विवेकी महान् परमर्षि मतश्च॥३७॥

अर्थः—चतुर्थाश्रम उदासीन होकर उदासीन साधुसेवारत मानापमान रहित विवेकी परमर्षि कहा जाता है॥३७॥

सदा कर्मकाण्ड प्रथाचारनिष्ठः सुयज्ञोपयज्ञैः प्रसिद्धः त्रिलोक्याम् ॥
क्षमा सत्यशीलश्च कांडर्षिनामा सुपूज्यो जगत्यां जनै र्मानितश्च ॥

अर्थः—सदा वैदिक कर्मकाण्ड में लगा हो अनेक यज्ञ किया हो। क्षमा, दया, सत्य, इन्द्रियजित उदासीनमहात्मा काण्डर्षि कहा जाता है ॥३८॥

महाधर्म्मशीलो महाकर्मशीलो विचित्राख्यवैराग्य धारानिमग्नः ॥
उदासीन सिद्धान्त लीन प्रलीनो महावेदवक्तः श्रुतर्षिः प्रसिद्धः ॥३६॥

अर्थः—धर्म्मशील, कर्मशील, वैराग्यनिमग्न, सिद्धान्तलीन हो, वह उदासीन महात्मा श्रुतिर्षि कहा जाता है ॥३६॥

उदासीनसाधुः सदा ब्रह्मवेत्ता सुवेदीयसिद्धान्त निष्णात नामा ॥
सुसद् ब्रह्मरूपो ह्यभेदानुगामी च ब्रह्मर्षिनामा मतो वेदभागैः ॥४०॥

अर्थः—ब्रह्मवेत्ता उदासीन साधु हो, वेदसिद्धान्तवक्ता हो, ब्रह्म-अभेद अनुगामी हो, वह ब्रह्मर्षि कहलाता है ॥४०॥

चतुर्थाश्रमी यो ह्युदासीन साधुः शिष्य स्तदीयश्च भक्तिप्रजुष्टः ॥
स राजर्षि नाम कुले क्षत्रियाणां च जातस्सदा ध्यानशीलः प्रभावः ॥४१॥

अर्थः—उदासीन साधुओं का चेला भक्तियुक्त क्षत्रिय राजर्षि कहा जाता है ॥४१॥

ऋषिरेव मुनिः प्रोक्तो मुनिरेव ऋषिः क्वचित् ॥
परन्त्वृषिः सपत्नीको मोक्षमार्ग-सुचिन्तकः ॥४२॥
मुनिरेव उदासीन श्चतुर्थाश्रम संयतः ॥
त्यक्तदारादि धर्म्मात्मा मुनिर्मोक्षपरायणः ॥४३॥

अर्थः—ऋषि और मुनि में इतना भेद है कि-ऋषि-सपत्नीक उदासीन को कहते हैं तथा दारादि-परित्त्यक्त-मोक्षपरायण, चतुर्थाश्रमी, उदासीन साधु को मुनि कहा जाता है ॥४२-४३॥

उदासीन धर्म्म प्रचारेरतो वेद वक्ता मुनिः सह्यर्षिः सम्प्रयुक्तः ॥
ऋषौ नापि भेदो मुनौ सम्प्रदिष्टः पुरा साधुभि र्धार्मिकै र्धैर्य्ययुक्तैः ॥

अर्थः—परन्तु जो उदासीन मुनि धर्म्मप्रचार में लगा हो तो ऋषि-मुनि में कोई भेद विशेष नही कहा जाता है ॥४४॥

निर्दारश्च मुनिः साधुः सर्वधर्म्म समन्वितः ॥
सन्तश्चैव सपत्नीको देशदेश व्यवस्थितः ॥४५॥

अष्टानामेव भेदानां प्रमाणं रत्नकोषजम् ॥
मार्कण्डेय पुराणञ्च हरिवंशस्तथैवच ॥४६॥

अर्थः—बिना स्त्रीके साधु मुनि कहलाते हैं जोकि सर्वधर्म्मसमन्वित हों तथा स्त्री सहित को सन्त कहते हैं इन आठप्रकार के भेद में हरिवंश और मार्कण्डेय पुराण प्रमाण हैं तथा रत्नकोष भी प्रमाण है ॥४५-४६॥

उदाशीन वेषो गुरो रूपतुल्यो मतोऽयं गुरोः त्यागि वीरस्य पूज्यः ॥
उदासीन सत्सम्प्रदायोऽनुकूलो गुरोः सम्प्रदायश्च शास्त्रानुकूलः ॥४७॥

अर्थः—उदासीन सम्प्रदाय हिन्दू चतुर्थाश्रमी है वैदिक है गुरुसम्प्रदाय शास्त्रानुकूल है और गुरु रूप है ॥४७॥

उदासीन गृहं चैव गुरुणां गृहमुच्यते ॥
उदासीनसुमर्य्यादा गुरुमर्य्यादिकामता ॥४८॥

अर्थः—उदासीनों का घर (मठ) गुरुगृह कहा जाता है उनकी मर्य्यादा गुरुमर्यादा है ॥४८॥

उदासीनाश्रमाः पूज्या नाम्ना गुरुकुलं मतम् ॥
तत्रैव वसनं कृत्वा विद्याध्ययनधारणा ॥४९॥

अर्थ—उदासीन आश्रम अत्यन्त पूज्य है गुरुकुल है वहां जाकर विद्याध्ययन करना प्राचीन मर्य्यादा है ॥४९॥ उदासीन सम्प्रदाय चतुश्रामी होनेका प्रमाण वेद में भी आता है

ॐ इलयाश्चक्र व्यय विष्टये उदासीहवै सोहब्रह्मणो कतमेंसीत्। ब्रह्मवर्च प्रथमेऽहमासम् द्वीगमेंपत्न्यागृहस्थऽऽसमद्धीत्यतृयेवाणस्थवैऽऽप्य वैश्वानर यजे तुरो चतुराश्रमें उदासी अहमा समुदासी अहमस्मि कोऽहत्वरव्यये आसीत् उदासी अह आसीत् ॥

(ऋग्वेद प्रज्यमी शाखा मंडल ५ मन्त्र १६)

संस्कृतऽपिभाष्यम् ॐ इलाश्चक्रति ÷ व्यये व्ययनशीलेऽस्मिन् चक्रवत् परिवर्तनशीले वष्टये भुवने (जगती लोकोविष्टयं भुवनं जगत्) इति प्रामाण्यात् विशति जनोयस्मिन् इति विष्टपः लोकः विशप्रवेशने (तु० प० अ०) इत्यस्माद्धातो निष्पन्नत्वात् उदासीनस्य परब्रह्मणो दृष्टपकतममृस्थान मासीरिति प्रश्नस्य जिज्ञासाया मुत्तरमाह ब्रह्मवर्चप्रथमेऽहमासम् ब्रह्मणो वेदस्य तपसो वावर्चः ब्रह्महस्ति भ्यांवर्चसः ५-४-७८ इति पाणिनीय सूत्रयाच वृत्ताध्ययन मित्यर्थः

वेदाध्ययन मिति सरलार्थः तस्मिन् कर्माणि उदासीनस्य प्रथमम् स्थान मासीत्। पुनश्च स उदासी द्वितीयां तृतीयामवस्था द्वीत्य अतिक्रम्य (उल्लंध्येत्यर्थः) विश्वानर सम्पाधिनं अग्निं यजेयज्ञं कृतवान् इत्यं स उदासी आश्रम द्वयं त्यक्त्वा ब्रह्मचर्यदेव औदास्य मागतः। अयं उदासीन सम्प्रदाय चतुर्थाश्रमी कथ्यते अनादिकाले।उदासीन सम्प्रदाय उत्तरोत्तर अस्ति पुनश्चे दानी मपि स उदासीनोऽन्यश्च पुरापि उदास ए यासीत्

भाषा भाष्यम् प्रश्न—ॐ इलयांचक्रेति इस प्रशंसनीय ब्रह्मा के परिवर्तनशील संसार में उदासीन साधू का कौनसा स्थान था उत्तर—ब्रह्मा के वेदाध्ययन काल में उदासीन साधू का प्रथम स्थान था वह उदासीन यज्ञादि कार्य भी करते थे द्वितीय और तृतीय अवस्था का उस उदासीने अति क्रमण किया और वैश्वानर सम्बन्धी यज्ञ करता रहा इस प्रकार यह उदासीन सम्प्रदाय चतुर्थाश्रमी कहलाया जो अनादिकल से उदासीन (सम्प्रदाय) चला आता है और इस अविनाशी संसार के अंत तक चलता रहेगा।

वृहस्वमें भेरुभ्योह शिरसिरुदासी अग्निहुत मरुभ्यांवाए वै जातः
रुहरे वैगार्हस्थ विदवाँ याह ब्रह्मचर्यं जायाँ हाँ साम् ॥

(ऋग्वेद नारायणी शाखा मन्त्र-६-८)

वृहश्चमेतिः÷—यदाहि उदासीन अग्नौ आहुतिं प्रक्षिप्तवान् तदा विष्टये उदासः सम्भवत् ततश्चपरब्रह्म णे जायमान त्वात्तस्या दुदासीनात् मरुन्नामा वायुः सम्प्रजायत। आहूं तात्तस्मा दपि शस्य विषय की वाणः समभुवन् इत्थं क्रमेणोन्नति शिखर मारोहत उदासीनस्य जीवनम् क्रमेणानेनचस वेदस्याध्ययना ध्यायनमपि अकरोत्। इत्थं स वैरिकेन परंपरया पुराणकाल पर्यन्तं स्वाश्रितान् कार्याश्चकार, इदानी मपचि।

वृहश्चमेतिः—परब्रह्मपरमात्माने जब अग्नि में आहुति प्रदान करते हुए यज्ञ किया तो सर्वप्रथम संसार में उदासीन साधु प्रकट हुए फिर उदासीनों ने मरुतनाम की वायु का आवहन किया और उससे वाण उत्पन्न किये इसी प्रकार क्रमोन्नति करते हुऐ वे उदासीन साधु गृहस्थाश्र से दूर होकर अध्ययन अध्यापन करते कराते हुऐ अपना जीवन व्यतीत करते थे।

मुनिवर्य्यः—पढ़ालिखा कथा व्याख्यान करने वाला, सत्यासत्य का विवेकी पण्डित उदासीन साधु को मुनिवर (श्रेष्ठ साधु) कहते हैं॥

यः कोऽपि संदेह मयाचिकीर्षुः समागतः तत्सविधे विनीतः॥
श्रीचन्द्रदेवस्य धियः प्रभावात् व्यपेतसंशीति रसौ जगाम ॥५०॥

अर्थ—जो २ श्री श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रभगवान् के पास विनीतभाव से आता था तथा सन्देह निवृत्ति के लिये प्रश्न करता था वह आपकी विलक्षण बुद्धि की प्रतिभा-शक्तिको देखकर चकित हो जाता था और संदेहरहित होकर लौट जाता था॥५०॥

काशी निवासी द्विजसोमनाथः विद्याभिमानी विजय प्रशस्तिम् ॥
शास्त्रार्थ इच्छुक मनमत्त धीरो काश्मीरदेशागमनं विवादम् ॥५१॥

अर्थ—उन्हीं दिनों में काशीपुरी का रहने वाला ब्राह्मण जिसका पं० सोमनाथ त्रिपाठी नाम था देश देशान्तरों में विजय श्री प्राप्त करता हुआ काश्मीर देश में शास्त्रार्थ की इच्छा से आ निकला तथा काश्मीरस्थ विद्वानों के समक्ष शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रगट की ॥५१॥

श्रीचन्द्रदेवं गुरुदेव नत्वा बद्धाञ्जलिं प्राह सहर्षभावम् ॥
वादे विजित्य भवतः प्रसादात् साधारणं कार्यं समस्तगोष्ठी ॥५२॥

अर्थ—उसकी शास्त्रार्थ घोषणा को सुनकर भगवान् श्रीचन्द्र देव ने अपने विद्या-गुरु पं० विश्वम्भरदास जी उदासीन जी को बद्धाञ्जलि प्रणाम करके सहज स्वभाव हर्षितमन से प्रार्थना किया कि हे भगवन्! आपकी कृपादृष्टि से पं० सोमनाथ के साथ शास्त्रार्थ करने की मेरी इच्छा है तथा मुझे आशा है कि आप के आशीर्वाद से अवश्य यह साधारणसा कार्य होगा ॥५२॥

प्रश्नं च येषां कुरुते त्रिपाठी तस्या नितान्तं कुरुते विचित्रम् ॥
समुत्तरं शास्त्रप्रवाह सिद्धं श्रुत्वा च सर्वे चकिता भवन्ति ॥५३॥

अर्थ—पं० सोमनाथ ने जो जो प्रश्न किया उनका शास्त्रीय प्रणाली से ऐसा युक्तियुक्त प्रत्युत्तर गुरु श्रीचन्द्र जी ने दिया कि उपस्थित विद्वन्मन्डल भी उन की प्रतिभाशक्ति कों देख चकित चित्रलिखित रह गये इसका विस्तार प्रसंग गुरु श्रीचन्द्र दिग्विजय में लिखा है ॥५३॥

तद्भाषणं श्रोत्रपुटेन पीत्वा तुष्टा समग्रा जनता तदानीम् ॥
प्रणम्य विश्वम्भर पाद पद्मं श्रीचन्द्रदेवो गृहमा जगाम ॥५४॥

अर्थ—उस समय आपके विलक्षण भाषण को सुन, जनता भी मुग्ध हो गई तदनन्तर आप विद्या गुरु पं० विश्वम्भरदास जी उदासीन को प्रणाम कर घर वापिस चले आये ॥५४॥

उक्तं मया सकल-कामदुघं जनानां श्रीचन्द्र छात्र-चरितं परमादरेण ॥
पठन्ति ये निखिल-पापविनाश-हेतुं सद्यः प्रयन्ति नियतं परमं पदं ते ॥

अर्थ—यह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का पवित्र छात्र चरित्र मनुष्यों की सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला है जो इसे आदरपूर्वक श्रद्धाभाव से पढ़ेंगे वे सम्पूर्ण पापों से रहित होकर परमपद को अनायास प्राप्त करेंगे ॥५५॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य-वर्त्ति सक्खरनगरे श्रीमदुदासीनवर्य्य परमहन्सावंतस ब्रह्मनिष्ठ निखिलशास्त्र निष्णात्-योगिराज-सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखंडिदेव गुरुचरणकमल-चंचरीकायमान-मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्रीजगद्गुरु श्री चन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहन्से भगवान् श्रीचन्द्र विद्याध्ययन वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी षष्ठम किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥६॥

॥ सप्तम् किरण प्रारम्भः ॥

विनीत भावेन भवोऽपि मातरं नमामि वात्सल्यमयीं स्ततस्तनीम् ॥
पितुः पदे न्यस्त शिरास्ततो द्वयो र वाप वाष्पस्खलितां शुभाशिवम् ॥१॥

अर्थ—गृहगतान्तर भगवान् श्रीचन्द्र जी ने माताजी तथा फूफीजी को प्रणाम किया स्नेह के कारण माताके स्तनों से दूध-टपकने लगा फिर पिताजी को प्रणाम किया दोनों ने आनन्द-वारिपूर्ण-लोचनों से आपको शुभ आशीर्वाद दिया ॥१॥

समावृत्तं मातृ जनेन सत्कृतं गुणप्रकर्षेण सहर्ष मानसम् ॥
ददर्श सम्भूय जनो मनोज्ञता निदर्शनं तं प्रियदर्शनं चिरम् ॥२॥

अर्थ—इस प्रकार मातापिता से सत्कृत हुऐ गुणों की अधिकता से अत्यन्त प्रसन्नचित, अत्यन्त सुन्दर, सौंदर्य एकमात्र निदर्शन, आपको जनता बहुत देर तक प्यासी-आखों से देखती हुई तृप्त न होती थी ॥२॥

अथैकदाऽचिन्तयदेव चित्ते पिता ममाऽऽजन्म परोपकारे ॥
दत्तावधानः समयं व्यनैषीत् मयापि तद्वत् पतनी पमेव ॥३॥

अर्थ—एकदिन आपने मनमें विचार किया कि मेरे श्री पूज्यपाद पिताजी ने आजीवन परोपकार में ही-समय व्यतीत किया मुझे भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करना चाहिऐ ॥३॥

धर्म्मं समुद्धर्त्तु महं जगत्यां मास्थाय कायं नरवत् समागम् ॥
गार्हस्थ्यधर्म्मेण न तस्य सिद्धि रतो यतित्वव्रत माचरेयम् ॥४॥

अर्थ—मैं केवल हिन्दूधर्म्म का उद्धार करने के लिये ही मनुष्य विग्रह धारण करता हूँ संसार में गृहस्थधर्म्म में पड़कर देश देशान्तर में जाना कठिन हो जाता है अतः मुझे उदासीन-धर्म्म का आचरण करना चाहिऐ ॥४॥

आजीवनं हिन्दुजनाऽवनाय नाना-प्रदेश-भ्रमणं विधाय ॥
व्यापार्यतां जन्म परोपकारे स्वार्थात्परार्थः मरमो मतो हि ॥५॥

अर्थ—आजीवन नानादेशों में घूम २ कर पीड़ित हिन्दुओं का उद्धार करना चाहिए स्वार्थ से परमार्थ ही बड़ा माना गया है ॥५॥

तदेव जन्माऽस्ति कृत्तार्थमत्र यज्जायते देशहिताय तावत् ॥
धर्म्माय जात्यै यशसे विभूत्यै ज्ञानाय दानाय गवावनाय ॥६॥

अर्थ—वही जन्म वास्तव में जन्म कृतार्थ (सफल) कहे जाने के योग्य है जो हि देशरक्षाके हित हिन्दूधर्मरक्षार्थ, जातिरक्षा, यशोपार्जन, दान, - ज्ञान, - भक्ति विभूति, और गोरक्षा में बीते ॥६॥

एवं विचारेषु निमग्नचेताः शुश्राव लोकात् सहसा तदानीम् ॥
मदानुदासी ह्यविनाशिरामः समाययो यत्र समण्डलीकः ॥७॥

अर्थ—जबकि आप इस प्रकार के विचारों में निमग्न थे ठीक उसी समय आपने लोगों से सुना कि समंडली श्री १०८ महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ अखिलशास्त्र निष्णात् श्री उदासीन मुनि अविनाशिरामजी हमारे नगर में पधारे हैं ॥७॥

तस्यापि पार्श्वे जनताभिरेवं सुश्रावितोनिन्दित-चारु-चन्द्रः ॥
ग्रामेऽत्र बालोऽस्ति कुशाग्रबुद्धिः श्रीचन्द्र नामा सुगृहीत विद्यः ॥८॥

अर्थ—श्री अविनाशीरामजी के पास भी जनता ने आपकी चर्चा की कि "भगवन् हमारे इस नगर में एक विलक्षणबुद्धि दिव्यदर्शन बालक है जिसे श्रीचन्द्र कहते हैं और वा उच्चकोटि का विद्वान है ॥८॥

ज्ञानी तपस्वी कविता प्रवीणः ध्यानी मनस्वी शुभकर्मलीनः ॥
शान्तश्च दान्तश्च मनीशवर्य्यः धर्म्मागमज्ञश्च विमुक्त गर्वः ॥९॥

अर्थ—तथा ज्ञानी, तपस्वी, कवि, ध्यानी, मनस्वी, श्रेष्ठकर्मकर्त्ता, दान्त, शान्त मनीषी, धर्म्मज्ञ, और निरभिमानी भी है ॥९॥

गुणेऽपि रूपेऽपि जपेऽपि वाचि शीलेऽखिले शास्त्रचयेऽद्वितीयः ॥
श्रुतोऽपि दृष्टोऽपि न कोऽपि लोके तत्तुल्यबालः सुविशाल भालः ॥१०॥

अर्थ—गुण, रूप, जप, वाणी, आचार, शास्त्रादि में अद्वितीय हैं संसार में ऐसे तेजस्वी बालक न देखा है और न सुना ही है ॥१०॥

श्रुत्वैव मत्यर्थ-गुण प्रकर्षं बालस्य तस्याऽखिल-शंसितस्य ॥
लोकप्रसिद्धो यति मंडलीशः तस्थौ समाधा वविनाशीरामः ॥११॥

अर्थ—इस प्रकार श्रीचन्द्र भगवान् के गुणों को सुनकर ख्यातनामा महामंडलेश्वर श्री अविनाशीराम जी ने समाधि लगाई ॥११॥

समाधिना सर्वमवित्ततस्य शिवावतारस्य विचेष्टितानि ॥
समाधिभङ्गं मनसा प्रणम्य चक्रे स कौतूहल-चित्तवृत्तिः ॥१२॥

अर्थ—समाधिकाल में आपने शिवावतार भगवान् श्रीचन्द्र के विचित्र चरित्र को समझा और मन ही मन प्रणाम किया तथा अत्यन्त आश्चर्यित हो समाधिभंग किया ॥१२॥

श्रोतुं कथां तस्य दिनेदिनेऽगात् श्रीचन्द्रदेवः सह बालवृन्दैः ॥
दृष्ट्वा च तं दीप्त मुखारविन्दं हर्षान्वितोऽभूदविनाशिरामः ॥१३॥

अर्थ—भगवान् भी प्रतिदिन मंडलेश्वर जी की कथा सुनने के लिये अपनी बालमंडली के साथ जाया करते थे और आप के खिले हुऐ मुखारविन्द को देख कर मंडलेश्वर बड़े चकित हो जाते थे ॥१३॥

॥ श्री अविनाशिराम उवाच ॥

हे बाल कौ ते पितरौ गृहं क का जाति राख्याहि समस्तमेव ॥
किं कर्त्तुं कामोऽसि वरं पृथिव्यांतत्कौतुकं नः कुरु सौम्य दूरम् ॥१४॥

अर्थ—एक दिन श्री अवनाशिराम जी ने आप से पूछा कि हे बालक आप के माता पिता का क्या नाम है आप कहां के रहने वाले हैं आपकी जाति क्या है आप आगे क्या करने का विचार रखते हैं हे सौम्य हमारे इस कौतुहल को दूर करो ॥१४॥

निशम्य तं प्रश्न मुदारबुद्धिः संसार-सारं सकलं विवत्तुः ॥
अत्यल्पवाक्यैः श्रुतिसार भूतं श्रीचन्द्रदेवो मधुरं बभाषे ॥१५॥

अर्थ—भगवान् तो सर्वज्ञ हैं, महामेधावी हैं, आपने उन प्रश्नों का उत्तर बहुतसंक्षिप्त श्रुतिसम्मत परिमार्जित दिया जिस में संसार का रहस्य निहित था ॥१५॥

सुलक्षणा-नानक-नामधेयौ ख्यातौ जगत्यां पितरौ मदीयौ ॥
गृहञ्च सुलतानपुरेऽत्रमेऽस्ति जातोऽस्मि सम्भावित वेदिवंशे ॥१६॥

अर्थ—हे भगवन् मेरी पूज्य माता का नाम सुलक्षणादेवी तथा पिता का नाम श्रीनानक देव जी है हिन्दूक्षत्री वेदीवंश में उत्पन्न हुये हैं सुलतान पुर के हम रहने वाले हैं मुझे आप जगत का सेवा करनेवाला सेवक समझें ॥१६॥

उद्धर्तु कामोऽस्मि परं पृथिव्यां म्लेच्छैः समाक्रान्त मिमं स्वधर्म्मम् ॥
धर्म्मोहि सर्वस्य भवस्य धर्त्ता तस्मिन्धृत्ते धार्यत एव सर्वम् ॥१७॥

अर्थ—मैं म्लेच्छों से पीड़ित हिन्दू सनातन धर्म्म की रक्षा करना चाहता हूँ कारण कि धर्म्म ही एक सम्पूर्ण संसार का धर्त्ता है धर्म्म की रक्षा होने पर सारे संसार की रक्षा स्वयमेव हो जाती है ॥१७॥

भवन्त्यरण्ये विविधा हि बाधाः सिंहेभगण्डाहि-विकन्टकाद्याः ॥
अस्मिंश्च संसार बनेऽपि सन्ति स्त्रीपुत्र-शुक् क्रोध मदाभिमानाः ॥१८॥

अर्थ—जैसे बन में हाथी, शेर, सांप, कांटे आदि होते हैं वैसे ही इस संसार बन में भी स्त्री-पुत्र-काम-क्रोध-मद-अभिमान आदि तत्स्थानीय माने गये हैं ॥१८॥

क्रोधोऽत्र सिंहं परिखा च नारी गजोऽभिमानो मद एव गण्डः ॥
शोको हि सर्पो विषवल्लिजातं फलन्त्वपत्यं मधुरं परञ्च ॥१९॥

अर्थ—क्रोध सिंह है स्त्री परिखा है अभिमान हाथी है मद गैंडा है शोक सांप है अपत्य विषबेल का फल है परन्तु है बड़ा मधुर (बालक जैसा मेवा ना दिट्ठा ज्यों-ज्यों कच्चा त्यों-त्यों मिट्ठा) ॥१९॥

कालस्तु शार्दूल- पतत्रिराजः भ्रमत्यजस्त्रं सकलस्य मूर्ध्नि ॥
एतादृशे घोरतरे भवेऽस्मिन् सुखं कथं क्वास्ति शरीरभाजाम् ॥२०॥

अर्थ—समय (काल) ही एक भयावह गरुड़ स्थानीय जो सदा प्राणियों के सिर पर मड़राता रहता है इस प्रकार भयंकर संसार में शरीरधारियों को सुख कहां ॥२०॥

मलावलिप्ते किलगर्भपिण्डे कष्टं महत्सर्वं जनस्य तत्र ॥
तेनातितप्तो भगवन्तमित्थं बद्धाञ्जलिः प्रार्थयते शरीरी ॥२१॥

अर्थ—शरीर की तो आरम्भ से ही यही दशा है पहिले तो गर्भ में पूर्णमलमूत्र से संलिप्त गर्भपिंड में महाकष्ट होता है उस से तङ्ग आकर भगवान् से हाथ जोड़ कर प्रर्थना करता है ॥२१॥

हे हे दयालो नरकेऽत्र घोरे विपच्यते मे तनु रौदरेण ॥
वैश्वानरेणातिमृदुः समन्तात् हा हा हतोऽस्म्येष विभो दयस्व ॥२२॥

अर्थ—हे दयालु हे भगवन् मैं जठराग्नि से जला जारहा हूँ। मुझे इस घोर नरक से शीघ्र निकालें प्रभो मेरे कोमल २ अंग कोयला हो रहे हैं हाय रे मरा भगवन् मुझ दीन पर दया करो दया करो ॥२२॥

मात्राऽशितं तिक्त-कटु-प्रतप्तं कषाय क्षारं बहुपूतिगन्धि ॥
अम्लञ्च रूक्षञ्च विदाहकं च कुभोजनं मां प्रदहत्यजस्रम् ॥२३॥

अर्थ—हे भगवन् माता का खाया हुआ तिक्त, कटु, रूक्ष, कषैला, खारा, विदाहक, और दुर्गन्धियुक्त भोजन मुझे निरन्तर जला रहा है ॥२३॥

मुखं मृदु ज्वालयत एव भूरि मृदूनि मेऽङ्गानि तथेतराणि ॥
नेत्रद्वयं धुक्षति वह्निरेव कुक्षौ जनन्या बहुदुःखितोऽस्मि ॥२४॥

अर्थ—मेरे कोमल मुख और अंगों को जठराग्नि जला रही है मैं माता की कोख में अतिपीड़ित हूँ मुझे यहाँ से बाहर निकालो ॥२४॥

मलं मुखे मे पतित प्रकामं पुरा कृतंकर्म फलत्यवद्यम् ॥
नष्टोऽस्मि को मे जठरे स्थितस्य त्राता प्रभो पाहि हहा हतोऽहम् ॥

अर्थ—हे प्रभो मेरे मुख में माता का मल पड़ रहा है सत्य है पूर्वकृत कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है दयालो मैं महादुःखी हूँ मरा जारहा हूँ हाय कितना भयंकर दुःख है जिसके कारण विवश होकर मैं किम्पाकफल (कुचला विष) के समान बुरा फल पा रहा हूँ आपके बिना अब गर्भ में मेरी कौन रक्षा कर सकता है हे प्रभो रक्षा करो रक्षा करो ॥२५॥

स्मरामि पूर्वाणि निजानि तानि कृत्यानि बीभत्सतमानि यानि ॥
यरित्थमेतत् कटुकं विपाकं किम्पाक-तुल्यं फलमद्मि खिन्नः ॥२६॥

अर्थ—अब मैं जन्मान्तर में किये अपने भयंकर पापों को याद कर २ के विषदग्ध के सदृश कष्ट पारहा हूँ ॥२६॥

अस्मात्प्रभो घोरतराति कष्टात्
गर्भात् विनिष्काशय मां वहिस्त्वम् ॥
कोऽन्योऽस्ति योऽस्मात् किल कुम्भिपाकात्
पापाद्विना त्वां करुणानिधे माम् ॥२७॥

अर्थ—हे दयालो इस अत्यन्त घोर तर गर्भ के कष्ट से मुझे बहुत शीघ्र बाहर निकालो (हे करुणानिधे इस समय आपके सिवा मेरा कोई रक्षक नहीं है ॥२७॥

नाहं करिष्ये कुटिलानि भूयः कर्माणि हे नाथ शपेऽस्मि तुभ्यम् ॥
नमोनमो दीनजने दयस्व दयानिधे पाहि विपच्चमानम् ॥२८॥

अर्थ—हे भगवन् मैं आपके सामने "हाहा" खाता हूँ दुहाई देता हूँ आगे कभी ऐसा कोई काम न करूँगा जो आप को पसन्द न हो हे दयालो मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ मुझ गरीब का अवश्य उद्धार करें मैं बहुत दुःखी हूं ॥२८॥

इत्थं प्रतिज्ञाय जनो जनन्यां कुच्छ्रेण कुत्ते वहिरागतोऽपि ॥
संसार-संस्कार-वशेन तच्च विस्मृत्य सर्वं कुरुते कुकर्म ॥२६॥

अर्थ—इस प्रकार गर्भ में जीव भगवान् से करुण प्रार्थना करता है तब भगवान् उसे गर्भ से बाहर सकुशल निकाल देते हैं किन्तु जीव संसार की हवा लगते ही पूर्वसंस्कारों के वशीभूत होकर उस बात (दुःख) को भूल जाता है पुनः कुकर्म में प्रवृत्त होता है ॥२६॥

क्षुधा-पिपासा-मलमूत्रयुक्तं ज्वरातिसारादि रुजाभिभूतम् ॥
बाल्यं वयः कष्टतरं जनानां प्रियं तथाप्यद्भुत मेतदेव ॥३०॥

अर्थ—बाल्यावस्था में भूख-प्यास मल-मूत्र-ज्वर-दस्त आदिक रोग तंग करते हैं, आश्चर्य्य है फिर भी हम इससे प्यार करते हैं ॥३०॥

कामाकुलं क्रोधमदाभिमानं मात्सर्य्य लोभादि-विदूषितञ्च ॥
तारुण्यमत्यर्थ मनर्थकारि तथापि माद्यन्ति वदन्ति रम्यम् ॥३१॥

अर्थ—यौवनावस्था में काम-क्रोध-मद लोभ अहंकार आदिक अनेक दोष सताते हैं। यह अवस्था सारे दोषों की जड़ है। फिर भी हम इससे खुश रहते हैं और इस की प्रशंसा करते हैं ॥३१॥

चिन्ताऽऽधि-वैकल्य-सुतापमान लालाक्षिमन्दत्वमुखैः परीतम् ॥
वार्धक्य-मत्यन्त-विनिन्दनीयं ततोऽपि वैराग्य कथा न भाति ॥३२॥

अर्थ—वृद्धावस्था तो अत्यन्त निन्दनीय है जिसमें चिन्ता-विकलता-मानसिक पीड़ायें पुत्रों के अपमान के शब्द, मुख और आंखों का अन्दर धंस जाना आदि २. अनेकर दोष होते हैं आश्चर्य्य है फिर भी वैराग्य की बात अच्छी नहीं लगती ॥३२॥

प्रबोध्यमंदान मृतोपदेशैः सुनिश्चितै स्तत्वमसीति वाक्यैः ॥
उध्दर्त्तु कामोस्मि भवान्धकूपात् अपास्य जीवत्व शिवत्वभेदम् ॥३३॥

अर्थ—मैं चाहता हूँ कि इन जीवों का—जोकि कदर्थ में अज्ञानता से झगड़ रहे हैं उनको मैं तत्त्वमस्यादि वाक्यों से जीव और आत्मा का भेद दूर कर इस संसार सागर से उद्धार करूं ॥३३॥

निशम्य बालस्य वचो विचित्रं विसिस्मिये सोऽप्यविनाशिरामः ॥
जगाद्भूयो भवसागरेऽस्मिन् भवावतारोऽसि न संशयोऽत्र ॥३४॥

अर्थ—बालक रूप भगवान् श्रीचन्द्रजी के ऐसे विचित्र भाव को देखकर श्री मंडलेश्वर अविनाशीराम जी बड़े चकित हुए मुक्तकंठ से कहने लगे कि आप साक्षात् भगवान् शिव का अवतार हैं इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं ॥३४॥

त्वत्तो जगन्तुद्भव माप्नुवन्ति त्वमेव रक्षस्यऽखिलेश तानि ॥
त्वय्येव लीनानि भवन्ति चान्ते त्वमेव सर्वात्मतया विभासि ॥३५॥

अर्थ—आप से ही सारे लोक पैदा होते हैं। आप ही सब की रक्षा करते हैं और अन्त में सभी आपमें लीन होते हैं केवल आप ही सर्वत्र सब रूपों में विराजमान हैं ॥३५॥

युगे युगे त्वं मनुजावतारं धृत्वा विचित्रां वितनोषि लीलाम् ॥
प्रतिश्रुतं स्वं परिरक्षितुं त्वं दत्तावधानोऽसि महेश नित्यम् ॥३६॥

अर्थ—युग २ में आप अपनी प्रतिज्ञा (यदा यदा हि धर्म्मस्य) का पालन करते हो तथा प्रतिज्ञा पालने के लिये ही मनुष्य शरीर धारण कर विचित्र लीला करते हो आप अपनी प्रतिज्ञा कभी नहीं भूलते हो ॥३६॥

लोकोपकाराय गृहं विहाय यतित्व मङ्गीकुरु देव देव ॥
गार्हस्थ्य जालेन निबद्धजन्तुं धर्म्मप्रचाराय कथं क्षमः स्यात् ॥३७॥

अर्थ—इसलिये आप अब घर का परित्याग करें और उदासीनधर्म्म की दीक्षा लें कारण कि गृहस्थ में रहते हुए कुछ न कुछ परतन्त्रता अवश्य रहती है अतः अच्छी प्रकार प्रचार कार्य नहीं हो सकता ॥३७॥

वृद्धोऽसि वक्तुं न च पारयामि कार्य्यं मदीयं त्वमिदं कुरुष्व ॥
स्कन्धे त्वदीये विनिवेशभारं स्वस्थोऽस्मि विस्तारय धर्म्ममार्गम् ॥३८॥

अर्थ—मैं भी अब बूढ़ा हो गया हूँ बोलने की शक्ति मन्द पड़ गई है अब हिन्दू धर्म्म प्रचार का कार्य्य आप अपने ऊपर लें धर्म्म का प्रचार करें और मुझे अब छुट्टी दें ॥३८॥

आभाष्य चेत्थं ह्यविनाशिरामः श्रीचन्द्रदेवञ्च विभाव्य पात्रम् ॥
काषायवस्त्रादि पुरः सरेण अदीक्षयत् सोऽहमनेन तूर्णम् ॥३९॥

अर्थ—ऐसा कह कर श्री अविनाशिराम उदासीन जी ने श्रीचन्द्रजी को परमयोग्य पात्र (अधिकारी) समझ कर "ॐ सोऽहम्" मन्त्र से श्रौतचतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय की पद्धति अनुसार उदासीन भेष की दीक्षा दी ॥३९॥

अङ्केषु वाणेन्दु मिते शुचौच श्रीवैक्रमेऽब्दे खलु पूर्णिमायाम् ॥
दीक्षाञ्च शिक्षा मविनाशिरामात् जग्राह तन्त्राणि च सर्वमन्त्रान् ।

अर्थ—और सम्पूर्ण मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र दीक्षा प्रदान वि० सम्वत् १५५६ आषाढ़ शु पूर्णिमा को यथाशास्त्र विधि सम्पन्न हुआ ॥४०॥

श्रीचन्द्र देव स्तदनन्तरं च प्रक्षाल्य पादौ स्व गुरो रपात्सः ॥
पादोदकं भक्ति युतश्च मुर्ध्ना नमामि मर्य्यादित सर्वलोकः ॥४१॥

अर्थ—तत्पश्चात् भगवान् श्रीचन्द्रजी ने अपने श्रीगुरुजी का चरणामृत पान कि और अतिश्रद्धा से श्री चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया आप ही सब को मर्या सिखाते हैं ॥४१॥

गुरु प्रणालिं सकलं रहस्यं सर्वाधिकारं त्वरया वितीर्य ॥
यज्ञं महान्तं समकारयत्सः निश्चिन्त-चित्तोऽप्यविनाशिरामः ॥४२॥

अर्थ—श्रीगुरु अविनाशिरामजी ने निश्चिन्त होकर उदासीन गुरु प्रणालि क्र रहस्य पूर्वक बताई तथा अपना सर्वाधिकार सौंपा अनन्तर बड़ा भारी भंडारा किया गया ॥४

दानेन मानेन सुभोजनेन सन्तोषयामास जनान् समेतान् ॥
श्रीचन्द्रदेवस्य विलोक्य दीक्षां प्रतस्थिरे ते सदनानि लोका ॥४३॥

अर्थ—मान-दान सुभोजन से यथायोग्य सब का सत्कार किया गया भगवान् कल्याणकारी गुरु दीक्षा उत्सव को देख कर जनता अपने अपने घर को चली गई ॥४३॥

॥ श्रीअविनाशिराम उवाच ॥

हे सौम्य ! यद्यप्यखिलानि वेत्सितत्त्वानि ते नास्ति किं मप्यबुद्धम् ॥
लोकानुवृत्तिं त्वनुसृत्य तुभ्यं वदामि किञ्चित् शृणु सावधानः ॥४४॥

अर्थ—हे सौम्य यद्यपि तुम सम्पूर्ण शास्त्रों में अच्छा परिचय रखते हो ऐसी बात नहीं जो तुम्हारा अविषय हो तथापि मैं लोक व्यवहार के अनुसार तुम्हें कुछ कहता तुम सावधान होकर सुनो ॥४४॥

प्राचीन कालादयमागतोऽस्ति हिन्दुष्वनिन्द्यो गुरुशिष्यभावः ॥
सम्पत्स्यते ते जगतीतलेऽस्मिन् समुख्य माचार्य्य पदं प्रसिद्धम् ॥४५॥

अर्थ—यह गुरु शिष्य की प्रथा हिन्दूधर्म्म में प्राचीन काल से चली आ रही

जो कि बिलकुल निर्दोष है आप भी आगे चल कर इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य्य होगें ॥४५॥

एकत्व मास्थापय हिन्दुमात्रे समुद्धराऽऽर्य्यान् सकलान कष्टात् ॥
धर्म्मप्रचारेण लभस्व कीर्त्तिं कल्पस्थिरां दोषविवर्जिताञ्च ॥४६॥

अर्थ—आपका यह मुख्य कर्त्तव्य है कि हिन्दूमात्र में एकता का मन्त्र फूकें और उनका उद्धार करें धर्म्म के प्रचार से आप अक्षय कल्पान्तस्थायी कीर्त्ति प्राप्त करें ॥४६॥

योऽसावुदासीन पथो हि वृक्षः तं सिञ्च शुष्को विलयं प्रयाति ॥
धर्म्मप्रचारेण जलेन शीघ्रं मृतेऽमृतं मोघमुदारबुद्धेः ॥४७॥

अर्थ—अब उदासीन सम्प्रदाय रूप वृक्ष सूखा जा रहा है इसे प्रचार रूपी जल से हरा भरा करें आप समझदार हैं मरने पर अमृत भी किस काम का अर्थात् "का वर्षा जब कृषी सुखाने, समय चूक पुनि का पछिताने ॥४७॥

स्वयं पञ्च देवोपचारे निमग्नः सदाचार-शिक्षा-प्रदाने प्रवीणः ॥
समस्तेषु हिन्दुष्विदं धर्म्म कार्यं विधायाऽऽशु वत्स प्रसिद्धिं लभस्व ॥

अर्थ—आप पञ्च देवोपासना का प्रचार करें और दूसरों को भी इस की शिक्षा देवें सम्पूर्ण हिन्दुधर्म्म और आचार का प्रचार करें और प्रसिद्धि प्राप्त करें ॥४८॥

एकत्व सूत्रेण समस्त हिन्दून् हारी कृतान् वृत्तसुशोभमानान् ॥
स्वातन्त्र्यभाजो निजकर्म लग्नान् कृत्वा कृतार्थो भवितासि भूयः ॥४९॥

अर्थ—आप सम्पूर्ण हिन्दुओं को एकता के सूत्र में हार की तरह गुन्थनकर स्वतन्त्रता देवी के गले में डालें अर्थात् उन्हें स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ायें ॥४९॥

त्यक्त्वा स्वधर्म्मं यवनाश्च सन्तः चिन्वन्ति पापानि जना इदानीम् ॥
भीतिं समस्ता मपहाय तेषां स्वधर्म्म शिक्षां वितराऽऽशु पुण्यम् ॥५०॥

अर्थ—जो हिन्दू जनता भयके मारे धड़ाधड़ मुसलमान बन रही है उन्हें फिर से हिन्दू बनाके निर्भय बनायें और उनमें अपने हिन्दूधर्म्म की दृढ़ शिक्षा दें ॥५०॥

उद्धृत्य बीभत्सतराच्च पापात् लोकान् समग्रान् विनियम्य धर्म्मे ॥
सम्पाद्य कीर्त्तिं धवलां धरण्यां संहृत्य देहं ब्रज धामनित्यम् ॥५१॥

अर्थ—इस भयंकर पाप से इनका पञ्जा छुड़ा, सबको अपना २ धर्म्म सिखा और अपनी विमल कीर्त्ति संसार में पैदाकर अपने इस शरीर से निजधाम पधारें ॥५१॥

संसार-रक्षण-कृते य उदासवेशः त्यक्त्वा गृहं च विधृतो गुणसन्निवेशः
श्रीचन्द्रदेवविहितोऽत्र हितोपदेशः चित्ते द्वयी मम सदा वसताद्विशेषा

अर्थ—घरबार छोड़कर संसार के कल्याण के लिये जो भगवान् श्रीचन्द्रजी ने धा स्वीकार किया तथा जो मुनि श्री अविनाशी रामजी के प्रश्न के उत्तर में सदुपदेशमय प्रत्यु दिया, वे सदा दोनों मेरे मनमें निवास करें ॥५२॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्री मदुदासीनवर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिलशास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डि देव गुरुचरणकमल चंचरीकायमान् मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासी विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे भगवान् श्रीचन् श्रौतचतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय धारण प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी सप्त किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥७॥

॥ अष्टम किरण प्रारम्भः ॥

ओंकारतः सृष्टिरियं विचित्रा वेदा उदासीन मतं च तस्मात् ॥
'ओंसोऽहं' मित्येष गुरोःहि मन्त्रः उपासते यं शिव तत्त्व निष्ठाः ॥१॥

अर्थ—ओंकार से समस्त संसार उत्पन्न हुआ। चारों वेद और उदासीन सम्प्रदा की उत्पत्ति भी ओंकार से हुई है अतएव उदासीन सम्प्रदाय में "ओंसोऽहम्" मन्त्र की दी दी जाती है जिसे बड़े बड़े महापुरुष जप करते हुये ब्रह्मनिष्ठत्व पद प्राप्त करते हैं ॥१॥

ओंकार वाच्योहि जगन्नियन्ता गुरोर्गरीया नखिलान्तरात्मा ॥
लोकाश्च कालाश्च तथैव वेदाः मात्रात्रयं ब्रह्महरीश्वराश्च ॥२॥

अर्थ—ओंकार शब्द का वाच्यार्थ जगन्नियन्ता साक्षात् परम्परा गुरोर्गरीयान् अन्तर्यामी भगवान् है योग दर्शन में लिखा है "तस्यवाचकःप्रणवः" स सर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्, सातलोक, तीनोंकाल, चारोंवेद, तीनों मात्रायें और ब्रह्मा विष्णु महेश सभी वहीं से सत्ता प्राप्त करते हैं ॥२॥

॥ अथ गुरु प्रणाली ॥ (उदासीन गुरु परम्परा)

ॐ सोऽहं वैदिकं मन्त्रं जपयामास चेश्वरः ॥
शाखात्रय मस्माक मीश्वरेण त्रिधाकृतम् ॥३॥

अर्थ—प्रथमतः "ॐसोहम्" इस वैदिक मन्त्र का जप ईश्वर ने किया तथा ईश्वर ने

ही अस्माकम् (उदासीन सम्प्रदाय की) शाखा को ब्राह्मी-वैष्णवी-शैविकी-तीन शाखों में विभक्त किया तात्पर्य्य—ओंकार से ही सब सृष्टि की उत्पत्ति मानी है वेदों का मूल मन्त्र ओंकार ही है इसीसे उदासीन शब्द बनता है तथा उदासीन सम्प्रदाय चला है "ओंअं आदि उदासी आये" यही ॐ सोऽहं वैदिक मन्त्र उदासीन सम्प्रदाय का मूल मन्त्र है इसके उपासक स्वयं ईश्वर हैं जो उदासीन सम्प्रदाय में प्रथम आचार्य्य माने गये हैं ईश्वर के उदासीन होने में देखो नीचे लिखा प्रमाण।

ईश्वरः काषायवस्त्रान्वितः शंकरं समुपादिदेश ॥४॥

(परशुरामसूत्र प्रथमपाद)

अन्यत्र भी प्रमाण है :—

काषायाणि वस्त्राणि दधान स्तावदीश्वरः ॥
ओंसोऽह मिति मन्त्रस्य उपदेश मदात्पुरा ॥४॥
त्रिवारं चरणोदकं मन्त्रं चापि सहैव हि ॥
दत्तवान् स महद्बन्धून् स्वयं हि जगदीश्वरः ॥५॥
परोपकार-लग्नानां धर्म्मरक्षक-कारिणाम् ॥
उदासीनानां साधूनां सम्यक् वृत्तं हि विद्यति ॥६॥

अर्थ—पूर्वकाल में ईश्वर काषाय वस्त्रों को धारण करते हुये 'ॐ सोऽहम्, का मन्त्र जपते हुये अपने शिष्य ब्रह्मा-विष्णु-शङ्कर) से तीन दफे चरण धुआय उस चर्णोदक के साथ साथ ॐ सोऽहम् गुरुमन्त्र का उपदेश दे उदासीन भेष जो जगत् पूज्य है उसे धारण कराया। परोपकार में संलग्न धर्मरक्षक उदासीन मतावलम्बी साधुओं की वृत्ति को स्वयं भी उस जगदाधार ने धारण किया था। तात्पर्य्य यह कि इस मन्त्र को पृथक २ करके ब्रह्मा-विष्णु-महेश को दिया तथा स्वयं भी धारण किया अतः ईश्वर तीनों देवों के मन्त्रउपदेष्टा है तथा पातञ्जलि-योगसूत्र जो कि समाधिवाद २६वां है जिसके पढ़ने से समन्वित हो जाता है कि ईश्वर ब्रह्मा-विष्णु-महेश-तीनों देवों का गुरु है ॥४-५-६॥

ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च उद्भवस्थिति नाशकाः ॥
ब्रह्मणश्च सनकाद्याश्च प्रणवस्वै वोपासकाः ॥७॥

अर्थ—ब्रह्मा विष्णु और महेश जो क्रमशः सृष्टि की उत्पत्ति पालन और संहार करने वाले हैं ब्रह्मा के चारों पुत्र सनकादि (सनक-सनन्दन सनातन-सनतकुमार) को यही ॐ सोऽहम् उदासीन गुरु मन्त्र का उपदेश हंस भगवान् उदासीन महात्मा ने दिया था ॥७॥

ये आसन् ब्रह्मणः पुत्रा हंसशिष्याश्च ते मताः ॥
ऐषां शिष्यो नारदश्च सर्वशास्त्र-विशारदः ॥८॥

अर्थ—सनकादिक ब्रह्मा के चारों पुत्र, उदासीन महात्मा हंस भगवान् के शिष्य (चेले) होने से श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन साधु थे तथा सनकादि मुनि उदासीन महात्माओं ने नारदमुनि को 'ओंसोऽहम्' इस उदासीन मन्त्र का उपदेश देकर उदासीन महामुनि बनाया ॥८॥

नोट—हंस भगवान् का उदासीन होना स्कन्द महापुराण में प्रभास खंड—प्रभास-महात्म्य से विदित होता है—

॥ रोमहर्षण उवाच ॥

श्रीवत्साकं जगद्योनिं हरि मोंकार रूपिणम् ॥
अप्रमेयं गुरुदेवं निर्मलं निर्मलाश्रयम् ॥१२॥
हंसं शुचि पदं व्योम व्यापकं सर्वदं शिवम् ॥
उदासीनं निरायासं निष्प्रपञ्चं निरञ्जनम् ॥१३॥

अर्थ—रोमहर्षण जी कहते हैं कि लक्ष्मी चिन्हधारी संसार के उत्पत्ति करता हरि ओंकार रूपी अनुपम गुरु शुद्धस्वरूप निर्मल, मलविक्षेपसे रहित को आश्रय देने वाले, पवित्र स्थान में रहने वाले, व्यापक स्वरूप, सर्वदा कल्याण कर्त्ता, सर्वत्र व्यापक, मायासे रहित निर्विकार, ऐसे हंसभगवान् उदासीन - महात्मा, विष्णुस्वरूप को मैं नमस्कार करके कथा करता हूँ ॥१२-१३॥

नोट—हंसावतार भगवान् का पढ़कर बहुतों को हंसपक्षी का शरीर होना भ्रम हो जाता है। सो यह भ्रम निर्मूल है भगवान् ने हंसरूप वही धारण किया था। जो चतुर्थाश्रमी उदासीनो के चारभेद (कुटीचक-बहूदक-हंस-परमहंस) में से एक है हंस परमहंस में अधिक भेद नहीं थोड़ा ही अन्तर है, भगवान् का हंसावतार होना पक्षी रूप में किसी पुराण में भी सिद्ध नहीं होता है उपरोक्त श्लोक से भी यही प्रमाणित है श्रीवत्सांक-जगद्योनि-इत्यादिविशेषणों से ओंकार रूप हरि का होना, और अप्रमेय-गुरुदेव-इत्यादिविशेषणों से अन्धकार को दूर कर प्रकाश करना, उदासीन होना, इत्यादि उदाहरण मनुष्य शरीर में हो सकते हैं। तथा मूल में भी पक्षी शब्द नहीं हैं हंसावतार का नाम पढ़कर हंसशब्द का पक्षी अर्थ लगना, मानो अर्थ का वैसा ही अनर्थ करना है, जैसा कि बन्दर वाची हरि शब्द को पढ़कर, विष्णु वाच्यार्थ हरि शब्द का भी वानर अर्थ कर देना कितना अज्ञान मिश्रित पाप है। सनकादिकों का उदासीन होते में प्रमाण पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अ० ३।

सनन्दनादयो ये च पूर्वं स्रष्ट्वा तु वेधसः ॥
न ते लोकेष्वसंजन्त ह्युदासीनः प्रजा सुते ॥१६॥

नोट—किसी किसी पुस्तक में उदासीन शब्द के स्थान पर "निर्पेक्ष" ऐसा पाठ भी मिलता है, शब्दार्थ दोनों का एक ही है अर्थात् निर्पेक्ष शब्द का भी उदासीन ही है।

नारदमुनि उदासीन हैं—तुलसीदासजी अपनी रामायण बालकाण्ड पार्वती के विवाह काल में सखियों तथा सुनयनाके सम्वाद में उदासीन साधु न धन, न धाम, न जाया (स्त्री) है ऐसा बता रहे हैं।

नारद कर मैं कहा बिगाड़ा, वसत भवन जिन मोर उजाड़ा ॥१॥
सांचेहु उनके मोह न माया, उदासीन धन धाम न जाया ॥२॥

कपिलः सांख्यकर्त्ता च उदासीन मुनिर्मतः ॥
नारदमुनितः प्राप्तं विधिना प्रणवं हि सः ॥६॥

अर्थ—नारदमुनि ६ उदासीन जी से प्रसिद्ध सांख्य शास्त्र के कर्त्ता कपिल मुनिजी ७ विधिपूर्वक गुरु दीक्षा ग्रहण कर उदासीन साधु बने ॥६॥

प्रापच्छत् स कपिलायै नाम्ना देवहुतिस्तुया ॥
तस्यैचमन्त्रं मादत्तं मुनिनावै दुर्वाससा ॥१०॥

अर्थ—कपिल मुनि जी ने देवहूती जी ८ को गुरुमन्त्र दिया जिन्हों का नाम कपिला देवी था तथा कपिला देवी जी से दुर्वासा मुनि ९ ने गुरु मन्त्र प्राप्त किया ॥१०॥

पराशरो मुनिर्ज्ञानी पश्चासीत तपोधनः ॥
अस्मादेवश्च दीक्षां सः प्रलब्धवान् महामुनिः ॥११॥

अर्थ—जो कि बड़े ज्ञानी और तपोधन महात्मा पराशर मुनि थे१० उन्होंने भी दुर्वासा मुनि से गुरु दीक्षा प्राप्त की जो कि उदासीन महात्माओं में एक उच्चकोटि का स्थान प्राप्त कर चुके थे ॥११॥

नोट—यही महात्मा दुर्वासा मुनि उदासीन भगवान् श्रीकृष्ण के गुरु थे यह बात गर्गसंहिता माधुर्य्य खंड अ० १ से ४ तक में स्पष्ट होती है।

भाण्डीरे मे गुरुः साक्षात् दुर्वासा भगवान् मुनिः ॥

नोट—प्यारे हिन्दू वीरो भगवान् श्रीकृष्ण, उदासीनाचार्य्य दुर्वासा मुनि के चेले थे, तभी अपने आपको उदासीन कहते हुए रुक्मिणि को समझाते हुए कहते हैं कि हे रुक्मिणि तू मेरे को क्या समझती है हम वही हैं क्षण में सृष्टि उत्पत्ति पालन संहार करने वाले संसार में कोई भी वस्तु मेरे को लेपाय मान नहीं कर सकती

उदासीना वयं भद्रे न स्त्र्यपत्यार्थकामकाः ॥
आत्मलब्धास्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रिया ॥२०॥

(भागवत स्कंन्ध १० अ० ६०)

अर्थ—हम उदासीन हैं अतः संसार के किसी भी पदार्थ में हमारी आसक्ति नहीं है हमें स्त्री-धनादिक की इच्छा नहीं है। आत्मलाभ से परिपूर्ण तथा दीपकादिकों की भाँति साक्षी एवं निष्क्रिय हूँ ॥२०॥ इस बात की प्रौढता भगवान् गीता अ० १२ में भी करते हैं।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ॥
सर्वारम्भ परित्यागी यो मद्भक्तः समेप्रियः ॥१६॥

अर्थ—जिसको किसी प्रकार की कोई इच्छा नहीं है बाहर भीतर पवित्र है सर्व प्रकार की व्यथा उसकी नाश हो गई है ऐसे संपूर्ण कर्त्तव्यों को त्याग करनेवाला मेरा भक्त उदासीन महात्मा मेरे को प्यारा है ॥१६॥ आगे जीवन मुक्त और ईश्वर की उपमा देने में उदासीन महात्मा ही उपमान माने जाते थे तभी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी और जीवन मुक्त की तुलना उदासीन बन कर करते हैं यह शब्द यौगिक नहीं रूढ़ी है।

उदासीन वदासीनो गुणै र्यो न विचाल्यते ॥
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥

(गीता अध्याय १४)

अर्थ—जो महात्मा उदासीन साधु की भांति अपने गुणों से नहीं विचिलित होता। भगवान् को यदि उदासीन पद का अर्थ उदासीन साधु न लगाना होता तो उपराम या असङ्ग अर्थ करना होता तो वे पाठ में वत् प्रत्यय न देते उदासीन शब्द का अर्थ असंग मानने से वत् प्रत्यय निरर्थक हो जाता है अतः यहाँ उदासीन शब्द का अर्थ उदासीन धर्म्मावलम्बी साधु ही मानना पड़ेगा भगवान् अपनी तुलना उदासीन साधुओं से करते हैं ॥२३॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥
उदासीन वदासीन मसक्तं तेषु कर्मसु ॥६॥

(गीता अध्याय ६)

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन कर्म मुझे बन्धन में नहीं डाल सकते कारण मैं उन में आसक्त नहीं हूँ मैं उदासीन साधु की तरह ही आसीन नाम स्थित हुए मुझ परमात्मा को वे कर्म नहीं बाँधते तभी उदासीन सम्प्रदाय की उपमा आज तक सब करते चले आ रहे हैं उदासीन अपनी उपमा आप ही रखते हैं मतलब उदासीनों के सदृश उदासीन ही हैं तभी श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि उदासीनों के सदृश आसीन हो ॥६॥

सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थ द्वेष्यबन्धुषु ॥
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धि र्विशिष्यते ॥६॥

(गीता अध्याय ६)

अर्थ—सुहृद मित्र और शत्रु में उदासीन महात्मा मध्यस्थ रहते हैं तथा द्वेषी और बन्धुगणों में धर्म्मात्मा, और पापियों में समान भाव से रहने वाला अतिश्रेष्ठ हैं यहाँ पर उदासीन शब्द का अर्थ असंग, अनपेक्ष नहीं लगेगा यदि उदासीन शब्द का अर्थ तटस्थ पक्षपात रहित लगावे तो आगे पुनः शब्द सम पड़ा हुआ है जिस से पुनरुक्ति दोष आता है कारण प्रथम उदासीन शब्द का अर्थ भी उभयपक्ष में बराबर रहने वाला हुआ तथा सम का अर्थ भी समान हुआ यह दोनों शब्द एकार्थ वाले पुनरुक्ति दोष भगवान् कैसे कह सकते थे इस लिए यह उदासीन शब्द उदासीन साधु का ही बोधक मानना ठीक है उपरोक्त सभी प्रमाणों से सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण उदासीन धर्म्मावलम्बी थे ॥६॥

जमदग्निमुनि रस्माद्दीक्षां प्राप्त प्रतापवान् ॥
जमदग्नि स्वपुत्राय परशुराम धीमते ॥१२॥

अर्थ—जमदग्नि११ मुनि ने पराशरमुनि से गुरुदीक्षा लेकर अपने पुत्र परशुराम१२ ❀१ मुनि को गुरुदीक्षा देकर उदासीन साधु बनाया ॥१२॥

दीक्षा मदात्तपोनिष्ठ असौ वै कौशिकं मनिम् ॥
कौशिके कुशिक मुनिः रुदासीनः गुरु स्तदा ॥१३॥

अर्थ—परशुराम जी उदासीन ने कौशिक मुनि१३ जी को दीक्षा दिया तथा उदासीन साधु बनाया जिसका नाम विश्वामित्र था विश्वामित्र ने अपने पुत्र कुशिक मुनि१४ को उदासीन सम्प्रदायी गुरु दीक्षा दे उदासीन साधु बनाया इन्हीं विश्वामित्र उदासीन मुनि के चेले भगवान् श्री राम ❀२ थे ॥१३॥

मुनिः सुप्रभ नामाऽऽभूदीश ध्यान परायणः ॥
उदासीन पथाचार्य्यो श्रीवर्द्धनो महामुनिः ॥१४॥

१❀परशुराम उदासीन महात्मा के शिष्य भीष्मपितामह तथा सूर्य्य पुत्र कर्ण भी थे परशुराम जी की उत्पत्ति की कथा महाभारत शान्तिपर्व-बनपर्व बाल्मीक तथा अध्यात्म रामायण भागवत् स्कन्ध ६ में आती है।

❀२ भगवान् रामचन्द्र जी के उदासीन होने में प्रमाण देखो—कल्याण गोरखपुर का रामायणाङ्क—पृष्ठ ३८८ में उदासीन साधु भगवान् श्री राम का शीर्षकलेख

अर्थ – श्रीकुशिक मुनि उदासीन ने अपने शिष्य सुप्रभु मुनि१५ को गुरु दीक्षा दी यह बड़े जगदीश्वर ध्यान परायण रहा करते थे तथा सुप्रभु मुनि-जोकि उदासीन पथ के आचार्य थे उन्होंने श्रीबर्द्धन महामुनि१६ को गुरु दीक्षा दी ॥१४॥

उदासीन महामन्त्रं स वत्स मुनये ददौ ॥
दीक्षितं सोऽपि चक्रेऽथ श्री मुनिं सुखदर्शनम् ॥१५॥

अर्थ—श्रीवर्द्धन महामुनि उदासीन ने महामन्त्र को दीक्षा वत्समुनि को दी१७ श्रीवत्स मुनि उदासीन ने अपने चेले सुखदर्शन मुनि१८ को गुरु मन्त्र देकर उदासीन साधु बनाया ॥१५॥

विततार महामन्त्रं कनिष्क मुनयेच सः ॥
कनिष्को मुनिवर्य्योऽपि मुनये भास्कराय च ॥१६॥

अर्थ—श्रीसुखदर्शन मुनि ने उदासीन गुरुमंत्र जो कि महामन्त्र है उसका विस्तार करने के लिये कनिष्क मुनि१९ को देकर अपना शिष्य बनाया तथा कनिष्कमुनि ने भास्करमुनि२० को गुरु मन्त्र का उपदेश दिया ॥१६॥

भास्करोऽपि मुनि श्रेष्ठ महेन्द्र मुनये ततः ॥
मार्तण्ड मुनये सोऽपि ज्ञान शुद्धान्तरात्मने ॥१७॥

अर्थ—श्री भास्करमुनि ने महेन्द्र मुनि२१ को महेन्द्रमुनि ने मार्तण्ड मुनि२२ को गुरुमंत्र का उपदेश दिया यह सब शुद्धान्तरात्मा ज्ञानी महापुरुष उदासीन मुनि थे ॥१७॥

ततोऽरविन्द मुनये ज्ञानधी मुनिपुङ्गवः ॥
मकरन्द मुनिं सोऽपि दीक्षयामास योगवित् ॥१८॥

अर्थ—मार्तण्ड मुनि से अरविन्द मुनि२३ ने दीक्षा पाई तथा ज्ञान में बुद्धि रखने वाले श्रेष्ठ मुनि बने तथा अरबिन्द मुनि उदासीन ने मकरन्द मुनि२४ को दीक्षा देकर योग्य उदासीन साधु बनाया ॥१८॥

मकरन्दो मुनि श्रेष्ठो हेमाद्रिं च मुनिं ततः ॥
तपोनिधिं मुनिं सोऽपि सर्वेश्वर मुनिं च सः ॥१९॥

अर्थ—मुनि श्रेष्ठ मकरन्द मुनि२५ ने हेमाद्रिमुनि को तथा हेमाद्रि मुनि ने तपोनिधि मुनि२६ को और तपोनिधि मुनि ने सर्वेश्वर मुनि२७ को परम्परागत उदासीन गुरुमन्त्र की दीक्षा दी ॥१९॥

सर्वेश्वरो मुनिश्चापि स्वर्णविन्दु मुनिं तथा ॥
पद्माचमुनये सोऽपि दीक्षामन्त्रं प्रदत्तवान् ॥२०॥

अर्थ—सर्वेश्वर मुनि ने स्वर्णविन्दु मुनि[२८] को गुरुमन्त्र दिया तथा स्वर्णविन्दु उदासीन महात्माने पद्माच मुनि[२९] को गुरु दीक्षा प्रदान कर उदासीन सम्प्रदाय में लाते भये ॥२०॥

मुनीन्द्र श्चापि पद्माचः श्रीरत्नमुनि सत्तमम् ॥
दीक्षतं विदधे सोऽपि मुनिंहरियशाभिधम् ॥२१॥

अर्थ—पद्माच मुनि ने श्रीरत्न मुनि[३०] को तथा श्रीरत्नमुनि ने हरियश मुनि[३१] को उदासीन भेष वाला गुरुमन्त्र देकर अपना चेला बनाया ॥२१॥

हरियशा गुरुश्रेष्ठो दीक्षोदासमतस्य वै ॥
चन्द्रमुनि महाप्राज्ञ स्तस्माच्च मतङ्गो मुनिः ॥२२॥

अर्थ—गुरुओं में श्रेष्ठ हरियशमुनि ने उदासीन भेष को दीक्षा अपने चेले चन्द्रमुनि[३२] को देते भए जोकि बड़े बुद्धमान् थे चन्द्रमुनि ने मातङ्गमुनि[३३] को गुरु मन्त्र उपदेश देकर अपना चेला बनाया ॥२२॥

उदासीन मुनि श्रेष्ठो भक्ति शास्त्र विशारदः ॥
मतङ्गमुनेः शकाशाच्च्यवनोहि महामुनिः ॥२३॥

अर्थ—भक्ति शास्त्र प्रवीण उदासीन मुनि श्रेष्ठ मुनि च्यवन जी[३४] ने महामुनि मातङ्ग मुनि जी से गुरु दीक्षा प्राप्त की ॥२३॥

ततस्त्रिलोचन मुनि रुदासीन तपोनिधिः ॥
त्रिलोचनमुनेः शिष्यो मुनि रासीत् प्रभाकरः ॥२४॥

अर्थ—च्यवन मुनि उदासीन जी से त्रिलोचन मुनि[३५] उदासीन जी ने और त्रिलोचन मुनि जी से प्रभाकर मुनि[३६] उदासीन जी ने गुरु दीक्षा प्राप्त की थी ॥२४॥

दुख मोचन्मुनेर्मन्त्रं प्राप्तवान् दाडिभो मुनिः ।
दाडिभान् च मुने दीक्षां प्राप प्रातपवान् मुनिः ॥२५॥

अर्थ—उदासीन प्रभाकर मुनि जी से दुःखमोचन मुनि[३७] ने गुरु दीक्षा ली इनसे दाडिभ मुनि[३८] ने, और दाडिभमुनि उदासीन से प्रतापवान उदासीनमुनिजी[३९] ने गुरुमन्त्र लिया था ॥२५॥

प्रतापवान्मुनिर्मान्यो पद्ममुनि नरोत्तमः ॥
सुषेण मुनये प्रादा दीक्षां च गुरुभिः प्रदाम् ॥२६॥

अर्थ—उदासीन महात्मा प्रतापवान् मुनि जो से पद्म मुनि जी[४०] ने गुरुदीक्षा प्राप्त की तत्पश्चात् पद्ममुनिजी ने अपने दयापात्र सुषेणमुनि[४१] को उदासीन गुरुमन्त्र से दीक्षित किया ॥२६॥

नोट—यह उदासीन महात्मा पद्ममुनि महाराजा युधिष्ठिर के पीछे ७०० वर्ष पर हुए हैं ॥

अस्मात्सुने श्चन्द्रगुप्तोऽस्माच्च श्रुतिसिद्धो मुनिः ॥
श्रुति सिद्धे मुनेश्चैव माधवो मुनि रद्भुतः ॥२७॥

अर्थ—सुखेन मुनि उदासीन से चन्द्रगुप्त मुनि उदासीन[४२] ने गुरु दीक्षाली यह चन्द्रगुप्त मुनि साधु होने से, प्रथम भारत के सम्राट राजाचन्द्रगुप्त थे इनकी राज्यधानी पाटलीपुत्र (पटना) थी, चन्द्रगुप्त उदासीन मुनि से श्रुतिसिद्ध मुनि उदासीन[४३] महात्मा ने गुरु दीक्षा ली इन्हीं श्रुतिसिद्ध उदासीन मुनि ने निघन्टु बनाया है यह यास्क मुनि के समकालीन थे संसार में उस समय इन दोनों के बराबरी करने वाला अन्य कोई विद्वान न था श्रुति सिद्ध उदासीन मुनि ने माधो मुनि[४४] को गुरु मन्त्र दिया था ॥२७॥

माधवेन मुनिर्नासः आचरण सिद्धो मुनिः ।
अनेन च श्रीसिद्धेन हरिर्नारायणो मुनिः ॥२८॥

अर्थ—माधो मुनि उदासीन महात्मा से आचरण सिद्धजी[४५] ने गुरु मन्त्र लिया आचरणसिद्ध मुनि उदासीन से हरिनारायण मुनि[४६] ने गुरुमन्त्र ले उदासीन भेष धारण किया। आप का दूसरा नाम चन्द्र मुनि भी था आपके चेले (सेवक) सम्राट विक्रम थे जिनका बाँधा सम्वत् आज तक चल रहा है ॥२८॥

मुनीनां भूषणं नरश्चन्द्रं चूड़ मुनिस्तथा ।
चन्द्र चूड़ोऽपि योगीन्द्रो हरदत्त मुनिं ततः ॥२९॥

अर्थ—श्री हरिनारायण मुनि जो नरों में भूषण थे उन्होंने चन्द्रचूड़ मुनि[४७] को तथा योगियों के इन्द्र चन्द्रचूड़ मुनि ने हरदत्त मुनि[४८] को उदासीन मन्त्र की दीक्षा देकर अपना चेला बनाया ॥२९॥

हरदत्त मुनिश्चापि रमेशं मुनि पुङ्गवम् ।
रमेशो मुनिवर्योऽथ कृपा राम मुनिं ततः ॥३०॥

अर्थ—हरदत्तमुनि उदासीन ने रमेश मुनि[४९] को तथा रमेशमुनि ने कृपाराम मुनि[५०] को उपदेश देकर अपना शिष्य बनाया ॥३०॥

मुनिवर्य्यः कृपारामो बाह्लीक मुनये तथा।
दिनेश मुनये सोऽपि विद्वद्भि रभि नन्दितः ॥३१॥

अर्थ—मुनियों में श्रेष्ठ कृपाराम मुनि ने बाह्लीक मुनि[५१] को तथा बाह्लीक मुनि ने दिनेश मुनि[५२] को दीक्षा दी थी यह विद्वानों में वन्दनीय थे ॥३१॥

वीतरागो दिनेशोऽपि निजानन्दाय धीमते।
ब्रह्मानन्दाय मुनये सोऽपि ब्रह्म परायणः ॥३२॥

अर्थ—वीतरागी श्री दिनेशमुनि जी ने निजानन्द[५३] को जो बड़े बुद्धिमान थे गुरु मन्त्र दिया तथा निजानन्द मुनि ने ब्रह्मानन्द मुनि[५४] को गुरुमन्त्र दिया जो बड़े ब्रह्म परायण थे ॥३२॥

ब्रह्मानन्दो मुनि श्रेष्ठः सच्चिदानन्द धीमते।
हारीत मुनये सोऽपि शुचि मन्त्रं ददौ ततः ॥३३॥

अर्थ—श्री ब्रह्मानन्द जी मुनिश्वर ने सच्चिदानन्द मुनि[५५] जी को, श्री सच्चिदानन्द मुनि ने हारीत मुनि[५६] को परम पवित्र उदासीन मन्त्र देकर श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन बनाया था हारीत मुनि उदासीन ने ही कुमारिलभट्ट को वेद के अर्थ के साथ साथ अग्नि में न जलने तथा पर्वत से गिरकर चोट न लगने की युक्ति युक्त विद्या सिखाई थी तथा शास्त्रार्थ करने का ढङ्ग भी सिखाया था ॥३३॥

अनेन दीक्षितः श्रेष्ठः श्रीत्रैलोक्य रामो मुनिः।
अस्माच्च मन्त्रमादाय ततापं बरुचो मुनिः ॥३४॥

अर्थ—हारीत मुनि जी महाराज ने त्रैलोक्यराम मुनि[५७] को और त्रैलोक्य राम मुनि जी से श्री वरुच मुनि[५८] जी महाराज ने उदासीन सम्प्रदायी गुरु मन्त्र लेकर तप करके संसार का कल्याण किया था ॥४१॥

अनेन कुण्डल मुनिः कुण्डलात् सु रथे मुनिः।
वैदिकीं दीक्षामादाय हिन्दू धर्म प्रचारकः ॥३५॥

अर्थ—वरुच मुनि जी उदासीन से कुण्डल मुनि[५९] ने कुण्डल मुनि महाराज से सुरथ मुनि जी[६०] ने उसी गुरु परम्परा प्राप्त वैदिक उदासीन गुरु मन्त्र को लेकर हिन्दू धर्म्म का प्रचार करते थे ॥४२॥

सुचेत मुनिसुमान्यः अस्माद्धि मुनिपुङ्गवात्।
दीक्षामाया परांपुण्यां उदयः प्रकाशो मुनिः ॥३६॥

अर्थ—श्री सुरथ मुनि जी से सुचेत मुनि६१ उदासीन जी ने और मुनियों में श्रेष्ठ श्री सुचेत मुनि६२ जी से उदय प्रकाश मुनि उदासीन ने उसी परम पवित्र वैदिक गुरु मन्त्र की दीक्षा को प्राप्त किया था ॥३६॥

मुनिना दीक्षितोऽनेन स्वतः सिद्धो मुनिर्वरः ।
अनेन जन्म सिद्धेन श्रीलक्ष्मीरदासो मुनिः ॥३७॥

अर्थ—श्री मुनिवर उदय प्रकाश मुनि जी महाराज से स्वतः सिद्धि मुनि६३ ने और मुनि श्रेष्ठ स्वतः सिद्धि मुनि जी से लक्ष्मीरदास मुनि जी६४ ने गुरु मन्त्र ग्रहण किया था ॥३७॥

मुनिनाऽनेन सौम्येन श्रीसुमेरदासो मुनिः ।
अथ सुमेरदासेन श्रीहरिगम्भीरो मुनिः ॥३८॥

अर्थ—श्री मुनि पुङ्गव लक्ष्मीरदास जी से सुमेरदास मुनि६५ ने और श्रीसुमेरदास जी मुनि से हरिगम्भीर मुनि६६ ने गुरु मन्त्र लिया था ॥३८॥

मुनेः हरिगम्भीराच्च राम ऋषिस्तपोधनः ।
रामऋषेः सकाशाच्च चतुर्भुजोमुनि र्महान् ॥४६॥

अर्थ—श्री हरिगम्भीर मुनि उदासीन ने श्री राम ऋषि६७ को वि० सं० १२२१ अषाढ़ सुदी १५ को अपना चेला बनाय उदासीन भेष दिया आपने संसार में राम नाम का खूब प्रचार किया अन्त में केदार नाथ में वि० सं० १२६७ जेष्ठ शुक्ल ११ को कैलाशवाश करते भये, श्री राम ऋषि के चेले चतुर्भुजदास जी६८ उदासीन बड़े विद्वान् परोपकारी महात्मा हुये आपका देव लोक वि० सं० १३२५ माघ सुदी ५ को काशी में हुआ ॥३९॥

चतुर्भुजेन मुनिना भासो मुनि संदीक्षितः ।
भासेन मुनिवर्य्येण रत्तारामो मुनिर्वरः ॥४०॥

अर्थ—श्री चतुर्भुजदास जी उदासीन महात्मा ने भासमुनि६९ को और भासमुनि उदासीन के चेले श्री रत्ता राम जी७० उदासीन वि० सं० १३६७ अश्विन सुदी १० दशहरा दिन बने थे, आपका जन्म वि० सं० १३४६ अषाढ़ सुदी २ को नैम्यषारण्य में गौड़ ब्राह्मण के घर हुआ था देवलोक पंजाब प्रान्त ग्राम हेरा में वि० सं० १४४२ रामनौमी को हुआ समाधि भी यहीं बनी। यह स्थान जिला लुधियाना में आजतक उदासीन महन्त के अधिकार में चला आता है जो गुरुनानक से १५० वर्ष प्रथम का है यह प्रमाण सरकारी कागजों से मिलता है ॥४०॥

रत्तारामेण मुनिनः अतीतो मुनिदीक्षितः ।
अतीतेन गुरुर्णावे वेदे मुनिश्चमन्त्रितः ॥४१॥

अर्थ—श्री रत्ताराम जी के चेले अतीत मुनि७१ उदासीन वि० सं० १४३५ कार्तिक सुदी १५ को बन श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन भेष धारण किया। आपका जन्म मिश्रक तीर्थ में वि० सं० १३८४ श्रावण शुक्ल १५ को हुआ था चारो धाम की यात्रा करते साथ में अपने हिन्दू-धर्म का प्रचार करते अन्त में नैम्यषारण्य में आकर वि० सं० १४५४ आश्विन कृष्ण ५ को शरीर त्याग परम धाम जाते भये। श्री वेद मुनि जी७२ उदासीन महात्मा वि० सं० १४५१ आषाढ़ शुक्ल १५ को अतीत मुनि के चेले बने थे। आप का जन्म वि० सं० १३६१ श्रावण सुदी ११ को नैमिषारण्य में कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर हुआ था समस्त वेद सांगोपाङ्ग कंठस्थ थे, आपका देवलोक वि० सं० १४६२ जेठ शुदी ११ को अयोध्या में हुआ ॥४१॥

वेद मुनि सुविज्ञेन गुरुः सन्तरैणो मुनिः।
दीक्षितः प्रथमो शिष्य प्रसन्नेन महात्मना ॥४२॥

अर्थ—हमारे एक बड़े गुरु भाई थे उनका नाम संतरैण जी था वह वि सं० १४६१ आषाढ़ शुक्ल १५ को श्री गुरु वेद मुनि जी के चेले बन उदसीन भेष धारण किया था उनका जन्म सम्भल मुरादाबाद का कान्य कुब्ज ब्राह्मण के घर वि० सं० १४७१ श्रावण शुक्ल ५ को हुआ था तथा देव लोक वि० सं० १५५२ माघ सुदी ७ को पंजाब गुजरां वाले में हुआ उनकी समाधि भी वहीं बनी ॥४२॥

ततावेदे मुनिर्मह्य मदद्द्गुरु मन्त्रकम्।
सोहं द्वितीयतां यातः शिष्यस्यश्च महामतेः ॥४३॥

अर्थ—श्री गुरु वेद मुनि उदासीन महात्मा ने हम (अविनाशी राम) को वि० सं० १५३८ दिवाली के दिन अपना चेला बनाय गुरु मन्त्र दे उदासीन भेष दिया था, हमारा जन्म वि० सं० १४६७ माघ सुदी ७ को अजमेर नगर में गौड़ ब्राह्मण के घर हुआ था, मैं अपने गुरु जी का द्वितीय शिष्य था इसी परम्परानुसार हे श्रीचन्द्र जी हमने तुमको (उदासीन गुरुमन्त्र दे) उदासीन साधु बनाया मैंने अनेक कठिनाइयाँ सहते हुए भी अपने हिन्दू धर्म के प्रचार कार्य को नहीं छोड़ा हिन्दू धर्म के लाभार्थ देश विदेश में मण्डली घुमा के भ्रमण करता करता अब वृद्ध हो गया हूँ। अब इस कार्य को तुम सुचारु रूप से पूर्ण करना। तुम्हारा मार्ग मङ्गल होगा, सब विघ्न बाधाएँ नाश होंगी यह हमारा आशीर्वाद है ॥४३॥

श्रीगुरु नानको देवो निर्वाणः कुशलोयतिः।
जटाधारी ह्युदासीनः प्रशान्तात्मा विचारवान् ॥४४॥

श्री गुरु नानकदेव उदासीन वि० सं० १५४१ माघ सुदी ५ (बसन्त पञ्चमी) को

श्री गुरु संतरैण जी निर्वाण उदासीन महात्मा के चेले चूहड़काना (जिसे अब सच्चा सौदा कहते हैं) में बन उदासीन भेष धारण किया था ॥५१॥

नोट—इसका प्रसंग 'जगद्गुरु की जीवनी तथा जगद्गुरु का सतोपदेश, कथा सच्चे सौदे वाली' पुस्तक में अच्छे प्रकार से सप्रमाण लिखा गया है जिसके पढ़ने से हरेक को विदित हो जायगा कि गुरु नानक के गुरु सन्तरैण जी उदासीन महात्मा थे। निर्वाण सन्तरैण जी के और भी चेले हैं जिनका प्रसंग गुरु उदासीन मत दर्पण दोनो भाग, में अच्छे प्रकार से लिखा गया है श्री गुरु नानक जी ने अपने मुख से अपने आप को उदासीन कहा है।

मारु म० १—गुरु बचनी बाहर घर एको नानक भया उदासी ॥११॥

श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं मैं अपने गुरु के बचन (उपदेश) से घर और बाहर एक रस उदासीन साधु ही होके रहता हूँ। इसी प्रकार सुमेर पर्वत पर नाथ मण्डली में सिद्धों के पूछने पर बहुतों के सामने अपने मुख से अपने आपको उदासीन भेष में निवास (रहना) बताते हैं।

प्रश्न—किस कारण यह तज्यो उदासी।
किस कारण यह भेष निवासी ॥१७॥
उत्तर—गुरुमुख खोजत भये उदासी।
दर्शन के ताईं यह भेष निवासी ॥१८॥

(सिद्ध गोष्ट राम कली महला १—ग्रन्थ साहब)

श्रीगुरु नानकजी ने अपने गुरु की पुष्टि में यह बचन कहा है।

श्री राग म० १—मैं आपना गुरु पूछ देख्या और नाही थाउ ।४।१।

आसा म० १—निवि निवि पांय लगौ गुरु अपने आतम राम पछानिआ

आगे और भी लिखा है। ४।१६।

आसा म० १—नानक गुरु की चरणी लागे ।१८।१६।

उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि श्रीगुरु नानक देव जी ने देहधारी गुरु संतरैण जी उदासीन को अवश्य गुरु धारण किया है सभी अपने मुखसे अपने आपको उदासीन भेषका साधु बता रहे हैं। जो लोग गुरु नानक जी को देहधारी गुरु धारण करना नहीं मानते वह उपरोक्त पंक्तियों का अर्थ व्यर्थ करते है अर्थात् ऊपर प्रथम शब्द में लिखा है "मैं अपना गुरु पूछ

*निर्वाण सन्त रैण जी उदासीन अपनी मण्डली समेत चूहड़काणा में उस समय आये हुये थे।



गुरू बाबा नानक निर्बाण उदासीन। गुरू श्रीचन्द्रजी उदासीन। गुरू अंगदजी उदासीन
श्रीमान बाला [illegible] उदासीन और मर्दाना बि सं १७६५ के पुरानी मूर्तिमें फोटो लिया

GaneshPressSukkur



देख्या, मैं शब्द खुद का बोधक है अपना निश्चयात्मक गुरु पूछ देख्या, यह वर्तमान (सामने) का सूचक है अर्थात् बाबा नानक कहते हैं कि मैंने अपने गुरु से पूंछ देखा है। इसी तरह निवि निविनाम झुक २ के पाँव लगना पैर भी साकार देहधारी के होते हैं न निराकार के, यही अर्थ चरण का समझना। इन शब्दों के साफ स्पष्ट अर्थ होने पर भी बाबा नानक का गुरु न मानना सिवाय हठ धर्मी के क्या कहा जाता है। आगे भी बाबा नानक जी कहते हैं।

मारु म० १—निर्मल ज्योति सर्व जग जीवन गुरु अनहद शब्द दिखाया। नानक रैण सन्त (सन्तरैण) जन (पुरुष) संगति (सत्सङ्ग करके) हरि गुरु (ऊपर वाले गुरु की) परसादी (से हरि का स्वरूप) पाया॥ १५। १। १८॥

बाबा नानक ने उदासीन भेष धारण कर तमाम धरती का सैल किया ऐसा बालेवाली (बालेकृत) जन्म साखी (गुरु नानक) वि० सं० १६६३ की लहौर की छपी पत्रा १२४ में लिखा है। गुरुनानक जी समस्त आयु अपने पूर्वज गुरुओं के अनुसार उदासीन मण्डली फेर अपने हिन्दू सनातन धर्म का प्रचार कर गये, यद्यपि इस कार्य में इनको तकलीफ भी उठानी पड़ी जैसे बंदीगृह जाना चक्की पीसनी आदि आदि परन्तु इतना सब होने पर भी आपने-अपने हिन्दू धर्म का प्रचार न छोड़ा तभी आज तक हिन्दुओं में उनका मान होता चला आता है।

प्रश्न—बहुतों का यह कहना है कि उदासीन लोग बाबा नानक के चलन अनुसार चलते हैं।

उत्तर—कहनेवालों की समझ में फर्क है उदासीन लोग गुरु नानक के चलन अनुसार नहीं चलते हैं बल्कि बाबा नानक खुद ही उदासीनों के चलन अनुसार चलते थे।

गुरु नानकदेव जी वि० सं० १५२६ कार्तिक सुदी १५ को रायभोय की तलवण्डी में पिता कल्याणचन्द बेदी हिन्दू क्षत्रियवंश में माता तृप्ता जी से जन्मे थे। देवलोक विक्रम सं० १५९६ आश्विन वदी १० को करतार पुर में हुआ यहीं आप की समाधि (देहरा) बनी जो देहरा बाबा नानक के नाम से प्रसिद्ध है।

श्री गुरुनानकदेव जी उदासीन के नौ चेले थे

(१) बाबा लक्ष्मीचन्द जी वि सं० १५६७ वैशाख सुदी ३ को चेले बने।

(२×३) बाबा भूमानन्द जी और बाबा ज्ञानप्रकाश जी दोनों उदासीन महात्मा जन्म के सगे भ्राता थे वि० सं० १६६२ वैशाखी दिन हरिद्वार में श्री गुरु नानकदेव जी के इकट्ठे ही चेले बन उदासीन भेष धारण किया। वि० सं० १५७३ आषाढ़ सुदी १५ को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के शादिक चेले साथ ही बने वि० सं० १५७६ कार्तिक वदी १५ को भूमानन्द का हरद्वार में तथा वि० सं० १५७७ माघ सुदी ५ को ज्ञान प्रकाश जी का काश्मीर में देवलोक हुआ।

(४) बाबा बालाराम सन्त उदासीन जी वि० सं० १५६८ सावन सुदी १५ को चेले बने इनका प्रसङ्ग आगे चलके लिखा जायगा।

(५) बाबा अजीता नन्द जी को श्रीगुरु नानकदेवजी ने वि० सं० १५७१ ज्येष्ठ सुदी ११ के दिन अचल बटाले में चेला बनाया। वि० सं० १५७५ आषाढ़ सुदी १५ को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के शादिक चेले बने, वि० सं० १५८३ फाल्गुन वदी १४ शिवरात्रि के दिन यहीं पर (अचल बटाले में) महन्ती को गद्दी का तिलक दिया। वि० सं० १६१३ आश्विन वदी १२ आप का देवलोक यहीं पर हुआ।

(६) बाबा संगत दास जी का जन्म वि० सं० १५७७ वैसाख सुदी ७ को सुल्तानपुर में हुआ था वि० सं० १५८३ फाल्गुन सुदी १५ को श्री गुरु नानक देव जी के चेले वन उदासीन भेष लिया था, वि० सं० १५९६ आश्विनवदी ८ को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने अपना शादिक चेला बनाया उसी दिन सुल्तानपुर में अपने जन्म स्थान वाली जगह का महन्त बना कर भेज दिया। वि० सं १६५१ आषाढ़ सुदी १५ को आपका देवलोक यहीं हुआ।

(७) बाबा बुढ़ाजी उदासीन वि० सं० १५८८ कार्तिक वदी १५ को चेला बने।

(८) अंगद जी उदासीन वि० सं० १५८६ माघ सुदी १५ को चेला बने।

(९) बाबा कमलदास जी का जन्म पक्खोग्राम में वि० सं० १५७२ अषाढ़ सुदी ५ को हुआ था। वि० सं० १५६२ चैत्र सुदी १५ को श्री गुरु नानक देव जी के चेले वन उदासीन भेष धारण किया। वि० सं० १५६७ कार्तिक सुदी १५ को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने अपना शादिक चेला बनाय ज्वालामुखी के अपने स्थान का महन्त बना कर भेज दिया वि० सं० १६०५ वैशाख सुदी ७ को आपका देवलोक यहीं पर हुआ। इस प्रकार गुरु* प्रणाली प्रारंभ से लेकर आपको श्रवण कराई गई है।

उदास भेषः परमः पवित्रः परोपकारी जगते हिताय।
रक्षन्तियं विष्णु गणेश दुर्गा गिरीशवागीश दिवीश मुख्याः ॥५२॥

अर्थ—श्रीगुरु अविनाशी रामजी कहते है कि हैं श्रीचन्द्रजी यह उदासीन सम्प्रदाय परम पवित्र निर्मल जगत् हितकारी है इसकी रक्षा पञ्चदेव (विष्णु महादेव गणेश शक्ति सूर्य) करते हैं इसमें सर्व देव अपनी अपनी शक्ति सहित अलक्षरूप से विराजमान हैं, जैसे शरीर में पांच तत्व अपनी अपनी शक्ति (रूप) से बिराजमान रहते हैं। तभी उदासीन सम्प्रदाय का सेवक (उपदेश को मानके उस पर चलना गुरु मन्त्र लेना भेट पूजा से सेवा करना) भावानुसार संसार में सुख भोग के अन्त में कैवल्यपद निर्वाणपद साकेत लोक वैकुण्ठलोक गोलोक कैलास-

*उपरोक्त सर्व महात्माओं का हाल 'हिन्दू धर्मव्यवस्था, पुस्तक के तीसरे खण्ड में विस्तार से लिखा गया है वह अवश्य पठनीय है।

लोक स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है या इन सब को जीत (पार) कर परमधाम* जाता है जहाँ पहुँच के पुनः आना जाना नहीं होता यह शास्त्र सम्मत बार्ता है ॥५२॥

उदासीन मतश्चेतत् सर्वत्र विजय प्रदम् ॥
मान पूजा प्रतिष्ठादि क्लेशपापादि नाशनम् ॥५३॥

अर्थ—जो उदासीन सम्प्रदाय में आ जाता है उसकी सर्वत्र जय होती है आदर मान पूजा प्रतिष्ठा होती है सब क्लेश पापादिनाश हो जाते हैं। उदासीन नरक नहीं जाते यह बात वाराहपुराण नचकेताख्यान अ० २०१ में लिखा है। नारद मुनि उदासीन महात्मा यमराज से पूछते हैं। 'केन गच्छन्ति नरकम्' तब यमराज उत्तर देते हैं "उदासीना न गच्छन्ति" इससे सर्व संशय त्याग मुमुक्षु को उदासीन सम्प्रदाय की ही शरण में आना उचित है ॥५३॥

साधु रत्नान्युदासीना भारताख्यं महौदधौ ।
ऐषां दर्शन मात्रेण कृत्य कृत्यो भवेन्नरः ॥५४॥

अर्थ—उदासीन साधु भारत रूपी सागर में रत्न के सदृश्य हैं जिनके दर्शन मात्र से मनुष्य कृत्य कृत्य हो जाता है ॥५४॥

इत्थं समस्तं परिबोध्य धीरं देशान्तरं सोऽप्यविनाशि रामः ॥
यातस्ततः श्रीयुत चन्द्रदेवः धर्मध्वजं स्वस्यशिरस्व वाचीत् ॥५५॥

अर्थ—श्री गुरु अविनाशिरामजी इस प्रकार भगवान् को सब समझाय, देशान्तर में प्रचार करने चले गये और भगवान् श्रीचन्द्र जी ने भी सारा श्री गुरु जी का हिन्दू धर्म प्रचार का भार अपने ऊपर लिया ॥५५॥

---

*परं ब्रह्म परम धाम पवित्रं परमं भवान् । गीता अ० १० श्लोक १२
"नतद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥ अ० १५"
"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकंनेमां विद्युतो भान्ति
कुतोऽयमग्नि (कठ उ० २। २। १५। श्वेत० उ० ६। १४॥
"यंप्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥ अ० ८ गीता
"न च पुनरावर्तन्ते (छान्दो० ४। अ० १५।
"यद्गत्वा न निवर्तन्ते (२६ अ० २७ स्कंध ३ भागवत)
"अनावृत्ति शब्दादनावृत्ति शब्दात् (वेदान्त दर्शन) ४।४।७।१७।
आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्यतु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥ अ० ८ गीता

नीत्वाऽधिकारं गुरुतो गुणाढ्यः चचार भूम्यां प्रचुरं प्रचारम् ।
धर्मस्य कुर्वन् विविधं महात्मा लभेपरां ख्याति मसौप्रशान्तः ॥

अर्थ—उस दिन से लेकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् घूम घूम कर धर्म का प्रचार करने लगे जिससे आपकी संसार में भूरि भूरि कीर्ति हुई ॥५६॥

नित्य मनस्तस्य विपन्न हिन्दून् संरक्षितुं व्यग्रमभूद्दयार्द्रम् ।
शिष्यः प्रशिष्यैः परिसेव्यमानः पर्यट्य सर्वोद्धरनञ्चकार ॥५७॥

अर्थ—आपका हृदय सदा दया से पसीजा रहता था जहाँ भी आप हिन्दुओं पर कोई विपत्ति आई सुनते, झट वहीं पहुँच जाते थे आप की शिष्य प्रशिष्य मण्डली सदा साथ रहा करती थी और आप सब प्राणियों का उद्धार करते रहे ॥५७॥

नियम्य चित्तं प्रथमं स्वकीयं धर्म प्रचारं परतश्चकार ।
न तस्य शत्रुभुवनेऽपि जातः जितेन्द्रियाणां न भवन्ति दोषाः ॥

अर्थ—आप का मन सदा आपके आधीन रहता था अतएव धर्मप्रचार करते समय आपका कोई विरोधी न हुआ जितेन्द्रिय पुरुषों की ओर कोई आँख तक भी नहीं उठा सकता ॥५८

पंचाम्बु देशे जनिरस्य जाता तथापि सर्वत्रचचार धीरः ॥
येनाऽखिलाएव जनाः परेशं जानन्ति सम्प्रत्यपि वालवृद्धाः ॥५६॥

अर्थ—आपका शुभ जन्म पञ्जाब प्रान्त में हुआ था परन्तु सब प्रांतों में धर्म प्रचार करने के कारण आपकी सर्वत्र ख्याति फैल गई जिससे सब बाल बूढ़े परिचित ही हैं ॥५६॥

अद्यापि कीर्त्या स विराज तेहि परोपकारी जन पाप हारी ।
शाप प्रदाने च वर प्रदाने बभार शक्तिं प्रतिबन्ध शून्याम् ॥६०॥

अर्थ—आज तक भी आप इस बात में प्रसिद्ध हैं कि आपके शाप और वर को कोई रोक नहीं सकता था अतएव आप प्राणियों के शोक ताप को दूर करने में समर्थ हुए ॥६०॥

भ्रूभङ्ग मात्रेण लयोदयौस करोति सर्वस्य भवो भवस्य ।
गम्भीर बुद्धेरपिमानवस्य दूरे रहस्यं किमुतान्य जन्तोः ॥६१॥

अर्थ—जिनके सङ्केत मात्र से ही संसार को उत्पत्ति और विनाश होता है ऐसे अचिन्त्य शक्ति भगवान् का रहस्य ज्ञान योगियों की बुद्धि से परे की चीज है फिर दूसरे साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या है ॥६१॥

नामानि यस्तस्य जपत्यजस्त्रं न तस्य रोगाः प्रभवन्ति देहे।
शोको न मोहो नच काम कोपौ मृत्वा सुखं स्वर्ग पदं सयाति ॥

अर्थ—जो भगवान् श्रीचन्द्र का नाम स्मरण करता रहता है उसके शरीर में किसी प्रकार के रोग नहीं होते हैं, और नहीं शोक, मोह, काम, क्रोध पास फटकने पाते हैं, और अन्त में मोक्ष का अधिकारी बन जाता है ॥६२॥

चन्द्रोपदेशेन विहाय वैरं म्लेच्छाश्च हिन्दु प्रजया समेताः।
सुखने कालं गमयाम्बभूवुः तपः प्रभावो वचसामगम्यः ॥६३॥

अर्थः—भगवान् श्रीचन्द्र जी की तपस्या के प्रभाव से हिन्दु और मुसलमान एक साथ मिलकर रहने लगे और अपने २ वैर भावको भुलाकर सुख की नींदमें सोने लगे ॥६३॥

भ्रमं जगत्यामुपदेश दानैः सन्तोषयामास समाञ्जनौघान्।
केनापि न द्वेषमयं चकार ततः प्रियोऽभूत् सकलस्य जन्तोः ॥

अर्थ—भगवान् ने सारे संसार के प्राणियों को उपदेशामृत पिला २ कर पुनर्जीवित किया आप सबसे प्यार करते थे अतः सब प्राणी आपको चाहते थे ॥६४॥

रामावतारस्य यथा प्रियत्वं कृष्णावतारस्य च सार्व भौमम्।
श्रीचन्द्रदेवस्य तथा प्रियत्वं न वेत्तिकः सर्व जगत्प्रसिद्धम् ॥

अर्थ—भगवान् राम और भगवान् कृष्ण की भाँति श्री १९०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र-भगवान् सर्वप्रिय सर्वोपकारक संसार में प्रसिद्ध हुए यह किससे छिपा हुआ है ॥६५॥

न लुण्डका नापिच चौर दुष्टाः माऽसत्यभाषीन विहिंसकोऽपि।
ननास्तिको नापि विडालवृत्तिः धर्म ध्वजी ब्राह्मण साधुबैरी ॥६६॥
गो हिंसको दीन जनायकारी भूरो विवासाः परुषा च्चरश्च।
ना भूजनः कापि तले जगत्याः श्री चन्द्रदेवस्य तपः प्रभावात् ॥

अर्थ—आपके अदम्य प्रभाव से उस समय संसार में कोई चोर डाकू झूंठा ठग हिंसक नास्तिक विडालवृति पाखण्डी साधु ब्राह्मण गोहिंसक भूखा नंगा और निरपराधों को तङ्ग करनेवाला नहीं था ॥६६-६७॥

वनेन्यवात्सीत् सहियत्र देवः तत्रैव तीर्थं प्रथितं बभूव।
वन्या मृगास्तत्र विमुक्त वैराः चेरुः सुखं दूर मपास्य भीतिम् ॥

अर्थ—जिस जंगल में आप रहते थे उसमें हिरण निर्भय होकर घूमा करते थे एक दूसरे से वैर करना भूल गये थे वहाँ आज तक सदा फलप्रद तीर्थ बना हुआ है ॥६८॥

श्रीचन्द्रदेवे दृढ़ भक्ति युक्तो लोके समस्तानि सुखानिलब्ध्वा ।
देहावसाने परमं पदं स याता न सन्देह लवोऽपि कार्यः ॥६९॥

अर्थ—जो मनुष्य भगवान् श्रीचन्द्र की अनपायिनी भक्ति करता है उसे सांसारिक सब भोग प्राप्त होते हैं और अन्त में वह निश्चय ही परमपद को प्राप्त होता है ॥६९॥

यः पूजयेद्ग्रन्थ सिमंपवित्रं तस्यापि गोलोक गतिर्भवित्री ।
यश्चापि साष्टाङ्गनतिं करोति भविष्यति स्त्री सुत धान्य वान्सः ॥

अर्थ—जो इस उत्तम ग्रन्थ का पूजन करता है उसकी भी शरीर छोड़ने के अनन्तर मुक्ति हो जाती है और इसको प्रणाम करने वाले के घर स्त्री पुत्र धनधान्यकी सदा चहल पहल बनी रहती है ॥७०॥

श्रीचन्द्रदेवस्य शुभंचरित्रं विचित्रतापूर्णमिदं समग्रम् ।
यो वा पठेद् यः शृणुयात्सभक्तिः तावप्यवश्यं सुरलोक भाजौ ॥७१॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्रजी का समस्त चरित्र विचित्रताओं से भरा हुआ है जो इसे भक्ति पूर्वक पढ़ता है और सुनता है उन दोनों कि शुभगति होती है ॥७१॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गा मध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय गुरु परम्परा (गुरु प्रणाली) वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी अष्टम् किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥८॥

॥ नवम किरण प्रारम्भः ॥

श्रीचन्द्रश्चैकदादेवः स्नानानन्तरमागताम् ।
नत्वा पितृ स्वसारं तां सच्चकार यथाविधि ॥१॥

अर्थ—एक दिन भगवान् श्रीचन्द्र के पास स्नान ध्यान करके बुआ नानकी देवी जी आईं, भगवान् ने उनका नमस्कारादि के द्वारा यथाविधि सत्कार किया ॥१॥

पप्रच्छ नानकी भूयः मातः किमिति चिन्तया ।
खिद्यते कोमलं चित्तं शीघ्रं वद निराकुला ॥२॥

अर्थ—अनन्तर बुआजी से सादर पुछने लगे बुआ जी (फूफीजी) आज मैं आपके मन में किसी चिन्ता को देख रहा हूँ उचित समझें तो निर्भय पूर्वक अवश्य कहने की कृपा करें ॥२॥

मयि तिष्ठति ते चित्तं चिन्ताऽऽक्रान्त कथं भवेत् ।
सति सूर्ये तमिस्राया: न च सत्ता विभाव्यते ॥३॥

अर्थ—आश्चर्य है मेरी उपस्थिति में भी आप चिन्ता कर रही हैं सूर्य के उदय होने पर अँधेरी रात कभी नहीं रहा करती ॥३॥

इत्युक्त्वा चन्द्रदेवेन नानकी परमामुदा ।
हो जात नता बद्धाञ्जलिः प्राहः चन्द्र ! चन्द्राकृते विभो ! ॥४॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र जी के ऐसे उदार मीठे प्यारे स्नेह भरे बचन सुन के श्री नानकी देवी बड़ी प्रसन्न हो भगवान् को प्रणाम कर हाथ जोड़ बोलीं कि हे चन्द्र के समान मुख वाले भगवान् श्रीचन्द्र जी ॥४॥

साक्षात्त्वं शिवरूपोऽसि जगद्वन्द्योऽसि हेऽनघ ! ।
प्रतीपस्ते नमस्कारो मयि नो युज्यते प्रभो ! ॥५॥

अर्थ—आप साक्षात् शिव अवतार हैं, आप उलटा मुझे प्रणाम करके मोह में न डालें हे अनघ आप जगद्वन्दनीय हैं फिर मुझको प्रणाम करना कैसा ॥५॥

अथासौ मधुरां वाचमाददे वदतां वरः ।
भद्रे ! त्वं मातृरूपासि बालकश्च तवास्मिते ॥६॥

अर्थ—भगवान् श्री चन्द्र जी अपनी फूफी का यह शब्द सुनकर बड़े मधुर बचनों से कहा कि हे भद्रे आप मेरी बड़ी माता स्वरूप हैं मैं आपका बालक हूँ ॥६॥

मातृ देवः पितृ देवो गुरु देवो भवेत् सुतः ।
इति धर्म्यं परं तत्वम् अनुशास्ति सदा श्रुतिः ॥७॥

अर्थ—पुत्र के लिये हिन्दू शास्त्र आज्ञा देता है 'मातृ देवो भव, 'पितृ देवो भव, आचार्य्य देवोभव अर्थात् माता पिता और गुरु को देवता समझो उन्हें यथाविधि मान दो ॥७॥

अन्यथा प्रत्यवायः स्यान्नरकं नियतं व्रजेत् ।
निस्तारो न भवेत्तस्य यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥८॥

अर्थ—जो पुत्र ऐसा नहीं करता उसको बड़ा पाप लगता है वह तब तक नरक से निस्तार नहीं पाता है जब तक चाँद और सूर्य हैं ॥८॥

तस्माद्द्विजेन पुत्रेण नित्यं भक्त्या महाजनाः ।
वन्दनीया विनीतेन परीतेन शुभेच्छया ॥९॥

अर्थ—इसलिये पुत्र का मुख्य कर्तव्य है कि वह कल्याण की कामना से अत्यन्त विनीत भाव से बड़े पुरुषों की वन्दना करे ॥९॥

निशम्य नानकी तस्य वचनं प्रतिभोत्थितम् ।
जिज्ञासुः प्राञ्जलिः प्राह वाष्पगद्गदया गिरा ॥१०॥

अर्थ—भगवान् की यह युक्ति युक्त वाणी सुनकर श्री नानकी देवी जी ने जिज्ञासु भाव से हाथ जोड़ कर लड़खड़ाती वाणी में प्रार्थना की ॥१०॥

मर्यादात्मन् देव देव वेदोच्छ्वास दयानिधे ।
सप्तश्लोकीं शुभां गीतां श्रोतुमिच्छामि पावनीम् ॥११॥

अर्थ—हे मर्यादात्मन् ! देव तेव ! दयानिधे ? वेद आपका उच्छ्वास है अतः मैं के मुख से परम पवित्र सप्तश्लोकी गीता सुनना चाहती हूँ ॥११॥

श्रीकृष्णेनोपदिष्टाया पार्थाय च महात्मने ।
स रहस्यां स प्रभावां तां मे बोधय तत्वतः ॥१२॥

अर्थ—जो गीता भगवान् श्रीकृष्ण ने महात्मा अर्जुन को सुनाई थी उसको आप सरहस्य प्रभाव सहित मेरे को सुनाएं ॥१२॥

इत्युक्तो नानकी देव्या नानकात्मज आत्मवान् ।
आत्म ज्ञान प्रदां सप्तश्लोकीं गीता मुदैरयत् ॥१३॥
इन्दु रषेषु चन्द्रे श्री वैक्रमे श्रावणे सिते ।
सत्पश्लोकी मिमां गीतां नानक्यैपर्य बोधयत् ॥१४॥

अर्थ—नानकी देवी जी की प्रार्थना से पतित पावन दीनहितकारी भगवान् श्रीचन्द्र जी ने आत्मज्ञान को देने वाली सप्त श्लोकी गीता वि० सं० १५६१ श्रावण शुक्ल ५ को सुनाई ॥१३-१४॥

अम्ब ! ते परमंगुह्यं रहस्यं बोधयाम्यहम् ।
श्रूयतां सावधानेन चेतसा नान्य गामिना ॥१५॥

अर्थ—हे माता जी ! मैं आपको परम गोपनीय रहस्य सुनाता हूँ आप मन को सावधान करके सुनें ॥१५॥

सर्वेषां खलु वेदानां सारं भारत मुच्यते ।
भारते भगवद्गीता गीतायामियं मुच्यते ॥१६॥

अर्थ—महाभारत सम्पूर्ण वेदों का सार है और महाभारत में भगवद्गीतासार है तथा भगवद्गीता में सप्तश्लोकी गीता परम सार है ॥१६॥

अस्याः पाठेन शुद्धेन भक्तियुक्तेन कल्मषम् ।
सर्वं तन्नाशमायाति जन्म कोटिशतैः कृतम् ॥१७॥

अर्थ—इसके भक्ति युक्त शुद्ध अर्थ सहित पाठ करने से कोटि जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१७॥

नवनीतं यथा दुग्धेकल्प वल्ली च नन्दने ।
अमृतं सागरे यद्वत्तद्वद्गीतास्वियं मता ॥१८॥

अर्थ—जैसे दूध में मक्खन सार वस्तु है नन्दन बन में कल्पलता सार है और समुद्र में अमृत सार है वैसे सम्पूर्ण गीताओं में सप्तश्लोकी गीतासार वस्तु है ॥१८॥

कण्ठस्थेन पाठेन प्रसन्नो भगवान् भवेत् ।
अर्थं ज्ञात्वातुयोऽधीते स मोक्षं याति मानवः ॥१९॥

अर्थ—यदि इसका पाठ कंठ कर लिया जाय तो भगवान् बड़े प्रसन्न होते हैं अर्थ ज्ञान होने पर मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥१९॥

अर्थ ज्ञानं विना वन्ध्या गौरियं नात्र संशयः ।
तस्माद्गुरु मुखादर्थं ज्ञात्वा गेया न चान्यथा ॥२०॥

अर्थ—अर्थज्ञान के विना गीता बाँझ गौ के समान है अतएव श्रीगुरुमुख से उसका अर्थ सीखना चाहिये ॥२०॥

॥ अथ सप्तश्लोकी गीता ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयातित्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१॥

अर्थ—श्रीगुरु श्रीचन्द्रभगवान् कहते हैं कि हे फूफी जी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अपने परम प्यारे अर्जुन को यह गीता का उपदेश देकर जगत को समझाया है उसी अर्थ को हम आपके प्रति कथन करते हैं श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन ओंकार जो प्रथम अक्षर वेद में है जिसका प्रणव भी नाम है यह ॐ तीन अक्षरों के संयुक्त होने से बनता है।

अकार उकार मकार पुनु अर्द्धविन्दु पहिचान।
तीनों के समुदाय को ओंकार तेहि जान॥

अर्थ—ॐ वर्णमाला का प्रथम अक्षर है सो एकाक्षर ॐ (ब्रह्म) का वाचक होने से अथवा शालिग्रामादिक प्रतिमा की तरह ब्रह्म का प्रतीक होने से ब्रह्मरूप है ऐसा ब्रह्मरूप ॐ (प्रणवमन्त्र) एकाक्षर को उच्चारण *करता हुआ जप के साथ में मेरा स्मरण करता हुआ जो मनुष्य देह छोड़ कर जाता है सो उपासक पुरुष देवयान मार्गद्वारा ब्रह्मलोक में गमन कर दिव्य भोगों को भोग अन्त में परमगति को प्राप्त होता है अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार तत्व को साक्षात् कर सर्व से उत्कृष्ट ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है॥१॥

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशोद्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्ध संघाः॥२॥

अर्थ—अर्जुन कहते हैं कि हे हृषीकेश तुम्हारी उत्तम कीर्ति गायन करके सर्व जगत् आनन्दित होता है। और उसमें अनुरक्त रहता है। पृथ्वी में दुष्ट पुरुष भार रूप हैं उनका संहार करने वाला कालरूप आपसे भय को प्राप्त हुये सर्व दिशाओं को भाग जाते हैं और सिद्धों के समुदाय भी आपको नमस्कार करते हैं सो यह सब उचित ही करते हैं॥२॥

सर्वतः पाणि पादंतत्सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥३॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्णजी कहते हैं कि हे अर्जुन ज्ञेय ब्रह्म कैसा है जीवात्मा रूप हाथ पाँव मुख नेत्र कर्ण मस्तक सब देह वाला है सर्व देश की वस्तु मात्र में व्यापक होकर रहता है यह स्वरूप जीव का कहाँ मुक्त दशा में जीव की समता परमात्मा सादृश्य मानी है कारण कि सर्व देह में एक ही नित्य विभुचेतन सर्व जड़ वर्ग को आध्यात्मिक सम्बन्ध करके अपने सत्ता स्फूर्ति रूप में व्याप्य करके स्थित हुआ अर्थात् निर्विकार रूप ब्रह्म ही है कारण ये इंन्द्रियादिक सर्व स्वभाव से जड़ हैं दूसरे चेतन अधिष्ठाता की बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति वाले होने

*शब्द उच्चारण करने के लिये मनुष्य में आठ स्थान होते है।
उर, कंठ मूर्द्धा जिह्वा दान्त नाक होठ और तालू

से और सर्व प्राणियों के देह इन्द्रियादिक उपाधियों करके तिस ज्ञेय ब्रह्मका अस्तिपना निश्चय किया जाता है "इदं ज्ञान मुपाश्रित्य, ममसाधर्म्य मागताः" "भोग मात्र साम्यलिङ्गाच" ऐसे जो परमात्मा की समता कही है। तो परमात्मा सरीखा स्वरूप होने में क्या शंका है ॥३॥

कविं पुराण मनुशा सितार मणोरणीयां समनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्य रूपमादित्य वर्णं तमसः परस्तात् ॥४॥

अर्थ—भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन जो कोई भक्ति करके युक्त पुरुष मरण समय में अचल मन योगबल करके सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा सर्व का धारण करने वाला अचिन्त रूप वाले दिव्य पुरुष परमात्मा का जो अधिकारी पुरुष चिन्तन करता है तिस अभ्यास की दृढ़ता से वह पुरुष चिन्तनवाले परम दिव्य पुरुष में लीन हो जाता है ॥४॥

ऊर्ध्व मूल मधः शाख मश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेद वित् ॥५॥

अर्थ—हे अर्जुन यह संसार रूप वृक्ष जिसके वेद पत्ते हैं सो कैसा है ऊर्ध्वमूल याने सत्य लोक में ब्रह्मा जिसका मूल है याने सर्व संसार के नाश होने से रहित और सर्व संसार के भ्रम का अधिष्ठान ऐसा जो ब्रह्म तिसको ही ऊर्ध्व कहते हैं उस उर्ध्व में अपनी माया शक्ति करके मूल क्या कारण जिसका (ताका) नाम ऊर्ध्वमूल है अधःशाख अर्थात् सत्य लोक से नीचे जो देव मनुष्य कीटपतङ्ग पर्यन्त शरीर यह उनकी शाखा है। ऐसा अव्यय मानी सम्यक् ज्ञान प्राप्त होने से प्रथम अज्ञान दशा प्रवाह रूप करके छेदन के अयोग्य इससे अविनाशी है हे अर्जुन जो अधिकारी पुरुष इस प्रकार के मूल सहित मायामय अश्वत्थ रूप संसार वृक्ष को जानता है सोई अधिकारी पुरुष वेद वित है अर्थात् वेद इस संसार के छेदन का उपाय कहता है सो जो इसको जानेगा वही छेदने का उपाय जानेगा इससे यह वेद जानने वाला मनुष्य शरीर बिना श्रेष्ठ कर्मों को नहीं प्राप्त होता ॥५॥

सर्वस्य चाहं हृदि सं निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वै रहमेव वेद्यो वेदान्त कृद्वेद विदेव चाहम् ॥६॥

अर्थ—हे अर्जुन ब्रह्मासे आदि लेकर स्थावर पर्यन्त जितने ऊँच नीच प्राणी हैं। तिन सब प्राणियों के बुद्धि विषे मैं परमात्मा देव ही जीवात्मा रूप होकर प्रविष्ट हुआ हूँ। "स एव इव प्रविष्टः अनेन जीवेनात्मानु प्राविश्यं नाम रूपे व्यांकरवाणि" (श्रुतिः) अर्थ वह परमात्मा देव जीवात्मा रूप होकर इस संघात में प्रवेश करता भया इसी जीव ब्रह्म के अभेद को 'तत्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' (श्रुति) भी कथन करती है। और सर्व के स्मृति ज्ञान और विचार भी मेरे से ही होते हैं तथा सर्व वेदों से मैं ही जानने योग्य हूँ मलिन

बुद्धिवाले राग द्वेषादिक दोष कर दुष्ट वहिर्मुख पुरुषों को मैं कदापि प्राप्त नहीं होता हे अर्जुन पुनः मैं कैसा हूँ वेदान्त कृत हूँ और वेदवित् भी मैं ही हूँ हे अर्जुन ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वेद इन चार वेदों विषे स्थित जितना उपनिषद् रूप वेदान्त है तिस वेदान्त से भी मैं परमात्मा देव ही जानने योग्य हूँ ॥६॥

मन्मना भवमद्भक्तो मद्याजीमां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत् परायणः ॥७॥

हे अर्जुन तू अपना मन मेरे में लगा अर्थात् सर्वकाल विषे मुझ परमेश्वर का ही चिन्तन करके परमेश्वर का भक्त हो परमेश्वर में जो अनुराग रूपी अनुरक्ति होनी है सो मेरी भक्ति करके तू युक्त हो हर समय भगवान् वासुदेव ❀ के पूजन करने का है स्वभाव जिसका उसका नाम है मद्याजी ऐसी पूजा करने में हे अर्जुन तू सर्वकाल परायण हो पूजाकी सब सामग्री अभाव पर भी केवल परमेश्वर को नमस्कार करने से भी मेरे को प्राप्त होगे, हे अर्जुन इस प्रकार साधन सम्पत्ति पूर्वक ज्ञाननिष्ठा से सम्पन्न हुआ तू सर्व जगत के करता रूप सब का ईश्वर सर्वशक्ति सम्पन्न अखण्ड एक रस ऐसे मुझ तत्पदार्थ परमेश्वर को ही पावेगा । अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकार के ज्ञान निष्ठा वाला हुआ तू मैं परमत्मा देव को ही अभेद रूप करके प्राप्त होवेगा, इस प्रकार की सत्य प्रतिज्ञा मैं तुम्हारे आगे करता हूँ हे अर्जुन तुम हम को अत्यन्त प्यारे हो इसलिये मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ ।॥ सप्त श्लोकी गीता समाप्ता ॥

❀ वासुदेव शब्द के अर्थ तीन प्रकार से हमारे शास्त्रकारों ने लगाये हैं एक तो वसुदेव के पुत्र होने से वासुदेव, दूसरा वस निवासे धातु से अर्थात् सर्व चराचर में जो बसे और सब जिसमें वसे ।

सर्वं वसति वैयस्मिन् सर्वस्मिन् वसति चयः ।
तमाहुर्वासुदेवं च योगिनस्तत्व दर्शिनः ॥

उसको तत्वदर्शी जन वासुदेव कहते हैं । तीसरा विशुद्ध अन्तःकरण को वासुदेव कहते हैं उसमें जो निवास करे उसे वासुदेव कहते हैं

सत्वं विशुद्धं वसुदेवशाब्दितंयदीयते तत्र पुमान पावृता ।
सत्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोऽक्षजो मेतमसा विधीयते ॥

अर्थ—विशुद्ध अंतःकरण वसुदेव शब्द से शब्दित है तहाँ आवर्ण रहित पुरुष वासुदेव प्रकाश करते हैं उस विशुद्ध सत्व में भगवान् वासुदेव बिराजमान हैं एसे विशुद्ध अंतःकरण में जो कि इन्द्रियों से अगोचर है मैं उनका मनसा द्वारा ध्यान करता हूँ ।

तत्त्वतोऽस्माश्च बुद्धायां बुध्यते ब्रह्मशाश्वतम् ।
निदर्शनं पार्थो बुद्धा विमुक्तो भव बन्धनात् ॥२१॥

अर्थ—इसका यथार्थ ज्ञान होने से मनुष्य ब्रह्म को जान लेता है और इस जन्म मरण के चक्र में नहीं आता इसमें सबसे बड़ा प्रमाण अर्जुन ही है ॥२१॥

ध्यायन्तीमां परांगीतां सती सीता समा भुवि ।
जेगीयमाना सर्वैस्त्वं सुखं वस शुभाशये ॥२२॥

अर्थ—हे शुभ विचारोंवाली माता इस परम गोप्य गीता का ही निरन्तर ध्यान करती हुई तू सती सीता के समान पूज्यनीय होकर संसार में निवासकर ॥२२॥

चिन्तयन्तीधिया नित्यं तरङ्गं भङ्गुरं जगत् ।
सौदामिनी समां लक्ष्मीमम्बिके ! सुखिनी भव ॥२३॥

अर्थ—यह संसार जलके बुदबुदे के समान क्षणभंगुर है और लक्ष्मी बिजली के समान चञ्चल और अस्थिर है हे माता ऐसा पूर्ण निश्चय करके सुखी बनो ॥२३॥

मानवाः संगता अत्र योता इव पयो निधौ ।
स्वं स्वं मार्गं गमिष्यन्ति कस्य को रक्षको भवेत् ॥२४॥

अर्थ—जैसे समुद्र में जहाज इकट्ठे होते हैं फिर अपना अपना रास्ता पकड़ते हैं ऐसे ही मनुष्य एकत्र होते हैं बिछुड़ जाते हैं कोई किसी की रक्षा करने वाला नहीं है ॥२४॥

पान्था इवतरुच्छायां तरुं शकुनयो यथा ।
त्यक्त्वा सङ्गं पुनर्यान्ति स्वल्प कालाय सङ्गताः ॥२५॥

अर्थ—पथिक जैसे वृक्ष की छाया को, पक्षी जैसे वृक्ष को थोड़ी देर बाद छोड़ कर चले जाते हैं ऐसे ही सभी प्राणी कुछ काल साथ रहकर संग छोड़ जाते हैं ॥२५॥

आत्मना ऽऽत्मा समुद्धार्यः नास्य कोऽपि सहायवान् ।
सर्वे स्वार्थाय चेष्टन्ते मानवा मुनयः सुराः ॥२६॥

अर्थ—अतएव अपने आप अपनी रक्षा करनी चाहिए कोई किसी की सहायता नहीं करता सभी अपने अपने स्वार्थ में जुटे हुए हैं क्या देवता क्या मनुष्य क्या असुर ॥२६॥

शुभानां चा ऽशुभानां च कर्मणां सादृशं फलम् ।
नूनं स्वेनवै भोक्तव्यं श्रुतिराह सनातनी ॥२७॥

अर्थ—यह शास्त्रों का अटल सिद्धांत है कि अपने अच्छे बुरे कर्मों का फल अपने आप को ही भोगना पड़ता है ॥२७॥

इत्थं निशम्य तद्वाक्यं नानकी भक्ति संयुता ।
दीक्षाय मां विभो ! स्वेन गुरु मन्त्रेण मंत्रवित् ॥२८॥

अर्थ—इस प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के बचनामृत सुनकर श्री नानकी देवी सादर प्रार्थना करने लगीं कि हे महाराज आप हम दोनों को गुरु मन्त्र देकर दीक्षित करें यही इच्छा मेरे श्री पति देव (जयराम दास) जी की भी है जैसा कि उन्होंने मेरे से कई दफे कहा भी है ॥२८॥

इत्युक्तो जय रामं तं समा कारितवान् प्रभुः ।
तत्संमत्या च तौस्नातौ दीक्षायामास तद्वाणम् ॥२९ ॥

अर्थ—यह प्रार्थना सुनके भगवान् प्रसन्न बदन बोले जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो यह सुनते ही जयरामदास जी सहित अपनी पत्नी नानकी जी के उसी समय स्नान कर नवीन वस्त्र पहिर श्री गुरु जी के पास पूजा की थाली लाय बैठ गये ॥२९॥

द्वादशाक्षर मन्त्रेण उदासीनैव दम्पती ।
दीक्षितौ परया भक्त्या पीत्वा पादोदकं नतौ ॥३०॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने दम्पति को अपने दाहिने चरण का अँगूठा धुआय "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" मंत्र के साथ साथ उदासीन सम्प्रदाई मंत्र भी तीन दफे सुनाय अपना सेवक* बनाया पीछे उन्होंने गुरुजी का चरणामृत पिया और पूजा कर प्रणाम किया ॥३०॥

भोजयित्वा ततो दत्वा प्रचुरां दक्षिणा मपि ।
गुरुवे सुखिनौ जातौ भगवद्भक्ति शंयुतौ ॥३१॥

अर्थ—जयरामदास जी ने श्री गुरु महाराज को भोजन कराय उनका सीत प्रसाद दम्पति ने खाया पीछे पूजा भेंट रखी श्री गुरु जी के इस उपदेश से जो भगवद्भक्ति से भरपूर था बड़ा सुख उत्पन्न होता भया ॥३१॥

---

*पंजाब सिन्ध में उदासीनों के गृहस्थ सेवकों को सिक्ख कहते हैं ।

श्रीचन्द्रदेवस्य शुभं चरित्रं पठन्ति ये हार्दिक भाव पूर्णाः ।
समस्त सौख्यान्युप भुज्य लोके ततः परं स्वर्ग पदं व्रजन्ति ॥

अर्थ—जो भगवान् के इस कल्याणप्रद उपदेश को सच्चे मन से पढ़ते और सुनते हैं वे लोग संसार में सम्पूर्ण सुखों को भोगकर अन्त में स्वर्ग धाम को पधारते हैं ॥३२॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्री मदुदासीनवर्य्यं परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिलशास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डि देव गुरुचरणकमल चंचरीकायमान् मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान फूफी नानकी प्रति सप्तश्लोकी गीता उपदेश दम्पति सेवक करन प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी नवम किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥९॥

॥ दशम किरण प्रारम्भः ॥

अथातो वर्णयिष्यामि श्रीचन्द्रस्य पराद्भुतम् ।
चरित्रं विष्णुदासाय ज्ञानं यत्रास्ति शासितम् ॥१॥

अर्थ—इसके अनन्तर श्री११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का वह अद्भुत चरित्र आयेगा, जिसमें भगवान् ने श्रीविष्णुदास जी को ज्ञानोपदेश दिया है ॥१॥

यत्पठित्वा निरातङ्का नरा नार्यः परं पदम् ।
लप्स्यन्ते मुनिभिर्मृग्यं पुनरा वृत्ति वर्जितम् ॥२॥

अर्थ—जिस उपदेश को पढ़कर स्त्री और पुरुष निर्भय होकर ऋषि मुनि दुर्लभ पुनरा वृत्ति शून्य अव्यय परम पद को प्राप्त कर सकेंगे ॥२॥

सुल्तान पुरतः किञ्चिद्दूरे क्रोश चतुष्टयम् ।
वेई नद्यास्तटेशीते लता वृक्षा समाकुले ॥३॥
निर्जने विघ्नशून्ये च नदी तीरेऽति पावने ।
साधुघट्टाऽभिधानेच रम्ये गोदावरी समे ॥४॥

अर्थ—सुल्तानपुर से थोड़ी दूर लगभग एक योजन (चार कोस) की दूरी पर वेई नदी है उसके सर्वविघ्नशून्य एकान्त झुरमुटों से मण्डित किनारे पर परम पावन स्थान है जिसका नाम संत घाट है जो गोदावरी गंगा के समान रमणीक है ॥३।४॥

यत्रस्नानेन चाद्यापि विपुलं फल माप्यते ।
भक्ति भाजो जना यान्ति स्नानि चार्चन्ति देवताः ॥५॥

अर्थ—वहाँ पर आज कल भी भक्त मण्डली स्नान करने जाती है स्नान कर सविधि देवताओं की पूजा करके मन वांछित फल प्राप्त करती है ॥५॥

तत्र देवो महातेजाः श्रीचन्द्रः शान्त मानसः ।
एकदा ऽऽसीत्समाधिस्थः संयमी ध्यायिनां वरः ॥६॥

अर्थ—एक समय उसी स्थान पर परम तेजस्वी योगी राज भगवान् श्रीचन्द्रजी शान्त भाव से समाधि में संलग्न थे जो संयमी पुरुषों में श्रेष्ठ थे ॥६॥

घुणाक्षर नयात्कश्चि द्विष्णु दासोऽतिवैष्णवः ।
ब्राह्मणः पण्डितो दान्तः स्वाध्यायी नियत व्रतः ॥७॥

अर्थ—अचानक वहाँ पर वैष्णव तपस्वी पण्डित श्रीविष्णु दास जी आ निकले जो अच्छे व्रती थे ॥७॥

तेजस्विनं समाधिस्थं तत्राऽऽगत्याऽव लोकयत् ।
समाधेर्भङ्ग कालस्तं जनान पृच्छदुत्सुकः ॥८॥

अर्थ—वहाँ समाधि में स्थित परम तेजस्वी महापुरुष को देखा और पास व्यक्तियों से पण्डित जी ने पूछा कि भैय्या ! ये महात्माजी समाधि से कब उठेंगे ॥८॥

भद्राः ! कोऽयं महातेजाः ? किन्नाम ? किं विचारवान् ।
समाधि वां कदात्यक्त्वा दर्शनं मे प्रदास्यति ॥९॥

अर्थ—और यह भी आप बताने का कष्ट करें कि ये महा पुरुष हैं कौन इनका नाम क्या है इनका भाव क्या है समाधि से कब उठ कर हमें दर्शन देंगे ॥९॥

ते प्रोचुर्विदुषां श्रेष्ठ ! श्रीचन्द्रो भगवानयम् ।
होराद्वयात्परं त्यक्त्वा समाधिं ध्यान सत्तमः ॥१०॥

अर्थ—उन आसन्न व्यक्तियों ने श्री पण्डित जी को उत्तर दिया हे विद्वद्वर इनका शुभनाम श्री ११०८ जगद् गुरु श्रीचन्द्र भगवान् है और यह सर्वश्रेष्ठ योगियों में से एक हैं दो घण्टा के वाद समाधि से उठेंगे ॥१॥

तावत्तिष्ठ महाभाग दर्शनं ते प्रदास्यति ।
अयं हि भगवान् साक्षाच्छिवो नैवात्र संशयः ॥११॥

अर्थ—हे महाभाग तब तक आप ठहरें और इनके दर्शन का लाभ उठायें ये साक्षात् देवाधि देव श्रीमहादेव जी का अवतार हैं इसमें कोई संशय नहीं है ॥११॥

तथेति सोऽपितत्रैव शान्तः तस्थौ विचारवान् ।
अल्पीयसा च कालेन प्रणव ध्वनि रुत्थितः ॥१२॥

अर्थ—पण्डितजी बड़े विचारशील थे अच्छा भैय्या कह कर शान्त भाव से बैठ गये थोड़ी देर बाद ओंकार की ध्वनि उठी ॥१२॥

समाधे रुत्थितं ज्ञात्वा विष्णु दासः प्रसन्नधीः ।
प्रणम्य प्राञ्जलिः प्राह प्रष्टुमिच्छामि किञ्चन ॥१३॥

अर्थ—भगवान् को समाधि से उठे जानकर विष्णुदास जी, बड़े प्रसन्न हुए और प्रणाम करके कुछ देर बाद हाथ जोड़ कर कुछ पूछने लगे ॥१३॥

भगवन् जगतः कर्त्ता परमात्माऽथवाऽपरः ।
सर्वाणि खलु शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम् ॥१४॥

अर्थ—हे भगवन् संसार का कर्त्ता ईश्वर है या कोई और, सब शास्त्रों की इस विषय में भिन्न-भिन्न सम्मति है ॥१४॥

विभ्रान्त मनसां तत्रनिश्चयो नैव जायते ।
विरोध परिहाराय भगवानत्र शक्तिमान् ॥१५॥

अर्थ—मन भ्रम में पड़ जाता है ठीक ठीक कोई एक निश्चय नहीं हो पाता आप सर्वज्ञ हैं, इस विरोध का परिहार करें ॥१५॥

बन्ध मोक्षादिकं सर्वं रहस्यं ज्ञानि सत्तम ॥
जिज्ञासवे विभोमह्यं वक्तु मर्हसि कृत्स्नशः ॥१६॥

अर्थ—हे ज्ञानि प्रवर बन्ध और मोक्ष की निर्दोष व्यवस्था लगायें, मैं आपसे जिज्ञासु के रूप में पूछ रहा हूँ अतः अवश्य कृपा करके मेरे को अनुगृहीत करें ॥१६॥

असतः सत उत्पत्ति रिति बौद्धा वदन्ति हि ।
सांख्याश्च योगिनश्चापि प्रकृतिं प्रतिजानते ॥१७॥

अर्थ—बौद्धों का सिद्धान्त है कि "असत्, से सत" उत्पन्न होता है सांख्य यो० का कहना है कि प्रकृति से सब पैदा होता है नैयायिक लोग 'सत (परमाणुओं) से सत' की उत्पत्ति मानते हैं ॥१७॥

सङ्ख्योऽणुभ्यो जगज्जात मिति नैषादिका विदुः ।
वेदान्ति नस्तु सर्वं वै ब्रह्मैवेति विजानते ॥१८॥

और वेदान्ती "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ स्वीकार ही नहीं करते ॥१८॥

मन्ये यद्यपि सर्वाणि मतान्यन्ते विहायतम् ।
विरोधं संगतिंयान्ति विज्ञानामेव केवलम् ॥१९॥

अर्थ—हो सकता है ज्ञानीजनों को परस्पर कोई विरोध दिखाई न दे परन्तु साधारण मति मनुष्यों को तो विरोध ज्यों का त्यों दिखाई पड़ता है ॥१९॥

अकुण्ठित मतिः श्रीमान् सर्व शास्त्रेषु मन्महे ।
इमां शङ्कामया कर्तुमतोऽर्हति न तस्यमे ॥२०॥

अर्थ—आपकी सम्पूर्ण शास्त्रों में अकुण्ठित शक्ति है तथा मैं अतिविनीत हूँ आप मेरी इस शंका को अवश्य दूर करें ॥२०॥

एतच्छ्रुत्वा स भगवान् मन्दस्मित पुरस्सरम् ।
विष्णु दासाय तज्ज्ञानं बभाषे वदतां वरः ॥२१॥

अर्थ—यह सुनकर भगवान् श्रीचन्द्र जी ने परम गम्भीर मुद्रा में कुछ कुछ मुस्कराते हुए जो विष्णु दास को ज्ञानोपदेश किया ॥२१॥

श्रूयतां शास्त्रसर्वस्वं समासेन वदाम्यहम् ।
विरोधो नास्ति कस्यापि शास्त्रस्य ज्ञानिनां कृते ॥२२॥

अर्थ—वह संक्षेप में सम्पूर्ण शास्त्रों का सार (सर्वस्व) है उसे आप सुनें, जिसको जान कर कोई विरोध नहीं रह जाता ॥२२॥

अन्धा यथा विजानन्ति गजाऽङ्गानि पृथक्पृथक् ।
तथा शास्त्रेषु चाल्पज्ञा मतान्यन्यानिमन्वते ॥२३॥

अर्थ—जैसे अंधे मनुष्य हाथी के एक एक अङ्ग का स्पर्श करके हाथी को उस अंग के समान लम्बा चौड़ा समतल मोटा आदि मान बैठते हैं ठीक उसी प्रकार अल्पज्ञ मनुष्य शास्त्रों में भिन्न भिन्न मत मान लेते हैं ॥२३॥

सम्पूर्णाङ्ग मयी हस्ती यथैकोन पृथक्पृथक् ।
सम्पूर्णाङ्ग मयं ब्रह्म तथैकं न पृथक्पृथक् ॥२४॥

अर्थ—सम्पूर्ण अंगों वाला अङ्गी (हाथी) अंगों से भिन्न है अर्थात् वे सभी अंग हाथी के ही हैं इसी प्रकार अखण्ड ब्रह्म एक ही है अलग अलग नहीं ॥२४॥

ब्रह्मैव जगतः कर्तृ नानु प्रकृति शून्यताः ।
यच्च स्वयं जडं वस्तु तत्कथं कर्तृतां व्रजेत् ॥२५॥

अर्थ—ब्रह्म ही केवल जगत् का कर्त्ता है अणुवाद प्रकृतिवाद और शून्यवाद का कहना ठीक नहीं है जो पहले अपने आप ही जड़ वस्तु है वह कर्त्ता कैसे हो सकता है ॥२५॥

प्रपञ्च सकलोऽप्येष विवर्तो ब्रह्मणः खलु ।
घटादिवत्पृथिव्याश्च सागरे वीचि संघवत् ॥२६॥

अर्थ—यह सम्पूर्ण संसार उस अखण्ड ब्रह्म का विवर्त है जैसे पृथ्वी में घट पट आदि और समुद्र में तरङ्ग आदि होते हैं ॥२६॥

विकारा बहुधाऽऽकाराः जायन्तां नाम चिद्घने ।
बहूनि नाम रूपाणि मृत्तिकेत्येव सत्परम् ॥२७॥

अर्थ—चिद्घन ब्रह्म में नाना आकार के विकार होते रहें इसमें कोई हानि नहीं पृथ्वी में नाना नाम रूप होने पर भी सत्य तो केवल मिट्टी ही है ॥२७॥

यथा शक्ति यथा ज्ञानं उडडीयन्ते च खे खगाः ।
निगदन्ति जनः सर्वे यथा ज्ञानं यथा मतम् ॥२८॥

अर्थ— जैसे पक्षी अपने ज्ञान तथा अपनी शक्ति के अनुसार ही विपुल आकाश में उड़ान मारते हैं पर आकाश का पार नहीं पाते हैं इसी प्रकार सब मनुष्य अपनी शक्ति और ज्ञान के अनुरूप ब्रह्म के विषय में अपनी अपनी बुद्धि अनुसार शक्ति लगाते रहते हैं परन्तु वास्तवता से वे बहुत दूर रह जाते हैं ॥२८॥

एकोऽहं बहुधा रूपः प्रजामेय सनातनः ।
इति संकल्प्यकल्पज्ञः कल्पान् कल्पयतिप्रभुः ॥२९॥

अर्थ—एक ही सनातन अखण्ड ब्रह्म (परमात्मा) सर्वज्ञ संकल्प करता है कि मैं बहुत रूपों में उत्पन्न होऊँ अतः इसी संकल्पानुकूल भगवान् समय समय पर कल्पों की रचना किया करते हैं ॥२९॥

आत्मनः सृष्टिमुत्पाद्य स्वात्मना परिरक्षति ।
आत्मन्येवच संहृत्य स्वयं तिष्ठति केवलः ॥३०॥

अर्थ—भगवान् अपने से ही सृष्टि पैदा करते हैं आपही उसकी रक्षा करते हैं और अन्त में अपने ही में लीन करलेते हैं जैसे मकड़ी भीतर से ही जाल तनती है और भीतर ही समेट लेती हैं केवल आप ही अन्त में अकेले रह जाते हैं ॥३०॥

शरीरान्नख लोमानि गोमयाद्वृश्चिका यथा ।
जायन्ते कारणाद्भिन्ना तथा लोका परेशितुः ॥३१॥

अर्थ— जिस प्रकार शरीर से बाल, नाखून और गोबर से बिच्छू अपने अपने कारण से विलक्षण (भिन्नाकार) पैदा होते हैं वैसे ही परब्रह्म परमात्मा से सम्पूर्ण चराचर भिन्न भिन्न रूप में पैदा होता है ॥३१॥

सकलोऽपि प्रपञ्चोऽयं पादेनैकेन वर्तते ।
पादत्रयं ब्रह्मणस्तु शुद्धं बुद्धं विराजते ॥३२॥

अर्थ—यह सारा संसार ब्रह्म के एक पाद से ही उत्पन्न हुआ है तीन पाद तो ब्रह्म के अभी तक शुद्ध-बुद्ध ही हैं ॥३२॥

नस्तो जीव शिवौ भिन्नौ परमेतद्विभाव्य ताम् ।
अविद्याऽधिष्ठितो जीव शिवो विद्यामधिष्ठितः ॥३३॥

अर्थ—जीव और ईश में कोई भेद नहीं है जब ईश का अविद्या से संसर्ग हो जाता है तो जीव संज्ञा पड़ जाती है विद्या से अधिष्ठित जीव ईश कहलाता है ॥३३॥

यथा घटेष्वनेकेषु प्रतिविम्वायते रविः ।
तथाऽनेकेषु देहेषु परब्रह्मप्रकाश्यते ॥३४॥

अर्थ—जैसे अनेक घड़ों में एक सूर्य के अनेक प्रतिबिम्ब पड़ते हैं वैसे ही एक अखण्ड ब्रह्म (परमात्मा) अनेक देह में प्रकाशित होता है ॥३४॥

घटाऽऽकाशो महाकाश इत्युपाधि विकल्पितम् ।
उपाधौ नाशिते नास्ति पार्थक्यं कापि किञ्चन ॥३५॥

अर्थ—एक ही आकाश के उपाधि भेद से 'मठाकाश' 'घटाकाश' अनेक नाम पड़ जाते हैं परन्तु उपाधि के नाश होने पर कोई भेद नहीं रह जाता ॥३५॥

नष्टे देहाभिमानेच मुक्तो भवति मानवः।
अहं ब्रह्मेति बोधेन पुनर्जन्म न विद्यते ॥३६॥

अर्थ—देहाभिमान नष्ट हो जाने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है 'अहं ब्रह्मास्मि, 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा ज्ञान होने पर पुनर्जन्म नहीं होता ॥३६॥

सर्प भ्रमो यथा रज्जौ ब्रह्मण्येवं जगद्भ्रमः।
लब्धे च वास्तवे ज्ञाने क: सर्पः कः च संसृति ॥३७॥

अर्थ—जैसे रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है रस्सी प्रत्यक्ष करने पर साँप नहीं रह जाता उसी प्रकार ब्रह्म में भ्रान्ति से ही संसार भासमान हो रहा है वास्तविक ज्ञान हो जाने पर संसार नहीं रह जाता ॥३७॥

जपा कुसुम सान्निध्यात्स्फटिकेऽरुणीमा यथा।
अविद्या सन्निधानेन ब्रह्मण्येवं गुणात्मता ॥३८॥

अर्थ—जपा कुसुम के पास रखने से ही स्फटिकमणि में लालिमा भासती है वैसे ही अविद्या के संनिधान में ब्रह्म में गुण भासमान होते हैं वास्तव में नहीं ॥३८॥

स्वप्न ज्ञानं यथा स्वप्ने सत्यं यद्यपि भासते।
जाग्रत्काले न तत्सत्यं क्वापि कस्यापि दृश्यते ॥३९॥

अर्थ—स्वप्न का ज्ञान उतने समय (स्वप्न काल) में ही सच्चा प्रतीत होता है जागने पर सत्य नहीं रह जाता ठीक अज्ञानावस्था में ही यह सब कुछ प्रतीत हो रहा है ज्ञान हो जाने पर कुछ भी नहीं रह जाता ॥३९॥

तद्वद ज्ञान जं सर्वं जगत्सत्यं न विद्यते।
छित्वा ज्ञानासिनाऽज्ञानं केवली भव वीतभीः ॥४०॥

अर्थ—यह सारा संसार अज्ञान काही विलास है सत्य नहीं। अतः ज्ञान रूपी तलवार से अज्ञानरूपी शत्रु को नष्ट कर निर्भय बन जाओ ॥४०॥

इत्येवं विशदं श्रुत्वा ब्रह्मज्ञान मनन्य धीः।
वीतशङ्को विष्णुदासः कश्चित्काल उवास सः ॥४१॥

अर्थ—इस प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के श्री मुख से संक्षिप्त में हिन्दू धर्मशास्त्र का रहस्य सुनकर विष्णुदास जो सर्वथा शङ्का रहित हो गये और कुछ समय तक भगवान् के पास सेवा करते ब्रह्मविद्या का अभ्यास करते रहे ॥४१॥

आकाश ऋषि बाणेन्दु मिते वैक्रम वत्सरे ।
आषाढ़े पूर्णिमायाञ्च दीक्षितो विष्णु दासकः ॥४२॥

अर्थ—विष्णुदास जो ने १५७० विक्रम संवत आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन भगवान् श्रीचन्द्रजी से गुरु दीक्षा मन्त्र लै सेवक बने ॥४२॥

श्रीचन्द्र चरणौ नत्वा दक्षिणां प्रति पाद्यच ।
प्रफुल्लहृदयो भूत्वा स्तुतिं कृत्वा वद्धाञ्जलिः ॥४३॥

अर्थ—तथा भगवान् का चरणोदक पान किया अनन्तर गुरु दक्षिणा दी अत्यन्त प्रसन्न होकर हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे ॥४३॥

निरीहन्निराकार निश्चेष्ट रुपं महन्कारणं ब्रह्मवेद प्रसिद्धम् ।
सदानिर्गुणन्निर्विकारमगम्यं सदाऽगोचरं गुप्तगुप्तातिगुप्तम् ॥४४॥

अर्थ—हे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रभगवान् आप साक्षात् मानव शरीर धारण करते हुये भी निरीह निराकार निश्चेष्ट महत् कारण वेद प्रसिद्ध निर्गुण निर्विकार अवाङ मनस गोचर अगम्य अत्यन्त गुप्त साक्षात् ब्रह्म हैं ॥४४॥

सदानन्द कन्दं विचित्र प्रभावं गुणातीति गोलोक गोभिस्सु वाच्यम् ।
सदायोगि चिन्ता सुचिन्त्यंसु चिन्त्यं सदा ध्यान मग्नं सुमग्नं सुमग्नम् ॥

अर्थ—हे गुरु देव आप आनन्द कन्द सच्चिदानन्द विचित्र प्रभाव वाले सर्व शक्तिमान गुणातीत गोलोक वासियों से वाच्य सदा योग चिन्ता में रहने वाले योग कला से ही सुचिन्त्य सदा ध्यान मग्न रहते हैं ॥४५॥

सदा वेद मन्त्रैः सुतन्त्रप्रमन्त्रैस्सदा सोऽहमस्मीति वाक्य प्रजल्पम् ।
सदोङ्कार धाराच्छटाच्छन्नमास्ते महा काव्य काली कला धौत धौतम् ॥

अर्थ—हे गुरुदेव आप सदा वेद मन्त्र तन्त्र यंत्रादि से गाये जाते हैं और सोऽहमस्मि यह महा मन्त्र से जपे जाते हैं । ओंकार धारा की घटा से तथा महा काव्य ओंकार की काली कला से सदा पवित्र रहते हैं ॥४६॥

सदा योग निद्रा कला काम लोलं महाकाल कालं कलङ्कादिकालम् ।
जगन्मानमानं महा मानशीलं महा मान्य मानं च मानातिमानम् ॥४७॥

अर्थ—हे योगिराज आप सदा योग निद्रा की कला में अनुरक्त रहते हुये महाकाल

के भी कालरूप स्वतन्त्र कलावाले संसार के सब मानव में उत्तम मान पाने वाले अत्यन्त मननशील समस्त मान्यों से भी मान्य स्वयं सर्वत्र विराजमान रहते हैं ॥४७॥

सदा लोक लोकं महालोक लोकं जगल्लोक लोकाति लोकं सुलोकम् ।
सदासद्गुणं सद्गुणं गौणगौणं गुणाऽगार गौणं महा गौण गौणम् ॥४८॥

अर्थ—हे दयासागर गुरो आप लोकों के लोक महालोकों के लोक विजित सर्व लोक समस्तलोक स्वरूप होते हुये सदा सद्गुण गुणाधार गुणागार समस्तगुणखान गुणस्वरूप से विराज मान रहते हैं ॥४८॥

महानिर्गुणं निर्गुणानां गुणांनिर्गुणं गौण राशेर्महा सद्गुरुश्च ।
अनिच्छं महेच्छं महा कर्तृ कर्तृ महाधर्तृ धर्तृ महाहर्तृ हर्तृ ॥४९॥

अर्थ—हे प्रभु आप गुण स्वरूप होते हुये भी महानिर्गुण और निर्गुणों का गुण, गुण राशिका के परम स्वामी होते हुये भी इच्छा महेच्छादि से रहित बड़े कर्ताओं के कर्ता बड़े हर्ताओं के हर्त्ता रूप से समानाकार सदा रहते हैं ॥४९॥

अरूपं सरूपं महारूप रूपं निरानंद रूपं महानन्द रूपम् ।
सदा निष्कलं पुष्कलं कल्कलन्तु कलौकोकिलं कौकिलं कोल लोलम् ॥

अर्थ—हे जगद्गुरो आप रूप रहित होते हुये भी अत्यन्त रूपवान महारूपों का रूप निरानन्दरूप और महानन्द रूप रूपित होते हुये सदा रूप कला पुष्कलित समस्त कला कलकलित होते हुये कलिमें कोकिल कोल लोलिना ललित रूप से झलक रहे हैं ॥५०॥

विलोलं सुचोलं महाचाल भोलं चलेचञ्चलं चारुचन्द्रा वलोकम् ।
सदां ज्ञान विज्ञान सुज्ञान खोलं सदाऽद्वैत मेल प्रमेल प्रमेलम् ॥५१॥

अर्थ—हे हिन्दू प्रजा प्राण सञ्चालक आप अपनी कला से उपदेश कला चाञ्चल्य से महाचलनशील और महाचालनशील चञ्चल जगत् का अंधकार हटाने में चन्द्रमा के समान दृष्टि आते हुये भी ज्ञान विज्ञान की खान को प्रवाहित करके स्वयं अखण्ड अद्वैतानन्द में समाधिस्थ हैं ॥५१॥

महाध्येय ध्येयं महाध्यान गम्यं महाध्यातृ सद्ध्यान सुध्यानलोलम् ।
महायोगियोगं महा योगयोगं महायोगियोग्यं सुयोग्याति योग्यम् ॥५२॥

अर्थ—हे शंकर स्वरूप गुरुदेव आप समस्त संसार से ध्येय पदार्थों से भी ध्येय और महा ध्यान गम्य महा ध्यान करने वाले ध्यान सुध्यान कला लौलीन महायोगियों के योग तथा महायोगों के योग महायोगियों में योग्य सुयोगातियोग स्वरूप रहते हैं ॥५२॥

सदा खेचरी खेचरं खं खमाख्यं सुनिर्वाण वाणं महा वाण वाणम् ।
महा तन्त्र तन्त्रं महा मंत्र मंत्रं महा यंत्र यंत्रं महायत्न यत्नम् ॥५३॥

अर्थ—हे संसार कला को किल आप सदा खेचरी मुद्रा से उर्द्धलोक विग्येय निर्वाण (खं) नामक निर्वाणवाण महावाण वाण होते हुये भी महा-तन्त्र मन्त्र यन्त्र उपयत्नादि कलाओं से दिखाई दे रहे हैं ॥५४॥

चतुर्वेद रूपं महावेद वेद्यं सुवेतृ प्रवेदैस्सदा वेदनीयम् ।
अनङ्गं महाङ्गं निरङ्गं विषाङ्गं दयाङ्गं कृपाङ्गं समस्ताङ्गमङ्गम् ॥५४॥

अर्थ—हे निराकार पद वाच्य आप चारो वेदस्वरूप वेद वक्ताओं से वन्दनीय अङ्ग रहित होते हुए भी महाअङ्ग वाले निरङ्ग विषङ्ग दयाङ्ग कृपाङ्ग समस्ताङ्ग पवित्र रूप से प्राणी मात्र का उपकार कर रहे हैं ॥५४॥

यशोङ्गं गुणाङ्गं तपोऽङ्गं शुभाङ्गं महाङ्गं महाङ्गञ्च धर्माङ्गमङ्गम् ।
विशेषाङ्ग सामान्यमङ्गं क्षमाङ्गं सुसत्याङ्ग सत्याङ्ग सत्याङ्ग मङ्गम् ॥५५॥

अर्थ—हे निर्गुण महाराज आप विमुक्त होते हुए भी यशोंग गुणाङ्ग तपोंग शुभाङ्ग महाङ्ग धर्माङ्ग विशेषाङ्ग सामान्याङ्ग सत्याङ्ग क्षमांगादि नामों से परिपूजित हो रहे हैं ॥५५॥

महाभासकं भासकं भासितानां महाभासकं भासकं भासितानाम् ।
महात्रासकं त्रासकं त्रासिकानां महाचर्चकं चर्चकं चर्चितानाम् ॥५६॥

अर्थ—हे सच्चिदानन्द घन प्रभो आप निर्वाण निरीह होते हुए भी पूर्व भाषित पदार्थों का महाभावक पूर्वकथित महामन्त्रों का महाभाष्य करने वाले पूर्वत्राशित शत्रुओं के महात्राशक पूर्व चरचित महा मन्त्रादिकों का महाचरचक रूप से भक्तों के लिये स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं ॥५६॥

महाभर्त्सकं भर्त्सकं भर्त्सितानां महाहिंसकं हिंसकं हिंसतानाम् ।
महारक्षकं रक्षकं रक्षितानां महाभक्षकं भक्षकं भक्षितानाम् ॥५७॥

अर्थ—हे सृष्टि कर्तृ भर्तृ संहार करने वाले गुरुदेव आप साक्षात ब्रह्म स्वरूप होते हुए भी हिंदू धर्म विध्वंशक तथा हर प्रकार से दबे हुए प्राणियों को महाभय पहुँचाने वाले पूर्वकाल हिंसकों की महाहिंसा करने वाले रक्षितों की महा रक्षा करने वाले पूर्वकाल भक्षितों का महा भक्षण करने वाले देश कल्याणार्थ सदा अपने स्वरूप का प्रकाश करते रहते हैं ॥५७॥

महा भावकं भावकं भावितानां महासर्जकं सर्जकं सर्जितानाम् ।
महाबोधकं बोधकं बोधितानां महा नाशकं नाशकं नाशितानाम् ॥

अर्थ—हे सर्वरक्षा परायण उदासीनाचार्य जगद्गुरु आप सब से अति निराले होते हुए भी पूर्व काल भावित जीवों का परम कल्याण स्वरूप पूर्व कालोत्पन्न पदार्थों का पुनर जीवन नार्थ महासर्जक पूर्वकाल बोधित समस्त ज्ञान विज्ञान तथा धर्मग्रन्थों का महाबोधक पूर्वकाल नासित अज्ञानों के महानाशकादि विशेषणों से आज भी आप सुशोभित होते हुये दृष्टि गोचर हो रहे हैं ॥५८॥

महा नाथकं नाथकं नाथितानां महानाधि नाथं महाऽनाथ नाथम् ।
महा तारकं तारकं तारितानां महा मोक्षदं मोक्षदं मोक्षितानाम् ॥५९॥

अर्थ—हे दीन बन्धु दीनानाथ अनाथनाथ अशरण शरण हिंदू प्रजात्राण जगद्गुरो आप समस्त प्रपञ्च से निर्लिप्त होते हुए भी पूर्वकाल सुरक्षित सहायत प्राणियों का बारम्बार महानाथक और परम अनाथों के कल्पवृक्ष रूप पूर्वकाल तारितपदार्थों का स्वयं महातारक पूर्वकाल मोक्ष पाये हुये प्राणियों के लिये महामोक्ष देने वाले अर्थात् अगम्य अगोचर अनिर्वचनीय मोक्ष के देने वाले आप सदा विद्यमान हैं ॥५९॥

तन्नाम गृहणान् स्वगृहं जगाम् प्रणाम कृत्वा बहुवार धेयम् ।
श्रीचन्द्रनामो जपतेति नित्यं मनोरथां सिद्ध ततो मथा स्यात् ॥६०॥

अर्थ— इस प्रकार श्री गुरु देव जी की स्तुति कर विष्णु दास बारम्बार नतमस्तक हो अपने गृह जाते भये। जो कोई श्री ११०८ जगद्गुरु महाप्रभु श्रीचन्द्र महामुनि का नाम नित्य जपेगा उसके सर्व मनोरथ सिद्ध होंगे ॥६०॥

श्रीचन्द्रदेव चरितं पठितं जनानां
वृद्धिं तनोति सुतरां धन धान्य युक्ताम् ।
तस्मात् पठन्तु सततं परमादरेण
भुक्त्वाऽत्र भोग निकरं दिविशं लभन्ताम् ॥६१॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र का यह चरित्र जो पवित्र भावना से पढ़ता है वह सपूर्ण धन धान्य से युक्त हो जाता है इसलिए भगवान् के चरित्रों का परम भक्ति के साथ स्वाध्याय करै यहाँ समस्त सुख भोगकर स्वर्ग में देव दुर्लभ आनन्द को प्राप्त करै ॥६१॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमदुदासीनवर्य्य-परमहंसावतंस-ब्रह्मनिष्ठ-निखिल-शास्त्रनिष्णात-योगिराज-सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखंडिदेव गुरुचरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन

विरचिते चन्द्रांकिते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे पण्डित विष्णुदासोपदेश एवं विष्णुदास स्तुति करण प्रसंग वर्णनं नाम सकल कलि कल्मष नाशिनी दसम किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥१०॥

॥ एकादश किरण प्रारम्भः ॥

आसीद्रम्याऽगण्य पण्या पुण्या परम सुन्दरी ।
तलवण्डी पुरीनाम्ना नवाबो यत्र शासकः ।१।

अर्थ—परम सुन्दर अनेक दुकानों से सुशोभित तलवण्डी नाम नगरी थी यहाँ नवाब राय बुलार राज्य किया करते थे ॥१॥

अधुना तूच्यते तस्य ननकाना लोकेऽभिधा ।
तीर्थ-स्थानमुदासीन सम्प्रदायस्य विद्यते ॥२॥

अर्थ—आज कल उसका नाम 'ननकाना साहब' पड़ गया है यहाँ उदासीन सम्प्रदाय का बड़ा पवित्र स्थान है ॥२॥

श्री बुलार नवाबस्य वाटिका च मनोहरा ।
तत्राऽऽसीत्सर्व वृक्षाणां लतानां जननी परम् ॥३॥
लोचनाऽऽकर्षिणी धन्या स च सर्वतु शालिनी ।
कोकिलानां कलकलै र्वाचाला भ्रमरैः कृता ॥४॥
फलपुष्पसमृद्ध्या च सा न मुक्ता कदाचन ।
जहासङ्नन्दनं मन्ये तड़ागै र्लोचनैरिव ॥५॥
मन्दानिलाऽऽलिङ्गिताभिः लताभिश्चारुतां गता ।
कस्य नाय जहाराऽसौ मानसं सरसा वनी ॥६॥

अर्थ—उस नगरी में नवाब राय बुलार की एक बड़ी सुन्दर बगीची थी। जिसमें सब ऋतुओं में फूलने फलने वाले लता वृक्ष लग रहे थे। देखने वाले के नेत्रों को बरवश अपनी ओर खींच लेती थी। कहीं कोयलों की कू कू हो रही है और कहीं भ्रमरों का मधुर गुञ्जार हो रहा है सदा फल फूलों की बहार बनी रहा करतो थी। मानो तालाब रूपी नेत्रों से नन्दन बन की हँसी उड़ा रही है। मन्द मन्द हवा से हिलती हुई लताओं की लीला तो एक देखने के ही योग्य थी वहाँ से निकलने वाले अपना मन देकर चले जाते थे ॥३-४-५-६॥

एकदा पर्यटन्देवः श्री चन्द्रश्चारु लोचनः ।
पञ्च शिष्यान्वितस्तत्र समायातः प्रसन्नधीः ॥७॥

अर्थ—एक समय सुन्दर लोचन सदा प्रसन्न श्री ११०८ भगवान् श्रीचन्द्र जी पाँच शिष्यों सहित घूमते घूमते इधर आ निकले ॥७॥

आकाश ऋषि वाणेन्दु मिते वैक्रम वत्सरे ।
फाल्गुण्यां पूर्णिमायाञ्च श्रीचन्द्रः समगात्प्रभुः ॥८॥
आगत्य पञ्चभिः शिष्यैः सहकार तरोस्तले ।
उपाविशत्प्रसन्नात्मा समन्तात्प्रविलोकयम् ॥९॥
तस्थौ समाधौ तत्रैव श्रीचन्द्रो भगवान् सुधीः ।
राय बुलारः आगम्य सायं काले ददर्शतम् ॥१०॥

अर्थ—पांच शिष्यों सहित आकर एक बड़े भारी आम के वृक्ष के नीचे वहाँ की रमणीयता देखकर भगवान् ने १५७० वि सं० फाल्गुण पूर्णिमा को समाधि लगाई। और उसी दिन सायंकाल राय बुलार साहब ने आकर आपके दिव्य दर्शन किये ॥८-९-१०॥

महसां परमं राशि समाधिस्थं तपो निधिम् ।
दृष्ट्वाऽसौ मंत्रिभिः सार्धं मंत्रयामास कौतुकी ॥११॥

अर्थ—तेजपुञ्ज समाधिस्थ, तपोनिधि, भगवान् को देखकर अत्यन्त आश्चर्य से मन्त्रियों के साथ विचारणा करने लगा ॥११॥

कोऽयं महा प्रतापेन नश्चक्षूंष्यामि भूतवान् ।
अदृष्ट श्रुतपूर्वोऽयं गम्यतां दृश्यतामिति ॥१२॥

अर्थ—यह कोई अवश्यमेव महाप्रतापी महापुरुष हैं। जिनके सामने हमारी आँखे नहीं ठहरती। आज तक न इन्हें कभी देखा है और न कभी सुना है चलो कुछ बातचीत करें ॥१२॥

आगत्य सचिवैः साकं प्रणम्य स कुतूहलम् ।
पप्रच्छ प्राञ्जलिः शान्तं श्रीचन्द्रं शिष्य संयुतम् ॥१३॥

अर्थ—मन्त्रियों समेत आकर प्रणामादि सत्कार के अनन्तर नवाब साहब ने शान्त मुद्रा में बैठे शिष्यों (सेवकों) सहित भगवान् श्रीचन्द्र जी से प्रश्न किया ॥१३॥

को भवान् कथमायातः किञ्चिच्चिकीर्षति वाक्रियाम् ।
कृपया कथ्यतां सर्वं श्रोतुमिच्छामि सादरम् ॥१४॥

अर्थ—हे भगवन् आपका परिचय क्या है कैसे दर्शन देने की अकारण कृपा की आप यह कौन सी क्रिया कर रहे थे कृपया मैं इसे सुनना चाहता हूँ ॥१४॥

निशम्य वचनं तस्य श्रीचन्द्रः स्मित सुन्दरः ।
उवाच वचनं धीरं प्रशान्त हृदयः शुचिः ॥१५॥

अर्थ—उसके बचन को सुनकर सदा प्रसन्न हृदय शान्तात्मा परम पवित्र भगवान् श्रीचन्द्र जी गम्भीर भाव से मुस्क्याते हुये बोले ॥१५॥

श्रूयतां मम नामादि वेत्तु मिच्छति चेद्भवान् ।
श्रीचन्द्रोऽस्मि निजेच्छातः अटन्नत्र समागतः ॥१६॥

अर्थ—यदि आप मेरे नामादि सुनना चाहते हैं तो सुनिये मुझे श्रीचन्द्र कहते हैं स्वतः इधर घूमते घूमते चला आया हूँ ॥१६॥

धर्मोद्धारः किलाऽस्माकं मुख्यं कर्मेति बुध्यताम् ।
नाना देशान् पर्यटामो यदर्थं ब्रह्म वादिनः ॥१७॥

अर्थ—जिसके लिये ब्रह्मवक्ता महापुरुष देशदेशान्तरों में घूमा करते हैं वही धर्मोद्धार हमारा मुख्य कर्तव्य है ॥१७॥

श्रीचन्द्रेत्यभिधां श्रुत्वा चकितः पुनराह सः ।
श्रीमन् सिद्धो भवाँल्लोकान्मया श्रुत मनेकधा ॥१८॥

अर्थ—श्रीचन्द्र नाम सुनते ही नवाब बड़े चकित भाव से कहने लगे हे श्रीमान्जी मैंने अपने कानों कई बार सुना है कि आप बड़े भारी सिद्ध महात्मा हैं ॥१८॥

सिद्धिं दर्शय काञ्चिन्मे कौतुकं वर्तते महत् ।
ययाते च प्रसिद्धः स्याद् विश्वासोमम निश्चलः ॥१९॥

अर्थ—हे सिद्धेश्वर मुझे सिद्धि देखने का बड़ा कुतूहल है अतः मुझे कोई सिद्धि दिखायें इससे आपकी प्रसिद्धि होगी और मेरी श्रद्धा हिन्दू धर्म शास्त्रों पर अटल हो जायगी ॥१९॥

ओमित्युक्त्वा महा सिद्धः तं प्रोवाच विलोक्यताम् ।
पृष्ठत् इति सोऽपश्यत्स्वात्मानं स्वे च मन्दिरे ॥२०॥

अर्थ—सिद्धों के भी सिद्ध भगवान् श्रीचन्द्रजी ने ॐ ऐसा कह कर उससे कहा कि तुम अपनी पीठ की ओर देखो जब उसने पीछे को देखा तो अपने आपको अपने घर में पाया ॥२०॥

आश्चर्य चकितः स्तब्धः विवाकूतरल लोचनः ।
महिष्या वीक्षितस्तस्यै कौतुकं पर्य बोधयत् ॥२१॥

अर्थ—उसकी बेगम ने उससे पूछा कि आप इतने चकित स्तब्ध से क्यों हो रहे हैं उत्तर में नबाव महोदय ने सम्पूर्ण घटना कह सुनाई ॥२१॥

महिष्या चान्वितो भूयस्तत्राऽऽगत्य प्रणम्य च ।
नीत्वा गेहं सादरं तं स्वर्ण सिंहासने स्थितम् ॥२२॥

अर्थ—इसके अनन्तर बेगम सहित नबाव ने आकर भगवान् को प्रणाम किया और अपने घर लेजाकर बड़े आदर से सोने के सिंहासन पर बैठाया ॥२२॥

आनर्च सकलाभिश्च सामग्रीभिः सभक्तिमान् ।
नत्वा स्तुत्वा पुनः प्राह धन्योऽहं सह बान्धवैः ॥२३॥

अर्थ—फिर भक्ति पूर्वक षोड़पोपचार से पूजन कर प्रणाम किया और स्तुति की तथा कहने लगा भगवान् आज मैं सहित बन्धुओं के धन्य हो गया हूँ ॥२३॥

आत्म जिज्ञासया भूयः सादरं पृष्टवान् सुधीः ।
भगवन् कोऽस्मि किं ब्रह्म कश्च भेदः परस्परम् ॥२४॥

अर्थ—नवाब साहब ने आत्म जिज्ञासा से पुनः प्रश्न किया कि भगवन् मैं कौन हूँ ब्रह्म क्या चीज है मुझ और ब्रह्म में क्या अन्तर है ॥२४॥

इति सर्वं न जनासि बोध्यतां कृपया त्वया ।
येनाऽहं कृत कृत्यःस्यां विख्यातिश्च भवेत्तव ॥२५॥

अर्थ—यह सब कृपया मुझे समझायें जिससे मैं अधिक कृत्य कृत्य हो जाऊँ और आपकी कीर्ति फैले ॥२५॥

॥ श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्र उवाच ॥

त्वं ब्रह्मासिन भिन्नोऽसि तत्त्वमस्यादि वाक्यतः ।
भेदस्तु विद्याऽविद्याभ्यां भासते ननु वस्तुतः ॥२६॥

अर्थ—तत्त्वमस्यादि वाक्यों के प्रमाण से 'तू साक्षात् ब्रह्म ही है' उससे भिन्न नहीं विद्या अविद्या से भेद भास रहा है वास्तविक नहीं है ॥२६॥

भागात्यागाख्यया ज्ञात्वा तत्त्वं लक्षणया परम् ।
ब्रह्म ज्ञानी भवेन्मुक्तः नास्य जन्म पुनर्भवेत् ॥२७॥

अर्थ—भागत्याग लक्षणा से इसका तत्त्व जान कर ब्रह्मज्ञानी जन जन्म मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं पुनः उनका जन्म संसार में नहीं होता है ॥२७॥

॥ राय बुलार उवाच ॥

पठिता पारसी भाषा नाऽधीता सुर भारती ।
कथं मे ममताऽहन्ते गच्छेतां भगवान् वद ॥२८॥

अर्थ—राय बुलार ने कहा, भगवन् मैंने तो केवल उर्दू फारसी भाषा ही पढ़ी है, संस्कृत नहीं, कहिये मेरी अहन्ता और ममता कैसे दूर हो सकती है ॥२८॥

मित्र पुत्र कलत्राणि च्छत्रं वेत्र गृहाणि च ।
ममैतानीति मन्येऽहं न जानेतत्त्व मद्भुतम् ॥२९॥

अर्थ—हे भगवन् ! मुझे मित्र, पुत्र, कलत्र (स्त्री), छत्र, वेत्र, और घर वार सभी सत्य प्रतीत हो रहे हैं। यह विलक्षण तत्त्व समझ में नहीं आता ॥२९॥

न्यायालयस्य कार्याणि राष्ट्रेकण्टक शोधनम् ।
कूपाराम तडागाऽऽदि निर्माणं जन रञ्जनम् ॥३०॥

अर्थ—कचहरी के काम, राष्ट्र में दुष्टों को भगाना कुआँ तालाब वावड़ी घाट बाग आदि लगाना बनवाना, प्रजा का मन रंजन करना ॥३०॥

विवाहश्चैव कन्यानां पुत्राणां च विवर्धनम् ।
अध्यापनं पुनस्तेषां यौवराज्येऽभिषेचनम् ॥३१॥

अर्थ—कन्याओं का विवाह कराना, लड़कों का सुचार, रूप से पालन करके उनको श्रेष्ठ विद्याध्ययन कराना उन्हें राज्य का उत्तराधिकारी करना ॥३१॥

तेषां विवाह चिन्ता च दुर्गुणेभ्यो विवर्जनम् ।
कुटुम्ब कलहस्यापि शमनं भृत्य तोषणम् ॥३२॥

अर्थ—तिनके विवाह की चिन्ता करना, उन्हें दुर्गुणोंसे बचाये रखना, घरेलू झगड़ों को दबाना नौकरों को संतुष्ट रखना जिससे किसी प्रकार के काम में गड़बड़ी न पड़े ॥३२॥

कोषे ध्यानं बलेध्यानं सचिवेषु सतर्कता ।
नारीणां चरिताऽवेक्षा कञ्चु किष्ववधानता ॥३३॥

अर्थ—खजाने और सेना का ध्यान रखना, मन्त्रियों पर सतर्क दृष्टि रखना स्त्री जनों के चरित्र रक्षा का ध्यान कञ्चुकियों की देख भाल करना ॥३३॥

प्रणिधीनां नियुक्तिश्च पर राष्ट्रस्य भेदनम् ।
जीर्णोद्धारश्च दुर्गस्य कराऽऽदानं समन्ततः ॥३४॥

अर्थ—खुफिया बिभाग बनाना जिसे आज कल सी० आई० डी० कहते हैं, दूसरे राष्ट्र में भेद डाल के अपना कार्य सिद्ध कराना टूटे किलों की पुनः मरंमत कराके सुदृढ़ बनाना दण्ड लेना ॥३४॥

व्यायामो रथचर्या च वाजिशाला निरीक्षणम् ।
विधानंद्विरदेभ्येश्चगुल्म स्थापन मन्तरा ॥३५॥
जनापवाद चिन्ता च वृष्टि चिन्ता पदे पदे ।
नदी कुल्यादि निर्माणं कृषि कर्मोन्नतिस्तथा ॥३६॥
दीने दानं हिते मानं कुटिले कुटिला कृतिः ।
पूज्यानां पूजनं दण्डो दण्ड्यानां रक्षिकल्पना ॥३७॥
एवमन्यानि कार्याणि कार्याण्येवमया विभोः ।
स्वस्थ स्थातुं न शक्नोमि का कथा ब्रह्म चिन्तने ॥३८॥

अर्थ—परेट करवानी, रथ चलाना, घुड़शाल, हाथीशाला आदिका निरीक्षण करना जन अपवाद की चिन्ता, वर्षा की चिन्ता, नदी से नाले बनवाना, कृषि विभाग की तरक्की करना, दीनों को दान देना, हितैषियों का मान करना, कुटिलों में कुटिलता, पूज्यों का आदर, उद्दण्डों के लिये पुलिस रखना, आदि २ भगवन् सैकड़ों काम हैं। घड़ी भर भी आराम नहीं मिलने पाता ब्रह्म चिन्तन ऐसी अवस्था में कैसे सम्भव हो सकता है ॥३५।३६।३७।३८॥

इत्युक्त्वा विरतेतस्मिन् श्रीचन्द्रो धीर भाषणः ।
किंचित्स्मित्वा प्रसन्नाऽऽस्यो वभाषे भाषणे पटुः ॥३६॥
ओमेतानि समस्तानि श्रुतानि सावधानतः ।
कार्याणि भवतस्तत्र युक्तिं ते बोधयाम्यहम् ॥४०॥
कुर्वन्नपि च सर्वाणि कर्माणि सावधानतः ।
जनकादि वदात्मन्ये वात्मानं स्थापयेत्सुधीः ॥४१॥

अर्थ—नवाब साहब के ऐसा कहके चुप हो जाने पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने मुस्करा कर कहा हाँ सब सुन लिया ऐसी दशा में भी ब्रह्म चिन्तन हो सकता है संसार में सब काम करता हुआ भी बुद्धिमान जन सदा आत्म चिन्तन करै ॥३६।४०।४१॥

पुंश्चली स्त्रीव सर्वाणि गृह कर्माणि साधयेत् ।
मनस्तु सर्वदा दद्यात्परे ब्रह्मणि केवले ॥४२॥

अर्थ—कुलटा स्त्री जैसे सब काम करती हुई भी अपने यार का स्मरण करती रहती है इसी प्रकार सब काम करता हुआ भी बुद्धिमान् पुरुष अपने मन को ब्रह्म चिन्तन में लगाये रखे ॥४२॥

आददानश्चलन् पश्यन् जिघ्रंश्रृण्वन वदन्नदन् ।
स्वपञ्जाग्रत्स्पृशन् ध्यायन् सर्वदा ब्रह्म चिन्तयेत् ॥४३॥

अर्थ—लेता देता चलता फिरता देखता सूँघता सुनता बोलता खाता पीता सोता जागता स्पर्श करता सोचता अर्थात् सब दशाओं में ब्रह्म का चिन्तन करता रहे ॥४३॥

नायमात्मा क्रिया धर्मानिश्चिलः केवलोऽमलः ।
गुणा एव गुणेष्वेतेवर्तन्ते स्व स्व भावतः ॥४४॥

अर्थ—यह आत्मा 'कर्म धर्म, नहीं है निर्मल निश्चय अखण्ड है स्व स्वभाव के अनुसार गुण गुणों में रहते हैं ॥४४॥

अविद्या मोहितो जीवः कर्तारं स्वं च मन्यते ।
न कर्ता त्रिषु कालेषु जीवो ब्रह्मैव ना परः ॥४५॥

अर्थ—अविद्या से बँधा हुआ जीव अपने को झूठे ही कर्त्ता मान बैठत है जीव तीन काल में भी कर्त्ता नहीं सिद्ध होता कर्त्ता तो केवल ब्रह्म ही है दूसरा कोई नहीं ॥४५॥

सुधोपमादेशेन स्वच्छ बुद्धिः स्मिताऽऽननः ।
राय बुलारः प्रणम्य वहुधास्तुतिमाचरत् ॥४६॥

अर्थ—सुधासमान उपदेश सुनकर नवाब का अज्ञान दूर हो गया और बुद्धि शुद्ध हो गई प्रसन्न होकर प्रणाम किया और बहुत स्तुति की ॥४६॥

नानोपचारैः सम्पूज्य भूरिदत्वा च दक्षिणाम् ।
पुनरागम्य ता मुक्ता बिससर्ज मुदान्वितः ॥४७॥

अर्थ—षोडशोपचार पूजा के अनन्तर बहुत गुरु दक्षिणादी बड़ी प्रसंन्नता और समारोह से भगवान् को बिदा किया और पुनः दर्शन देने के लिए प्रार्थना की ॥४७॥

इदं यश्चरित्रं पवित्रं विचित्रम् अधीते श्रृणोति प्रचारं विधत्ते ।
सदा तस्य पार्श्वं न मुञ्चेत लक्ष्मीः श्रिया युक्तदेवस्यचित्र प्रभावात् ॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के इस विचित्र चरित्र को जो मनुष्य पढ़ता सुनता और प्रचारित करता है भगवान् श्रीचन्द्र के आशीर्वादी प्रभाव के कारण उसके पास धन दौलत कभी दूर नहीं होती ॥४८॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गा मध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे राय बुलारोपदेश वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी एकादश किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥११॥

॥ द्वादश किरण प्रारम्भः ॥

अथो नानको देश देशान्तरेषुस्वधर्मं प्रचारं विधायाऽऽगमत्सः ।
स्वजन्म प्रदेशे च नानकान नाम्नि सुतं चावलोक्यातिहर्षं बभार ॥१॥

अर्थ—एक समय श्री गुरु नानक देव जी महाराज देश देशान्तरों में धर्म का प्रचार करके वापिस अपनी जन्म भूमि ननकाना में आये तथा वहाँ अपने सुपुत्र श्रीचन्द्र जी को देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए ॥१॥

स्वगेहं समागत्य दृष्ट्वा च सर्वं यथा पूर्व मत्यन्त मानन्द माप ।
अहो वीतरागस्य तस्यापि तादृग् जितं स्नेह मय्याजगजन्मभूम्या ॥

अर्थ—घर में पहले की भाँति सब ठीक व्यवस्था को देखकर श्री गुरु जी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा धन्य है स्नेहमयी जन्मभूमि जिसने गुरु जी ऐसे वीतराग महापुरुष को भी अपने स्नेह से जीत लिया ॥२॥

सुतेनापि चन्द्रेण सम्पूजितोऽसौ चिरंतं समालिङ्ग चाघ्राय मूर्ध्नि ।
चिदानन्द सन्दोह सिन्धौनिमग्नः सुतः कस्यनाह्लाद कारी जगत्याम् ॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र जी ने उन्हें प्रणामादि से सत्कृत किया गुरु जी ने भी भगवान् को गोद में लेकर प्यार किया चिदानन्द स्वरूप बालक संसार में किसे प्रिय नहीं लगता ॥३॥

ततोऽसौ यवीयान रमाचन्द्र पुत्रः समागत्य तातस्य पादे पपात ।
समुत्थाप्य संयोज्य कण्ठेचिरायं प्रकामं सुखं नानको लब्धवान्सः ॥४॥

अर्थ—अनन्तर भाई लक्ष्मी चन्द जी* ने भी पूज्य पिता जी को सादर सविनय प्रणाम किया श्री गुरु जी ने उसको भी गोद में ले लिया और बड़ा प्यार किया तथा प्रसन्न हुये ॥४॥

उभाभ्यामसावशिषं पावनी ता प्रदायाति सौख्यं दधौ स्वस्य चित्ते ।
परेषां हितायेव चित्तेन वाचा शरीरेण कुर्वन्ति कार्याणि सन्तः ॥५॥

अर्थ—श्री गुरुजी ने अपने दोनों पुत्रों को शुभ आशीर्वाद दिया क्यों न ऐसा होता ये तो अपने ही थे महापुरुष तो सब का ही मन वाणी कर्म से कल्याण चाहते हैं ॥५॥

---

*श्री गुरु नानक देव जी भेष उदासीन के छोटे पुत्र लक्ष्मी चन्द जी का जन्म वि० सं० १५५३ फाल्गुण प्रविष्टा १६ को हुआ था मुण्डन यज्ञोपवीत आपके नाना मेहता मूलचन्द ने कराया था। वि०सं० १५६७ वैसाख सुदी ३को श्री गुरुनानक देवजी ने उदासीन सम्प्रदायानुसार अपना चेला वनायसन्त उदासीन भेष दिया। वि० सं० १५७५ फाल्गुन सुदी २ को लक्ष्मीचन्द्रजी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के सादिक चेले बन करामात के धनी हो बाबा की पदवी (ओहदा) प्राप्त किया तब से वेदी साहब जादे सेली पहनते और बावे कहाते हैं यही कारण है कि वेदी लोग उदासीनों को बड़ा गुरुमान उदासीन पञ्चायती बड़े अखाड़े की पूजा करते हैं। वि० सं० १५७५ फाल्गुण सुदी २ को गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के हाथों अपने छोटे बेटे लक्ष्मीचन्द्र जी को श्री गुरु नानक देव जी ने करतार पुर (डेरा बाबा नानक) की गद्दी पर बैठाया (जहाँ पर आपने अपना शरीर छोड़ा था) तब से करतार पुर में महन्त (मालिक) उदासीन महात्मा आज तक चले आते हैं जो हक भी उन्हीं का है वि० सं० १५८८ बैशाख प्रविष्टा ५ को लक्ष्मी चन्द्र जी सशरीर देवलोक पधारे ॥

तदासौ नवाबो बुलारोऽपि रुग्णोऽभवच्चन्द्र देवश्च तत्रैव गेहे ।
समाकारयद्दर्शनं कर्तु कामः स तत्राऽगमच्चन्द्र देवोऽपिसद्यः ॥६॥

अर्थ—उन दिनों में नवाब राय बुलार बड़े बीमार थे उन्होंने अपने दीक्षा गुरु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को अपने यहाँ दर्शनार्थ बुलाया भगवान् भी यह समाचार मिलते ही तुरन्त वहाँ पहुँच गये ॥६॥

अहो म्लेच्छ विज्ञापनां मन्य मानौ ययौ तस्य धाम प्रसन्नात्मनासौ ।
कुलीनाऽकुलीनादि चिन्तां विहाय विपन्नाऽवनं सज्जनानां व्रतं हि ॥७॥

अर्थ—धन्य है प्रभु एक मुसलमान की प्रार्थना पर भी स्वयं उसके घर तुरत पहुँचे सच है महापुरुष कुलीन अकुलीन नहीं देखते उनका तो विपन्नों की रक्षा करना ही कुल व्रत है ॥७॥

बुलारोऽपिदृष्ट्वा गुरुं मृत्यु काले स्वराज्यं समग्रंप्रदायापि तस्मै ।
न तुष्टः परं प्राणदानं चकार प्रदानाय सर्वं सतां विश्रुतं हि ॥८॥

अर्थ—नवाब साहब अन्त समय में अपने श्री गुरु को सामने देख कर इतने प्रसन्न हुए कि अपना सारा राज्य दे देने पर भी उनका मन नहीं भरा अन्त समय खुशी में, अपने प्राण श्री भगवान् पर निवछावर कर दिये सज्जनों के लिए अपना कुछ नहीं होता ॥८॥

महाहिंसकानां कुले तस्य जन्म स्वयं क्रूर कर्मापि चाऽऽजीवनं सः ।
ततोऽप्येष यातः परं ब्रह्मधाम सतां सङ्गतिः कस्य न क्षेमदात्री ॥९॥

अर्थ—रायबुलार का जन्म एक मुस्लिम कुल में हुआ था और उनका पहला जीवन भी कोई इतना अच्छा नहीं था परन्तु भगवान् श्रीचन्द्र जी के अशीर्वाद से वह परम धाम को प्राप्त हुआ महात्मा सज्जनों की संगति सदा सब को कल्याणकारी होती है ॥९॥

महाप्रयाणार्थ कुकाल चक्रे समागते शासक नाम धारी ।
अध्यात्म विद्या मधिकं मुमुक्षु र्ज्ञात्वा गुरुर्ध्यान परायणश्च ॥१०॥

अर्थ—मरण समय जान अध्यात्म विद्या का ज्ञान श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी से लेकर के उनका ध्यान करता हुआ ॥१०॥

सम्पत्ति जातम्मरणा त्प्रपूर्वं समर्थ तस्मै गुरुवे हिताय ।
मृत्त्वागुरोर्द्धाम पवित्र मेव भक्त्याति भक्तो विमलश्च लेभे ॥११॥

अर्थ—उसके पास जो कुछ सम्पत्ति थी सब गुरु देव जी को समर्पण कर दिया वह मर के भगवान् के धाम को पाता भया ॥१२॥

अथास्मिन् प्रदेशेऽविनाशी समायात्तदानीं समादाय तां मण्डली सः ।
स पुत्रं च तं नानकं पाद नम्रं गले योजया मास साह्लाद चेताः ॥

अर्थ—इसी समय पर श्री गुरु अविनाशी राम जी उदासीन भी ननकाना पधारे हुये थे और आपके साथ साधु मण्डली भी थी। पुत्रों सहित श्री नानकदेव जी ने श्री अविनाशी राम जी को सादर सप्रेम सविनय प्रणाम किया श्री अविनाशी राम जी ने अत्यन्त हर्ष के साथ उन्हें गले लगाया ॥१२॥

ततो नानक श्चन्द्र देवाय दातु मुदासीन सिहासनं व्याचकांक्ष ।
उदासीन सद्भिश्च सानन्द मस्मै प्रदत्तानिजासम्मतिर्नानकाय ॥१३॥

अर्थ—ऐसा सुअवसर देखकर श्री नानकदेव जी ने अपने बड़े पुत्र भगवान् श्रीचन्द्र को गद्दी देने की इच्छा श्री अविनाशी रामजी मण्डलेश्वर से प्रकट की और उन्होंने भी इस बात का मुक्त कण्ठ से अनुमोदन किया, तथा इस विषय में अपनी शुभ सम्मति दी ॥१३॥

अयं वै समाचार औत्सुक्य भाजां जनानां समाजे प्रचारज्जगाम ।
प्रफुल्ला बभूवुस्तदा सर्व लोकाः वसन्ते यथा वृक्ष शाखा समन्तात् ॥

अर्थ—इस शुभ समाचार को सुनकर गाँव का बच्चा बच्चा अत्यन्त प्रसन्न हुआ जैसे वसन्त में छोटे मोटे सब पौधे लहलहा उठते हैं ॥१४॥

समाचार पर्जन्य संसिक्त चित्ताः मनुष्या विशेषोत्सवंलब्धवन्तः ।
समाचार इत्थं दिगन्ते प्रसिद्धः विधोरुद्गतिः कस्य नानन्द दात्री ॥

अर्थ—नगर भर में लोगोंने इस शुभ समाचार के उपलक्ष में बधाई मनाई विशेष समारोह से उत्सव मनाया गया। यह समाचार चारो ओर बिजली की भांती फैल गया तथा सब सुनकर प्रसन्न हुए चाँद की चाँदनी किसे अच्छी नहीं लगती ॥१५॥

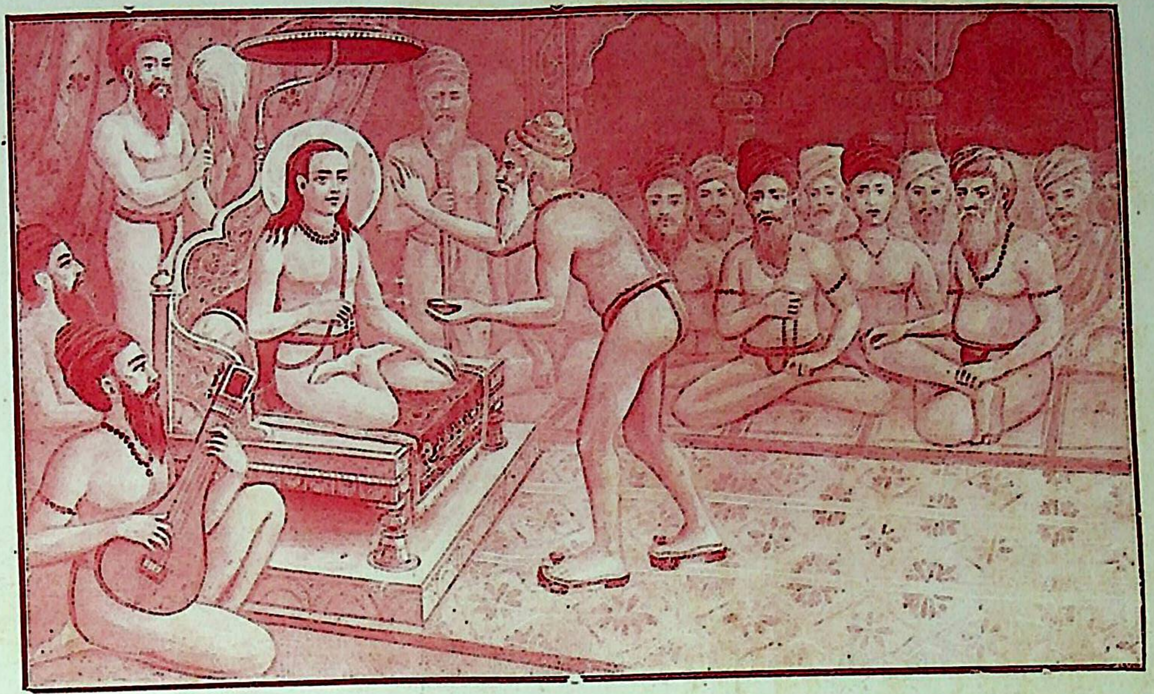
महामण्डपे मण्डिता पूर्ण कुम्भाः स्रजोधूप चित्राणि चित्राणि तंत्र ।
बृहत्स्तम्भसंवेष्टताश्चीन पट्यः समालिङ्ग्य तस्थुर्दरं चंचलाङ्ग्या ॥

अर्थ—नगर में बड़े भारी मण्डप की रचना की गई मण्डप में पूर्ण कुम्भ रखे गये सुन्दर धूप पुष्प-माला तथा चित्र टाँग दिये गये बड़े बड़े खम्भों पर लपेटे हुए चीन के रेसमी वस्त्र थोड़ा थोड़ा हिल रहे थे ॥१६॥

गजानां रथानां हयानाञ्च शालाः विभिन्ना विचित्राश्च सम्पादि तास्ताः।
पृथक्पाकशालाच पकान्नशाला तथा यज्ञशाला विशाला प्रक्लृप्ता ॥१७॥

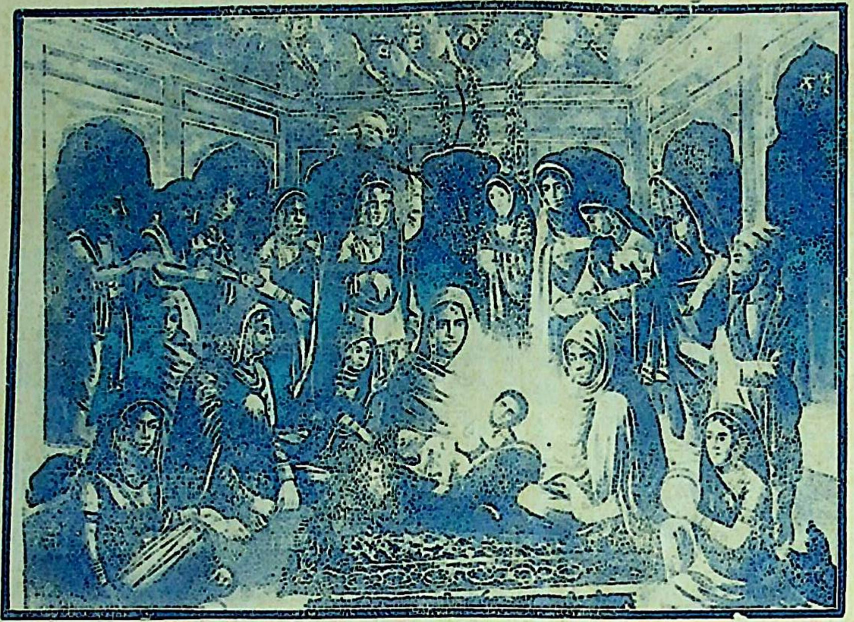
श्री ११०८ हिन्दू धर्म रक्षक उदासीनाचार्य्य जगद्गुरू श्रीचन्द्र जीको गुरुगद्दी

श्री गुरु श्रीचन्द्र उदासीनाश्रम ननकाणा



चतुर्थाश्रमी उदासीन साधुमंडली

निर्वाण श्रीगुरू नानकदेव भेष उदासीन, जगद्गुरू श्रीचन्द्र भगवान को तिलक दे रहे हैं



श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रभगवान का जन्मदिन वि० सं० १५५१ भाद्रों सुदी ९ शुक्रवार
५ घड़ी दिन चढ़े, माता की गोद में हैं। गगन मंडल से देवते पुष्पवृष्टि कर रहे हैं

GaneshPressSukkur

इतः पाठशाला ततो धेनुशाला पृथक्स्नानशाला चनालाऽऽकुला सा ।
इतः स्वापशाला ततो धर्मशाला तथा कार्यशाला नवीना मनोज्ञा ॥

अर्थ—कहीं गजशाला कहीं, अश्वशाला, कहीं पाकशाला, कहीं यज्ञशाला कहीं पाठशाला, कहीं गौशाला, कहीं स्नानशाला, कहीं स्वापशाला (शयनागार), कहीं धर्मशाला, और कहीं पकवानशाला सभी भाँति २ से सजाई गईं थीं ॥१७-१८॥

सभामण्डपप्राक्समस्ततु युक्ता शुभावाटिका पुष्पिता प्रोल्ललासः ।
अमुष्याश्च मध्येऽभवन् पंचधाराः प्रफुल्लानि पद्मान्य शोभन्त तत्र ॥

अर्थ—सभा मण्डप में एक छोटी सी वाटिका थी जिसमें पाँच फव्वारे छूट रहे थे जिनमें कमल के फूल खिले हुए थे ॥१६॥

सभामण्डपेरत्न सिंहासनञ्च सितच्छत्र युक्तं सुरम्यं विरेजे ।
नवीनैश्च चीनां शुकैरास्तृतं तत् नवैश्चोप बर्हैस्त्रिभिः शोभमानम् ॥२०॥

अर्थ—सभा मण्डप के ठीक मध्य में एक ऊंचा सोने का रत्न* जटित सिंहासन बनाया गया था जो सुफेद छत्र से अत्यन्त मनोहर था नवीन मखमली वस्त्रों के बने हुए नये नये तीन सिरहाने भी ऊपर रखे गये थे जिनमें शलमा सितारे का नाम था ॥२०॥

विभिन्नैः प्रदीप प्रकाशैश्च रात्री दिनं मन्य माना मनोज्ञाऽजनिष्ट ।
समस्तं तदा चाद्भुतं द्रष्टु कामाः सुदूरात्समाजग्मुरौत्सुक्यवन्तः ॥२१॥

अर्थ—रात की भी विलक्षण ही शोभा बनी हुई थी नये नये रंग के दीपकों की रोशनियों से रात्रि भी अपने आपको दिन मान रही थी इस दृश्य को देखने के लिये लोग बड़ी दूर दूर से पधारे थे ॥२१॥

पुरोवद्ध ।पङ्क्तिश्च सेना वितस्थे सशस्त्र सुवस्त्रा मुदा भूरि संख्या ।
विचित्राणि शृङ्गाणिभिन्नानि तानि समादाय वेत्राणि सन्तोऽपितस्थुः ॥

*रत्न नौ प्रकार के होते हैं (हीरा, मोती, पन्ना, वैडूर्य, (लहसुनिया) पोखराज, नीलम, पद्मराग (चुन्नी), और मूंगा, ऐसा विष्णु धर्मोत्तर ग्रंथ में लिखा है कि इन नवरत्नों से जटित सिंहासन बनाने का कारण यह है कि नौग्रह की शान्ति होनी इन नवरत्नों से मानी है जैसे माणिक से सूर्य की, चन्द्रमाकी मोतीसे, मङ्गलकी मूंगा से, बुद्ध की पन्ना से, बृहस्पति की पोखराज से, शुक्र की हीरा से, शनिकी नीलम से, राहुकी गोमेद से, केतुकी शान्ति लहसुनिया से होती है यह नौ रत्न नवों ग्रहों की शान्ति करने वाले माने हैं ऐसा रत्नमाला तथा भावप्रकाश पूर्वखण्ड १८० में लिखा है ।

अर्थ—सबसे आगे सुन्दर वस्त्र और शस्त्रों से सजी हुई भारी संख्या में सेना एक लाइन में खड़ी की गई थी नाना प्रकार की छड़ियें ध्वजा (निशान) तथा नरसिंहे आदि लेकर निर्वाण उदासीन महात्मा लोग भी सिंहासन के चारो ओर खड़े किये गये थे ॥२२॥

इतीत्थं समस्ते च सम्भारजाते समन्तात्समायोजिते तत्र काले ।
समाजग्मु रौत्सुक्य भाजो मनुष्याः समादाय चोपायनं भिन्न रूपम् ॥

अर्थ—इस प्रकार सभामण्डप सब सामग्रियों से समायोजित किया गया था उस समय सभी लोग अपनी अपनी शक्ति के अनुसार उपहार (भेंट) लेकर मण्डप में पधारे ॥२३॥

सभामण्डपं चन्द्र देवोयदाऽऽगात्तदा सर्वलोकाः समुत्तस्थुरुच्चैः ।
सुमेरोरिवाऽत्युच्चशृङ्गं सदिव्यं हिरण्यासनं शोभयामास चन्द्रः ॥२४॥

अर्थ—इसके अनन्तर भगवान् श्रीचन्द्र जी सभामण्डप में पधारे सब लोग एक साथ खड़े हो गये (जयकारा बुलाया) सुमेर के समान ऊंचे दिव्य सोने के सिंहासन पर भगवान् श्रीचन्द्रजी विराजमान हुए ॥२४॥

अथ तस्मिन् समासीने हर्षोत्प्रफुल्ल लोचनाः ।
बद्धाञ्जलि पुटाः सर्वे प्रणेमुस्तं समादरात् ॥२५॥

अर्थ—भगवान् के बैठ जाने पर सभी ने हाथ जोड़कर अत्यन्त प्रसन्नता से सादर प्रणाम किया ॥२५॥

उपविष्टास्ततः सर्वे यथा योग्यासनं निजम् ।
चन्द्रोदय महोत्साहा सभाभूमिरिवाऽऽबभौ ॥२६॥

अर्थ—अनन्तर सब लोग यथा योग्य आसनों पर बैठ गये उस समय सभा ऐसी सुन्दर लग रही थी, जैसे चन्द्रोदय होने पर पृथिवी ॥२६॥

अविनाशी नानकश्च तत उत्थाय सादरम् ।
परिधाय च काषायं तिलकं भस्म चन्दनम् ॥२७॥

अर्थ—इसी समय गुरु अविनाशी रामजी उठके श्रीचन्द्र जी को विभूति तथा चन्दन का तिलक देकर भगवावस्त्र पहनाया फिर गुरुनानक जी ने भी विभूति तथा चन्दन का तिलक लगाया ॥२७॥

विविधाभिः सुमालाभिरलं चक्रतुरुत्सुकौ ।
तिलकानन्तरं तस्मैददतुश्चशुभाशिषम् ॥२८॥

ततश्च सर्वेतत्रस्थाः समाजयितुमागताः ।
महात्मानो गृहस्थाश्च क्रमेणाऽपूजयन् विभुम् ॥२९॥

अर्थ—और विविध प्रकार की पुष्प मालायें पहिनाई। तिलक देने के वाद शुभ आशीर्वाद दिया पश्चात् पूजा करने के लिये आई हुई जनताने तथा साधुओं ने क्रम पूर्वक भगवान का पूजन किया यह दिन वि० सं० १५७२ भाद्रशुक्ल ३ का था ॥२८-२९॥

संयोज्य पश्चादधिकं समाशीर्वचो विचित्रं ददतुः प्रपूज्यौ ।
नत्वात्समः कोऽपि समग्र सृष्टौ विद्वान् महात्मा प्रबलप्रतापी ॥३०॥

अर्थ—दोनों माहात्माओं ने आशीर्वाद दिया कि हे श्रीचन्द्रजी तुम्हारे बराबर संसार में कोई प्रवल प्रतापी न होगा ॥३०॥

परोपकृत्त्यादि गुणप्रलग्नस्समूर्ध्वगामी भगवान्न देवः ।
हिन्दु प्रजा त्राण तरङ्ग धीरवीरस्सहस्त्रायुरति प्रपूज्यः ॥३१॥

अर्थ—परोपकारादि समस्त गुण सम्पन्न समस्त लोक गामी नरसिंहावतार के बराबर हिन्दू प्रजा प्राण रक्षा में तत्पर रहते हुये चिरायु हो ॥३१॥

नश्यन्तु विपदस्सर्वास्सम्पदस्सन्तु सुस्थिराः ।
अभिषेकेण पूर्णेन पूर्णास्सन्तु मनोरथाः ॥३२॥

अर्थ—तुम्हारी सब विपत्ति विघ्न बाधायें दूर हों सब सम्पत्ति आजाय इस पूर्णाभिषेक से हम सब का मनोरथ सिद्ध हो गाया ॥३२॥

जाते तस्मिश्चाभिषेके माङ्गल्ये सकलाः सुराः ।
नाट्यैर्गीतैश्च वाद्यैश्च श्रीचन्द्रं पर्य पूजयन् ॥३३॥

अर्थ—मङ्गला भिषेक सम्पूर्ण होने पर देवताओं ने नाट्य गीत और वाद्य से भगवान् का अभिवादन किया ॥३३॥

मन्दं बलाहकानेदुः देव दुन्दुभिभिः सह ।
अपातयन संलीलञ्च सलिलं पुष्प वृष्टिभिः ॥३४॥

अर्थ—देवता लोगों के दुन्दुभियों के साथ धीरे-धीरे बादल भी गर्जना करने लगे पुष्प वृष्टि के साथ साथ जल वृष्टि भी कर रहे थे ॥३४॥

प्रतिनेदुः समानन्दाद् अचलाः पुलकाञ्चिताः ।
फल पुष्प जलाद्यैश्च पृथिवी पर्य पूजयत् ॥३५॥

अर्थ—पर्वतों ने आनन्दित होकर प्रतिध्वनि के मिस से भगवान् की प्रशस्ति गाई तथा फल पुष्प जलादि से पृथिवी को प्रसन्न किया ॥३५॥

जगुः श्रीचन्द्र गीतानि पक्षिणो मञ्जु कूजितैः ।
नद्यः स्वच्छजलः शान्ता गम्भीरा अभवंस्तदा ॥३६॥

अर्थ—पक्षियों ने मञ्जु कूजितों से भगवान् का गान किया। उस समय नदियें स्वच्छ जल से पूर्ण शान्त और गम्भीर वह रहीं थीं ॥३६॥

सम्पूर्णे नगरे जातः, उत्सवोऽति महत्तरः ।
तलवण्डी पुरी साक्षात्सञ्जाता चामरावती ॥३७॥

अर्थ—नगर भर में ऐसा उत्सव मनाया गया कि तलवण्डी नगरी साक्षात् अमरावती सी प्रतीत होने लगी ॥३७॥

चान्दनैर्वारिभिः सिक्ता रथ्याः सर्वत्र शोभनाः ।
रम्भास्तम्भाश्च विन्यस्ताः स्थाने स्थाने गृहे गृहे ॥३८॥

अर्थ—गली गली में चन्दन और गुलाब जल से छिड़काव किया गया था घर घर और स्थान स्थान पर रम्भा (केला) के स्तम्भ गड़े हुय थे ॥३८॥

पदे पदे पूर्ण कुम्भाः चन्दनाऽलंकृता बभुः ।
मनोरथा इवाऽशेष जनानां पल्लवाऽऽवृताः ॥३९॥

अर्थ—जगह जगह पर चन्दन से अलंकृत पञ्चपल्लवों से आवृत पूर्ण कुम्भ मनुष्यों के मनोरथों की भाँति छिपे हुए शोभा दे रहे थे ॥३९॥

गृह तोरणमालाभिः शोभावृद्धि मुपा ययौ ।
उत्सवोऽयं महानन्दी प्रति गृहमिवाऽभवत् ॥४०॥

अर्थ—गृह तोरण की मलाएँ तो शोभा में और भी चार चाँद लगा रही थीं वह आनन्द दायक उत्सव प्रत्येक घर २ में मनाया गया था ॥४०॥

श्री गुरु नानकोवाच

समागतौ गुरु धीरौ समुत्थाय विलक्षणौ ।
श्रावयाञ्चक्रतुः पूज्यश्शङ्करो भगवान् स्वयम् ॥४१॥

अर्थ—बाहर से आये हुये लोगों को श्री गुरु नानक देव उदासीन मण्डलेश्वर ने खड़े हो सब को सुना कर कहा कि श्रीचन्द्रजी साक्षात शङ्कर का अवतार हैं ॥४१॥

लोकधर्म सुरक्षार्थमवतीर्णश्च शक्तिमान् ।
सृष्ट्युत्पन्न करी मायाऽनुज्ञया हित चिन्तनी ॥४२॥

अर्थ—इन्होंने लोक और हिन्दूधर्म रक्षा वास्ते अवतार लिया है इस सृष्टि को रचने वाली माया इनकी आज्ञा से चलती है ॥४२॥

आधिव्याध्यादि रहितो निरपेक्ष स्स्वयं शुचिः ।
सुश्रौतोदासीन वेषः मर्यादा रक्षणाय च ॥४३॥

अर्थ—आधि व्याधि उपाधि रहित निरपेक्ष पवित्र वैदिक श्रौत उदासीन वेष मर्यादा रक्षा वास्ते ॥४३॥

संस्कारः कारितश्चात्र वेद ध्वनि समन्वितः ।
सुसृष्टेः पूर्व कालाच्च वेषश्चलति धार्मिकः ॥४४॥

अर्थ—वेद ध्वनि से यहाँ पर संस्कार कराया गया सृष्टि के पूर्व काल के यह श्रौत-चतुर्थाश्रमी उदासीन वेष चला आता है ॥४४॥

श्रीचन्द्रदेवं भगवन्त माद्यं गुरुञ्च निन्देद्धिन चिन्त कञ्च ।
वेदै स्समस्तै परिगीतमाद्यम्मतं ह्युदासीन पथानु गामि ॥४५॥

अर्थ—श्री आदि देव श्रीचन्द्रजी की जो निन्दा करेगा अथवा उदासीन वेष की जो वेद सिद्ध है उसकी निन्दा करेगा ॥४५॥

दुःखंतु दारिद्र्य मघोरघोरं लभेत रुष्टात् परमेश्वराच्च ।
भक्तिश्च कुर्यादधिकप्रचारे राजेवलोके सुख संयुक्तस्स्यात् ॥४६॥

अर्थ—वह परम दरिद्री होकर घोर नरक में जायगा जो मनुष्य भक्ति करेगा वह राजा के समान सुखी होगा ॥४६॥

आशीः प्रदानं पुनरेव कृत्वा दीर्घायुरारोग्ययुतश्च पुत्र ।
पुत्रेण शिष्येण पिता गुरुश्च जातौ प्रसन्नावतिहर्षि तौच ॥४७॥

अर्थ—इस प्रकार बार बार आशीर्वाद दीर्घायु आरोग्य आदि होने का देकर श्री अविनाशी रामजी अपने शिष्य को तथा श्री गुरु नानक जी अपने पुत्र को देख कर अति प्रसन्न हो गये ॥४७॥

दीनेभ्यो भोजनं दत्तं ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणा ।
भक्तेभ्यश्चाशिषोदत्ताः यथा पात्रं यथा रुचि ॥४८॥

अर्थ—गरीबों को भोजन बाँटा गया, ब्राह्मणों को दक्षिणा दी गई, भक्त मण्डली को शुभ आशीर्वाद दिया गया, और सब का रुचि और योग्यता के अनुसार मान दान सन्मान पूर्वक आदर किया गया ॥४८॥

आहुतिभिः समन्त्राभिः हव्यवाट समहूयत ।
स्वाहाकारो वषट्कार श्रौषट् काराऽऽदिभिः सुरा ॥४९॥

अर्थ—मन्त्रों सहित आहुतियों से हवन किया गया स्वाहाकार वषटकार और श्रौषट्कार से देवताओं को प्रसन्न किया गया ॥४९॥

स्वधाकारैश्च पितरः तोषिता विधिपूर्वकम् ।
सर्वे जीवा महानन्द मयेमग्न महोदधौ ॥५०॥

अर्थ—स्वधाकार से पितरों को यथा विधि सन्तुष्ट किया, उस समय सभी जीव आनन्द सागर में निमग्न हो रहे थे ॥५०॥

इक्षु दण्डादि हस्तिभ्यः वाजिभ्यो यवसादिकम् ।
मिष्टान्न प्रमुखं गोभ्यः भोजनं प्रतिपादितम् ॥५१॥

अर्थ—हाथियों को ईख के गन्ने घोड़ों को यवस (जौ) और दाना, और गौओं को सुन्दर-सुन्दर घास और अन्न खिलाया गया ॥५१॥

भक्ष्यं भोजयञ्च लेह्यञ्च चोष्यं चेति चतुर्विधम् ।
षडसं भोजनं भूयः साधुभ्यः परिवेशितम् ॥५२॥

अथ—भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार भेद के नाना प्रकार का षट रस भोजन महात्मा जनों को परोसा गया ॥५२॥

शनैः शनैर्भुक्त वन्तः साधवस्तुष्ट मानसाः ।
सर्वे च भक्ता स स्त्रीकाः स वाला भोजिताः परम् ॥५३॥

अर्थ—साधुजन, भक्त लोग, स्त्री, बालक, सब ने पेट भर यथेच्छा भोजन धीरे २ किया ॥५३॥

मध्ये मध्ये भोजनस्य केचित्सन्तोऽपि पण्डिताः ।
अन्नपूर्णाष्टक श्लोकाञ्जगु श्चान्यत्सु भाषितम् ॥५४॥

अर्थ—भोजन के बीच बीच पढ़े लिखे साधु अन्न पूर्णाष्टक आदि के श्लोक बोलते जाते थे ॥५४॥

भोजनान्ते चआचम्यं साधुभ्यो भक्ति पूर्वकम् ।
वस्त्रपात्रादिकं दत्तं दण्डाश्चाऽऽसन् संयुताः ॥५५॥

अर्थ—भोजन के पश्चात् आचमन कराय के भक्ति पूर्वक साधु महात्माओं को दण्ड कमंडलु आसन पात्र वस्त्र के साथ २ यथायोग्य भेटा पूजा भी दी गई ॥५५॥

एला सिता जातिपत्रं पूग पूगश्च सादरम् ।
मुख शोधन वस्तूनि नाग वल्लीदलानिच ॥५६॥

अर्थ—तत्पश्चात्-इलायची मिश्री जावत्री लौंग सुपारी पान आदि मुख शोधन वस्तुयें दी गईं ॥५६॥

सनमान प्रदत्तानि तुष्टेभ्यः परतः पुनः ।
नाना गीतानि वाद्यानि नृत्यानि चाद्भुतानि च ॥५७॥

अर्थ—इस प्रकार सब सनमान पाय के संतुष्ट हो जाते भये पुनः नाना प्रकार के गाने बजाने के साथ नाचरंग होते हुए ॥५७॥

भाषणानि कथाः वर्ताः विवधापरितोऽभवन् ।
सर्वं माङ्गलिकं कर्म न शोको न च रोदनम् ॥५८॥

अर्थ—सब प्रकार के मांगलिक कर्म यथा विधि करने के अनन्तर भाषण भजन कथा वार्ताएँ होने लगीं उस समय शोक रोदन कहीं भी रञ्चकमात्र भी न था ॥५८॥

तस्मिन् मोद मये काले श्रीचन्द्रो भगवान् भृशम् ।
बभौचन्द्र इवाऽत्यर्थं पूर्णिमायां कलांयुतः ॥५९॥

अर्थ—उस आनन्द समय भगवान् श्रीचन्द्रजी की शोभा पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के समान थी ॥५६॥

ददौ सिंहासना सीनो व्याख्यानं विपुलं भृशम् ।
नानकश्चाऽविनाशी च यथा कालं यथा रुचि ॥६०॥

अर्थ—श्री गुरु नानक देव तथा श्री गुरु अविनाशी मुनि जी ने समय और रुचि के अनुसार क्रमशः व्याख्यान दिये ॥६०॥

क्रमोंपदेशैर्जनिता नितरां मुदिताऽभवत् ।
कस्य ना ह्लाद कर्तारः पर्जन्या इव सज्जनाः ॥६१॥

अर्थ—धार्मिक उपदेशों से जनता अत्यन्त मुदित हुई। बादलों के समान सज्जन किसे नहीं मुदित करते ॥६१॥

व्याख्यान श्रोतृ संघेन हर्ष निर्भर चेतसा ।
जयकाराः कृता उच्चैः गगनाङ्ग न चारिणः ॥६२॥

अर्थ—व्याख्यान सुनने वालों ने अत्यन्त प्रफुलित मन से गगनभेदी ऊँचे ऊँचे स्वर से जयजयकार बुलाये ॥६२॥

एवं विविध माङ्गल्यै रुपदेशैः पदे पदे ।
नन्दया मास जनताः श्रीचन्द्रो भगवान् स्वयम् ॥६३॥

अर्थ—इस प्रकार से भगवान् श्रीचन्द्रजी भी समय समय पर जनता को आनन्दित करते रहे ॥६३॥

तदा रम्यं ननकाना स्थानं तीर्थं समं मतम् ।
जायन्ते यत्र सोत्साहं प्रतिवर्षं महोत्सवाः ॥६४॥

अर्थ—इस दिन से लेकर ननकाना साहब तीर्थ समान माना जाने लगा जहाँ प्रतिवर्ष बड़े समारोह के साथ उत्सव मनाया जाता है ॥६४॥

महोत्सवे समायान्ति सुदूरादपि मानवाः ।
श्रद्धा वन्तोऽनसूयाश्च भक्ति भाजस्तथाऽऽस्तिकाः ॥६५॥

अथ—श्रद्धालु, भक्त गुणग्राही जनता दूर दूर से आकर इस महोत्सव में सम्मलित हुई थी ॥६५॥

स्नान्ति शृण्वन्ति पश्यन्ति सादरं दर वर्जिताः ।
तीर्थे भाषण मूर्तौ च सभावं भावुका जनाः ॥६६॥

अर्थ—भावुक लोग भक्ति भावना से वहाँ भाषण सुनते थे और भगवान् की मूर्ति के दर्शन करते थे ॥६६॥

यवदारभ्य नानकाना स्थाने चन्द्रा भिषे चनम् ।
तावदारभ्य तत्तीर्थं मन्यते भावुकै र्जनैः ॥६७॥

अर्थ · जिस दिन से भगवान् श्रीचन्द्रजीका वहाँ अभिषेक हुआ है उसीदिन से वह स्थान भावुकों के लिये तीर्थ बन गया है ॥६७॥

अङ्गदाऽमर दासौ तो रामदासो महा मतिः ।
अर्जुनो हरि गोविन्द हरि कृष्णो महामुनिः ॥६८॥
एते सर्वे महात्मनः वर्षेवर्षे महोत्सवे ।
आगत्यार्चन्ति वन्दन्ते स्तुवन्ति स्म च सादरन् ॥६९॥

अर्थ—श्री अंगदजी, श्री अमरदासजी, श्री रामदासजी, श्री अर्जुनदेवजी, श्री हरिगोविन्दजी, श्री हरिरायजी, हरिकृष्णजी, श्री तेगबहादुर जी और श्री गोविन्ददास जी आदि २ महात्मा आकर इस स्थान की पूजा वन्दना और स्तुति भक्ति पूर्वक करते रहे हैं ॥६८-६९॥

श्रीचन्द्र समयात्तत्र चाद्या वधि क्रमेण च ।
उदासीना महात्मानो न्यवसन् निवसन्ति च ॥७०॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र जी से लेकर आजतक उदासीन महात्मा इस स्थान के अधिष्ठाता रहते आये और अब भी हैं ॥७०॥

पुरा काले स भगवान् श्रीचन्द्रो हृष्ट मानसः ।
धर्म चन्द्राय शिष्याय प्रददौ धर्म वित्तरः ॥७१॥

अर्थ—सर्व प्रथम इस स्थान में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने अपने परमप्यारे धर्मात्माशिष्य (चेला) धर्मचन्द्र॰ जी को महन्ती दी ॥७१॥

॰—श्री महन्त धर्मचन्द्रजी उदासीन का जन्म वि॰ सं॰ १५६२ भादों कृष्ण ८ बावा लक्ष्मी चन्द्रजी उदासीन के घर हुआ यह लक्ष्मीचन्द्र जी श्री गुरु नानकदेव भेषोदासीन के छोटे पुत्र थे एक समय वि॰ सं॰ १५६८ वैशाख प्रविष्टा ५ को लक्ष्मीचन्द्र जी को शिकार खेल

मेहर चन्द्राय शिष्याय धर्म चन्द्रोऽपि धार्मिकः ।
मेहर्चन्द्रोऽप्यदाच्छान्तः निधान चन्द्रधीमते ॥७२॥

अर्थ—श्री महन्त धर्मचन्द्र जी उदासीन ने अपने चेले मेहरचन्द्रजी उदासीन को अपने स्थान ननकाराग साहब की महन्ती दी तथा श्री मेहरचन्द्र जी ने अपने चेले निधानचन्द्र जी उदासीन को महन्ती दी जो बड़े बुद्धिमान थे ॥७२

सोऽपि लाजपतराय सोऽपि हनुमते सते ।
हनुमदास उत्साही स्व शिष्याय महात्मने ॥७३॥
गरीबदास शान्ताय स्व सिंहासन मार्पयत् ।
सो हरिराम दासाय स्वाधिकारं ददो कृती ॥७४॥
हरिरामः स्वशिष्याय राया रामाय सन्ददौ ।
राया रामो गुलाबाय गुलाबोऽपि ततः परम् ॥७५॥

के आया देख जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने कहा यह जीव हिंसा वाला काम आपको शोभा नहीं देता इसका हिसाब देना पड़ेगा यह शिक्षाप्रद बचन अपने सिद्धगुरु का श्रवण कर और अपना अपराध विचार उसी समय अपनी स्त्री और पुत्र धर्मचन्द्र को घोड़ेपर सवार करके इसी शरीर से आकाश को जाते देख श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने पिता श्री गुरुनानक का वंश निर्वंश होता विचार अपनी भुजा ५ योजन (२० कोश) की ऊंचीकर धर्मचन्द्रको उतार लिया और उसी समय उसको गुरुमन्त्र दे अपना चेला बनाय उसके पढ़ने पढ़ाने और रहने का सुयोग्य प्रबन्ध कर दिया। पश्चात् आपने वि० सं०.१६०२ मघर सुदी ५ को धर्मचन्द्र का विवाह भी करा दिया। वि० सं० १६०४ आषाढ़ सुदी २ को धर्मचन्द का बड़ा पुत्र माणिकचन्द जन्मा पुनः दूसरा पुत्र मेहरचन्द वि० सं० १६०९ कार्तिक सुदी ६ को जन्मा जिनसे सारा वेदीवंश चला। वि० सं० १६११ आश्विन सुदी १० की जगद्गुरू श्रीचन्द्रजी महाराज स्थान के कार्यों से विरक्त रहना पसन्द कर अपने चेले धर्मचन्द्र को शिक्षा दे गृहस्त से हटाय श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन साधु बनाय अपनी गद्दी नानकाने वाली पर बैठाय श्री महन्त बना दिया श्री महन्त धर्मचन्द्र जो बड़े भजनीक शान्त चित्त उदारात्मा देश और जाति हित चिन्तक थे आपने अपनी समस्त आयु गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की शिक्षानुसार हिन्दू धर्म रक्षा करने में व्यतीत कर वि० सं० १६७९ माघ सुदी २ को देवलोक हुए आपका विस्तार प्रसङ्ग देखो लक्ष्मी हुलास तथा गुरु उदासीन मतदर्पण दोनों भाग में।

साधु रामाय शिष्याय ददौ सिंहासनं निजम् ।
एवं परम्परा प्राप्ताः स्थानमेतद् वर्धयन् ॥७६॥

साधु रामश्च दान्तात्मा धर्म वीराय धीमते ।
नारायणाय धीराय प्रादात् सिंहासनं शुभम् ॥७७॥

धर्मध्वज धरोदान्तः यश्चाद्यापि विराजते ।
प्रसिद्धो भारते वर्षे महात्मामान भाजनम् ॥७८॥

अर्थ—निधानचन्द्र जी ने लाजपतराय को, लाजपतराय जी ने हनुमान दास जी को, हनुमानदास जी ने गरीबदास जी को, गरीबदास जी ने हरिराम जी को, हरिराम जी ने राया रामजी को, राया राम जी ने गुलाबदास जी को, गुलाबदास जी ने साधुराम जी को, साधुराम जी ने धर्मबीर नरायणदास जी को, क्रमशः देते आये जो आज तक महन्ती चली आ रही है उपरोक्त उदासीन महन्तों ने अपने जप तप भजनोपदेश से स्थान की श्री वृद्धि की अंतिम महापुरुष तोआज भी संसार में पञ्चभौतिक शरीर से विद्यमान हैं आपका स्थान के लिये किया हुआ वीरता वाला कर्म उदासीन सम्प्रदाय में चिर स्मरणीय रहेगा ॥७३-७४-७५-७६-७७-७८॥

अकालि सिक्ख सेनाच यदाऽऽचक्राम तत्स्थलम् ।
तदा तने च धीरणे प्रतीकारो महान् कृतः ॥७९॥

अर्थ—अकाली सिक्ख सेना ने सजधज कर जब ननकाणा साहब पर आक्रमण किया तो उस समय जो धर्मवीर महंत नारायणदास जी ने जौहर दिखाये वे भी अवश्य प्रशंसनीय है ॥७९॥

नारायणो वर्तमाने वदत्यां पर पच्चिणः ।
अयं हिन्दू सदाचारी धर्म मार्गैक मार्गिनौ ॥८०॥
सनातनी नानकोऽभूत् श्रीचन्द्रश्च सनातनी ।
परम्परा समायाता स्तच्छिष्या तन्यपृष्टगाः ॥८१॥
वयं हिन्दू महावीरा नवयं पाप कारिणः ।
भवादृशान् भर्जयामः तत्वृत्तान प्रसिद्धयः ॥८२॥

अर्थ—श्री महन्त नारायणदास जी ने कहा कि हम धर्म के रक्षक पक्के हिन्दू धर्म मार्ग पर चलने वाले हैं कारण गुरु नानक देव जी श्री गुरु श्रीचन्द्र जी दोनों हिन्दू सनातन धर्म के

रक्षक थे उनकी परम्परा शिष्य वर्ग चेले पर चेले उनके मतानुयायी हैं तुम लोगों को पता नही कि हम उदासीन लोग पक्के हिन्दू वीर सदाचारी हैं न हम पापकर्मी हैं, ऐसा निर्भीक मुँहतोड़ उत्तर सुनकर जो कुछ अकालियों ने अपनी पैशाचिक शक्ति दिखाई वह संसार प्रसिद्ध है, सब कष्ट सहते हुए धर्मवीर नारायणदास जी ने अपने हिन्दूधर्म की रक्षा की ॥८०-८१-८२॥

यद्यपि शस्त्र सम्पन्नाः वलिन कालिनो भृशम् ।
तथापि विजयी भूतः नारायणः सनातनी ॥२३ ॥८३॥

अर्थ—यद्यपि वे अकाली सिक्ख शस्त्र से सुसज्जित थे तथापि विजय तो महन्त नारायण दास जी सनातनी की ही हुई ॥८३॥

क्वान्याय तत्परा दुष्टः ? क्वधर्मैक परायणाः ।
अन्धकारस्य सुर्येण को विरोधः प्रतापिना ॥८४॥

अर्थ—कहाँ वे अन्यायकारी जालिम कहाँ धर्म परायण महात्मा जन सूर्य के साथ अन्धकार का क्या मुकाबला ॥८४॥

धर्मात्मानो विजयिनः त्रिषुकालेषु विश्रुता ।
पापिनां रावणादीनां विनाश एव केवलम् ॥८५॥

अर्थ—सदा धर्मात्माओं की ही विजय होती आई है इसमें रावण आदिका इतिहास साक्षी है ॥८५॥

हिन्दू धर्म समोनास्ति धर्मो भूमि तले क्वचित् ।
यं सेवित्वा च स्वर्गयान्ति त्यक्त्वा तुनरकञ्जनाः ॥८६॥

अर्थ—हिंदु धर्म ही एक मात्र सर्वोत्तम सर्व श्रेष्ठ धर्म है इसके सेवन करने से स्वर्ग मिलता है और छोड़ने से नरक ॥८५॥

हिन्दू स्थानञ्ज हिन्दी च हिन्दवश्च भुवस्तले ।
मूर्धन्याः सर्व देशानां भाषाणाञ्च नृणामपि ॥८७॥

अर्थ—सब देशों में हिंदुस्तान सब मनुष्यों में हिंदु और सब भाषाओं में हिंदी मूर्धन्यतम माने गये हैं अतएव (जपहु निरन्तर एक जबान, हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान) ॥८७॥

य इदं चरितं नित्यं श्रोष्यतेवा पठिष्यति ।
स ध्रुवं धार्मिको भूत्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥८८॥

अर्थ—जो यह पवित्र चरित्र को पढ़ेगा या सुनेगा वह धार्मिक बन कर ब्रह्मलोक में जायगा ॥८८॥

इति विविध चरित्रै वर्णयित्वा च चन्द्रं,
तदनु तदनु यातॄन् तस्य शिष्यान् विविच्य ।
अति रुचिर विचारैं वीर नारायणश्च,
विरमति कविरित्थं कर्तु कामोन्य सर्गम् ॥८६॥

अर्थ—इस प्रकार भगवान् के विविध चरित्रों का वर्णन करके तदनु भगवान् के अनुयायी शिष्य वर्ग पर कुछ प्रकाश डाला गया हिन्दु वीर स्वनाम धन्य श्री महंत नारायणदास जी की वीरता का कुछ अंश वर्णन करके अब इस किरण को समाप्त करता हूँ क्योंकि अगली किरणों में भी श्री ११०८ जगद्गुरु श्री चन्द्र भगवान् की विचित्र लीलायें आने वाली हैं ॥८९॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्री मदुदासीनवर्य्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिलशास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डि देव गुरुचरणकमल चंचरीकायमान् मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान गुरुगद्दी प्रकरण वर्णनं नाम सकल कलि कल्मष नाशनी द्वादस किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥१२॥

॥ त्रयोदश किरण प्रारम्भः ॥

उदासीनाः समायाताः सृष्टे प्रारम्भतः खलु ।
हिन्दू धर्मस्य रक्षायां सन्नद्ध सर्वदात्मना ॥१॥

अर्थ—यह श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय सृष्टि प्रारम्भ काल से अविछिन्न रूप से चला आ रहा है इस भेष में सर्व प्रकार से हिंन्दू धर्म रक्षा करने पर महात्मा लोग सन्नद्ध रहा करते हैं ॥१॥

विद्यं सोधार्मिकाः शान्ताः दान्ता ज्ञान परायणाः ।
येषां ख्यातं समग्राणां धर्मोद्धाराय जीवनम् ॥२॥

अर्थ—सर्व प्रकार से धर्म निष्ठ शान्त चित्त दांत विद्वान् ज्ञानी उदार महात्मा होते

चले आ रहे हैं जिनका सुयश समस्त संसार में प्रख्यात हो रहा है। यह लोग अपना समस्त जीवन हिंदू धर्म प्रचार कार्य में ही व्यतीत करते हैं ॥२॥

इमे सदा सदाचारे, वर्तन्ते तत्परा भुवि।
परोपकारे निरताः ज्ञानेन दिव्य लोचनाः ॥३॥

अर्थ—उदासीन सम्प्रदाय के महात्मा लोग सदा सर्वदा सदा चार में प्रवृत्त रहने वाले परोपकारी ज्ञान वान् दिव्य लोचन हुआ करते हैं ॥२॥

ध्याने लब्ध प्रतिष्ठाश्च माने दाने च तादृशाः।
निर्मोहा निर्ममा धीराः निर्द्रोहानिष्परिग्रहाः ॥४॥

अर्थ—ध्यान में लवलीन, प्रतिष्ठित दूसरे को आदर मान देने वाले, दान परायण, निर्मोह अर्थात् किसी में भी मोह नहीं, निर्मम (ममता रहित) धीर, वीर, निर्द्रोह परिग्रह से अलग रहने वाले ॥४॥

निरालस्या निरौत्सुक्याः जित क्रोधाजितेन्द्रियाः।
आत्मवन्तो गुणाधाराः धर्मोधारैक लक्षणः ॥५॥

अर्थ—आलस को पासन आने देने वाले, निरौत्सुक्य क्रोध को जीतने वाले, जितेन्द्रिय, आत्मानंद में मग्न सर्वगुण गणालङ्कृत हिंदू धर्म का उद्धार करने वाले उदासीन महात्मा होते हैं ॥५॥

वीताऽऽशावीत निद्राश्च काषायाम्बर धारिणः।
वीत लोभावीतशङ्का वीतकामा विलक्षणा ॥६॥

अर्थ—वीत आशा, गतराग, स्वाधीन निद्रा, काषाय (भगवा) वस्त्रधारन करने वाले, लोभ से प्रथक निशङ्क, कामना रहित विलक्षण हुआ करते हैं ॥६॥

चार्वाकाणां विजेतारः पापिनां मूलनाशकाः।
बौद्धैश्चयुद्ध कर्तारः जैनानां जयिनो भृशम् ॥७॥

अर्थ—चार्वाक मतसे विजेता (उन्हें हिन्दू धर्म शास्त्रानुसार समुझाके सीधे सनातन मत में लाना उनसे विजय पानी), पापियोंका अपने प्रचार द्वारा जड़ नाश करने वाले, बौद्ध और जैनो में अपना हिन्दू सनातन मत के प्रचारक शत्रुओं से युद्ध करने में प्रबल योद्धा उदासीन साधु होते हैं ॥७॥

वादिनां तर्क युक्तिभ्यां, खण्डका मुण्डिता स्वयम् ।
सर्व शास्त्रेषु संचारं विदधाना दिवा निशम् ॥८॥

अर्थ—वादियों को अपनी शास्त्र शैली से युक्ति युक्त उत्तर देके परास्त करने वाले, सकल शास्त्र निष्णात रात्रि दिन शास्त्र की ही चर्चा में तत्पर रहने वाले ॥८॥

व्याख्याने च कथायाञ्च कुशलाचारु वादिनः ।
सनातन मनु गन्तारः बुद्धि मन्तो विमत्सराः ॥९॥

अर्थ—व्याख्यान दाता, कथा वाचक बोलने में बड़े चतुर हिन्दू सनातन धर्मानुयायी, बुद्धिमान मत्सर रहित ॥९॥

पञ्चदेवार्चने लीनाः भेदभाव विवर्जिनाः ।
भक्तानां हित कर्तारः स्वयं निश्चिन्त मानसाः ॥१०॥

अर्थ—उदासीन साधु पञ्चदेवोपासक भेद भाव से रहित (किसी को बड़ा किसी को छोटा समझना इसको भेद कहते हैं इस भावना को नलाते सर्व देव बराबर समझ के उपासना करनी) अपने भक्तों और सेवकों का हित करना सर्व चिन्ताओं से शान्त मन होते हैं ॥१०॥

मठानां स्थापकाः स्वेषां मन्दिराणां नियामकाः ।
विद्यालयानां कर्तारः गोशालानां विधायकाः ॥११॥
हिन्दूनां हित कर्तार म्लेछानां मान मर्दकाः
स्वमार्ग गामिनस्त्यक्त्वा सर्वपाप निसात्विकाः ॥१२॥
भेद भावं परित्यज्य सर्वेषां हित चिन्तकाः ।
स्वल्पाऽऽहाराः सदा चाराः उदारा पारमार्थिनः ॥१३॥

अर्थ—मठ-मंदिरों के बनवाने वाले, विद्यालय संस्थापक, गऊशाला प्रतिष्ठापक, हिन्दुओं के प्राणवत्, म्लेच्छों के अत्याचारी अभिमान विनाशक, अपने पथके गामी, सर्व पापों से बचने वाले, सात्विकी स्वभाव, 'सर्व हित चिन्तक,' थोड़ा खाने वाले, सदाचार से चलने वाले परमोदार, परमार्थी जीवन वितीत करने वाले उदासीन साधु होते हैं ॥११-१२॥१३॥

अद्वैतवादे निष्णाताः पुराणे निपुणा भृशम् ।
भारते प्रति भावन्तः दक्षा रामायणे परम् ॥१४॥

योग वाशिष्ठ विज्ञाने विचित्रा बुद्धिशालिनः ।
निन्दादि दोष रहिताः मद मात्सर्यवर्जिताः ॥१५॥
विवेकिनो दया वन्तः क्षमा सत्य समन्विताः ।
यमिनो नियमे निष्ठाः प्राणायामे च तत्पराः ॥१६॥
प्रत्याहारे प्रवीणाश्च धारणावन्त एव च ।
ध्यायिनः सत्पथे लग्नाः निर्भयावीत कल्मषाः ॥१७॥
भूतानां पालने सेक्ताः करुणा वरुणालयाः ।
त्यक्तवाम जना क्षीण सर्वक्लेशा विरोगिण ॥१८॥
उदासीना महात्मानः सर्वदा सत्य वादिनः ।
सर्व लक्षण सम्पन्नाः विचरन्ति महीतले ॥१९॥

अर्थ—अद्वैतवाद वेदान्त के पूर्ण परि पोषक, पुराण निपुण, वेद व्याख्याता, महाभारत तत्ववेत्ता, रामायण-परायण, योग वाशिष्टैक निष्ठा, निन्दादि दोष शून्य, निर्मद निर्मात्सर्य, विवेकी, दयालु क्षमाधन, सत्य सन्ध, यम नियम प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा ध्यान समाधि में निरत, सत्पथ प्रवर्तक, निर्भय निष्पाप, करुणासागर, सर्व क्लेश विमुक्त, दुर्जनों से दूरीभूत, वैराग्यवान, सत्यवक्ता आदि आदि लक्षणों से युक्त उदासीन महात्मा अनादि काल से चले आ रहे हैं ॥१४।१५।१६।१७।१८।१९॥

सर्वे मन्त्राश्च यन्त्राणि तंत्राणि यच्चतत्परम् ।
एतेषां सकलं पार्श्वे विद्यते नात्र संशयः ॥२०॥

अर्थ—इस सम्प्रदाय के साधुओं के पास बड़े बड़े तन्त्र मंत्र यन्त्रों के विलक्षण (अद्भुत) चमत्कार पाये जाते हैं ॥२०॥

उदासीन मतानाञ्च साधूनां पौरुषेण हि ।
धर्मोद्धार कथालोके श्रूयते परितोऽनिशम् ॥२१॥

अर्थ—आज संसार में स्थान स्थान पर हो रहा हिन्दूधर्म कथाओं का प्रचार इन महात्माओं के ही स्तुत्य पौरुष का फल है ॥२१॥

देशे देशे च तीर्थेषु मठेषु नगरेषुच ।
पर्यटन्तो वितन्वन्ति धर्मं धर्म ध्वजोद्वहा ॥२२॥

अर्थ—ये लोग धर्म ध्वजा को लिये हुए देश देश में तीर्थ तीर्थ में मठ बना के, नगर नगर में घूम घूम कर हिन्दू धर्म का अक्षुण्णप्रचार कर रहे हैं ॥२२॥

पुरस्मात्प्रलयस्यापि समायाता उदासिनः ।
नैतन्मतं नवीनञ्च मन्तव्यं केन कर्हिचित् ॥२३॥

अर्थ—यह उदासीन परम्परा (सम्प्रदाय) आज का ही नहीं अनादि सृष्टि प्रारम्भ काल से चला आ रहा है । कई लोग भूल से इसे नया माने बैठे हैं जो सर्वथा निराधार है ॥२३॥

यस्य सम्पोषकः श्रीमान् श्रीचन्द्रो भगवान् भूत ।
यस्य कीर्तिः शुभा मह्यां मह्यमाना विराजते ॥२४॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र जी महाराज भी इस मत के प्रचारक उद्धारक पोषक आचार्य हुए हैं प्रवर्तक नहीं । जैसे सनक सनन्दनादि आचार्य हुए हैं । इस महान् आचार्य की कीति कौमुदी हिन्दू धर्मोद्धार के कारण ही फैली ॥२४॥

अन्ये खलु महात्मानः, जाता नाऽल्यल्प संख्यकाः ।
येचास्य पोषका सर्वे सर्व लक्षण संयुता ॥२५॥

अर्थ—इसके आगे भी इस मत केपोषक अनेक आचार्य होते आये हैं और वर्तमान में भी हैं ॥२५॥

उदासीन मतं केचिन्निगदन्ति न शाश्वतम् ।
श्रीचन्द्रेणस्वयं चेत द्विस्तारित मिती दृशम् ॥२६॥

अर्थ—कई एक लोग पक्षपात में पड़ कर इस उदासीन सम्प्रदाय को अनादि न मान मान कर नवीन होने की गलत धारणा लिये बैठे हैं, आचार्य श्री ११०८ जगद्गुरु श्री चन्द्रजी को इसका प्रवर्तक सिद्ध कर रहे हैं ॥२६॥

परं नैतत्समीचीनं तेषां वाक्यं कदाचन ।
नासौ प्रवर्तकः श्रीमान् श्रीचन्द्रकिन्तु पोषकः ॥२७॥

अर्थ—परन्तु इनकी इस ना समझी पर दया आती है इन लोगों के वाक्य कदापि समीचीन नहीं हैं श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रजी इस के चलाने वाले नहीं हुये किन्तु इसके पोषक हुये हैं ॥२७॥

पुरै वासी दुदासीन मतं नानक तोऽपि च ।
इति केन प्रकारेण नूतनं स्यादुदा हृतम् ॥२६॥

अर्थ—जब यह सम्प्रदाय श्री गुरु नानक देव जी से भी पूर्व काल से चला आ रहा है और गुरु नानक जी स्वयं उदासीन महात्मा थे तो गुरु जी से भी अर्वाचीन भगवान् श्री श्रीचन्द्र जी इसके प्रवर्तक कैसे हुये ॥२८॥

श्रीचन्द्रः पोषको ऽस्यासीदिति वक्तुं न साम्प्रतम् ।
विलुप्तञ्च मतं तेन ख्यापितं धरणी तले ॥२६॥

अर्थ—इस विलुप्त सम्प्रदाय का पुनः इस रूप में पुष्पित पल्लवित होना भगवान् के पवित्र अदम्य प्रभाव का ही परिणाम है, आपने ही नास्तिकों का मुख मर्दन करके अपने अनादि हिन्दू सनातन उदासीन मत का गहरा झण्डा धरणी तल में गाड़ा अस्तु भगवान् इन भूले हुओं को सुमति दें। आओ आगे और भी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की कलि कल्मष नाशिनी कथा सुनें ॥२६॥

वेदर्षि वाण चन्द्रे श्री वैक्रमे शुभ वत्सरे ।
ज्येष्ठे शुक्ले दशम्याश्च कथैकाऽभूद्विलक्षणा ॥३०॥

अर्थ—स्मरण रहे यह अद्भुत कथा वि० सं०१५७४ ज्येष्ठ शुक्ल दशमी की है ॥३०॥

नानका नगरी मध्ये शात कुंभ वराशने ।
एकदाऽऽसीत्समाऽऽसीनः श्रीचन्द्रश्चन्द्र दर्शनः ॥३१॥

अर्थ—एक समय भगवान् श्रीचन्द्र देवजी अपने स्थान ननकाना में दिव्य सोने के सुन्दर सिंहासन पर विराज मान चन्द्रमा के सदृश्य शोभा पा रहे थे ॥३१॥

वारुणीं सेवितुं याते तिग्मांशौराग शालिनि ।
प्रतीच्यां सानु रागायां कुल ये लीन पक्षिषु ॥३२॥

अर्थ—भगवान् भुवन भास्कर अपनी प्रियतमा अनुरागवती वरुण दिशा के यहाँ जाने को तय्यार हो रहे थे (प्रतीची) में कुछ २ लाली दौड़ गई थी पक्षि कुल अपने कुलाय घोसलों में चले गये थे ॥३२॥

त्यक्त्वा समुल्वण चौष्ण्यं मातरिश्वनि मन्थरे ।
वाति वारि भृतैः कुम्भैः सिक्ते चास्थान मण्डपे ॥३३॥

अर्थ—वायु अपनी तिग्मिता का छोड़कर धीरे धीरे चल रहा था चारों तरफ रास्तों पर छिड़काव हो चुका था ।।३३।।

प्रति गृहं गृहस्थानां दुह्यमानाषु गोषु च ।
क्षीरं संतुष्ट चित्तेषु स्वच्छन्देषु समन्ततः ।।३४।।

अर्थ—सद्गृहस्थों के प्रत्येक घर घर में गौयें दुही जा रहीं थीं उनके बछड़े दूध पीकर रम्भा शब्द करते हुये स्वछन्दतापूर्वक ।।३४।।

उत्पुच्छेषु स शब्देषु चोत्कर्णेषु चलेषु च ।
कूर्द मानेषु रम्येषु तर्णकेषु गवां पुरः ।।३५।।

अर्थ—पूँछ कान उठाकर गौओं के आगे उछल कूद मचाते हुये आनन्द प्रदर्शित करते सबको अहलादित करते थे ।।३५।।

प्रदीपि तेषु दीपेषु शान्ते पक्षि रवेऽखिले ।
सन्ध्यायां ध्याय मानायां जाप माने जपोऽपिच ।।३६।।

अर्थ—पक्षियों का (कोलाहल) चहचहाना बन्द हो चुका था सब अपने अपने घोसलों मे जाने का विचार कर रहे थे, दीपक प्रज्वलित होने का समय था, लोग सन्ध्या जाप में एकाग्र मन से तल्लीन हो रहे थे ।।३६।।

मन्दिरेषु च सर्वेषु शङ्ख घण्टाऽऽदिकाऽऽरवैः ।
पूरितेषु नमस्याषु क्रिया माणाषु सादरम् ।।३७।।

अर्थ—सब मन्दिरों में शङ्ख घड़ियाल की ध्वनी से आकाश गूँजने लगा और भक्त लोग भक्ति से भरपूर हो भगवान् को सादर दण्डवत् कर रहे थे ।।३७।।

जयकारैरथ प्रोच्चैः व्योमनि प्रतिनादिते ।
आसीनेषु च सर्वेषु नत्वा नत्वा यथा क्रमम् ।।३८।।

अर्थ—गगनभेदी ऊँचे २ जय २ कारों से आकाश प्रतिध्वनित हो उठा, सब लोग क्रमपूर्वक भगवान् को प्रणाम कर २ योग्य स्थानों में बैठ गये ।।३८।।

वद्धाञ्जलि रुवाचैकः भक्तो भक्ति समन्वितः ।
भगवन् भजनं कस्य कर्तव्यं सर्वदा मया ।।३९।।

अर्थ—इतने में एक भक्त उठकर हाथ जोड़ श्री ११०८ जगदगुरु श्रीचन्द्र भगवान् से भक्तिपूर्वक पूछने लगा हे भगवन् किसका भजन करना चाहिये ।।३९।।

कुसङ्गस्य प्रभावेण मतिर्मे विकृतिं गता ।
गीते नृत्ये च वाद्ये च रूपा जीवा जनेषु च ॥४०॥

अर्थ—कुसंगत के प्रभाव में पड़कर भगवन् मेरी बुद्धि तामसी हो गई है गीतवाद्य और नाच में लग वेश्या रत हो रही है ॥४०॥

असूयायां मदे लोभे कामे क्रोधे चमत्सरे ।
परापकर्षे निन्दायां निजोत्कर्षे च सर्वथा ॥४१॥

अर्थ—असूया, मद, लोभ, काम, क्रोध, मत्सर पर निन्दा और आत्मश्लाघा में ही मैं दिन रात लगा रहता हूँ ॥४१॥

निरतोऽस्मि कथंमेस्या त्कल्याणं करुणाकर ।
इत्यनेक कुकर्माणि करोम्येव दिवा निशम् ॥४२॥

अर्थ—हे कल्याण सागर कहिये किसी प्रकार से मुझ पापी का भी उद्धार हो सकता है कारण दिन रात ऐसे कुकुर्म करता हुआ भी ॥४२॥

स्वात्मानं चानिशं मन्ये सर्व लोकाति शायिनम् ।
कलयामि मदोन्मत्तः क्षुद्रञ्च निखिलं जगत् ॥४३॥

अर्थ—मैं अपने आपको मदोन्मत्त भाव से सबसे बढ़कर मान सारे संसार को तुच्छाति तुच्छ गिनता रहा हूँ ॥४३॥

श्रुत्वाऽघमया ज्ञातं त्वत्तो ध र्ममयी कथाम्
अद्या वधिमया सर्वं पाप मेवकृतं वृथा ॥४४॥

अर्थ—परन्तु आज आपके पवित्र उपदेश से मेरे नेत्र खुल के बुद्धि ठिकाने आगई जिससे अब मेरी समझ में आया कि आज तक जो कुछ भी मैंने किया वह सब बुरा ही किया अजितेन्द्रिय और विषय लोलुप जो था ॥४४॥

रक्ष मां सर्वथादेव प्रपन्नोऽस्मिपदे तव ॥
वञ्चितोऽस्मि कुसङ्गेन पाहिमां शरणागतम्॥४५॥

अर्थ—हे भगवन् मैं आपकी शरण में आया हूं मैं कुसंग में पड़कर अति ठगा गया हूँ हे दयालो मुझे अपना के मेरी रक्षा कीजिये ॥४५॥

समाप्त वचने तस्मिन्नित्युक्त्वा साश्रुलोचने ।
दयोदन्वान् स भगवान् श्रीचन्द्रश्चन्द्र शीतलः ॥४६॥
परोपकार निपुणः पर दुःख वनाऽनलः ।
बभाषे सान्त्वयन् खिन्नं धीरं मधुरया गिरा ॥४७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु भगवान् श्रीचन्द्र जी उस अपने भक्त के गिड़ गिड़ाने को सुन न सके दया का समुद्र उमड़ आया रुक न सके भक्तों का दुःख भगवान् कब देख सकते हैं, सच्चा हृदय चाहिये आप अपने सन्तप्त भक्त को मधुर शीतल वाणी से इस प्रकार सान्त्वना देने लगे ॥४६॥४७॥

नखलु भद्र कुरुष्वमनोरुजं, व्यपनयामि तवाधिमिमंक्षणात् ।
सकल दुष्कृतिमूला मियंकिल कुजन सङ्गतिरुत्सृजतामिमाम् ॥४८॥

अर्थ—हे वत्स चिन्ता मत करो मैं तुम्हारी इस मनो व्यथा को अभी दूर किये देता हूँ आज प्रतिज्ञा पूर्वक इस कुसंगति को छोड़ दो यही सब पापों की जड़ है ॥४८॥

सुजन सङ्गतिमादार पूर्वकं कुरुकदापिन सन्त्यजतांपुनः ।
ननु च कल्पलतेयमलौकि की जन मनोरथ पूरण पेशला ॥४६॥

अर्थ—सदा सत्संग किया करो सत्संग में आदर बुद्धि रखो संसार में ऐसी कोई चीज नहीं जो सत्संग से प्राप्त न हो सके, सत्सङ्ग को शास्त्रों ने कल्प वृक्ष बताया है ॥४६॥

सकल दोषचयंत्यज दूरतोमनसि चिन्तय ताप हरं हरिम् ।
सभगवान् तव पापचयं क्षणात् तृणमिवाऽनल आशु हरिष्यति ॥५०॥

अर्थ—सब दोषों को भुला कर भगवान् हरि का एक बार नाम लो तो सही देखो भगवान् का नाम आते ही कैसे सब पाप भाग जाते हैं जैसे तृण अग्नि में भस्म हो जाता है ॥५०॥

अथ चते विषयेषु रतिर्यदि नचविहातु मिमान् क्षमसेततः ।
त्वरितमर्पय विष्णुपदेमतिं रतिरियं हरिमेव भजेद् ध्रुवम् ॥५१॥

अर्थ—यदि तुम विषय रति नहीं छोड़ सकते तो न छोड़ो आओ भगवान् के पवित्र चरणों में प्रेम (रति) करो देख नहीं रहे हो तुम्हारी मति भी सदा इन चरणों की ही अनुचरी दासी बनी बैठी है ॥५१॥

यदि तव श्रवणे श्रुतिरुत्सुका श्रुति गिरो गलितं ललितं तदा ।
शृणु गुणान्वित नारद वीणया समुदितं विमलं हरि कीर्तनम् ॥

अर्थ—यदि तुमको गाने का शौक है तो खूब गाओ, हजार मुख से गाओ, परन्तु गाओ भगवान् का कीर्तन, जिसको चार वेद गाते हैं और महर्षि नारद जी सदा सर्वदा हरिगुण गाते वीणा बजाते चक्कर काटा करते हैं ॥५२॥

विवदिषां यदि तद्वद सुन्दरं कलिमलाप हरं हरि भाषितम् ।
गिरिजया विजया युतयाऽऽदृतं, द्रुतमना हरिनाम नवनवम् ॥५३॥

अर्थ—यदि तुम बोलना ही चाहते हो तो, लो बोलो पापबिनाशक हरिका नाम, जिसकी विजयता समेत भगवती पार्वती आठो पहर रट लगाये रहती है ॥५३॥

यदि पुनः स्मरणे सरसं मनः स्मर तदा स्मरस्कोटिल सच्छविम् ।
कर सरोरुह लालित पुष्करं कमलयाऽमलया वलितं हरिम् ॥५४॥

अर्थ—यदि तुम्हें किसी की याद करने की ही लव है तो लगालो न इस लत (आदत) को किया करो याद उन प्रभु के कोटि कामदेव से सुन्दर चरणों की जिनकी सुन्दरता से चञ्चला लक्ष्मी भी अपनी चञ्चलता से हाथ धो बैठी ॥५४॥

यदि विलोकनमेव तवेप्सितं ननु विलोक्य लोचन सेचनम् ।
तरलितं वृष भानु सुतेङ्गितैः मधुबने विचरन्त महर्निशम् ॥५५॥

अर्थ—यदि तुम्हें रूप देखने की ही बान है तो क्यों नहीं देख लेते प्यारे उस नट खट, कोटि काम मान मर्दक, राधिका सहित कन्हैया की जाओ कहीं मधुवन में सखियों को दर्शन दे रहा होगा ॥५५॥

यदि च ते रमणे प्रयणा मार्तः ननु रमस्व रमापति पादयोः ।
सुरसरिज्जल निर्मलयोर्ययोः स्थिर रातिश्चपला कमलापि सा ॥५६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कहते हैं कि यदि तेरे को रमण करने की ही अधिक इच्छा है तो नम्र भाव से लक्ष्मी के पति भगवान् विष्णु के चरण कमलों में रमणकर, जिन चरणार्विन्दों से त्रैलोक्य पतित पावनी गङ्गाजी प्रगट भई हैं तथा चपला के सदृश्य कहीं स्थिर न रहने वाली लक्ष्मी ने भी जहाँ विश्राम पाया है ॥५६॥

एवं सुधोपमैरतै रुप देशैरसौ जनः ।
रञ्जितो नितरां तुष्टः वीतशोको विमत्सरः ॥५७॥

कृत कृत्यो महानन्द सन्दोहःऽऽन्दोलितान्तरः ।
साष्टाङ्गं प्रणि पत्याथं वहुधा स्तुतिमा चरत् ॥५८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के ऐसे वचनामृत सुनकर भक्त को धैर्य हुआ शोक मत्सर विलीन होने से पश्चात्ताप दूर हो गया, अत्यन्त प्रसन्न होकर आनन्द सिन्धु में गोते लगाने लगा भगवान् के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और अनेक प्रकार से स्तुति की ॥५७-५८॥

मुहुः स्तुत्वा च नत्वा च हर्ष निर्भर मानसः ।
गृहं जगाम सानन्दं ततोऽन्येऽपि प्रतस्थिरे ॥५९॥

उत्थाय स्वास्नात्सद्यः श्रीचन्द्रो भगवानपि ।
किञ्चत्पर्यट्य परितः शयनागारमागमत् ॥६०॥

अर्थ—प्रणामानन्तर सब भक्त मण्डली अपने अपने घरों को चली गई भगवान् भी सिंहासन से उठ खड़े हुए और एक दो मिनट इधर उधर घूम कर अपने शयनागार में पधार गये ॥५९-६०॥

एवं प्रतिदिनं कुर्वन्नुपदेशान् बहूनसौ ।
कालं निनाय सौख्येन भक्त रञ्जन तत्परः ॥६१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के उपदेशामृत इस प्रकार नित्य चला करते थे जिनसे जनता अपने २ भावानुसार उचित लाभ उठाती थी, श्री गुरुजी भक्तों के मन प्रसन्न करने में तत्पर रहा करते थे ॥६१॥

रसर्षिवाण चन्द्रे श्री वैक्रमे दायने शुभे ।
ज्येष्ठेशुक्ले तथैवैका दश्यां सोऽति प्रभाववान् ॥६२॥

पिता महाभ्यां वृद्धाभ्यां जिज्ञासुभ्यां च सादरम् ।
उपदेशं ददौ धीरः, श्रीचन्द्रश्चारु भाषणः ॥६३॥

सच संक्षेपतो भद्राः श्रूयतां वर्ण्यते मया ।
यच्छ्रुत्वा ज्ञान मासाद्य सद्यः स्वर्गं जनोव्रजेत् ॥६४॥

अर्थ—बहुत समय बीतने पर बूढ़े दादा दादी को जिज्ञासु भाव जानकर भगवान् ने बि० सं० १५७६ ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को उन्हें उपदेश दिया जिसको सुनकर मनुष्य स्वर्ग

के अधिकारी बन जाते हैं उसको आप सुने मैं संक्षेप से उसका वर्णन करता हूँ जो भुक्ति मुक्ति देने वाला है ॥६२-६३-६४॥

कल्याण चन्द्रस्तृप्ताच सादरं चन्द्रमौलये ।
नत्वा प्रार्थितवन्तौ तौ ब्रह्मज्ञानाभिलाषिणौ ॥६५॥

अर्थ—दादा कल्याणचन्द्र तथा दादी तृप्ता जी ने भगवान् से सादर प्रार्थना की कि हमें ब्रह्म विद्या का उपदेश दीजिये ॥६५॥

भगवन् तौ गतजन्म संसारे भोग सक्तयोः ।
वार्धक्यश्च समायातं न कृतं सुकृतं क्वचित्॥६६॥

अर्थ—हे भगवन् हमारा सांसारिक भोगों में ही सारा जीवन व्यतीत हो गया है वृद्धावस्था आ गई कोई सुकृत नहीं बन पाया ॥६६॥

आवाभ्यां चरमे काले-किं कर्तव्यं वद प्रभो ! ॥
दिवानिशं चहृदयं पश्चात्तापेन तप्यते ॥६७॥

अर्थ—बताइये अब हम इस बूढ़ी अवस्था में क्या करें, बस, दिनरात इसी पश्चात्ताप से हृदय जलता रहता है ॥६७॥

अभिषेकस्य समया दारभ्याद्यावधिप्रभो ।
श्रोतु मिच्छा मनस्यास्ते पूर्यता मद्य सान्त्वया ॥६८॥

अर्थ—आपके अभिषेक से लेकर आज तक उपदेश लेने की मन में इच्छा बनी रही परन्तु मोह में या संकोच में कह नहीं सके कृपया आज उसे अवश्य पूरी करें ॥६८॥

प्राप्यापि त्वदृशं पौत्रं यदि नौ बन्धनं पुनः ।
सर्वं संसार मुक्तेश्च तदात्वन्तं गता कथा ॥६९॥

अर्थ—आपसा पौत्र प्राप्त करके भी यदि हम बन्धन में ही पड़े रहे तो आपका उपदेश सारे संसार को कैसे पार करेगा ॥६९॥

दीनं दीन वचः श्रुत्वा दीनयोर्वृद्धयोस्तयोः ।
कारुणिकः स भगवान् शनैःकैराह सान्त्वयन् ॥७०॥

अर्थ—बूढ़ेदादा दादी के अत्यन्त दीन शब्द सुनकर करुणा वरुणालय भगवान् श्रीचन्द्र धीरे धीरे शान्तमुद्रा से कहने लगे ॥७०॥

नास्ति ज्ञानं विना मुक्तिरिति श्रुत्यानिगद्यते ।
अज्ञान ध्वान्त नाशाय ज्ञानमेव क्षमं परम् ॥७१॥

अर्थ—हे आदरणीय दादा तथा दादीजी भगवती श्रुति का कहना है कि 'ऋते ज्ञानान्नमुक्ति' ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती इस अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये एकमात्र ज्ञान भास्कर ही समर्थ है ॥७१॥

त्रिविधा त्रिगुणमाया त्रैलोक्येऽपिविजृम्भते ।
एतन्माया मयं सर्वंयच्च लोचन गोचरम् ॥७२॥

अर्थ—जो भी आपको तीनों लोकों में दृश्य दिखाई दे रहा है यह सब त्रिगुणमयी माया का,विस्तार है ॥७२॥

ब्रह्मत्वतः परं शुद्धं बुद्धं ज्ञानमयं विभु ।
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निर्गुणं निर्विशेषकम् ॥७३॥
अनादि निधनं सत्यं शाश्वतं वीत कल्मषम् ।
भावा भावमयाद्धर्मो परतः स्थितमद्भुतम् ॥७४॥

अर्थ—ब्रह्मतो इस माया से परे की चीज है जो शुद्ध, बुद्ध, विभु, ज्ञानस्वरूप, निष्कल, निष्क्रय, शान्त, निर्गुण, निर्विशेषक, अनादि, निधन, सत्य, शाश्वत वीत कल्मष अद्भुत वाङ् मनसा गोचर भाव और अभाव से परे है ॥७३-७४॥

तज्ज्ञात्वा मानवो भूयः भवे भावं न विन्दते ।
आनन्दी केवली भूत्वा बह्मसम्पद्यते ध्रुवम् ॥७५॥

अर्थ—ब्रह्म को जानकर जीव संसार में पुनः जन्म नहीं लेता जीव आनन्द स्वरूप ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥७५॥

कर्तृत्वाऽभिमतिंत्यक्त्वा, भोक्तृत्वस्यापि सन्त्यजेत् ।
सर्वं कर्म फल त्यागी ज्ञानी भवति नापरः ॥७६॥

अर्थ—कर्तृत्वाभिमान और भोक्तृत्वाभिमान तथा सर्व कर्मों के फल को एक ज्ञानी ही छोड़ सकता है दूसरा कोई नहीं ॥७६॥

ये कर्म सङ्गिनो लोकाः ममता परि दूषिता ।
स्वर्गे कर्म फलं भुक्त्वा भूतलं यान्ति तेपुनः ॥७७॥

अर्थ—जो प्राणी कर्मसंगी है, जिनकी ममता नहीं दूर हो सकी वे स्वर्ग में अपने कर्मों का फल भोगकर पुनः संसार में आ जाते हैं ॥७७॥

गुणैः सर्वाणि कर्माणि क्रियन्तेन शरीरिणा ।
कर्तारं मन्यते ह्यस्तु सध्रुवं वध्यते भवे ॥७८॥

अर्थ—सब काम प्रकृति के गुणों की चाल से ही हो रहे हैं जो अज्ञान से अपने को ही कर्ता मान लेता है वह बन्धन में पड़ जाता है ॥७८॥

प्रकृत्या जीव लोकोऽयं मोहितोऽति विचित्रया ।
खिद्यते केवलं भूयः मरीच्येव कुरङ्गकः ॥७९॥

अर्थ—प्रकृति की विचित्रता से जीव मोहित हो गया है और दुखी रहता है जैसे मृगतृष्णा में पड़कर मृग ॥७९॥

कामं जन्मानि भूयांसि गमयेत्कर्मभिर्जनः ।
यदि न त्यज्यते सङ्गः नास्ति मुक्तिः कथंचन ॥८०॥

अर्थ—चाहे प्राणी कर्म करता करता कितने भी जन्म व्यतीत कर दे जब तक कर्मों के फल का त्याग नहीं करेगा तब तक मुक्ति असम्भव है ॥८०॥

विश्वसेदाप्त वाक्येषु यदि लोके विमत्सरः ।
सद्यो मुक्ति भवेतस्य संशयो नास्ति कश्चन ॥८१॥

अर्थ—यदि प्राणी रागदोष छोड़कर (आप्त वाक्य) शास्त्रों पर विश्वास करे तो निस्शंसय उसकी बहुत शीघ्र मुक्ति हो जायगी ॥८१॥

अतः स्वच्छेन चित्तेन श्रुति वाक्येषु विश्वसेत् ।
विश्वासान्मुच्यते जन्तुः संशयात्तु विनश्यति ॥८२॥

अर्थ—अतः निश्छल भाव से वेद वाक्यों पर विश्वास करना चाहिये विश्वास से प्राणी मुक्त हो जाता है और संशय से बन्धन में पड़ नाश हो जाता है ॥८२॥

वार्धक्ये समये मर्त्यः सर्व कर्माणि वर्जयेत् ।
केवलंमनसा वाचा जपेदोङ्कारमेवहि ॥८३॥

अर्थ—वृद्धा वस्था में तो अवश्यमेव प्राणी को चाहिए कि सब संसार के झगड़े छोड़ कर निरन्तर मन वाणी से (ओंकार) का जाप करता रहे ॥८३॥

त्रयः कालास्त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रयोगुणाः ।
त्रयो देवास्त्रयो वर्णास्त्रयो धर्मास्त्रयोऽग्नयः ॥८४॥
मात्रा त्रयात्समुत्पन्नाः प्रणवस्याऽव्ययस्यहि ।
अकारश्च उकारश्च मकारश्चेति च त्रिकम् ॥८५॥

अर्थ—तीनों काल, तीनों लोक, तीनों वेद, तीनोंगुण, तीनों देव, तीनों वर्ण, तीनों-धर्म, तीनोंअग्नियें ये सब ओंकार की आकार, रकार और मकार रूप तीन मात्राओं से पैदा हुए हैं ॥८४॥८५॥

तिसृभ्य एव मात्राभ्यो व्याहृति त्रय संभवः ।
त्रयः पादाश्च गायत्र्यास्ताभ्य एवेति च स्मृतिः ॥८६॥
प्रणवोपासनात्स्मात्सर्व श्रेष्ठा मता नृणाम् ।
उपासितं भवेत्सर्वं यस्योपासनयानया ॥८७॥

अर्थ—इन्हीं तीन ओंकार की मात्राओं से तीन व्याहृतियें निकलीं, तीन व्याहृतिओं से गायत्री के तीन पाद, गायत्री के तीन पादों से स्मृति अतएव प्रणवो पासना ही सर्व श्रेष्ठ सर्वोत्तम मानी गई है जिस एक के उपासना से ही सभी की उपासना स्वयमेव बन जाती है ॥८६॥८७॥

रहस्यं परमेतच्च श्रुतिराह सनातनी ।
सन्देहो नात्र कर्तव्यः प्रणवो ब्रह्मवाचकः ॥८८॥

अर्थ—यह सनातन रहस्य स्वयं वेद भगवान् ने कहा है इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये प्रणव ब्रह्म का ही वाचक है 'तस्य वाचकः प्रणवः,, ॥८८॥

अतस्तातौभवद्भ्याञ्च प्रणवो जप्यतामयम् ।
निश्चिन्तं स्थीयतां तावन्नूनंमोक्षो भविष्यति ॥८९॥

अर्थ—अतः पूज्य दादा जी आप सदा निरन्तर परम श्रद्धा से ओंकार का जाप करते रहें चिन्ता की कोई बात नहीं अवश्यमेव मुक्ति होजायगी ॥८९॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तौ वृद्धौ परमादरात् ।
नमस्कृत्य सदानन्दा सिन्धौमग्नौ सनातने ॥९०॥

अर्थ—इस प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के वचनों को शिरो धार्य करके उन दोनों ने भगवान् को सादर सभक्ति प्रणाम किया आनन्द सागर में मग्न हो गये ॥९०॥

रसर्षि वाण चन्द्रे श्री वैक्रमे वत्सरे शुभे ।
आषाढे पूर्णिमायाञ्च दीक्षां नीत्वा गृहं गतौ ॥६१॥

अर्थ—और गुरु दीक्षा मन्त्र उन दोनों ने भगवान् से वि० सं० १५७६ आषाढ़ी पूर्णिमा को लिया था जिसके जपने से दोनों अन्त काल में परम धाम को जाते भये ॥६१॥

श्री चन्द्रात्प्रणवं निशम्य विधिवत्तृप्ता च तृप्ता भृशम् ।
कल्याणोऽप्यभवत्सुखेन भुवने कल्याण भाग् क्केवली ॥
योवाऽन्योऽपि चरित्रमेत दखिलं वक्ष्यत्यथ श्रोष्यति ।
ब्रह्मानन्द पदं स यास्यति मुदात्यक्त्वा शरीरं ध्रुवम् ॥६२॥

भगवान् के श्री मुख से प्रणव (ओंकार) की विधि पूर्वक महिमा सुनकर दादी तृप्ता जी अत्यन्त तृप्त हुईं और श्री कल्याणचन्द्र जी भी अनायास परम कल्याण के भाजन बन गये अथवा और भी जो कोई इस भगवान् के पवित्र चरित्रको कहेगा या सुनेगा वह अवश्य मेव इस शरीर के अनन्तर ब्रह्म पद को प्राप्त होगा ॥ ६२॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गा मध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे श्रौत चतुर्श्रामी उदासीन सम्प्रदाय महत्व एवं दादा कल्याणचन्द्र दादी तृप्ता उपदेश वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी त्रयोदश किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥१३॥

॥ चतुर्दश किरण प्रारम्भः ॥

एवं गच्छति कालेच ननकानात्तो दिगन्तरम् ।
गन्तुमिच्छु र्निजस्थानं प्रबवन्ध यथो चितम् ॥१॥

अर्थ—कुछ समय बीत जाने पर भगवान् ने दिग्दिगन्तरों में हिन्दू धर्म प्रचार करने के लिये तथा हिन्दू जनता के कष्ट निवारण करने के लिये जाने की इच्छा प्रकट की और अपने स्थान का सुप्रबन्ध किया ॥१॥

रसर्षि वाण चन्द्रे श्री वैक्रमे शुभदायने ।
माघे शुक्ले च वासन्त्यां पञ्चम्यां निश्चिता गतिः ॥२॥

अर्थ—आपकी यात्रा का शुभ दिन वि० सं० १५७६ माघ शुक्ल बसन्त पञ्चमी निश्चित किया गया ॥२॥

यात्रा निर्णय माकर्ण्य ननकानास्था समे जनाः ।
अत्यन्तं व्याकुला जाताः मीना इव जलं बिना ॥३॥

अर्थ—यात्रा का समाचार सुनते ही ननकाना नगर के सब लोग अत्यन्त व्याकुल हो गये जैसे जल के बिना मीन (मछली) ॥३॥

कालु रामश्च तृप्ता च स्वमाता च सुलक्षणी ।
खिन्ना अतितरां जाताः तथाऽन्ये च कुटुम्बिनः ॥४॥

अर्थ—दादा कालूराम जी दादी तृप्ता जी, माता सुलक्षणी देवी जी तथा दूसरे सम्बन्धी जन यह समाचार पाते ही बड़े खिन्न हुए ॥४॥

सान्त्वयित्वा च तान् सर्वान् पञ्चषाननुगामिनः ।
सह नीत्वा प्रतस्थेऽसौ लोक कल्याण कांक्षया ॥५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र, भगवान् ने उन्हें समझा बुझाकर अपने साथ पाँच छे उदासीन साधु लेकर लोक कल्याण कामना से यात्रा आरम्भ की ॥५॥

रामचन्द्रस्य पुत्रेण लवेन निर्मिता तु या ।
तां पूर्वं शिष्य संयुक्तः श्री माल्लवपुरीं गतः ॥६॥

अर्थ—सर्व प्रथम भगवान् श्रीचन्द्र भगवान् राम के बड़े पुत्र श्री लव की बनाई हुई लवपुरी (लाहौर) में गये ॥६॥

तत्रत्या जनता दृष्ट्वा श्रीचन्द्रं दिव्य दर्शनम् ।
चन्द्रं दृष्ट्वेव सम्फुल्ला, निशायां कुमुदावली ॥७॥

अर्थ—दिव्य दर्शन श्री ११०८ जगद्गुरु महाप्रभु श्रीचन्द्र भगवान् को देखकर वहाँ की जनता ऐसी प्रसन्न हुई जैसे चन्द्रोदय होने पर रात्रि में कुमुदावली खिल उठती है ॥७॥

रसर्षि बाण चन्द्रे श्री वैक्रमे माघ शुक्लके ।
पञ्चम्यां ब्राह्मणे गेहे तस्थौ शिष्य गणान्वितः ॥८॥

अर्थ—भगवान् वि० सं० १५७६ माघ शुक्ला पञ्चमी ही को एक ब्राह्मण के घर अपनी साधु मण्डली सहित रहे उसीका आतिथ्य स्वीकार किया ॥८॥

२३

अस्यां खलु विशाला यां लवपुर्यां पुराऽभवत् ।
जय पालो हिन्दु राजो विक्रान्तो धार्मिकाग्रणीः ॥९॥

अर्थ—इस विशाल नगरी लवपुरी में पहले हिन्दू राजा परम धार्मिक जयपाल नाम राज्य किया करता था यह हिन्दू ब्राह्मण जाती के थे ॥९॥

अनङ्गपाल नाम्ने च स्वसुताय महात्मने ।
विधपूर्वं विधिज्ञोऽसौ राज्यं दत्वा दिवं गतः ॥१०॥

अर्थ—उन्होंने अपने सुपुत्र अनङ्गपाल को विधि पूर्वक अपना उत्तराधिकारी बनाया और आप स्वर्ग सिधार गये ॥१०॥

अनङ्गपाल शर्माच राज्यं चक्रे यथा विधि ।
तस्मिन् राजानि जातानो ईति भीति युताः प्रजाः ॥११॥

अर्थ—अनङ्गपाल शर्मा ने भी अच्छा राज्य किया उसके राज्य में प्रजा को कभी ईति भीति नहीं देखनी पड़ी ॥११॥

प्रजानां सुखसम्भारैः याते भूयस्पने हसि ।
महमूदो गजनवी प्रथमाक्रमणं व्यधात् ॥१२॥

अर्थ—इस प्रकार आनन्द मनाते हुये प्रजा का बहुत समय बीत गया महमूद गजनवी ने पहला आक्रमण लहौर पर किया ॥१२॥

धैर्यं तत्याजनो धीरः जाते जन्ये महत्यपि ।
दैवा धीनतया सृष्टेः रणे मृत्युं गतो बली ॥१३॥

अर्थ—भयंकर महायुद्ध होनेपर भी इस महान धीरात्मा ने अपनी धीरता नहीं छोड़ी पूरा मुकाबला किया परन्तु यह सारी सृष्टि किसी नटखट के मूक संकेत (इशारे) पर नाच रही है वह बली भी युद्ध में बीरगति को प्राप्त हुआ ॥१३॥

तस्य पत्नी ततश्चक्रे तेन युद्धं भयङ्करम् ।
वीर कन्या वीरभार्या न विभेति कदाचन ॥१४॥

अर्थ—अनन्तर उसकी धर्म पत्नी ने वीरता पूर्वक उससे तुमुल युद्ध किया हिन्दू वीर कन्याएँ और हिन्दू बीर भार्याएँ कभी डरा नहीं करतीं ॥१४॥

वीर गतिं गतायाश्च तस्यां तस्याः सुतः पुनः ।
तथैव युयुधे वीरः पुत्राः पित्रानुसारिणः ॥१५॥

अर्थ—उस देवी के भी वीरगति को प्राप्त होनेपर उसके सुपुत्र ने भी पूर्ववत युद्ध जारी रखा वही वास्तव में पुत्र है जो पिता का अनुसरण करे ॥१५॥

जयपालश्च तं जित्वा लुण्ठिताः सकलाः प्रजाः ।
महमूदेन दुष्टेन नीचे न्याय्यं न तिष्ठति ॥१६॥

अर्थ—जयपाल को जीतकर महमूँद ने बड़ी बड़ी लूट मार मचाई नीच पुरुष न्याय और अन्याय का विचार नहीं करते ॥१६॥

एवं क्रूरः सप्तदश वारानागत्य भारतम् ।
हत्वा छित्वा च दग्ध्वा च लुलुण्ठ निर्दयं प्रजाः ॥१७॥

अर्थ—इस प्रकार उस क्रूर जालिम ने १७ वार भारत में आकर निरपराध प्रजाको निर्दयता पूर्वक मारा काटा जलाया और लूटा ॥१७॥

दीनानां दूयमानानां हाहाकारो महानभूत् ।
अहो दैवगतिश्चित्रा तेषां त्राता न कश्चन ॥१८॥

अर्थ—उस समय बिचारी प्रजा का करुण क्रन्दन सुनने वाला कोई नहीं था भगवान् की भी विचित्र लीला है ॥१८॥

सप्तदशतमे युद्धे लवपुर्या मजायत ।
हिंसकस्य चदुष्टस्य महमूदस्य शासनम् ॥१९॥

अर्थ—वि० सं० १०७६ में महमूँद ने लाहौर पर अपना अधिकार किया इतिहास बताता है कि महमूँद गजनवी ने पंजाब पर १३ दफे चढ़ाई की एक हमला काश्मीर में और तीन हमले कन्नौज गवालियर और सोमनाथ पर किये इस प्रकार १७ हमले किये ॥१९॥

कृत्वा निजाधिपत्यं सवर्द्धयामास पातकम् ।
अकारणं हन्यमाना रुरुदुः सकलाः प्रजाः ॥२०॥

अर्थ—अपना आधिपत्य मजबूत बनाकर उसने प्रजा को नित्य नये नये दुःख देने आरम्भ कर दिये यहां तक सताया कि प्रजा के नाक में दम कर दिया ॥२०॥

सस्रुः समन्ततस्तत्र स्रवन्त्यः शोणितस्त च ।
सस्नौ वसुमती स्वस्य पुत्राणां रक्तवारिभिः ॥२१॥

अर्थ—चारों ओर खून की नदियां बहने लगीं भगवती वसुन्धरा लोहू से लतपथ हो गई ॥२१॥

दुग्ध कुल्याः पुरा यत्रशतशः प्रावहन् भृशम् ।
गवाश्च हन्यमानानां रक्त कुल्यास्तदाऽ चलन् ॥२२॥

अर्थ—जहाँ सैकड़ों दूध की कूलैं नदी बहा करती थीं आज वहाँ अनगिनती गौवें मारी जाती हैं जिससे लोहू की नदियाँ बहने लगी ॥२२॥

रथ्यासु रक्त पूर्णासु मृतशेषाश्च तर्णकाः ।
मातृ दुग्धेन सम्पुष्टाः तद्रक्तेष्वेव चाऽतरन् ॥२३॥

अर्थ—दूधमुँहे बछड़े भूख से अपने अन्तिम श्वास लेते हुए गलियों में बह रहे खून में डूबने उतराने लगे ॥२३॥

दग्ध गृहा हता दीनः लुण्ठितंसकलं धनम् ।
भग्ना देवालयाः सर्वे हिन्दवो यवनी कृताः ॥२४॥

अर्थ—घर जलाये, दीनों को दुखाया, धन लूटा, मन्दिर गिराये, और हिन्दुओं को जबरन् मुसलमान बनाया गया ॥२४॥

कूपेष्वपिच सर्वेषु पातितं रुधिरं गवाम् ।
ये च नोयवना जाताः प्रेषितास्ते यमालयम् ॥२५॥

अर्थ—तालाब कुओं के अन्दर गौओं का खून डलवा दिया गया जो हिन्दू मुसलमान नहीं बना उसे बुरी तरह मारा गया ॥२५॥

तेषामपहृतं सर्वं सुतादारा गृहं वसु ।
आक्रोशताञ्च हिन्दूनां नाभूत् कश्चन रक्षकः ॥२६॥

अर्थ—हिन्दुओं के बाल, बच्चे, धन, माल और घरवार खोसे जा रहे थे हाहाकार मचा रहे उन हिन्दुओं की मदद करने वाला कोई नहीं निकला ॥२६॥

तादृशे समये तत्र श्रीचन्द्रो भगवान् स्वयम् ।
इरावत्यास्तटे ध्याने स्नाने नित्य कुरवतुः ॥२७॥

अर्थ—इस प्रकार के अत्याचारों से अपने हिन्दुओं को बचाने के लिये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी साधु मण्डली के सहित लाहौर में आ.र एक ब्राह्मणके घर

ठहरते भये, प्रातःकाल नित्य आप इरावती (रावी) नदी के तट जाकर स्नान ध्यान पूजापाठ किया करते थे ॥२७॥

प्रत्यूषेचनदीतीरे गृहकार्येषुकारणीम् ।
कन्ये पञ्चदशाब्दिन्यौ जलमाहर्तुमागते ॥२८॥

अर्थ—वि० सं० १५७६ माघ सुदी ७ के दिन प्रातःकाल दो हिन्दू वालिकायें जो पंद्रह २ वर्ष के लगभग होंगी वह अपने घर के लिये नदी पर जल लेने के लिए आईं ॥२८॥

तेच स्नात्वा घटौ भृत्वा प्रतस्थाते गृहं प्रति ।
तदानीमेव तत्राऽऽयाद् यावनी महती चमूः ॥२९॥

अर्थ—उन्होंने स्नान करके घड़े भरकर उठालिये घरको चल पड़ीं उसी समय कहीं से उधर मुस्लिम सेना आ निकली ॥२९॥

इमामुद्दीन सेनानी यस्या आसीन्महोद्धतः ।
सच कन्या द्वयं दृष्ट्वा वभाषे काममोहितः ॥३०॥

अर्थ—उस सेना का सेना पति इमामुद्दीन यवन था। उसने उन दोनों कन्याओं को दुर्भावना से देखा और कामान्ध होकर कहने लगा ॥३०॥

कस्य कन्ये युवां रम्येकच याथः ? विलोक्यताम् ।
आगम्यतां मया सार्धं सौख्यं स्वर्ग्यं च भुज्यताम् ॥३१॥

अर्थ—हे सुन्दरियों तुम किस की कन्या हो ? कहाँ जा रही हो ? इधर देखो तो सही। आओ हमारे संग स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करो ॥३१॥

तच्छ्रुत्वा ज्येष्ठया प्रोक्तं क्रुद्धया ज्ञात भावया ।
किं विजल्पसि रे दुष्ट ! हिन्दु कन्यापहारक ! ॥३२॥
सतीनां धर्मनाशाय त्वादृशाः पामारा नराः ।
प्रभवन्ति न कुत्रापि तासां याता स्वयं प्रभुः ॥३३॥

अर्थ—यह सुनते ही बड़ी लड़की ने उसके दुर्भाव को समझ कर डाटना आरम्भ किया। रे दुष्ट लुटेरे क्या बक रहा है तेरे सरीखे पामर नर सतियों के शरीर को छू नहीं सकते इसके रक्षक स्वयं साक्षात् जगदीश्वर हैं ॥३२-३३॥

नमाननीयः खलुकश्चिदेव धर्मात्परन्नैवहि किञ्चिदस्ति ।
न हिन्दु धर्मेण समश्च कश्चिद्धर्मो जगत्त्यामति भावुकश्च ॥३४॥

अर्थ—अपने हिन्दू धर्म के बराबर संसार में हम कुछ और नहीं समझती हैं इसलिए हम तुम्हारी कोई बात मानने को तैय्यार नहीं हैं ॥३४॥

इस्लाम धर्मे व्यभिचार धारोपदेश एवं कथितश्च दुष्टैः ।
क्षमा दया सत्त्य तरङ्ग धर्मो हिन्दू प्रभाचार्य वरैः प्रदिष्टः ॥३५॥

अर्थ—इसलाम धर्म में व्यभिचार अधिक है । हिन्दू धर्म में क्षमा दया सत्यादि गुण हैं जिसे हिन्दू आचार्यों ने वर्णन किया है ॥३५॥

भाग्यं मदीय मुदितं तदानीं यदा च विप्रस्य गृहेहिजन्म ।
संरक्षको मे भगवान् हिधर्मः श्रीचन्द्र देवश्च गृहेमदीये ॥३६॥

अर्थ—हमारा भाग्य तभी उदय हो चुका जब हम लोगों ने हिंदू कौम में ब्राह्मण के घर जन्म पाया । हमारी रक्षा करने वाले हमारे घर श्रीचन्द्र भगवान् गुरुदेव हैं ॥३६॥

तत्सन्निधौ दुष्ट तराश्च शुद्धा भवन्ति चोग्रात्तपसः प्रभावात् ।
दुष्टं च भावं प्रविहाय शीघ्रं कल्याण मार्गेण चलत्त्वमेव ॥३७॥

अर्थ—उनके सामने दुष्ट भाव सब भाग जाते हैं यह उनके उग्रतप का प्रभाव है तुम भी दुष्ट सुभाव को शीघ्र छोड़ कल्याण मार्ग से चलो ॥३७॥

धर्मेण युक्तं वचनन्न किञ्चित्तेशुश्रुवुर्धर्म विगर्हिताश्च ।
तयोः कुमार्य्योरधिक प्रभाव योर्नाशकाले शुभ वुद्धिनाशः ॥३८॥

अर्थ—यह धार्मीक बचन दुष्ट लोग नहीं सुना करते उनकी बुद्धि दुष्ट कर्म से नष्ट हो जाती है इसी प्रकार उन कुमारियों के बचन उस दुष्ट को न भाये ॥३८॥

यदि वाञ्छसि कल्याणं पलायस्व क्षणादितः ।
नो चेन्नाशं प्रयातासि सतीनां हरणं विषम् ॥३९॥

अर्थ—यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो शीघ्र यहाँ से दूर चले जाओ, नहीं तो तुम्हारा नाश अवश्यम्भावी है, सती की ओर हाथ बढ़ाना मृत्यु को छुना है ॥३९॥

इत्याकर्ण्य गिरं तस्याः दन्त न्निष्येषयनरुषा ।
अज्ञापयन्ति जां सेनां वन्दी कतुञ्च कन्यके ॥४०॥

अर्थ—ऐसे कन्या के कठोर शब्द सुनते ही यवन सेना पति ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि जाओ जल्दी इन्हें पकड़ कर मेरे पास लाओ ॥४०॥

परितः पतिता सेना कन्यके धर्तुं मञ्जसा ।
तद्दृष्ट्वा भीत भीतेते आक्रोशं चक्रतु र्भृशम् ॥४१॥

अर्थ—आज्ञा पाते ही नीच सिपाही कन्याओं पर टूट पड़े और वे बेचारी असहाय अबलाएँ ऊँचे स्वर से रोने लग पड़ीं ॥४१॥

एतत्कलकलं श्रुत्वा श्रीचन्द्रो भगवानपि ।
दिगम्बराणामादाय तत्र पञ्चशतीं ययौ ॥४२॥

अर्थ—इस करुणा क्रन्दन को सुन कर भगवान् श्रीचन्द्रजी भी ५०० पाँच सौ नागा उदासीन साधुओं को साथ लेकर (घटना स्थलपर) आ पहुँचे ॥४२॥

तेजस्विनं च तं दृष्ट्वा सगणं यवनाः समे ।
भीताश्च चकितास्तस्थुः उलूका इव भास्करम् ॥४३॥

अर्थ—उदासीन साधुओं के सहित भगवान् श्रीचन्द्र के दिव्य तेज को देख कर उनकी आँखे चौन्धिया गईं जैसे उल्लू भगवान् सूर्य को नहीं देख सकते, और भय के मारे लगे थर थर काँपने ॥४३॥

श्रीचन्द्र देवस्तं प्राह किञ्चिल्लोहित लोचनः ।
रेपामर कथंनीचं कर्मेदं कर्तुमिच्छसि ॥४४॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र बोले अरे निर्मर्याद पामरो तुम यह क्या करने आ रहे थे कन्याओं की दशा देख कर भगवान् की आँखो में करुणा के मारे कुछ कुछ लाली दौड़ गई ॥४४॥

इमे सत्यौ ब्राह्मणस्य कुलीनस्य च कन्यके ।
हर्तुमिच्छसि दौष्ट्येन मयि तिष्ठति रक्षके ॥४५॥

अर्थ—और कहने लगे अरे दुष्टो मेरे होते हुए इन सती ब्राह्मण कन्याओं को कौन स्पर्श कर सकता है ॥४५॥

अहो धाष्ट्र्य कुबुद्धीनां शलभानामिवाद्भुतम् ।
आत्म नाशं न जानन्ति कामान्धः क्नु पश्यति ॥४६॥

अर्थ—ओ हो कितनी तुम्हारी धृष्टता है अरे कामान्धों तुम अपना नाश नहीं देख रहे मैं अभी तुम्हें पतंगों के समान जलाये देता हूँ ॥४६॥

यदीच्छसि निजं श्रेयः कन्ययो रेतयो पदे: ।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याशु प्रसादय क्षमापयन् ॥४७॥
अन्यथा भस्मसात्कुर्यां ससेनं दुर्मदं खलम् ।
सतीनां रक्षकोऽस्म्येष श्रीचन्द्रो धार्मिकप्रियः ॥४८॥

अर्थ—जाओ यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो इन देवियों के चरणों में दण्डवत प्रणाम करो और इनसे माफी माँगो नहीं तो मैं अभी तुम्हें सेना सहित यमराज के यहाँ पहुँचाता हूँ तुम नहीं जानते कि मैं धर्म प्रिय श्रीचन्द्र हूँ ॥४७।४८॥

इत्युक्तो भीत भीतोऽसौ पाहिपाहीति तत्क्षणन् ।
कन्ययोर्न्यपतत्पादे क्षमस्वाऽम्वेति चारुदत् ॥४९॥
नाहमितः परं काञ्चिद्धरिष्यामि शपे पुनः ।
प्रणम्य चन्द्रदेवं च निवृत्तोऽसौ यथागतः ॥५०॥

अर्थ—भगवान् के वचन सुनते ही सेनापति भय भीत होकर पाहि पाहि करता हुआ कन्याओं के पाओं में जा गिरा और गिड़ गिड़ा कर रोने लगा माताओं क्षमाकरो मैं सौगन्ध खाता हूँ कि आगे को किसी भी हिन्दू कन्या को नहीं चुराऊंगा सौ सौ हाहा भर कर भगवान् को प्रणाम कर जिधर से आया था उधर ही वापिस भीगी बिल्ली सा लौट गया ॥४९।५०॥

श्रीचन्द्रो भगवांश्चापि सान्त्वयित्वा तु कन्यके ।
उवाचश्लक्ष्णयावाचा वत्से ! याथो गृहं सुखम् ॥५१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने कन्याओं को सान्त्वना दी और मधुर स्नेह भरी वाणी से कहने लगे। बेटियों घर जाओ, अब तुम्हें कोई डर नहीं रहा ॥५१॥

उदासीनसतः पञ्च ताभ्यां सार्धं च प्रैषयत् ।
यापयित्वा गृहं यावत्समागच्छन्त्विवतिप्रभुः ॥५२॥

अर्थ—भगवान् ने पाँच साधुओं को साथ कर दिया और कहा कि इन्हें घर पहुँचा कर जल्दी वापिस आओ ॥५२॥

एवं गच्छति कालेच चन्द्र देवो जगद्धितः ।
दिगन्तरं जिगमिषुः प्रतस्थे सगणस्ततः ॥५३॥

अर्थ—कुछ समय के अनन्तर भगवान् दूसरे हिन्दुओं का कल्याण करने के लिये वहाँ से मण्डली समेत चल पड़े ॥५३॥

रसर्षिवाण चन्द्रे श्री वैक्रमे फाल्गुणेऽसिते ।
एकादश्यां बटालायां नगर्यां समयात्स्वयम् ॥५४॥

अर्थ—वि० सं० १५७३ फाल्गुण कृष्णा एकादशी को बटाला नगरी में पहुँचे ॥५४॥

प्रति वर्ष बटालायां शिवरात्री महोत्सवे ।
जायते महती मेला जनानां देश वासिनाम् ॥५५॥

अर्थ—बटाला में प्रति वर्ष शिवरात्री का बड़ा भारी मेला भरा करता है दूर दूर से जनता आती है ॥५५॥

जनता प्रार्थितोदेवः प्रथयन् शिव कीर्तनम् ।
शिवरात्र्युत्सवस्यापिः रहस्यं सम बोधयत् ॥५६॥

अर्थ—जनता की प्रार्थना से भगवान् ने शिव कीर्तन के महत्व तथा शिवरात्रि के तत्त्व को समझाया ॥५६॥

गृहस्था बहवस्तत्र दीक्षिताः शुभदीक्षया ।
ततस्ते भोजनाद्यैश्च सोप चारैः सिषेविरे ॥५७॥

अर्थ—भक्तों के अत्यन्त आग्रह से उन्हें शुभ गुरु दीक्षा मंत्र दिया अनन्तर सेवकों ने साधुभोजन के साथ साथ बड़ा भण्डारा करवाया षोडस प्रकार से पूजन किया ॥५७॥

श्रीचन्द्रो भगवांश्चापि तत्र देवालये शुभे ।
भक्तानां हितसिध्यर्थं सत्कथामुप चक्रमे ॥५८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु भगवान् श्रीचन्द्र उस मन्दिर में भक्तों की श्रद्धा के धनन्य वशीभूत होकर प्रतिदिन प्रवचन करने लगे ॥५८॥

यातो बटाला नगरात्पाठान कोटं धर्मवित् ।
पठानकोटं धीरोऽसौ गुलेर नगरं गतः ॥५९॥

अर्थ—अचल वटाला से पठान कोट पहुँचे और पठान कोट से गुलेर नगर में गये ॥५९॥

ऋष्यृषि वाण चन्द्रश्री वैक्रमे चैत्र शुक्लके ।
नवरात्र द्वितीयायां ज्वाला देवीमतो कयत् ॥६०॥

अर्थ—वि० सं० १५७७ चैत्र शुक्ल द्वितीया (दूसरा नवरात्रा) को भगवान् ने ज्वाला देवी में आके दर्शन किया ॥६०॥

॥ भगवान् श्रीचन्द्र उवाच ॥

सज्जनाः ! लोभिनः पापाः कामिनः क्रोधितस्तथा ।
न ते वैमानुषा ज्ञेया मदोन्मत्ताः समत्सराः ॥६१॥

अर्थ—वहाँ जाकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने सारगर्भित भाषाण देते बोले कि हे सज्जनो लोभी, पापी, कामी, क्रोधी, मदोन्मत्त, और मत्सर करने वाले मनुष्य मनुष्य कहाने के अधिकारी नहीं हैं ॥६१॥

स्वार्थिनो दम्भिनः क्रूराः विश्वासघातितोऽपिच ।
नचते पुरुषाः क्लीवाः येचाः ये बिभ्यति शत्रुतः ॥६२॥

अर्थ—और स्वार्थी, दम्भी, क्रूर, विश्वासघाती, तथा शत्रु से डरने वाले नपुंसक इन सबकी संगति से बचना चाहिये ॥६२॥

सतां सङ्गेन सर्वेषां स्वच्छा भवति शेमुषी ।
सैव तामस सङ्गेन कलुषी भवति ध्रुवम् ॥६३॥

अर्थ—सत्सङ्ग करने से मनुष्यों की बुद्धि शुद्ध हो जाती है और कुसंग में पड़कर मलीन हो जाती है, यह मनुष्य जन्म बारम्बार नहीं मिलता, इस शुभ अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये ॥६३॥

इति श्रुत्वोपदेशेतु सर्वं तद् भक्त मण्डलम् ।
गुरु मन्त्रं ग्रहीत्वा च जग्राह चरणोदकम् ॥६४॥

अर्थ—भगवान् के सारगर्भित संक्षिप्त बचन सुनकर समस्त भक्त मण्डली ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से गुरु मंत्र दीक्षा ली और चरणोदक ग्रहण किया ॥६४॥

अद्यावधि च तत्स्थानमौदासीनं विराजते ।
मुद्राद्वयं राजकीयं प्रत्यहं यत्र निश्चितम् ॥६५॥

अर्थ—आज तक वह स्थान उदासीन महात्माओं के अधिकार में ही है जिसके लिये राजा का लगाया मंदिर की ओर से प्रति दिन दो रुपया रोज का बंधान मिलता है जो आज तक विद्यमान है ॥६५॥

ज्वाला मुखी नगर्याश्च कांगड़ा नगरमागतः ।
ततोपि वैद्य नाथस्य पवित्रे धाम्नि चागमत् ॥६६॥
वैद्यनाथस्य धाम्नश्च वशिष्ठाऽऽश्रममायथौ ।
संस्ना च विपाशायां त्रिलोकी नाथ मागतः ॥६७॥
तातो जाऊ हमीराख्य पुरं यातः शनैः शनैः
ततश्च भुवटा ग्रामा न्नदौण नगरं गतः ॥६८॥
ततः प्रागपुरं गत्वा गरौलियां गतः परम् ।
अचिन्त पूरणी नामा मन्दिरं तदनन्तरम् ॥६९॥
स्थाने स्थाने च मार्गेषु धर्मं समुपदिष्टवान् ।
महतां भ्रमणं पथ्यं सर्वेषां हित कारकम् ॥७०॥
अचिन्त पूरणी देव्याः श्रीचन्द्रो भगवान् पुनः ।
ननकाना समायातः यत्र तीर्थं महत्स्वकम् ॥७१॥

अर्थ—ज्वाला मुखी से भगवान् कांगड़ा आये कांगड़े से वैद्यनाथ धाम, वैद्यनाथ से वशिष्ठाश्रम, बिपासा में स्नान करके श्रीत्रलोकीनाथ, त्रिलोकनाथ से जाऊ, जाऊ से हमीर, हमीर से भुवटा गाँव, भुवटा गाँव से नदौण, नदौण से प्रागपुर, प्रागपुर से गरौलियां, गरौलियां से अचिन्त्य पूर्णां देवी के मन्दिर में आये। वहां से चल ६६ से ७१ तक मार्ग में जनता को धार्मिक उपदेश देते हुए श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने स्थान ननकाना साहब में आगये ॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमदुदासीनवर्य्य-परमहंसावतंस-ब्रह्मनिष्ठ-निखिल-शास्त्रनिष्णात-योगिराज-सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखंडिदेव गुरुचरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन बिरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महा काव्ये मुनिजन मानस हंसे लवपुरे सतीत्वधर्म रक्षा ज्वालामुखी, पर्वतीय भ्रमण प्रसंगवर्णनं सकल कलि कलमष नाशनी चतुर्दशकिरण समाप्तामधिगता ॥१४॥

॥ पञ्चदश किरण प्रारम्भः ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते शयनं विहाय नित्यक्रियाश्चाऽपि समाप्य भूयः ।
स्नात्वासमभ्यर्च्य निजेष्टदेव मायम्प चा सूनुर्विदधातिपाठम् ॥१॥

अर्थ—ब्रह्ममुहूर्त में निद्रा से उठ कर स्नानादि नित्य क्रियाओं से निवृत हो महाप्रभु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने इष्ट देवताओं की पूजा और पाठ किया करते थे पाठ करते समय आपके नेत्रों में जल भर आता था ॥१॥

ततः परस्तान्नववादकाले सिंहासनासीन उदार मुद्रः ।
समेत भक्ता नुपदिश्य धर्मं करोति धर्मस्य महोन्नतिं सः ॥२॥

अर्थ—अनन्तर नौबजे सिंहासन पर बैठ कर आये हुए भक्तों को उपदेश दिया करते थे, उपदेशानन्तर धार्मिक आयोजनाएँ बनाया करते थे ॥२॥

साधुश्च पृष्ठे विमलश्चछत्रं हस्ते गृहीत्वा विनियोजितश्च ।
पार्श्वद्वये चामरे नामकेद्वे साधुद्वयं तिष्ठति शोभनार्थम् ॥३॥

अर्थ—पीछे हाथ में छत्र लिये एक साधु, दोनों बगल में चमर लिये दो साधु चाँदी की छड़ी लिये दो उदासीन साधु आगे खड़े होते शोभा बढ़ाते थे ॥३॥

साधुद्वयं राजत यष्टिकाश्च हस्ते गृहीत्वा पुरतश्च तिष्ठति ।
स्थानीय साधुः प्रहितान्तरात्मा करोति नित्यज्य गुरु प्रणामम् ॥४॥

अर्थ—दो उदासीन साधु दोनों ओर हाथ में सोने चाँदी के डंडे वाले कारचोवी के काम के बने व्यञ्जना (पंखा) लेकर खड़े होते थे। स्थान के सब साधु आय आय गुरु पूजन के साथ २ प्रणाम नित्य करते थे ॥४॥

संवीज्यते चामर युग्मकेन च्छत्रेण चाङ्गीक्रियतेस्म नित्यम् ।
मध्यान्ह काले च सभां विहाय करोति सद्भिः सहभोजनानि ॥५॥

अर्थ—सदा छत्र समेत दो चामर भगवान् के ऊपर डुलाये जाते थे मध्यान्ह काल में भगवान् साधु मण्डली के साथ एक पंक्ति में भोजन किया करते थे ॥५॥

सहस्रशो भक्त जनास्तदानीं कुर्वन्तिनाना विध भोजनानि ।
तत्काल तत्रागत सर्वलोकः भुङ्क्ते यथेच्छं गतभेद भावम् ॥६॥

अर्थ—उस समय सहस्त्रों भक्त जन आ आकर भेदभाव से रहित गरीब अमीर सब एक से यथेच्छा पंक्ति में भोजन करते थे ॥६॥

विश्रम्य घण्टा द्वयमेव भूयः साहित्य चर्चां च करोति चारुम् ।
अध्याप्य सर्वाणि च दर्शनानि सन्तोष भाजस्य सतः विधत्ते ॥७॥

अर्थ—भोजनान्तर दो घण्टा आराम करके पुनः साहित्य चर्चा चला करती थी समस्त दर्शनों का पाठ पढ़ाकर विद्वान् साधुओं को सन्तुष्ट किया जाता था ॥७॥

सायंपुनः स्वासन संस्थ एव व्याख्यानि धर्मं सकला गमज्ञः ।
कथा समाप्तौच समेऽपि सन्तः तं दण्डवत् भक्त जनानमन्ति ॥८॥

अर्थ—सायं काल रोज की भाँति सिंहासन पर आसीन होकर धार्मिक प्रवचन चला करते थे, कथा समाप्त होने पर साधु तथा भक्त जन दण्डवत् प्रणाम किया करते थे ॥८॥

पाकालयस्यापि च सर्वं कार्यं दिगम्बरा एव समापयन्ति ।
सतांहि हस्ते सकलन्नवन्ति वसन्ति सर्वाणि रसायनापि ॥६॥

अर्थ—पाकशाला का सम्पूर्ण काम स्वयं उदासीन नागासाधु किया करते थे जिससे अन्न परम स्वादु लगा करता था पता नहीं उनके हाथ में कौन सी रसायन भरी रहती थी जिससे अटूट भण्डारा चला करता था ॥६॥

पूजावसाने च समेऽपिसन्तः कुर्वन्ति तेसात्विक भोजनानि ।
श्रीचन्द्रदेवस्तु सदैव सायं निपीय दुग्धं शयनं करोति ॥१०॥

अर्थ—सायं काल आरती के अनन्तर सब साधु आय २ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को प्रणाम करते थे तत् पश्चात् सब साधु सात्विक भोजन करते थे, परन्तु भगवान् श्रीचन्द्र तो केवल थोड़ा सा दूध पीकर ही शयन किया करते थे ॥१०॥

शय्यां गतस्यापि च तस्य सन्तः संवाहयन्तिस्म पदार विन्दम्।
तान्प्यसौशास्ति तदीय धर्ममिदं गतं दैनिक कृत्य मस्य ॥११॥

अर्थ—रात में भी साधु लोग चरण सेवा के मिससे आपको न छोड़ते थे वहीं धार्मिक चर्चा होने लगती थी इस प्रकार की आपकी दिन चर्चा थी ॥११॥

इत्थं व्यतीतानि दिनानिभूरि स्थानेस्थितस्यास्य चरन् क्रियाः स्वाः ।
पापाभि भूतञ्च विलोक्य धर्मं बाह्यप्रचाराय चचाल भूयः ॥१२॥

अर्थ—ननकाना में प्रति दिन ऐसा ही कार्य चालू रहा, बहुत समय बीत चुका बाहर से समाचार मिलने लगे कि हिन्दू धर्म पर बड़ी बड़ी विपत्तियें आ रही हैं यह सुन के श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने बाहर जाने का निश्चय किया ॥१२॥

वेदाङ्क वाणेन्दु मितैऽब्दकेच माघे सितै बाणमिते तिथौच ।
ससैव नीत्वा च सतः सहायान् ततस्तु सत्मङ्गलवान् प्रतस्थे ॥१३॥

अर्थ—वि० सं० १५६४ माघ शुक्ल पञ्चमी को सात उदासीन साधुओं को साथ लेकर भगवान ने प्रस्थान किया ॥१३॥

वेदाङ्क बाण चन्द्रे श्रीवैक्रमे फाल्गुने सिते ।
गुजरानवालानगरमाययौ पूर्णिमा दिने ॥१४॥

अथ—वि० सं० १५६५ फाल्गुन पूर्णिमा के दिन आप गुजरान वाला नगर में आये ॥१४॥

लवपुर्या उत्तरस्यां द्वाविंशत्कोश संमिते ।
चन्द्रभागा नदीतीरे निविष्टं नगरं तु तत् ॥१५॥

अर्थ—लाहौर से उत्तर की ओर चन्द्रभागा (चुनाव) के किनारे पर गुजरानवाला नगर बसा हुआ है जो लहौर से २२ कोस की दूरी पर है ॥१५॥

मण्डलेशस्य निर्वाण सन्तरैणस्य तत्रहि ।
उदासीन सतः शुद्धः समाधिश्च विराजते ॥१६॥

अर्थ—मण्डलेश्वर निर्वाण महात्मा श्री सन्तरैण उदासीन की वहाँ पवित्र समाधि बनी है ॥१६॥

हिन्दवो यवनाश्चैव पूजयन्ति समादरम् ।
प्राप्नुवन्ति फलं सद्यः सन्तरैण प्रभावतः ॥१७॥

अर्थ—क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी उस समाधि का भक्ति पूर्वक पूजन करते हैं, महात्मा श्री सन्त रैण जी के विचित्र प्रभाव से अपने अपने मनोरथ शीघ्र सफल करते हैं ॥१७॥

तत्र तस्यैव शिष्यश्च ब्रह्मदरियाव नामकः ।
मठा धीशः स एवाऽऽसीत् सर्वलक्षण संयुतः ॥१८॥

अर्थ—उन दिनों उक्त महात्मा के सुयोग्य शिष्य श्री ब्रह्म दरियाव* जी वहाँ के महन्त थे ॥१८॥

तत्समीपं ययौ श्रीमान् श्रीचन्द्रः शिष्य संयुतः ।
तेनापि स्वागता चारैः वासितः सादरं कृती ॥१९॥

अर्थ—भगवान् श्री चन्द्र जी उनके यहाँ ही पधारे और महन्त जी ने भगवान् का बड़ा स्वागत किया तथा वहाँ ही निवास स्थान दिया ॥१९॥

तत्रत्या जनता सर्वा समागत्य च तत्पुरः ।
यवनानां कदाचारान् सर्वान वर्णयद् द्रुतम् ॥२०॥

अर्थ—वहाँ के लोगों ने भगवान् के पास आकर मुसलमानों के सब कदाचारों का यथा तथ्य वर्णन किया ॥२०॥

तेषां दैन्यं च संश्रुत्य श्रीचन्द्रः खेदमावहत् ।
पर दुःखं सतां वज्रमात्म दुखं सुखोपमम् ॥२१॥

अर्थ—उनकी दीनता को देख भगवान् के कोमल हृदय पर भारी चोट पहुँची महापुरुष दूसरों के छोटे से दुःख को भी पहाड़ समझते हैं और अपने महान् दुःख को भी अतितुच्छ ॥२१॥

समाश्वास्य च तान् सर्वान् करुणाश्लक्ष्णयागिरा ।
अभयं दत्तवांस्तेभ्यः शङ्करः शङ्करिष्यति ॥२२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने उनकी बहुत ही करुणा भरी वाणी सुनकर उन्हें सान्त्वना दी और कहा भगवान् अच्छा करेंगे आप निर्भय हो जायें ॥२२॥

उत्पत्स्यते वीरबालः, ग्रामेऽत्रशुभ लक्षणः ।
यवनानां यमः साक्षाद्धर्मराजश्च धर्मिणाम् ॥२३॥

अर्थ—इस गाँव में एक वीर बालक पैदा होने वाला है जो इन यवनों की सरारतों का समन करने वाला होगा और धार्मिकों का संरक्षक होगा ॥२३॥

---

*ब्रह्म दरियाव जी उदासीन का जन्म वि० सं० १५२८ श्रावण सुदी ५ को राजपूताने पुष्कर जी के पास का था। वि० सं० १५५० गंगा दशहरा (ज्येष्ठ सुदी १०) की निर्वाण सन्तरैण जी के चेले गुजराँ वाले में बन गुरुजी की सेवा करते रहे, श्री सन्तरैण जी ने अन्त समय अपने स्थान गुजराँ वाले का महन्त वि० सं० १५५२ माघ सुदी ५ को बना दिया था ॥

पेशावरात्पञ्चनदं पालयिष्यतिस स्वयम् ।
रणजित् सिंहनाम्ना च ख्याति यास्यति भूतले ॥२४॥

अर्थ—पञ्जाब से पेशावर तक उसका राज्य होगा सब लोगों ने पूछा महाराज उसका नाम क्या होगा, श्री गुरु जी ने कहा संसार में वह रणजीत सिंह नाम से प्रसिद्धि पायेगा ॥२४॥

स्वधर्मो नैव हातव्यः धर्मात्सौख्यं प्रवर्तते ।
धर्मत्यागात्सर्वनाशः जायतेऽखिल जीविनाम् ॥२५॥

अर्थ—आप अपने हिन्दू धर्म को न छोड़ बैठें धर्म से सुख अवश्य होता है इसमें भी हमारी परीक्षा हो रही है धर्म का त्याग बहुत ही बुरा है ॥२५ ॥

इमां भविष्यवाणीञ्च श्रुत्वा सा भक्त मण्डली ।
कुतूहल युताऽपृच्छत् बद्धाञ्जलिपुटा मुदा ॥२६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की इस भविष्य वाणी को सुनकर उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ और हाथ जोड़ कर पूछने लगे ॥२६॥

भगवन् कस्य गेहेऽसौ कदा च भविता शिशुः ?
निवेद्यतामिदं सर्वं सर्वज्ञो हि भवान् मतः ॥२७॥

अर्थ—हे भगवन् कब और किसके घर में वह बालक पैदा होगा आप बताने की कृपा करें क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥२७॥

तच्छ्रुत्वा करुणामूर्तिः श्रीचन्द्रश्चन्द्र शीतलम् ।
उवाच वचनं भूयः तेषां विश्वासं हेतवे ॥२८॥

अर्थ—करुणा मूर्ति भगवान् श्रीचन्द्रजी जो चन्द्रमा के समान शीतल थे उन्होंने उनके विश्वास के लिए निम्न लिखित उत्तर दिया ॥२८॥

ऋषिरामनाग चन्द्र मिते श्री वैक्रमेऽब्दके ।
महासिंह गृहे बालो भविता शुभलक्षणः ॥२९॥
हिन्दूनां दुःख दग्धानां रक्षकोऽसौभविष्यति ।
अक्ष्णा काणोऽपि चैकेन प्रतापी नीति लोचनः ॥३०॥

अर्थ—वि॰ सं॰ १८३७ में महासिंह हिंदू क्षत्रिय के घर में वह वीर बालक जन्म लेगा और हिंदू जाति का उद्धार करेगा उस महान प्रतापी राजा के एक आँख होगी ॥२९-३०॥

दिव्याभिश्च कथाभिश्च दिनान्येवमयापयत् ।
महतां खलु कालो हि शून्यो नो याति कर्हिचित् ॥३१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का सदा दिव्य कथाओं में ही समय व्यतीत हुआ करता था आप कभी खाली नहीं बैठते थे ॥३१॥

बाणाङ्क बाण चन्द्रे श्री वैक्रमे मासि माधवे ।
तिथ्यां प्रति पदायाञ्च गुजरां वाला पुरादगात् ॥३२॥

अर्थ—वि० सं० १५९५ चैत्र की प्रतिपदा को गुजरांवाले से भगवान् ने आगे प्रस्थान किया ॥३२॥

कटाक्षराजतीर्थं स वैशाखी दिवसेऽभ्यगात् ।
मेला चमहती यत्र जायते तद्दिने नृणाम् ॥३३॥

अर्थ—बैसाखी के दिन भगवान् श्रीचन्द्रजी कटाक्ष राज पहुँचे उस दिन वहाँ बड़ा भारी मेला लगता है ॥३३॥

सर्वेषां सम्प्रदायानां स्नान यात्रा महोत्सवः ।
तस्मिन् दिने च सोत्साहं क्रियते मङ्गलालयः ॥३४॥

अर्थ—सब सम्प्रदायों की स्याहियें उस दिन बड़े ठाट बाट के साथ निकलती हैं ॥६४॥

सर्व देश जनस्तत्र याति स्नाति ददाति च ।
व्रतचर्चां धर्मचर्चां ज्ञान चर्चां करोति च ॥३५॥

अर्थ—सर्व देशों के मनुष्य वहाँ पहुँचते हैं स्नान करते हैं तथा दान देते हैं व्रत चर्चा धर्म चर्चा, और ज्ञान चर्चा करते हैं ॥३५॥

हिन्दूना मैक्य सम्पत्त्यै श्रीचन्द्रो व्याकरोद् वृषम् ।
सतां धर्मोपदेशाय जीवितं द्रविणं तनुः ॥३६॥

अर्थ—हिन्दू जाति को एकता का पाठ पढ़ाने के लिए भगवान् ने धर्म की विचित्र व्याख्या करते हुये बोले कि हे हिन्दुओं, सज्जनों का तन मन धन सदा हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए प्रस्तुति रहता हीहै ॥३६॥

कृत्यं कृत्वा निजं सर्वमस्तं गच्छति भास्वति ।
एकदा प्रार्थना चक्रे सादरं श्रोतृ मण्डली ॥३७॥

भगवन् ! सर्वभावानां भवान् वेत्ता न संशयः ।
महात्म्ययस्य तीर्थस्य श्रोतु कामा वयंभृशम् ॥३८॥

अर्थ—एक दिन समस्त भक्तमण्डली ने सायंकाल मिलकर श्री ११०८ जगद्गुरुश्रीचन्द्र भगवान् से प्रार्थना की हे महाराज आप सर्वज्ञ हैं ऐसी कोई भी बात नहीं जो आपसे छिपी हो अतः हम सब इस तीर्थ का महात्म्य सुनाने की कृपा चाहते हैं ॥३७-३८॥

। जगद्गुरु श्री चन्द्र उवाच ।

सज्जनाः ! सावधानेन मानसेन निशम्यताम् ।
कार्त्स्नेन कथयाम्येष तीर्थ राजस्य सत्कथाम् ॥३९॥

क्षोणीदेव्याः कटाक्षत्वात्कुण्डस्यैतस्यमानवैः ।
कटाक्षराज इत्येव चक्रे नाम सुविश्रुतम् ॥४०॥

अर्थ—श्रीचन्द्र भगवान् बोले सज्जनों आप सावधानता से सुनें मैं पवित्र तीर्थ का महात्म्य सुनाता हूँ यह कुण्ड पृथ्वी देवी के कटाक्ष (नेत्र) के ऐसा है अतः भक्त जनों ने इसका नाम "कटाक्षराज" विख्यात कर दिया है ॥३९-४०॥

विषपूर्णमिदं कुण्डं पूर्वमासीद्भय करम् ।
येन पीतंमृतः सद्यः हाला हलमयं जलम् ॥४१॥

अर्थ—पहले इस कुण्ड में बड़ा भयंकर विष मिला हुआ था जो इसका पानी पीता वह पीते ही मर जाता था ॥४१॥

हृतराज्या धार्तराष्ट्रैः पाण्डवा वन वासिनः ।
एकदाऽत्र समायाताः शुष्ककण्ठाः पिपासया ॥४२॥

अर्थ—पाडवों का राज्य कौरवों ने जब छीन लिया तब वे बन में भटकते भटकते प्यास के मारे हुये इस कुण्ड पर आये ॥४२॥

नातिदूरे वृक्ष षण्डे समासीनो युधिष्ठिरः ।
सहदेवं यवीयांसं जलमाहर्तुमादिशत् ॥४३॥

अर्थ—कुछ दूर वृक्षों की छाया में बैठ गये युधिष्ठिर जी ने छोटे भाई सहदेव को जल ले आने के लिये भेजा ॥४३॥

यावत्सकुण्डमागम्य पानीयं पातु मिच्छति ।
तावद्वृक्षस्थितो यक्षः तमपृच्छद् दयान्वितः ॥४४॥
तच्छलोका एव चोच्यन्ते श्रूयतां भक्तमण्डलि ।
नूतन श्लोकानिर्माणे केवलं पिष्टपेषणम् ॥४५॥

अर्थ—जब सहदेव कुण्ड के समीप जाय पानी पीने लगा तो वृक्षस्थ यक्षने प्रश्न किये अब वेही श्लोक भक्त मंडली को सुनाता हूँ नये बनाना केवल ग्रन्थ के पन्ने बढ़ाना है ॥४४-४५॥

कानु[1] वार्ता किमाश्चर्यं[2] कः पन्थाः[3] कश्चमोदते[4] ।
इति मे चतुरः प्रश्नान् पूरयित्वा जलं पिव ॥४६॥

अर्थ—यक्ष बोला—१वार्ता (व्यापार) क्या है २—आश्चर्य क्या है ३—मार्ग कौन सा है ४—और सुखी कौन है इन चार प्रश्नों का उत्तर देकर तब जल पीना ॥४६॥

भारतीं तस्य श्रुत्वापि प्रति वाक्यं विना जलम् ।
पीतवान् सहदेवोऽसौ दुःखी कोवा विचारवान् ॥४७॥

अर्थ—यक्ष के इस वाक्य को अनुसुना करके सहदेव पानी पीने लगा क्योंकि दुखिया विचार नहीं कर सकता ॥४७॥

तत्क्षणात्पतितो भूमौ पीत्वा विषमयं पयः ।
हित वाक्य तिरस्कारः कस्य कल्याण कारकः ॥४८॥

अर्थ—विषमय जल पीते ही पृथ्वी पर गिर गया हितैषी के वाक्य का तिरस्कार अच्छा नहीं होता ॥४८॥

विलम्वेनापिनायाते सहदेवे युधिष्ठिरः ।
नकुलं प्रेषयामासशङ्कितेनतु चेतसा ॥४९॥

अर्थ—सहदेव के बिलम्ब करने पर शंकित मन से धर्म पुत्र ने नकुल को भेजा ॥४९॥

सोऽपिगत्वा वचः श्रुत्वा जलमुत्तर मन्तरा ।
पीत्वा भूमितले तद्वद् अशयिष्ट विचेतनः ॥५०॥

अर्थ—उसने भी बिना उत्तर दिये जल पी लिया और वहीं पृथ्वी पर वह भी सो गया ॥५०॥

एवमर्जुन भीमौ च क्रमेणागत्य तां दशाम् ।
यातौ प्रवृत्तिं ज्येष्ठस्य नानयत्कोऽपि सन्निधौ ॥५१॥

अर्थ—फिर क्रमशः अर्जुन और भीमसेन आये उनकी भी यही हालत हुई परन्तु युधिष्ठिर जी तक यह बात किसी ने नहीं पहुँचाई ॥५१॥

भीमसेनेऽपि नाऽऽयाते भृशंशङ्कित मानसः ।
भूयो युधिष्ठिरस्तत्र समयात्समयात्स्वयम् ॥५२॥

अर्थ—जब भीम सेन भी वापस न लौटा तो अतिशीघ्र अतिव्यग्र मन से युधिष्ठिर जी स्वयं वहां पधारे ॥५३॥

दृष्ट्वा च चतुरो भ्रातॄन् सुप्तान् कुण्डतटे व्यसून् ।
निर्गतांश्चतुरः प्राणान् यातुमैच्छन्तु पञ्चमः ॥५३॥

अर्थ—आते ही चारो भाइयों को मरे पाया आपको प्राणांतक दुःख हुआ ॥५३॥

तथापि धैर्यमाधाय यक्षं पप्रच्छ किन्न्विदम् ।
यक्षः प्रोवाचमत्कर्म प्रश्न जिज्ञासुना कृतम् ॥५४॥

अर्थ—तथापि आपने धैर्य धारण कर यक्ष से पूछा यह क्या माजरा है यक्ष ने कहा—मेरे प्रश्नों का बिना उत्तर दिये इन्होंने पानी पिया है जिससे इन लोगों की यह दशा हो गई है ॥५४॥

कोऽसौ प्रश्नः ? स्फुटं ब्रूहि प्रतिवाक्यश्च लप्स्यते ।
अन्यथा भस्मशेषत्वं त्वां न याम्य चिराद् ध्रुवम् ॥५५॥

अर्थः—वे कौन से तुम्हारे प्रश्न हैं ? कहो, उचित उत्तर दिया जायगा। अन्यथा इस धृष्टता का फल तुम्हे भोगना पड़ेगा ॥५५॥

तानेव चतुरः प्रश्नान्यक्षश्चक्रे तदन्तिकम् ।
युधिष्ठिरः शान्ता कारो गम्भीरां वाचमाददे ॥५६॥

अर्थः—उन्हीं चारों प्रश्नों को यक्ष ने फिर दुहराया। और युधिष्ठर जी ने बड़े शान्त भाव से गम्भीरता पूर्वक उन प्रश्नों का उचित उत्तर दिया ॥५६॥

अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रि दिवेन्धनेन ।
मासर्तु दर्वी परिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता (१)॥५७॥

अर्थ—युधिष्ठर जी बोले—"इस महा मोह रूपी कराहे में काल सूर्य की आग बनाकर दिन रात की लकड़ी लगाकर मास रूपी करछी से हिला हिला कर प्राणियों को पकाता रहता है। यही वार्ता (व्यापार) हो रही है ॥५७॥

अहन्यहनि भूतानि, गच्छन्ति यम मन्दिरम् ।
शेषा जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् (२) ॥५८॥

अर्थ—प्रति दिन संसार के प्राणी आँखों के सामने यमपुरी में पहुँच रहे हैं। परन्तु बाकी के लोग जीने की तैयारी कर रहे हैं। इस से बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा ॥५८॥

श्रुतयो विभिन्ना स्मृतयोऽपिभिन्नाः नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनोयेन गतः स पन्थाः (३) ॥५९॥

अर्थ—चार वेद हैं, अनेक स्मृतियाँ है, और असंख्य मुनिजन हुये हैं। सब अपनी अपनी बोलते रहे हैं किसका मत ठीक माना जाय ? धर्म का तत्व अत्यन्त गम्भीर है। वही मार्ग ठीक है जिस मार्ग पर महापुरुष चलते आये हैं ॥५९॥

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति स्वगृहे ।
अनृणी चाप्रवासीच स वारिचर मोदते (४) ॥६०॥

अर्थ—हेवारिचर ! (यक्ष) जो किसी का देनदार नहीं है अपने घर में रहता है, विदेश में नहीं है। आठ पहर के बाद एक वार शाक बना कर खा लेता है वही सुखी है ॥६०॥

चतुर्णामपि पूर्वेषं प्रश्नानां युक्तमुत्तरम् ।
श्रुत्वा यक्षोऽतिहृष्टोऽभूद् वभासे च युधिष्ठिरम् ॥६१॥

अर्थ—अपने पूर्वोक्त चार प्रश्नों का उचित उत्तर सुनकर यक्ष बड़ा प्रसन्न हुआ और युधिष्ठिर से बोला ॥६१॥

तुष्टोऽस्मि तव वैदुष्ये धन्योऽसि भ्रातृ वत्सल ।
एकं हि जीवयिष्यामि यं वाञ्छसि वदस्फुटम् ॥६२॥

अर्थ—आपकी विद्वत्ता देख कर मुझे अतीव प्रसन्नता है। तदर्थ धन्यवाद, आप कहें किस एक को जीवित कर दूँ ॥६२॥

धर्मराजस्तु धर्मज्ञः माद्री पिराडाऽभिलाषुकः ।
ययाचे सहदेवं स करुणा सिक्त मानसः ॥६३॥

अर्थ—धर्मात्मा धर्मज्ञ धर्मपुत्र युधिष्ठिर जी ने माता माद्री का ध्यान रख कर सहदेव को माँगा ॥६३॥

तच्च श्रुत्वाऽवदद् यक्षः हर्ष निर्भर मानसः ।
अहो ! लोकोत्तरः कोऽपि महतां महिमा महान् ॥६४॥

अर्थ—युधिष्ठिर जी की इस निष्पक्ष पातिता को देखकर यक्ष समझ गया कि महा पुरुषों की महत्ता अलौकिक ही होती है ॥६४॥

इत्युक्त्वाऽजीवयत्सर्वान् भ्रातृ वात्सल्य तोषितः ।
निश्चकर्ष विषं कुण्डात्, जलं जातं सुधोपमम् ॥६५॥

अर्थ—यक्ष इतना गद्गद हुआ कि चारों भाइयों को जीवित कर दिया और कुण्ड से विष निकाल दिया तब से अमृत के समान जल हो गया ॥६५॥

जीवितै रुत्थितैः साकं सस्नावत्र युधिष्ठिरः ।
तस्मादिदं पुण्यतमं तीर्थं जातं जगत्त्रये ॥६६॥

अर्थ—उठकर चारों भाइयों सहित युधिष्ठिर जी ने उस कुण्ड में स्नान किया उसी दिन से यह एक पवित्र तीर्थ माना जाने लगा ॥६६॥

यस्मिन् दिनेच घटिता घटनेयं महाद्भुता ।
प्रतिवर्ष मियं मेला तद्दिने जायते शुभा ॥६७॥

अर्थ—यह युधिष्ठिर और यक्ष की वार्ता वैशाखी (मेष संक्रान्ति) को हुई थी तब से यहाँ का मेला प्रति वैशाखी को भरता है ॥६७॥

अत्र स्नानेन दानेन ध्यानेन तत्फलं भवेत् ।
यत्फलं सर्व तीर्थानां भ्रमणेन न जायते ॥६८॥

अर्थ—यहाँ स्नान करने से, दान देने से, साधु भोजन कराने से, हरि भजन और ध्यान करने से जो फल प्राप्त होता है वह सब तीर्थ करनेपर भी दुर्लभ है ॥६८॥

एतच्छ्रुत्वा वीतशङ्काः कृत कृत्या मुदान्विताः ।
भक्त्या युक्तेन चित्तेन नत्वा जग्मुर्निजालयम् ॥६९॥

अर्थ—भगवान् के श्री मुख से तीर्थ की महिमा सुनकर जनता अति प्रसन्न हुई भगवान् को सादर सभक्ति प्रणाम कर गुरु मन्त्र लै भेट पूजा धर अपने २ घर को सिधारी ॥६९॥

यत्र श्रीचन्द्रदेवेन कथेयं श्राविताऽद्भुता ।
ज्ञान गोदड़ि नाम्ना च तत्स्थानं ख्यातिमागतम् ॥७०॥

अर्थ—जिस स्थान पर भगवान् ने यह महात्म्य सुनाया था उस (स्थान) का नाम ज्ञान गोदड़ी पड़ गया ॥७०॥

उदासीन महात्मानः तत्राद्यापि वसन्ति वै ।
तदेव जायते तीर्थं यत्र सन्ताश्चिरं स्थिताः ॥७१॥

अर्थ—आज कल भी वह स्थान उदासीन महात्माओं के अधिकार में है जहाँ महात्मा चिर काल रहें वही तीर्थ बन जाता है ॥७१॥

तीर्थं राजात्कटाचाच्च श्रीचन्द्रो भगवान् पुनः ।
दादनखान् पुरंयातः ततो बरसरीं पुरीम् ॥७२॥

ततश्च शल्यकोटं स प्रतस्थे साधु संयुता ।
अटाव्याहि सतां लोके प्रशस्ताऽमल वारिवत् ॥७३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् तीर्थराज कटाक्ष से दादनखान आये और दादन खान से बरसरी, बरसरी से स्यालकोट पहुँचे। चलता जल और चलता साधु निर्मल रहते हैं ॥७३॥

बाणाङ्कबाण चन्द्रे श्री, वैक्रमे चैत्रिके कवौ ।
शुक्ले रामनवम्याश्च चन्द्रः शल्य पुरं गतः ॥१४॥

अर्थ—वि० सं० १५६५ चैत्र शुक्ला रामनवमी के दिन भगवान् स्यालकोट पहुँचे।७४।

बदरीतरु कुञ्जे च स्वास्नं सम कल्पयत् ।
तमेव परितः सर्वे सन्तस्तस्थुः स्वमासनम् ॥७५॥

अर्थ—बेरियों की झुर्मुट के तले आपने आसन लगाया। आपके आस पास महात्मा लोगों ने भी आसन जमाये ॥७५॥

पाण्डवानां मातुलेन शल्येन स्थापितं यतः ।
ततः शल्यपुरं तस्य जातं नाम महीतले ।७६॥

अर्थ—स्याल कोट को पाण्डवों के मामा शल्य ने बसाया था। अतः इस का नाम स्याल कोट पृथ्वीतल में प्रसिद्ध हो गया ॥७६॥

विक्रमादित्यपुत्रेण पुरमेतत्परिष्कृतम् ।
शालिवाहन नाम्ना च वीरेण धार्मिकेण च ॥७७॥

अर्थ—और विक्रमादित्य के सुपुत्र धर्मवीर शालिबाहन ने इसको पुनः परिष्कृत किया जो बड़ा वीर और धार्मिक हिन्दू क्षत्रिय राजा था ॥७७॥

तत्रत्या जनता सर्वा दर्शनार्थं समागता ।
धर्मोपदेशै चन्द्रश्च कृतार्थां कुरुतेस्मताम् ॥७८॥

अर्थ—वहाँ की समस्त जनता भगवान् के दर्शनार्थ आती थी और उपदेश सुन कृतार्थ होकर जाती थी ॥७८॥

जम्बूराज्यं ततो गत्वा धर्मं प्राचारयच्छुभम् ।
ततः श्री नगरं यातः सर्वैः साधु समन्वितः ॥७९॥

अर्थ—फिर भगवान् हिन्दू धर्म का प्रचार करते हुए जम्बू होते काश्मीर श्रीनगर में पहुँचे । आपके साथ उदासीन साधु मण्डली भी थी ॥७९॥

बाणाङ्कबाण चन्द्रे श्री, वैक्रमे विशदेशु चौ ।
द्वितीयायां च काव्ये च श्रीचन्द्रश्चन्द्र सुन्दरः ॥८०॥

चुनार शाखिनो ऽधस्ता दासनं पर्यकल्पयत् ।
मण्डलाकार रूपेण तस्थौ च साधु मण्डली ॥८१॥

अर्थ—वि० सं० १५६५ आषाढ़शुक्ल द्वितीया शुक्रवार को श्री ११०८ जगद्गुरु श्री श्रीचन्द्र भगवान् ने चुनार वृक्ष के नीचे आसन लगाया और धूने के आस पास सब उदासीन साधुओं ने भी आसन लगाये ॥८०।८१॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे कटाक्षराज, स्यालकोट जम्बू होते काश्मीर आगमन प्रसङ्ग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी पञ्चदश किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥१५॥

॥ षोडशी किरण प्रारम्भः ॥

काश्मीरेषु यदा श्रीमान् श्रीचन्द्रो गतवान् प्रभुः ।
धर्मस्तत्र भृशं क्रान्तः यावनैस्तैरुपद्रवैः ॥१॥

अर्थ—जब काश्मीर में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् गये तो वहाँ भी मुसलमानों के अमानुषिक उपद्रवों से हिन्दू जनता तंग आ गई थी ॥१॥

न सूत्रं न शिखा देहे हिन्दूनामवलोक्यते ।
दृश्यते न कस्यापि गृहे न तुलसीमठः ॥२॥

अर्थ—हिन्दुओं के शिर पर चोटी न रहने पाती थी और न कंधे में जनेऊ, किसी के गृह में तुलसी का गमला तक न रहने पाता था ॥२॥

वट पिप्पलविल्वादि, वृक्षा वृश्चयन्ते उद्धृतैः ।
सर्व धर्मं विनाश्याशु हिन्दवो यवनी कृताः ॥३॥

अर्थ—वट पीपल बिल्व आदि यज्ञीय वृक्षों को जड़ से उखड़वाया जाता था बलपूर्वक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाता था ॥३॥

एकादश गृहा एव हिन्दूनां परिशेषिताः ।
च्यावयित्वा चार्य धर्मा पातितामलेच्छताऽवरे ॥४॥

अर्थ—हर प्रकार से हिन्दुओं को पतित करते हुये यहाँ तक क्षीण कर दिया था कि हिन्दुओं के कुल ११ घर बाँकी रह गये थे शेष सब मुसलमान हो गये थे ॥४॥

श्रीचन्द्रस्य प्रभावेण साम्प्रतं साम्प्रतं समम् ।
हिन्दुराज्यं हिन्दवोऽपि लक्षशो निवसन्ति वै ॥५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के ही प्रभाव से आज काश्मीर में योग्य हिन्दू राज्य हो रहा है जहाँ लाखों की संख्या में हिन्दू बस रहे हैं ॥५॥

अथ सायन्तेन काले ब्राह्मणोऽथ समागतः ।
नम्रतया नमस्कृत्य मार्दवेन च भूषितः ॥६॥

अर्थ—एक दिन सायंकाल एक बड़े बिनीत ब्राह्मण देवता भगवान् के पास आये और सादर प्रणाम करके बैठ गये ॥६॥

चिन्तितं तंविलोक्याथ चित्तज्ञे चेष्टितैः स्थितैः ।
श्रीचन्द्रो भगवान् धीरं पप्रच्छ सान्त्व पूर्वकम् ॥७॥

अर्थ—भगवान् ने उसे वाह्य तथा आभ्यन्तरीय चेष्टाओं से चिन्तित जानकर सान्त्वना पूर्वक पूछा ॥७॥

कथं खिन्नोऽसि भो ! विप्र कारणं किञ्च वर्तते ? ।
अभयं ते ददाम्येष निरातङ्कं निवेदय ॥८॥

अर्थ—पण्डित जी ? क्या बात है आप बड़े चिन्तित हैं मैं तुम्हें अभय करता हूँ निर्भीक भाव से सब बृतान्त कहें ॥८॥

॥ ब्राह्मण उवाच ॥

विज्ञापयामि किं तुभ्यं ? भगवन् घोर चेष्टितम् ।
यवनानां राक्षसानां हिन्दूनामुपरी दृशम् ॥९॥

अर्थ—ब्राह्मण बोला—हे भगवन् ? आपको विदित ही होगा कि जो यहां पर मुसलमानों का घोर अत्याचार हिंदुओं पर हो रहा है ॥९॥

दुःखेनैतेन खिन्नोऽस्मि द्रष्टुं नैव क्षमोऽस्म्यहम् ।
चेतश्चेतयते नित्य मात्महत्यां वरीयसीम् ॥१०॥

अर्थ—हे नाथ मैं इस दुःख से परम दुःखी हूँ मैं इसको देख नहीं सकता मन में आता है कि इससे तो आत्महत्या कर लेना कहीं अच्छा है ॥१०॥

स्वजातिं स्वकुलं देशं विनश्यन्तं विलोकयन् ।
दुःख दग्धोऽपिजनो योऽसौ जीवत्यपि न जीवति ॥११॥

अर्थ—जो मनुष्य अपने देश अपनी जाति अपना धर्म तथा अपने कुल का नाश अपनी आँखों देखता है वह जीता हुआ भी मुर्दा है ॥११॥

॥ जगद्गुरु श्रीचन्द्र उवाच ॥

धैर्यमा धीयतां धीमन् धीरा धैर्यधना ध्रुवम् ।
धैर्येण धार्यते धर्मः धैर्य त्यागो हि धर्म हा ॥१२॥

अर्थ—उत्तर में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् धैर्य पूर्वक कहने लगे पंडित जी धैर्य

रखें धीरों की धीरता ही एक परम धन है, धैर्य से धर्म की रक्षा करो, धैर्य छोड़ना अच्छा नहीं है ॥१२॥

धीराणामेव जायन्ते दुःखानि च सुखानि च ।
तृणं नोन्मूल्यते वातैः नवा तत्र फलं भवेत् ॥१३॥

अर्थ—धीरों पर ही दुःख और सुख आया जाया करते हैं तृण को तो वायु भी नहीं उखाड़ता और न कोई उनके योग्य फल लगता है ॥१३॥

वात्याचक्रं सहन्तेते विपिने संहिता द्रुमाः ।
तेषां केन वार्यो नाशः ऐक्यं यत्र न विद्यते ॥१४॥

अर्थ—बन में वृक्षों के झुण्ड वात्या चक्र को मिलकर ही सह सकते हैं जो मेल के विना हैं (जिनमें एकता नहीं) उनका नाश अवश्यम्भावी है ॥१४॥

विधेयं वैमनस्यं नो स्मृत्वा यौधिष्ठरं वचः ।
परभागं लब्धवन्तः सौमनस्येन पाण्डवाः ॥१५॥

अर्थ—युधिष्ठिर के शब्दों को सदा याद रखो कभी वैमनस्य न करो सौमनस्य से ही पाण्डवों ने दुबारा राज्य प्राप्त किया था ॥१५॥

इत्येयं जायमानायां कथायामागताऽधवा ।
क्रोडेकृत्वा मृतं पुत्रं ब्राह्मणी रुदति भृशम् ॥१६॥

अर्थ—यह प्रसंग चल ही रहा था कि इतने में मृतक बालक को लिये रोती हुई एक विधवा ब्राह्मणी आई ॥१६॥

श्रीचन्द्रं कथयामास पुत्रं निक्षिप्य तत्पुरः ।
सञ्जीव्यतामयं पुत्रः हतास्मि हत भागिनी ॥१७॥

अर्थ—उसने अपने मरे बच्चे को भगवान् के आगे रख दिया और हाहाकार मचाकर कहने लगी हे नाथ! इस मेरे लाल को जीवित करदो मैं मरी, आप सर्व शक्तिमान् हैं साधू परमेश्वर के रेख में मेख मार सकते हैं, आप सामान्य साधु नहीं हैं कोई महापुरुष तेजस्वी दृष्टि आते हैं, हे नाथ मेरे यही एक बालक जीवना धार था मेरा सुहाग सिन्दूर लुट चुका है, मेरा लोक परलोक दोनो बिगड़ गया ॥१७॥

अवीरा कष्टमालोक्य करुणा वरुणालयः ।
श्रीचन्द्रः कथयामास भद्रे पुत्रो न ते मृतः ॥१८॥

अर्थ—अवीरा (अवीरा निस्पतिसुता) जिसके पति पुत्र न हो उसे अवीरा कहते हैं अवीरा का कष्ट देखकर करुण सागर भगवान् बोले देवी तुम्हारा पुत्र कहाँ मरा है देखो तो सही ॥१८॥

सुप्तोऽयं नय नामास्य समुत्तिष्ठति सम्प्रति ।
इत्युक्ता ब्राह्मणी सापि विश्वस्ता विश्वस्ताऽब्रवीत् ॥१६॥

अर्थ—यह बालक तो सो रहा है इस का नाम लेकर अवाज लगाओ झट उठ बैठेगा विश्वस्ता (विधवा) ब्राह्मणी ने विश्वस्तास्ता (विश्वास करके) उसे बुलाया ॥१६॥

पुत्र मेनयनानन्द गदाधर गदाधर ।
क गतोऽसि समायादि कोड़ं मे भूषयाधुना ॥२०॥

अर्थ—मेरे नेत्रों को आनन्द देने वाले बेटा गदाधर मेरे लाल गदाधर उठो बोलते क्यों नहीं तुम्हारी माँ तुम्हें बुला रही है आओ, उठो मेरी गोद में बैठो ॥२०॥

इत्युक्त्वा तञ्च दोर्भ्यां साश्रुनेत्रा समग्रहीत् ।
सोऽपि सुप्तोत्थित इव, मातुः कण्ठं समाश्लिषत् ॥२१॥

अर्थ—ऐसा कहकर रोती हुई माता मृतक बालक के शरीर से चिपट गई और बच्चा जैसे सोकर उठा हो गले में लिपट कर माता माता पुकारने लगा ॥२१॥

श्रीचन्द्र देवं नत्वा सा विधवा गृहमागता ।
पञ्चत्रिंशद्गृहा सन्ति तद्वंश्या अधुनापि च ॥२२॥

अर्थ—वह विधवा ब्राह्मणी भगवान् को भक्ति पूर्वक पाद प्रणाम करके सकुशल अपने घर आ गई आज उस बालक के वंशज ३५ घर काश्मीर में उपस्थित हैं ॥२२॥

वेद वेदाङ्ग वेत्तारः सर्वशास्त्रार्थ पारगाः ।
स्वधर्मे निरता नित्यं शान्ता दान्ता विरागिणः ॥२३॥

अर्थ—जिनमें अच्छे अच्छे योग्य पण्डित भक्त शान्त दान्त स्वधर्म पालक हैं वीतराग सद्गृहस्थ हैं ॥२३॥

एवं याति कियत्काले सायंकाले सदृष्टवान् ।
यवनैर्यवनी कर्तुं नीयमानं च ब्राह्मणम् ॥२४॥

अर्थ—इसी प्रकार एक दिन की और घटना है कि सायंकाल एक ब्राह्मण जिसका

नाम बंशीधर था उसे मुसलमान पकड़कर लिये जा रहे थे मुसलमान बनाने के लिये भगवान् ने उसे देखा ॥२४॥

श्रीचन्द्र स विधे गत्वा तेन सर्वं निवेदितम् ।
स्वस्मिन्यवनजं क्रूरं घोरमत्यन्त निर्दयम् ॥२५॥

अर्थ—वह भागकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के समीप पहुँचा तथा उसने अपना सारा हाल श्री गुरुजी को सुनाया, जो मुसलमानों ने उसके साथ किया था ॥२५॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् स्मृत्वा दत्तवान् भस्म पुण्ड्रकम् ।
येन सौ पूत हृदयः भर्त्सयामास ता रुषा ॥२६॥

अर्थ—भगवान् ने बंशीधर के कान में मन्त्र फूककर अपने धूने से भस्म (विभूत) दी, जिससे ब्राह्मण का भय जाता रहा तब निरभय हो गर्जके मुसलमानों को डाट डपट की ॥२६॥

श्रीचन्द्र चरणौ नत्वा त्वामहं शरणं गतः ।
पाहि मामिति साक्रन्दं प्रार्थयामास सादरम् ॥२७॥
जातदयो दयोदन्वान् श्रीचन्द्रो भगवानपि ।
दीक्षयित्वा च तंपार्श्वे स्वे समस्थापय त्सुधीः ॥२८॥

अर्थ—अनन्तर ब्राह्मण ने महाप्रभु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चरण पकड़कर प्रार्थना की। हे भगवन् ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा करें मेरी रक्षा करें दयानिधि भगवान् को दया आई उसको दीक्षित कर अपने पास ही रख लिया ॥२७-२८॥

म्लेच्छाः पलायिताः सर्वे कान्दिशीका भयातुराः ।
उलूकानां गतिः का स्यात् सञ्जाते भास्करोदये ॥२९॥

अर्थ—यह देख मुसलमान मारे भय के सब तितर बितर हो गये। सूर्य के उदय होने पर उल्लुओं का क्या हाल होता है ॥२९॥

तद्दृष्ट्वा पूर्वमाया तो ब्राह्मणो वाक्य मब्रवीत् ।
इतः परस्तात् भगवन् ! हिन्दूनां का गतिर्भवेत् ॥३०॥

अर्थ—यह घटना देखकर पहले आया हुआ विद्याकौल ब्राह्मण कहने लगा। हे भगवन् पता नहीं, आगे हिन्दुओं का क्या हाल होगा ॥३०॥

॥ जगद्गुरु श्रीचन्द्र उवाच ॥

विज्वरं स्थीयतां विद्वन् ! सर्वं भव्यं भविष्यति ।
हिन्दू राज्यं च काश्मीरे भविष्यति न संशयः ॥३१॥

अर्थ—उत्तर में भगवान् ने कहा, हे पण्डित जी ! कोई चिन्ता न करें समय की प्रतीक्षा करें, सब अच्छा ही होगा। सारे काश्मीर के अन्दर हिन्दुओं का ही राज्य होगा। यह आप सत्य समझें ॥३१॥

त्वरितं यवनः क्रूरः नाशमेष्यन्ति सान्वयः ।
हिन्दू नामाधिपत्यश्च सर्वत्रैव भविष्यति ॥३२॥

अर्थ—इन क्रूरों का समूल नाश होगा। एकमात्र काश्मीर में हिन्दुओं का आधिपत्य होगा ॥३२॥

संघी भूय समे यूयं मफगनशेरं द्रुतम् ।
यात ब्रूत चतं म्लेच्छं शासितारं सुदारुणम् ॥३३॥
श्रीचन्द्रो यदि भगवान्, यवनी क्रियते त्वया ।
विनाऽऽयासं वयं सर्वेम्लेच्छा भूतान संशयः ॥३४॥

अर्थ—मैं तुम्हें एक युक्ति बताता हूँ कि तुम लोग इकट्ठे होकर अफगन शेर के पास जाकर कहो कि यदि आप श्रीचन्द्र महात्मा को मुसलमान बना लें तो हम सब के सब अपने आप मुसलमान हो जायेंगे ॥३३-३४॥

इत्युक्तास्तत्र गत्वा ते तथैवोचुस्तदन्तिकम् ।
स सेनः स समायातः श्रीचन्द्राऽभ्यर्णमञ्जसा ॥३५॥

अर्थ—उन्होंने उसके पास जाकर अक्षरशः ज्यों का त्यों कह दिया। फिर अफगन शेर सेना सहित भगवान् के समीप पहुँच गया ॥३५॥

अग्नि कुण्डात्समुद्धृत्य श्रीचन्द्रश्चोन्मुखोल्मुकम् ।
सिद्धिं दर्शयितुं तत्र कुण्डकोणे निखातवान् ॥३६॥

अर्थ—भगवान् ने उसे प्रभावित करने के लिये उसके सामने अग्नि कुण्ड से ही एक जलती जलती चुनार की लकड़ी उठाकर जमीन में गाड़ दी ॥३६॥

तच्चतस्य प्रभावेण सफलः पादयोऽभवत् ।
तंदृष्ट्वा च समेलोका विस्मयं परमं ययुः ॥३७॥

अर्थ—भगवान् के विचित्र प्रभाव से वह चैला तुरन्त हरा भरा हो *चुनार का वृक्ष बन गया इस दृश्य को देखकर सब लोग आश्चर्य में डूब गये ॥३७॥

अफगन्शेर भीतोऽसौ पादयोन्यपतत्तदा ।
रत्नमामपकर्तारं मितिचोच्चै रुरोदच ॥३८॥

अर्थ—अफगन शेर डरकर भगवान् के चरणों में गिरा और गिड़गिड़ाकर माफी माँगने लगा भगवन् मुझ अपराधी पर क्षमा कीजिये आप सर्व समर्थ हैं कहीं मेरे अपराधों पर बद्दुआ देकर मेरा नाश न कर देना आप अपनी ओर देखके मेरे को माफ करना ॥३८॥

करुणाकण सिक्तान्तः करणः करुणा करः ।
श्रीचन्द्रन्तं समुत्थाप्यं सान्त्वयन्नब्रवीदिदम् ॥३९॥

अर्थ—भगवान् का हृदय दया से भर आया उसको उठाकर दिलासा देते हुये कहने लगे ॥३९॥

नातः परंत्वया योज्यं पारुष्यं हिन्दुषुक्वचित् ।
हिन्दुधर्मो न त्वादृक्षैः शक्यो ध्वंसयितुं ध्रुवम् ॥४०॥

अर्थ—देखो ? आज से आगे कभी किसी हिन्दू के धर्म में हस्ताक्षेप न करना तुम लोग इस सनातन (अव्यय-अविनाशी) हिन्दू धर्म का नाश नहीं कर सकते ॥४०॥

अयं सनातनो धर्मः स्रष्टेरादौ प्रजासृजा ।
सृष्टो नो नाशमायाति कल्प कोटि शतैरपि ॥४१॥

अर्थ—यह हिन्दू सनातन धर्म भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ से ही चलाया है इसका कभी भी नाश नहीं होगा सब परमात्मा की संतान हैं यदि परमात्मा को हिन्दुओं को मुसलमान बनाना होता तो हिन्दू के घर न पैदाकर तुम्हारे ही घर उत्पन्नकर देता, ऐसा तो कुदरत की ओर से होता नहीं ॥४१॥

---

*यह हरा तथा आधा जला चुनार का वृक्ष आज तक श्रीनगर में गुरु श्रीचन्द्र चुनार के नाम से प्रसिद्ध है सब उसकी पूजाकर वांछित फल की प्राप्ति करते हैं उदासीन साधु उसके अधिष्ठाता हैं वर्तमान में महन्त हरनाम दासजी उदासीन हैं ।

सनातस्य धर्मस्य रक्षकोऽपि सनातनः ।
द्वावेतौ सङ्गतौ यत्र कस्तं चालयितुं क्षमः ॥४२॥

अर्थ—इस हिन्दू सनातन मत की रक्षा भी सनातन भगवान् स्वयं करने आते हैं कहो इसे कोन हटा सकता है ॥४२॥

नात्याचारः परं कार्यः यदि जीवितुमिच्छसि ।
श्रीचन्द्रो भगवान् धीरः इत्युक्त्वा विसर्जतम् ॥४३॥

अर्थ—ऐसा समझ के जाओ आगे कभी भी हिन्दुओं को तंग न करना यदि जीना चाहते हो ऐसा कहकर उसे विदा कर दिया ॥४३॥

तथेस्युक्त्वा च नत्वा च स चमूर्गृहमागमत् ।
उत्फुल्लबदनः सर्वे हिन्दुवश्च ववन्दिरे ॥४४॥

अर्थ—जाते समय सेना संहित अफगन शेर ने भगवान् को दण्डवत् प्रणाम किया और मुरीद बन गया तब हिन्दुओं ने प्रसन्न होकर भगवान् की स्तुति की ॥४४॥

बाणाङ्कवाण चन्द्रे श्री वैक्रमेऽब्देनभस्यथ ।
पूर्णिमायामयाद्धीरोऽमरनाथं विलोकितुम् ॥४५॥

अर्थ—वि० सं० १५६५ श्रावण पूर्णिमा के दिन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने श्री अमरनाथजी का जाकर दर्शन किया ॥४५॥

ततः श्रीनगरं भूयः समायाच्छिष्य संयुतः ।
बारा मूला पुरं तस्मात्ततश्चोप दिशन् वृषम् ॥४६॥
मुजफ्फराबाद पुरं ततो हरिपुरं पुनः ।
हरिपुरात्समायातः हसनाब्दालनामकम् ॥४७॥
सोत्सवं मानिता तेन तत्रैव दीपमालिका ।
दीपमाला कथां सर्वां जनताभ्योऽभ्यधात्सुधीः ॥४८॥

अर्थ—यात्रा से लौटते हुए भगवान् फिर काश्मीर श्रीनगर में आये। श्रीनगर से बराह मुला (बारामूला), बारामूला से मुजफ्फराबाद, मुजफ्फराबाद से हरीपुर, हरीपुर से हसन अब्दाल, हसन अब्दाल में ही दीपमाला मनाई और दीपमाला का महत्व जनता को समझाया। मार्ग में हिन्दू धर्म का उपदेश निरन्तर पूर्व की भाँति चलता रहा ॥४६-४७-४८॥

वलि कन्दारिकादिभ्यो नत्वा धर्मोपदेशकम् ।
समयात् सिन्धु गम्भीरः सिन्धुनद्यास्तटे ततः ॥४६॥
वाणाङ्क वाण चन्द्रे श्री वैक्रमेमाघ मासि च ।
शुक्ल पक्षे च पञ्चम्यां वासन्त्यां परशुपुरम् ॥५०॥
शिष्य संवलितः श्रीमान् श्रीचन्द्रो भगवान् ययौ ।
तत्रत्यैः स्वागता चारः कृतः कृत्य विदां वरैः ॥५१॥

अर्थ—भगवान् वलीकन्दारिकादि को उपदेश दे कर सिन्धु नदी के किनारे आये वहाँ से वि० सं० १५६५ माघ शुक्ला बसन्त पञ्चमी को पेशावर आये। वहाँ भगवान् का बड़ी धूमधाम के साथ स्वागत किया गया था। (जलूस निकाला गया था) ॥४९-५०-५१॥

चन्द्रस्तत्रागत्याकार्षी द्धर्मोद्धारं धीमातेषः ।
पाठीनानां काठिन्येनोत्पाव्यान्याप्यं न्याय्या धारः ५२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने पेशावर में आकर धर्म का झण्डा गाड़ दिया पठानों के अत्याचारों को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया। विधुनमाला छन्द ॥५२॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्री मदुदासीनवर्य्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिलशास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डि देव गुरुचरणकमल चंचरीकायमान् मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे काश्मीर बालक जिआवन तथा हिन्दू धर्म रक्षा करन श्री अमरनाथ यात्रा वर्णनं नाम सकल कलि कल्मष नाशनी षोड़स किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥१६॥

॥ सप्तदशी किरण प्रारम्भः ॥

काश्मीरवच्च तत्रापि हिन्दवः पीडिता भृशम् ।
बहिःस्थं नगराच्चन्द्रमागत्योचु र्निजां रुजम् ॥१॥

अर्थ—काश्मीर में जो दशा हिन्दुओं की थी, वही यहाँ (पेशावर में) पर भी थी नगर के बाहर भगवान् का धूना प्रज्वलित हो रहा था उनके पास आय २ कर हिन्दू जनता अपना दुःख रोने लगी ॥१॥

तान् समाश्वासयामास, श्रीचन्द्रश्चन्द्र शीतलः ।
उपदेशै रमृताभैः भय शोकादि वर्जितः ॥२॥

अर्थ—भय शोकादि से सदा मुक्त भगवान् ने जो चन्द्रमा के समान सदा शीतल रहते थे पवित्र उपदेश देकर उन्हें ढाँढस बँधाया ॥२॥

एकदा कल्य कालेच सभार्योऽर्यः समाययौ ।
प्रणम्य चन्द्र चरणौ नाति दूरमुपा विशत् ॥३॥

अर्थ—एक दिन प्रातःकाल एक बनिया अपनी स्त्री समेत आया और प्रणाम कर भगवान् से थोड़ी दूरी पर बैठ गया ॥३॥

कौभवन्तौ ? किमायातौ ? किन्नामानौ ? किमिच्छथः ? ।
खिन्नापि वचलक्ष्येथे, स्फुटं सर्वं निवेद्यताम् ॥४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगदगुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले आप कौन होते हैं आप का नाम क्या है और क्या चाहते हैं कहिये इतने चिन्तित क्यों हैं ॥४॥

वैश्योऽहं केशवः श्रीमन् ! प्रसादान्त प्रसन्नधीः ।
नाम्ना रत्नप्रभा चेयं भार्या मम दयाऽऽकर ॥५॥

अर्थ—वैश्य बोला हे भगवन् मुझे केशव प्रसाद कहते हैं और मैं वैश्य जाती का हूँ और ये मेरी रत्न प्रभा नामक धर्म पत्नी है ॥५॥

वैतनिकश्च कर्माऽहं यवनानां नयालये ।
करोमि ते च मां नित्यं तुदन्ति परुषोक्तिभिः ॥६॥

अर्थ—मैं कचहरी में एक योग्य पदपर काम करता हूँ वहाँ मुझे मुसलमान आफिसर काजीमुल्ला लोग बहुत बुरा भला कहते रहते हैं ॥६॥

साकार वादिनोयूयं निराकार परा वयम् ।
निराकारो हि साकारा दुत्कृष्टः सर्व सम्मतः ॥७॥

अर्थ—झगड़ पड़ते हैं कि हिन्दू खुदा को साकार मानते हैं हम निराकार मानते हैं साकार से निराकार श्रेष्ठ होता है इसे सब स्वीकार करते हैं ॥७॥

त्यज्यतां हैन्दवोधर्म यावनो गृह्यतां शुभः ।
पदवीं वर्धयिष्यामः सर्वं सौख्यश्चलप्स्यते ॥८॥

अर्थ—इसलिये हिन्दूधर्म को छोड़ कर मुसलमान बन जाओ हम तुम्हारी पद वृद्धि (तरक्की) करवा देगें जिससे समस्त आयु आनन्द भोगना ॥८॥

अस्यै वज्र कठोराणि वचांस्येतानि भान्ति हि ।
मामादाय समायाता त्वदन्तिकमियं प्रभो ॥९॥

अर्थ—मेरी पत्नी इन वज्र के समान कठोर शब्दों को सुनकर बहुत बुरा मानती है अतः मुझको अपने साथ लेकर आप के श्री चरणों में पधारी है ॥९॥

अतो नौ खिद्यते चेतः किं विधेयं वदाधुना ।
सन्तो हि दुःख दग्धानां नव नीरद शीतलाः ॥१०॥

अर्थ—हमें इस रोज २ की छेड़खानी से बड़ा दुःख होता है अतः आप कोई सरल उपाय बतायें क्योंकि साधु महापुरुष सदा ही दुखियों का दुःख दूर करते फिरते हैं ॥१०॥

इत्युक्ता विरते तस्मिन् धीरो धीरं वचोऽब्रवीत् ।
वुद्धं निशम्यतां तत्त्वं समासेन वदाम्यहम् ॥११॥

अर्थ—भगवान् ने अत्यन्त धीरता पूर्वक कहा कि मैं तुम्हें संक्षेप में (थोड़े में) तत्त्व कहता हूँ इसे सदा समझे रहें ॥११॥

साकारो वा निराकारः नात्रकार्या विचारणा ।
सर्वदा सर्वथा पुंसा धेयो नारायणो हरिः ॥१२॥

अर्थ—भगवान् चाहे साकार हो चाहे निराकार इसका बिचार मत करो किन्तु मनुष्यों को चाहिये सदा प्रत्येक दशा में भगवान् की याद बनाये रखें ॥१२॥

प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तर जाय मानो बहुधाभिजायते ।
तस्य योनि परिपस्यन्ति धीरास्तस्मिन्हतस्युर्भुवनानि विश्वा ॥

अर्थ—प्रजापति ईश्वर गर्भके अन्दर आता है, अजन्मा होकर के भी कई प्रकार के जन्म धारण करता है उसके योनि स्वरूप को धीर पुरुष देखते हैं, जिस ईश्वर में समस्त जगत ठहरा हुआ है। इसी बातको गीता अ० १८ में भी कहा है।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्रा रूढ़ानि मायया ॥६१॥

अर्थ—इन प्रमाणों से सर्व शक्तिमान ईश्वर साकार होता हुआ भी सर्व जगह

व्यापक मानना ही हिन्दू धर्म में महत्वता है जैसे अग्नि तत्व सब वस्तुओं में विद्यमान है और प्रकट रूप से भी दिखाई देता है ऐसा ही ईश्वर साकार होने पर भी सर्व में विराजमान है।

सादरंकेशवंप्राह काजीवदतनित्यशः।
दयालुश्चखुदा एव नभवे त्तस्य हिन्दुवः॥१३॥

अर्थ—यह सुनकर केशवदास बोला कि काजियों ने बताया है कि हमारा खुदा ऐसा दयालु है जो मरते समय उसका नाम लेकर अपने गुनाहों की उससे माफी माँग लेता है उसको माफ कर देता है वैसा हिन्दुओं में नहीं, इसके विपरीत हिन्दू धर्म में॥१३॥

अवश्य मेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
न भुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि॥

वाली बात प्रसिद्ध है। यह सुनकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले आपने अपने हिन्दू धर्मशास्त्र अच्छी तरह पढ़े नहीं तभी तो काजियों के मिथ्या वाक्जाल में आकर अपना हिन्दू धर्म छोड़ना चाहिते हो देखो हमारे यहाँ तो अत्यन्त दुराचारी भी एक बार सच्चे मन से ईश्वर का नाम ले लेता है वह उसके सर्व पापों को क्षमाही नहीं वरन् उसको सद्गति भी दे देता है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्य भाक्।
साधु रेवस मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहिसः॥ गीता अ० ६ श्लोक ३०

इसलिये इस्लाम से हिन्दू धर्म बहुत बड़ा है हिन्दू धर्म ही ऐसा है जो कि सबको आत्मा के समान जानकर किसी को बुरा नहीं कहता। दया और परोपकार का जड़मूल हिन्दू धर्म ही है पर जिन्होंने अपने धर्मशास्त्रों का देखना तो क्या नाम तक भी नहीं सुना हो वह क्या हिन्दू धर्म की महत्वता को जान सकते हैं वही अन्धकूप के गरतघोर में पड़कर सर्वस्व नष्ट कर देते हैं संसार में हिन्दू धर्म की बराबरी करने वाला कोई भी धर्म नहीं है फिर हम तुमसे पूछते हैं इसलाम धर्म के चलाने वाले महंमद साहब को जन्म लिये कितने दिन हुये। और हिन्दू धर्म को चलते हुये कितने दिन हुये। महंमद साहब तो वि० सं० ६२७ में अरब देश में उत्पन्न हुये थे। इनसे प्रथम सब हिन्दू ही थे। इन सब हिसाबों से भी हिन्दू धर्म सबसे बड़ा अनादि है इसकी समता कोई भी नहीं कर सकता। मुसलमान भी अपने धर्म का चिन्ह चन्द्रमा मानते हैं वह चन्द्रमा भी हमारे हिन्दू धर्म के देवताओं में से है जिसको मुसलमान पूजते हैं। चन्द्रमा ही इनका मुख्यमान्य समझा गया है, वह किसीभी प्रकार हिन्दू धर्म की बराबरी नहीं कर सकते।

प्रश्न—काजी मुल्ला कहते हैं कि इस देश (भारतवर्ष) का नाम हिन्दुस्थान हम मुसलमानों का ही रखा हुआ है। हिन्दू शब्द का अर्थ चोर, डाकू काफ़िर बताते हैं।

उत्तर—अखिल ब्रह्माण्ड नायक ज्ञान धाम अधम उधारण शिवावतार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी बोले यह उन लोगों का कहना असंगत है मुसलमान मत प्रवर्तक महम्मद साहब जब संसार में आये भी न थे तब का प्रकरण हिन्दुस्थान नाम होने का तुमको सुनाते हैं जिससे स्वयं पता लग जायगा कि हिन्दुस्थान नाम मुसलमानों का रखा न होकर बहुत पुराना है। एक बार सिकन्दर ऐजम यहूदी के हिन्दुस्थान देखने की इच्छा प्रगट करने पर उसके वजीर सुतराज ने भी हिन्दुस्थान देखने की अभिलाषा जनाई। तब सिकन्दर वजीर को साथ लेकर सिन्धु नदी के मार्ग से पंजाब में हिन्दूकुश पहाड़ तक आया। यह हिन्दूकुश पर्वत महाप्रलय के पश्चात् सृष्टि से प्रथम हिन्दुओं के उत्पत्ति का स्थान माना जाता है। हिन्दूकुश नाम प्राचीन है। कारण जब ब्रह्मा ने सृष्टि रचने का काम अपने पुत्र स्वायंभू मनु को सौंपा था, तब तक उन्होंने थोड़ी सृष्टि रचना की थी (थोड़े का नाम कुछ है) कारण कुछ का अर्थ थोड़ा है। इस कुछ का अपभ्रंश कुश हो गया जो अभी तक हिन्दूकुश के नाम से पर्वत विख्यात है बहुत ऊँचा और दूर होने के कारण सिकन्दर ऐजम वहां न जाकर अपने देश लौट गया। यह उसके जीवन चरित्र से विदित है। अब तुम स्वयं विचार सकते हो कि इस देश का नाम हिन्दुस्थान मुसलमानों का रखा न होकर अति प्राचीन है। यदि किसी मुसलमान का रखा हुआ होता तो शिकन्दर* एजम अपने देश से चलने के प्रथम हिन्दुस्थान नाम (शब्द) का प्रयोग कैसे करता।

अनादि हिन्दु धर्मश्च नित्य ईश्वर तुल्यकः।
तस्मात्सर्वे समुत्पन्ना नवीन मत् न मानयः ॥१४॥

अर्थ—इसी प्रकार हिन्दू शब्द भी तथा हिन्दू धर्म अति प्राचीन है इसको किसी हिन्दू शास्त्रकारों ने कहीं पर भी खराब नहीं लिखा यदि किसी गैर हिन्दू (मुसलमान) ने हिन्दू शब्द को घृणास्पद कहा या लिख दिया तो वह हिन्दुओं को कदापि मान्य नहीं है। इन हिन्दू धर्म से ही सब नवीन धर्म निकले हैं। हिन्दू शास्त्रकारों ने हिन्दू शब्द को इतना उच्चासन दिया है कि जिसका वर्णन करना भी सहज नहीं हिन्दू शब्द का अर्थ ही हिन्सा से दूर रहने का है जगत् का कर्ता अखिल विश्व व्यापी सर्वदा एक रस अखण्ड विराजमान रहनेवाला ईश्वर परमात्मा देव हिन्दू ही है ॥१४॥

*सिकन्दर ऐजम यूनान का बादशाह था ई० सन् ३२७ से प्रथम हिन्दुस्थान पर चढ़ाई करने आया था यहाँ के हिन्दू राजाओं से पराङ्मुख हो अपने देश लौट गया। वहाँ इसकी मृत्यु ई० सन् से ३२३ वर्ष प्रथम में हुई थी मुहम्मद साहब से ९०० वर्ष प्रथम हुई थी)

स्वयंभूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो बुधः ।
विश्वामित्रो वशिष्ठश्च रामकृष्णाश्च नानकः ॥१५॥

अर्थ—उसके रचे हुये ब्रह्मा, विष्णु, शंकर नारद सनकादिक कपिल-विश्वामित्र वशिष्ठ भगवान् राम, कृष्ण, बुद्ध गुरु नानक आदि २ सर्व उदासीन महात्मा हिन्दू ही होकर हिन्दू धर्म की रक्षा करते रहे हैं। ऐसा-पवित्र और प्राचीन पुराणान्तरगत संस्कृत हिन्दू शब्द को जो बाहरवालों का रखा बताते हैं वह बड़ी भूल करते हैं ॥१५॥

हिन्दू पुः (हीनं दूषयतीति जाति विशेषः)।

हिन्दू धर्म प्रलुप्तारो जायते चक्र वर्तिनः ।
हीनं दूषयते वह्नि दुरित्युच्च्ययते प्रिये ॥ } मेरु तंत्र ३३ प्रकाश

(तंत्र ग्रन्थ पुराणों से प्राचीन है)

हिन्दू ही नारायणादि देवता (हेमन्त कवि कोष)

हिन्दु हिन्दुश्च पुंसिद्धो दुष्टानां हि विधर्शने ।
रूपशालिन दैत्यारो रागीयोगी जने पिच ॥ } अद्भुत रूप कोष

हिन्दू शब्द निहाप्रोक्तो अनार्या रीतुविदूषकः।
स द्धर्म पालको विद्वान् श्रौत धर्म परायणाः ॥ } राम कोष यह त्रेता में बना है

इसी प्रकार हिन्दू शब्द भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व अ० ५ श्लोक ३६ में भी आता है!

हिन्दू हिन्दू हिन्दवः (मेदनी कोष)

कालेन वलिना सङ्गो धर्मैक वलिते कलौ ।
यमनैर्वनिहा क्रान्ता हिन्दवो विन्ध्यमा विशन् ॥ } कालका पुराण

संस्कृत भषा के विद्वान हिन्दू शब्द का यह अर्थ करते हैं।

"हीनं दूषयति हिंसातो दूरं याति हतिवा हिन्दुः ।"
"हिन्सनात् दोहनात् उहनात् हिन्दुः ॥"

दूसरा अर्थ—'द' माने दस्त-दिमाग (मस्तिष्क) 'हि' हिम्मत (साहस) उद्योग (पुरुषार्थ)

यवनैः रवनैः क्रान्ता हिन्द वो विन्ध्यमाविशन् । } शारङ्ग
वलिना वेद मार्गोयं कलिना कवली कृता ॥ } धर पद्धति

अर्थ—भारतभूमि यवनों से भर गई हिन्दू विन्ध्याचल की ओर चले गये बलवान कलिकाल से यह प्राचीन हिन्दू सनातन धर्म वेद मार्गवाला एकदम दब गया ।

शनकैस्तु क्रिया लोपा दिमाः क्षत्रिय जातयः । } मनु
वृषलत्वं गतालोके ब्राह्मणा दर्शनेन च ॥४३॥ } स्मृति
पौण्डकाश्चौड्र द्रविड़ाः कम्बोज यवनाः शकाः । } अ०
पारदा पह्लवाश्चीनाः किराता दरदा खशाः ॥४४॥ } १०

अर्थ—पौण्ड्रक, औड्र द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश देश के रहने वाले क्षत्रिय यज्ञोपवीत आदि क्रियाओं के लोप होने से और उन देशों में विद्वान उदासीन साधु और ब्राह्मणों के न रहने से धीरे धीरे लोग शूद्र होते चले गये, ।

हीनस्तु तपसा पापान् दैहिकान् दुष्ट मान सान् । } पारजात
हेतिभिः शत्रु वर्गांश्च सच हिन्दु विधीयते ॥ } हरण-
} नाटक

अर्थ—मनमें होनेवाले काम क्रोधादि, देह में होने वाले ज्वर पीड़ादि पापात्मा शत्रुओं को तप से तथा दुष्टात्मा दूसरे सब प्रकार के शत्रुओं को जो मारता है वह सच्चा हिन्दू माना जाता है ।

आसिन्धु सिन्धु पर्य्यंता यस्य भारत भूमिका ।
पुण्य भू पितृ भूश्चैव सवै हिन्दुरिति स्मृतः ॥१५॥

अर्थ—हिन्दू वह है जो सिन्धुनदी से लेकर समस्त सागरों तक के विस्तृत देशोंको अपना भारतवर्ष समझ के सबको पक्का हिंदू धर्मी बनाये रखे । हिन्दू शब्द हिन्दुओं की पैतृक सम्पत्ति है इसका बनाये रखना प्रत्येक हिन्दू का मुख्य कर्तव्य है । हिन्दू शब्द जातीय एकता को स्पष्टतया प्रसार करता है, ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक (वर्ण) ब्रह्मचारी से लेकर हम चतुर्थाश्रमी उदासीन (आश्रम) तक हिन्दू शब्द के नाते एक हैं । हिन्दुओं के रहने वाली जगह का नाम हिन्दुस्थान; हिन्दुओं के पढ़नेवाली मातृभाषा का नाम हिन्दी है। जो हिन्दूमात्र को सब इलमों से प्रथम पढ़ना उचित है । फिर जो लोग आज हिन्दू शब्द से भयभीत हो रहे हैं उनको अपना भय निराधार प्रतीत हो यह विदित हो जायगा कि धार्मिक सहिष्णुता हिन्दुओं

का अपूर्व गुण है। यदि किसी को भय हो तो अपने पाप और खोटे कर्म तथा दुष्ट विचारों से जो अपने विमल आदर्शों के समझने में वाधित होते हैं। इन्हीं दोषों से बचाने को हमारी हिन्दू शिक्षा वेद शास्त्र पुराण इतिहासों की परम पवित्र लाभकारी मानी गई है जिसके ग्रहण करने से परमानन्द होकर सर्व कष्ट निवृत हो जाते हैं। यह उत्तम शिक्षा विचारशील सदाचारी उदासीन साधुओं के पास ही मिला करती है। इस थोड़े से कथन में आपके समझ में आ गया होगा कि हिन्दु श्रेष्ठ संस्कृत प्राचीन शब्द है जिसकी पवित्रता, उदारता, सभ्यता, और सत्यता की समता पर आज तक कोई नहीं पहुँच सका ऐसे पवित्र हिन्दू जाति के उत्पत्ति काल का सम्बत् भी सब से अधिक संख्या वाला है ॥१५॥

॥ सृष्टि काल का ज्ञान ॥

सम्वत्सरस्तु हिन्दूनामति प्राचीन एवच।

द्वात्रिन्सतकल्पसंसिद्धः चिरञ्जीवी महेश्वरः ॥१६॥

अर्थ—हिन्दुओं का काल निर्णय सम्वत् सर अति प्राचीन है, अर्थात् ३२ महाकल्प से सिद्ध चला आता है आगे भी नित्य परमात्मा की तरह यही स्थाई रहेगा ॥१६॥

नोट—हिन्दू धर्म शास्त्रानुसार नव गुर वर का एक पल ६० पल की एक घड़ी, ६० घड़ी का एक रात्रि दिन, अथवा ६० सेकन्ड का एक मिनट, ६० मिनट का एक घण्टा, २४ घन्टे का एक रात्रि दिन। मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ६४-६५ में १८ पल की एक काष्ठा ३० काष्ठा की एक कला, ३० कला का एक मूहूर्त, ३० मूहूर्त का एक दिन रात्रि होता है।

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुष दैविके।
रात्रिः स्वप्ताय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ } मनुस्मृति अ० १—श्लोक ६५

अर्थ—मनुष्य और देवताओं के दिन रात्रि का विभाग सूर्य करते हैं इस में रात्रिजीवों के सोने के लिये दिन व्यवहार करने के लिये।

७ दिन का सप्ताह (हफ्ता) इनही सात दिनों को वार या वासर कहते हैं (१) वार हिन्दी शब्द है वासर संस्कृत शब्द है सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन के सूर्योदय तक के काल को वासर (वार*) कहते हैं इन वारों के नाम इस प्रकार हैं इतवार, सोमवार, मङ्गल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र और शनी। दो सप्ताह का एक पक्ष अर्थात् १५ दिन का एक पक्ष। दो पक्ष का एक मास अर्थात ३० दिन का १ महीना।

---

*तिथियों के साथ या सामान्य व्यवहार में वार लिखने की रीति दूसरी शताब्दी से प्रचलित हुई (गाथा सप्तसती)। वारों की गणना का सिलसिला पहले हिन्दुओं से चला उन्हीं की देखा देखी अन्य धर्मा वलम्बियों ने भी गणना की है सूर्य से ही संसार में प्रकाश होता है इस वास्ते सप्ताह की गणना प्रथम सूर्य से ही हिन्दुओं ने करी है दिनों के नाम भी देवतों के नाम पर हिन्दुओं ने ही रखे हैं।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ।
कर्म चेष्टा स्वहः कृष्णः शुक्लः स्वानाय शर्वरी ॥ मनु० अ० १ श्लो० ६६

मनुष्यों के एक महीना का पित्रों का एक दिन रात्रि होता है। कृष्णपक्ष दिन शुक्ल पक्ष उनकी रात्रि है। २ महीने की १ ऋतु, ३ ऋतु का १ अयन, २ अयन का १ वर्ष, अर्थात् १२ महीने का १ वर्ष।

देवेरात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयो पुनः ।
अहस्तत्रोद गयनं रात्रिः स्याद् दक्षिणायनम् ॥६७॥ मनु० अ० १

अर्थ—६ महीना सूर्य उत्तरायण रहता है यह देवताओं का दिन तथा ६ महीना सूर्य दक्षिणायण यह देवताओं की रात्रि कही जाती है इसके विपरीत दैत्य लोग दक्षिणायण को दिन और उत्तरायण को रात्रि मानते हैं ॥६७॥

अग्नि ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्म विदोजनाः ॥२४॥
धूमो रात्रि स्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्र मसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥ गीता अ० ८

ज्योतिर्मय अग्नि देवता अभिमानी दिन का तथा शुक्ल पक्ष दोनों का अभिमानी देवता है तथा उत्तरायण ६ महीनों का भी अभिमानी देवता है अर्थात् अग्नि के प्रकाश सदृष्य शुक्ल पक्ष जो ६ महीने हैं वह उत्तरायण सूर्य के हैं इस काल में ज्ञानी का छूटा शरीर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। धूमाभिमानी कृष्ण पक्ष का जो ६ महीना दक्षिणायन है इसमें देहत्याग के योगी चन्द्रमास यज्ञादि फल स्वर्ग भोग के पुनः शरीर धारण करता है। ऋतु सूर्य की चाल से वदला करती है। परन्तु कुछ हिन्दू विद्वान् पृथ्वी की गति से मानते हैं दक्षिणायन सूर्य होने पर शीत बढ़ जाता है जिसमें ओस, पाला, कोहिरा, बर्फ पड़ती है तथा उत्तरायण में उष्णता अधिक बढ़ जाती है। गर्मी में लू (गर्म पवन) आंधी आदि आया करती है।

कन्या के आठ अंश जो अंग्रेजी ता० २३ या२४ सितम्बर को पड़ता है, और मीन के आठ अंश जो अंग्रेजी ता० २० या २१ मार्च को पड़ता है इन दोनों समय पर सूर्य की किरणें दोनों ध्रुव पर पहुँच जाती हैं इस लिये सम्पूर्ण धरा तल पर रात्रि दिन उपरोक्त तिथि पर बराबर होता है। मीन के आठ अंश के बाद उत्तरीय पासे सूर्य के आने पर दिन बढ़ जाता है तथा कन्या के ८ अंश के पश्चात् सूर्य दक्षिण पासे होजाने से रात्रि बढ़ जाती है। इन दोनों के मध्य वर्षा काल होता है। प्राचीन काल में कुछ समय तक ५ सौर वर्षों के चलने का प्रचार था

उन पाचों के नाम इस प्रकार हैं। सम्वत्सर, इदावत्सर, परिवत्सर, अनुवत्सर और इदवत्सर। ३६५ दिन का वर्ष सम्वत्सर, ३५४ दिन का साल परिवत्सर, ३८४ दिन का वर्ष इदावत्सर, ३५४ दिन का अनुवत्सर, और ३८३ दिन का वर्ष इदवत्सर होता है। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन होता है इसी हिसाब से मनुष्यों के ३६० वर्ष का देवताओं का एक वर्ष होता है इस प्रकार देवताओं के ४००० वर्ष का सत्युग और ४०० वर्ष की संध्या तथा ४०० वर्ष का सन्ध्यांश होता है अर्थात् युग का अन्त बताया है।

विष्णु पुराण में भी इसी प्रकार से हिसाब सृष्टि काल का आता है त्रेता में ३००० वर्ष तथा ३०० बर्ष की सन्ध्या और ३०० वर्ष का सन्ध्यांश होता है। द्वापर में २००० वर्ष तथा २०० वर्ष की सन्ध्या और २०० वर्ष का सन्ध्यांश होता है। कलियुग में १००० वर्ष तथा १०० वर्ष की सन्ध्या और १०० वर्ष का सन्ध्यांश होता है। देव वर्ष के प्रमाण से १२००० वर्ष में चार युग बीतते हैं। इतने कालको देवताओं का एक युग कहा जाता है। इन बारह हजार देववर्षों को ३६० गुणा करने से मनुष्य वर्ष—४३२०००० (तेतालीस लाख बीस हजार) होते हैं। इसका हिसाब यों लगाया जाता है सतयुग १७ लाख २८ हज़ार वर्ष का, त्रेता १२ लाख ९६ हजार वर्षका, द्वापर ८ लाख ६४ हजार वर्षका, और कलियुग ४३२००० चार लाख बतीस हजार वर्ष का होता है, कुल चार युग के मनुष्य वर्ष ४३२०००० वर्ष के होते हैं। इसको एक चतुर्युगी कहते हैं, इस प्रकार ७१ चतुर्युगी एक मनवन्तर राज्य करता है, पुराणानुसार १-मन्वन्तर में १४ इन्द्र राज्य करते हैं, देखो हिन्दी शब्द सागर कोष पृष्ठ २८०। इस प्रकार जब १४ मन्वन्तर राज्य कर चुकते हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है, ब्रह्मा के दिनको कल्प भी कहते हैं इतनी ही बड़ी रात्रि भी होती है, इस प्रकार ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष की होती है ततपश्चात् महा प्रलय होती है। **अथर्ववेद में मन्त्र आता है "शतंतेयुतंहायेनान् द्वेयुगे त्रीणि चत्वारिकृएमः"** ८-१-२२, सौ में दस हजार गुणा अधिक करके उनपर ४-३-२० वार रखकर जोड़ने से ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष की संख्या मानी है। सिद्धांत शिरोमणी ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ भी यही संख्या मानता है। मनुस्मृति अ० १ श्लोक ६४ से ७९ तक यही संख्या का प्रकरण आता है। महाभारत शान्ति पर्व मोक्ष धर्म अ० २३१ में भी यही संख्या आती है। किन्तु कई शास्त्रकार तथा वेद भी १५ संधियों के २५९२०००० दो करोड़ उनसठ लाख बीस हजार वर्ष और इनमें बढ़ाके कुल जोड़ ४३२०००००० चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का लगाते हैं। हमारी समझ में तो ४ अरब २९ करोड़ ४० लाख ८० हजार वर्ष वाला हिसाब ठीक आता है। इसका हिसाब भी यों लगाया जा सकता है, एक चतुर्युगी की संख्या ४३ लाख २० हजार होती है इस हिसाब से १ मन्वन्तर अर्थात् ७१ चतुर्युगी की संख्या ३० करोड़ ६७ लाख २० हजार हुई, इस हिसाब से १४ मन्वन्तरों की संख्या ४ अरब २९ करोड़ ४० लाख

८० हजार वर्ष की होती है यह ब्रह्मा का एक दिन कहाता है। वर्तमान सृष्टि को उत्पन्न हुए आज वि० सं० २००३ तक एक अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५३ हजार ४८ वर्ष हुए बाकी प्रलय होने में २ अरब ३३ करोड़ ३२ लाख २६ हजार नौ सौ बावन (२३३३२२६९५२) वर्ष हैं। इसका हिसाब यों लगाया जाता है वर्तमान सृष्टि उत्पन्न होने से आज तक छै मन्वन्तर बीत चुके हैं *सातवां वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। भागवत स्कंध ८ अ० १ में लिखा है कि छः मन्वन्तर बीत चुके हैं। सातवें मन्वन्तर का २८ वां कलियुग बीत रहा है, यह बात संकल्प के पढ़ने सुनने वाले जानते हैं कारण संकल्प में यह पढ़ा जाता है। "**वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतिमें कलियुगे कलौ प्रथम चर्णे जम्बूद्वीपे भारतखण्डे**" वर्तमान कलियुग का ५०४८ वर्ष वि०सं० २००३ बीत रहा है।

१४ मन्वन्तर के नाम भागवत स्कंध ८ अ० १३ में लिखे हैं (१) स्वायंभूमनु (२) स्वारोचिष (३) उत्तम (४) तामस (५) रैवत (६) चाक्षुष (७) वैवस्वत जो वर्तमान में बीत रहा है, (८) सावर्णि (९) दक्ष सावर्णि (१०) ब्रह्मसावर्णि (११) धर्म सावर्णि (१२) रुद्रसावर्णि (१३) देव सावर्णि (१४) इन्द्रसावर्णि सब कल्पों में यही मनु अदल बदल के हुवा करते हैं। पुराणमतानुसार मनुष्य के ३११०४०००००००००० वर्षों में ब्रह्मा बदल जाता है। तथा मनुष्य के ९३३१२०००००००००००००० वर्ष व्यतीत होने पर विष्णु बदल जाते हैं। और मनुष्यों के २२३९४८८०००००००००००००००० वर्ष की शिव की आयु होती है इस प्रकार असंख्य मन्वन्तर आते जाते रहते हैं। अनेकबार जगतकी उत्पत्ति और प्रलय हुवा करती है।

इस लिये हिन्दू सृष्टि काल का अन्त कोई नहीं पासकता। यह समस्त प्रसंग विस्तार से हिन्दूधर्म व्यवस्था पुस्तक में खोल के लिखा गया है।

अधिकारा विचारस्तु विधेयो विदुषा सदा।
लोकेऽपि हि यथा शक्ति नियुज्यन्ते कृतौ जनाः ॥१७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कहते हैं हे केशवप्रसाद इसलिये बुद्धिमान को चाहिये कि अधिकार और योग्यता का विचार करे संसार में भी जितने काम हो रहे हैं, उनमें अधिकार देखा जाता है ॥१७॥

---

*सिद्धान्त शिरोमणि पुस्तक

बौद्धों के मत में भी सृष्टि अनादि मानी है, वाइबिल में सृष्टि की उत्पत्ति ईसा से ६००० वर्ष पूर्व मानी है। पारसियों के धर्म ग्रन्थ में संसार का समस्त समय १२००० दिव्य वर्षों का पाया जाता है बैबिलोनियन, स्कैंडेनिवियन, चीनी, खताई, चाल्डियन, आदि आदि ने भी सृष्टि प्रारम्भ के हिसाब लगाने का प्रयत्न किया है। किन्तु हिन्दू ज्योतिष ग्रन्थों के मुकाबिले हिसाब और प्राचीनता की तुलना में सब पीछे ही पड़ते गये इस से हिन्दुओं की प्राचीनता सब कौमों से प्रथम की है।

यावन्नजायते पुंसां समदृष्टिश्चराचरे ।
साकारोपासना तावद्विधेया नियतोन्द्रियैः ॥१८॥

अर्थ—जबतक मनुष्य को चराचर में समदृष्टि न हो जाय तबतक नियम पूर्वक साकार उपासना करनी चाहिये ॥१८॥

सर्व भाव मयीं दृष्टि विना यस्तु निराकृतौ ।
निरतो नियतं ज्ञेयः सहि प्रच्छन्न नास्तिकः ॥१९॥

अर्थ—सर्वत्र आत्मभावना हुये विनाही जो निराकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता । उसे तो प्रच्छन्न नास्तिक ही समझना चाहिये ॥१९॥

ब्रह्म निष्ठां बिना व्यर्थमालस्योपहताः खला ।
मूर्ति पूजां न कुर्वन्ति ते निराकार वादिनः ॥२०॥

अर्थ—आज के निराकार वादियों की तो विलक्षण ही दशा है । ब्रह्मनिष्ठ का नाम भी नहीं जानतें । आलस्य के कारण मूर्तिपूजा से जी चुराते हैं ॥२०॥

इतिहासः पुराणश्च वेदोपनिषदः स्मृतिः ।
मूर्तिपूजां गदन्ति मे को वा नो मन्यते जडः ॥२१॥

अर्थ—इतिहास, पुराण, वेद, उपनिषदें, ओर स्मृतियें सभी मूर्ति पूजा सिद्ध कर रहे हैं । फिर भी कई हठी लोग अपना हठ (दुराग्रह) नहीं छोड़ते ॥२१॥

कश्चिद्वाचा न मन्येत मनस्तस्यापि मन्यते ।
क्रियया च करोत्येव मूर्ति पूजां स नित्य शः ॥२२॥

अर्थ—कोई वाणी से भले ही न कहे कि मैं मूर्ति पूजक हूँ । परन्तु कर्म से सब मूर्ति पूजक हैं । यह सोलह आनें उनका मन गवाही देता है ॥२२॥

ध्वजं के चिन्नमस्यन्ति प्रतिमाम परे जनाः ।
केचिच्चन्द्रञ्च सूर्यश्च वन्हिमन्येऽप्युपासते ॥२३॥

अर्थ—कई लोग झण्डे के आगे सिर झुकाते हैं । कई महापुरुषों की फोट्ट को घर में टांगे रहते हैं । कई एक चाँद सूर्य और अग्नि की ही उपासना करते हैं ॥२३॥

मनसा कर्मणा कृत्वा वाचैव योन मन्यते ।
तं विहाय जगत्यां कः शठो वा धृष्ट एव वा ॥२४॥

अर्थ—जोमन और कर्म से करता हुआ भी वाणी से नहीं मानता उसे आप चाहे कुछ भी समझें ॥२४॥

निरा कारस्य बुध्यर्थं साकारो पासना मता ।
न ज्ञायते निराकारः साकारोपासनां विना ॥२५॥

अर्थ—वास्तविक सिद्धान्त तो यह है कि निराकार के जानने के लिये ही साकार उपासना विधान है। बिना साकार के निराकार तक पहुँचना सर्वथा असम्भव है ॥२५॥

पूर्वा भूमि मतीत्यैव पर भूमिं जनोब्रजेत् ।
नारोढुंच्चमते कश्चित् शूर्पपक्षो हिमालयम् ॥२६॥

अर्थ—एक भूमि को पार कर ही दूसरी भूमि पर पहुँचा जाता है। दुनियां तो आज छाज (सूप) के पाँख लगाकर हिमालय की शैर करना चाहती है ॥२६॥

यावन्नजायते नृणां विदेहा मुक्तिरुत्तमा ।
तावन्नुनमुपासीरन् साकारं प्रतिमादिषु ॥२७॥

अर्थ—जब तक मनुष्यों की विदेह मुक्ति नहीं होती तब तक उचित है कि मनुष्य अवश्यमे व साकार मूर्ति की पूजा किया करे ॥२७॥

स्वधर्मो नोपरित्यज्यः प्राणे हारेऽपि सङ्कटे ।
सदोषतं वदेत् कश्चित् धर्म एव सनातनः ॥२८॥

अर्थ—अपने प्राणों पर भी क्यों न आ पड़े। परन्तु अपना हिन्दू धर्म न छोड़े। चाहे संसार वाले इसमें कोई दोष निकालें। परन्तु सबसे आदि निर्दोष यही एक हिन्दुओं का सनातन मत है ॥२८॥

इयन्तु शिक्षाखलु हिन्दु धर्मे नकापि सत्यं प्रवदामि वाक्यम् ।
न देश मात्रेखलुकोऽपि धर्मस्सम्वर्तते सत्य मिदंत्रि सत्यम्॥२९॥

अर्थ—सब के हित की शिक्षा हिन्दू धर्म में है यह मैं सत्य कहता हूँ यह तीन काल में सत्य है ऐसा उदारोपदेश और कहीं नहीं है ॥२९॥

गुरु प्रयुक्ते विमलोपदेशे संपार्थयामास च केशवाख्यः ।
मन्त्रोपदेशे न पवित्रयन्तु सनातनोऽयं व्यवहार काण्डः ॥३०॥

अर्थ—इस प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का सदोपदेश सुनकर केशवप्रसाद

के आत्मा में स्वतः ही ऐसा वल का संचार हो आया जिसके सबब से काजियों के सम्पूर्ण प्रकार का भय निवृत हो गया और बोला हे भगवन् ! आपकी कृपा से अब मेरे मन में कोई शंका या भय नहीं रह गया। और अपने धर्म में इतनी दृढ़ता आ गई कि चाहे हमारे प्राण भी चले जाँय परन्तु अपना हिन्दू धर्म न जाने दूँगा एक काजी क्या चाहे समस्त काजी लग जांयें तो भी मेरा हिन्दूधर्म नहीं ले सकते। शरीर प्राण ले लें तो भले ही ले लें क्योंकि शरीर व प्राण से धर्मका मूल्य बहुत अधिक होता है ॥३०॥

निशम्य वाक्यं विमलन्तदीयं सदम्पतीभ्यामुपदेश देवः।
प्रकाशितस्तेन महात्मनाच पदन्घ्रिप्रचालन भूति रेव ॥३१॥
सपत्नीकः केशवश्च शिष्यो भूत्वा महात्मनः।
प्रसन्नो गृहमागत्य सानन्दां गति माश्रयत् ॥३२॥

अर्थ—ऐसा कहता हुआ हाथ जोड़कर बोला हे भगवन् ! एक प्रार्थना है परन्तु कहते हुये भय लगता है किन्तु बिना कहे भी नहीं रहा जाता वह यह है कि कृपा करके अपना गुरु मन्त्र देकर चरण सेवक बना लीजिये जिससे मेरे समस्त पाप नाश हो जावें और चित्तको शान्ति मिले भगवान् श्रीचन्द्र जी महाराज अधम उधारण भक्त प्रतिपालक गरीब निवाज महाप्रभु गुरुओं के गुरु लोक हितकारी उसकी यह प्रार्थना सुन और सच्चा प्रेम देख अपना चरण धुवाय चरणामृत पिलाय गुरु मन्त्र सुनाय दोनों को सेवक बनाया पश्चात् वह दोनों विभूति का तिलक ले महराज का शीत प्रसाद खाय अपने गृह जाते भये ॥३१-३२॥

एकदा केशवं काजी प्रोवाच वाचमुल्बणाम्।
गृह्यतां यावनो धर्मः प्रविहाय सनातनम् ॥३३॥

अर्थ—एकबार दुबारा फिर काजी ने केशवप्रसाद से धृष्टता करते कहा कि तुम हिन्दू धर्म को छोड़कर हमारे धर्म की शरण में आओ ॥३३॥

केशवः केशवाऽऽसक्तः क्रोधेन निष्ठुराक्षरम्।
ऊचे वचो निजं धर्मं न त्यजामि मृतोऽपि सन् ॥३४॥

अर्थ—केशवप्रसाद जी को इस अनुचित धृष्टता पर क्रोध हो आया और कड़ककर बोला हम हिन्दू हैं मरने पर भी अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे ॥३४॥

तच्छ्रुत्वा कुपितः काजी केशवं शववत्खलः।
प्रवेष्टुं प्रेरयामास, ज्वाला जालाश्रितां चिताम् ॥३५॥

अर्थ—यह खरा उत्तर सुनकर काजी के क्रोध का पारा चढ़ आया निर्जीव को भाँति उसे उठाकर आग में डलवा दिया ॥३५॥

यद्यहं धर्म निष्ठोऽस्मि यदि श्रेष्ठः सनातनः ।
तज्जायतां पावकोऽयं चन्द्र चन्दन शीतलः ॥३६॥

अर्थ—केशवप्रसाद ने निर्भयता से कहा कि जो मेरा धर्म सत्य है मेरी धर्म में पूरी निष्ठा है तो यह अग्निदेव चन्द्रमा और चन्दन के समान शीतल होजाय ॥३६॥

इत्या भाष्य प्रसन्नास्य केशवः केशवं स्मरन् ।
विवेश तां चितां प्राज्ञः लताकुञ्जमिवादरात् ॥३७॥

अर्थ—ऐसा कहते हुए केशवप्रसाद जी प्रसन्न बदन से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का कीर्तन करने लगे वह आग फूलों की शय्यासी बन गई ॥३७॥

यावत्कालं केशवश्च ज्वाला मध्ये प्रपीडितः ।
जगद्गुरुश्च धूमाग्नौ जल से कञ्चकार ह ॥३८॥

अर्थ—जब तक केशवप्रसाद अग्नि में रहा था तब तक श्रीचन्द्र गुरुदेव अपने सेवक वेलीराम के हाथ से जल ले २ के अग्नि में छोड़ते रहे थे ॥३८॥

तेन कर्म विपाकेन किञ्चिदग्निं करोति नो ।
फलञ्च तपसश्चैव कलौ न गर्हितं महत् ॥३९॥

अर्थ—उसी जलके प्रताप से अग्निदेव ठण्डा होकर केशवप्रसाद को न दग्ध कर सका, कलि में भी तपस्या का प्रभाव प्रत्यक्ष है, छिपा नहीं है ॥३९॥

जल प्रसेककालेतु वेली रामस्तु सेवकः ।
गुरुं पप्रच्छ भोयोगिन् धूनाग्नौ सेचनं कथम् ॥४०॥

अर्थ—श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को अग्नि में व्यर्थ जल डालते देख वेलीराम सेवक ने हाथ जोड़कर पूछा हे गुरुदेव आप अग्नि (धूने) में घृत छोड़ने की जगह जल क्यों छोड़ते हैं ॥४०॥

अग्नौ च पातितशिष्यस्तद्रक्षार्थं तुसेचनम् ।
उत्तरं सददौधीमान् वेलीरामस्तुतोषह ॥४१॥

अर्थ—श्रीगुरुदेव ने कहा कि मेरा सेवक केशवप्रसाद दुष्टों के हाथ से अग्नि में जलाने वास्ते छोड़ा गया था उसीको बचाने वास्ते यह जल छोड़ते रहे हैं ॥४१॥

केशवस्य गृहं गत्वा कथेयं दृश्य तान्त्वया ।
हिन्दु धर्म प्ररक्षार्थं जन्म लोके प्रसिद्धिमत् ॥४२॥

अर्थ—अग्नि से निकल कर जब केशव प्रशाद अपने घर चला गया तब हमने जल छोड़ना बन्द कर दिया हिन्दू धर्म की रक्षा वास्ते हमारा जन्म लेना जगत में प्रसिद्ध है ॥४२॥

नोट—प्यारे पाठकों ऐसी ही एक घटना महाराज के अग्नि से बचाने की और भी मिलती है, सन्देह सागर में लिखा है कि जब चन्दू ने गुरु अर्जुन देव पंजवीं पातशाही से द्वेष कर लाहौर में बुलाया था और अपनी कन्या की शादी गुरु अर्जुन देव के लड़के हरिगोबिन्द जी के साथ करना चाहता था परन्तु गुरु अर्जुन देव के साफ इनकार कर देने से रुष्ट हो तपा तेल के कढ़ाह में गुरु अर्जुन देव को बैठा के जबरदस्ती अत्याचार का पूर्ण परिचय दिया था तप्त तेल के कढ़ाह में बैठे हुये अर्जुन देव जी अपने रक्षक भक्त प्रतिपालक जगद् उद्धारक सद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का नाम स्वांस स्वांस में स्मरण करते रहे इधर भगवान् श्रीचन्द्रजी को भी भक्त के वेदना करुण क्रन्दन ने अपने तरफ ध्यान आकर्षित किया उसी समय भगवान् श्रीचन्द्रजी ने कमलिये से जल ले ले अपने चरणों पर डालने लगे वह जल चरणों में गिर के वहीं भस्म होता चला गया नीचे पृथ्वी पर एक बून्द भी न गिरा यह लीला सवा पहर तक होती रही उधर अर्जुन देव जी के नीचे तीव्र से तीव्र अग्नि जलाई गयी पर अर्जुन देव जी का एक रोम तक भी दग्धन हुआ तब सब लजाय के बैठ गये, इधर भगवान् श्रीचन्द्र जी ने जल डालना बन्द कर दिया कमलिये के हाथ जोड़ प्रार्थना पूर्वक पूँछने पर भगवान् ने कहा हमारे भक्त अर्जुन देव को शत्रुओं ने दग्ध करना चाहा था पर वह हमारा स्मरण करता रहा इस लिये यह जल उसके दग्ध होने से बचाने में काम आता था जिससे भक्त को सेंक न लगा और वह बच गया (सन्देह सागर पृष्ट ४७ से ४६ तक में यह प्रसंग विस्तार से लिखा है)

तादनीं च निजस्थाने श्रीचन्द्रः सर्व वित्प्रभुः ।
जलं जुहाव वन्हौस येना सौ शीतलोऽभवत् ॥४३॥

अर्थ—उसी समय सर्वज्ञ भगवान् ने अपने पास पड़ी आग में पानी गिरा दिया था। जिस से अग्नि देव शीतल होगये थे ॥४३॥

नाडिका द्वयपर्यन्तं केशवः के यथा स्थितः ।
धार्मिकाणाञ्च भक्तानां सतीनां को विदूषकः ॥४४॥

अर्थ—केशव प्रसाद २ घण्टे तक आग में ऐसा बैठा रहा जैसे जल में बैठा करते हैं। धार्मिक, भक्त तथा सतियों का कोई बाल वांका भी नहीं कर सकता ॥४४॥

दृष्ट्वेदमद्भुतं कर्म यवनाश्चकिताः स्थिताः ।
क्षमा पयित्वा स्वं दोषं काजी केशवमत्यजत् ॥४५॥

अर्थ—मुसलमान लोग इस अद्भुत घटना को देखकर चकित रह गये। काजी ने केशव प्रसाद से अपने अपराध की क्षमा माँगी। और उसे सादर आग से निकाल दिया ॥४५॥

ववन्दे चन्द्र चरणौ सपत्नी कश्च केशवः ।
तदा सर्व जनै र्ज्ञातं यतो धर्म स्ततो जयः ॥४६॥

अर्थ—पत्नी सहित भगवान् के पास जाकर केशव प्रसाद ने दण्डवत् प्रणाम किया। सब को पूर्ण निश्चय हो गया कि जहाँ धर्म है वहाँ विजय है ॥४६॥

एवं विधैश्चरित्रैश्च तस्थौ कश्चिदनेहसम् ।
स्थापयित्वा तत्रधर्मं चक्रे यात्रां ततः परम् ॥४७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् पेशावर में कुछ काल रह के अपने हिन्दुओं के हृदय में वीरता के भाव भर कर भय और कायरपना निकाल दिया जो अभी तक अन्य प्रांतों की अपेक्षा सीमा प्रान्त के हिन्दू अपनी आन शान धन, माल प्राण बचाने में बहादुर देखे जाते हैं। पेशावर में जिस जगह महाराज बैठे थे वह गुरू श्रीचन्द्र जी की धर्मशाला के नाम से प्रसिद्ध है पांच जोति महाराज के नाम की नित्य अखण्ड जगती रहती हैं भगवान् श्रीचन्द्र जी महाराज की दिव्य दर्शनी मन मोहक मूर्ति स्थापित है जिसकी पूजा प्रतिष्ठा करके हजारों नर नारी आज भी मन वांछित फल प्राप्त कर रहे हैं। यह स्थान उदासीन भेष का सदैव से चला आ रहा है इसका मालिक उदासीन भेष है ॥४७॥

रसाङ्कवाण चन्द्रे श्रीवैक्रमे चैत्रिके सिते ।
जलाला बाद मायातः द्वितीया यां दया निधिः ॥४८॥

अर्थ—वि० सं० १५६६ चैत शुक्ल द्वितीया को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जलालाबाद होते काबुल आये ॥४८॥

ततः कम्बोज मागत्य धर्म व्याख्यान तत्परे ।
यवनाश्चक्रिरे तस्मिन् लोष्ठ वर्षं सुदारुणम् ॥४६॥

अर्थ—काबुल में आकर भगवान् ने हिन्दू धर्म का व्याख्यान आरम्भ कर दिया और व्याख्यान में यवन लोगों ने भगवान् पर ईंट और पत्थरों की वर्षा की ॥४६॥

तत्क्षणं तत्प्रभावेण तेऽन्धाजाताः समेखलाः ।
मोचितास्ते समागत्य सम्राजा प्रणतेन च ॥५०॥

अर्थ—भगवान् के प्रभाव से वे तत्क्षण अन्धे हो गये मुसलमान बादशाह ने स्वयं वहाँ आकर भगवान् श्रीचन्द्र महाराज जी से क्षमा माँगी और अपने आदमियों का अपराध क्षमा करवाया ॥५०॥

म्लेच्छाधीशेन चन्द्राय ग्राम एक उपाहृतः ।
यत्र श्रीचन्द्र देवेन धर्मशाला विनिर्मिता ॥५१॥

अर्थ—मुसलमान सम्राट् ने एक गाँव भगवान् को भेंट किया वहाँ भगवान् ने एक धर्मशाला बनवाई जो आजतक गुरु श्रीचन्द्र धर्मशाला के नाम से प्रसिद्ध है और वहांपर भगवान् चीचन्द्र महाराज की धूनी मृगछाला टोपी और १ खाट अभीतक वर्तमान है इससे प्रथम महाराज की तृणकुटी और छप्पर था ॥५१॥

यत्राऽद्यापि महात्मान उदासीना वसन्ति हि ।
लक्षमुद्रा मितश्चायः प्रति वर्षं प्रजायते ॥५२॥

अर्थ—आज भी वहाँ उदासीन महात्मा रहते हैं और उनको उस गाँव की प्रतिवर्ष एक लाख रुपया आमदनी है ॥५२॥

मास द्वयं च कम्वोजे न्यवात्सीच्छिष्य संयुतः ।
दृढं धर्मञ्च संस्थाप्य यात्रां चक्रे ततः परम् ॥५३॥
बुतवामियापुरं पूर्वं शिवभलाङ्ग पुरं परम् ।
हैवकं नगरं गत्वा तास कुरगान मागतः ॥५४॥
मजारसरीफ पुरे मकचा नगरं ततः ।
करकी वन्दरं गत्वा वलक बुखारां ययौ ॥५५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अधमोद्धारक, हिन्दूधर्म रक्षक, उदासीनाचार्य काबुल में दो महीने रहे हिन्दू धर्म की नीव पक्की को वहाँ से चलकर बुतवामिया पुर, बुतवामियापुर से शिवभलाङ्गपुर, शिवभलाङ्गपुर से हैवकनगर, हैवकनगर से तासकुरगान, तासकुरगान से, मजारसरीफ, मजारसरीफ से अकचानगर, अकचानगर से करकीबन्दर करकीबन्दर से बलक बुखारा आये ॥५३-५४-५५॥

यस्य वाह्लीक नामैव पुराणेषु सुविश्रुतम् ।
तत्रत्येन च सम्राजा सिध्या विस्मित चेतसा ॥५६॥
श्रीचन्द्रदेव नाम्नैव धर्मशाला च कारिता ।
ततोऽग्रेव्यचलद्देवः शिष्य संघ समन्वितः ॥५७॥
कुर्वन्धर्मोपदेशाश्च समर कन्दा भिधापुरीम् ।
प्रातिष्ठत प्रतिष्ठावान् गजिनी तदनन्तरम् ॥५८॥
रसाङ्क वाण चन्द्रे श्री वैक्रमेऽब्दे शुचौ शिते ।
दशम्यां भार्गवे चन्द्रः गान्धार देशमागतः ॥५९॥

अर्थ—पुराणों में इसका नाम बाह्लीक है यहाँ का राजा भगवान् की सिद्धि से बड़ा प्रभावित हुआ और यहाँपर भगवान् के नामपर एक धर्मशाला बनवाई जो गुरु श्रीचन्द्र धर्मशाला के नाम से आज तक प्रसिद्ध है वहाँ से आगे चल भगवान् अपने साथ के उदासीन साधुओं समेत समरकन्द पहुँचे वहाँ से गजनी गये गजनी से चलकर वि० सं० १५९६ आषाढ़ शुक्ल दशमी शुक्रवार को गान्धार देश में आये मार्गमें आप सर्वत्र हिन्दू धर्म-एकता-साम्यभाव का प्रचार करते रहे ॥५६-५७-५८-५९॥

नगराद्ब हिरागत्य स्थितं दृष्ट्वा समन्ततः ।
समागत्याति कोपेन वचो मौलविनोऽब्रुवन् ॥६०॥
यवनो भवं नो चेत्त्वां हनिष्यामः क्षणाद्वयम् ।
प्रतिवाक्यश्च चन्द्रोऽपि तादृशी मेव दत्तवान् ॥६१॥
नाहं भवामि यवनः यूयं भवत हिन्दवः ।
नीचोऽयं यावनो धर्मः उच्चैश्च हैन्दवो मतः ॥६२॥

अर्थ—भगवान् का आसन नगर के बाहर था भगवान् को देखकर मौलवी लोग गुस्से में बोले कि तुम मुसलमान बन जाओ नहीं तो तुम्हे अभी मार देते हैं भगवान् ने भी उन्हे वैसाही उत्तर दिया कि तुम लोग हिन्दू बन जाओ मुस्लिम धर्म से हिन्दूधर्म बहुत बड़ा और श्रेष्ठ है ॥६०-६१-६२॥

वज्रोपमं वचः श्रुत्वा भल्लूका इव थूत्कृतैः ।
हन्यतां हन्यतामुक्त्वा दूषयन्तः समन्ततः ॥६३॥

आयेतु लोष्ठिपाषाण कराः क्रूरा भयङ्कराः ।
अथ ते सहसा तस्थुः ऊर्ध्व हस्ताः शिलामयाः ॥६४॥

अर्थ—भगवान् का स्पष्ट यथोचित उत्तर सुन ते ही एड़ी से लेकर सिर तक जल भुन गये और भगवान् की ओर थूक फेंकने लगे 'मारदो मारदो' कह कर पत्थर मारने के लिये हाथ ऊँचे किये ही थे उनके हाथ वहाँ के वहाँ रह गये ॥६३।६४॥

हिन्दवश्चकिताः सर्वे दृष्ट्वा चित्री कृताश्च तान् ।
काजी मौलविनः सर्वे समेत्योचुर्नताः पदे ॥६५॥
क्षम्यतां मूढ बुद्धीनां मपराधो विवेकिना ।
नास्माभिः परतः कश्चिद्द हिन्दुर्यवन यिष्यते ॥६६॥

अर्थ—इस घटना को देख कर हिन्दू बड़े चकित हुये काजी मौलवी सब इकट्ठे हो कर भगवान् के चरणों में गिर पड़े और माफी माँगने लगे सांई हम लोगों का गुनाह माफ फरमायें आगे कभी हम किसी हिन्दू को तंग नहीं करेंगे ॥६५।६६॥

जिता वयंनताः पादे भीता ह्रता वता धुना ।
दयतां दयनीयेषु देव देव दया निधे ॥६७॥

अर्थ—सांई आप जीते हम लोग हारे आपके पाओं पड़ते हैं हमें भय लगता है, लज्जा आती है, हम गरीबों पर दया करो सांई जी मेहर कीजिये आप दया के सागर हैं ॥६७॥

सञ्जात करुणो देवः तान्दृष्ट्वा रुदतः पुरः ।
अवतारितवान् हस्तान् हसित्वेतद वोचत ॥६८॥
नातः परं कोऽपि हिन्दु पीडनीयः कथञ्चन ।
अन्याय्यो नाश कुन्न्हणां यथेच्छं गच्छता धुना ॥६९॥

अर्थ—मुसलमानों का गिड़ गिड़ाना सुनकर भगवान् का हृदय पसीज गया उनके हाथ नीचे कर दिये और भगवान् मुसकरा कर बोले, देखना, आगे कभी किसी हिन्दू को तंग नहीं करना (जुल्म) अन्याय बहुत बुरी चीज है अच्छा अब जा सकते हैं ॥६८।६९॥

प्रणिपत्य नता स्यास्ते, म्लेच्छा याता यथा गतम् ।
हिन्दवो दीक्षिताः सर्वे चन्द्रस्तानुप दिष्टवान् ॥७०॥

अर्थ—मुसलमान भगवान् को बन्दगी करके कुम्हलाये मुंह लेकर जिधर से आये थे उधर ही चलते बने भगवान् ने समस्त हिन्दुओं को उपदेश और गुरु दीक्षा देते बोले ॥७०॥

ब्राह्मेमुहूर्तै वुध्येत ध्यायदिष्टं हृदिस्थितम् ।
शौचस्नानादिकं कृत्वा पितृभ्यो निर्पयेन्जलम् ॥७१॥

विधाय सन्ध्यां गायत्री जपेन्निश्चल मानसः ।
अघमर्षण मन्त्रैश्च मृश्यन्तेऽघानि सर्वशः ॥७२॥

हुत्वा वैश्वानरं कृत्वा पञ्च यज्ञं यथा क्रमम् ।
सात्विकं भोजनं कुर्यात् धर्मेण चार्जयेद्धनम् ॥७३॥

हित ब्रूयान्मितं ब्रूयात् प्रियं सत्यं सनातनम् ।
सत्कुर्यात् सर्वभूतानां नावमन्येत कञ्चन ॥७४॥

माता पितृ गुरूणाञ्च सेवा निश्छल चेतसा ।
कर्तव्या गुरुवो लोके साक्षादीश्वर रूपिणः ॥७५॥

अर्थ—ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर अपने अपने इष्ट देवता का मन में ध्यान करो । शौच स्नान से निवृत्त होकर पितरों को जलाञ्जलि दो । संध्या के अनन्तर कुछ न कुछ गायत्री जाप अवश्य एकाग्रमन से करो । अघमर्षण मन्त्रों से सम्पूर्ण अघ (पाप) दूर होते हैं । हवन तथा पञ्च यज्ञ करो । सात्विक हलका भोजन करो । धर्म पूर्वक धनोपार्जन करो । सदा मीठा और कम बोलो । तुम्हारी वाणी सत्य से दूर न जाय । किसी भी प्राणी का निरादर न करो । माता पिता गुरु जनों की निश्छल मन से सेवा करो । गुरु जन साक्षात् भगवान् का रूप होते हैं ॥७१।७२।७३।७४।७५॥

धर्म शास्त्रस्य निष्कर्षः एव उक्तः सनातनः ।
न कोऽपि नरकं गच्छे दनया दिनचर्यया ॥७६॥

अर्थ—यह सनातन धर्म का सच्चा निचोड़ है । इस के अनुसार दिन चर्या बनाने वाला व्यक्ति कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता ॥७६॥

उपदेशेन चैतेन हिन्दवस्तुष्ट मानसाः ।
यथाहमिर्हणां कृत्वा नत्वा याता गृहान् प्रति ॥७७॥

अर्थ—इस दिव्य उपदेश से हिन्दू बड़े प्रसन्न हुये। भगवान् की यथा शक्ति पूजा करके अपने अपने घरों को चले गये ॥७७॥

सपाद शतमुद्राणामन्न क्षेत्रं दिने दिने ।
अद्यापि समये तत्र विद्यते ऽद्यापि चालितम् ॥७८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का चलाया हुआ सवा सौ रुपये का अन्न क्षेत्र प्रतिदिन वहाँ आज भी बाँटा जाता है ॥७८॥

यत्राद्भुतामिदं सर्वं चरित्रं विदितं पुरा ।
श्रीचन्द्र धर्मशाला सा वर्तते ऽद्यापि तादृशी ॥७९॥

अर्थ—जहाँ ये अद्भुत घटनाएँ घटी थीं वहाँ आज भगवान् श्रीचन्द्र के नाम पर धर्मशाला बनी हुई है जो उदासीन महात्माओं के अधिकार में है ॥७९॥

श्रीचन्द्र एकदा तत्र धर्मोपदेश तत्परे ।
काम्बोजो ब्राह्मणः कोऽपि शिव दत्तः समाययौ ॥८०॥

अर्थ—इसी धर्मशाला में एकदा भगवान् धर्मोपदेश कर रहे थे इसी बीच में एक काबुली शिवदत्त नाम का ब्राह्मण आया ॥८०॥

रसाङ्क बाण चन्द्रे श्री वैक्रमेऽब्देशुचौ गुरौ ।
पूर्णिमायां विधानेन दीक्षयामास तं गुरुः ॥८१॥

अर्थ—वि० सं० १५९६ आषाढ़ पूर्णिमा गुरुवार के दिन उसको भगवान् ने गुरु दीक्षा दे उदासीन साधु बनाया था ॥८१॥

भक्ता नन्दा भिधानेन द्वितीयः शिष्य विश्रुतः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां सिद्धिं यातः पूर्ण सनातनी ॥८२॥

अर्थ—वे महात्मा भक्तानन्द उदासीन नामसे आपके दूसरे चेले हुये जो बड़े सिद्ध तथा धर्मात्मा भजनीक थे ॥८२॥

श्रीचन्द्र चूड़ चरितानि यथाद्भुतानि ।
'श्री चन्द्रदेव चरितानि तथा द्भुतानि ।
श्रद्धायुतेन पठितानि पुनान्ति तानि,
श्रोतु र्दहन्ति दुरितानि पुरा कृतानि ॥८३॥

अर्थ—भगवान् शिव के समान श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के भी विचित्र चरित्र हैं। श्रद्धा युक्त हो पढ़ने या सुननें से पूर्व कृत पापों का सद्यः नाश होता है ॥८३॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामो हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे पेशावर नगरे केशवप्रसाद प्राण बचावन, काबुल, कन्धार उपदेश वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी सप्तदशी किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥१७॥

॥ अष्टादश किरण प्रारम्भः ॥

एकदा प्रातरुत्थाय श्रीचन्द्रो ध्यान तत्परः ।
तातं स सहसाऽज्ञासीद् दिदृक्षुं तनयाननम् ॥१॥

अर्थ—एक समय प्रातःकाल उठ कर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ध्यान कर रहे थे ध्यान में उन्हें ज्ञात हुआ कि पूज्य पिता जी मुझे देखना चाहते हैं ॥१॥

गान्धार धर्मशालायाः प्रवन्धाय महामतिम् ।
भक्तानन्दं सन्नियोज्य भक्तान श्वास्य सर्वशः ॥२॥

अर्थ—गान्धार की धर्मशाला के सु प्रबन्ध के लिये अत्यन्त मेधावी अपने प्रिय शिष्य श्रीभक्ता नन्द जी उदासीन साधु को नियुक्त किया और श्रद्धालुभक्त मण्डली को आपने जाने की खबर के साथ २ आश्वासन भी दिया ॥२॥

भक्तानन्द महर्षिं देव पदवी धात्रे सते धार्मिकः ।
शिक्षायापि महात्मने प्रतिपलं जुष्टा यतं मान वैः ।
स्वीयां स्थान समग्र भूति भवनी भव्यां तथां भावकीम् ।
दत्वा हर्ष मवाय धर्म गुरुतां चक्रे प्रयाणं स्वकम् ॥३॥

अर्थ—उदासीन शिरोमणि श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने चेले भक्ता नन्द जी उदासीन को जो बड़े भजनीक महर्षि थे उन्हें अपने हिन्दू धर्म की शिक्षा का प्रचार करते रहने की आज्ञा कर कन्धार के अपने स्थान का सर्वाधिकार के साथ महन्ती दे सर्व विभूतिका स्वतंत्र मालिक बनाय पिता जी के दर्शनार्थ चलने की तैयारी करते भये ॥३॥

संपत्ति जातं सकलं समर्थं पितुश्च सन्दर्शन हेतवे च।
शिष्योऽस्ति नित्यं गुरुवत् प्रपूज्यस्स्थानाधिकारी शुभवृत्तिधारी ॥

अर्थ—संगत को अपने एकाएक चलने का कारण बताय कहा कि भक्ता नन्द को हमारा ही स्वरूप समझना गुरु की ज्योति चेले में होती है इस लिये गुरु का स्वरूप चेले को समझना चाहिये हम आप लोगों के अङ्ग सङ्ग हैं ॥४॥

रसाङ्क बाणचन्द्रे श्री वैक्रमे श्रावणे सिते।
पञ्चम्यां मिहरे चन्द्रः सहसाऽन्तर्दधे विभुः ॥५॥

अर्थ—वि० सं० १५९६ श्रावण शुक्ला पञ्चमी रविवार को भगवान् वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये ॥५॥

भक्तानन्दोऽप्यसौ तत्र गुरुवद्गौरवान्वितः।
उपदेशं ददौ नित्यं भक्तेभ्योधर्म्यमद्भुतम् ॥६॥

अर्थ—श्री श्रद्धेय गुरु जी महाराज की भाँति चेले श्री महन्त भक्तानन्द जी उदासीन भी बड़ी गम्भीरता के साथ हिन्दू धार्मिक उपदेश देते हुये सब को लाभ पहुँचाते रहे ॥६॥

गान्धार धर्म्मशालायां चन्द्र देवस्य पादुका।
स्थापिता पूज्यतेऽद्यापि हिन्दुभिर्यवनैरपि ॥७॥

अर्थ—उस गन्धार (कंदहार) की धर्मशाला में भगवान् श्रीचन्द्रजी की चरण पादुकायें प्रतिष्ठित (स्थापित) की गई थीं आज कल भी उनकी पूजा हिन्दू और मुसलमान दोनों समान भाव से करते हैं ॥७॥

अन्तरित्य मुनिरेष तदानीं प्रादुरास सहसा जनकस्य।
पादमूल उपलक्ष्यतमित्थं विस्मितं न हृदयं खलु कस्य ॥८॥

अर्थ—भगवान् कंदहार से अन्तर्ध्यान होकर करतारपुर में पूज्य पिताजी के समीप आ प्रकट हुये इस घटना से सभीजन बहुत विस्मित हुये ॥८॥

पादयोर्निपतितं सुतमेष नानकः प्रमदवाष्प जलेन।
अभ्यसिञ्चदनु वक्षसि कृत्वा मूर्ध्न्यं जिघ्रदतुलं सुखमाप ॥९॥

अर्थ—भगवान् ने पिता श्री गुरु नानकदेव जी के चरण छुये और पिताजी ने झट उन्हें गोद में ले लिया पिताजी की आँखों से आनन्दाश्रुओं की धार बहने लगी तथा भगवान् का मस्तक सूँघा और अपरिमित आनन्द प्राप्त किया ॥९॥

एकदा चन्द्रदेवस्य मालां पुस्तक मेवच ।
लहणश्चोरयामास शिष्यत्वस्याभिलाषुकः ॥१०॥

अर्थ—अनन्तर एक दिन लहने ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की पुस्तक तथा माला इस भाव से चुराली कि भगवान् मुझे किसी न किसी प्रकार अपना शिष्य बनालें ॥१०॥

श्रीचन्द्रदेवशापाच्च कुष्ठी स सम जायत ।
कोवा सतोऽपकारेण कुशली जगतां त्रये ॥११॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के शाप से वह कुष्टी हो गया* ठीक है साधुजनों की बुराई किसी भाव से भी नहीं करनी चाहिये इसका परिणाम अच्छा नहीं होता ॥११॥

रसाङ्कवाण चन्द्रे श्री वैक्रमे आश्विने सिते ।
दशम्यां नानको देवः लोक यात्रां समापयत् ॥१२॥

अर्थ—वि सं० १५९६ आश्विन शुक्ला दशमी के दिन श्रीगुरु नानकदेव जी ने अपनी यह लौकिक लीला समाप्त की ॥१२॥

देहा वसान समये नानकश्चन्द्रमादिशत् ।
वत्स सर्वं गुणो पेत वाक्यं ते सिद्धिमाप्नुयात् ॥१३॥

अर्थ—ऐह लौकिक लीला समाप्त करने से कुछ समय पहले पिता श्रीगुरु नानक ने भगवान् श्रीचन्द्रजी को आशिर्वाद देते कहा कि हे वत्स ! तू यद्यपि सर्वगुणों से युक्त है तथापि तेरी वाक्सिद्धि अमोघ होगी ॥१३॥

रोहिणी रमणस्येव ख्यातिस्ते भूतलेऽखिले ।
भविता विमला पुत्र भाग्यवानोस सर्वथा ॥१४॥

अर्थ—तू वड़ा भाग्यवान है तुझे सारा संसार दूज के चन्द्रमा के समान बड़ी उत्कण्ठा से देखा और नमस्कार किया करेगा ॥१४॥

---

*कुष्ठ का प्रकरण देखो श्री चन्द्रप्रकाश पृष्ठ ३६६ से ३८७ तक, सूर्य प्रकाश रास १ अंसू १६ पृष्ठ ४४, खालसा तवारीख हिस्सा १ नं० २ पृष्ठ ५७१ तथा जगद्गुरु का सवोपदेश पृष्ठ २०, नानक सूर्योदय जन्मसाखी उत्तरार्ध अ० ५५

देवगन्धर्व यक्षेषु त्वत्समो नापरो भवेत् ।
अलौकिक प्रभावेण सर्वत्र विश्रुतो भव ॥१५॥

अर्थ—देव गन्धर्व नरनाग यक्षों में से तेरी कोई बराबरी नही कर सकेगा तू अपने अलौकिक प्रभाव से सर्व मूर्धन्य तम गिना जायगा ॥१५॥

चन्द्रशाप समाचार मङ्गदो भ्रातुरन्तिके ।
गत्वा निवेदयामास सारल्येन यथा तथम् ॥१६॥

अर्थ—भगवान् के उस शाप की खबर अंगद ने अपने बड़े गुरुभाई बालाराम* के पास निष्कपट भाव से सारी सुनादी ॥१६॥

गम्यतां मयका साकं शापोद्धाराय बुद्धिमत् ।
त्वपि विश्वास वाश्चन्द्रः नूनं मोक्षं विधास्यति ॥१७॥

अर्थ—श्री अंगदजी बोले हे गुरुभाई बालाराम जी आप मेरे साथ चलें भगवान् से इस अपराध की क्षमा माँगे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का आप पर अच्छा विश्वास है वे अवश्य मेव इस शाप से मेरे को मुक्त कर देगें ॥१७॥

अथ द्वावपि देवस्य पादमूलमवापतुः ।
बहुशः प्रार्थितः प्राह चन्द्रदेवः प्रसन्नधीः ॥१८॥

अर्थ—ऐसा सोचकर दोनों श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के श्री चरणों में सविनय उपस्थित हुये और भगवान् से श्री अंगदजी के अपराध क्षमा कराने की बार बार प्रार्थना की ॥१८॥

स्वकर्मणां फलं जीवाः भुञ्जते हि शुभा शुभम् ।
निश्चितस्तु विपाकोयः कोवा तत्परिमार्जकः ॥१९॥

अर्थ—यह सुन भगवान् बोले हे श्रीमन् प्रत्येक प्राणी अपने किये शुभाशुभ कर्मों का अच्छा बुरा फल भोगता है निश्चित विपाक कर्मों के फल को कोई भी टाल नहीं सकता ॥१९॥

---

*बालाराम सन्त उदासीन का जन्म वि० सं० १५२६ मघर वदी २ का था और श्रीगुरु नानक जी के उदासीन चेले वि० सं० १५६८ श्रावण सुदी १५ को बने थे सादिक चेले जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के वि० सं० १५६८ आषाढ़ सुदी १५ को बनके भजन करते रहे, देवलोक वि० सं० १६०१ माघ सुदी ७ को तलवण्डी में हुआ, आपका स्थान ग्राम अमीशाह खारड़ा जिला लहौर तशील कसूर में है ।

न कोपेन मया दत्तः शापः पापफलं हि तत् ।
स्वभाव निर्गता वाचः सतां सिद्धिं दिशन्ति हि ॥२०॥

अर्थ—मैंने क्रोध में आकर कोई शाप नहीं दिया इनके पाप फल ने मुझे प्रेरित किया जिससे स्वाभाविक मेरे मुख से वचन निकल गया महात्माओं का स्वाभाविक निकला हुआ शब्द निष्फल नहीं जाता है ॥२०॥

दुःखितानां सतां स्त्रीणां रोगिणां वालवृद्धयोः ।
अणीयानपराधोऽपि सद्यो नाश यितुं क्षमः ॥२१॥

अर्थ—साधु, दुःखी, रोगी, स्त्री बालक और वृद्ध इनका यदि थोड़ा सा भी अपराध हो जाय तो वह जड़ से नाश करने का सामर्थ्य रखता है ॥२१॥

आस्तां तावदयं लोके ख्यातो नानकवद्भवेत् ।
दुष्टोऽपि स्वच्छ चित्तेन पश्चात्तापः विमुच्यते ॥२२॥

अर्थ—अच्छा जाओ यह पूज्य पिता श्रीगुरु नानक देव भेष उदासीन के समान लोक में विख्यात होंगे ॥२२॥

अङ्गदः प्राञ्जलि र्भूत्वा प्रार्थयामास हे विभो ।
शादिकश्च प्रदानेन कृपां कुरु दया निधे ! ॥२३॥

अर्थ—श्री अंगद जी ने हाथ जोड़कर भगवान् से सविनय प्रार्थना की कि हे भगवन् मुझे सादिक चेला बनाने की कृपा करें ॥२३॥

तथेति सोऽपि तत्कालं दीक्षयामास तं सुधीः ।
मुद्रा पञ्चशतीं सोऽपि गुरवे समुपाहरत् ॥२४॥

अर्थ—भगवान् ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और अपना सादिक चेला उन्हें बनाया उन्होंने उसी समय गुरु दक्षिणा में ५००) रुपया भेंट किया ॥२४॥

अङ्काङ्क वाण चन्द्रे श्री वैक्रमे वत्सरे शुचौ ।
पूर्णिमायां गुरौ शिष्योऽभवदङ्गद नामकः ॥२५॥

अर्थ—वि० सं० १५६९ आषाढ़ी पूर्णिमा १५ गुरुवार के दिन श्री अंगद जी उदासीनाचार्य महाप्रभु गुरुवर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के सादिक शिष्य बने ॥२५॥

चन्द्र देवस्य तत्कालं दयां दृष्ट्वा समे जनाः ।
आश्चर्य चकितास्तस्थुः लोक मान्यः परस्परम् ॥२६॥

अर्थ—भगवान् की ऐसी असीम दया को देखकर समस्त जन बहुत ही चकित हुये ॥२६॥

चन्द्र देवस्य पूतं चरित्रं पठे न्सौख्यमाप्नोति नूनं शरीरं त्यजन् ।
दुर्लभं याज्ञिकानां शतैरध्वरैः स्वर्गलोकं व्रजे त्स्तूयमानः सुरैः ॥

अर्थ—श्री११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के इस परम पवित्र चरित्र को जो मनुष्य भक्ति पूर्वक पढ़ेगा वह यहाँ सर्व सुख भोगकर अन्त में यज्ञादिकों से भी दुर्लभ पद को प्राप्त करेगा स्वर्ग में देवता भी उसकी स्तुति करेंगे ॥२७॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमदुदासीनवर्य-परमहंसावतंस-ब्रह्मनिष्ठ-निखिल-शास्त्रनिष्णात-योगिराज-सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखंडिदेव गुरुचरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन बिरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महा काव्ये मुनिजन मानस हंसे कर्तारपुर आगमन प्रकरण वर्णनं सकल कलि कलमष नाशनी अष्टादशी किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥१८॥

॥ एकोनविन्शति किरण प्रारम्भः ॥

एकदा भगवांश्चन्द्रः ननकाना स्थाने स्थितः ।
सिन्धु देश प्रजा दुःखं ज्ञातवान् भाविता खिलः ॥१॥

अर्थः—एक समय हिन्दू धर्म रक्षक श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ननकाना साहब में अपने सिंहासन पर विराजमान हो रहे थे आपने अपनी सर्वज्ञ दृष्टि से सिन्धु देश की प्रजा का समस्त दुःख देखा ॥१॥

हिन्दूनां पीड़यात्यन्तं पीड़ितो ऽवन तत्परः ।
गन्तुं बुद्धिं ववन्धाशु सिन्धु देशं तदैवहि ॥२॥

अर्थ—हिन्दुओं पर हो रहे अनर्थ को देखकर भगवान् ने उन्हें शीघ्र कष्टों से छुड़ाने का निश्चय किया । उसी समय आपने सिन्ध जाने का प्रोग्राम बनाया ॥२॥

स्थान रक्षार्थमायोज्य, प्रति वोध्य च सर्वशः ।
चेतनदास स्वेशिष्यं, साधुः संवलितः स्वयम् ॥३॥

अर्थ—स्थान में अपने प्रिय शादिक शिष्य (चेले) चेतनदास*१ उदासीन को छोड़ दिया और आप उन्हें योग्य शिक्षा देकर साधु मण्डली समेत ॥३॥

अङ्काङ्कबाण चन्द्रे श्री वैक्रमे चाश्विने सिते ।
चचाल शकुनं पश्यन् दशम्यां शनिवासरे ॥४॥

अर्थ—वि० सं० १५६६ आश्विन शुक्लादशमी शनिवार के दिन शुभ शकुन देख अपने साथ उदासीन साधुओं की मण्डली लेकर सिन्ध देश को प्रस्थान करते भये ॥३॥

ततः शनैः शनै श्चन्द्रः, कथा कुर्वन् विलक्षणाः ।
डेरा इस्माईलखाने, समायातः सतां पति : ॥५॥

अर्थ—मार्ग में धार्मिक प्रचार करते हुये धीरे धीरे भगवान् डेरा इसमाइलखान*२ पहुँचे ॥५॥

कर्मकाण्ड प्रधानाश्च, तत्र तेन कथाः कृताः ।
कर्मठाश्च कृता लोकाः उपदेशैः सुनिश्चितैः ॥६॥

अर्थ—वहाँ कर्मकाण्ड प्रधान ही प्रवचन अधिक होते रहे आपने अपनी अकाट्य युक्तियों से उनको फिर से कर्मनिष्ठ बनाया ॥६॥

ततोदरियानखानं नगरञ्च समाययौ ।
ततश्च भक्खरंभूयः मूलत्राणञ्च भक्खरात् ॥७॥

अर्थ—अनन्तर दरियाखान आये, दरियाखान से भक्खर-भक्खर से मुलतान आते भये ॥७॥

१*चेतनदास जीश्री गुरु अविनाशीराम जी उदासीन के चेले वि० सं० १५७२ आषाढ़ सुदी १५ को बने थे। तथा अपने बड़े गुरु भाई श्री ११०८ (जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से वि० सं० १५६६ आषाढ़ सुदी १५ को शादिकी लै महराज की सेवा में ही रहा करते थे।

२*वि० सं० १४६० में मलिक शराबुद्दीन बलूची हिन्दुस्तान में आया इसका पुत्र इस्माईल था जिसने अपने नाम से डेरा इसमाईल खान नाम का नगर बसाया जहाँ पर सद्गुरु श्रीचन्द्र जी आय के बैठे और लोगों को सतोपदेश दिया उसी जगह पर पीछे से शौकीराम जी उदासीन महात्मा ने स्थान बनाया जो शौकीराम की धर्मशाला के नाम से आज भी प्रसिद्ध है संसार में उदासीन महात्माओं ने बड़े बड़े काम किये हैं।

त्रिंशतयोजनं तच्च लवपुर्या विराजते ।
हिरण्य कशिपोः काले काश्यपी सापुरी मता ॥८॥

अर्थ—मुलतान लहौर से ३० योजन २२१ मील की दूरी पर है। हिरण्यकशपु के समय में इसे काश्यपीपुरी कहा करते थे ॥८॥

हिरण्यकशिपुं हत्वा नृसिंहो भक्त रञ्जकः ।
प्रह्लादं नृपतिं चक्रे भक्त राजं महामतिम् ॥६॥

अर्थ—हिरण्य कशिपु को मार कर भक्त वत्सल नृसिंह भगवान् ने अपने प्रिय भक्त प्रह्लाद को यहाँ का राजा बनाया जो महान् बुद्धिमान था ॥६॥

प्रह्लाद नगरं तस्मात्तस्य नाम कृतं जनैः ।
मूलत्राणं नाम जातं शनकैर्यात्य नेहसि ॥१०॥

अर्थ—फिर लोग इसे प्रह्लाद नगर पुकारने लगे। धीरे-धीरे समय बीतने पर इसका नाम- मूलत्राण (मुल्तान) पड़ गया ॥१०॥

श्रीचन्द्रस्योपदेशेन काजी मुल्लाः समे खलाः ।
खलतां त्यक्तवन्तस्ते मुमुदे हिन्दु मण्डलम् ॥११॥

अर्थ—भगवान् के विचित्र उपदेशों के प्रभाव से काजी मुल्ला अपनी नीचता छोड़कर सीधे हो गये। हिन्दु जनता इससे बड़ी सन्तुष्ट हुई ॥११॥

मूलत्राण पुराच्चन्द्रः सिन्धु देशावनेच्छया ।
सिन्धुदेशं जगामासौ सिन्धु गम्भीर मानसः ॥१२॥

अर्थ—मुलतान से आप सिन्ध के हिन्दुओं की रक्षा के लिये सिन्ध देश की ओर जल पड़े ॥१२॥

—:: सिन्धु देश ::—

६	४	१	६
६	१	४	६
४	६	६	१
१	६	६	४

श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् शंकरावतार शत्रु बन के जलाने में अग्निवत् सुख पूर्वक मुलतान से चल रोहड़ी नगर सिन्धु देश में आये।

सज्जनों सिन्ध देश परम पवित्र देश हैं जहाँ सिन्धु गङ्गा बह रही है। वेद काल में समस्त भारतवर्ष को ही सिन्धु देश कहते थे। देखो पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी—

सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ॥४॥३॥६३॥

मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने अपने अपने मन्त्रों में भारत मात्र का नाम सिन्धु देश लिखा है।

इन्द्रो महासिन्धुम् आशयानं माया विजंवृत्रम् अस्फुरत्निः।
अरेजेतां रोदसि मियाने कानि क्रदतो विष्णो अस्य वज्रात्।

ऋग्वेद २-११-६

यह प्रकरण हम ऊपर बता आये हैं किन्तु समय के फेरफार से आज सिन्धुदेश भारतवर्ष का एक छोटा सा प्रान्त रह गया है। ऋग्वेद के पढ़ने से पता लगता है कि वशिष्ठ पाराशर, विश्वामित्र, अगस्त्य वामदेवादि सर्व उदासीन मुनियों ने सिन्धुनदी के तटपर निवास करते हुए ग्रन्थों का निर्माण कर गये हैं। विश्वामित्र* महामुनि ने यहां पर यज्ञ भी किया था। इसी पवित्र सिन्धु तथा समुद्र के संगम पर सृष्टि आदिकाल का (अति प्राचीन) नारायण सर परम पवित्र तीर्थ है।

सिन्धु गंगा में सप्त नदियों का संगम होता है जो महापुण्य सलिला हैं जिनका प्रकरण शास्त्रों में कई स्थल पर आता है। महाभारत सभापर्व अ० ६ में लिखा है।

विपाशश्च शतद्रुश्च चन्द्र भागा सरस्वती।
इरावती वितस्ताच सिन्धुर्देव नदी तथा॥

अर्थ—१ विपासा (व्यासा) २ शतद्रु (सतलुज) ३ चन्द्रभागा (चुनाव) ४ सरस्वती (लुप्ता) ५ इरावती (रावी) ६ वितस्ता—(जेहलम) ७ सिन्धु (अटक) नाम की सप्त गङ्गा मिलकर सिन्धु-नदी बहती है।

सिन्धो सप्तनदीतीरे सन्ति क्षेत्राण्यनेकशः ॥८॥
ब्रह्मलोक प्रदं विद्या तपः पूजादिकं तथा।
सिन्धुनद्यां तथा स्नानं सिंहे कर्कट केर वौ ॥२१॥

(शिव पुराण विश्वेश्वर संहिता—अ० १२)

*विश्वामित्र को महामुनि बाल्मीक रामायण बालकाण्ड में कई स्थल में कहा है 'विश्वामित्रो महामुनिः सर्ग १८ श्लो० ३६, सर्ग ४८ श्लो० ३, सर्ग ५१ श्लो० १०, सर्ग ६७ श्लो० १ सर्ग ७२ श्लो० १। इसी प्रकार तुलसी रामायण बालकाण्ड में भी कहा है 'विश्वामित्र महामुनि आये,। मुनि नाम साधु का है यह हम प्रथम भली प्रकार से सिद्ध कर आये हैं। महामुनि नाम महन्त का है।

अर्थ—सिन्धु नदी में जहाँ सातों नदी एकत्र होती हैं उसके तीर पर अनेक पुण्य क्षेत्र हैं ।।८।। यहाँ की की हुई तपस्या और पूजादिक तथा सिंहराशि और कर्कराशि में सूर्य का संक्रमण होने से (कुम्भ* पर्व) अर्थात् श्रावण भाद्रों में सिन्धु नदी का स्नान ब्रह्म लोक का देने वाला है इस पवित्र सिन्धु गङ्गा का प्रमाण माहात्म्य सहित वेदों में आता है सो भी आपको श्रवण कराते हैं ।

मूलः—अस्यश्रवो नद्यः सप्त विभ्रति द्यावा च्चामा पृथ्वी दर्शतंवपुः ।।५।।

(१ अष्ट के ७ अध्याये १४ वर्गे मं० १ अ० १५ सूक्त १०२ ऋग द्वितीया)

अर्थ—जो सातों नदियां सम्मिलित (इकट्ठी) होकर पृथ्वी पर चलती हैं वही यह सिन्धु नदी है।

मूलः—प्रचर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्रप्टथिष्यारिरिचाये दिवश्च ॥
प्रसिन्धुभ्यः प्रगिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वाभुवना त्यन्या ।।७।।

(१ अष्टके ७ अध्याये २६ वर्गे मं० १ अ० १६ सूक्त १०६ ऋगषष्टी)

अर्थ—यहाँपर सिन्धु शब्द से समुद्र नहीं लेना यह सिंधु शब्द सिन्धुनदी को कहा है कारण समुद्र पर्वत से नहीं उतरता ।

मूलः—आयत साकं यशसोवावशानः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याःसुष्वयन्तसुदुघाः सुधारा अभिस्वेन पयसा पीप्यानाः ॥

(५ अष्टके ४ अध्याये २ वर्गे मं० ७ अ० ३ सूक्त ३६ ऋक्षष्ठी)

अर्थ—वह सप्तनदी कौन जो सिन्धुमाता के साथ मिलती हैं सिंधुशब्द का अर्थ समुद्र भी है पर यहाँ विशेषण को देकर विशेष सप्तनदियों वाली सिन्धु नदी को ही कहते हैं 'सरस्वती सप्तती सिन्धु माता' अर्थात् यहाँ सरस्वती सप्त नदियों वाली सिन्धु माता (माता और नदी दोनों स्त्री वाचक शब्द हैं) जाननी ।

---

*पूर्व समय में कुम्भ महापर्व का मेला इस महीने के श्री सिन्धु गंगा तट पर लगा करता था, जब बौद्धों का राज्यकाल आया तब उन्होंने सनातनियों से द्वेष करके कुम्भ का मेला उठा दिया कुछ दिन के पीछे जब स्वामी शंकराचार्य्य का समय आया तब उन्होंने उदासीन साधुओं की सम्मति से पुनः कुम्भ पर्व का प्रचार हरिद्वार प्रयाग उज्जैन और गोदावरी में किया सिन्ध में, उस समय मुसलमानी जोर बहुत था इसलिए यहाँ पर उपाधि समझ कर इस पर्व को गुप्त रखा, पर अब समय हिन्दुओं की जागृति और स्वतन्त्रता का आ गया है इसलिए सिन्धु गंगा पर पुराणानुसार कुम्भ पर्व अवश्य होना चाहिए ।

मूलः—प्रक्षोदशा धायसासस्त्र एषा सरस्वती धरुण मायसी पूः ।
प्रवा वंधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥

(५ अष्टके ६ अध्याये १६ वर्गे मं० ७ अ० ६ सूक्त ६५ ऋक्प्रथमा)

अर्थ—यहांपर भी सरस्वती नदी और सिन्धु नदी को चलन (प्रवाह) वाली नदी जानना कारण समुद्र में चालन शक्ति नहीं होती और सरस्वती भी वह समझना जो नदी रूप से चलती होवे।

मूलः—उपह्वरे गिरीणां सङ्गथे च नदीनाम् । धियाविप्रो अजायत ॥

(५ अष्टके ८ अध्याये १४ वर्गे मं० ८ अ० २ सू० ६ ऋगष्टाविंशी)

अर्थ—जो नदी पर्वतों से उतरकर सङ्गम करे उसको सिन्धु नदी कहते हैं सिन्धुनदी ही पर्वत से उतरती है।

मूलः—यत् सिन्धौयदसि कन्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुवर्हिषः यत्पर्वतेषु भेषजम्

(६ अष्टके १ अ० ४० वर्गे मं० ८ अ० ३ सूक्त २० ऋग्पंच विंशति)

अर्थ—यहांपर भी सिन्धु और समुद्र को पृथक २ कहा है सिन्धुनदी बहकर समुद्र में जाती है किन्तु समुद्र वहकर सिन्धु में नहीं आता।

मूलः—यंऋत्वा दंहसो मुचयो वार्यात् सप्त सिन्धुषु वधदा-सस्यतु विनृम्णानीनम्

(६ अष्ट २ अ० २० वर्गे मं० ८ अ० ४ सू० २४ ऋक्सप्तविंशी)

अर्थ—यहांपर भी सप्तसिन्धु से सप्तनदियों का विशेषण देकर सिन्धुनदी को ही कहा है।

मूलः—दुहन्ति सप्तैका मुपद्वापञ्चसृजतः तीर्थे सिंधोर धिस्वरे

(६ अष्टके ५ अध्याये १५ वर्गे म० ८ अ० ८ सू० ६१ ऋक्सप्तमी)

अर्थ—इस मन्त्र में सप्तनदियों वाली सिन्धु नदी को तीर्थ कहा है।

मूलः—हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समहसंगमः आपो हम ह्यन्तिदेवी र्ददन् हृद्यो त भेषजम्

(अथर्ववेद संहिता ६ कां ३ अ० २४ सू०)

अर्थ—यहांपर सिन्धुनदी का लक्षण बताया है जो हिमालय से निकलकर प्रवाहित हो।

अर्थ—सिन्धु नदी में जहाँ सातों नदी एकत्र होती हैं उसके तीर पर अनेक पुण्य क्षेत्र हैं ॥८॥ यहाँ की की हुई तपस्या और पूजादिक तथा सिंहराशि और कर्कराशि में सूर्य का संक्रमण होने से (कुम्भ* पर्व) अर्थात् श्रावण भाद्रों में सिन्धु नदी का स्नान ब्रह्म लोक का देने वाला है इस पवित्र सिन्धु गङ्गा का प्रमाण माहात्म्य सहित वेदों में आता है सो भी आपको श्रवण कराते हैं।

मूलः—अस्यश्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावा क्षामा पृथ्वी दर्शतंवपुः ॥५॥

(१ अष्ट के ७ अध्याये १४ वर्गे मं० १ अ० १५ सूक्त १०२ ऋग द्वितीया)

अर्थ—जो सातों नदियां सम्मिलित (इकट्ठी) होकर पृथ्वी पर चलती हैं वही यह सिन्धु नदी है।

मूलः—प्रचर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्रपृथिव्यारिरिचाथे दिवश्च ॥
प्रसिन्धुभ्यः प्रगिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वाभुवना त्यन्या ॥७॥

(१ अष्टके ७ अध्याये २६ वर्गे मं० १ अ० १६ सूक्त १०६ ऋग्षष्टी)

अर्थ—यहाँपर सिन्धु शब्द से समुद्र नहीं लेना यह सिंधु शब्द सिन्धुनदी को कहा है कारण समुद्र पर्वत से नहीं उतरता।

मूलः—आयत साकं यशसोवावशानः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता।
याःसुष्वयन्तसुदुघाः सुधारा अभिस्वेन पयसा पीप्यानाः ॥

(५ अष्टके ४ अध्याये २ वर्गे मं० ७ अ० ३ सूक्त ३६ ऋक्षष्टी)

अर्थ—वह सप्तनदी कौन जो सिन्धुमाता के साथ मिलती हैं सिंधुशब्द का अर्थ समुद्र भी है पर यहाँ विशेषण को देकर विशेष सप्तनदियों वाली सिन्धु नदी को ही कहते हैं 'सरस्वती सप्तती सिन्धु माता' अर्थात् यहाँ सरस्वती सप्त नदियों वाली सिन्धु माता (माता और नदी दोनों स्त्री वाचक शब्द हैं) जानना।

---

*पूर्व समय में कुम्भ महापर्व का मेला इस महीने के श्री सिन्धु गंगा तट पर लगा करता था, जब बौद्धों का राज्यकाल आया तब उन्होंने सनातनियों से द्वेष करके कुम्भ का मेला उठा दिया कुछ दिन के पीछे जब स्वामी शंकराचार्य्य का समय आया तब उन्होंने उदासीन साधुओं की सम्मति से पुनः कुम्भ पर्व का प्रचार हरिद्वार प्रयाग उज्जैन और गोदावरी में किया सिन्ध में उस समय मुसलमानी जोर बहुत था इसलिए यहाँ पर उपाधि समझ कर इस पर्व को गुप्त रखा, पर अब समय हिन्दुओं की जागृति और स्वतन्त्रता का आ गया है इसलिए सिन्धु गंगा पर पुराणानुसार कुम्भ पर्व अवश्य होना चाहिए।

मूलः—प्रक्षोदशा धायसासस्रएषा सरस्वती धरुण मायसी पूः ।
प्रवा वंधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥

(५ अष्टके ६ अध्याये १६ वर्गे मं० ७ अ० ६ सूक्त ६५ ऋक्प्रथमा)

अर्थ—यहांपर भी सरस्वती नदी और सिन्धु नदी को चलन (प्रवाह) वाली नदी जानना कारण समुद्र में चालन शक्ति नहीं होती और सरस्वती भी वह समझना जो नदी रूप से चलती होवे ।

मूलः—उपह्वरे गिरीणां सङ्गथे च नदीनाम् । धियाविप्रो अजायत ॥

(५ अष्टके ८ अध्याये १४ वर्गे मं० ८ अ० २ सू० ६ ऋगष्टाविंशी)

अर्थ—जो नदी पर्वतों से उतरकर सङ्गम करे उसको सिन्धु नदी कहते हैं सिन्धुनदी ही पर्वत से उतरती है ।

मूलः—यत् सिन्धौयदसि कन्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुवर्हिषः यत्पर्वतेषु भेषजम्

(६ अष्टके १ अ० ४० वर्गे मं० ८ अ० ३ सूक्त २० ऋग्पंच विंशति)

अर्थ—यहांपर भी सिन्धु और समुद्र को पृथक २ कहा है सिन्धुनदी बहकर समुद्र में जाती है किन्तु समुद्र वहकर सिन्धु में नहीं आता ।

मूलः—यंत्रत्वा दंहसो मुचथो वार्यात् सप्त सिन्धुषु वधर्दा-सस्यतु विनृम्णानीनम्

(६ अष्ट २ अ० २० वर्गे मं० ८ अ० ४ सू० २४ ऋक्सप्तविंशी)

अर्थ—यहांपर भी सप्तसिन्धु से सप्तनदियों का विशेषण देकर सिन्धुनदी को ही कहा है ।

मूलः—दुहन्ति सप्तैका मुपद्वापञ्चसृजतः तीर्थे सिंधोर धिस्वरे

(६ अष्टके ५ अध्याये १५ वर्गे म० ८ अ० ८ सू० ६१ ऋक्सप्तमी)

अर्थ—इस मन्त्र में सप्तनदियों वाली सिन्धु नदी को तीर्थ कहा है ।

मूलः—हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समहसंगमः आपो हम ह्यन्तिदेवी र्ददन् हृद्द्योत भेषजम्

(अथर्ववेद संहिता ६ कां ३ अ० २४ सू०)

अर्थ—यहांपर सिन्धुनदी का लक्षण बताया है जो हिमालय से निकलकर प्रवाहित हो ।

मूलः—सिन्धवः (२१) निरुक्ते प्रथमेऽध्याये नदी नाम सुसिन्धु शब्दः परिगणितः ॥

अर्थ—निरुक्त (वेद का कोष) में सिन्धु शब्द की गणना नदी नाम से करनी।

मूलः—सिन्धुवः २१ स्यन्दू प्रस्त्रवणे (भू० आ०) (स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च) (उणादि० १।११) इत्यु प्रत्ययः स्यन्दन्ते इत्यर्थः ॥

अर्थ—सिन्धुनदी जो चलने वाली होवे सो सिंधुनदी जाननी इस प्रकार सिंधुगङ्गा के माहात्म्य के वहुत प्रमाण वेद में विस्तार से आते हैं जिनको संग्रह करके हमने श्री सिन्धु सप्तनद, साधुबेला तीर्थ माहात्म्य" नामक पुस्तक छपवा दी है. जिसके पढ़ने से सिन्धुगंगा की प्राचीनता का स्पष्ट पता लग जाता है।

नोट—सबसे प्रथम मुसलमानों का हमला (धावा) सिन्धु देश में ही हुआ पश्चात् धीरे धीरे समस्त भारत को अपने अधिकार में कर लिया। वि० सं० ७६६ में मुहम्मद बिनकासिम ने सिन्धु के हिन्दू राजा दहर का वधकर अपना अधिकार जमा लिया, उस समय सिन्धु देश की राजधानी अरोड़ में थी। राजा दहर हिन्दू वीर क्षत्री बड़ी निर्भीकता से शत्रुओं से सामना करता हुआ स्वदेश प्रेम के वशीभूत हो रण भेड़ी बजा के एक दफे शत्रुदल को विचलित कर (खलवला) डाला। राजा दहर को वीरता का डंका आकाश तक बज रहा था उसकी तोपें मानों सम्पूर्ण संसार को पाताल में भेजने के लिये विश्व संहार कारी असंख्य ब्रज के सदृश्य गर्ज रहीं थीं। किंतु भावी वड़ी वलवान होती है जिसके वल से सोना, मिट्टी, मित्र, शत्रु चन्दन अग्नि होता है। यही हालत हिन्दू राजा दहर की हुई जो युद्ध में मारे गये, पश्चात् इसकी रानी ने भी अपनी सैना समेत अरिदल का मान मन्थन कर डाला किन्तु भावी बस सफलता न प्राप्त हुई—अन्त में जीत मुसलमानों की हुई। जिन्होंने अनाथ गऊ के समान हिन्दुओं को मसल डाला समस्त भारत आक्रान्त हो गया।

ऐसे उत्तमोतम पवित्र सिन्धु देश का अधः पतन होना किस हिन्दू के हृदय में आघात न पहुँचायेगा। सिन्धु देश की प्राचीन सभ्यता का प्रत्यक्ष उदाहरण 'मोहन जोदरो' नाम का प्राचीन नगर बता रहा है जो अभी २ निकला है जो जिला लाड़काने में है। भारत सरकार द्वारा इसकी खुदाई सन् १६२२ से १६२७ ई० तक हुई है जिसकी रिपोर्ट ७०० पृष्ठ की छपी है 'मोहन जो दरो' देखने से पता लगता है कि आज से कुछ पूर्व ६ हजार वर्ष के भारत सभ्यता का केन्द्र था उस समय के हिन्दू लोग कितने कला कुशल धर्म निष्ठ सुख और वैभव के समृद्धशाली थे मोहन जोदरो का विस्तार प्रसंग देखो ग्रन्थ 'श्री भारतीय-तीर्थ दिग्दर्शन' में

इस प्रकार भारतवर्ष का द्वार सिन्धु देश मुसलमानों के आधीन हो वि० सं० ७६६

से १०४२ तक २७३ वर्ष अर्वियों का वि० सं० १०४२ से १०८२ वि० तक ४० वर्ष कर्मैसिया जाति के मुसलमानों का, वि० सं० १०८२ से ११०८ वि० तक २६ वर्ष गजनवी का, वि० सं० ११०८ से वि० सं १४०८ तक ३०० वर्ष शुमरावंशका, वि० सं० १४०८से वि सं० १५७८ तक १७० वर्ष शामावंश का राज्य रहा—जिनकी राज्यधानी ठठ्ठा नगर हुई, इनका अन्तिम शासक फिरोजशाह था इसको मिरजाशाह बेग अर्गन ने जीत के अपनी राज्यधानी वि० सं० १५७८ में वक्खर जो रोहड़ी* सक्खर के बीच है वहां बनाई, तब से सिन्धु के दो भाग माने जाने लगे जो आज तक लोअर सिन्ध और अपर सिन्ध-के नाम से प्रसिद्ध हैं वि० सं० १५७८ से १६११ वि० तक ३३ वर्ष अर्गन मुसलमानों का राज्य रहा। इस प्रकार यह सिन्धु देश इसलामियों से पददलित होते २ अपना सर्व गुण गौरव नष्ट भ्रष्ट कर चुका था। मिरजा ईशाखान के समय मुसलमानी पीर फकीरों ने अपना प्रभाव हिन्दूओं पर इतना प्रबल पालिया था कि कोई हिन्दू पूजा पाठ तिलक हवन यज्ञ नहीं कर सकता था शंख बजाना राज आज्ञा के विरुद्ध था सिन्धु की हिन्दू जनता अपनी अन्तिम घड़ियां गिन रही थी। हजारों हिन्दुओं ने जो अपना पवित्र हिन्दू धर्म को झूठे विलासिता पर निवछावर करना पसन्द नहीं करते थे वह तलवारों को अपनी गरदन भेट कर दिया करते थे। हिन्दू-देवियों का बलात्कार सतीत्व नष्ट करना खेल सा बन गया था। ऐसे विकट समय में हिन्दू धर्म रक्षक कर्म वीर महा प्रभु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य का सिन्धु देश में आना डूबते को नौका मिलने सदृश्य था।

सिन्धुदेशीय हिन्दूनां कुर्वन् धर्मानु शासनम्।
रोहड़ीतश्च चालासौ शिष्य मण्डल मण्डितः ॥१३॥
सिन्धु मुल्लङ्घ्य सानन्दं शिकार पुरमागतः।
ततः क्वैटां ततश्चापि चमनञ्च मनोरमम् ॥१४॥

*इलियट और जैसन साहब का कहना है कि 'सिन्धु' में जहां की अधिकांश जनता अपने हिन्दू सनातन धर्म की अनुयाई थी अदालतें न थीं पीडित और सताई गई प्रजा की कुछ दादफरयाद न हो सकती थी, हर सरदार जो किञ्चित भी स्वतंत्र था वह मौत तक सजा दे सकता था, अमीर उमरा भी मृत्यु दण्ड देने के अधिकारी थे अमीर राज्य सम्बन्धी अपराधों का मन माना दण्ड दिया करते थे यदि हिन्दू अपराधी अदालत में मुसलमान बनना स्वीकार करले तो बड़े से बड़े दण्ड से छुटकारा पा जाता था हिन्दुओं के धार्मिक जलसे और जलूस कानून के विरुद्ध समझे जाते थे हिन्दुओं को घोड़ों पर चढ़ना अदालतों द्वारा बर्जित था, उन्हें बाजा तक बजाने की आज्ञा न थी (देखो सरस्वती इलाहाबाद भाग ३७ संख्या २ फरवरी सं० १९३६ का पृष्ट १८२)

लाड़काणा पुरीं भूयः सेवना नगरं ततः ।
लक्कीं समागतश्चन्द्रः नसरं नगरं परम् ॥१५॥

ठट्ठानाम पुरं धीरः समायातः शनैः शनैः ।
तत्रत्या हिन्दवः सर्वे म्लेच्छैः सर्वेषु कर्मसु ॥१६॥

अर्थ—सिन्ध देश में हिन्दुओं का उद्धार करते हुये भगवान् रोहड़ी से सखर-लीक चले। सिन्धु नदी को पार करके आप शिकारपुर पहुँचे, शिकारपुर से क्वैटा, क्वैटा से चमन, चमन से लौट लाड़काना, लाड़काना से सेवन, सेवन से लक्को, लक्को से नसरपुर, नसरपुर से ठट्ठा नगर में। आये ठट्ठा नगर सिन्धु में मुसलानों ने हिन्दुओं को बहुत तङ्ग कर रखा था ॥१३-१४-१५-१६॥

निरुद्धाः पीड्य मानाश्च लेभिरे सङ्कटं परम् ।
श्रीचन्द्राभ्यर्णमागत्य सर्वं कष्टं न्यवेदयन् ॥१७॥

अर्थ—हिन्दू कोई भी धार्मिक कृत्य नहीं कर सकते थे। हिन्दुओं ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास आकर अपना दुःख सुनाया ॥१७॥

खिन्न चित्तेन तेनाथ समाज्ञप्ता दयालुना ।
ध्मायन्तां सर्वतः शङ्खाः नाद्यन्तां घण्टिका अपि ॥१८॥

वाद्यन्तां वाद्यभेदाश्च दुन्दुभ्याद्याः समन्ततः ।
पूज्यन्तां देवताः सर्वाः स्वच्छन्द्येन न वो भयम् ॥१९॥

अर्थ—भगवान् के दिल पर मार्मिक चोट पहुँची। उन्होंने खुली आज्ञा दी कि जाओ अपने अपने घर तथा मन्दिरों में शंख घड़ियाल बजाओ, दुन्दुभि आदि सभी साज बजने दो। अपनी मन मर्जी पूर्वक देवताओं की पूजा करो, मत डरो निर्भय होकर घूमो ॥१८-१९॥

उच्चार्यन्तां वेदमन्त्राः सन्ध्या सन्ध्यायतां ध्रुवम् ।
स्वाहा काराः स्वधाकाराः श्रौषट् काराः वषट्कृतिः ॥२०॥
अग्नि होत्राणि यज्ञाश्च पञ्च यज्ञा यथा विधि ।
जायन्तां सर्व कर्माणि कुर्वन्तु वीत भीतयः ॥२१॥

अर्थ—सस्वर वेद मन्त्रों का उच्चारण करो। खूब प्राणायाम पूर्वक सन्ध्योपासन

करो। यथाविधि स्वाहाकार, स्वधाकार, श्रौषटकार, बषटकार, अग्निहोत्र यज्ञ और पञ्चयज्ञ आदि सत्कृत्य निर्भय पूर्वक करो ॥२०-२१॥

उच्छ्रीयन्तां ध्वजाः स्वैरं जयकारा भवन्तु च।
पूज्यन्तां सर्वथा गावः कामधेनु समः समाः ॥२२॥

अर्थ—मन्दिरों पर झण्डे लहराओ, ऊँचे ऊँचे स्वरों से जय जयकार करो। गो माताओं की सेवा करो ॥२२॥

त्यज्यतां मनसो ग्लानिः मान्यन्तां सर्व उत्सवाः।
देवतानां विधीयन्तां यात्रा निर्भीक मानसैः ॥२३॥
कोवा युस्मान् निरोद्धास्ति मयितिष्ठति गोसरि।
द्वादशात्मनि सन्दीप्ते दिवान्धाः प्रभवन्ति किम् ॥२४॥

अर्थ—मन की मलीनता छोड़ दो सब उत्सवोत्साह मनाओ। देव यात्रायें करो, आप को कोई नहीं रोकता जब तक मैं हूँ सूर्य की उपस्थिति में उल्लू क्या कर सकते हैं ॥२३-२४॥

तच्छ्रुत्वा ते तथा कुर्वन् हर्ष निर्भर मानसाः।
दृष्ट्वेदं यवनै र्गत्वा न्याया धीशः प्रबोधितः ॥२५॥

अर्थ—हिंदुओं ने भगवान् की अज्ञा का यथावत् पालन किया पर मुसलमान इसे कब सह सकते थे उन्होंने नमक मिर्च लगा बातको वढ़ायकर न्यायाधीश के पास शिकायत की ॥२५॥

दीर्घमन्युरसौ घोरः दन्तान्निष्पेषयन्रुषा।
म्लेच्छानाज्ञापयामास हिन्दूनां नाश हेतवे ॥२६॥
श्रीचन्द्राय ददौ गालीरुन्मत्तोऽसौ नराधमः।
व्यवहारं न जानाति केवलं सिद्धि गर्वितः ॥२७॥

अर्थ—वह बड़ा गुसैला था क्रूरता की तो साक्षात् मूर्ति था हिंदुओं को मारने के लिये मुसलमानों को हुकुम दे दिया गुस्से में आकर दाँत पीसने लगा और भगवान् को भी दो चार खरी खोटी कहीं बाबाजी व्यवहार को क्या समझें! तमासा दिखाकर भोलीभाली जनता को फुसला रहा है उसके पास कोई करामात नहीं है ॥२६-२७॥

तत्सर्वं हिन्दुनैकेन श्रीचन्द्राय निवेदितम्।
सोऽपि किञ्चित्स्मितं कृत्वा बभाषे धीरया गिरा ॥२८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास भी ये बातें एक हिन्दू ने पहुँचा दीं भगवन् हँसकर परम धैर्य से कहने लगे ॥२८॥

उन्मत्तो यः स्वयं लोके तथैवान्याश्च पश्यति ।
पीतिमानं पाण्डुरोगी सिते चीरे न पश्यति ? ॥२९॥

अर्थ—अन्धे को सब अन्धे दिखाई देते हैं पाण्डुरोग वाले को चारों ओर पीला ही पीला नजर आता है इसी प्रकार पागल को सब पागल दिखाई देते हैं ॥२९॥

अथ रात्रौ नया धीशः सहसोन्मत्ततां गतः ।
चुरमादाय हस्तेन स्वं वक्षो विददार सः ॥३०॥

अर्थ—रात होते ही वह न्यायाधीश पागल हो उठा और उसने छुरा लेकर अपनी छाती में ही मार के मर गया ॥३०॥

सर्वैम्लेच्छाश्च तद्दृष्ट्वाभय विस्फारितेक्षणाः ।
अत्याचारं जहुः सर्वं श्रीचन्द्रस्य प्रभावतः ॥३१॥

अर्थ—यह घटना देखकर मुसलमानों की आँखें फटी फटाई रह गईं। भय के मारे भगवान् के प्रभाव से अत्याचार करना छोड़ दिया ॥३१॥

सिन्धौ हिन्दु प्रजाः सर्वाः सुखिन्यो नष्टकण्टकाः ।
धर्मं चेरु सदा चाराः यथा कालं यथा विधिः ॥३२॥

अर्थ—सिन्ध में हिन्दू जनता सुख शान्ति से रहने लगी। यथा काल यथा-विधि अपने अपने धर्म का पालन करने लगी ॥३२॥

खं वेद वाण चन्द्रे श्री वैक्रमे कार्तिकेऽसिते ।
हुमायुः शेरशाहेन विजितो बलशालिना ॥३३॥

अर्थ—वि० सं० १५४० कार्तिक कृष्ण पक्ष में शेरशाह*सूरी ने हिमायूँ को जीता ॥३३॥

दिल्लीपुर्या विनिर्वास्य शशास स्वयमेव सः ।
दुःख गर्ते हिमायुश्च निपपात निराश्रयः ॥३४॥

अर्थ—हिमायूँ को दिल्ली से निकाल दिया। स्वयं वहाँ का राजा बन बैठा। हिमायूँ निराश्रित होकर दुःख के गम्भीर गढ़े में जा गिरा ॥३४॥

---

*सूरी इनकी जाति थी यह सूरी शब्द शौर शब्द का अपभ्रंस है कारण यह सब मुसलमान होने से प्रथम चन्द्रवंशी हिन्दू क्षत्रिय थे।

पर्यटन् स शनैः सिन्धौ ययौ श्रीचन्द्र सन्निधौ ।
तत्ते चाभय दानने रक्षितः सुखितोऽवसत् ॥३५॥

अर्थ—घूमता २ सिन्ध देश ठट्ठा नगर में आ निकला वहां भगवान् से भेंट हुई श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने उसे अभयदान दिया और वह सुख पूर्वक रहने लगा ॥३५॥

एकदा प्राञ्जलिः प्राह कष्टं नाशय मे विभो ! ।
कथं राज्यं पुनर्लप्स्ये कथंवा सुतमुत्तमम् ॥३६॥

अर्थ—एकदिन भगवान् से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे भगवन् ! कबतक मैं इस दशा में रहूँगा क्या मुझे मेरा राज्य दुबारा नहीं मिलेगा ? क्या मेरी किस्मत में राज्य का सुख नहीं वदा ? ॥३६॥

तमाह भगवांश्चन्द्रः सर्वं दास्यामि ते परम् ।
प्रति जानिहि पूर्वंवै हिन्दून्नो पीडयिष्यसि ॥३७॥

अर्थ—भगवान् ने कहा तुझे मैं सब कुछ दुबारा दे सकता हूँ पर तुम प्रतिज्ञा पूर्वक कहो कि 'मैं हिन्दुओं को तंग नहीं करूँगा" ॥३७॥

मर्यादायां च भिन्नायां भिन्नं राज्यं भविष्यति ।
याहि सम्प्रति सानन्दं, प्रतिज्ञांनैव विस्मरेः ॥३८॥

अर्थ—जिसदिन तुमने यह प्रतिज्ञा तोड़दी उसीदिन तुम्हारे वंश से राज्य चला जायगा जाओ पर प्रतिज्ञा न भूलना ॥३८॥

अमरकोट राज्यस्य सन्निधौ गम्यतां त्वया ।
मन्नाम कथ्यतां तत्र स नूनं सत्करिष्यति ॥३९॥

अर्थ—अब अमरकोट के राजा के पास तुम जाओ जाकर मेरा नाम ले देना जो वह हमारा सेवक है वह तुम्हारी बड़ी इज्जत करेगा ॥३९॥

अथासौ प्रीत हृदयः संस्पृश्य चरणौ गतः ।
तत्रतेनापि सत्कृत्य स्थापितो न्यवसत्सुखम् ॥४०॥

अर्थ—भगवान् को प्रणामकर हिमायूँ अमरकोट पहुँचा वहांके राजा ने आदर-पूर्वक अपने यहाँ उसको रखा उसे कोई कष्ट नहीं होने दिया ॥४०॥

अङ्काङ्क बाण चन्द्रे श्री वैक्रमे वाहुले सिते ।
अष्टम्यां हमिदावानू नाम्न्या गर्भात्सुतोऽभवत् ॥४१॥

अर्कबर इति पिता नाम चक्रे मुदान्वितः ॥
दिल्ल्यां स्वल्पैर्दिनैर्जाता यवनाः षट् च शासकाः ॥४२॥

अर्थ—वि० सं० १५९९ (वाहुल) कार्तिक शुक्ल अष्टमी को हमीदावानू नामकी बेगम के गर्भ से लड़का पैदा हुआ उसके पिताने उसका नाम अकबर रखा इस थोड़े से समय के अन्दर ही अन्दर दिल्ली के छे मुसलमान बादशाह बदल गये ॥४१-४२॥

राज्यं शैथिल्यमायातं कलहेन परस्परम् ।
समयं समवेच्यासौ हिमायू रणमाचरत् ॥४३॥

अर्थ—परस्पर के कलह से राज्य शिथिल हो गया मौका पाकर हुमायूँ ने चढ़ाई करदी ॥४३॥

द्वादशाब्दोऽप्यकर्वरः सहायं पितुरा चरत् ।
सिकन्दरं विजित्याशु शासनं स्वं चकार सः ॥४४॥

अर्थ—बारह वर्ष के आयु में ही अकबर ने भी अपने पिता हिमायूँ की पूरी पूरी मदद की सिकन्दर को हराकर राज्य की बागडोर अपने हाथ ली ॥४४॥

अङ्कांक बाण चन्द्रे श्री वैक्रमे वत्सरे शुभे ।
सिंहासनं समासीनः हुमायुः पुत्र सम्मतः ॥४५॥

अर्थ—वि० सं० १५६६ कार्तिक शुक्ला ८ (रज्जब ६४६ हि०) शुभ दिन में हिमायूँ अपने पुत्र की सलाह से राज्य गद्दी पर बैठा ॥४५॥

स्वल्पान्येव दिनान्येष दिल्ली शासितवान् सुखम् ।
पुस्तकालय सोपाना त्पतित्वा पञ्चातां गतः ॥४६॥

अर्थ—इसने थोड़े ही दिन दिल्ली का राज्य किया। एक दिन पुस्तकालय (लायब्रेरी) की सीढ़ियों से गिरकर इसकी मृत्यु हो गई ॥४६॥

ऋतुबाण बाण चन्द्रेखिष्ट्रीये हायने शुभे ।
बाल्ये कालेऽप्यकर्वरः राज्यं चक्रे स बुद्धिमान् ॥४७॥

अर्थ—१५५६ ईसवी सन् में ही अकबर (छोटी उम्र में ही) राज्य गद्दी पर बैठा ॥४७॥

श्रीचन्द्रस्य प्रभावेण न हिन्दून् समपीडयत् ।
कम्बोज विजयार्थं स ननकाना मेकदागत् ॥४८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के प्रभाव से उसने किसी भी हिन्दू को तङ्ग नहीं किया काबुल की विजय करने के लिये जब एक बार अकबर गया वहाँ से लौटकर आते हुये ननकाना में भगवान् के आकर दर्शन किये ॥४८॥

समायाद्विजयी भूत्वा ननकानायांऽसौ पुनः ।
भोक्तॄणां पङ्क्तिमालोक्य विस्मयं परमं ययौ ॥४९॥
एतावतां भोजनादि प्रबन्धं कः करोति नु ।
व्यय एव महानेष आयो ना लोक्यते क्वचित् ॥५०॥

अर्थ—वहां साधुओं की भारी संख्या में लगी हुई पंगत को देखकर बड़ा विस्मित हुआ और कहने लगा इनके खाने पीने का कौन प्रबन्ध करता है इस पर काफी खर्च उठता होगा। यहाँ पर आमदनी का जरिया कोई नहीं दिखाई दे रहा ॥४९।५०॥

ग्रामाद्द्वादश दानाय प्रस्तुतास्तेन मानसे ।
ज्ञात्वा श्रीचन्द्र ऊचे तं सर्वे स्वंकर्म भुञ्जते ॥५१॥

अर्थ—अकबर ने अपने मनमें संकल्प किया ही था कि मैं श्री गुरुजी को बारह गाँव भेंट में दे दूँ झट भगवान् ने उसे बोलने का अवसर न देकर उत्तर दिया "सब अपना अपना कर्म भोगते हैं" इसमें आपको कोई चिन्ता करने की आवश्यक्ता नहीं है ॥५१॥

यदि ते दातुमिच्छास्ति दीनेभ्यो दीयतां धनम् ।
प्रसन्नोऽस्मि तवानेन भक्ति भावेन मानद ॥५२॥

अर्थ—यदि आप मेरे को कुछ देना ही चाहते हैं तो गरीबों को धन दो हे बादशाह आपके इस सत्कार से ही हम संतुष्ट हैं ॥५२॥

गम्यतां मत्प्रसादेन स्थिरं राज्यं भविष्यति ।
नो हिन्दवः पीडनीयाः सावधानेन कर्हिचित् ॥५३॥

अर्थ—जाओ तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा सावधान रहना कभी हिंदुओं को नहीं सताना ॥५३॥

ततो जहांगीरनामा शाहजहां ततः परम् ।
श्रीचन्द्रस्य प्रभावेण सर्वे ते हिन्दु रक्षकाः ॥५४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के आशीर्वाद के प्रभाव से अकबर के जहाँगीर और जहांगीर के शाहजहां ये सभी बादशाह हुए इनकी बादशाहत में हिन्दू सताये नहीं गये ॥५४॥

एतेषां समये नासी द्विवादो हिन्दुम्लेच्छयोः ।
हिन्दूनाञ्च समोभागः ह्यधिकारि पदेस्वपि ॥५५॥

अर्थ—इनके शासनकाल में हिंदू मुसलमानों में कोई झगड़ा नहीं था सभी योग्यपदों में हिंदुओं के समान अधिकार थे ॥५५॥

औरङ्गजेव समये हिन्द्वः परि पीडिताः ।
श्रीचन्द्र देव शापेन राष्ट्रं भ्रष्टं तदैवहि ॥५६॥

अर्थ—औरंगजेब ने प्रतिज्ञा का उल्लंघन करके हिंदुओं को सताया था अतएव भगवान् के शाप से उसका राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया ॥५६॥

इदं चरित्रं परमं पवित्रं, श्रीचन्द्रदेवस्य गुणैस्ततञ्च ।
श्रुत्वा पठित्वा च विना प्रयासं जनो मनोज्ञानि फलानि भुंक्ते ॥५७॥

अर्थ—इस चरित्र में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के विचित्र गुणों का दिग्दर्शन कराया गया है जो प्राणी इसे पढ़ता या सुनता है उसको अनायास संसार के मनोज्ञ पदार्थ मिलते हैं ॥५७॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे सिन्ध देश नगर ठठ्ठा आगमनं हिमायुँ अकबर राज्य प्रदानं प्रसंग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी एकोनविन्शति किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥१६॥

॥ विंशतिकिरण प्रारम्भः ॥

रस-बाण बाण चन्द्रे वैक्रमे वत्सरे शुभे ।
मार्ग शीर्षेऽसिते पक्षे चतुर्थ्यां भौमवासरे ॥१॥

बुद्धगया नगर्यां च ह्यौत्कले ब्राह्मणान्वये ।
श्री भक्तभगवांजातः सर्वलक्षण लक्षितः ॥२॥

अर्थ—वि० सं० १५५६ मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थी मङ्गलवार के दिन बुद्ध गया नगरी में उत्कल वंश में सब शुभ लक्षणों से युक्त श्री भक्त भगवान् जी पैदा हुये ॥१।२॥

गृहंत्यक्त्वा यति र्भूत्वा तपस्तेपे महाद्भुतम् ।
बुद्धगया मन्दिरे च, मठा धीशोऽभवत्पुनः ॥३॥

अर्थ—इन्होंने घर छोड़कर सन्यास लेलिया और अति कठोर तपस्या की अनन्तर आपको बुद्ध गया मन्दिर का महन्त बनाया गया नाम भगतगिरि जी पड़ा ॥३॥

एकदा भक्त भगवान् नाम्ना भक्त गिरिस्तदा ।
समण्डलीकः सानन्दं हिङ्गलाजं गतः सुधीः ॥४॥
तत्र ज्ञाता तेन सार्द्धं रामो नामैक आगतः ।
सिन्धु कच्छादि देशेषु तन्त्रं तेन प्रचारितम् ॥५॥

अर्थ—एकदा भक्त भगवान् (उस समय आपका नाम भक्त गिर जी था) समण्डलीक हिंगलाज की यात्रार्थ चलते भये उनके साथ रामदास नाम वाला एक साधु तान्त्रिक आया था उसने सिन्ध कच्छ देश में तन्त्र विद्या का काफी प्रचार किया ॥४।५॥

भक्त गिरिर्महा भागः शनैः पञ्चाम्बु मागतः ।
श्रीचन्द्रस्य श्रुतं नाम, दर्शनेच्छां चकार सः ॥६॥

अर्थ—भक्तगिरि जी हिंगलाज जाते हुये धीरे २ चल पञ्जाब में आय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का नाम इन्होंने सुना तब दर्शनों की इच्छा प्रकट की ॥६॥

लवपुर्यां समागत्य ननकाना गतः पुनः ।
तदानीं धर्मचन्द्रश्च मठाधीशोऽभवत् कृती ॥७॥

अर्थ—आप लहौर में आकर ननकाना पहुँचे उस समय ननकाना के उत्तराधिकारी श्री महन्त धर्मचन्द्र जी उदासीन थे ॥७॥

धर्मचन्द्रोऽपि तं सम्यक् सच्चकार महामतिः ।
भोक्तुमामन्त्रया मास शिष्य मण्डल मण्डितम् ॥८॥

अर्थ—श्रीमहन्त धर्मचन्द्र जी ने इनका सहित मण्डली के योग्य सत्कार किया मण्डली सहित इन्हें भण्डारे में भोजन करने को कहा ॥८॥

विशालां पंक्तिमालोक्य मनसा विस्मयं ययौ ।
सिद्धिं दर्शयितुं स्वीयां परीक्षां कर्तुमुद्यतः ॥६॥

अर्थ—अत्यन्त विशाल साधु पंगत को देख कर भक्त गिरि जी हक्के-बक्के रह गये महन्त श्री धर्मचन्द्र जी उदासीन की परीक्षा करने तथा अपनी सिद्धि दिखाने की ठान ली ॥६॥

निधाय पुरतः स्वस्य भिक्षा पात्रं ततः परम् ।
उवाच पाचका नेतत्पात्रं मे भ्रियतामिति ॥१०॥

अर्थ—भक्त गिर जी अपने सामने चिप्पी रख कर रसोइयों को बोले मेरा यह भिक्षा पात्र भर दो ॥१०॥

अथ तैः पाक शालायाः सर्वमन्नं समापितम् ।
ततोऽपि न भृतं पात्रं तद् दृष्ट्वा विस्मिताः समे ॥११॥

अर्थ—भण्डारियों ने रसोई का सारा भोजन (अन्न) पात्र में डाल दिया पर उनका पात्र नहीं भरा यह देख सभी आश्चर्यत रह गये ॥११॥

सूदैरेष समाचारः धर्मचन्द्राय बोधितः ।
तेन गत्वा स्तोकमन्नं भिक्षा पात्रे निपातितम् ॥१२॥

अर्थ—भंडारी लोग श्री महन्त धर्मचन्द्र जी के समीप पहुँचे और सारी बात कह सुनाई उन्होंने जाकर श्री ११०८ जगद् गुरु श्रीचन्द्र जी का नाम लेकर थोड़ा सा अन्न उनके पात्र में छोड़ दिया ॥१२॥

तेनैवान्नेन तत्पात्रं पूर्णं दृष्ट्वाऽखिला जनाः ।
आश्चर्यं परमं याताः भक्तोऽपृच्छत्प्रभावितः ॥१३॥

अर्थ—उसी थोड़े अन्न से ही पात्र भर गया यह देख लोग परस्पर आश्चर्य से कानाफूसी करने लगे भक्त गिरिजी इस चमत्कार से बहुत ही प्रभावित हुये और लगे पूछने ॥१३॥

प्रभावोऽयं महाभाग कस्यन्वेष महाद्भुतः ? ।
न च केनापि यत्पूर्णं तत्पूर्णं पात्र तेऽद्यमे ॥१४॥

अर्थ—हे महाभाग आप कहें यह सब किसका प्रभाव है जो पात्र आज तक किसी से भी नहीं भरा था आज इसे आपने थोड़े से अन्न से भर दिया है ॥१४॥

धर्मचन्द्रस्ततः प्राह श्रीचन्द्रस्यैं तदद्भुतम् ।
चरितं येन ते पात्रं पूर्णं पूर्णा मनोरथाः ॥१५॥

अर्थ—श्री महन्त धर्मचन्द्र जी बोले यह सब मेरे सद्गुरु श्री ११०८ भगवान् श्रीचन्द्र जी महाराज की एक कृपा का तुच्छ प्रसाद है जिससे आपका पात्र पूर्ण होगया और साथ ही पूर्ण होगये आपके सर्व मनोरथ ॥१५॥

द्रष्टुमिच्छामि तं चन्द्रं, कास्ते भूरि प्रभाववान् ? ।
धर्मचन्द्रश्चतं प्राह यस्या स्त्वं दर्शनेच्छुकः ॥१६॥

अर्थ—महन्त भक्त गिरजी ने कहा मैं उन महा प्रभु योगीराज सिध्देश्वर प्रभाव शाली श्री ११०८ जगगुरू श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन करना चाहता हूँ वे आज कल कहाँ हैं यह सुन श्रीमहन्त धर्मचन्द्र जी उदासीन ने कहा वह आज कल ठट्ठानगर सिन्धु में विराज रहे हैं वहाँ ही उनके दर्शन होंगे ॥१६॥

हिङ्गलाजाभिधा देवी देवस्य सेविकाऽनिशम् ।
तच्छ्रुत्वा सौ भक्त गिरिः मण्डली मण्डितो विभुः ॥१७॥

अर्थ—जिसदेवी के दर्शनों के लिये आप इतने उत्सुक हैं वह हिंगलाज देवी श्री गुरुदेव जी की नित्य सेवा करने आती है यह और भी आश्चर्य भरी बात सुन भगत गिरिजी को भगवान् के दर्शनों की उत्कण्ठा प्रबल हो उठी आप तुरन्त ही अपनी मण्डली के समेत चलपड़े ॥१७॥

ठट्ठा नगरमायातः श्रीचन्द्रं द्रष्टु मुत्सुकः ।
चन्द्रं चन्द्रनिभं दूराद्, विलोक्याति मुदं ययौ ॥१८॥

अर्थ—ठट्ठा-नगर में आकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दूर से ही देदीप्य मुखारविन्द को देख मन एक दम प्रेम-श्रद्धा से द्रवीभूत हो प्रसन्न हो गया ॥१८॥

नत्वा स्वस्थे स्थिते तस्मिन् श्रीचन्द्रो भगवान् स्वयम् ।
धीरं मधुरया वाचा तमुवाच प्रसन्नधीः ॥१९॥

अर्थ—जब भक्त गिरिजी प्रणाम करके थोड़ी देर बैठे रहे तो भगवान् स्वयं मधुर बाणी से गम्भीरता पूर्वक बोले ॥१९॥

अपि सर्वं सकुशलं देवीं द्रष्टुश्चगम्यते ।
श्वः प्रातरेव चात्रैव दर्शनं सा प्रदास्यति ॥२०॥

अर्थ—आप सब लोग प्रसन्न तो हैं जिस हिंगलाज देवी के दर्शनों के लिये आप जा रहे हैं कल प्रातःकाल स्वयं आकर देवी यहीं आपको दर्शन देगी ॥२०॥

अथ प्रातरसौ वृद्धामग्नि कुण्डस्य सन्निधौ ।
मार्जनीं कर आदाय मार्जयन्ती मलोकयत् ॥२१॥

अर्थ—प्रातःकाल एक बुढ़िया अग्निकुण्ड (धूने) के पास झाड़ू दे रही थी यह भक्त गिरजी ने देखा ॥२१॥

तस्या समीपमागत्य प्रार्थयामास सादरम् ।
नमस्तुभ्यं महामाये दिव्यां दर्शय स्वाकृतिम् ॥२२॥

अर्थ—सेवामें आकर भक्तगिरि ने प्रार्थना की कि हे महामाये ! मैं आपके चरणों में सविनय प्रणाम करता हूँ आप मुझे अपना दिव्यरूप दिखायें ॥२२॥

ततोऽसौ दर्शयामास दिव्यं रूपं स्वमव्ययम् ।
त्वयि वत्स प्रसन्नास्मि सिध्यन्तु ते मनोरथाः ॥२३॥

अर्थ—तदनन्तर देवी ने अपना दिव्य अव्यय स्वरूप दिखाया और कहा हे वत्स मैं तुमपर अतीव प्रसन्न हूँ तेरे सब मनोरथ पूर्ण हों ॥२३॥

नित्यमायामि चन्द्रस्य सेवार्थं मनुजाकृतेः ।
शङ्करस्यावतीर्णस्य जगदुद्धार हेतवे ॥२४॥

अर्थ—मैं श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी की सेवार्थ प्रतिदिन आती हूँ क्योंकि ये मनुष्य रूपमें साक्षात् श्री शङ्कर जी ही अवतरित हुये हैं और तुमको भी यदि अपना जन्म सफल करना है तो इनकी शरण पड़ जाओ ॥२४॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी भक्तश्च भक्ति संयुतः ।
श्रीचन्द्राभ्यर्णमागत्य नत्वा चोपविवेश सः ॥२५॥

अर्थ—ऐसा कहकर देवी अन्तर्धान हो गई भक्त गिरजी ने श्रीचन्द्र भगवान् के पास आकर भक्ति पूर्वक प्रणाम किया और बैठ गये ॥२५॥

प्राञ्जलि हृष्टचित्तश्च शिष्यी कर्तुमयाचत ।
ओमित्युक्त्वा च चन्द्रोऽपि दीक्षया मास तन्द्रुतम् ॥२६॥

अर्थ—हाथ जोड़कर गुरुमन्त्र दीक्षा देने की बहुत प्रार्थना को भगवान् ने द्रवित होकर उन्हें दीक्षित किया ॥२६॥

चन्द्राकाशरसेन्द्रौ श्री वैक्रमे कार्तिके सिते।
पूर्णिमायां भक्ति युक्तः भक्तोऽभूच्छिष्य सत्तमः ॥२७॥

अर्थ—वि० सं० १६०१ कार्तिक पूर्णिमा को भक्त गिरजी ने गुरु मन्त्र लिया था ॥२७॥

श्रीचन्द्रोभगवांस्तस्य भक्त भगवन्नामनः।
चक्रेऽभिधां विधानज्ञः विधिवत्प्रीत मानसः ॥२८॥

अर्थ—श्री११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने खुश होकर उनको अपना चेला बनाय उदासीन भेष में लेकर नाम भक्त गिरि से बदल भक्त भगवान् रखा ॥२८॥

शिष्यी भूतञ्च तं दृष्ट्वाषष्टि युक्ता शतत्रयी।
शिष्याणां शिष्यतामागाद्भक्तस्यैव महात्मनः ॥२९॥

अर्थ—भक्त गिरजी को शिष्य हुआ देखकर बाकी उनके चेले तीन सौ साठ साधुओं ने भी महात्मा भक्त भगवान् जी से ही गुरु दीक्षा ले उदासीन साधु बन गये ॥२९॥

पौत्र शिष्यानिमान्दृष्ट्वा श्रीचन्द्रो हृष्ट मानसः।
धर्म प्रचार कार्यार्थं प्रेषयामास दिक्षुतान् ॥३०॥

अर्थ—भगवान् श्रीचन्द्र जी महाराज ने अपने इन पौत्र शिष्यों को हिन्दूधर्म प्रचार के लिये दिग्दिगन्तरों में भेज दिया ॥३०॥

ते च दिङ्मण्डलं याताः मठान् नाना विधान् मुदा।
स्थापयामासुरव्यग्राः अग्रण्यां विपुलैर्गुणैः ॥३१॥

अर्थ—ये लोग चारों ओर फैल गये इन्होंने हिन्दू धर्म का स्थायी (ठोस) प्रचार किया स्थान स्थान पर अपने उदासीन मठ बनाये ॥३१॥

धर्म चर्चा दिवारात्रं येत्राद्यापि प्रवर्तते।
सत्क्रियन्ते च सन्तोऽपि पूज्यन्ते देवता अपि ॥३२॥

अर्थ—जिन उदासीन मठों में आज भी पूर्ववत् धर्मचर्चा का क्रम चालू है जहाँ देवता और साधुओं का योग्य पूजन प्रति दिन होता रहता है ॥३२॥

श्रीचन्द्रो भगवान् प्रीतः, भक्तं प्राह स भक्तिकम् ।
योग जिज्ञासु मालोक्य योगं वक्ष्यामि ते हितम् ॥३३॥

अर्थ—एक समय भगवान् ने भक्त भगवान् को योग के योग्य अधिकारी समझ कर योग की इस प्रकार से शिक्षा दी ॥३३॥

चतुरङ्गुल विस्तारं हस्त पञ्च दशायतम् ।
गुरो पदिष्ट मार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनै ग्रसेत् ।
पुनः प्रत्यः हरेच्चैत दुदितं धौति कर्मतात् ॥३४॥

अर्थ—योग शब्द का अर्थ है जुड़ना यह बात पाद्म-संहिता १-२-६ में कही है सो योग करने में सब से प्रथम नेती धोती आदि षट कर्म करने उचित हैं चार अंगुल चौड़ा १५ हाथ लम्बा वस्त्र महीन स्वच्छ लेकर प्रथम गर्म जल से धो गुरु के द्वारा उपदेशित मार्ग से शनैः २ खा (निगल) जाय अर्थात् प्रथम दिन एक हाथ दूसरे दिन दो हाथ तीसरे दिन तीन हाथ इसी प्रकार एक एक हाथ की वृद्धि से खाने का अभ्यास करे वस्त्र का एक सिरा भली प्रकार से ढाढ़ों में दाब के नौली कर्म से उदर में भली प्रकार से चला के पुनः शनैः २ निकाले यह कर्म धोती कहाता है इससे स्वास कास प्लीहा, कुष्ट आदि रोग नाश होते हैं ॥३४॥

नाभि दघ्नजले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः ।
आधाराकुञ्चनं कुर्यात् चालनं वस्ति कर्मतत् ॥३५॥

अर्थ—नाभि प्रमाण जो नदी आदि का जल उसमें स्थित गुदा के मध्य बाँसकी नली जिसका छिद्र कनिष्टिका अंगुली प्रमाण हो छै अंगुल की लेकर चार अंगुल गुदा में प्रवेशकर उत्कट आसन रक्खे (दो पार्ष्णी के ऊपर अपने नितम्ब पादों की अंगुलियों से बैठने को उत्कट आसन कहते हैं) इस आसन पर बैठकर आधाराकुंचन करे अर्थात् जैसे बाँसकी नली में जल प्रवेश होवे सो करे भीतर प्रवेश किये हुये जलको नौली कर्म से चलाकर त्याग दे इस उदर के धोने को वस्ति कर्म कहते हैं, यह धोती और वस्ती भोजन से प्रथम ही करना उचित है इससे गुल्म, प्लीहा जलोदर, वात, पित्त, कफ, इनके द्वन्द सम्पूर्ण नष्ट होवे हैं यह वस्ति कर्म, रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र, तथा पञ्च ज्ञानेन्द्रिय पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन बुद्धि चित्त अहंकार सबको प्रसान्त करता है ॥३५॥

नासिका मध्य सुत्रं च विधानंशास्त्र मेवच ।
प्राणायामं पूरकं च वायु रेचन सिञ्चनम् ॥३६॥

अर्थ—भली प्रकार चिकने सूत को नासिका के नल में डालकर मुखसे निकाले यह सूत १०-१५ तार का लेना, इसका विधान इस प्रकार है कि सूत के प्रान्त (किनारे) को नासिका के रन्ध्र में प्रविष्ठ करके दूसरी नासिका के पुटको अंगुली से रोक के पूरक प्राणायाम करे फिर मुख से वायु का रेचन करे, इस प्रकार करते करते मनुष्य के मुख में सूत का प्रान्त आ जाता है तब मुख से आये सूत्र के छोर को तथा नासिका के बाहर टिके छोरको शनैः २ चलावे इसी प्रकार दोनों नासिका के छेदों से करे। कई दफे ऐसा करने से नेति कर्म सिद्ध होता है यह नेति क्रिया कपाल को शुद्ध करती है नासिका के मल को दूर करती है इस नेतीक्रिया से दिव्य-दृष्टि होती है ॥३६॥

त्राटकं एकाग्रचितं निश्चलं दृष्टि धार्यतम् ।
सूक्ष्म लत्वा दृश्यन्ति अश्रुपातं त्यजाम्यहम् ॥३७॥

अर्थ—एकाग्र चित्त हुआ निश्चल दृष्टि से सूक्ष्म पदार्थ को तब तक देखे जब तक अश्रुपात न हो यह त्राटक नेत्र रोगों का नाशक है ॥३७॥

नत्वा वेगेन कंधस्य उदरे सव्य मानसः ।
अप सव्य भ्रमाये च नौली कर्म विधानतः ॥३८॥

अर्थ—कन्धे को निवाकर अत्यन्त वेग से उदर को सव्य तथा अपसव्य भ्रमावे यह नौली कर्म मन्दाग्नि को नाश कर अन्न को भली भांति पाचन करता है ॥३८॥

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेच पूरौ स सम्भ्रमौ ।
कपाल भाति विख्याता कफ दोष विशोषणि ॥३९॥

अर्थ—एक वार अत्यन्त शीघ्रता से रेचक पूरक प्राणायाम को करना यह कपाल भांती क्रिया कफ दोषविनाशक है उपरोक्त छः कर्मों को भली भांति कर लेने के पश्चात् आसन लगाना चाहिये ॥३९॥

यमाश्च नियमाश्चैव ह्यासनानि यथा क्रमम् ।
प्राणा यामाश्चतुर्भेदाः प्रत्याहारोऽपि चैकधा ॥४०॥
धारणा ध्यानमाख्यातं समाधिरष्ट मोमतः ।
इमान्यङ्गानि योगस्य पुरुषस्येव भान्ति हि ॥४१॥

अर्थ—१-यम' २-नियम, ३-आसन, ४-प्राणायाम (चार प्रकार का) ५-प्रत्याहार ६-धारणा, ७-ध्यान, ८-समाधि ये योग के आठ अंग हैं इनके बिना योग पंगु है जैसे अङ्गहीन

३३

मनुष्य, (स्मरण रहे मुझे बड़े बड़े साधक मिले जिनकी वाह्य तपस्या को देख कर चकित हुये बिना नहीं रह सकते परन्तु उन्हें आत्म सन्तुष्टि नहीं मिलती कारण कि वह लोग इन शास्त्रीय नियमों का पूर्णतया पालन नहीं करते कष्ट से बचने के कारण योग क्रिया को यथावत् नहीं करते तभी पूरा योग नहीं उतरता ॥४०।४१॥

मूल—अहिंसा सत्य मस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चैव यमादश ॥६॥ } जावालादर्शनोपनिषद्, १ खण्ड

अर्थ—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, (धैर्य) दया आर्जव, (बल) मिताहार*१ और शौच ये दस यम के साधन (अङ्ग) कहे हैं ॥६॥

यमादीनष्ट सेवित्वा सिद्धिं याति सुखं पुमान् ।
निर्विकल्पे समाधौ च पुनर्जन्म न विद्यते ॥४२॥

अर्थ—यमादि आठ अंगों का यथा विधि सेवन करने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है न ‍िकल्प समाधि होनेपर योगी को फिर जन्म मरण के चक्र में नहीं आना पड़ता ॥४२॥

आसनं प्राण संरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधि रेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ॥४३॥

अर्थ—आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, योगके षट्अङ्ग बताये हैं संसार में जितने जीव हैं उतने ही आसन होते हैं पर योग शास्त्र वालोंने चौरासी आसन माने हैं, उनमें भी मुख्य दो आसन-सिद्धासन पद्मासन माने गये हैं ॥४३॥

---

*१ मिताहार भली प्रकार स्निग्ध (चिकना) और मधुर सात्विकी भोजन से उदर के दो भाग अन्न से पूर्ण करे और एक भाग जल से चौथा भाग प्राण वायु के चलने निमित्त खाली रक्खे, इस विधिको मिता हार कहते हैं सात्विकी भोजन की प्रशंसा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता अ० १७ में की है

आयुः सत्व वलारोग्य सुखप्रीति विवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धा स्थिराहृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः ॥८॥

अर्थ—आयु, सात्विक वृत्ति वल, आरोग्य सुख और प्रीत की वृद्धि करने वाले रसीले स्निग्ध शरीर में भिद कर चिर काल तक रहने वाले और मन को आनन्द दायक अहार सात्विक मनुष्य को प्रिय होते हैं ॥८॥

'तत्रस्थिर सुखमासनम् ॥४६॥ पतञ्जलियोग,
सुखासनसमाख्यश्च ॥२॥

अर्थ—जिसमें सुख पूर्वक शरीर व आत्मा स्थिर हो वह आसन कहा जाता है।

येन केन प्रकारेण सुखं धैर्यं च जायते।
तत्सुखासनमित्युक्त, मशक्तस्तत्समाश्रयेत् ॥४४॥

अर्थ—जिस प्रकार से शरीर सुख तथा मन में धैर्य आवे उसी प्रकार से बैठने का नाम सुखासन कहा गया है अशक्त पुरुष सुखासन काही अधिक सहारा लेते हैं ॥४४॥

आसनं विजतं येन जितं तेन जगत्रयम्। जाबालदर्शनोपनिषत्

अर्थ—जिन्होंने आसन जीत लिया है उन्होंने त्रैलोक्य जीत लिया समझना इससे दृढ़ासन होने का सदा अभ्यास करना इस प्रकार आसन साध पांच घण्टा २४ मिनट स्वास रोकने से प्राणायाम सिद्ध होगा।

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोग क्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यास योगेन सर्व रोग समुद्भवः ॥४५॥

अर्थ—पूर्ण गुरु से बताया हुआ युक्ति युक्त प्राणायाम सर्वरोग क्षयकारी होता है यही प्राणायाम विना गुरु के बताये मनमानी अनाब सनाब अयुक्त क्रिया द्वारा किया प्राणायाम अनेक रोग उत्पादक होता हुआ प्राण घातक बन बैठता है इसलिये पूर्ण योगाभ्यासी गुरु उदासीन के बिना योग क्रिया कदापि न करनी चाहिये ॥४५॥

प्राणापान समायोगः प्रणायाम इती रितः।
प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचक पूरक् कुम्भकैः ॥४६॥

अर्थ—अपने देह की जो जीवन अवस्था है उसको प्राण कहते हैं और उस अवस्था के अवरोध को आयाम कहते हैं यह है प्राणायाम का अर्थ, सो काल के जीतने की इच्छा वाला साधक पुरुष प्राण वायु के अभ्यास में तत्पर रेचक कुम्भक और पूरक भेद से सावधानता पूर्वक प्रणायाम करे जब तक प्राणवायु शरीर में बाध्य है अर्थात् स्वास और उच्छ स्वास और क्रिया से शून्य है, तथा जब तक अन्तः करण (निराकुल विक्षेप रहित) सावधान है, इतने समय भृकुटियों के मध्य अन्तः करण की वृति है तब तक काल का भय कदापि नहीं होता इस लिये योगी स्वाधीन मृत्यु होता है जब प्राणवायु का सुषुम्ना के मध्य संचार होने पर मन की स्थिरता हो जाती है उसको ही मनोन्मनी (उन्मनी) अवस्था कहते हैं ॥४६॥

उदासीनस्ततो भूत्वा सदाभ्यासेन संयमी ।
उन्मनी कारकं सद्यो नाद मेवाव धारयेत् ॥४०॥ } नाद विन्दूपनिषत्

अर्थ—इस लिये कुम्भक प्राणायाम प्रवृति हो योगाभ्यासी उदासीन साधु उन्मनि अवस्था की सिद्धि के लिये अनेक प्रकार के सूर्य भेदनादि आठ प्रकार के भिन्न भिन्न प्राणायाम करते हुये सदा संयम पूर्वक अभ्यास किया करते हैं ॥४०॥

नोट—प्राणायाम के सिद्ध हो जाने के पश्चात् प्राणायाम का दुगुना अर्थात् १० घण्टा ४८ मिनट स्वास रोकने पर प्रत्याहार सिद्ध होता है। तथा प्रत्याहार का दुगुना २१ घं० ३६ मिनट स्वास रोकने से धारणा, धारणा से दुगुना ४३ घण्टा* १२ मिनट स्वास रोकने से ध्यानावस्था सिद्ध होती है, ध्यानावस्था से दुगना ३ दिन १४ घण्टा २४ मिनट स्वासावरोधन करने से अंतिम समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। समाधि सिद्ध होने पर सब सिद्धियां आपसे आप आ उपस्थित होती हैं आसन बांधने से देह का व्यापार छूटता हुआ प्राण और इन्द्रियों में व्यापार बना रहता है तथा प्रत्यहार धारण ध्यान संप्रज्ञात समाधि, सिद्ध होने से मानसिक व्यापार का त्याग हो जाने पर बुद्धि में व्यापार टिकता है ॥

समाधिः समता वस्था जीवात्म परमात्मनोः ।
संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्म परमात्मनो ॥ } याज्ञवल्क्य

अर्थ—संप्रज्ञात समाधि के दीर्घ काल तक अभ्यास करने पर बुद्धि के व्यापार का भी त्याग हो निर्विकार स्वरूप ब्रह्म में स्थिति हो जाती है इसको सहजावस्था कहते हैं।

प्राण वायु जब सुषुम्ना † में बहने लगता है तथा मन देश काल वस्तु के परिच्छेद से शून्य ब्रह्म में प्रविष्ट हो जाता है उस समय चित्त की वृत्ति का निरोध का ज्ञान योगी प्रारब्ध सहित

---

* पाठकों के समझ में जल्दी आ जाने वास्ते घड़ी पल की जगह हिसाब लगा के घण्टा और मिनट लिखे गये।

†इड़ापिङ्गला सुषुम्नास्तिस्रो नाड्यः प्रकीर्तिताः ।
इड़ावामेस्थिता भागे पिङ्गला दक्षिणेस्थिता ॥५५॥
सुषुम्नामध्यदेशेतु प्राणमार्ग स्त्रिय स्मृताः ॥५६॥ } ध्यान विन्दूपनिषत्

अर्थ—इड़ा पिंगला सुषुम्ना तीन नाड़ी हैं इड़ा वाम भाग में स्थित है पिंगला दक्षिण भाग में इड़ा पिंगला के मध्य में सुषुम्ना है इस सुषुम्ना के छः स्थान में छः शक्ति हैं इन के नाम इस प्रकार हैं डाकनी हाकिनी काकिनी लाकिनी राकिनी और शाकिनी हैं इन्हीं छः स्थान में छः पद्म हैं उनके नाम यह हैं। आधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्ध और आज्ञा (शिव संहिता द्वितिय पटल २७)

सम्पूर्ण कर्मों को निर्मूल कर देता है जिस प्रकार सिन्धुदेश का नमक जल के संयोग से साम्यावस्था को प्राप्त होता है उसी प्रकार आत्मा और मन की एकता होने से आत्म रूप को प्राप्त हो जाता है उसी आत्मा और मन की एकता को अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा इन दोनों की एकता रूप को ही समता कहते हैं उस समय सम्पूर्ण संकल्प नष्ट हो जाते हैं इस अवस्था को समाधि कहते हैं।

चित्तकी पांच अवस्था होती हैं जिसको भूमिका भी कहते हैं। १ क्षेप २ मूढ़ता ३ विक्षेप ४ एकाग्रता ५ निरोध। लोकवासना, देहवासना, शास्त्रवासना, आदि रजोगुण का परिणाम जो दृढ़ अनात्मवासना उसको क्षेप कहते हैं। निद्रा आलस्य आदिक तमोगुण का परिणाम मूढ़ता। ध्यान में प्रवृत्त चित्तमें कुछ विघ्न पढ़ने से मन चंचल हो ध्यान छूट जानेको विक्षेप। अन्तःकरण का अतीत परिणाम और वर्तमान परिणाम समानाकार उसको एकाग्रता कहते हैं। यह एकाग्रता समाधिकाल में योगी के हृदय में होती है, इस एकाग्रता वृत्ति का अभाव नहीं किन्तु जितने अन्तःकरण के परिणाम समाधिकाल में होते हैं वह सब ब्रह्म को ही विषय करते हैं, इससे अन्तःकरण के अतीत परिणाम और वर्तमान परिणाम केवल ब्रह्माकार होनेपर समानाकार होता है, इस एकाग्रता की वृत्ति को निरोध कहते हैं इसमें क्षिप्त और मूढ़ अन्तःकरण वाले को समाधि में अधिकार नहीं है, विक्षिप्त को अधिकार है एकाग्र और निरुद्ध करण समाधिकाल में होता है, ऐसा योग ग्रन्थों में कहा है। योगाभ्यासी उदासीन पुरुष को इन छः प्रतिबन्धकों से सदैव बचे रहना उचित है, १ अत्याहार २ प्रयास अर्थात् अधिक परिश्रम करना ३ प्रजल्प (अधिक बोलना) ४ अनुष्ठानादि का नियम (योगाभ्यासी अन्य अनुष्ठानादि नहीं कर सकता) ५ बहुतों के बीच का वास ६ चंचलता, तथा यह तीन तो अत्यन्त वर्जित हैं वह्नि, स्त्री, मार्ग का अधिक चलना उपरोक्त दोषों से मन चंचल बना रहता है और जब तक मन एकाग्र न हो तब तक समाधि का लगना अत्यन्त दुस्तर है मन एकाग्र साधन करते २ हुआ करता है यही बात न्याय दर्शन द्वितीयान्हिक सूत्र ३८ में भी कही है। **समाधि विशेषाभ्यासात्** अर्थ—विशेष अभ्यास द्वारा मन और इन्द्रियों को विषयों से निवृत्त करके इष्ट पदार्थ परमात्मा में स्थिर करना समाधि है इस समाधि को ही उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय शून्याशून्य परम पद निरंजन जीवन मुक्त आदि कई नामों से सम्बोधित करते हैं इस समाधि के अभ्यास से प्रारब्ध कर्म का भी तिरस्कार होजाता है; जबतक प्राण और इन्द्रिय तथा मन जीवित है (इड़ा और पिंगला में प्राण से बहने को प्राण का जीवन अपने २ विषयों की वृत्तियों का उत्पन्न करना मन का जीवन कहा जाता है) तब तक मन रूप अन्तःकरण में अपरोक्षानुभव रूप ज्ञान कैसे हो सकता है इस लिये उदासीन योगाभ्यासी महात्मा प्राण इंद्रिय

और मन की वृत्तियों को लय कर देता है तब आत्यन्तिक स्वरूप में स्थित रूप मोक्ष को प्राप्त होता है, ब्रह्मरन्ध्र में जो बिना व्यापार प्राण की स्थिति है वही प्राण का लय कहा जाता है।

योगशक्ति प्रभावेन जितस्वास उदासिनः ।
ब्रह्म धारय तश्चेतः उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥४७॥

अर्थ—योगशक्ति के प्रभाव से योगाभ्यासी उदासीन महात्मा स्वासों को जीत के ब्रह्म में चित्त लगाता है तब उसके पास सर्व सिद्धियां आ के प्राप्त होती हैं ॥४७॥

प्रभुस्त्वं सर्वलोकानां देवानामपि योगिनाम् ।
कति वा सिद्धयो ब्रूहि कथं स्वित्सिद्धरच्युत ॥४८॥

अर्थ—श्री भक्त भगवान् जी कहते हैं हे प्रभु श्रीगुरु देव जी आप सर्व लोगों में देवों के देव और योगियों के योगी हैं आप से बढ़ कर और कौन समझाने वाला हमें मिलेगा आप अच्युत हैं कृपा करके बताइये सिद्धियाँ कितनी हैं और किस प्रकार की हैं ॥४८॥

अष्टसिद्धि प्रसिद्धश्च अणिमा महिमा तथा ।
लघिमा प्राप्ति प्राकाश्यं ईशता वसिता मुदः ।
प्राकाम्य अष्ट सिद्धिश्च वदन्ति मुनि पुङ्गवाः ॥४९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कहते हैं कि हे भक्त भगवान् जी आठ सिद्धि संसार में प्रसिद्ध हैं (१) अणिमा (बड़े शरीर से छोटा बनाना), २ महिमा (छोटे शरीर से बड़ा बनाना) ३ लघिमा (भारी से हलका बनाना, ४ प्राप्ति सर्व प्रकार के वस्तु की प्राप्ति होनी), ५ प्राकाश्य (परलोक तथा इस लोक के सकल पदार्थ देखने की शक्ति), ६ ईशता (ईश्वर रचित सकल वस्तु पर अपना प्रभुत्व रखने की शक्ति का होना), ७ वशिता (सब के वस करने की सामर्थ का होना), ८ प्राकाम्य (इच्छित वस्तु के प्राप्त करने की सामर्थ होना) ये आठ सिद्धि मुनियों में जो श्रेष्ठ मुनि हैं वह बताते हैं इसके अतिरिक्त दश उपसिद्धि और भी हैं वह भी बताते हैं इनके नाम भागवतस्कन्ध एकादश अध्याय १५ में इस प्रकार आते हैं ॥४९॥

अनूर्मि मत्वं देहेस्मिन्दूर श्रवणादर्शनम् ।
मनोजवः कामरूपं पर काय प्रवेशनम् ॥५०॥

अर्थ—अनूर्मिमत्व (शरीर में क्षुधा पिपासादिक न होना) २ दूर श्रवण (दूर की बात श्रवण करनी) ३ दूर दर्शन (दूर से देखना) ४ मनो जव (जहा मन जाय वहां शरीर को पहुँचाना) ५ काम रूप (इच्छित रूप धारण कर लेना) ६ पर काय प्रवेशन (दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाना) ॥५०॥

स्वच्छन्द मृत्यु र्देवानां सहक्रीड़ानु दर्शनम् ।
यथा संकल्प सं सिद्धि राज्ञा प्रति हता गतिः ॥५१॥

अर्थ—७ स्वच्छन्दमृत्यु (अपनी इच्छा से मरना) ८ देवतों की लीला देखनी ६ अपने संकल्प को सिद्ध करने की सामर्थ रखनी १० किसी भी स्थल में अपनी आज्ञा नभंग होने देना ॥५१॥

त्रिकालज्ञत्वमद्वंदं परचित्ताद्य भिज्ञता ।
अग्निर्का वुविषादीनां प्रतिष्टं भोऽपराजयः ॥५२॥

अर्थ—पांच क्षुद्र सिद्धियां भी हैं उनके भी नाम बताते हैं १ त्रिकाल ज्ञत्व (तीनों काल का ज्ञान होना) २ अद्वंद्व शीत उष्णादि सहन करने में खेद न करना) ३ पराये चित्त की बात को जान लेना ४ प्रतिष्टंभ (अग्नि सूर्य जल विषयादि से शरीर को किसी प्रकार की हानि न होने देना) ५ अपराजय (किसी स्थल में न हारना ॥५२॥

योगः समाधिपर्यायः समाधानं समाधिता ।
अविद्या युक्त जीवश्य ह्याधानं परमात्मनि ॥५३॥

अर्थ—भगवान् कहने लगे योग शब्द समाधि-शब्द का पर्याय है समाधान को समाधि कहते हैं अविद्या युक्त जीव का भगवान् में सर्व तो भावेन परायण हो जाना ही समाधान कहलता है ॥५३॥

तद्वदन्ति समाधानं वशिष्ठाद्या महर्षयः ।
योग सिद्धौच लब्धायामभेदः शिवजीवयोः ॥५४॥

अर्थ—योगाचार्य श्री वशिष्ठादियों का ऐसा ही सिद्धान्त है योगसिद्धि होने पर जीव और ईश में कोई भेद नहीं रह जाता ॥५४॥

पञ्चानां चित्तवृत्तीनां निरोधो योग इत्यपि ।
अभ्यासश्च विरागश्च निरोधोपाय इष्यते ॥५५॥

अर्थ—मन की स्मृत्यादि पाँचों वृत्तियों का निरोध हो जाना भी योग है अभ्यास और वैराग्य दोनों सम्मिलित चित्त वृत्ति निरोध के कारण हैं ॥५५॥

चित्रा चित्तनदी वहत्युभयतः पापाय पुण्याय च,
पूर्वा पाप वहाऽविवेक विषया धीगोचरा चापरा ।

वैराग्येण निरुद्ध पाप पद्वी व्यावर्त्यमाना शनैः
रभ्यासेन विनीयते स्थिति पदं ब्रह्मार्णवं योगिभिः।। ५६।।

अर्थ—यह चित्तरूपी एक विलक्षण प्रकार की नदी है इसके दो प्रवाह हैं जो पुण्य और पापकी ओर सदा बहते रहते हैं अविवेक विषया चित्तनदी पापको ओर बहती है और ज्ञान विषया चित्तनदी कल्याण की ओर बहती है योगि लोग इसको धीरे धीरे अभ्यास और वैराग्य के द्वारा पापके मार्ग से मोड़कर (हटाकर) पुण्य (कल्याण) मार्ग को ओर प्रवाहित करते हैं अन्त में ब्रह्मरूपी सागर में इसे एकाकर बना डालते हैं ।।५६।।

मैत्रीं सौख्य युते जने प्रति दिनं दीने दयां भावयेत्,
पुण्याचार परे पराश्च मुदितां पापिन्युपेक्षामपि ।
एवं भावयतो जितेन्द्रियस ते शान्तात्मनोयोगिनः,
कालुष्यं विनिवर्तते हृदयतो यातिस्थिति निर्मलम् ।।५७।।

अर्थ—मन की कलुषता ही मनुष्य को सदा तंग किये ही रहती है इसके दूर हो जाने पर मन निर्मल हो जाता है (अपने असली स्वरूप में आ जाता है) साधक को चाहिये मनका कालुष्य दूर करने के लिये निम्नलिखित साधनों को उपयोग में लाये तथाहि सुखीजनों में मित्रता की भावना करे, दीनों में दयाकी भावना करे, पुण्यात्मा में मुदिता की और पापी में उपेक्षा की भावना करे ऐसा करने से योगी के नीचे लिखे दोष दूर हो जाते हैं (मैत्री भावना से ईर्षा कालुष्य करुणा भावना से परा उपकार चिकीर्षा-कालुष्य-मुदित भावना से असूया कालुष्य, और उपेक्षा भावना से आमर्ष कालुष्य) ।।५७।।

शब्दादिष्व खिलेषु तुच्छ विषयेष्वासक्त चित्ता जनाः,
मोदन्ते नितराम वाप्य विषयाञ्जानन्ति नो तत्फलम् ।
पूर्वं सौख्य मयेऽपि तत्र विषये चान्ते विषाक्तान्नवत्,
वुध्यन्ते परिणाम ताप जमलं दुःखं विवेकाञ्जनाः ।।५८।।

अर्थ—शब्द आदि तुच्छ विषयों में प्राणी नितान्त आसक्त हो रहे हैं उनकी प्राप्ति होनेपर बहुत खुश होते हैं परन्तु उसके परिणाम (फल) का उन्हें पता नहीं है योगी जन ही इसे अच्छी प्रकार समझते हैं कि यद्यपि आपत में विषय सुन्दर (रमणीय) प्रतीत होते हैं तो भी इसके परिणाम (अन्त में दुःख ही निहित हैं योगी की बुद्धि शुद्ध होती हे अतः उसको ठीक ज्ञान होता है (अह्निपात्र कल्योहिविद्वान्) ।।५८।।

वीतं भुक्तमतो न देय पदवी मारोकते कर्हिचित्,
भोगारूढ़ मिदं स्वकाल नियतं नैवान्यथा जायते ।
तस्माल्लोचन पात्र कोमल हृदा सज्ज्ञानिनां योगिना,
हेयं दुःखमनागतं कृतधिया सौख्यं परं वाञ्छता ॥५६॥

अर्थ—वीत आरूढ और अनागत भेद से दुःख तीन प्रकार का है वीत (भूत) तो भोग ही लिया है वह हेय नहीं कहा जा सकता आरूढ (वर्त्तमान) भोगा जा रहा है वह भी अन्यथा नहीं हो सकता हाँ अनागत (भविष्यत्) दुःख ही हेय कोटि में आता है योगी को उसी का हल करना चाहिये ॥५६॥

अनागतस्य दुःखस्य विवेको नाश कारकः ।
विवेकख्याति सिद्धार्थं योगाङ्गाष्टकमिष्यते ॥६०॥

अर्थ—अनागत दुःख विवेक ख्याति से नष्ट है विवेक ख्याति की सिद्धि के योग के आठ अंगों की बड़ी भारी आवश्यकता पड़ती है ॥६०॥

एवमुक्त्वामहाराज भक्त भगवान्सत्वरम् ।
नगरठट्ठा गद्दीश्च महन्त पदवीं ददौ ॥६१॥

अर्थ—इस प्रकार योग की समस्त क्रिया का रहस्य जो अनेक ग्रन्थ का सार था समुझा के इसी दिन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने चेले भक्त भगवान् जी को नगर ठट्ठा वाले अपने स्थान का महन्त बनाय गद्दी देते भये ॥६१॥

परोपकारं प्रकुर्वन् महासिद्धमवाप्तवान् ।
धार्मिको योगिराजश्च सर्वशक्तिर्प्रतापवान् ॥६२॥

अर्थ—श्री भक्त भगवान् जी बड़े परोपकारी महा सिद्ध आप्तकाम धर्मात्मा योगीराज सर्वशक्ति सम्पन्न उदासीन प्रतापी महात्मा हुये हैं ॥६२॥

*जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने अमृत विन्दूपनिषत्, ब्रह्म सूत्र, शकुन्तला नाटक, योगी याज्ञवल्क्य, पवन विजय स्वरोदय, घेरंड संहिता, अमृतनादोपनिषद्, हठयोग प्रदीपका, तेज विन्दूपनिषद्, योगदर्शन, क्षुरिकोपनिषद्, त्रिशिखि ब्रह्मणोपनिषद्, ध्यान विन्दूपनिषद्, योग कुण्डल्यु-पनिषद्, नादविन्दूपनिषद, दर्शनोपनिषद् योगचूड़ामणि उपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद्, योग राजोपनिषद्, शांडिल्योपनिषद्, श्रीजाबालदर्शनोपनिषद्, वाराहोपनिषद्, आदि आदि का सार सुनाया है।

युग्मवेदरसे चन्द्रे वैक्रमे शुभसम्मते ।
आश्विन्यां शिवतिथ्यांच सूर्यधाम जगाम सः ॥६३॥

अर्थ—वि० सं० १६४२ आश्विन वदी १३ को श्री गुरु भक्त भगवान् दरगहपरवान जी शरीर त्याग सूर्य लोक में जा अपने रूप में मिल जाते भाये ॥६३॥

सूर्यांसो विपुलश्च भक्त भगवान् श्रौतो मुनिर्माजितः,
वेदाधीति जनोपकार निरतः शान्त स्सतामग्रणीः ।
नेता हिन्दु जनश्च धर्म विभवः सत्यानु संधानकः,
गीर्वाणी लसनेन चर्चितचनः स्वर्गंगतोयोगिराट् ॥६४॥

अर्थ—सूर्य भगवान् के अंश श्री भक्त भगवान् जी श्रौत उदासीन मुनि-अत्यन्त निर्मल समस्त वेदाध्ययन शील परोपकारनिरत शान्त चित्त सत पुरुषों में अग्रगण्य हिन्दू धर्म के प्रचारक (नेता) सत्य मार्ग के अनुसंधानक, संस्कृत साहित्य के समुल्लास में सदा मग्न स्वर्ग लोक—(सूर्य लोक) में योग कलाद्वारा सायुज्य मुक्ति अर्थात् सूर्य में जाकर मिल गये ॥६४॥

अद्यापि ठट्टा नगरे प्रतिमा राजते शुभा ।
चन्द्र देवस्य तां द्रष्टुं याति लोकोऽनुवत्सरम् ॥६५॥

अर्थ—ठट्टा नगर में आज भी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की सुन्दर दिव्य मनोहारिणी-प्रतिमा विराज रही है। जिसके दर्शन के लिये प्रति वर्ष सहस्रों नर नारी आते हैं ॥६५॥

भक्तस्य प्रथमः शिष्यः टीका रामो महान भूत् ।
तत्परम्परया भूयः माधवः शिष्य सत्तमः ॥६६॥
अयोध्यां निकटे तेन रानोपाल्यां मठः कृतः ।
खानितश्च सरस्तत्र सहकार बनी कृता ॥६७॥
अन्न चेत्रश्च दीनेभ्यो विद्या मन्दिर मेवच ।
इत्यादीनि च कार्याणि माधवः कृतवान् कृती ॥६८॥

अर्थ—श्रीगुरु भक्त भगवान् जी उदासीन के प्रथम शिष्य श्री टीकाराम जी हुये उनकी परम्परा में श्री माधवराम जी उदासीन हुये। इन्होंने ही अयोध्या के पास रानोपाली में मठ

स्थापन किया, तलाब खुदवाया और आमों का विशाल बागीचा लगवाया साधु तथा गरीब हिन्दुओं के लिये अन्न क्षेत्र तथा विद्यालय-आदि योग्य कार्य किये ॥६६।६७।६८॥

माधवस्यापि शिष्यो ऽभून्नारायण इति श्रुतः ।
तेनभूरि कृतं कार्यं तस्यापि जगनन्दनः ॥६९॥
अथ तस्य सुतीक्ष्णोऽस्ति ग्रन्थानां कारको महान् ।
श्रीमान् धीमांश्च धर्मज्ञः सदा स्वाध्याय तत्परः ॥७०॥

अर्थ—श्री महन्त माधवराम जी उदासीन के शिष्य (चेला) श्री नारायणराम जी महन्त हुये इन्होंने भी बहुत उत्तमोत्तम प्रशंसनीय कार्य किये महन्त श्री नारायण राम जी के जगनन्दनमुनि जी शिष्य हुये श्री जगनन्दन मुनि जी के श्री सुतीक्ष्ण मुनि जी शिष्य हैं आप बड़े धर्मज्ञ बुद्धिमान् विद्या व्यसनी तथा मिलनसार हैं आपने कई उपयोगी ग्रन्थ भी निर्माण किये हैं सब से उत्तम ग्रन्थ आप का बनाया हुआ हिन्दू धर्म व्यवस्था है जो सब को अवश्य पढ़ना चाहिये ॥७०॥

पठति चरित्रं विमलमिदंयः सकल संताप विनाशकारकम् ।
व्रजति स चन्द्र रुचिमति चारुम् बसति सुमुद सुखैश्वर्य भाजाम्।

अर्थ—जो प्राणी इस चरित्र को पढ़ेगा उसका सर्वप्रकार का संताप विनाश होगा श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् में अटल भक्तिहोगी सुख-ऐश्वर्य से जीवन व्यतीत करेगा ॥७१॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमदुदासीनवर्य्य-परम हंसावतंस ब्रह्म निष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरणकमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे श्री भक्त भगवान् शिष्य (चेला) करण योगोपदेश प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी विंशतितमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२०॥

॥ एकविंशतितमाकिरण प्रारम्भः ॥

श्रीमान् वैष्णवपुङ्गवः कवि कुलालङ्कारभूतः कृती,
कर्ता राम चरित्र मानस कृतेः सालङ्कृतेः शास्त्र वित् ।
भक्त्यायुक्त मना मनोहर कृतिं कृष्णं दिदृक्षुः शनैः,
भ्राम्यन्भूमितलं ययौ स तुलसीदासः पुरीं द्वारिकाम् ॥१॥

अर्थ—श्रीमान् वैष्णव, कवि कुल शिरोमणि, रामचरितमानस ऐसे मनोहर ग्रन्थः रत्न के निर्माता विद्वन्मूर्धन्यतम परम भागवत् श्री गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् कृष्ण चन्द्र जी के दर्शनार्थ श्री द्वारिकापुरी में पधारे ॥१॥

दृष्ट्वा तत्र स रुक्मिणी रमणमानन्दाम्बुधौस्नातवान्
पुण्यं पुण्य जलं पुनर्जि गमिषुर्नारायणाख्यं सरः ।
ग्रीष्मे मत्त गजं रसेषु सरसं चित्तं सरस्या इव
कृच्छ्रेणाङ्कुशकल्प पेशिलभया कृष्ण कृतेः कृष्टवान् ॥२॥

अर्थ—वहाँ रुक्मिणीरमण भगवान् के दर्शनकर श्री गोस्वामी जी का मन आनन्द के सागर में निमग्न हो गया इसके वाद गोस्वामी जी को पुण्य तीर्थ नारायण सर में भी स्नान करना था अतः अपने मन को जो भगवान् की मूर्ति के सौन्दर्य में गड़ा हुआ था बड़े कष्ट से निकाला जैसे ग्रीष्म ऋतु में सर (तालाब) में से मत्त हाथी को बड़े कष्ट से निकाला जाता है ॥२॥

गत्वा स्नान विधिं विधाय विधिवद्विज्ञो विधेर्वैष्णवः
पूताङ्गः परमामयं मुदमयद्दत्वा निवायाञ्जलिम् ।
जात्वा तान्यघमर्षणानि तुलसी सन्ध्याय सन्ध्यामपि
गन्धाढ्यैः कुसुमैः समर्च्य कमला नाथं नतः पादयोः ॥३॥

अर्थ—गोस्वामी तुलसीदास जी ने जाकर नारायण सर में स्नान किया स्नानान्तर पवित्र होकर पितरों को यथा विधिनिवापाञ्जली दी सन्ध्या की, जाप किया, उपयोगी सामग्री से भगवान् का पूजन किया और दण्डवत प्रणाम किया ॥३॥

तत्पश्चाच्छन कैरगात्स तुलसी ठट्ठा पुरीं सुन्दरीं
श्रीचन्द्रं प्रविलोक्य लोक रमणं मोदं परं प्राप्तवान् ।
श्रीचन्द्रोऽपि तमादरेण रमयामास प्रसन्नाननः
नत्वासौ समपृच्छद द्भुतकथां श्री चन्द्र देवं सुधीः ॥४॥

अर्थ—तत्पश्चात् आप धीरे धीरे यात्रा करते हुये ठट्ठा नगर में आये वहाँ आपकी भगवान् श्रीचन्द्र जी से भेट हुई दोनों महापुरुष परस्पर बड़े प्रसन्न हुये भगवान् ने गोस्वामी जी का बड़ा आदरसत्कार करके अपने पास टिकाया भगवान् से गोस्वामी जी ने प्रश्न किया ॥४॥

चन्द्राकाशरसेन्दौ श्री वैक्रमे मार्ग मासके ।
कृष्णे पक्षेऽप्यमायाश्च तुलसी प्रश्न सादरम् ॥५॥

अर्थ—शुभ दिन वि० सं० १६०१ मार्गशीर्ष कृष्ण ३० (अमावस्या) को श्री तुलसीदास जी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से सादर प्रश्न करते भये ॥५॥

कि भोः वैदिक सम्प्रदाय उत कोऽप्यन्यो नवोवर्तते ?
युस्माकं यदि वैदिकः कथमयं प्रामाण्यमाटीकते ? ।
श्रीचन्द्रस्तदनन्तरं निज मतं व्याकर्तु कामोऽवदत्,
सन्त्येतानि निशम्यतां स्थिर हृदा तानि प्रमाणन्यहो ॥६॥

अर्थ—कहिये जी आपका सम्प्रदाय वैदिक है या अभिनव यदि वैदिक है तो कोई प्रमाण प्रस्तुत करें भगवान् ने बहुत प्रेम भरे शब्दों में कहा कि श्रीमान् जी । लो सावधान होकर सुनें ॥६॥

देखो लिङ्गपुराण अध्याय ७० में तो पुरुष (ब्रह्म) को उदासीन बताया है तभी तो पुरुष के तीन स्वरुप ब्रह्मा विष्णु शिव को उदासीन होना पुराणों में मिलता है ।

ब्रह्मत्वे स्रजते लोकान् कालत्वे संक्षिप त्वयि ।
पुरुषत्वे ह्युदासीन स्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतिः ॥६१॥

अर्थ—ब्रह्म रूप होकर स्वर्ग पाताल मृत्यु लोक सब सृष्टि का कर्त्ता है और कालरूप अर्थात् रुद्ररूप होकर सब का संहार तथा विष्णु रूप से पालन करता है । उपरोक्त अनुसार का श्लोक २८ अध्याय १० वायव्य संहिता पूर्व खण्ड शिव महापुराण में भी आता है दोनों का मतलब एक ही है ।

यहाँ पर उदासीन शब्द का अर्थ योगिक न लगाकर रूढ़ी ही लगता है कारण ब्रह्म असङ्ग है निर्पेक्ष है इसी प्रकार उदासीन भी निर्पेक्ष और असङ्ग हैं । (पद्म पत्रमिवांभसः) के अनुसार संसार में रहते हुये भी उदासीन लोग असङ्ग और निर्पेक्ष रहा करते हैं । यहाँ पर तीन अवस्था बताकर विष्णु ब्रह्मा और शिव की एकता दिखाई है कारण उपासना के प्रेमी । इस बात पर बहुत झगड़ा किया करते हैं । कोई कहता है—कि विष्णु बड़ा कोई कहता है कि शिव बड़ा किन्तु वेद भगवान् ने सबका झगड़ा निवटाने के निमित्ति खोलकर बतला दिया है कि ब्रह्मा-विष्णु, शिव एक ही विराट पुरुष के अंश हैं ।

स ब्रह्मा स शिवः सहरिः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वाराट् ॥

।२।१३ नारायणोपनिषद्

इसलिये एक होने से न कोई बड़ा है और न छोटा। वैज्ञानिक प्रक्रिया-से भी विवाद करने का कोई अवसर नहीं मिलता अपने अपने कार्य में सब बड़े हैं कुशल हैं समर्थ हैं उपासक किसी को प्रभु मानना चाहे तो मानकर अपना कल्याण कर सकता है किन्तु दूसरे को छोटा कहकर नरक का साधन क्यों करता है थोड़ा सा और भी एकता का प्रमाण सुनिये। निर्विशेष परात्पर वह अव्यय पुरुष जो उपासना और ज्ञान का मुख्य लक्ष्य है जो जीव का अन्तिम प्राप्य है कारण कि पुरुष सबका स्वामी है।

पुरुष एवेद÷ सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्ये शानो यदन्ने नाति रोहति॥ } पुरुष सूक्त—

अर्थ—यावत् अतीत वर्तमान और भविष्य पदार्थ हैं वे सब पुरुष ही हैं। अर्थात् वे पुरुष से उत्पन्न हुये हैं वही अमरत्व का तथा बढ़ने वाले पदार्थों का स्वामी है पुरुष की महिमा लोकातीत है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः :
पादोऽस्वां विस्य भूतानि त्रिपादस्यमृतां दिवि॥ } पुरुष सूक्त

अर्थ—यह सारा ब्रह्माण्ड पुरुष की महिमा है। पर वह स्वयं इससे बड़ा है समस्त पदार्थ उसके केवल चतुर्थांश के समान हैं उसके अविनाशी तीन (ब्रह्मा विष्णु शिव) पाद इस ब्रह्माण्ड से बाहर प्रकाश मान स्वरूप में अवस्थित हैं। पुरुष शब्द का अर्थ शतपथ ब्राह्मण १३।६।२।१। में इस प्रकार कहा है।

इमे वैलोकाः पूरयन्नेव पूरुषो योऽयंपवेत सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात् पुरुषः॥

अर्थात् त्रिलोकी रूपपुरी में व्याप्त होने के कारण ही वह पुरुष कहा जाता है सो यह पुरुष तीनों देवताओं में एक समान वर्तमान है इसमें किसी प्रकार का भेद नहीं उसीको 'विवेष्टीति विष्णु" सर्वत्र व्यापक है इससे विष्णु, शेरतेऽस्मिन सर्वे इति शिवः" संसार के यावत् पदार्थ उसके पेट में हैं इससे शिव कहते हैं 'ब्रह्मेति "ब्रह्मा' वास्तव में उसका कोई नाम नहीं। "सर्वधर्मो पपतेश्च" इस वेदान्त सूत्र के अनुसार सभी गुण कर्म और नाम इसी पुरुष के हैं इसलिये विष्णु सहस्रनाम में शिव के नाम और शिव सहस्र नाम में विष्णु के नाम आते हैं भागवत ४ स्कन्ध अ० ७ में भगवान् विष्णु के मुख से व्यास जी महाराज कहा रहे हैं।

त्रयाणामिक भावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्व भूतात्मना ब्रह्मान् स शान्ति मधिगच्छति ॥५४॥

दक्ष प्रजापतिके प्रति* भगवान् कह रहे हैं कि समस्त वस्तुओं के अन्तरात्मा रूपी और एक भाव वाले हम तीनों (ब्रह्मा विष्णु महेश) में जो भेद नहीं रखता वही शान्ति को प्राप्त होता है देखिये व्याकरण भी हरिहर दोनों को एकही बतलाता है हरिहर दोनों शब्द एक ही हृधातु से बनते हैं अतः प्रकृति (मूल धातु) दोनों में एकही है केवल प्रत्यय पृथक पृथक हैं पुनः इनमें भेद मानना शास्त्र विपरीत कार्य्य करना है शिवपुराण ज्ञान संहिता अ० ४ में भगवान् शंकर जो खोल कर कह रहे हैं।

मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने ।
ममैव हृदये विष्णु र्विष्णोश्च हृदये ह्यहम् ॥
उभयोरंतरं योवै न जानाति मतो ममः ॥६१॥६२॥

अर्थ—शंकर जी कहते हैं कि मेरे दर्शन का जो फल है वही आप विष्णु के दर्शन का आप मेरे हृदय में निवास करते हैं मैं आप (विष्णु) के हृदय में रहता हूँ जो हम और आप दोनों में भेद नहीं समझता वही मुझे मान्य है हे तुलसीदास जी उदासीन महात्मा भगवान् शंकर तथा विष्णु भगवान् को एक रूप से सदैव मानते और पूजते आये हैं कारण कि भगवान् विष्णु भी उदासीन चतुर्थाश्रमी थे और भगवान् शंकर जी भी उदासीन धर्मावलम्बी चतुर्थाश्रमी थे जो निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध है फिर उदासीन उदासीन में भेद मानते क्यों हैं यही कारण है कि आज तक उदासीन महात्मा भगवान् विष्णु की प्रतिमा के साथ साथ शिव भगवान् की भी प्रतिमा का पूजन अवश्य करते हैं तथा अपने सेवकों से भी कराके उन्हें वैकुण्ठ गामी बनाते हैं।

शंकर जी का उदासीन धर्मी होना स्कन्ध पुराण प्रभासखण्ड वस्त्रापथ क्षेत्र महात्म्य अ० ६ से प्रतीत होता है

उदासीन वदासीनः संसारात् सारमीक्षते ।
एक एव शिवो देवः सर्व व्यापी महेश्वरः ॥१८॥

शंकर जी संसार से उदासीन साधुओं की तरह स्थित होकर नित्य सारवस्तु परमात्मा को ही ध्यान से देखा करते हैं शिवजी एकही देव हैं किन्तु सर्वव्यापी महेश्वर हैं ॥१८॥ विष्णु भगवान् के लिये परशुराम सूत्र प्रथमपाद में उदासीन स्पष्ट लिखा है।

*ब्रह्मा, स्थाणु, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुल, क्रतु, वशिष्ठ, परमेष्ठी विवस्वान, सोम करदम, क्रोध, अर्वाक, और क्रीत यह इक्कीस प्रजापतियों के नाम हैं।

"विष्णु रुदासीनः" ॥१६॥

उदासीन धर्म आत्मा के समान निर्लेप रहा करता है तभी भागवत स्कन्ध ६ अध्याय १६ में राजा चित्रकेतु से राजा चित्रकेतु के पुत्र की आत्मा आकाश में स्थित हुई हुई कह रही है।

मादत्त आत्माहि गुणं न दोषं न क्रिया फलम्।
उदासीन वदासीनः परावर दृगीश्वरः ॥११॥

अर्थ—आत्मा गुण दोषादिकों को ग्रहण नहीं करता वह सदा उदासीन साधुओं की तरह आसीन नाम शरीर में स्थित रहता है इसलिये जीव कारण और कार्य का साक्षीमात्र है यह दुःख सुख को भोगता नहीं है कारण ईश्वर देहादिके पर वराता से रहित है इस पाठ से भी वेद व्यास मुनि राजा चित्रकेतु के पुत्र की आत्मा से उदासीन साधुओं को प्राचीन होना बतला रहे हैं॥११॥

उदासीन शिवस्साक्षाद् ब्रह्मा विष्णुस्तथैवच।
नारदादि महा सिद्धास्सनातन पथा नुगाः ॥७॥

अर्थ—शिव, विष्णु, ब्रह्मा, नारद आदि मुनि सब उदासीन सनातन धर्मावलम्बी थे॥७॥

महर्षि प्रवरास्सर्वे ह्युदासीन मतानुगाः।
मोक्ष भावं लभन्तेस्म नान्यो मार्ग स्सुनिश्चितः ॥८॥

अर्थ—बड़े बड़े प्रवर महर्षिगण सब उदासीन ही थे मोक्ष भाव इस मत में पाया जाता है॥८॥

॥ उदासीन साधु संत का भेद ॥

एसे पवित्र उदासीन भेष में साधु सन्त दो प्रकार के भेद वाले आदि काल से चले आते हैं जिसकी पुष्टि गरुण पुराण पूर्वखण्ड प्रथम साखे आचारकाण्ड से यों होती है।

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्।
कुटुम्ब भरणो युक्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ॥९॥
ऋणानि त्रीण्प कृत्य त्यक्त्वा भार्या धनादिकम्।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः समौक्षिकः ॥१०॥ अ० ४९

इसी प्रकार कूर्म पुराण अध्याय २ श्लोक ७८-७९-८० में भी लिखा है कि एक साधक उदासीन होते हैं जो सन्त (विन्दी) कहे जाते हैं वह गृहस्थ उदासीन अपनी विवाहिता स्त्री से सन्तान उत्पन्न कर अपने सम्प्रदायक मर्यादानुसार उस लड़के को चेला बनाते हैं सन्त उदासीन को षोडश संस्कार वेद विधि से करने उचित हैं यह सन्त उदासीन श्राद्ध विवाह आदिक में अपने उदासीन महात्मा को ही खिलाते पिलाते हैं दानादि भी उदासीन उदासीनों को ही आपस में लेते देते रहते हैं यह लोग अपने स्थान में रहते हुये व्यापार खेती तथा नौकरी आदि सब प्रकार के वाणिज्य करके कुटुम्ब का भरण पोषण करते रहते हैं सब वर्ण के गृहस्थ भी इनको अपने से ऊँच मान कर पूजा प्रतिष्ठा किया करते हैं धर्माचार्य्यों में इनकी भी गिनती आगे से होती चली आई है ॥९॥

साधु उदासीन उसको कहते हैं जो तीनों ऋणों को पारकर घर के धन और स्त्री आदिक को छोड़ एकाकी ही किसी ब्रह्म श्रोत्रिय ब्रह्म नेष्ठी उदासीन साधु का चेला हो कर अपना जीवन व्यतीत करता है ॥१०॥

मध्य मस्य प्रचारंच विजिगीषोश्च चेस्टितम् ।
उदासीन प्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥१५५॥ मनु० अ०७

अर्थ—राजमण्डल में चार मूल प्रकृतियां मानी जाती हैं। (१) बीच में पड़ के कार्य सिद्धि करने की चतुरता (२) जीतने की इच्छा करने वाले की चेष्टा जानना (३) उदासीन महात्माओं से प्रचार कराना (४) प्रयत्न पूर्वक-शत्रु की क्रियाओं को जानना। इस श्लोक से स्पष्ट सिद्ध होता है कि मनु जी से प्रथम उदासीन महात्माओं का संसार में अच्छा प्रभाव था। तभी मनु जी ने उदासीनों से प्रचार कराने को लिखा है। मनुस्मृति का रचना काल सतयुग है ऐसा विद्वानों का मत है।

॥ उदासीन सप्तर्षि ॥

इनके नाम वेद में इस प्रकार से आते हैं। अथर्व वेद १८-३-१६

विश्वामित्र जमदग्ने वशिष्ठ भरद्वाज गौतम वामदेव ।
शर्दिः नो अत्रिः अग्रभीत्नमोभिः सुशंसासरः पितरो मृडतानः ।

वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में गौतम भरद्वाज* विश्वामित्र कश्यप यमदग्नि वशिष्ठ अत्रि यह ७ सप्तर्षि उदासीन महात्मा हैं। देखो हेमाद्रि निर्मित-चतुर्वर्ग चिन्तामणि व्रत खण्ड पृष्ठ १०६

*भरद्वाज जी के पास जब भरत जी मिलने गये तब भरत जी से भरद्वाज मुनि अपने आपको उदासीन तपसी कह रहे हैं जो की तुलसीदास जी की रामायण अयोध्या काण्ड में स्पष्ट रूप से लिखी हुई है।

सुनहु भरत हम झूंठ न कहहीं उदासीन तापस बन रहहीं ॥

उदासीनः सोप वीता कमंडल वच्छ सूत्रिणः ।
जटिलाः श्मश्रुलाः शान्ता आसीना ध्यान तत्पराः ॥
सप्तर्षियो वशिष्ठश्च कार्यो भार्या समन्वितः ।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वा मित्रश्च कश्यपः ॥
यमदग्नि र्वशिष्ठोऽत्रिः सप्तवैवस्वतांतरे ।

उपरोक्त सभी उदासीन महात्मा यज्ञोपवीतधारी कमंडलु रखते हुये जटा और माला से सुशोभित शान्त होकर पद्मासन लगाय ध्यानावस्थित हो रहे हैं। इस में सपत्नीक (सन्त उदासीन) अधिक हैं। सपत्नीक उदासीन को ऋषि तथा तपस्या करनेवाले को मुनि भी कहीं २ कहा है। तथा साधु उदासीन को मुनि कहा जाता था। पुराणों में भी चतुर्थाश्रमी उदासीनों को मुनि और ऋषि नाम से सम्बोधित किया गया है।

परिव्राजकाः परित्यज्य वन्धून परिग्रहः परिव्रजेद्यथा ।
विधि कौपीनाच्छादनः वर्षा स्वेक स्थानः काषाय वासः ॥

(वौधायन प्र० २ अ० ६ सूत्र १८-२१-२२-२३)

॥ कुटीचक उदासीन ॥

कुटीचकः शिखा यज्ञोपवीती दण्ड कमण्डलु धरः ।
कौपीन कन्था धरः पितृ मातृ गुर्वाराधन परः ॥

(नारद परिव्राजकोपनिषद् पञ्चमोपदेशः)

श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जी कहते हैं हे महात्मा तुलसी दास जी शिखा यज्ञोपवीत दण्ड कमन्डलु कौपीन कंथा (गोदड़ी) धारी माता पिता गुरु की आराधना करने वाला, तीन काल स्नान कर तिलक लगाना, देवार्चन, मन्त्र, जाप, आये अभ्यागत साधु का सत्कार करना, कथा, वार्ता, धर्मोंपदेश करने वाला, सर्व सुख के स्वाद को त्याग पुत्रों के ऐश्वर्य और ममता से स्नेह हटाय अपने पुत्रों के साथ भी रह सकता है परन्तु पुत्रादि कुटुम्ब के लिये अन्न धनादि की आशा सब कुटीचक हटाय देवे भिक्षाटन आदि से असमर्थ हो कर घर के ही ग्राम (अर्थात् जहाँ घर हो उसी ग्राम नगर) में कुटिया बनाकर जीवन यात्रा निर्वाह करे यही बात विष्णु स्मृति अध्याय ४ श्लोक ७६ में लिखी है।

कुटीचक स्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः।
भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यतिः पुत्रेषुसन्यसेत् ॥

ऐसा कुटीचक शरीर को छोड़ कर भूर्लोक भुवर्लोक में जाता है।

आतुर कुटीचकयो र्भूलोको" } नारद परिव्राजकोपनिषद् में लिखा है।

नोट—कुटीचक में तीन भेद होते हैं एक कुटिया वाले दूसरे स्थान धारी तीसरे मठाधीश (Abbct)। जो उदासीन मुनि कहीं एकान्त स्थल में कुटी बनाकर अकेला निवास करता है उस जगह को कुटिया कहते हैं तथा जो उदासीन मुनि ऐसा स्थान बनाता है जहाँ पर दस बीस साधु का भोजन तथा आये गये का सत्कार और हिन्दू धर्म प्रचार होता है उस मकान को स्थान कहते हैं सिन्धु देश में उसे टिकाना पंजाब में डेरा यू० पी० मगह में सङ्गत कहते हैं।

तथा ऐसे स्थानधारी को मुनिश्वर (महन्त) कहते हैं। जिस स्थल में सैकड़ों साधुओं का नित्य भोजन होता हो तथा उनके निवास और विद्या के पठन पाठन के साथ पूर्ण योग क्षेम का प्रबन्ध हो आये गये का सत्कार धर्म प्रचार कथा व्याख्यान होता हो, वह स्थल मठ कहलाता है उसके महन्त को महा मुनीश्वर (मठाधीश) कहते हैं। स्मरण रहे कि मठ-और मन्दिरों में अन्तर है मठ वह कहलाता है जिसको किसी उदासीन महात्मा ने अपने जप, तप, विद्या, प्रचार के बल से स्वयं बनाया हो (स्थापित किया हो) उसपर उसी उदासीन महात्मा के चेलोंपर चेलों (शिष्य प्रशिष्य) वंश प्रणाली का अधिकार रहता है उस मठ में जो कोई भी आवेगा उस मठाधीश की अनुमति रजामन्दी से आवेगा कारण मठ का महन्त उस मठ का मालिक है (देखो हिन्दू ला दफा ८३७) मठ एक धार्मिक स्थान है जहाँ हिन्दूधर्म की शिक्षा हुआ करती है उसका एक अध्यक्ष होता है मठ में मूर्तियां भी होती हैं लेकिन उनको पूजा का अलग मामला होता है मठका उद्देश्य यह होता है कि योग्य उपदेशक एकके बाद दूसरा उचित मान मर्यादा के साथ अपना काम करता रहे उनको मठ की कुल आमदनी का लाभ मिलता है मठ में अर्पण* की हुई जायदाद सम्बन्धी शर्तों का मानना या न मानना इच्छा उनकी पर निर्भर है।

इन सब बातों से यह सिद्धि होता है कि मठ का मुख्य मालिक मठ का आचार्य ही है। वह ट्रस्टी नहीं बल्कि असली मालिक होता है। यदि मठ में किसी देव मूर्ति या मूर्तियों की स्थापना भी है। तो उसका पूजन मठ का मुख्य उद्देश्य नहीं बल्कि दूसरा† है मठ में

*राजा सेठ साहूकारों की तरफ से अर्पण किये हुये ग्राम खेत मकान जमीन आदि कों की आगे सनदें सोनें चाँदी अथवा ताँबे पर खुदवा दो जाती थीं अब सरकार से कागज (स्टाम्प) लिखाया जाता है।

†मूर्ति का रखना अपने पूजन वास्ते तथा दूसरों की शिक्षा वास्ते है।

दो किस्म की संस्था होती हैं। मठ का मुख्य अधिष्ठाता महन्त या स्वामी आचार्य आदि नामों से कहा जाता है। उसका मुख्य कर्त्तव्य यह है कि संस्था के अनुसार धर्मानुसार धर्मानुशासन करे वह स्वयं देव मूर्ति है क्योंकि विज्ञानी पुरुष सब देव मूर्ति मानें जाते हैं। दोनों किस्म के मठों में पारमार्थिक ज्ञान दिया जाता है। तथा भगवान् की स्तुति पूजन पाठ के लिये तथा जपतप यज्ञ आदिक के लिये वह स्थान मुख्य माने जाते हैं। देखो हिन्दूला दफा ८३२॥

॥ महन्त के अधिकार ॥

महन्त स्वामी गोस्वामी या कोई मठाधीश का दर्जा (अधिकार) शिवायत* पुजारी या मन्दिर अथवा मूर्ति के धर्मादे के मैनेजर से भिन्न होते हैं। महन्त के सम्बन्ध में मद्रास हाई कोर्ट ने यह राय जाहिर की है की उसकी हैसियत केवल मैनेजर या ट्रस्टी की नहीं है। यद्यपि वह जायदाद का इन्तकाल आम तौर से नहीं कर सकता फिर भी वह उस सब आमदनी को जो मठ की जायदाद से प्राप्त हो और जो कुछ भी चढ़ावा या दक्षिणा आदि आये उस सबको खर्च करने का पूरी तौर से अकेलाअधिकार रखता है। उस धर्मादे में बँधे हुये जो खर्च हैं उनको महन्त जरूर पूरा करेगा सब खर्चों के पूरे होने के पश्चात् जो रकम बचे उसे वह सम्प्रदाय और सदाचार सद्व्यवहार अनुसार सर्व खर्च कर देने का पूरा अधिकार रखता है कानूनन उससे कोई हिन्दू उस खर्च की रकम का हिसाब नहीं ले सकता यदि महन्त को किसी निमित्त वास्ते जायदाद मिली होगी तो महन्त उसी निमित्त वह जायदाद की आमदनी खर्च कर सकता है वह महन्त उस जायदाद का ट्रस्टी माना जायगा दफा (८३८) अगर कोई खास रिवाज या आज्ञा बाधक नहीं तो महन्त धर्मादे की कुल आमदनी के खर्च का हिसाब किसीको देने के लिये वाध्य नहीं है कोई हिन्दू उससे हिसाब नहीं माँग सकता अदालत उसे हिसाब देने के लिये हुक्म न देगी लेकिन उसका कर्तव्य है कि उस आमदनी से मठ का उद्देश्य पूरा करे और फिर जो बचे उसे अपनी इच्छानुसार खर्च करे महन्त न तो लाइफटेनेन्ट (Life tenant) समस्त उमर किसी का बंधा हुआ नहीं है न ट्रस्टी देखो मद्रास और बम्बई की हाईकोर्ट का फ़ैसला (दफा ८३८) महन्त अपनी निजकी भी जायदाद रख सकता है उसकी वह जायदाद मठकी जायदाद न समझी जायगी। (हिन्दू लादफा ८४२)

उदासीन सम्प्रदाय का प्रारम्भ से यह कायदा चला आता है कि उदासीन साधुके स्थान में या किसी साधुको जो भेट पूजा गृहस्थ श्रद्धा से लाकर देता है वह रकम स्थान के

---

*शिवायत—जो आदमी किसी धर्मादे के मन्दिर या मूर्ति की पूजा आदि का प्रबन्ध और देख रेख रखता हो उसे शिवायत या पुजारी कहते हैं।

मालिक महन्त की ही होती है उस पर अधिकार उदासीन भेष,काहो रहता है न किसी गेर का जिस प्रकार कन्या दान किये पीछे कन्या के पिता का हक्क कन्या के माल के ऊपर कुछ नहीं रह जाता जिसको दान दी जाती है वह हक्कदार होता हैं इसी प्रकार दान (अर्दास संकल्प) करी हुई वस्तु उसकी ही मानी जाती है जिसको कि दान भेट चढ़ा दिया गया हो।

॥ महन्त लक्षणम् ॥

यः सिंहासनमास्थितः स्थिति विदा मग्रेसरः शाश्वतं
धर्मं रक्षति रक्षति स्वमठमत्यन्तं प्रियः प्राणिनाम् ।
साधुनामति सेवकः करुणया सिक्तान्तरात्मात्मवित्,
सर्वेषांहित कारकः कविवरैः ख्यातोमठाधीश्वरः ॥६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कहते हैं कि हे गोस्वामी तुलसीदास जी महन्त (गद्दीनसीन) वही साधु बनाया जाता है जो राजनीति, धर्मनीति, कूटनीति, व्यवहार कुशल, विद्यापूर्ण सुख दुःख हानि लाभ से न घबड़ाने वाला, हिन्दू धर्म का यथार्थ उपदेष्टा, सर्वप्रिय साधु सेवी, सदाचारी, उदारात्मा हो ऐसा विद्वान् महन्त संसार में कीर्ति प्राप्त करता है ॥६॥

॥ श्री महन्त लक्षणम् ॥

स्वेधर्मे निरतो निरन्तर निज प्रान्ते प्रतिष्ठां गतः
यस्याज्ञामखिला वहन्ति शिरसा सद्भिश्चयः स्तूयते ।
यः पूर्वश्च महीयते सदसि वा विद्वान् प्रगल्भो गिरि
स प्राज्ञैरभिधीयते नय धनैः श्री श्री मठाधीश्वरः ॥१०॥

अर्थ—अपने मण्डल (प्रान्त) भर में जिसका कहा सब महन्त मानते हों और पूजा देते हों वही श्री महन्त कहा जाता है तथा महन्त बनाते समय महन्तो का तिलक सब से प्रथम श्री महन्त देता है। महन्त की पूजा से श्री महन्त को पूजा अधिक होती है। श्री महन्त का मुख्य कर्तव्य यह है कि अपने मण्डल के सब स्थानों की व्यवस्था सुचारु रूप से चलाने का ध्यान सदैव बनाये रक्खे ॥१०॥

॥मण्डलेश्वर लक्षणम्

यः शिष्यै परिवारितः प्रति दिनं व्याख्याति धर्म्मां कथाम्
स्वाध्याये निरतांश्च पाठयतियो धीमत्सदा चारिणः ।

नित्यं भ्राम्यति सर्वदेशनगरी तीर्थानि तीर्थोद्दरः
प्राप्नोत्येव स मण्डलेश्वर पदं सल्लक्षणैर्लक्षितः ॥११॥

अर्थ—मण्डलेश्वर वह उदासीन महात्मा कहाता है जो दस बीस साधुओं को साथ में ले उन्हें विद्या पढ़ाता हुआ उनका योग क्षेम करता हुआ हिन्दू धर्म का प्रचार देश देशान्तरों में करता हुआ भ्रमण करता है ॥११॥

॥ श्री महा मण्डलेश्वर लक्षणम् ॥

यो वेदान खिलान धीत्य सकलान्यन्यानि शास्त्राणि च
व्यख्यातुं स्वयमेव कर्तुमपि यो जानाति मेधाधनः ।
प्रौढ़ो वादिविखण्ड ने समिति सम्पूज्यः सतांधर्म धीः
नाना देशकृताटनः शुभ कथः श्री मण्डलीशो मतः ॥१२॥

अर्थ—महामण्डलेश्वर वह उदासीन महात्मा कहाता है जो कि सौ पचास साधुओं को साथ में रख कर वेदाध्ययन कराता हुआ उनका पूर्ण योग क्षेम करता देश देशान्तर में भ्रमण कर जनता में धर्म का प्रचार करता हो जिसके प्रभाव से हजारों जनता नित्य लाभ उठाती हो तथा उसके नीचे कई एक मण्डलेश्वर प्रचार कार्य करते हों ॥१२॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गा मध्यवर्ति सक्खर नगरे श्री मद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये-मुनिजन मानस हंसे गोस्वामी तुलसीदास भगवान् श्रीचन्द्र जी से श्रौतचतुर्थाश्रमी उदासीन साम्प्रदाय क वार्ता श्रवण करण सकल कलि कल्मष नाशिनी एक विंशतितमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२१॥

॥ द्वाविंशति किरण प्रारम्भः ॥

॥ बहूदक उदासीन ॥

वहूदकः शिखायश्च सूत्रं कंथा कमण्डलः ।
काषाय वस्त्र धारिणो मोक्षमार्गो जितेन्द्रियः ॥१॥
देवार्चनं मन्त्र जापः ऊर्ध्व पुण्ड मधूकरी ।
प्रणायामसलग्नोयं तीर्थाटन करोतिशः ॥२॥

अर्थ—शिखा यज्ञोपवीत दण्ड कमण्डल कौपीन कंथाधारी मधुकरी वृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाला तिलक, देवपूजन, मन्त्र, जप, तितिक्षा, सदाचार पूर्वक तीर्थाटन करता हुआ धर्मोपदेश करे बहूदक निज-वान्धवों को त्याग प्राणायाम में तत्पर जितेन्द्रिय रहे ऐसा बहूदक मृत्यु के पीछे स्वर्गलोक जाता है ॥१-२॥

नोट—कुटीचक उदासीन कुटी छोड़कर भ्रमण करने लगे तो बहूदक उदासीन कहलाने लगेगा तथा बहूदक शरीर के वृद्धतावश भ्रमण करना छोड़कर कहीं कुटिया बनाकर रहने लगे तो वह कुटीचक कहा जावेगा वड़े स्थान का महन्त मठाधीश कहा जायेगा।

॥ हंस उदासीन ॥

हंसो जटाधरो ध्यानं वस्त्र काषाय धारणम् ।
हंसस्याष्ट गृहेष्वष्ट मनसार्चन ज्ञानिनः ॥३॥

अर्थ—जटाधारी, काषायवस्त्र ओढ़ कोपीन पहिन, तिलक लगावे, एक समय स्नान करे, करपात्री रहे, मनसार्चन ध्यान का अधिकारी, बीत राग, सम, दम युक्त, परोपकारी हंस उदासीन मृत्यु के बाद तपलोक को जाता है ॥३॥

एक रात्रं वसेद्ग्रामे नगरे रात्रि पञ्चकम् ।
वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षा सु मासांस्तु चतुरोवसेत् ॥ } कण्व स्मृति

अर्थ—एक रात्रि ग्राम में, नगर में पञ्चरात्रि, वर्षा काल में एक स्थल में चातुर्मास रहे, इससे अधिक न कहीं रहे।

॥ परमहंस उदासीन ॥

"परमहंसः शिखा यज्ञोपवीत रहिता पञ्च हेष्वेक रात्रान्नादनपरः करपात्री एक कौपीन धारी सर्व त्यागी"

अर्थ—शिखा यज्ञोपवीत रहित अर्थात् परमहंसावस्था में शिखा यज्ञोपवीत उतार दिया जाता है। कर पात्र कौपीन धारी सर्व त्यागी (वासनाओं तथा कर्म फलों का त्याग)

"यशोवलं ज्ञान वैराग्यं मेधां प्रयच्छेति, यज्ञोपवीतं छित्वा"
"शिखा ज्ञान मई यस्य उपवीतं च तन्मयम्"

(पिप्पलादि शाखा ब्रह्मोपनिषद्)

न दण्डं न कमण्डलम् न शिखा न यज्ञोपवीतं न चाच्छादनं चरति परमहंसो न शीतं न चोष्णं न सुखं न दुःखं न मानापमान इति षडूर्मि वर्जितो (परम हंसोपनिषद्)

अर्थ—परमहंस दण्ड कमण्डलु शिखा यज्ञोपवीत खाने पीने का कुछ भी सामान नहीं रखता। शीत उष्ण, सुख,दुःख, मानापमान इन षट्ऊर्मियों से रहित होता है।

परमहंसन दण्ड धरा, मुण्डाः कन्था कौपीन वाससो। कात्यायन स्मृति

परमहंस यदि स्नान न करे तो कोई हानि नहीं, कारण परमहंस के लिये **"परमहंसस्य मानस स्नानं"** परमहंस का मन द्वारा ज्ञानवा योग से स्नान करना मानसिक स्नान है मानसार्चन योगमार्ग से मोक्ष पाते हैं।

अर्थात् परमहंस परिव्रजकानामा सत शमनादिकं भूमौ ब्रह्मचर्य्य मृत पात्रं मलाम्बु पात्रं दारुपात्रं वायहीना काम क्रोध हर्ष लोभ मोह दम्भ दर्पेच्चा सूमा ममत्वऽहंकारादिनपि परित्यजेत। (अरुणिको पनिषद्)

अर्थ—परमहंस का नामही परिव्राजक है जिनका आसन शयन भूमिमें, ब्रह्मचर्य मिट्टी के पात्र, जलके पात्र, चिप्पी, तुम्बा लकड़ी का पात्र, काम, क्रोध, हर्ष लोभ, मोह, दम्भ दर्प, असूया, ममत्व, अहंकार आदि सर्व दोष छोड़ दिये हैं जिसने वृक्षकी जड़ मूल तल अथवा शून्य गृह श्मशान में रात्रि काटते हैं परमहंस उदासीन धर्माधर्म, लाभालाभ, द्वैत वर्जित लोष्ठ और कञ्चन को बराबर जानने वाले सबमें अपने आत्मा सदृश्य देखने वाले होते हैं धर्मोपदेश करते हैं मृत्यु के पीछे सत्यलोक जाते हैं महावाक्यों को उपदेश करने का परमहंस उदासीन को अधिकार है इसीसे सर्वश्रेष्ठ परमहंस को जगद्गुरु कहा जाता है।

कषाय वासाः सततं ध्यान योग परायणः।
ग्रामान्ते वृच्छमूले वावसद्देवलयेऽपिवा ॥३४॥
कौपीन युगलं कन्था दण्डएक परिग्रहः।
यतः परम हंसस्य नाधि कन्तु विधीयते ॥२८॥
कुटुम्ब तत्र दाराश्च वेदाङ्गिनिच सर्वशः।
यज्ञं यज्ञो पवीतं च त्यक्त्वा गूढ़श्चरेद्यति ॥३२॥ } नारद परिव्राजको पनिषद्

रागं द्वेषं मदं मायां द्रोहं मोहं परात्मसु ।
षड़ेतानि यतिर्नित्यं मनसापिन चिन्तयेत् ॥७०॥

नोट—कुटीचक से बहुदक, बहुदक से हंस, हंस से परमहंस उत्तम होते हैं (विष्णु स्मृति अध्याय ४ श्लोक ११-१२) परमहंस उदासीन के गुण निर्वाणोपनिषद् ४९ में इस प्रकार दिखायें हैं ।

परम हंसः सोऽहम् परि ब्राजकाः एकान्त गुहायां मुक्तासन सुख गोष्ठी धैर्य कंथा उदासीन कौपीनं विचार दण्डः विष्णु विधादि शता भिधान लक्षणम् । अजपा गायत्री अनाहद मंत्रः एतन्निर्वाण दर्शनं शिष्यं पुत्रं विना नदेयमित्युपनिषद्

अर्थ—परमहंस उदासीन ॐ सोऽहम् मन्त्र का जप उपासना करते हैं परिव्राजक कहे जाते हैं काषाय वस्त्रधारी एकान्त गुफादि में भी कभी कभी निवास करते हैं उदासीनों को कोपीन अवश्य धारण करनी चाहिये उदासीनों का विचार दण्ड है न काष्टका विष्णु का ध्येय करना, अजपा (ॐ) गायत्री, अनाहद (सोऽहम्) मन्त्र शिष्य (चेला) और पुत्र सेवक के सिवाय उदासीन लोग अपना मन्त्र किसी को नहीं देते इत्यर्थः यहाँ उदासीन पद मात्र प्रधान और कोपीन पद चतुर्थाश्रम का उपलक्षण है ।

॥ तुरियातीत उदासीन ॥

तुरीयातीते गोमुखः फलाहारी अन्नाहारी चेद्गृहेत्रये देह मात्रा वशिष्टो ऋतुः चौरं गोमुखं सोहं भावना वाक्योपदेशाधिकारः

॥ गुणातीत लक्षणम् ॥

दिग्वासा निरहंकृति र्ममतया मुक्तोञ्झितो दूरतः
भूशय्यः सततं समाधि निरतः सर्वत्रसद्दर्शनः ।
मित्रामित्रभिदान यस्य सकलं ब्रह्मैव यो लोकते
विख्यातो मुनिभिः स्मृतौच सगुणाऽतीतो गुणाधीश्वरः ॥४॥

अर्थ—गो मुख वृत्ति, फलाहारी, अन्नाहारी, देह यात्रार्थं तीन घर से भिक्षा लेने वाला, दिगम्बर, ऋतु चौर अर्थात् ऋतुनाम दो मास का है इससे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि तुरियातीत उदासीन दो मास में चौर (हजामत) करावे महावाक्यों का उपदेश करे निदिध्यास

में लगा रहे सर्व सृष्टि को ब्रह्ममयी देखे यह मृत्यु के पीछे आत्मा को परमात्मा में लीन कर मोक्ष को प्राप्त होते हैं ।४॥

॥ अवधूत उदासीन ॥

"अवधूतस्याजगरा वृत्तिः वायव्यस्नानं सोऽहं भावना ब्रह्म प्रणवः निदिध्यासः अवधूत लक्षणम्—

आनन्दाम्बुधि मग्नमानस करी स्वात्माभि रामोऽनिशम्,
बुध्वा तुच्छमिमं प्रपञ्चमखिलं लीनः परे ब्रह्मणि ।
धूता शेषमलो निरस्त विषयो वाचंयमः शान्तधीः
तत्त्वं चेतयतेऽवधूत पदवी माटी कतेऽसौ पुमान् ॥५॥

अर्थ—जड़वत् कोई खिलादे तो खा लिया स्नान करा देवें तो स्नान कर लिया अवधूत उदासीन का वायु स्नान सोऽहम् भावना प्रणव जीवन मुक्त आनन्द उदधि में मग्न स्वात्मा वलम्बी हो सर्वत्र ब्रह्म में ही लीन रहा करते हैं ॥५॥

नोट—उपरोक्तषट प्रकार का भेद नारदपरिव्राजकोपनिषद् भिक्षुकोपनिषद् सन्यासोपनिषद् विष्णु स्मृति अध्याय ४ के आधार पर लिखा गया है ।

श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास जी हिन्दू जाति के बीचमें चार वर्ण चार आश्रम होते हैं उन चार आश्रमों में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य होता है दूसरा गृहस्थाश्रम (३) वानप्रस्थ (४) उदासीन आश्रम इसपर देखो प्रमाण

"ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृही भूत्वा वनी भवेत् वनीभूत्वा प्रव्रजेत्"
(जावालोपनिषद्)

यही बात याज्ञवल्क्य स्मृति अ० ३ श्लोक ५७, वृद्धविष्णु स्मृति ९६ अ० १ अङ्क, हारीत स्मृति अ० ६ श्लोक २-३, वृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र अ० १० श्लोक २६-२९ बौधायन स्मृति प्रश्न २ अ० १० अंक २-६

चत्वार आश्रम्मः "ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ परिव्राजकाः"
(वशिष्ठ सूत्र अ० ७ सूत्र १-२

परिव्राजका सर्व भूता भय दक्षिणां दत्वा प्रतिष्ठेत्
(वशिष्ठ स्मृति अ० १० सूत्र १-६-११

चतुर्थाश्रम प्रवेशाभिलाषी समस्त प्राणियों को अभयदान देकर प्रवज्यारूप चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय में प्रवेश करे ।

परिव्राजकः परित्यज्य वन्धून परिग्रहः परिब्रजेद्यथा विधिः

(बोधायन प्र० २ अ० ६)

अर्थ—परिव्राजक उदासीन महत्मा वैदिक मर्य्यादानुसार समस्त मित्र बांधवों से नाता तोड़ केवल आत्म चिन्तन में रत रहे परोपकार करता हुआ हिन्दूधर्म और हिन्दू जाति की रक्षाकर सबका हित करे, ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वान प्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थ प्रभवा स्चत्वारः प्रथगा च्चमाः ॥८७॥ } मनुस्मृति अ० ६

अर्थ—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ तथा चतुर्थाश्रमी उदासीनाश्रम पृथक २ चारों हैं गृहस्थाश्रम शेष तीनों का उत्पत्ति स्थान है ।

॥ ब्रह्मचारी लक्षण ॥

स्त्री प्रशंग से आठो प्रकार से वचे रहनेवाला ब्रह्मचारी होता है मैथुन के आठ प्रकार के लक्षण दिखाते हैं, ।

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य भाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निवृतिरेवच ॥

अर्थ—(१) स्मर्ण-भोग बुद्धि करके स्त्रियों का चित्त विषे चिन्तन करना (२) कीर्तन स्त्रियों के साथ भाषण या उनका गुण कथन करना (३) केलि स्त्रियों के साथ खेल कूद हास विलासदि क्रीड़ा करना केलि है (४) भोग बुद्धि करके स्त्रियों की तरफ देखना प्रेक्षण कहाता है (५) गुह्य भाषण एकान्त में रसीली बातें करना गुह्य भाषण (६) संकल्प स्त्रियों के प्राप्ति की इच्छा का नाम संकल्प है (७) अध्यवसाय स्त्री के प्राप्ति का ज बुद्धि विषे निश्चय करना उसे अध्यवसाय कहते हैं (८) क्रिया निवृति स्त्री के साथ सम्भोग ।

एतन्मैथुन मष्टाङ्गं प्रवदन्ति मणीषिणः ।
एतद्वि रहितं कर्म ब्रह्मचर्य मुदाहृतम् ॥ } लिङ्ग पु०

इन आठों प्रकार के मैथुन से जो रहित प्राणी हैं उनको ब्रह्मचारी कहते हैं वीर्य रक्षा से दीर्घायु होती है वीर्य के गिरने से मेधा और स्मृति का नाश होता है स्मृति नाशसे बुद्धि नाश हो जाती है बुद्धि नाश हो जाने से प्राणी का नाश हो जाता है विषई पुरुष दीर्घायु कदापि नहीं होता ।

मरणं विन्दुपातेन, जीवनं विन्दु धारणात्

वीर्य पात ही मृत्यु और वीर्य रक्षा ही जीवन है जो मनुष्य जीवन भर नियम पूर्वक वीर्य की रक्षा करते हैं उनकी कान्ति, बल, मेधा, बुद्धि और आयु बढ़ती है आयुर्वेद में लिखा है।

शरीरेसर्व धातुनां सार वीर्य प्रकीर्तितम् ।
तदैव चौजतेजश्च बलं कान्ति पराक्रमः ॥

अर्थ—शरीर में सर्वधातुओं का सार एक मात्र वीर्य है, वही ओज, तेज बल, कान्ति और पराक्रम रूप से शरीर में व्याप्त है ब्रह्मचर्य काल में वीर्य के क्षीण होने से मनुष्य में उपरोक्त वस्तुओं के क्षीण होने से प्रमेह नपुंसकतादि अनेक रोग घेर लेते हैं जैसे सार हीन पदार्थ रद्दी होता है, उसी तरह वीर्य हीन पुरुष बे काम हो जाता है।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वा वस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनं त्यागो ब्रह्मचर्य प्रचक्षते ॥

भवार्थ—मनसा वाचा कर्मणा करके सर्वदा सर्व प्रकार के मैथुन से दूर रहने का नाम ही ब्रह्मचर्य कहाता है महाभारत शान्ति पर्व मोक्षधर्म पर्व अ० १९२ में भी उदासीन को ही चातुर्थाश्रमी परिव्राजक लिखा है।

परिव्राजकानां पुनश चारः तद्यथा विमुच्याग्निन धन कलत्र परिवर्हण सङ्गं स्वात्मानं स्नेह पाशान वधूय परिव्रजन्ति सम लोष्ठाश्मकाञ्चनास्त्रिवर्ग प्रक्कतेष्व सक्त बुद्धयः। अरि मित्रोदासीनानां तुल्य दर्शनाः

भावार्थ—परिव्राजक उदासीनों का आचार इस प्रकार होता है यह लोग अग्नि होत्र धन स्त्री और घर की सब सामग्री को त्याग संसारिक सब विषयों के ऊपर से स्नेह की फांसी को नष्ट कर देते हैं तब मिट्टी पत्थर और सोने को एक समान समझ धर्म, अर्थ और काम में आसक्त न हो वैरी और मित्र को बराबर समझने लगते हैं इससे स्पष्ट है कि चतुर्थाश्रमी पूर्ण वैराग्य वान ही हो सकता है और वही उदासीन धर्म को पूर्ण रूप से पालन करेगा ऐसे पवित्रात्मा उदासीन महात्माओं की सेवा शुश्रूषा करना सद् गृहस्थों का परम कर्तव्य शास्त्रों ने बताया है।

अभ्यागतानुदासीनान् गृहस्थः परिपालयेत् ।
गृहस्थेभ्यः शिवानोक्तं उदासीन परिपालनम् ॥४६॥

(महानिर्वाण तन्त्र अष्टम उल्लास)

अभ्यागत उदासीन महात्मा को गृहस्थ शिव स्वरूप समझकर उसकी पालना करे आगे भी लिखा है—

॥ अतिथि* पूजन ॥

श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कहते हैं हे तुलसीदास जी-अतिथि को पूजा भगवान् की पूजा के बराबर है ऐसा शास्त्रों में लिखा है

वालोवायदिवा वृद्धो युवा वा गृह मागतः ।
तस्य पूजा विधातव्य सर्वस्या भ्यागतो गुरुः ॥ } हितोपदेश मित्र लाभ

अर्थ—बालक, युवा, अथवा वृद्ध कोई भी अतिथि अभ्यागत साधु गृहस्थी के द्वारपर आ जाय उसका अन्न जल असन से पूजा (स्वागत) करना विधान है, कारण अभ्यागत (साधु) सबका गुरू होता है।

साधु महात्मा परमात्मा के व्यक्त स्वरूप हैं संसार में साधु महात्माओं के द्वारा परमात्मा अपना दिव्य संदेश हिंदुओं के पास भेजा करता है उदासीन साधु मायामें रहते हुये भी माया से अलिप्त सब बंधनों से मुक्त हुआ करते हैं।

उदासीन साधुओं की यह अपार अहेतु की दया है कि वे संसारी जीवों के हितकी चिन्ता करते रहते हैं ऐसे निर्पेक्ष, शान्त, समदर्शी, परोपकारी, ब्रह्मनिष्ठ, विद्वान, तपस्वि, भजनीक लोक हितकारी उदासीन महात्माओं के लिये सद्गृहस्थ को उचित है कि जो कुछ आप भोजन करता हे उससे अच्छा भोजन कराना, नहीं तो वही पवित्र भोजन कराना, इससे गृहस्थों को यहां यश और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है ऐसा व्यास स्मृति अ० ३ में लिखा है—

आगतं दूरतः श्रातं भोक्तु कामं मकिञ्चनम् ।
दृष्ट्वा सम्मुख मभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्रयार्चनैः ॥३८॥

अर्थ—दूर से आया हुआ थका हुआ, भोजन चाहनेवाला पास में कुछ नहीं रखने वाला ऐसे अथिति उदासीन को देखकर नम्रता पूर्वक उसका सत्कार करे॥३८॥

स्वागता सनदानेन प्रत्युत्थाने न चांवुना ।
स्वागते नाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृह मेधिना ॥५७॥ } हारीत स्मृति

*अतिथि का अर्थ—जो साधु (अ) कहिये आये हुये की 'तिथि' स्थिति करानी है इसको अतिथि कहते हैं।

अर्थ—स्वागत करना आसन देना देखकर उठना जल देना इस प्रकार अतिथि का आदर करने से गृहस्थ के अवश्य गार्हपत्यादि अग्नि प्रसन्न होते हैं ॥५७॥

स्वागतेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ।
पाद शौचेन पितरः प्रीति मायान्ति दुर्लभाम् ॥५८॥

अर्थ—आसन देने से इन्द्रदेव प्रसन्न होते हैं चरण धोने से दुर्लभ प्रीति को पितर प्राप्त होते हैं ॥५८॥

अन्न दानेन युक्तेन तृप्ययन्ते प्रजा पतिः ।
तस्मादतिथये कार्य्यं पूजनं गृह मेधिना ॥५९॥ } हारीत स्मृति अ० ४

अर्थ—श्रेष्ठ अन्न देने से ब्रह्मा प्रसन्न होते हैं इससे सर्व सुख चाहने वाले गृहस्थि को सदैव अतिथि का पूजन करना चाहिये ।

अतिथि त्वेन वर्णानां देयं शक्त्या नु पूर्वशः ।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपि वाग्भू तृणो दकैः ।१०७ } याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १

अर्थ—सायंकाल में आये हुये अतिथि को निराश नहीं करे यदि (अपने पास) अन्न न होवे तो बचन वास स्थान और जल से अतिथि का सत्कार अवश्य करे ॥१०७॥

न पृच्छाति तु यो विप्रो ह्यतिथि वेद पारगम्
अददन्नाद मात्रंतु भुक्त्वा भुंक्तेतु किल्विषम् } पराशर स्मृति अ० १

अर्थ—जो ब्राह्मण वेदपारग अतिथि को भोजन नहीं कराके अन्न खाता है वह पाप का भोजन करता है ।

सं प्राप्तोयोऽतिथिः सायं सूर्योढोगृह मेधिनाम् ।
पूजया तस्य देवत्वं प्रयान्ति गृह मेधिनः ॥१८१॥

अर्थ—जो अतिथि गृहस्थियों के यहाँ सन्ध्या समय (सूर्य छिपने के समय) प्राप्त हो उसकी पूजा करे तो वह गृस्थ देवत्व को प्राप्त होता है ॥१८१॥

तृणानि भूमि रुदकं वाक् चतुर्थीच सूनृता ।
सतामेतानि हर्म्येषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥१८२॥

अर्थ—तृण, भूमि, जल और चौथी सत्य मधुर वाणी यह पुरुष के घर से कदाचित् नष्ट नहीं होती हैं अर्थात् यह चारों बातें सबके पास रहती हैं ॥१८२॥

स्वागते नाग्न यस्तृप्ता आसनेन शतक्रतुः ।
पाद शौचेन पितरः अर्घाच्छम्भुस्तथा तियेः ॥१८३॥ } पञ्चतन्त्रका १ तन्त्र

अर्थ—आइये ऐसा कहने से अग्नि आसन से इन्द्र चरण धोने से पितर और अतिथि को अर्घ देने से शिव जी प्रसन्न हो जाते हैं ॥१८३॥

इसी प्रकार विष्णु स्मृति श्लोक ३७ से ४३ तक में लिखा है कि अतिथि अभ्यागत की सेवा पूजा गृहस्थियों को अविनाशी सुख को देनेवाली होती है गृहस्थियों के लिये यही उत्तम कार्य स्वर्ग का साधन है।

महाभारत आश्वमेधिक पर्व अ० ६८ में लिखा है जिसके पैर में धूलि भरी हो जो बहुत दूर से चलके थका आया हो थकावट से कृष हो रहा हो आके अपने पास अन्न और निवास स्थान माँगे ऐसे अतिथि को ध्यान देकर सत्कार करे यह सत्कार स्वर्ग प्रदाता है उस अतिथि पूजन से सब देवता प्रसन्न होते हैं जो पहिले से जाना हुआ हो वह अभ्यागत जो जाना हुआ न हो वह अतिथि कहाता है द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य) को इन दोनों को सेवा करनी चाहिये स्कन्द पुराण में लिखा है कि एकबार साधुको भोजन कराने से ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, मरुत, पितर, देवता सब प्रसन्न हो जाते हैं। जो पुरुष अन्नको बनाके विष्णु स्वरूप साधु महात्माओं को भिक्षा देते हैं उनको सर्व पृथ्वी के दान का फल होता है जिस गृहस्थी के घर भोजन काल में साधु उपस्थित हो उसको सर्व प्रकार के उत्तमोत्तम भोजन देना चाहिये इससे दाता के सर्व अशुभनष्ट हो जाते हैं यह वृहद् याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है।

राजा जनक से नौ योगीश्वर *उदासीनों में से द्रुमिल योगेश्वर कहते हैं कि जिस आश्रम में अतिथि सत्कार नहीं होता वह आश्रम शून्य कहा जाता है (भागवत स्कंध ११ अ० ४ श्लोक ८)।

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ।
काले प्राप्तस्त्व कालेवा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥१०५॥

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक १०५ में लिखा है कि अपने स्थान पर किसी भी में समय आये हुये अतिथि को भूखा न सुलावै जो घी दूधादि पदार्थ हैं वह अतिथि को भोजन कराकर पीछे आप भोजन करना चाहिये क्योंकि अतिथि का भोजन कराना लक्ष्मी और दीर्घायु का हेतु है

---

*कवि, हरि,अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ए नौ योगेश्वर ऋषभदेव जी के पुत्र थे इनको रत्युगम सूत्र चतुर्थ पाद में उदासीन लिखा है। **नवयोगेश्वरा उदासीनाः ॥७७॥**

जो मनुष्य वगैर अतिथि को भोजन कराये आप भोजन कर लेता है वह उस आये अतिथि के समस्त पापों को ग्रहण करता हुआ नरक गामी होता है साथ में भी अपयश होता है इसी वास्ते शास्त्र कारों का कहना है जहाँ पर आदर भाव न हो वहाँ पर कभी न जाना चाहिये—

नाभ्युत्थान क्रिया यत्र नालापामधुराक्षरः ।
गुण दोष कथानैव तत्र हर्म्येन गम्यते ॥६६॥ } पञ्चतन्त्र का दूसरा तन्त्र

अपने स्थान में जो आवे उसको प्रेम से इस प्रकार पूछना चाहिये—

एह्या गच्छ समाश्वासनमिदं कस्माच्चिरा दृश्यसे,
का वार्ता न्वति दुर्बलोऽसि कुशलं प्रीतोऽस्मिते दर्शनात् ।
एवं नीच जनेऽपि युज्यति गृहं प्राप्ते सतां सर्वदा,
धर्मोऽयं गृह मेधिनां निगदितः स्मार्तैर्लघु स्वर्गदः ॥२७६॥

अर्थ—यहाँ आओ, यह सुन्दर आसन है, बहुत दिनों में देखा, कहाँ थे, क्या बात है, बहुत कमजोर हो गये, कुशल है, हम आपके दर्शन से प्रसन्न हुये इस प्रकार सत्पुरुष नीच के प्राप्त होने में भी कहा करते हैं यह स्मृति में कहा हुआ गृहस्थ धर्म गृहस्थों को स्वर्ग देनेवाला सामान्य धर्म कहा है ॥२७६॥ (पञ्चतन्त्रमित्र भेद)

॥ विचार दण्ड ॥

नोट—कई जगह में चतुर्थाश्रमी को दण्ड धारण करने का विधान भी लिखाहै सो उदासीनों का विचार ही दण्ड कहा गया है शास्त्र बताते हैं यदि मन अपने वशन हुआ हृदय में ज्ञान का प्रकाशन होकर उलटे बुरे आचरण और मानसिक दुष्ट भावना का विनाश बना रहा समता शान्ति संतुस्ट-तृप्ति, अहिंसा, उदारता, सरलता, क्षमा, सहिष्णुता, सत्य, संयम, करुणा, मुदिता, नहीं उत्पन्न हुई काम, क्रोध, मत्सर, दर्प, अभिमानादि दोष हृदय में वर्तमान हों तब तक न दण्ड धारण से न मुण्डन से न भेष बना के दम्भाचरण करने से मुक्ति मिलती है देखो इसी बात को नारद परिव्राजकोपनिषद् में भी कहा है ।

"न दण्ड धारणेन न मुण्डनेन न वेषेण न दम्भा चारेण मुक्तिः"

ज्ञान दण्डो धृतोयेन एक दण्डी स उच्यते ।
काष्ठ दण्डो धृतोयेन सर्वाशी ज्ञान वर्जितः
स याति नरकां घोरा महा रौरव संज्ञितान् ॥२॥
प्रतिष्ठा सूकरी विष्ठा समागीता महर्षिभिः } नारद परिव्राज को पनिषद् पञ्चोप देश

तस्मादेनां परित्यज्य कीटवत् पर्यटेद्यतिः ॥३॥

यही बात शंख स्मृति अ० ५ में भी लिखी है कि साधु को केवल भेष बनाने मौन रहने या निर्जन वनमें रहने से कोई सिद्धि नहीं मिलती चतुर्थाश्रमी को कीड़े के समान विचरण करना विष्णु स्मृति अ० ४ श्लोक ६ में भी लिखा है इसीलिये चतुर्थाश्रमी उदासीन महात्मा के लिये लिखा है—

वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च तेत्रयः ।
यस्यैते नियता दण्डाः सत्रिदण्डी महायतिः ॥५॥ } नारद परिव्राजकोपनिषद्

वाग्दण्डोऽथमनोदण्डः काय दडस्तथैवच ।
यस्यैतेनिहिता बुद्धौ त्रिदण्डीतिसउच्यते ॥१०॥ } मनु अ० १२

अर्थ—जिसकी बुद्धि में वाणी का दण्ड मनका दण्ड और शरीर का दण्ड स्थित है वही त्रिदण्डो कहा जाता है वृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र अ० १० वानप्रस्थादि धर्म श्लोक ३१-३२ में भी ऐसा ही कहा है ।

वाग्दण्डः कायदण्डश्च मनो दण्डश्च येत्रयः ।
यस्यैति नियता दण्डाः सत्रदण्डी उदासिनः ॥ } अनुभव सहानुभूति अ० २

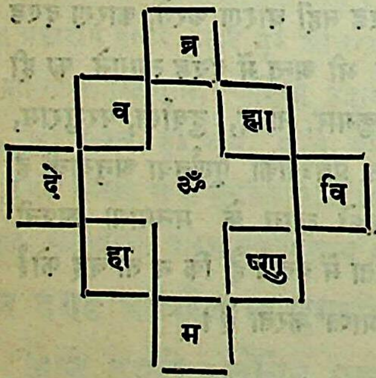
अर्थ – वाणीका दण्ड, शरीर का दण्ड, और मनका दण्ड यही तीन दण्ड हों जिसके पास वही त्रिदण्डी उदासीन है इसीसे उदासीन प्रत्यक्ष में दण्ड नहीं धारण करते, कारण दण्ड धारण करना कोई अधिक उत्तम कार्य नहीं है तभीतो शास्त्र ने भी अन्त में दण्ड त्यागने का ही विधान बताया है उदासीन भेष में प्रारम्भ से ही विष्णु, सनत्कुमार, नारद, दुर्वासा, परशुराम, प्रभृति दण्ड धारण नहीं करते रहे, कारण उदासीन भेष श्रौत प्रव्रज्याका पूर्णतया अनुयायी है शास्त्रानुसार चलना ही श्रेष्ठता कही गई है जो शास्त्र विधिको त्याग के मनमाना अपनी इच्छानुसार कार्य करता है उसके लिये भगवान् श्री कृष्ण गीता में बताते हैं कि न तो वह कोई सिद्धिको प्राप्त होता है न परमगति को न संसार में सुखको ही प्राप्त करता है।

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः ।
न ससिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।२३। } गीता अ० १६

अर्थ—स्मरण रहे यह वाक्य पूर्णावस्था को प्राप्त उदासीन महात्मा ऋद्धि सिद्धिके धनी सर्व शक्तिमान तपस्वी योगियों को कम लागू होती है, वह अपने जप, तप, भक्ति, ज्ञान, योगबल, के प्रताप से विधि निषेध से बाहर हैं ऐसा महात्मा कभी कभी नियम तोड़ भी देत

है तब भी कोई अशान्ति नहीं होती। लोगोंका कल्याण ही होता है समर्थता के यही लक्षण हैं। समर्थ महात्माओं के कार्य असाधारण, अलौकिक, गूढ़ अत्यन्त कठिन और विचित्र हुआ करते हैं। ऐसे सर्वश्रेष्ठ समर्थ पुरुषोत्तम संसार के प्रवाह को किसी नई दशा में बदल दे तो कोई आश्चर्य नहीं। होनहार को भी मिटा सकते हैं, असम्भव को सम्भव कर डालते हैं समर्थ व्यक्ति की शक्ति अथाह होती है प्रबल प्रताप, अद्भुत पराक्रम, अजेय, और कृपा अमोघ होती है वह जो चाहता है वह कर डालता है विश्वामित्र उदासीन ने राजा त्रिशंकु के सम्बन्ध में नई सृष्टिकी ही रचना कर डाली, दुर्वासा मुनि उदासीन ने भगवान् कृष्ण के वंशजों के ऊपर क्रोध करके वंशके वंशका नाश हो जाने का शाप दे दिया, शुकदेव जी दिगंबर ही घूमते रहे मीरा ने जहर का प्याला चरणामृत करके पी लिया, नामदेव ने पत्थर से भगवान् को साक्षात् कर लिया नीति शास्त्र में इस विषयपर खूब विचार किया गया है कि किसी अच्छे उद्देश्य के लिये। बुरा काम भी किया जाय तो वह बुरा नहीं कहा जाता पूर्णावस्था को प्राप्त हुआ महात्मा समय समय पर कानून को तोड़ देता है क्योंकि संसार की दूसरी आत्मायें उनके समान मुक्त नहीं हैं इसलिये उन जीवन मुक्त महात्माओं की समता साधारण पुरुषों को कदापिन करनी चाहिये जैसे चतुर वैद्य किसी रोगी का शरीर काटता है तो उसका काटना रोगी के रोग का नाशक है परन्तु अन्य कोई किसी का शरीर वैद्य की देखा देखी बराबरी करने निमित्त काट दे तो वह प्राण घातक बन जायेगा यह बात हिन्दू धर्म में ही नहीं बल्कि अन्य धर्मों में भी मानी* जाती है।

त्रिदेव यन्त्र



पूर्ण महात्मा का क्रोध भी लाभदायक है जैसे सनकादिक उदासीन मुनियों ने जय विजय को शाप दिया वह आकर मृत्युलोक में हिरण्य कश्यपु हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण, दन्तवक्र-शिशुपाल हुये अब इनके शाप से मुक्ति कराने वास्ते भगवान् को भी नृसिंह, वाराह-राम-कृष्ण के नाम से पृथ्वी पर आना पड़ा कितना भारत के मनुष्यों पर सनकादिकों का उपकार हुआ कि जिस भगवान् के दर्शनार्थ सहस्त्रों वर्ष तपस्या की जाती है जप योग किया जाता है घर बार छोड़ वन वन भटकना पड़ता है तब कहीं कृपा करके भगवान् दर्शन दे दें तो बड़े भाग्य वही भगवान् का दर्शन आम अयोध्या मथुरा, द्वारका, निवासी पाते हुये प्रसन्न होते थे अब आप विचार सकते हैं कि पूर्ण पुरुष का किया साधारण कार्य भी कितना लाभ प्रद हुआ। इस लिये पूर्ण पुरुष के किसी भी कार्य में शंका करना महा

*उदाहरणार्थ देखिये इस्लाम के सूफी भी यह मानते हैं कि अन्य साधारण मनुष्यों की अपेक्षा पहुँचे हुये फकीरों के आचरण में अधिक स्वच्छन्दता होती है।

मूर्खता है पूर्ण महात्मा के अन्दर वह उत्तम विवेक भरा रहता है जिससे हम लोगों की पार्थिव बुद्धि कदापि समझ नहीं सकती उनकी समता करना सर्प से खेलना अग्नि के कूदने के समान है साधारण पुरुषों का जीवनमुक्त महात्मा के कार्य का अनुकरण करना कदापि उचित नहीं है यह अधिकार उन्हीं को प्राप्त है इस अधिकार और स्वतंत्रता का उपयोग वही उदासीन योगेश्वर सिद्ध पुरुष कर सकता है जो जीवन मुक्त हो इस संसार में केवल ईश्वर की इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही विचरता है ऐसा जीवन मुक्त उदासीन महात्मा स्वच्छन्दता पूर्वक व्यवहार कर सकता है क्योंकि उसकी निजकी इच्छा कोई नहीं होती ईश्वर की इच्छा ही उसकीइच्छा होती है हां उस पदवी के पहुँचने का साधन प्रयत्न पूर्वक अवश्य करना चाहिये।

तैतिरीयोपनिषद एकादश अनुवाक में भी यही लिखा है— **"यान्यस्माकं सुचरितानि ॥ तानि त्वयो पास्यानि ॥२॥ नोइतराणि"** कि साधारणमनुष्यों को वड़ों के अच्छे आचरणों का ही अनुकरण करना चाहिये गीता अ० ३ श्लोक २१ में भी यही कहा है—

यद्यदा चरित श्रेष्ठ स्तत्त देवे तरोजनः ।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥

श्रेष्ठ वेदविद* उदासीन पुरुष जो जो आचरण करता है साधारण पुरुष भी उसके ही अनुसार वर्तते हैं धर्म शास्त्र के जानने वाला श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य के शरीर बल अवस्था काल तथा कर्म को देख और विचार के जो व्यवस्था कर देता है वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है लोग भी उसके अनुसार चलते हैं इसलिये पूर्ण महात्मा भी शास्त्रोक्त विधान के ही अनुसार व्यवहार करना उचित समझते और करते भी हैं।

परन्तु न करें तो भी मर्जीके मालिक हैं उनपर ईश्वरीय और शास्त्रीय कोई दण्ड नहीं यद्यपि हम यह समझते हैं कि महापुरुषों की शास्त्र विपरीत क्रिया साधारण पुरुष को भ्रमोत्पादक हो जाती है, साधारण महात्मा उनके इस प्रकार के व्यवहार को देख अवश्य यह कह बैठता है कि यदि इतने बड़े महात्मा अमुक कार्य को करके पापके भागी नहीं होते तो हम कैसे होंगे परन्तु उनको यह ध्यान रखना चाहिये कि बड़े समर्थ हैं जो कुछ करें सो कर सकते हैं कारण मुक्ति प्राप्तहो जाने के वाद उस जीवन मुक्त महात्मा के शरीर से पूर्वाभ्यासवश उसीभांति क्रिया होती रहती है जैसे कुम्हार का चक्र बर्तन बन जाने के बाद भी चलता रहता है साधारण पुरुषों को उनकी आज्ञा मानके अन्तःकरण को शुद्ध करके परमात्मा के साक्षातकार वाला साधन करना

*वेद और शास्त्र पढ़े हुये और वेद शास्त्रों के अर्थ बताने वाले को वेदविद् कहते हैं अत्रि स्मृति १३९-१४०

चाहिये ऐसों ही के लिये वेद शास्त्र की मर्य्यादा का उल्लंघन महापाप है इन लोगों को चाहिये कि पूर्ण उदासीन साधु महात्मा का बचन प्रमाण रूप मानके उनके उपदेशानुसार ही चलना, सनातन धर्म समझे इसीमें श्रद्धालु गृहस्थियों का कल्याण है, न उनकी क्रिया में बराबरी करने से, उदासीन साधु महात्माओं की रात्रि दिन सङ्गति करने से मनुष्यों में सांसारिक झंझटों से उपरामता स्वतःही उत्पन्न हो जाती है और मन परमार्थ की ओर लग जाता है लोग उस जिज्ञासु के श्रेष्ठाचार देखके उसे भी भक्त शब्द से सम्बोधन करना आरम्भ कर देते हैं।

पुत्रे निधाय वा सर्वं गत्वारण्यन्तु तत्ववित्। } कूर्म पुराण
एकाकी विचरे न्नित्यं मुदासीनः समाहितः ॥२॥ } उत्तरार्ध अ०२७

इस चतुर्थाश्रमी उदासीन धर्म में "त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चात्वार आश्रमाः" तीनों वर्ण वेद पढ़ गुरुदीक्षा ले सम्मिलित होते चले आये हैं, यद्यपि ब्राह्मण के लिये चतुर्थाश्रमी बनना सुगम है तथापि क्षत्रिय और वैश्य भी साधना साधते हुये इस चतुर्थाश्रमी मार्गको सद्गुरु की दया से सुगमता पूर्वक प्राप्त कर लेते हैं आदिकाल से ही इस चतुर्थाश्रमी उदासीन भेषको त्रैवर्ण धारण करते चले आये हैं ऐसा श्रुति वचन है।

'तत्र परमहंसा नाम संवर्तक अरुणि श्वेत केतु दुरवासा, ऋभु, निदाध, जड़ भरत, दत्तात्रेय रैवतक प्रभृतयः

जांवालोपनिषद् याज्ञवल्क्योपनिषद् यही बात उदासीन मत प्रदीप पञ्चमी शिखा में भी कही है :—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्योवा प्रव्रजेद् गृहात्।
त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वाराश्रमाः ॥

ऋषभश्च ध्रुवश्चापि याज्ञवल्क्योऽथ मैथिलः।
प्रह्लादोभर्तो गार्गि मैत्रेया धैरनुष्ठितम् ॥

उदासीन स्वधर्माणि त्वयि संत्व खिलानि च।
तथैव न्यास धर्माणि सन्तूदासीन साधुषु ॥

इसकी पुष्टि ब्रह्माण्ड पुराण में भी की है

त्रैवर्ण नाम सन्यासो विद्यते नात्र संशयः।
शिखा यज्ञोपवीतानां त्याग पूर्वैक दण्ड युक् ॥

उपरोक्त प्रमाणों से सिद्धि है कि तीनों वर्ण चतुर्थाश्रमी वन उदासीन धर्म को पालन करते हुये ज्ञान वैराग्य सम्पन्न होते हैं ऐसे ही उदासीन महात्माओं के वास्ते भागवत में लिखा है

अस्त्यस्वपर दृष्टि नाम मित्रो दास्त विद्विषाम् ।
उदासीनोऽखिद्वर्ज आत्म वत्सुहृदुच्यते ॥५॥ } स्कन्ध १० अ० २४

अर्थ—भगवान् श्री कृष्ण जी नन्द के प्रति कह रहे हैं कि उदासीन साधु अपना पराया कुछ नहीं समझते उनकी समदृष्टि है उनका मित्र और बैरी भी कोई नहीं होता यह सारा संसार उस उदासीन महात्मा को आत्मा के समान अर्थात् साक्षात् ईश्वर के समान सुहृदयानी शुद्ध हृदय वाला कहता है क्योंकि उसने अपना सर्वस्व शत्रु के समान दुःखद समझ के त्याग दिया है आगे भी भगवान् कृष्ण उद्धव के प्रति भागवत स्कन्ध ११ अ० २३ में बताते हैं—

तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेग मरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित्
कुर्वन्त्य सद्विग्रह मत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीन रिपुन्विमूढ़ाः ॥४९॥

अर्थ— इस संसार में मूर्ख लोग अहंकार को अपना भारी शत्रु नहीं समझते जो यही सब को पीड़ा देता है यह बड़ी कठिनाई से जीता जाता है इसका वेग (शक्ति) असह्य और मर्म भेदी है जो मनुष्यों से झूठ मूठ शत्रुता मित्रता कराता रहता है किन्तु उदासीन साधु ऐसा दापि नहीं करते ॥४९॥

सुख दुःख प्रदानान्यः पुरुषस्यात्म विभ्रमः ।
मित्रोदासीनरिपवः संसार स्तमसः कृतः ॥६०॥ } भागवत स्कन्ध ११ अ० २४

अर्थ—अपने कर्म को छोड़ दूसरा कोई किसी को सुख या दुख देने वाला नहीं है जो मनुष्य यह समझता है अमुक हमारा मित्र है अमुक हमारा शत्रु है वह भ्रम में है यह संसार तमोगुण से बना है तमोगुण ही इसमें प्रधान है उदासीन महात्मा यह सब रहस्य जानता हुआ पृथक रहता है उदासीन शब्द का अर्थ भी श्रुति शास्त्र सम्मत ही है।

॥ उदासीन शब्द का अर्थ व्युत्पति सहित ॥

(क) उद् ऊर्ध्वमस्ति तिष्ठतीति उदासीनः उद् पूर्वक आस उपवेसते धातो संकाशात् लटः शतृ शानचाव प्रथमा समानाधि करणे इति सूत्रेण लट् जाते शानजादेशे सति उदासीन इति रूपं निष्पन्नम् ई दास इति सूत्रेण आ स्थाने ई आदेश स्यात् आदेः परस्येति आदेर्वोध्यम् उद् ऊर्ध्वे मात्मनि आस्तेति तिष्ठतीति उदासीन ।

जो अर्थ ब्रह्म संस्थ शब्द का है वही उदासीन शब्द का है कारण कि उदासीन शब्द के दो भाग हैं उद् × आसीन उद् का अर्थ है कि सर्वोत्कृष्ठ ब्रह्म, आसीन शब्द का अर्थ स्थित है दोनों भाग को मिलाके "उद् सर्वोत्कृष्ट सर्वे पाप विनिर्मुक्ते वा ब्रह्मणि आस्ते निषीदत्यु उदासीनः" इस व्युत्पत्ति से उदासीन शब्द का ब्रह्म संस्थ चतुर्थाश्रमी अर्थ निर्धारित हुआ देखो (श्रौति मुनि चरितामृत पृष्ठ ७९ में इसका विस्तार) इसी प्रकार यति भिक्षुक परिव्राजक सब शब्द उदासीन के ही वाचक हैं।

(ख) उद् पूर्वकात् आस उपवेशन इत्यस्माद्धातो सुप्य जातौणिनिस्ता च्छील्ये इति सूत्रेण णिनि प्रत्ययेणकार कोरयोरिति संज्ञाया उदासीन इति 'जाते ततः सोनस्मोय प्रातिपदिकान् तस्य इत्यनेन न लोपो "उदासी" इति निष्पद्यदे अत एवन्यं उदासीन शब्द समानार्थका धात्वर्थ प्रत्ययार्थ तोलयात्।

(ग) उदासीन शब्द में शेषालंकार है एक अर्थ तो पूर्वोक्त ही है और दूसरा इसी शब्द का जो अपने उपदेश द्वारा व्यवहार और परमार्थ में लोगों की उन्नति करे इसकी सिद्धि इस प्रकार है उत् पूर्वकात् अंसु क्षपण धातोणिनि प्रत्यय होने पर सिद्धि होता है।

यह बात आगे भी बता आये हैं कि इस चतुर्थाश्रमी उदासीन भेष के ग्रहण करने का द्विजाति मात्र को सब अवस्था में अधिकार है यदि ब्रह्मचर्यावस्था में ही तीव्र वैराग्य पूर्व जन्म संचित श्रेष्ठ कर्मों के फल से हो जाय तो ब्रह्मचारी अवस्था में ही चतुर्थाश्रम भेष की दीक्षा ले सकता है जैसे भगवान् सनत्कुमार, शुकदेव, नारद, नौयोगीश्वरादिक प्रथमावस्था से ही चतुर्थाश्रमी हो गये हैं ऐसे पुरुष को कोई आवश्यकता नहीं रह जाती कि वह गृहस्थ और वणप्रस्थ आश्रम का धर्म पालन करके ही चतुर्थाश्रमी बने इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने पर भी चतुर्थाश्रम धारण कर सकता है ऐसा परमहंस परिव्राजकोपनिषद् में लिखा है।

सद्गुरु समीपे सकल विद्या परिश्रमज्ञो भूत्वा विद्वान् ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत् गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। यदि वेतरथा ब्रह्मचर्या देव प्रव्रजेद् गृहाद्वावनाद्वा-अथ पुनरव्रतीवा व्रतीवा स्नातको वा ऽस्नातको वीतस्नाग्नि रनग्नि को वायद हरेव विरजेत्त दहरेव प्रव्रजेदिति। (परमहंस परिव्राजकोपनिषद्)

अर्थ—चतुर्थाश्रमी धर्म पालन करने से तीव्र वैराग्य होता है जिसके होने से मनुष्य आत्म दर्शी तत्ववेत्ता बन मोक्ष* प्राप्त करता है, इस वैराग्य भेदका समझ लेना भी

*औदास्यां मोक्षाश्रमः लिखा है।

परम आवश्यकीय है इसलिये अब वैराग्य की न्यूनाधिकता दिखाते हैं, अपर वैराग्य और पर वैराग्य दो प्रकार का होता है अपर वैराग्य यतिमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय, वशीकार इस प्रकार से ४ प्रकार का होता है संसार में सार असार का विचार करना यतिमान वैराग्य कहाता है, चित्त के विपेस्थित राग द्वेषादिक दोषों का विचार करना कि इतने दोष मेरे निवृत हो चुके हैं बाकी को निवृत करने का प्रयत्न करने का नाम व्यतिरेक वैराग्य है (३) विषयों की इच्छा मन में विद्यमान हुये जान के इन्द्रियों का निरोध करने का प्रयत्न करने का नाम एकेन्द्रिय है, (४) लोक परलोक के विषयों को नाशवान् जानके उनके त्याग की इच्छा का नाम वशीकार वैराग्य है, यह वशीकार वैराग्य भी मन्द तीव्र और तीव्रतर तीन प्रकार का होता है (१) स्त्री पुत्र धनादि के वियोग से संसार को बुरा समझ के इसके त्याग की इच्छा उत्पन्न होना इसको मन्द वैराग्य कहते हैं, (२) धन, स्त्री पुत्रादिक विषयों से सम्पन्न होता हुआ धन स्त्री पुत्रादि कुटुम्ब का त्यागन कर पुनः इनसे सम्पर्क न रखना तथा इनके प्राप्त होने का संकल्प भी न उठाना इस स्थिरता का नाम तीव्र वैराग्य है, सो इस वैराग्य के परिपक्क होने पर चतुर्थाश्रमी उदासीन भेष धारण करने वाले की पुनः विचलित होने की सम्भावना नहीं रह जाती (३) ब्रह्म लोक तक के आगमापाई भोग जो हैं इनके प्राप्ति की इच्छा न करना इस दृढ़ता का नाम तीव्रतर वैराग्य है मन्द वैराग्य निकृष्ठ, तीव्र वैराग्य मध्यम, तीव्रतर वैराग्य उत्तम माना है "गुणेषु वैतृष्ण्यं पर वैराग्यं" सत्व, रज, तम, गुणों का परिणाम रूप जो यह लोक तथा पर लोक के विषयों की तृष्णा से रहित होने का नाम पर वैराग्य है पर वैराग्य की परिपक्क अवस्था में संसार के व्यवहार उसे "व्यावहारिकः प्रपञ्चः मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरुप्यवत्" यह जो व्यवहारिक प्रपञ्च देखने में आता है वह सब मिथ्या समझता है जैसे सीप में चाँदी का भाषित होना मिथ्या अज्ञान है "दृष्टि मान है सगल मिथेना,,

इतिहास पढ़ने से पता लगता है कि आगे जितने भी बड़े बड़े महापुरुष होगये हैं उन्होंने मोक्ष सिद्धि के लिये अन्त में सर्व कर्मों का त्याग कर चतुर्थ उदासीन आश्रम में प्रवेश करना ही आवश्यक समझा है महाभारत शान्ति पर्व के पढ़ने से पता लगता है कि राजा जनक ऐसे ज्ञानी भी अन्त में कर्म त्याग मोक्ष धर्मी उदासीनाश्रम (चतुर्थाश्रम) को धारण किया।

विदेह राज्यं च तदा प्रतिष्ठा प्यसुतस्मेव।
यति धर्म मुपासंश्च प्यवसन् मिथला पतिः॥६७॥ अ० ३१८

ऐसे उदास धर्म का प्रभाव सर्वत्र विश्व व्यापी था और जनता इनके आचार विचार परोपकार और उपकार पर मुग्ध थी लोगों की अटल धारणा थी कि उदासीन चतुर्थाश्रमी बनते ही मोक्ष मार्गावलम्बी बन जायेंगे

ऋण त्रयमुपा कृत्य निर्ममोनिर हंकृतिः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियोवाथ वैश्यो वा प्रव्रजेद् गृहात् ॥

तीन ऋण से निवृत हो बीता हंकार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इन तीनों को चतुर्थ उदासीनाश्रम ग्रहण करने के लिये गृह त्याग देना उचित है देखो मनु जी अध्याय ६ में भी यही कहते हैं ।

अनेन क्रम योगेन परिव्रजतियो द्विजः *॥
स विधू येह परमानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥८५॥

पूर्व कथित कर्म से जो द्विज चतुर्थाश्रम ग्रहण करता है वह पापों से मुक्त हो परब्रह्म हीं को प्राप्त होता है विना चतुर्थ उदासीनाश्रम धारण किये मोक्ष का मार्ग प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है उदासीनाश्रम ग्रहण करके वेद, पाठ, यज्ञ, ब्रह्मचर्य, तपस्या, दम, श्रद्धा, उपवास और स्वतंत्रतादि साधनों से आत्म ज्ञान होता है (याज्ञवल्क्य स्मृति अ० ३ श्लोक १९०), दक्ष स्मृति अध्याय ७ में लिखा है ।

विषयासक्त चित्तो हि यतिर्मोक्षं न विंदति ।
यत्नेन विषयासक्तिं तस्माद् योगी विवर्जयेत् ॥१३॥

अर्थ—जिसयति उदासीन महात्मा का चित्त विषयासक्त हो जाता है वह मोक्ष नहीं पाता इसलिये योगी (युक्ति जानने वाला उदासीन) महात्मा विषयों से अपना मन यत्नपूर्वक हटा लेते हैं अर्थात् विषयों में लगी हुई सर्वेन्द्रियों को विषयों से हटाकर मन में लावे और मनको आत्मा में युक्त करे ॥१३॥

कुटुम्बं पुत्र दारांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
यज्ञं यज्ञोपवीतं च त्यक्त्वा गूढ़श्चरेद्यतिः ॥३२॥ } नारदपरिव्राजको पनिषद्

अर्थ—कुटुम्ब पुत्र दारा (स्त्री) वेद तथा वेद के अङ्ग सबको अर्थात् वेद पढ़ना या वहिस (वादाविवाद) करना यज्ञ और यज्ञोपवीतादि सबको यति विरक्त उदासीन त्याग दे ॥३२॥ और भी लिखा है—

अशेष मोहः समलोष्ठ काञ्चनः प्रहीण कोशो गत सन्धि विग्रहः
अपेत निन्दा स्तुतिर प्रियाप्रिय श्चरन्नुदासीन वदेष भिक्षुकः ॥
(महाभारत शान्ति पर्व मोक्ष धर्म अ० २४५ श्लो० ३६)

*ब्राह्मणः क्षत्रिय वैश्य स्त्रयोवर्णा द्विजातयः ॥ अ० १० मनु०

अर्थ—भिक्षुक उदासीन महात्मा को रोष मोह, नहीं होता वह मिट्टीके ढेले और स्वर्ण को एक समान समझ किसी प्रकार का कोष नही संचय करता, उसका कोई मित्र शत्रु न हो समान भाव से विचरता है ॥३६॥

लाभ पूजानिमित्तं हि व्याख्यानं शिष्य संग्रहः ।
एतेचान्ये च वहवाः प्रपञ्चास्तु तपस्विनाम् ॥३६॥

(दक्ष स्मृति अध्याय ७)

अर्थ—व्याख्यान देना और शिष्यों का संग्रह करना संसार में पूजा कराने निमित्त ही है ये सब तथा अन्य और भी बहुत से काम विरक्त तपस्वियों के लिये प्रपञ्च हैं यह स्थान-धारी तथा स्थानधारियों से सम्बन्ध रखने वाले उदासीन साधुओं को परोपकार दृष्टि से व्याख्यान देना, कथा करना धर्मकी व्यवस्था ठीक रखने के लिये शिष्य वर्ग (चेले) बनानेवाला कार्य करना उचित है ज्ञानी महापुरुष का निष्काम कर्म लोक को लाभप्रद हुआ करता है ऐसा परोपकारी किया कर्म उस ज्ञानी महात्मा को बन्धन का कारण नहीं होता उदासीन साधु चाहे वह स्थानधारी हो चाहे विरक्त हो जो भी कार्य करता है वह स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से नहीं करता वहतो विना किसो प्रयोजन के परोपकार दृष्टि से करता रहता है ऐसे परोपकारी आत्मदर्शी महात्मा चाहे स्थान में रहें चाहे घूमते रहें उनको जगत् प्रपञ्च नहीं लिपायमान होता उपरोक्त श्लोक तो वीतराग त्यागी तपस्वी उदासीन महात्मा वास्ते ही कहा है तथा आगे भी ऐसे ही विरक्त उदासीनों वास्ते लिखा है ॥३९॥

एकाक्षरं पर ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
उपवासात्परं भैक्ष्यं दयादान द्विशिष्यते ॥६॥

} वशिष्ठ स्मृति अ० १०

अर्थ—ओंकार जप ही परमात्मा परब्रह्म को जानने वाला है प्राणायाम ही परम तपस्या है, भिक्षा मांग खाना उपवास से श्रेष्ठ है दया करना ही सर्व श्रेष्ठ दान है और भी लिखा है ॥६॥

ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्य मेकान्त शीलता ।
भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमं नो पपद्यते ॥४०॥

} दक्ष स्मृति अध्याय ७

अर्थ—ध्यान करना, पवित्र रहना, भिक्षा मांग कर खाना, एकान्त में रहने का स्वभाव डालना ए चार काम विरक्त बीतराग उदासीनों के वास्ते कहे हैं सङ्ग रहित होने से सिद्धि प्राप्त होती है बहुतों के बीच का निवास कलह का घर होता है।

वासो बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ।
एक एवं चरेतस्मात्कुमार्या इव कंकणः ॥१०॥

} भागवत एकादश स्कन्ध अ० ६

अर्थ—बहुत मूर्खों के बीच का निवास कलह (लड़ाई) का घर है तथा दो के साथ होने में वार्ता होती है, इस लिये विद्वान् महात्मा ऐसे अकेले विचरे जैसे कुमारी कन्या का एक कंकण इसलिये चतुर्थाश्रमी उदासीन साधु ब्रह्मनिष्ठ को अकेला रहना उचित है देखो विष्णु पुराण।

निः संगता मुक्ति पदं यतीनां संगादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः।
आरूढ़ योगोऽपिनिपात्यऽते धः सङ्गेन योगी किमुताल्पसिद्धिः॥

अर्थ—साधु को निसंग रहना मुक्ति का हेतु है, संग से अनेक दोष होते हैं सिद्ध योगी को भी दुष्ट संग नष्ट भ्रष्ट कर देता है॥

नाना प्रकारैस्तुलसीं प्रबोध्य ज्ञात्वा प्रसन्नं परिचित्त वेदी।
श्रीचन्द्र देवोजगतां हिताय हितां मितां वाच मुवाच धीरः॥६॥
रामानुरागिन् सकलागमज्ञ कवित्व रत्नार्णव धीधनेश!
सर्वेषु देवेषु निरस्तभेद! देशज्ञ कालज्ञ कवे मनीषिन्॥७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु भगवान् श्रीचन्द्र जी ने श्री गोस्वामी तुलसीदास जी का इस प्रकार शास्त्रोक्त प्रमाण से समाधान किया इस से गोस्वामी जी बड़े सन्तुष्ट हुये फिर भगवान् ने उन्हें शुभ सम्मति दी कि आप भगवान् राम के अनन्य भक्त हैं सम्पूर्ण शास्त्रों के प्रौढ़ पण्डित हैं कवि कुल चूड़ामणि हैं बुद्धि के परम धनी हैं समस्त देवताओं में आपका अभेद भाव है देश काल को समझने वाले हैं आप परम मनीषी और क्रान्तदर्शी हैं॥६-७॥

भेदापनोदी हरि भक्ति युक्तः सदा सदाचार विचार पूर्णः।
सालंकृतिः सर्व जन्य प्रियश्च ग्रन्थो विधेयो भवताऽनवद्यः॥८॥

अर्थ—अतः आप ऐसा ग्रन्थ लिखें जिसमें भेद भाव की गन्ध न हो धार्मिक आचार विचारों का पूर्णतया विवरण हो भगवान् की भक्ति से ओत प्रोत हो जिसका सब मनुष्य समान भाव से आदर करें साहित्य समालोचना में भी जो पूरा उतरे और जो सर्वथा निर्दोष हो जिससे हिन्दुओं का कल्याण हो॥८॥

यस्यैव पाठेन समस्तलोकः विहाय भेदं सुतरां सुखी स्यात्।
धर्मार्थ कामानधिगत्य भूयः यायात्परं ब्रह्म पदं पवित्रम्॥९॥

अर्थ—जिस ग्रन्थ रत्न के पढ़ने पढ़ाने से सब लोग भेद भाव को भूल जायें तथा

सुखी बनें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति उन्हें सुलभ हो अन्त में भगवान् के परम धाम को पधारें ॥९॥

उपासना भेद कृतोहिलोके देशस्य जातेः सकलस्यनाशः ।
उपास्य भेदं भवता विधेय मैक्यं प्रजानां निज कौशलेन् ॥१०॥

अर्थ—ध्यान रहे—देश, जाति, आदिके विनाश का मूल कारण यह उपासना भेद ही है जिससे नित्य नये साम्प्रदायिक झगड़े उठते रहते हैं भेदभाव को कुशलता पूर्वक मिटाकर मानवों को एकता का पाठ पढ़ाओ ॥१०॥

यस्मिन्न कस्यापि भवेद्विरोधो मतस्य शास्त्रस्य जनस्य जातेः ।
सर्वं प्रशस्येत कटाक्ष पातः कुत्रापि न स्यादयमेव पन्थाः ॥११॥

अर्थ—जिसमें किसी मत, शास्त्र, जाति और मनुष्य को विरोध करने का मौका ही न दिया जाय सब लोग जिसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करें कोई भी कटाक्ष न कर सके यही सीधा मार्ग है जिसकी इस समय परम आवश्यकता है ॥११॥

मदाशिषा सर्व जन प्रिया भवेद्भवत् कृतिः कान्तिमतीव कौमुदी
भवांश्च भाया तुलसी शशिप्रभः समस्त साहित्य सुरम्यपुष्करे ।१२

अर्थ—मेरे आशीर्वाद से तथा निष्पक्षपात् भद्र भावना से आपकी कृति सर्व प्रिय होगी अर्थात् चमकती हुई चाँदनी के समान सबको भायेगी और आप भी सम्पूर्ण साहित्य गगनके निर्मल शशि कहलायेंगे ॥१२॥

तथा प्रति श्रुत्य वचस्तदीयकं निशामुषित्वा स चचाल कोसलाम्।
तटेसरय्वा उपविश्य विश्वगां ववन्ध बुद्धिं कविता वितानिनीम्॥

अर्थ—तुलसीदास जी ने भगवान् के सम्मुख प्रतिज्ञा की कि मैं अवश्य ऐसा करने की चेष्टा करूँगा, भगवान् मुझे अपना बलदें गोस्वामी जी एक रात वहाँ निवास कर प्रातः अयोध्यापुरी को चल पड़े और सरयू नदी के पवित्र किनारे पर बैठकर कविता के लिये चतुरस्र बुद्धि कर श्रीराम चरित्र बनाया ॥१३॥

चन्द्र राम रसेन्दौ श्री वैक्रमे ऽब्दे मधौसिते ।
नवम्यां तुलसी राम, चरित्रमुप चक्रमे ॥१४॥

अर्थ—वि० सं० १६३१ चैत्र शुक्ल रामनवमी के दिन श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस लिखना आरम्भ किया ॥१४॥

प्रणम्य रामं शशि मौलि मच्युतं रविङ्गणेशं शशिनं षडाननम्
रमामुमांजन्हुसुता मिनात्मजा सरस्वती वेत्रवती महानदीम् ।१५।

अर्थ—आपने पहले सभी देवी देवताओं को प्रणाम करना जैसे :—राम, शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश, चन्द्र, षडानन, रमा, उमा, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, वेत्रवती, आदि ॥१५॥

चचाल कार्यं रचनात्म कश्च गोस्वामि पादो धृत राम नाम ।
श्री चन्द्रदेवस्य गुरोप्रसादाद्भक्तिप्रभावाद्रचना विचित्रता ॥१६॥

अर्थ—रामनाम का आसरा धारण करके रामचरित मानस काव्य की रचना की श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के आशीर्वाद तथा रामभक्ति के प्रभाव से रचना बड़ी सुन्दर लोकमन भावन हुई इसमें तुलसीदास जी ने श्री गुरु श्रीचन्द्र जी के उपदेशानुसार ॥१६॥

उदासीनं मतं तेन स्थाने स्थाने स्मृतं मुदः ।
तदधोलिख्यते सर्वं दृश्यतां दर्शनेच्छुकैः ॥१७॥

अर्थ—उदासीन सम्प्रदाय को भी यथा स्थान स्मरण किया है, पाठकों की जानकारी के लिये कुछ उद्धरण नीचे लिखे जाते हैं ॥१७॥

"मिलहि किरात कोल वनवासी । वैखानस वटु यती उदासी"
"यह सुधिपाय प्रयाग निवासी । वटु तापसमुनिसिद्धि उदासी"

अर्थ—यह समाचार जब प्रयाग निवासी ब्रह्मचारी तपस्वी सिद्ध-उदासियों ने पाया अयोध्या काण्ड दो० न० ११६

"प्रमुदित तीरथ राज निवासी । वैखानस वटु गृही उदासी"

अर्थ—तीरथ राज के रहने वाले वैखानस ब्रह्मचारी गृहस्थी उदासी ॥१॥ दो० न० २१४ पृष्ठ ५१३ । अयोध्या कांड ।

नोट—यहां पर तुलसी दास जी ने स्पष्ट चतुर्थाश्रमी उदासीन को ही लिखा है ।

"सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस वन रहहीं"
(अयोध्या कांड दोहांक २१८)

तुलसीदास जी ने भगवान् श्री राम जी को समस्त वन यात्रा में उदासीन भेष में ही लिखा है ।

तापस भेष विशेष उदासी । चौदह वर्ष राम वनवासी ।

नोट—इसकी टीका पण्डित ज्वाला प्रसाद जी ने बहुत वृहद् की है जिसमें विश्वामित्र को भी उदासीन होना लिखा है तथा श्री राम जी को वन में उदासीन हो के जाना लिखा है देखो अयोध्याकांड पृष्ट ३७८-३७६ इसकी पुष्टि इन पंक्तियों से भी होती है।

पिता वचन तजि राज उदासी। दण्डक वन विचरत अविनासी
(दोहा न० ६१ वालकाण्ड)

पुनि सर्वज्ञ सर्व उरवासी। सर्वरूप सब रहित उदासी
(दोहा ५२ सुन्दर काण्ड)

शंकर जी भी उदासीन थे।

अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संशय छीना।
(दोहांक ६१ वालकाण्ड)

पार्वती और सप्तर्षि प्रकरण में

तिनके वचन मानि विश्वासा, तुम चाहहु पति सहज उदासा
(दो० न० १०३ वालकाण्ड)

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ज्ञान रत मुनि संन्यासी।
(उत्तर काण्ड)

उदासीन अरिमीत हित सुनत जरहि खल रीत,
जानु पाणियुग जोरकर विनती करों सप्रीत॥ } वालकाण्ड

अर्थ—उदासीन महात्मा अपने शत्रु तथा मित्र दोनों का हित करते रहते हैं किन्तु यह बात सुनकर दुष्ट पुरुष जल उठते हैं यह रीत खलों की है इससे मैं दोनों हाथ जोड़ कर सहित प्रीति के विनती करता हूँ।

एवं प्रभावं गाथाश्च महापाप विशोधनम्,
बुद्धि शुद्धि प्रदंपुंसां सर्वैश्वर्य प्रदायकम् ॥१८॥

अर्थ—इस गाथा का ऐसा प्रभाव है कि जो पढ़े या सुने उसके महा पाप नाश होकर बुद्धि शुद्ध हो जाती है सर्वैश्वर्य प्रदायक यह कथा है ॥१८॥

एवं श्रीचन्द्रकथितं इतिहास पुरातनम्।
शृण्वतां पठतां चापि वाजपेय फलंलभेत् ॥१९॥

अर्थ—इस प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् महा मुनि का कहा हुआ उदासीन श्रौत चतुर्थाश्रमी सम्प्रदायका पुरातन इतिहास श्रवण कराया जो इसको सुने या पढ़ेगा वह वाजपेयी यज्ञ करने का फल पायेगा ॥१९॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्ति-सक्खरनगरे श्रीमद्उदासीनवर्य्य-परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगोराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डि-देव गुरु चरणकमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे श्री ११०८जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् गोस्वामी तुलसीदास प्रति अनादि श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी द्वैविंशतितमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२२॥

॥ त्रयोविंशति किरण प्रारम्भः ॥

॥ श्री नारायणसर ॥

ठट्टा नगर्या गिरिशावतारः श्री काञ्चनं नाम पुरं प्रयातः ।
नारायणाख्यं विमलापमागात्सरोवरं स्नातुमना मनोज्ञम् ॥१॥

अर्थ—ठट्टा नगरी से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् काञ्चनपुर (कराची) में पहुँचे कारण कि आपका विचार सुन्दर निर्मल नारायण सरोवर में स्नान करने का था ॥१॥

ततः परं धर्मरति सशिष्यः श्रीचन्द्रदेवः प्रथयन् स्वधर्मम् ।
कच्छा भिधानं विषयं विशालं विवेश विश्वार्ति हरो हरोऽसौ ॥२॥

अर्थ—भगवान् अपनी उदासीन साधु मण्डली सहित हिन्दू धर्म का प्रचार करते हुये तथा समस्त हिंदू जनता के उद्धार का मार्ग साफ करते कच्छ देश में प्रविष्ट हुये ॥२॥

भुजाभिधानां भुज वीर्य गुप्तां खुगारनाम्ना वसुधा धिपेन ।
श्री कच्छदेशस्य किरीट भूतां भूताधियोऽयात्खलु राज धानीम् ॥३॥

अर्थ—कच्छ देश में खुगार-वन्शीय हिन्दू राजा की अपने भुज वीर्य से रक्षित भुज नाम की राज्य धानी थी जो सम्पूर्ण कच्छ देश की शिरोमणि थी श्री ११०८ उदासीनाचार्य महाप्रभु भगवान् श्रीचन्द्र महाराज वहाँ पधारे ॥३॥

ऋष्यङ्क वाणेन्दु मितेच यस्याः श्री वैक्रमे जाम कुल प्रदीपः ।
कुशासन नाशितवान्नरेशः कुशासनं कर्तुमना मनस्वी ॥४॥

अर्थ—वि० सं० १५६७ में जाम कुल वन्शावतंस भूपति ने कुशासन (बुरा शासन) का नाश किया और स्वयं कुशासन कु=पृथ्वी का शासन किया ॥४॥

या दक्षिणस्यां दिशि सिन्धुदेशात्काठा त्स्थिता दक्षिण पश्चिमायाम्
नदीन वेला परिरभ्य माना, तदीन लोकैरुप सेव्य माना ॥५॥

अर्थ—जो राज धानी सिन्ध देश से दक्षिण में था काठियावाड़ से दक्षिण पश्चिम में पड़ती है और (नदीन वेला नदियों का इन =स्वामी) समुद्र के किनारे पर स्थित है जिसमें सब लोग सुखी रहते हैं ॥५॥

श्रुत्वा गतं तं त्वरया भुजेशः सामात्य सैन्यो नयचार चक्षुः ।
प्रत्युज्जगाम प्रथित प्रभावं चन्द्रं यथा सोत्कलिकः समुद्रः ॥६॥

अर्थ—जैसे चान्द्रमा के उदय होने पर समुद्र उमङ्ग में आ जाता है वैसे भगवान् श्रीचन्द्र का शुभागमन सुन के सहित सेना और मन्त्रियों के भुज्यराज धात्रीश्वर महाराज स्वयं तुरत स्वागत के लिये आये ॥६॥

सम्भाव्य तं भावुक लोक मान्यं मनोज्ञ तश्रीः श्रियमाप रम्याम् ।
सद्वंशजानां सुजनेषु नित्यं विनीत भावो हि विशेष भूषा ॥७॥

अर्थ—परमादरणीय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का स्वागत करके महामान्य महाराज बड़े सुन्दर लगे क्योंकि कुलीन पुरुषों के लिये "सज्जनों में विनीत भाव रखना ही एक खास तौर का भूषण है ॥७॥

गृहं समानीय सशिष्यमेनं सेनानु गो गोपतिमर्च यित्वा ।
मुदं ययौ स प्रज मेदिनीशः सदाऽऽगति कस्य न मोद हेतुः ॥८॥

अर्थ—मण्डली सहित श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को अपने घर लाकर उनका भक्ति पूर्वक षोडशोपचार से पूजन किया और परम प्रसन्नता प्राप्त की । ठीक, साधुओं का शुभागमन किसे नहीं आनन्द देता ॥८॥

श्रीचन्द्रदेवोऽपि परं प्रसन्नः विलोक्य राज्ञो विनयोपचारम
शुभाशिषा वर्धयतिस्म भूयं सतां व चास्येव धनं प्रधानम् ॥९॥

अर्थ—भगवान् राजा के नम्र भाव को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये और राजा को शुभ आशीर्वाद दिया महापुरुषों का तो आशीर्वाद ही एक मुख्य धन होता है ॥९॥

स्वस्त्यस्तु राजन् भवते प्रजास्ते निरीतिकः सन्तु चिरायुषश्च ।
नस्कालमृत्युः प्रभवेत् प्रजासु व्रजन्तु नाशं निखिलाः सपत्नः ॥१०॥

अर्थ—हे राजन् आपका कल्याण हो आपकी प्रजाएँ चिरञ्जीवी हों उन्हें ईतिभीति न सताये कभी कोई आपके राज्य में अकाल मृत्यु से न मरे और आपका संसार में कोई शत्रु न रहे ॥१०॥

हरे हरौ सत्सु गुरौ जनन्यां ताते द्विजे तीर्थ चयेऽस्तु भक्तिः ।
औरस्य भावोऽस्तु तव प्रजा सु प्रजाः सदा चार परा भवन्तु ॥११॥

अर्थ—शिव, विष्णु, गुरु साधु, माता,पिता, ब्राह्मण और तीर्थों के विषय में तुम्हारी अटल भक्ति हो प्रजा में पुत्र भावना हो तथा तुम्हारी प्रजा सदा सदाचारिणी बनी रहे ॥११॥

सस्या वल श्यामलिता पयस्विनी धरा धरानाथ वसुन्धरास्तुते ।
फलन्तु कालेषु फलानि शाखिनो मयूखमाली न तपत्वलं महीम् ॥१२॥

अर्थ—आपकी भूमि सदा सर्वदा धान्य से हरी भरी रहे हे राजन् सब वृक्ष यथा समय फर्धें फूलें और मार्तण्ड अपनी प्रचण्ड किरणों से मही मण्डल को न तपाये अर्थात् यथा समय वर्षा होती रहे ॥१२॥

प्रजा प्रजानाथ लभस्व धर्म्याम् प्रजानुकूलां कुलशीलशालिनीम् ।
पतिव्रताः सन्तु समस्तनार्यो गावो बहुक्षीर धरा भवन्तु ॥१३॥

अर्थ—हे प्रजा नाथ तुम्हें धार्मिक अनुकूल कुलीन प्रजा मिले तुम्हारे राज्य में सब स्त्रियें पतिव्रतायें हों और गौएं बहुत दूध देनें वाली हों ॥१३॥

भवन्तु ते नीति विदोऽनुरागिण श्छलान भिज्ञा व्यवहार नैपुणाः ।
सदोद्यता राज हिताय सूरयः परेङ्गितज्ञाः सकलाश्च मन्त्रिणः ॥१४॥

अर्थ—तुम्हारे नीतिज्ञ, अनुरागी, निश्छल, व्यवहार, निपुण, उद्योगी, हितैषी, पण्डित, परेङ्गित, मन्त्री हो ॥१४॥

यजन ददत्सज्जन सत्कृतौरतः सदा सदाचार पथं प्रदर्शयन् ।
विधर्मिणः शत्रु गणान्निरासयन् प्रशाधि कल्पावधिगाम कण्टकाम् ॥१५॥

अर्थ—यज्ञ करो दान दो मान्यों को मान करो सदा सदाचार का पालन करो तथा प्रजा से करवाओ और विधर्मी शत्रुओं की जड़ उखाड़कर निष्कण्टक चिरकाल तक पृथ्वी का राज्य करो ॥१५॥

राजन् ! राजा यश कामः स्वधर्मं परिपालयन् ।
यथा कालं यथा न्याय्यं भिन्नां वृत्तिं समाश्रयेत् ॥१६॥

अर्थ—हे राजन् ! राजाको चाहिये अपने हिन्दू धर्म का पालन करते हुये समय समय पर भिन्न भिन्न वृत्तियों का आश्रय ले ॥१६॥

भास्करीं कैशरीं च्छामीं पार्वतीं मायवीमपि ।
वैश्वानरीं वैष्णवीश्च वैधवीं सैन्धवीमथ ॥१७॥

हांसी माधुकरीं यामीं शामीमैशीश्च पाशिनीम् ।
पर्जन्यवृत्तिं कौवेरीं तथा कल्प तरोरपि ॥१८॥

अर्थ—जैसे भास्करी, कैशरी, च्छामी, पार्वती मायवी, वैश्वानरी, वैष्णवी, वैधवी, सैन्धवी, हांसी माधुकारी यामी, शामी, ऐशी, पाशिनी, पर्जन्य वृत्ति कौवेरी कल्प तरुवृत्ति, आदि आदि वृत्तियों का अनुष्ठान करे ॥१७-१८॥

एवं प्रजारञ्जन तत्परोनृपः प्रशस्यते साधुजनैर्निरन्तरम् ।
तरत्यपायन् सकलान् मृतोऽप्यसौ जीवत्यलं कीर्तिशरीर सम्पदा ॥१९॥

अर्थ—उक्त प्रकार से राजा प्रजा का अनुरञ्जन करता हुआ सज्जनों द्वारा प्रशंसित होता है सम्पूर्ण विघ्न बाधाओं को पार कर जाता है और मरकर भी अपने यश रूपी शरीर से निरन्तर जीता रहता है ॥१९॥

गृहीत मन्त्रः प्रमिताश्च तैल चित्रैस्तता स्थापितवान् गृहेस्वे ।
व्यतत्यि पञ्चैष दिनानितत्र वेट् द्वारका मागतवान् महेशः ॥२०॥

अर्थ—गुरु मन्त्र ले सेवक बन चरण पादुका तथा फोटो गुरुदेव का अपने घर में स्थापित किया ५ दिन वहाँ पर रह श्री गुरु देव जी वेट द्वारिकापुरी को आये ॥२०॥

श्रुत्वा तदपि गमनं महात्मा श्री वल्लभ शिष्य गणैस्समेतः ।
सम्प्रार्थयामास च भोजनार्थं धन्या वयन्ते गमनादिदानीम् ॥२१॥

अर्थ—श्री वल्लभाचार्य* जी ने गुरुदेव श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का आगमन सुन शिष्य समेत आकर भोजन करने वास्ते प्रार्थना किया और कहा कि आपके आने से हम लोग धन्य हो गये ॥२१॥

---

*श्रीमान् वल्लभाचार्य जी का जन्म वि० सं० १५३५ बैसाख कृष्ण ११ सन् १४७९ इसवी को चुनारगढ़ के समीप हुआ काशी में आकर संन्यास ग्रहण किया पुनः संन्यास छोड़कर गृहस्थ हो गये इनके कई पुत्र हुये जो गद्दियों के मालिक गोस्वामी कहलाये इन्होंने अपना एक देशी वेदान्त सम्बन्धी एक स्वतन्त्र सिद्धान्त स्थापित किया जो विशुद्धा द्वैत के नाम से प्रसिद्ध है सूरदासादि भक्त इनके ही शिष्य थे आपकी मृत्यु सन् १५३१ इसवी में हुई ।

(हिन्दी शब्द सागर कोष पृष्ठ ३१०१)

उवाच धीरो भगवान् गुरुश्चदेयन्त्विदादानीम्मधुरञ्जलञ्च ।
तृषानिवृत्तिश्च न भोजनेच्छा तथा प्रवन्धं प्रकरोतु शीघ्रम् ॥२२॥

अर्थ—श्री गुरुदेव श्रीचन्द्र जी ने कहा कि पहले हमको मधुर जल देओ पिपासा लगी है, भोजन की इच्छा नहीं है ॥२२॥

श्री वल्लभाचार्य्य उवाच वाणीं चारं जलञ्चास्ति समग्रदेशे ।
कृपा त्वदीय यदि चेद्दयालो अत्रापि तीर्थें मधुरं जलं स्यात् ॥२३॥

अर्थ—श्री वल्लभाचार्य जी ने कहा कि यहाँपर खारा जल है हे दयालो यदि आप की कृपा हो तो यहाँ का जल मधुर हो जाय क्योंकि आप कोई साधारण महात्मा नहीं ऐसा आपका मुखारबिन्द देखने से पता लगता है ॥२३॥ कारण शास्त्र में साधुओं को भगवान् अपना हृदय बताते हैं ।

साधवो हृदयो मह्यं साधुनां हृदयोन्त्वहम् ।
मदन्यत्तेन जानन्ति नाहं तेभ्यो मना गपि ॥६८॥ } भागवत स्कन्ध ९ अ० ४

अर्थ—भगवान् विष्णु दुर्वासा मुनि जी के प्रति कह रहे हैं कि साधुओं का हृदय मेरे वास्ते और मेरा हृदय साधुओं के लिये है साधुगण हम को छोड़ दूसरे को नहीं जानते हैं उनको छोड़ मैं भी दूसरों!को नहीं जानता है ॥६८॥

त्रयोलोकास्त्रयोवेदा आश्रमाश्च त्रयोऽग्नयः ।
एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा साधवाः पुरा ॥२४॥

अर्थ—तीन लोक, तीन वेद, तीन आश्रम, तीन अग्नि, इन सब की रक्षा के लिये पूर्व काल में (याने सब से प्रथम) विधाता ने साधुओं को बनाया है ॥२४॥

साधुश्रेष्ठ भवेच्चैव दैवानामपि दैवतम् ।
प्रत्यक्षं चैवलोकस्य तपतेजोहि कारणम् ॥२५॥

अर्थ—साधु महात्मा श्रेष्ठ देवताओं के भी देवता होते हैं जगत का कारण जो तप तेज है वह इनमें प्रत्यक्ष रहा करता है ॥२५॥

साधवा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ।
सर्व देंव मया साधु नतद्वचनमन्यथा ॥२६॥

अर्थ—साधुओं के बचन को देवता लोग मानते हैं साधु सब देवताओं के स्वरूप होते हैं इससे साधुओं का बोला बचन झूठा नहीं होता ॥२६॥

साधवा जङ्गमंतीर्थं फलदं सर्व कामिकम् ।
तेषां वाक्यो दकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिनाः जनाः ॥२७॥

अर्थ—साधु महात्मा जङ्गम तीर्थ होते हैं, जो सर्व कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं इनके उपदेश रूपी जल से मनुष्यों के मलिन मन शुद्ध हो जाते हैं ॥२७॥

एवं विशाले हृदये च शक्तिः परोपकाय सुसज्जि ताऽस्ति ।
तस्या प्रयोगः क्रिय तां जलार्थं प्रजा समग्रा सुख संयुता स्यात् ॥

अर्थ—इसलिये मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप के शरीर में विशाल शक्ति है उसका प्रयोग जल के वास्ते करिये जिससे प्रजा गण सुखी हो जाँय ॥२८॥

ज्ञात्वा तदीयं हृदयं दयालुः करस्थकम्बुभुवि खातवान् सः ।
ततः सुधाभं जलमुज्जगाम विसिस्मिये सर्वजनः समेतः ॥२६॥

अर्थ—भगवान् को उनका हार्दिक भाव जान कर दया आई भगवान् के हाथ में शंख था उन्होंने शङ्ख को वहीं भूमि में गाड़ दिया और वहाँ तुरत मीठा अमृत सा जल निकल आया इसको देखकर सबको वड़ा अचम्भा हुआ ॥२६॥

॥ शंख तलाई तीर्थ ॥

श्रीचन्द्र देवः समुवाच वाचं विनोद यन्ती जनता मनांसि ।
एतत्स्थलं शङ्ख तडाग नाम्ना प्रसिद्धि मायास्यति भूतलेऽस्मि ॥३०॥

अर्थ—श्री वल्लभाचार्य जी ने सब के मन को खुश कर देने वाली मधुर तथा गम्भीर वाणी में कहा, कि यह स्थान 'शंख तलाई' के नाम से संसार में प्रसिद्धि पायेगा ॥३०॥

सदा जलं तीर्थमिदं पुनीतं यः स्नास्यतिद्रक्ष्यति वा मनुष्यः ।
स सर्वकामान् समवाप्य लोके मृत्वा दिवं यास्यति नात्र शङ्का ॥३१॥

अर्थ—इस तलाई में सदा मीठा जल रहेगा और यह एक पवित्र तीर्थ है जो इस में स्नान करेगा अथवा इसके दर्शन करेगा वह इस लोक में समस्त सुख भोग भोग कर अन्त में परम धाम को पधारेगा इस में संशय नहीं है ॥३१॥

तदन्तरे सज्जन एक आह श्रीचन्द्र देवं विनयाव नम्रः।
श्रीमन् पुराणस्य किमस्ति वेदे, प्रयोजनं श्रोतुमहं स्थितोऽस्मि ।३२।

अर्थ—इतने में एक सज्जन आये और नम्रता पूर्वक भगवान् से पूछने लगे कि श्रीमान् जी वेदों में कोई पुराणों का भी प्रयोजन आता है, मैं सुनना चाहता हूँ ॥३२॥

अथ स्मितास्यो भगवानुवाच रहस्य मस्या खिलमा गमज्ञः।
नाना प्रमाणैरभि लिख्यतेऽधो विलोक्य तां लोक हिताय सद्भिः ।३३।

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने प्रसन्न वदन होकर जो अखिल शास्त्रों का रहस्य कहा वह सप्रमाण सयुक्तिक नीचे लिखा जाता है सज्जन लोग लोक कल्याणार्थ उसे देखने का कष्ट करें। पुराण १८ हैं, जिनके नाम तथा श्लोक संख्या भागवत स्कन्ध १२ में इस प्रकार आती हैं ॥३३॥

ब्राह्म[1] पाद्मं[2] वैष्णवंच[3] शैव[4] लैङ्ग[5] सगारुड़म्[6]।
नारदीयं[7] भागवत[8] माग्नेयं[9] स्कन्द[10] सञ्ज्ञितम् ॥
भविष्यं[11] ब्रह्मवैवर्तम्[12] मार्कण्डेयं[13] सवामनम्।[14]
वाराहं[15] मात्स्यं[16] कूर्मंच[17] ब्रह्माण्डा[18] ख्यमितित्रषट् ॥२४॥ } (अ०७)

अर्थ—(१) ब्रह्म १०००० (२) पद्म ५५००० (३) विष्णु २३००० (४) शिव पुराण २४००० (५) लिङ्ग ११००० (६) गरुणपुराण १९००० (७) नारद पुराण २५००० (८) भागवत पुराण १८००० (९) अग्नि पुराण १५४०० (१०) स्कन्द पुराण ८११०० (११) भविष्य पुराण १४५०० (१२) ब्रह्मवैवर्त १८००० (१३) मार्कण्डेय पुराण ९००० (१४) वामन पुराण १०००० (१५) वाराह पुराण २४००० (१६) मत्स्य पुराण १४००० (१७) कूर्म पुराण १७००० (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२००० इस प्रकार सब पुराणों की श्लोक संख्या ४ लक्ष है। श्लोक नौ अध्याय १३ स्कन्व १२ श्रीमद्भागवत में इनका वर्णन है उपरोक्त १८ पुराण के अतिरिक्त १८ उपपुराण भी हैं जिनके नाम इस प्रकार* हैं सनतकुमार, नृसिंह, वृहन्नारदीय, दुर्वासा, कपिल, मानव, औसनश, वारुण, कालिका, साम्ब, नंदिकेश्वर, पराशर, आदित्य, माहेश्वर, बशिष्ठ, देवी भागवत और भार्गव पुराण संस्कृत साहित्य का एक पूर्ण अङ्ग हैं आज जो पुराण इस समय उपलब्ध हैं उनके पांच भेद हैं यथा १—महा पुराण २—पुराण ३—उपपुराण ४—औपपुराण ५—इतिहास, पुराण और इतिहास में इतना अन्तर है कि पुराणों में दैवी गाथायें और इतिहास में मानवी गाथा की प्राधान्यता होती है।

*इनमें कइओं का उल्लेख दान सागर और वेदार्थ दीपका में किया गया है।

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुप वृंहयेत् ।) महाभारत आदि पर्व
विभेत्यल्प श्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥) अ० १ श्लोक २६५

अर्थ—इतिहास और पुराण से वेद के अर्थ का निर्णय करना चाहिये जो मनुष्य अल्प श्रुति हैं अर्थात् इतिहास पुराण नहीं जानते वेद उनसे भयभीत रहा करते हैं कि कहीं यह हमपर प्रहार न करदें अर्थ का अनर्थ करना प्रहार करना है इसलिए पुराण संस्कृत साहित्य का अलंकार हिन्दू जाति का जीवन हिन्दू धर्म का भव्य भवन है, वेद और दर्शन कुछ अधिकारी पुरुषों के लिये ही उपयोगी हैं, किन्तु पुराण प्राणी मात्र के लिये संजीवनी बूटी हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से हिन्दू जाति में जो धर्म और नियम प्रचलित चले आ रहे हैं उनका मूलमात्र केवल पुराण ही हैं साधारण धर्म विशेष धर्म आपद धर्म, जाती पाती, शिष्टता, नीति, प्रेम, शिखा, सूत्र, पूजन, पाठ उपासना, उपवास, उत्सव, नृत्य, संगीत, सन्ध्या, हिन्दू संगठन, तीर्थ, श्राद्ध, चतुर्थाश्रमी उदासीन धर्मादि, हिन्दू धर्म के जितने भी प्रधान २ अंग हैं उन सब का संग्रह तथा मार्मिक तत्व जैसा कि पुराणोंके पढ़ने से जाना जावा है वैसा और किसी संस्कृत साहित्य से नहीं जाना जता।

हिन्दू जाति के संगठन कारहस्य, धर्म में राजनीति के गूढ़तत्व, धर्म में उपासना प्रधान है या कर्म, शरीर के साथ धर्म का कितना सम्बन्ध है, धर्म संकट पड़ने पर हिन्दुओं को क्या करना चाहिये, दुराचार करने वालों की संगति से बचना, दुराचारियों की बुरी संगति होती है, इन सब तत्व के मर्म भेदी बनने के लिये पुराणों की ही शरण लेनी पड़ेगी, सूर्य वंश चन्द्र वंश की कीर्ति कथायें पुराणों के सिवाय और कहीं पर पूर्णरूप से नहीं मिलतीं प्रबल प्रतापी राजवंश का जो विवरण पुराणों में आता है उसे पढ़कर कौन हिन्दू अपने प्राचीन गौरव से नहीं फूल उठेगा। सृष्टि क्या है, प्रलय क्यों होती है, ईश्वरत्व क्या है, परलोक किसे कहते हैं, चार युगों में क्या होता था, पतिव्रत धर्म क्या महत्व रखता है, अपना धर्म कितना श्रेष्ठ है, इन सब प्रकरणों को दृष्टांत और कथानकों द्वारा जैसा पुराणों से पता लगता है वैसा और किसी हिन्दू ग्रन्थों से नहीं लगता है। मुख्य बात यह है कि हिन्दू जाति की शिक्षा, इतिहास, संस्कृति, सभ्यता आदि आदि का एक मात्र आधार पुराण हैं, यदि संसार में पुराण न होते तो हिन्दू आज किसी काम योग्य न रहते, कारण कि जिस जाति का इतिहास नहीं वह जाति मृतक गिनी जाती है, पुराण ही हिन्दू जाति की रक्षा करते हुए आजतक चले आते हैं। इतिहास शब्द से पुराणों का समावेश होता है जैसा कि कौटिल्य अर्थ शास्त्र के इस वाक्य से सूचित होता है।

"अर्थ शास्त्र प्रकर्ण वद्ध संयोग पुराण मितिव्यति माख्याइको दाहरणं धर्म शास्त्रमर्थ शास्त्र चेतीतिहास:"

उसके प्रथमही प्रकरण में।

सामर्ग्यमजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी अर्थव वेदेतिहास वेदौ च वेदः

अर्थ—इस प्रकार प्राचीन पाठक्रम का दिग्दर्शन कराया गया है पाणिनी मुनि के सूत्र "कृत्वयादि सूत्रान्ताट्वक्" ४-२-६० सूत्र के साथ "आख्यानाख्यायिकेतिहास पुराणेभ्यष्ठक् वक्तव्यः" वार्तिक में भी पुराणों का उल्लेख पाया जाता है याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है।

पुराण न्यायमीमांसा धर्म शास्त्रार्थ शंग्रहः।
वेदः स्थानानि विद्यायां धर्मस्य च चतुर्दश॥

अर्थ—हिन्दू स्मृति में विद्या तथा पुराणों की महत्त्वताही मुख्य रक्खी गई है भारतीय हिन्दू जनता की आध्यात्मिक, धार्मिक सांस्कृत, सभ्यता, शिष्ठता, आचार विचार पूर्वजों की रूढ़ियों अर्थात् सब प्रकार के संस्कारों का पता देनेवाले हिन्दू पुराण ही हैं पुराण के लक्षण शुक्रनीति अ० ४ में यह बताये हैं।

सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशोमन्वं तराणि च।
वंशानु चरतं यस्मिन् पुराणं तद्धि कीर्तितम्॥२६३॥

अर्थ—इसीलिये पुराणों का अध्ययन हिन्दुओं में उत्तर भारत में प्रथम से ही अधिक होता चला आता है यह सुनकर सबके संशय निवृत्त हो गये और महाराज के चरणों में प्रणाम करके गुरु मन्त्र ले सेवक बनकर अपने २ गृह को चले गये। श्री ११०८ जगद्गुरू श्रीचन्द्र जी महाराज भी वहाँ से चलकर गोमती द्वारका, गोपतलाई होते हुये वि० सं० १६०२ रामनौमी को सुदामापुरी में आये।

ततः परं शिष्य गणैरुपेता श्रीचन्द्र देवः करुणावतारः।
कुर्वन् विचित्रा पथिधर्म चर्चाः सौदामिनीं नाम पुरीं जगाम॥३४॥

अर्थ—अनन्तर भगवान् अपनी उदासीन साधु मण्डली के साथ मार्ग में धर्म चर्चा के जरिये प्रचार करते हुये सुदामा पुरी (पोर बन्दर) पहुंचे॥३४॥

तत्रत्य भूपः समुपेतमेतं सत्कृत्य सामात्य पुरो हितोऽसौ।
पप्रच्छ चाज्ञान विनाश हेतुं सेतुं च संसार महार्णवस्य॥३५॥

अर्थ—वहाँ के राजा ने भगवान् के आने की खबर पाकर सहित मन्त्रियों तथा पुरोहित जी के साथ आकर भगवान् का स्वागताचार किया और संसार सागर को पार करने तथा अज्ञान के नाश करने का उपाय पूछा॥३५॥

तदीयवाक्यञ्च निशम्य समयक् श्रीचन्द्र देवः श्रुति वाक्य वागमी ।
वेदान्त सिद्धान्त मसौ समस्तं तं बोधयामास वुधाग्र-गण्यः ॥३६॥

अर्थ—उसकी प्रार्थना से श्रुति स्मृति के प्रौढ़ पण्डित भगवान् श्री चन्द्रजी ने उसको सम्पूर्ण वेदान्त का सिद्धान्तसरहस्य समुझाया ॥३६॥

तेनार्चितः शिष्य गणेन युक्तः श्रीचन्द्र देवोऽथ चचाल तस्मात् ।
क्षेत्रं प्रभासाख्य मतीव पूतं द्रष्टुञ्च विख्यातमसावयासीत् ॥३७॥

अर्थ—वहाँ से परमानंदित होकर भगवान् समस्तलीक प्रसिद्ध पवित्र प्रभास क्षेत्र को गये ॥३७॥

श्रीसोमनाथस्य विशाल मन्दिरं दृग्गोचरं तत्र चकार सुन्दरम् ।
म्लेच्छेन पूर्वं प्रविलुण्ठितं पुनः सत्क्षत्रियैः संस्कृतमद्भुताकृति ॥३८॥

अर्थ—वहाँ विशाल तथा सुन्दर श्री सोमनाथ मन्दिर का दर्शन किया जिसको महमूद गजनवी ने लूटा था और तोड़ा था पुनः उसे क्षत्रियों ने बनवाया था ॥३८॥

नातीव दूरे खलु तस्थ पावनं श्री बाण तीर्थं प्रविलोक्य हर्षितः ।
दुर्वाससा शाप फलान भिज्ञका विज्ञी कृता यत्र च यादवा अपि ॥३९॥

अर्थ—उसके थोड़ी दूरपरपरम पावन वाण तीर्थ के दर्शन करके भगवान् अति प्रसन्न हुये जहाँ दुर्वासा मुनि के शाप के प्रभाव से अनभिज्ञ यादव गण परस्पर लड़कर मिट गये यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है ॥३९॥

श्री कृष्ण चन्द्रस्य कुलावतंसाः श्रिया धिया नीति वलेन युक्ता ।
याता विनाशं मुनिशाप वन्हे सताम वज्ञानम मङ्गलाय ॥४०॥

अर्थ—भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी के वंशज जिनकी बुद्धि श्री नीति और बल अतुल थे वह सब एक ही मुनि के शाप से नष्ट हो गये सत्य है सत् पुरुषों का अपमान करना मङ्गलकारी नहीं होता ॥४०॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गा मध्यवर्ति सक्खर नगरे श्री मद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये-मुनिजन मानस हंसे कच्छ नरेश उपदेशकरण, बेट द्वारिका, शंखतलाई तीर्थ प्रकट करण पुराण महत्व वर्णनं सुदामापुरी, प्रभास गमनं सकल कलि कल्मष नाशिनी त्रैविंशतितमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२३॥

॥ चतुर्विन्शति किरण प्रारम्भः ॥

कर्णाकाशरसेन्दु भाजि सुभगे श्री वैक्रमे वत्सरे,
आषाढ़ेऽसित पत्त के करमिते पुण्येतिथौ मङ्गले ।
रम्यामम्बुधि शीतलानिल वतीं जूनागढाख्यां पुरीम्,
श्रीचन्द्रो भगवान् भवे प्रथयितुं पुण्यां कथामागतः ॥१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वि० सं० १६०२ आषाढ़ कृष्ण द्वितीया को मङ्गलवार के दिन संसार में पुण्य कथा का प्रचार करने के लिये जूना गढ़ आये जहाँ समुद्र की ठण्डी हवा के झोंके आते रहते हैं ॥१॥

श्रीचन्द्रं प्रविलोक्य लोक शुभगं जूना गढा धीश्वरः,
सच्चक्रे सचिवैः समेत्य विनया नम्राननोऽभाषत ।
श्रीमन्नद्य फलन्ति शोभनफलं श्रेयांसि पूर्वाणि मे,
जीवन्तोहि विलोकयन्ति विविधं श्रेयो भवेजन्तवः ॥२॥

अर्थ—जूना गढ़ के राजा ने भगवान् के शुभ दर्शन किये और सहित मन्त्रियों के समण्डलीक भगवान् का स्वागत किया। राजा नम्रता पूर्वक बोला हे भगवन् यह जो मैं आपके दर्शनों का सौभाग्य उठा रहा हूँ यह मेरे प्राक्तन किन्हीं पुण्यों का ही फल है, जीता हुआ प्राणी संसार में कई प्रकार के भद्र पुरुषों को देखता है ॥२॥

श्रीचन्द्रो भगवान् प्रहृष्ट वदनो जिज्ञासवेऽज्ञापयत् ।
कौटिल्यस्य वृहस्पतेरुशनसो नीतिं न यज्ञो मुनिः ।
शिष्यैः सोऽनुगतो गतो गज गति जैंतं पुरं सुन्दरम्,
लाढी राज्य रिपुञ्जयं च विमलं चेत्रेषु मृत्युञ्जयम् ॥३॥

अर्थ—भगवान् ने राजाको जिज्ञासु जानकर चाणक्य, बृहस्पति और भार्गव की नीतिका गूढ़ाति गूढ़ रहस्य समझाया अनन्तर समण्डलीक भगवान् जेतपुर आये लाठीराज्य में मृत्युञ्जय महादेव के दर्शन किये ॥३॥

सिद्धः सिद्ध पुरं पुरन्दरपुरीरम्यं समालोकय,
त्रिन्दु विन्दु सरोवरे नरवरः सस्नौ स गत्वा मुदा ।

हूतिं देव मुखां स यत्र कपिलः सांख्यागमञ्चाब्रवीत्,
दृष्ट्वा तानि मुदं ययौ शशि धरस्तीर्थानि पुण्यान्यसौ ॥४॥

अर्थ—तदनन्तर परम सुन्दर सिद्धपुर में भगवान् आये सप्रमोद विन्दु सरोवर में स्नान किया जहाँ कपिल जी ने अपनी पूज्य माता देवहूती जी को साँख्यशास्त्र का उपदेश दिया था भगवान् उन सब पवित्र तीर्थों के दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥४॥

॥ कपिल मुनि उदासीन ॥

पिता कर्दममुनि माता देवहूति से उत्पन्न सांख्यशास्त्र प्रणेता उदासीन महात्मा हुये हैं यही भगवान् के २४ अवतारों में से एक अवतार हुये हैं इनकी कथा भागवत स्कन्ध ३ अ० २५ में यों आती है कि कपिलमुनि उदासीन अपनी माता देवहूती को उदासीन साधुओं के गुण सुना रहे हैं जिससे सिद्ध होता है कि कपिलमुनि जी स्वयं उदासीन महात्मा थे।

योग अध्यात्मिकः पुंसा मतोनिः श्रेय सायमे।
अत्यन्तो पर तिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥

अर्थ—साधु पुरुषों को कल्याणार्थ ब्रह्मविद्या में आशा रखनी यही मेरा मत है जिस ब्रह्मविद्या के लाभ होने से सुख दुःख का नाश हो जाता है ॥१३॥

तमिमंते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुराऽनघे।
ऋषीणां श्रोतु कामानां योगं सर्वाङ्ग नैपुणम् ॥१४॥

अर्थ—हे अनघे अर्थात् पाप से रहित माता सब प्रकार से बहुत निपुण योग को सुनने की इच्छा वाले उदासीन योगियों को योग मैंने प्रथम कहा था, वही कहता हूँ चित्त निश्चय करके इसके बन्धनार्थ है और आत्मा चित्त मुक्ति के अर्थ भी कहा है गुणों की आसक्तता से बन्धन होता है जिसका चित्त ईश्वर में लग जाय वह मुक्त होता है अहंता ममता का अहंकार उठ जाने से काम लोभादि मल से शुद्ध मन होने पर सर्व दुःखों की निवृत्ति हो सुख की प्राप्ति होती है ॥१४॥

ज्ञान वैराग्य युक्तेन भक्ति युक्तेन चात्मना।
परि पश्यत्युदासीनं प्रकृतिं चहतौजसम् ॥१८॥

अर्थ—ज्ञान वैराग्य दोनों भक्ति सहित होवें जिसके ऐसी जिनकी है आत्मा और जिसके अन्तःकरण में प्रकृति का ओजस कहिये तेज रागद्वेष नष्ट हो गया है अर्थात् जगत मिथ्या जाना है ऐसे उदासीन को तू जान ॥१८॥

४०

न युज्यमान या भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ।
सदृशोऽस्ति शिवः पंथा योगिनां ब्रह्म सिद्धये ॥१६॥

अर्थ—भगवान् अखिलात्मा में लगे हुये के समान उदासीन योगियों को ब्रह्म सिद्धि के लिये इससे अधिक और मंङ्गल दायक मार्ग नहीं है ॥१६॥

प्रसंग मजरं पाश मात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषुकृतो मोक्ष द्वार मपावृतम् ॥२०॥

अर्थ—संसारी जीव को जगत में आसक्त हो जाना यह अजर अमर फांसी है यदि यही आसक्ति उदासीन साधुओं में करे तो उसके लिये मोक्ष का द्वार खुला पड़ा है ॥२०॥

तितिक्षवः करुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजात शत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणः ॥२१॥

अर्थ—मुनिजनों का कथन है कि उदासीन साधु सब की बातें सहै, सब देह धारियों पर दया रक्खे, सब जीव मात्र से सुहृद भाव से वर्तें, किसी को अपना शत्रु न समझे शान्त गुण पर कार्य सहायक, यह गुण साधु (उदासीन) का भूषण है। जो लोग मुझ में अनन्य भाव से दृढ़ भक्ति करके मेरे लिये सब काम त्यागते हैं, तथा सब स्वजन बन्धुओं से नाता छोड़ देते हैं, जो मेरी कथा मनोहर मृदुल सुनते हैं अथवा करते हैं, और जो अपना मन मुझमें लगाते हैं, ऐसे भक्तों या साधुओं को किसी भी प्रकार का ताप नहीं व्याप सकता ॥२१॥

तेयेते साधवः साध्वि सर्व संग विवर्जिताः ।
संगस्तेष्वथते प्रार्थ्यः संग दोष हराहिते ॥२४॥

अर्थ—हे साध्वी जो साधु हैं वे सब संग से रहित हैं और किसी प्रकार के ताप से वह तापित नहीं होते उन उदासीन साधु महात्माओं का सत्संग करना चाहिये कारण वह उदासीन साधु सब कुसंगति के दोष दूर करने वाले हैं ॥२४॥

सतां प्रसङ्गान् ममवीर्य संविदो भवन्ति हृत्कर्ण रसायनाः कथाः ।
तज्जोषणा दाश्वपवर्ग वर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्ति रनु क्रमिष्यति ॥२५॥

अर्थ—हे जननी सन्तों के संग से मेरे पुरुषार्थ वाली कथा जो हृदय और कर्णों के सुख देने वाली है जिससे आत्म ज्ञान प्रगट होता है उसके सुनने और प्रेम करने से मोक्ष मार्ग में शीघ्र श्रद्धा प्रीति भक्ति भगवान् के चरण कमलों में उत्पन्न हो जाती है। उपरोक्त प्रसङ्ग में कपिल जी ने अपने आप को स्वयं भगवान् बताया है जिसके पढ़ने से अनीश्वर वादी

होने की शंका तक को स्थान नहीं रह जाता। उपरोक्त प्रकरण में कहीं साधु शब्द आया है कहीं उदासीन (साधु) शब्द आया है उन सब का एक ही भाव (अर्थ) उदासीन साधु है यदि इसमें कोई यह शंका करे कि साधु शब्द से उदासीन साधु ही क्यों लगावे तब उसका समाधान यह है कि प्रकरण बस अर्थ लगाया जाता है जैसे यहां पर माता देवहूती का प्रकरण चला आ रहा है तब इसमें अनघे साध्वी आदि २ जो भी सम्बोधन आये हैं वह सब माता देवहूती के ही लक्ष पर हैं यद्यपि अनघे या साध्वी अन्य स्त्रियों के लिये भी वर्ता जा सकता है परन्तु यहां प्रकरण माता देवहूती का होने से यह सम्बोधन अन्य स्त्रियों का अर्थ नहीं प्रगट करता इसी प्रकार एक स्थल में उदासीन शब्द लिख के बता दिया कि यहाँ प्रकरण उदासीन साधुओं का है इसलिये इस प्रकरण में जहाँ भी साधु या योगी शब्द आया है उसका अर्थ उदासीन साधु ही लगेगा ॥२५॥ अ० २५॥ आगे भी कपिल जी अपनी माता से सांख्य मत में ईश्वर की अस्तित्वता बता रहे हैं ॥

आश्विने कृष्ण दशमी दिने दीना वनो मुनि ।
गुरुपर्वोत्सवं कृत्वा ततः शिष्यान्वितोऽव्रजत् ॥५॥

अर्थ—आश्विन कृष्ण दशमी के दिन दीन बन्धु भगवान् श्रीचन्द्र जी महाराज गुरु पर्व मनाकर अपने उदासीन साधु मण्डली सहित आगे चल पड़े ॥५॥

आबूशैलास्थितं गत्वा राज कोटं विकण्टकम् ।
धर्मं निष्कण्टकं चक्रे शक्राद्यैः परि पूजितः ॥६॥

अर्थ—इन्द्रादिकों से पूजित भगवान् आबू पहाड़ होते राज कोट में पहुँचे और वहाँ हिन्दू धर्म का खूब प्रचार किया ॥६॥

वीरम ग्राम मायातः वीरे ग्रामे सुशोभितम् ।
वीरान् प्रमोदयामास, वीर धर्म प्रचारणैः ॥७॥

अर्थ—फिर वीरों के समूह से सुशोभित वीरम ग्राम में आये वहाँ ओजस्वी भाषणों से वीर क्षत्रियों को उत्तेजित किया हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये ॥७॥

ततश्चचाल स यथा गजयूथ शिरोमणिः ।
वियुक्ता स्ते च रुरुदुः वीरमग्राम वासिनः ॥८॥

अर्थ—गजगति श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वहाँ से आगे चले। भगवान् के वियोग से बीरमग्रामनिवासी बड़े दुखी हुये ॥८॥

अहम्मदावाद नाम्नीं नगरीं नगराजिताम् ।
चन्द्र शिष्याश्चासनानि गत्वा गुरु पुरो गमा ॥९॥

अर्थ—अनन्तर श्री ११०८ जगद्गुरू श्रीचन्द्र भगवान् अपने उदासीन साधु मण्डली सहित वृक्षों से मण्डित अहमदाबाद नगरी में पहुँचे ॥९॥

सावरमती नदी तीरे सुसमीरे मनो हरे।
समयूरे मत्त कीरे स्वच्छ नीरे विते निरे ॥१०॥

अर्थ—वहाँ सावर मती नदी के किनारे पर जो अत्यन्त मनोहर है जहाँ मयूर, कीर, नीर, और समीर कल्लोलें कर रहे हैं वहां पर आसन जमाया ॥१०॥

यत्र श्रीचन्द्र देवेन भूतलं स्वासनी कृतम्।
साधुघट्टाभिधानेन श्रूयतेऽद्यापि पावनम् ॥११॥

अर्थ—जिस स्थान पर भगवान् ने अपना आसन लगाया था आज भी वह पवित्र स्थान सन्तघाट के नाम से विख्यात है ॥११॥

तत्रस्थितस्य चन्द्रस्य समीपे विप्र एकदा।
एक आगत्य चावादीदत्याचारं विदेशिनाम् ॥१२॥

अर्थ—वहीं पर एक समय भगवान् के पास एक ब्राह्मण देवता आया उसने भगवान् के समक्ष विदेशियों के अत्याचारों का वर्णन किया ॥१२॥

विनोदयन् बोधनेन विनोदीराम माहसः।
धैर्यमा धीयतां धीमन् धीरः पुत्रोभविष्यति ॥१३॥

अर्थ—भगवान् ने उस विनोदीराम ब्राह्मण को सम्बोधित कर कहा पण्डित जी धैर्य रखें आपके घर एक वीर पुत्र पैदा होगा ॥१३॥

स च म्लेच्छान् मर्द यित्वा स्वधर्मं धारयिष्यति।
पुण्यां कीर्तिश्च लोकेऽस्मिन् कल्पस्थां वितनिष्यति ॥१४॥

अर्थ—जो इन म्लेच्छों का मुखमर्दन करेगा अपने हिन्दूधर्म का पालन करेगा और करा के पुण्य चिरस्थायी कीर्ति संसार में विस्तारित करेगा ॥१४॥

नाम्ना सर्वगुणोपेतः दादूरामो विचक्षणः।
हृद्यां विद्यावतां धीरः वाणीं विरचयिष्यति ॥१५॥

अर्थ—वह सर्वगुणों से विभूषित होगा उसका नाम दादूराम होगा और वह बहुत सुन्दर भावमयी कविता (वाणी) बनायेगा जिससे हिन्दूधर्म की रक्षा होगी ॥१५॥

दादूपथं मतं नूत्नं स्वकं प्रवर्तयिष्यति ।
दादूपथीन नामानो भविष्यन्ति तदाश्रयः ॥१६॥

अर्थ—अपना 'दादू पन्थ' नामसे नया मत चलायेगा उसके अनुयायी दादूपन्थी साधु कहलायेंगे ॥१७॥

त्यक्त्वा तन्नगरं श्रीमान् श्रीचन्द्रश्चन्द्रवच्चलन् ।
शिष्यै र्नक्षत्रैरिवानेकै रनुयातो दिगन्तरम् ॥१७॥

अर्थ—वहाँसे आगे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् चन्द्रमा के समान शिष्य-रूपी अनेक नक्षत्रों से मण्डित दूसरी दिशा में चले गये ॥१७॥

खेड़ा काम्बे गोदड़ा डाकौर नाम्नीः पुरीऽगमत् ।
बड़ोदाह्वां राज धानीं पुनरायान्महा मुनिः ॥१८॥

अर्थ—खेड़ा, काम्बे, गोदड़ा, डाकौर, आदि पुरियों में पधारे पुनः वहां से वापिस बड़ौदा राजधानी में आये ॥१८॥

प्रचारयन् वेद मार्गंपुण्याः कुर्वन् कथाः पथि ।
समया समयाद्धर्मे सुरतं सूरतं पुरम् ॥१९॥

अर्थ—सर्व वैदिक धर्म का उपदेश देते तथा धार्मिक कथा सुनाते हुये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् हिन्दू कौम की रक्षा करते हुये आके सूरत नगर पहुँचते भये ॥१९॥

स्नात्वा पुण्योदकां चन्द्रः, नर्मदां नर्मदां नदीम् ।
राजहंस इवा लोलं सलीलं सलिलं पपौ ॥२०॥

अर्थ—वहाँ पुण्योदक सुखद नर्मदानदी में स्नान किया तथा राजहंस के समान लीला पूर्वक जलपान किया ॥२०॥

तस्याः कूले शूल पाणेः समाधौ तस्थि वान सौ ।
मन्दाकिन्यास्तटे श्रीमान् पूर्ण चन्द्र इवा परः ॥२१॥

अर्थ—नर्मदा के किनारे भगवान् समाधिस्थ हुये ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे मन्दाकिनी के किनारे पर दूसरा चन्द्रमा हो ॥२१॥

एला बेला निला लोला लताः पुष्पन ताश्च ताः ।
तारा इव शरच्चन्द्रं चन्द्रं परि षिषेविरे ॥२२॥

अर्थ—फूलों के भार से झुकी हुई तथा एलावन की मन्द मन्द वायु से आन्दोलित लतायें ऐसे शोभा दे रहीं थीं मानों चन्द्रमा के आस पास तारा मण्डल हो ॥२२॥

मराला अनरालानि नालानि नलिनानि च ।
चञ्चू पुटैः समादाय तस्थु दर्शन लालसाः ॥२३॥

अर्थ—हंस पक्षी भगवान् के दर्शनों की लालसा से सीधे साधे नाल दन्ड और नलिनों को चञ्चुपुट में लिये लिये चित्र लिखित से खड़े रहे ॥२३॥

निर्भ्रान्ता ददृशु शान्तं हारिणो हरिणा हरम् ।
मदान्धा अपि विश्रान्ताः करिणः करिणी सखा ॥२४॥

अर्थ—शांत मूर्ति भगवान् को निर्भ्रान्त हरिण देखने लगे तथा हथिनिओं सहित हाथी भी भगवान् की मधुर मूर्ति को एक टक निहारने लगे ॥२४॥

पुष्करे पुष्करं नीत्वा पुष्कराभश्च पुष्करम् ।
सिषिचुश्चार्चयामासुः शङ्करं लोक शङ्करम् ॥२५॥

अर्थ—हाथियों ने अपने शुण्ड में जल और कमल लेकर भगवान् का सिञ्चन तथा अर्चन (पूजन) किया ॥२५॥

सोमोद्भवा वीचिसङ्गी लता लिङ्गन सालसः ।
चन्द्र वाला परिमलः सिषेवे पवनोऽपितम् ॥२६॥

अर्थ—रेवा नदी की तरङ्गों से शीतल लताओं के आलिङ्गन से मन्थर (मन्द) बड़ी इलायची के परिमल से सुगन्धित वायु भगवान् का सेवन करने लगा ॥२६॥

पुष्पाणि मकरन्दीनि फलानि वल्कलानि च ।
मुमुचुश्चन्द्र देवाय सुपलाशः पलाशिनः ॥२७॥

अर्थ—हरे भरे वृक्षों ने भगवान् के लिये पुष्प मकरन्द फल और वल्कल ला के दिये ॥२७॥

सामग्रीभिश्च वन्यायी रूप दर्शन मोहिताः ।
उपतस्थुः सदा चन्द्रं सर्वास्ता वनदेवताः ॥२८॥

अर्थ—भगवान् के दिव्य लोकोत्तर सौन्दर्य से मुग्ध होकर वनदेवियां बहुत प्रकार की सामग्रियां लेकर उपस्थित हुई ॥२८॥

रेवातीरे स्थितं देवं सेवार्थं हिन्दवोऽगमन् ।
नित्यं प्रति स तान्धर्म्यै रुपदेशैर वर्धयत् ॥२६॥

अर्थ—रेवा के किनारे पर स्थिति भगवान् के समीप सेवार्थ हिन्दू लोग आने जाने लगे और भगवान् के पवित्र उपदेशों से लाभ उठाने लगे ॥२६॥

नारी सुशिक्षार्थं वहुप्रयत्नस्सन्दर्शितो देव सदाम्वरिष्ठैः ।
नारी प्रपाठेन समस्तदेशास्समुन्नतिं यान्ति निरन्तरञ्च ॥३०॥

अर्थ—श्री ११०८महाप्रभु जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने उन लोगों को समझाया कि नारी शिक्षा पर मुख्य ध्यान रखा करो सब देश नारी शिक्षा से उन्नत होता है ॥३०॥

मातुश्च शिक्षा वलमाप्रयन्नो वीरोऽभिमन्युर्मनुवर्ष कश्च ।
महारथी युद्ध कला सुधीरस्तस्माच्चवाला परिशिक्षणीया ॥३१॥

अर्थ—मातृ शिक्षा से १४ वर्ष का ही अभिमन्यु युद्ध कला में महारथी हुआ इस लिये वालिकाओं को शिक्षा अवश्य देनी चाहिये ॥३१॥

अधीत विद्यैव पतिव्रताऽऽसीत् मूर्खाश्चदुष्टा व्यभिचारि काश्च
अतश्च दारेषु समग्र शिक्षा फलं विशालं जगती तलेऽस्याम् ।३२।

अर्थ—पढ़ी लिखी माता अपनी सन्तान को स्वधर्म परायण बना रहने की शिक्षा देगी सन्तान को सुशिक्षित मिष्ठ भाषी गुण ग्राही वनावेंगी तभी वेद में माता को "मातृ देवो भव" लिखा है इसलिए जैसे बालक को हिन्दी पढ़ाने की आवश्यकता है वैसी ही बालिकाओं को भी कारण स्त्री पुरुष दोनों गृहस्थ जीवन के समान अंग हैं प्राचीन काल में स्त्रियां पुरुषों के बराबर परिश्रम करके साहित्यिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, देश सेवा, जाति सेवा आदि आदि सर्वकार्य में बराबर भाग लेती हुई पुरुषों का हाथ बटाती थीं विद्या पढ़कर स्त्री पतिव्रता बनती हैं मूर्ख स्त्री प्रायः दुष्ट व्यभिचार में फँस जाया करती हैं अतः नारी शिक्षा प्रधान कर्त्तव्य है ॥३२॥

एवम्प्रकारैरुपदेशतत्वं प्रचारितं देव गुरु प्रवारैः ।
तद्देशजा हिन्दु पदाभिधेया शिश्ष्या वभूवु र्जगृहुस्सुमन्त्रम् ॥३३॥

अर्थ—इसी तरह श्री गुरु देव जी ने खूब प्रचार कर हिन्दुओं को मन्त्रोपदेश दे अपना चरण सेवक बनाया ॥३३॥

नानोपदेशै र्जनता मनांसि संरञ्जयामास मनोहर श्रीः ।
श्रीचन्द्र देवोऽथच शिष्य युक्तः ततः समागादनु मोहमय्याम् ॥३४॥

अर्थ—भगवान् ने वहाँ रहते हुये धार्मिक उपदेशों से जनता का खूब मनोरञ्जन किया। अनन्तर भगवान् अपने उदासीन साधु मण्डली सहित बम्बई पधारे ॥३४॥

रामाकाश रसेन्दु भाजि महिते श्री वैक्रमे वत्सरे,
माघेऽमां दिवसे वशी कृतमना मारावले पापहा।
मौहं मोहमयीपुरी कृत ग्रहं हन्तुं स मूलं ययौ,
नित्यं ध्वान्त विनाशनं हि जगतः कर्मावदातं रवेः ॥३५॥

अर्थ—वि० सं० १६०३ माघवदी ३० के दिन मनमथ मान मर्दक शिवस्वरूप आत्मा राममें रत भगवान् श्रीचन्द्र जी महाराज मुम्बई में पधारे वहाँके लोगों में मोह शोक भय अज्ञान जो बहुत दिनों से अड्डा जमाये बैठा था उसके भगाने वास्ते जैसे सूर्य नारायण संसार में अंधकार भगाता है ॥३५॥

श्री वालकेश्वर मुपास्य च वाण गङ्गां,
गङ्गा धरोऽतिमुमुदे शिशिरां वगाह्य।
तस्याः पवित्र पुलिने नलिनी मनोज्ञे,
विज्ञेन तेन विहितानि निजासनानि ॥३६॥

अर्थ—श्री बालकेश्वर महादेव का पूजन करके तथा अत्यन्त शीतल बाण गंगा में स्नान करके भगवान् परम प्रसन्न हुये उसीके एक नलिनी (कमलनी) दलों से मण्डित मनोज्ञ किनारे पर भगवान् ने अपना आसन जमाया ॥३६॥

बानीर वीर सरलार्जुन भूरुहाणि,
ताली दला निल विलोल लता मयानि।
वेला वनानि परितो हरि तानि तानि,
वीक्ष्ये क्षणानि मुदितानि तदा जनानाम् ॥३७॥

अर्थ—हरे हरे बानीर, वीर, सरल, अर्जुन प्रभृति सुवृक्षों से विभूषित तथा कदली दल की मन्द अनिल से वेल्लित लताओं से युक्त वेलावनों को देखकर सब की आखें तृप्त हो गई ॥३७॥

उत्सङ्ग सङ्गिनममुं नयनाभि रामं,
क्षीणोऽपि पर्वणि पुनः सकलं विलोक्य।

मालिङ्गितुन्वभिललाष चलोर्भि वाहुः,
चन्द्रं सरित्पतिरसौ सरसः प्रगाढम् ॥३८॥

अर्थ—अपने उत्सङ्ग में बैठे अति सुन्दर भगवान् को अपनी तरङ्ग रूपी भुजाओं से समुद्र ने आलङ्गित करना चाहा यद्यपि उस दिन पूर्णिमा नहीं थी तो भी कलाओं से युक्त श्री श्रीचन्द्र भगवान् को चन्द्रमा मान कर समुद्र ठाठा मारने लगा ॥३८॥

तत्रस्थितो जनतया नुनयेन पृष्ठः,
सृष्टि स्थिति प्रलय कृत किल चन्द्र देवः ।
वैराग्य पूर्ण कथया व्यथि तान्तराणि,
व्यासिश्चितुं वचनमित्थमुवाचचारु ॥३९॥

अर्थ—सृष्ट स्थिति और प्रलय करने वाले भगवान् से जनता ने अपनी विनीत प्रार्थना की कि हे भगवन् हमें कुछ उपदेशामृत प्रदान करें भगवान् ने उनके दुखी मनो को शांत करने के लिये वैराग्य पूर्ण कथा कहनी आरम्भ की ॥३९॥

गीतां गीतां गिरिवर भृता शृण्वतां सज्जनानां ।
सद्यश्चेतो भवति विमलं भक्ति तोयेन पूर्णम् ॥
भक्ति र्ज्ञानं भवति सहसा तच्च मोक्षं ददाति ।
तस्माद्गीताः निरुपधि हृदा नित्यमा सेवनीया ॥४०॥

अर्थ—गिरिवर धारी भगवान् श्री कृष्ण की गीता को सुनने से मनुष्यों का मन भक्ति रूपी जल से सर्वथा निर्मल शुद्ध हो जाता है भक्ति ही पराभक्ति बनकर ज्ञान का पर्याय हो जाती है ज्ञान से मुक्ति हो जाती है इस लिये निश्छल भाव से गीता का नित्यप्रति श्रवण और मनन करना चाहिये ॥४०॥

नूनंयङ्का वलिमलि निता दुर्जना दुःख भाजः,
क्षिप्त्वाव दूरं सकल कलुषं सज्जनानां प्रसङ्गात् ।
लोकादस्मात्प्रकृति विषमात्सच्चिदानन्द कन्दं—
गङ्गा सङ्गादिव समसरितो यान्ति सिन्धुं प्रसन्नाः ॥४१॥

अर्थ—पाप से मलिनात्मा ही संसार में दुःख उठाते हैं और सज्जन सङ्गति से अपने सम्पूर्ण पापों को धोडालते हैं फिर वे संसार चक्र से मुक्त होकर आनन्द कन्द भगवान् को

प्राप्त हो जाते हैं जैसे छोटी मोटी गंदली नालियां गङ्गा में मिलकर निर्मल बन कर समुद्र में जा पहुँचती हैं ॥४१॥

का प्रत्याशा क्षणिक सुखदे सज्जनानां भवाब्धौ ?,
वक्रा नक्रा निशितरदनाः क्रोध मानाधि मोहाः ।
दर्पः सर्पः सपदि विलयं नेतुमा बद्ध बुद्धिः,
लोभः क्षोभश्चलित सलिलो यत्र मज्जन्ति जीवाः ॥४२॥

अर्थ—आपात रमणीय इस संसार सागर में सुख की कहाँ आशा क्रोध, मान मोह इसमें तीखे दाँतो वाले बाँके नाकू हैं दर्प ही साँप है जो मनुष्यों को सदा नष्ट करने की ठाने रहता है लोभ ही इस संसार सागर में एक प्रकार का क्षोभ (हल चल) है जिसमें मनुष्य डूबे रहते हैं ॥४२॥

देहे स्नेहोन भवति सतां रोग तुल्याश्च भोगाः,
व्यालाः श्याला विषम वदना दूषणं भूषणञ्च ।
ईति गींतिः स्तुति रपयशः संसृति निंर्ऋतीव,
भीतिः कीर्तिं विंशद विशदा भक्षिणः पक्षिणोऽपि ॥४३॥

अर्थ—समझदार व्यक्ति इस देह से नेह नहीं करते भोगों को रोगों के समान समझते हैं श्याला आदि सम्बन्धियों को व्याल (साँप) के तुल्य मानते हैं अपने दूषण को भूषण समझते हैं, अर्थात् यदि उनकी कोई बुराई करे तो बड़े प्रसन्न होते हैं और वे गीति को ईति, स्तुति को अपयश, संसृति को मृत्यु, कीर्ति को भीति, पक्षियों (अपना पक्ष करने वालों) को भक्षी खाने वाले मानते हैं ॥४३॥

दाराः काराः शमसुखजुषां व्याधयः पुत्र पौत्राः,
हारा भारा गजरथ हया यातु धानाः प्रधानाः ।
मालाः काला नल सुविषमा मानवा दानवाभाः,
शाला हाला हल खर तराः कालिका बालिकापि ॥४४॥

अर्थ—दारा को कारा (जेल) पुत्र पौत्रों को व्याधि, मुक्ता हार को भार, हाथी घोड़े रथों को राक्षस, माला को प्रलय काल की भयंकर आग, मानवों को दानव, शाला (घर) को हालाहल और बालिका को साक्षात् कालिका अर्थात् भगवद्भजन में विमुखता पैदा कर देने के कारण वे लोग किसी भी संसारी पदार्थ से अपना सम्बन्ध (लगाव) नहीं जोड़ते ॥४४॥

इत्थं श्रीचन्द्र देवेन वोध्यमानाः समे जनः ।
वद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रार्थयामासुरादरात् ॥४५॥

अर्थ—इस प्रकार भगवान् का उपदेश सुनकर समस्त जनता ने सादर भगवान् से प्रार्थना की ॥४५॥

गीता भगवता गीता पूतानास्त्यत्र संशयः ।
माहात्म्य तस्य देवेशो विस्तराच्छ्रोतुमिच्छवः ॥४६॥

अर्थ—हे भगवन् श्री गीता जी भगवान् कृष्ण के मुखारविन्द से निकली है परम कल्याणकारी है इस में कुछ सन्देह नहीं पर हमें उसका विस्तार पूर्वक माहात्म्य सुनाने की कृपा करें ॥४६॥

इत्युक्तो भगवान् स्मित्वा पुनराहस तान् प्रति ।
ज्ञात्वा सर्वे न सन्तीति वेदान्तस्याधिकारिणः ॥४७॥

अर्थ—भगवान् उनको प्रार्थना सुनकर मुस्कराये और समझ गये कि ये सब लोग वेदान्त के अधिकारी नहीं हैं यह समझ कहने लगे कि ॥४७॥

वेदोपनिषदां सारः गीतेति को न मन्यते ।
निस्सारितो भगवता निमित्ती कृत्य चार्जुनम् ॥४८॥

अर्थ—वेदों का सार उपनिषद हैं और उपनिषदों का सार गीता इस में किसी को भी आपत्ति नहीं । भगवान् ने अर्जुन को निमित्त बनाकर हम सब के कल्याण के लिये गीताज्ञान कहा है ॥४८॥

नाना मार्ग प्रवृत्ता नां जलानामर्णवे यथा ।
विरुद्धानां हि शास्त्राणां विरोधोऽत्रविनश्यति ॥४९॥

अर्थ—शास्त्रों का परस्पर का विरोध गीता में आकर मिट जाता है जैसे कई मार्गों से आते हुये जल समुद्र में मिलकर अपना भेदभाव खो बैठते हैं ॥४९॥

कर्मभक्तिश्च ज्ञानञ्च काण्ड त्रयं त्रयी गतम् ।
क्रमेण गीता शास्त्रेऽस्मिन् श्रीकृष्णेन निरूपितम् ॥५०॥

अर्थ—वेदोंमें कर्मकाण्ड, भक्तिकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, तीन काण्ड आते हैं भगवान् ने इनका ही क्रम से गीतामें निरूपण किया है अर्थात् पहले ६ अध्यायों में कर्मकाण्ड मध्य के छे अध्यायों में भक्तिकाण्ड और अन्तिम केछे अध्यायो में ज्ञानकाण्ड ॥५०॥

अष्टादशभिरध्यायै अष्टा दश विभिन्नतः ।
अलंकृतमिदं शास्त्रं हरिणा पाप हारिणा ॥५१॥

अर्थ—भगवान् श्री कृष्ण ने गीता शास्त्र को १८ अध्यायों से अलंकृत किया तभी महाभारत १८ पर्व में रचा गया साथही महाभारत का युद्ध भी १८ दिन ही हुआ महाभारत में सेना भी १८ अक्षौहणी थी, पांडव पक्षके मुख्य योधा भी १८ थे जिनका वर्णन गीता अ० १ श्लो० ४ से ६ तक में किया गया है, गीताशास्त्र सर्व पापों का हरण करने वाला है ॥५१॥

सप्तशतानि पद्यानां गीतायां सन्ति तेन हि ।
गीयतेऽपरनाम्नापि गीता सप्तशतीति च ॥५२॥

अर्थ—गीतामें सात सौ श्लोक हैं अतः इसका एक दूसरा नाम गीता शप्तशती भी है ॥५२॥

कर्माणि प्रथमे षट्के द्वितीये भक्तिरुत्तमा ।
तृतीये ज्ञानमित्येवं काण्ड त्रयमिहागतम् ॥५३॥

अर्थ—पहिले षट्क में कर्मकाण्ड दूसरे षट्क में भक्तिकाण्ड और तीसरे षट्क में ज्ञान काण्ड निरूपण हुआ है ॥५३॥

गीतायां स्वल्पकायायां सुधायामिव विद्यते ।
अमरी करणे शक्तिः सारः स्वल्पोऽपि दुस्सहः ॥५४॥

अर्थ—इस छोटीसी गीतामें मनुष्य को देवता बनाने की शक्ति निहित है जीवित करने के लिये अमृत की एक बूंद ही पर्याप्त है सारवस्तु थोड़ी भी अपना प्रभाव अवश्य दिखाती है ॥५४॥

गीतायां सुष्ठ्वधीतायां भक्ति पूर्णेन चेतसा ।
सर्वे वेदाश्च शास्त्राणि स्वधीतानि भवन्ति हि ॥५५॥

अर्थ—भक्तिपूर्वक एकमात्र गीताके पढ़ लेने से ही समस्त वेद और शास्त्र पढ़ लिये माने जाते हैं ॥५५॥

ज्ञानेकर्मणि भक्तौ च यत्र जायेत संशयः ।
संशयालु भिरालोक्या शुभा लोक प्रदात्वियम् ॥५६॥

अर्थ—कर्म भक्ति और ज्ञान में यदि कहीं संशय पड़ जाय तो संशयालुओं को चाहिये कि वे भगवती गीता की शरण में आयें ये उन्हें प्रकाश देगी ॥५६॥

यथा सर्वाणि तीर्थानि समाप्तिं यान्ति सागरे ।
तथा सर्वाणि शास्त्राणि गीतायां यान्ति पूर्णताम् ॥५७॥

अर्थ—जैसे सब तीर्थ सागर में लय हो जाते हैं इसी प्रकार सारे शास्त्र गीता में अन्तर्भूत हो जाते हैं ॥५७॥

यस्मादेवं विधा गीता तस्माद्गेया निरन्तरम् ।
मृत्वा ब्रह्म पदंयाति गीता गान परः पुमान् ॥५८॥

अर्थ—ऐसी अद्भुत विलक्षण गीता का निरन्तर पाठ करना चाहिये गीतापाठी अन्त में ब्रह्मपद को प्राप्त होता है ॥५८॥

इत्थं गीता मृतं पीत्वा कृतार्थाः सकला जनाः ।
प्रणम्य चन्द्र चरणौ सानन्दं स्वालयान् गताः ॥५९॥

अर्थ—इस प्रकार गीतामृत पीनें से कृतार्थ हुये २ श्रोता गण, भगवान् को प्रणाम कर अपने अपने घरों को पधारे ॥५९॥

एवं वहुतिथे काले व्वतीते यति पुङ्गवम् ।
भक्त्या जिज्ञासया युक्तः भक्त एकः समाययौ ॥६०॥

अर्थ—बहुत समय बीत जाने पर एक भक्त श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास आया और प्रणाम करके हाथ जोड़कर सादर पूछने लगा ॥६०॥

प्रणम्य प्राञ्जलि र्भूत्वा पप्रच्छैवं समादरात् ।
भगवन् गुर्जरे देशे विशेषेण वसन्ति हि ॥६१॥
हिन्दुम्मन्याः पारसीकाः जलानलर्क पूजकाः ।
किमिमे हिन्दवः सर्वे ? उताहो इतरे मताः ? ॥६२॥

अर्थ—हे भगवन् गुजरात देश में विशेष करके रहने वाले ये पारसी अपने को हिन्दू मानते हैं और जल अग्नि सूर्य की पूजा करते हैं क्या ये सब हिन्दू है अथवा कोई दूसरी जाती के हैं ॥६१-६२॥

अथ श्री भगवांश्चन्द्रः मन्दं स्मित्वा जगाद तम् ।
श्रूयतां तत्त्वतो धीमन् यइमे यादृशास्तथा ॥६३॥

अर्थ—भगवान् मुसकरा कर कहने लगे सुनों मैय्या इनका ठीक ठीक सच्चा इतिहास ॥६३॥

पुरा काले हि हिन्दूनां सर्वत्रासीन्मही तले ।
राज्यं देशेच काये च वित्ते चित्ते समन्ततः ॥६४॥

अर्थ—पहले हिन्दुओं का अखिल महि मण्डल पर राज्य था देश काय (शरीर) बित्त, चित्त पर उनका एक मात्र अपना पूर्ण अधिकार था हिन्दुओं के बगैर दूसरी कोई जाति न थी ॥६४॥

शनैः शनैश्च सङ्कोचः कालेन महता कृतः ।
भारतं वर्ष मेवाद्य विशिष्ठं वर्तते परम् ॥६५॥

अर्थ—धीरे धीरे समय के प्रभाव से ऐसा न रहा अब तो हिन्दु लोग केवल भारत वर्ष में ही अधिक पाये जाते हैं ॥६५॥

केचिच्छताव्यां पवनाश्च हिन्दु धर्मश्च सन्नाशयितुं प्रवृत्ताः
तदा विदेशे च पलादितास्ते स्वकीय देशे वसनं प्रचक्रुः ॥६६॥

अर्थ—विक्रम की सातवीं शताब्दी में मुसलमान लोगों ने पारसियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाना चाहा तब यह अपने देश ईरान (पारस) को त्याग खुरासान होते समुद्र मार्ग से भारत में वि० सं० ७७४ में संजान नगर आये वहाँ से आके नवसारी भड़ौंच, सूरत बम्बई आदि नगरों में बस गये किन्तु अपना हिन्दू धर्म नहीं त्यागा ॥६६॥

यथा चलन्त्ये वच हिन्दवो हि तथैव सर्वे खलु पारसीयाः ।
सूर्यं जलं पारस देशजाश्च तथाग्नि देवं परिपूज यन्ति ॥६७॥

अर्थ—पारसी लोग अपने आप को हिन्दू ही मानते हैं सूर्य जल अग्नि की पूजा करते हैं उपरोक्त सभी बातों से स्पष्ट है कि पारसी हिन्दू हैं ॥६७॥

अमीषां हिन्दुभिः सर्वे धर्माः संवादियो भृशम् ।
स्वल्पो भेदो देश भेदा ज्जातस्तु न विशेषतः ॥६८॥

अर्थ—इनके सब धार्मिक कृत्य हिन्दुओं से मिलते जुलते हैं; इतना समय बीतने पर भी थोड़े से अन्तर को छोड़ कर कोई खास अन्तर नहीं आया ॥६८॥

वैदिका देवता सर्वाः चन्द्र सूर्यानलानिलाः ।
अस्माकञ्चैव तेषाञ्च समाना एव नोपृथक् ॥६९॥

अर्थ—चन्द्र सूर्य जल और अग्नि ये सब वैदिक हिंदू देवता ही हैं जैसे हमारे वैसे उनके, अन्तर ही क्या है ॥६९॥

अतस्ते हिन्दवः सर्वे न भिन्ना कापि कर्हिचित् ।
इति श्रुत्वा प्रणम्यासौ यथा यातं गतो गृहम् ॥७०॥

अर्थ—अत एव वे सब हिंदू हैं हिंदुओं से किसी प्रकार भी अलग नहीं माने जा सकते ऐसा सुन कर वह भक्त, श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को प्रणाम करके अपने घर को चला गया ॥७०॥

इत्थं सर्वं क्षितितलमसौ चन्द्र वच्चन्द्र देवः,
कीर्तिं ज्योत्स्नामिव विदलयन् भ्रान्तवान् पुण्य लक्ष्मी।
सर्वे मर्त्याः स सुत वनिता भक्ति युक्तैश्च चित्तैः,
गायं गायं विमल चरितान्यस्य पुण्यं लभन्ताम् ॥७१॥

अर्थ—जैसे चाँद समस्त संसार पर अपनी चाँदनी प्रखरित करता है वैसेही भगवान् ने मानो अपनी कीर्ति को चान्दनी का मद दमन करने के लियेघूम घूम कर फैलाया। जो मनुष्य अपने पुत्र मित्र कलत्रादि बन्धुओं सहित इस श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पवित्र चरित्र को भक्ति पूर्वक गायेगा वह परम पुण्य को प्राप्त करेगा ॥७१॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे समस्त गुजरात देश भ्रमणं बम्बई मध्ये श्री गीतोपदेश पारसी हिंदू हैं प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी चतुर्विंशतितमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२४॥

॥ पञ्चविंशतितमा किरण प्रारम्भः ॥

हिन्दुजनाः महाभागाः श्रूयतामग्रिमा कथा ।
विचचार विदेशेषु श्रीचन्द्रो भगवान्यथा ॥१॥

अर्थ—हे भाग्यवान् हिन्दू लोग अब आगे की कथा सुनो जिस प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् भारतवर्ष से बाहर विदेश में गमन करने का विचार करते भये ॥१॥

रामाकाशरसेन्दौ श्री वैक्रमेऽब्दे च फाल्गुने ।
शिवरात्री व्रतं कृत्वा मुम्बापुर्या विनिर्गतः ॥२॥

अर्थ—वि० सं० १६०३ फाल्गुण वदी १३ शिवरात्रि करके जहाज द्वारा समुद्र की यात्रा करने को बम्बई से चलते भये ॥२॥

सिन्धु वेलावधिं गत्वा पोते संवेश्य सानुगम् ।
चन्द्रदेवं प्रणम्याथ निवृत्ता भक्त मण्डली ॥३॥

अर्थ—उताल तरंगे सिन्धु की जहाज से देखते हुये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को, सहित उदासीन साधु मण्डली के विदा करते हुये जहाज पर बैठाके सब भक्तगण प्रणामकर वापिस आगये ॥३॥

चिरेणाद्य समुद्रेण वियुक्तश्चन्द्र आत्मजः ।
पुनरा रोपितः क्रोड़े सानन्दं वीचि बाहुना ॥४॥

अर्थ—बहुत दिनों से समुद्र से बिछुड़ा हुआ चन्द्रमा अपने पिता समुद्र को देखके पुनः समुद्रको अपनी बाहुओं से आलिंगन करता हुआ बड़ा आनन्दित होता हुआ ॥४॥

शीकरिणा समीरेण सेव्यमानः पदेपदे ।
उत्तङ्गेषु तरङ्गेषु दोलास्विवननन्द सः ॥५॥

अर्थ—पवन देवता भी शीतलता से अपनी सेवा पदपद पर प्रदर्शित करता हुआ उतंग तरंगों से समुद्र श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन कर प्रसन्नता प्रकट करता हुआ ॥५॥

मन्दं मन्दं वाह्यमानः दर्शनानन्दितैश्चतैः ।
कैवर्तैः कौतुकं पश्यन् ततार सरितां पतिन् ॥६॥

अर्थ—इस प्रकार मन्द मन्द चलते हुये सबको दर्शन देते आनन्दित करते हुये मलाहों का तमासा देखते समुद्र जो समस्त सरिता (नदी) का पति उसके किनारे आकर उतरते हुये ॥६॥

श्रीचन्द्रश्चन्द्र वदनः कदनं कुमतेः सृजन् ।
अदनं नाम नगरं प्रथमं सम भूषयत् ॥७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जिनका मुख चन्द्रमा के समान है कुमतियों का कुमत कदन (खण्डन) करनेवाले अदन नाम नगर में प्रथम उतर के भूषित होते भये ॥७॥

गीता ज्ञानेन तत्रत्यान् सम्मोह्य सहमण्डली ।
मण्डयामास मक्काख्यां नगरीश्च गरीयसीम् ॥८॥

अर्थ—जहाँपर महाराज श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् गीता के ज्ञानानुसार सबको उपदेश देते मक्का शहर आते हुये ॥८॥

यत्र पित्रा नानकेन, रात्रौ सुप्तेन यावनम् ।
मस्जितं विनिवर्त्याशु रञ्जितः सकलोजनः ॥९॥

अर्थ—जहाँपर प्रथम आपके पिता नानक देव जी भेष उदासीन आये थे और रात्रिको सोते २ मस्जिद फिरा दी थी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् भी वहीं पर आके ठहरे और सबको अपने उपदेश से रञ्जित करने लगे ॥९॥

तत्रैवास्थाय चन्द्रोऽपि ज्ञान धर्ममयानयम् ।
विनीतानां मौलिवीना मुपदेशान भाषत ॥१०॥

अर्थ—वहीं पर आप निवास कर ज्ञान धर्म का उपदेश करते रहे आप का मधुर यथार्थ हितकर उपदेश श्रवण करके मुल्ला मोलवी लोग अपने सर्वअभिमान को त्याग विनीत होते भये ॥१०॥

मदीनां नाम नगरी मदीनात्मा महामुनिः ।
मुनिभिः सकलैः साकं सोऽगच्छद्धर्ममुद्धरन् ॥११॥

अर्थ—मक्के से चल श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रजी मदीना नगर आये जिनकी विशालात्मा है जो मुनियों में महामुनि हैं सकल मुनियों के शोक नाशक आगे जाते भये ॥११॥

बगदादं वावदूकः कुर्वन् पुण्याः कथाः पथि ।
मनांसि रञ्जयन्नृणां शिष्यैरनु गतो गतः ॥१२॥

अर्थ—बगदाद में पहुँचे जिनकी पुण्यकथा यात्रियों के मुख से सुन के बगदाद निवासी मनुष्यों के मन (रञ्जित) आनन्दित होगये और आय आय कर शिष्य (सेवक) बन के जाते भये ॥१२॥

एल्पोनाम नगरं संल्लयन सज्जनैः शनैः ।
विस्माययन् दर्शकांश्च कैश्चिदेव दिनैर्गतः ॥१३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बगदाद से चल अलपो नगर में

पहुँचे वहाँ के लोग जब आपका दर्शन कर विस्मय करते भये कारण श्री जगद्गुरुजी के ऐसा स्वरूप का व्यक्ति उन्होंने बहुत दिनों से न देखा था ॥१३॥

दमिष्कं नाम नगरं दम्भहा शम्भुः विग्रहः ।
निग्रहानुग्रहौ कुर्वन् शीघ्रमागाद्दुगविष्ठिरः ॥१४॥

अर्थ—आगे आप दमिश्कनाम नगर में पहुँचते भये कैसे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् हैं दम्भ के नाश करने वाले शंकर का अवतार निग्रह (अवरोध) अनुग्रह (कृपा) करने में समर्थ शीघ्र ही दया करने वाले हैं लोग आ आ के चरणों में पड़ते भये ॥१४॥

फिलस्तीनं पुरं तूर्णं पूर्णं चन्द्र निभाननः ।
मोदयंश्चन्दनामोदै रुपदेशै र्विदेशिनः ॥१५॥

अर्थ—फिलस्तीन देश के लोग विदेशी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रजी का मुख पूर्ण चन्द्रमा के सदृश्य प्रकाश मान देख के बड़े प्रसन्न होते भये ॥१५॥

ईरान मागतोयस्त्रैः शनकैः कैश्चिदेव सः ।
तेहरानाभिधां तत्र राज धानीमयात्पुनः ॥१६॥

अर्थ—पुनः आप ईरान देश के राजधानी तेहरान नगर में आते भये वहाँ पर आप शनक मुनि या कौशिक मुनि समान शोभा पाते भये ॥१६॥

तत्रत्या यवनाः सर्वे, धौताः पावनवाग्जलैः ।
अपूजयन् भक्ति नम्राः चन्द्रं चन्द्र मिवा परम् ॥१७॥

अर्थ—वहाँ के सर्व यवन (मुसलमान) आपके पवित्र वचनरूपी जल से पवित्र हो गये जो किसी भी हिन्दू साधू की पूजा न करने वाले थे वह भी जगद्गुरु के समक्ष नम्र हो भक्ति करके ऐसे उनके अनुयायी हो के श्री गुरु जी के उपदेश के पीछे चलने में तत्पर हो गये जैसे चन्द्रमा के पीछे चन्द्रमा की चाँदनी चलती है ॥१७॥

ततः कुर्वन् कर्म भक्ति, ज्ञान पूर्णाः शुभाः कथाः ।
शनैः शिष्य युतश्चन्द्रः समयाच्छोण सागरम् ॥१८॥

अर्थ—ज्ञान से पूर्ण कर्म और भक्तिकी शुभ कथा करते हुये धीरे धीरे अपने शिष्यों समेत श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् लाल सागर ॥१८॥

तमुत्तीर्य ततः श्रीमान् पोत मार्गेन मार्गदः ।
इङ्गलेण्डभिधं द्वीपं ययौ गौराङ्ग मण्डितम् ॥१९॥

अर्थ—में जहाज द्वारा इङ्गलैण्ड द्वीप लंदन नगर में वि० सं० १६०४ में आते भये जहाँ पर गौरवर्ण के लोग रहते हैं इस समय में यहाँ पर अष्टम हेनरी की मृत्यु के बाद उसका छोटा बेटा षष्ट एडवर्ड ट्युडर (Tudor) वंशी गद्दी पर बैठा था उसी के समय में जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् लन्दन पहुँचे थे ॥१६॥

लण्डनाख्यं पुरीं तत्र राजधानीं सुधोपमैः ।
उपदेशैरयं गत्वा रञ्जयामास मानवान् ॥२०॥

अर्थ—लंदन नगर इङ्गलैण्ड देश की राजधानी शोभनीय थी वहाँ पर आपका उपदेश सुन सुन के लोग प्रसन्न हो हो जा जा के वहाँ के राजा से श्री गुरु श्रीचन्द्र जी की प्रशंसा करते भये ॥२०॥

काल वालं बुद्धि वृद्धं समृद्धं शुभगैं गुणैः ।
अदृष्ट श्रुत पूर्वं तं ते दृष्ट्वा विस्मयं गताः ॥२१॥

अर्थ—वहाँ के लोग अपने राजा से कहते हैं कि वह साधु देखने में तो बालक जैसा मालूम पड़ता है परन्तु उपदेश वृद्धों सदृश्य शुभ गुणों से भरा लाभप्रद देता है हम लोगों के बड़े भाग्य से उनका आगमन यहाँ हुआ है ॥२१॥

गौराङ्गाधिपतिः किङ्ग सामात्यः सवलः स्वयम् ।
समागत्याद्भुतं रूपं जटा जूटं कमण्डलुम् ॥२२॥
भूति भूषित सर्वाङ्गः साधु मण्डल मण्डितम् ।
विशाल भाल पहं तं बाल चन्द्र मुखाकृतिम् ॥२३॥
श्रीचन्द्रं प्रविलोक्यासावाश्चर्य चकितः स्थितिः ।
विलम्वेन शिरस्त्राणं समुत्तार्य ननाम सः ॥२४॥

अर्थ—तब वहाँ के गोरों का राजा (King) अपने सामन्तों सहित स्वयं श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के सामने आकर उनका अद्भुत रूप जटा जूट के सहित सर्वाङ्ग में विभूति लगी हुई उन्नत ललाट बाल चन्द्रमा के समान दे दीप्यमान मुख अपनी शिष्य मण्डली (उदासीन साधुओं) के बीच में विराजमान देख आश्चर्यित हो तुरन्त सिर से टोप उतार नमस्कार कर अपना नाम बताकर बैठता भया ॥२२-२३-२४॥

सहते नैव सर्वे ते, सचिवाः सैनिकाः प्रजाः ।
प्रणेमुः सकला देवं, यथा राजा तथा प्रजाः ॥२५॥

अर्थ—राजा को प्रणाम करते देख कर उसके साथ जितने मन्त्री सिपाही तथा प्रजा आई थी सभी ने श्री गुरु देव जी को प्रणाम किया कारण जैसा राजा करता है वैसा ही प्रजा भी करती है ॥२५॥

ददौ कुशासनं देवः राज्ञे प्राज्ञः पुरः स्थितम् ।
कुशाशनं व्ययाकर्तुं कुशासं विधिं जगौ ॥२६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने अपने साथ के एक साधु को आज्ञा दिया कि राजा को कुश का आसन दो तब उस साधु ने कुश का आसन राजा को दिया जिस पर वह बैठता भया और कुशासन पर बैठने का लाभ विधि सहित उसको समझाया ॥२६॥

प्रौढ्या माङ्गल भाषायां भाषमाणं विभास्वरम् ।
सुस्वरं प्रविलोक्यासौ, किङ्गः कौतुक मागतः ॥२७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने इङ्गलैण्ड के राजा को उसकी अङ्गल भाषा (अङ्गरेजी भाषा) में ही उसको उपदेश सुनाया ऐसा सुन्दर शब्दोच्चारण करना देख कर वह राजा बड़ा आश्चर्य में आ गया ॥२७॥

मुकुटं पुरतः कृत्वा कृताञ्जलि पुटः स्वयम् ।
पप्रच्छ प्रथयन् राजा विनयं नयभूषितम् ॥२८॥

अर्थ—हाथ जोड़ कर मुकुट (ताज) उतार प्रणाम कर विनय पूर्वक पूछता भया ॥२८॥

कभवान् भारते जातः क्वेदं बाल्यं वयस्तव ।
क सा मातृ कृता शिक्षा क्वपुण्या सुर भारती ॥२९॥

अर्थ—आप क्या भारत (हिन्दुस्तान) में उत्पन्न हुये हैं आप देखने में तो बालक सदृश जान पड़ते हैं परन्तु आपकी अवस्था क्या है तथा आपने कौन २ सी भाषा की शिक्षा पाई है वह सरस्वती (विद्या) कौन सी पुण्यशालिनी है जिसको आपने ग्रहण किया है ॥२९॥

क चेयं परुषा भाषा विदेशीया न संस्कृता ।
कथन्नु भवताऽधीता श्रोतुं श्रोत्रे समुत्सुके ॥३०॥

अर्थ—आपने कौन २ सी भाषा पढ़ी है विदेशी पढ़ी है या संस्कृत पढ़ी है आप कहें कि और क्या आपने अध्ययन किया है हम लोगों को सुनने की बड़ी इच्छा है ॥३०॥

सोत्प्रासं शनकैः श्रीमान् श्रीचन्द्र श्चारु भाषणः ।
कोमलश्च प्रगल्भश्च वभाषेभूपमुत्सुकम् ॥३१॥

अर्थ—यह बात सुन कर के श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो सनक मुनि के समान थे चारु (सुन्दर) भाषण करने वाले कोमलवाणी से प्रगल्भ (सारगर्भित) बोलते भये जिसको राजा बड़ी उत्सुकता पूर्वक सुनता भया ॥३१॥

राजन् नैतन्महत्कर्म न वाद्भुत मिदं तथा ।
करामलकवत्सर्वं ब्रह्माण्डं हि तपस्विनाम् ॥३२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले हे राजन् यह हमारे लिए (दूसरी भाषा बोलना) कोई महत्व कर्म नहीं न कोई अद्भुताई है तपस्वी लोगों को समस्त ब्रह्माण्ड हस्तामलकवत् है इसमें आपको आश्चर्य न करना चाहिये ॥३२॥

विहाय सा विहर्तुं वा पाताले वा प्रवेशनम् ।
जले वापि स्थले वापि पर्वते वा निवेशनम् ॥३३॥

तारामण्डलमारोढुं चन्द्र सूर्य बिलङ्घनम् ।
चक्रवालोल्लङ्घनं वा ध्रुव लोका वलोकनम् ॥३४॥

हिंस्रान् हिंसकान कर्तुं दुर्लभं सुलभं तथा ।
अभूतं वा भावयितुं सर्वं शक्य तपस्विना ॥३५॥

अर्थ—अदृश्य होना, पाताल में प्रवेश करना, जल या स्थल में पर्वत में या बन में चले जाना, तारामण्डल चन्द्र सूर्य को उलंघन करके तथा समस्त चक्कर को उलंघन करके ध्रुव लोक तथा लोकालोक पर्वत को उलंघन कर जाना, हिंसा करना या हिंसा नकरना (वर शाप देना), दुर्लभ को सुलभ कर लेना, न होने वाले कार्य को कर देना, यह सब शक्ति तपस्वी लोगों में हुआ करती है ॥३३-३४-३५॥

स्वर्ग लोके महर्लोके जनलोके तपस्यथ ।
सत्य लोके च बैकुण्ठे सर्वत्रा कुण्ठता गतिः ॥३६॥

अर्थ—स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, और बैकुण्ठादि सर्वत्र तपस्वियोंकी गति बिना रोक टोक होती है ॥३६॥

ब्रह्मापि ब्रह्मयुक्तेन ब्रह्मणा ब्रह्मणा सुगमं ।
किमाश्चर्यं लोकभाषाद्यन धीताऽभिधीयते ॥३७॥

अर्थ—ब्रह्मा बन जाना या ब्रह्म में मिल जाना या ब्रह्म रूप हो जाना, यह सब बातें

तपस्वियों को सुगम हैं तो फिर तुम्हारी भाषा को हम बोलते हैं इसमें तुमको क्या आश्चर्य हो रहा है समस्त लोक की भाषा तपस्वियों के हाथ में होती है ॥३७॥

इत्थं प्रबोधि तस्तेन वद्धाञ्जलि पुटो नतः ।
साश्चर्याञ्च प्रशस्ताञ्च सतामुद गिरद्गिरम् ॥३८॥

अर्थ—जब इस प्रकार का प्रबोध राजा ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से पाया तब हाथ जोड़ के नमस्कार कर आश्चर्य से भर प्रशंसा करता बोला ॥३८॥

भगवन् कोटिशस्तुभ्यं कोटिस्ते जन्म भूमये ।
साष्टाङ्गः प्राञ्जलियुताः नमस्कारा भवन्तु मे ॥३९॥

अर्थ—हे भगवन् कोटि कोटि आपको तथा आपकी जन्म भूमि भारतवर्ष (हिन्दुस्तान) को धन्यवाद के साथ साथ हाथ जोड़ के साष्टांग प्रणाम है ॥३९॥

धन्या सा भारती भाषा धन्यं तद्भारतं परम् ।
धन्या सा रत्न गर्भा या प्रसूते रत्नमीदृशम् ॥४०॥

अर्थ—धन्य है भारती (हिन्दी) भाषा तथा भारतवर्ष भी धन्य है वहां की रत्न गर्भा वसुन्धरा भी धन्य है जो आप ऐसे नर रत्नों को जन्म देती है ॥४०॥

पुण्या नद्यो महात्मानः तीर्थानि च वसूनिच ।
यस्यां भूमौ प्रजायन्ते सा बन्द्या दैवतैरपि ॥४१॥

अर्थ—वहां की पुण्य नदी बड़े महात्म्य वाली हैं तथा तीर्थ भी वहीं शोभा पाय रहे हैं जिस भूमि की प्रजा देवता स्वरूप वन्दनीय है ॥४१॥

धिगस्मान् न वयं जातः भारते पुण्य भूतले ।
अम्ब भूयात्पुनर्जन्म पुण्य कुक्षौ स्तवैव हि ॥४२॥

अर्थ—हम लोगों को धिक्कार है जो धरती भरमें पवित्र भारतवर्ष वहां नहीं जन्मे अब यदि पुनः माता हम को जन्म दे तो वही भारतवर्ष की कोष में ॥४२॥

अवदातानि कर्माणि कर्तु स्वर्गस्थिता अपि ।
देवता अभि कांक्षन्ति भुवि यस्यां पुनर्जनुः ॥४३॥

अर्थ—भारतवर्ष में श्रेष्ठ कर्म करके स्वर्ग में निश्चय करके स्थिति होती है तभी देवता लोग भारत भूमि में जन्म होने की इच्छा करते हैं ॥४३॥

कर्मभूमि रियं पुण्या भारती भारती समा ।
इतोऽन्या सकला चोणिः चणभङ्गुर भोगदाः ॥४४॥

अर्थ—भारतवर्ष कर्म भूमि है पुण्यभूमि है भारत के सदृश्य भारत (हिन्दुस्तान) ही है बाकी की समस्त पृथ्वी चणभङ्गुर भोगकी देने वाली है मोच को नहीं ॥४४॥

वयं हि मन्द कर्माणः केवलं भोग तत्पराः ।
परस्परं जिघां सन्तः स्वार्थ साधन पेशलाः ॥४५॥

अर्थ—हम लोग मंद कर्म वाले हैं जो केवल भोगों में ही लिपटे रहके परस्पर में संहर्ष करते हुये स्वार्थ साधन में मुग्ध रहते हैं ॥४५॥

भौतिकीमुन्नतिं मुख्यां मन्य माना मदा कुलाः ।
परमार्थञ्च विद्विष्मः साधवा दानवा इव ॥४६॥

अर्थ—भौतिक उन्नति को मुख्य हम लोगों का कुल मानता है परमार्थ की ओर से विस्मर्ण है देखने में तो साधुओं (सभ्यों) के सदृश्य प्रतीत होते हैं, परन्तु हैं पूरे दानवों जैसे ॥४६॥

वयमद्य कृतार्थास्मः दर्शनेन तवा मुना ।
देयाद्दवोपदेशस्य वैमनस्य पलायते ॥४७॥

अर्थ—आज आपके दर्शन करके हम सब का जन्म कृतार्थ हो गया अब कृपा करके कोई सुन्दर उपदेश दीजिये जिससे हमारे आपस का कलह मिट जाय कारण उस समय एडवर्ड सीमोर प्रोटेस्टेण्ट मत का था जनता इस धर्म को मानने को तैय्यार न थी यह मनाना चाहता था यही आपस में धार्मिक हलचल (Fright tumult Anarchy) चल रही थी ॥४७॥

नोट—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने सम्राट् को बहुत सी नैतिक कथायें समझाई जगद्गुरु जी ने राजा को कहा कि आप अपने अष्ट प्रधान (१) सुमन्त्र श्रेष्ठ सलाह देनेवाला (Minister of Finance) (२) पण्डित आमात्य (Minister of Law) (३) मन्त्रि (Home Minister) (४) प्रधान (President of Council) (५) सचिव (Minister of War) (६) आमात्य (Minister of Revenue) (७) प्राडिववाक् (Minister of Justice) (८) प्रतिनिधि (Representative) इसी नीति में दो और भी दूत बतलाये हैं (१) पुरोहित (Minister of Religion) (२) दूत (Minister of Diplomacy) सहित साम, दाम, दण्ड और भेद नीति से अपनी

शक्ति बढ़ावे गुप्तचरों (खुफिया पुलिस सी० आई० डी०) के जरिये सबका भेद जानता किन्तु अपना न देना ही राजा का मुख्य कर्तव्य है। बुद्धिबल, साहस, तेज, पराक्रम, उद्यम जिसके पास है राज्य भी उसीका समझो जो काम सबके हितका हो साथ में अपनी क्षति भी न हो वही करे खाली धर्म के ही झगड़े न छेड़ बैठे आपस का विद्रोह अच्छा नहीं होता।

उपद्रवस्तत्र विलक्षणोऽपि मतञ्च किं मान्यतमं जनैश्च।
राज्यं प्रबन्ध किलमातुलस्य श्री एडवर्डस्य करं गतश्च ॥४८॥

अर्थ—वहाँपर धार्मिक कोलाहल पहिले से मचा हुआ था कि कौन मत माननीय है राज्यशासन राजाके मामा एडवर्ड सिमोर के हाथ में था ॥४८॥

इति ब्रुवाणं भूपालं वहुशो नीति गर्भिताः।
कथयित्वा कथाः पुण्याः विससर्ज गृहं प्रति ॥४९॥

अर्थ—इस प्रकार जब राजा ने बहुत विनती की तब श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने बहुत सुन्दर नीति भरे उपदेश दे दोनों पक्ष वालों को समझाया जिससे उभय पक्ष को शान्ति आगई और सब प्रणाम कर २ अपने २ गृह में जाते भये ॥४९॥

कैश्चिदेवा नुगैः सार्द्धं कैश्चिदेव दिनैः स्वयम्।
अमरीकां ययौ देवः यथेन्द्रो ह्यमरावतीम् ॥५०॥

अर्थ—कुछ दिन आप वहाँ निवास कर लोगों को उपदेश देते हुये अमेरिका देश आते भये जो इन्द्रपुरी अमरावती के सदृश्य है ॥५०॥

तथैव तत्र बहुधा कथाख्यैश्च सुधाझरैः।
आप्लाव्य सकलाल्लोकान् पुनरायात्स लण्डनम् ॥५१॥

अर्थ—वहाँपर कथारूपी झरना को प्रवाहित कर देते भये जिससे सब लोग आह्लादित हो जाते भये पुनः श्री गुरुदेव वहाँ से लौटते लन्दन आते भये ॥५१॥

शिष्यैरनुगतो देवः डोवराख्यं पुरं गतः।
ततो नावा समुत्तीर्य केले सुललितं ययौ ॥५२॥

अर्थ—अपने शिष्यों (साधुओं) समेत श्री गुरुदेव लंदन से चल डोवर नगर होते नौका द्वारा केले आये ॥५२॥

इङ्गलेण्डं मण्डित मथ जनै गौरं कायैः सुगौरः,
न्यूजी लेण्डं नयन सुखदं स्काटलेण्डञ्च रम्यम्।

आयीस्लेंडं शिशिर रमणं शिष्य संघाधिक श्रीः,
आयीलैंडं ललित ललना लालितं लोलकोलम् ॥५३॥

अर्थ—इङ्गलैण्ड मण्डित हो रहा है काम देव सदृश गोरे पुरुषों से न्यूजीलैण्ड नेत्रों को सुख देने वाला है और स्काटलैण्ड परम सुन्दर मनको लुभाने वाला है आयर्लैण्ड में जहां ठंढी रमण कर रही है वहाँ पर स्त्रियाँ बड़ी सुन्दर होती हैं ॥५३॥

फिल्लेंडं चञ्चलजल तरङ्गा हतं गाहमानः,
हालेंडं डिंडिमरव सखं दिग्जयं घोषयन् सः ।
पोलेंडं पांडव इव नवं स्वं यशोदिक्षुतन्वन्,
मन्दा क्रान्तं मृग पति गति मन्द मन्दं जगाम ॥५४॥

अर्थ—फिल्लैण्ड चञ्चल जल तरंग के द्वारा लोगों का मन अहलादित कर रहा है और हालैण्ड की डिमडिम आवाज सब जगह दिग्विजय की घोषणा कर रही है पोलैण्ड पाण्डवों के समान अपना यश दिखला रहा है मन्दा क्रान्ता १७ अक्षरों का छन्द होता है उसी प्रकार ऐसे देशों में सिंह के समान मन्द मन्द गति से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् चलते भये ॥५४॥

सीननद्याः समासीनं तीरे सुर पुरोपमम् ।
श्रीचन्द्रो भगवान् यातः सरसं पैरिसं पुरम् ॥५५॥

अर्थ—पेरिस नगर में जहाँ सीन नदी है जो सुरपुर की उपमा के सदृश है उसके तट पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् विराजते भये ॥५५॥

निम्न गायः परिसरे सरसे सरसैरसौ ।
उपदेशै र्देश हितैः तैः समारञ्जयञ्जनान् ॥५६॥

अर्थ—सीन नदी के किनारे कुछ नीचे पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की गद्दी लगी थी उस पर आपने बैठ के ऐसा सुन्दर रसीला भाव पूर्ण मनोहर उपदेश लोगों को दिया जो कभी सूखने या मुरझाने वाला नहीं था ऐसा सुन्दर देश हितकारी उपदेश सुनकर सब लोगों का मन प्रसन्न हुआ ॥५६॥

अथैकदा चन्द्रदेवं समासीनं सहानुगम् ।
सभायाञ्च विशालायां कोऽपि पप्रच्छ संशयी ॥५७॥

अर्थ—एक समय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जी अपनी मण्डली सहित विराजमान थे बड़ी विशाल सभा लगी हुई थी उस के बीच में एक आदमी ने अपना संशय निवृत्त करने को प्रश्न किया ॥५७॥

भगवन्नीश्वरो नाम कोऽसौ कीदृक्प्रभाववान् ।
इति नो विद्महे विद्वन् तं त्वं व्याख्यातु मर्हसि ॥५८॥

अर्थ—हे भगवन्! ईश्वर का क्या नाम है उसको किसी ने देखा भी है जो बड़ा प्रभावशाली है हे विद्वानों में श्रेष्ठ आप उसकी व्याख्या करके सुनाइए हम तो ईश्वर नहीं मानते आप सिद्ध करें ॥५८॥

श्रुत्वेदं वचनं तस्य रहस्यज्ञो महामतिः
कथञ्जानन्ति वात्मानं शिश्नोदर परा नराः ॥५९॥

अर्थ—उसके वचन सुनकर के रहस्य के जानने में जो महामति श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् हैं वह बोलते भये कि भोगों में परायण रहने वाला पुरुष ईश्वर के रहस्य को क्या जान सकता है ॥५९॥

भारतान्य जनपदे जाता ये च विशेषतः ।
तेषां तु सुतरां सूक्ष्मं ब्रह्म तत्त्वं किमुच्यते ॥६०॥

अर्थ—भारतवर्ष में यह जन्म जात विशेषता है कि वहाँ के उदासीन मुनियों ने ब्रह्मतत्व को समझाने के लिये सूक्ष्म से सूक्ष्म सूत्रों में कहा है ॥६०॥

इत्येवं मनसा ध्यात्वा ज्ञात्वा तेषां मनोरथम् ।
मनोरथ प्रदो देवः स्मित्वा धीरमुवाच तान् ॥६१॥

अर्थ—ईश्वर के समझने और समझाने के लिये ही हमारे दर्शन शास्त्र बने हुये हैं जिनका पठन पाठन करने में कुछ काल लगता है तब समझ में आता है कि ईश्वर क्या है। इसलिये आप लोग हिन्दुओं के धर्म शास्त्र पुराण और दर्शनो का मन लगाकर अध्ययन करें तब आपका मनोरथ सिद्ध होगा क्यों कि वह सब मनोरथों को देने वाले हैं ऐसा धीर पुरुष कहते हैं ॥६१॥

ईश्वरं वो वदिष्यामि सावधानेन चेतसा ।
श्रूयतां भो महा भागाः यदि कौतूहलं महत् ॥६२॥

अर्थ—हिन्दुओं के धर्मशास्त्र जिस प्रकार से ईश्वर को बतलाते हैं उसको सावधानता पूर्वक चित्त

में ले आवो जिसके सुनने से तुम लोग बड़े भाग्यशाली होगे और आप लोगों का सब कौतूहल (संशय) नाश हो जायगा ॥६२॥

निराकारो निराधारो निराहारो निरामयः ।
निर्व्यापारो निराचारो निरागारो निरञ्जनः ॥६३॥

अर्थ—वह ईश्वर निराकार (आकार से रहित) निराधार (आश्रय रहित) निराहार (भोजन से रहित) निरामय (निरोग) निर्व्यापार (व्यवहार से रहित) निराचार (आचार के बन्धनों से रहित) निरागार (गृह विहीन) निरञ्जन (माया से रहित) है ॥६३॥

कूटस्थोऽविचलोऽपायी सूक्ष्मोऽतीव सनातनः ।
गुणातीतो विभुः शान्त सदानन्द मयोऽमलः ॥६४॥

अर्थ—कूटस्थ (सर्वो परिस्थित) अविचल (चलने से रहित) उपायी (युक्ति रचने वाला) सूक्ष्म (बहुत छोटा) अतीव सनातन (अनादि) गुणातीत (तीनों गुणों से रहित विभु (व्यापक) शान्त (शान्त रूप) सदानन्दमय (सदा आनन्द रूप) अमल (मल से रहित) है ॥६४॥

अशब्द स्पर्श रूपोऽसा वरसो गन्ध वर्जितः ।
सर्व स्मात्परतः स्थोऽपि सर्व रूप मयः पुनः ॥६५॥

अर्थ—अशब्द (शब्द से रहित) अस्पर्श (स्पर्श से रहित) अरूप (रूप से रहित) रस और गन्ध से रहित सर्वत्र स्थित रहने वाला और सर्व रूपों में भी है ॥६५॥

अनेक नाम रूपश्च विश्वात्मा विश्वव्यापकः ।
एकोऽहं वहुरूपः स्यामिति ध्यात्वा स्वयं प्रभुः ॥६६॥

अर्थ—अनेक नाम रूप वाला विश्व का आत्मा विश्व व्यापक एक से बहुत रूप रखने वाला स्वयं प्रभू जो अपने आप होने वाला ईश्वर है उसका ध्यान करना चाहिये ॥६६॥

स्रष्ट्वा स्रष्टिं प्रविष्टोऽस्यां सरूपायां विरूप वत् ।
अवतारान् वहून् कृत्वा नाना कारांश्च क्रीडति ॥६७॥

अर्थः— सृष्टि को पैदा करने वाला सृष्टि में प्रवेश करने वाला सब में रूपधारी होता हुआ भी विना रूप का है बहुत से अवतार लेने वाला अनेक आकारों में क्रीड़ा करता है ॥६७॥

तिले तैलं तनौवीर्यं काष्ठेषु च यथाऽनलः ।
मातरिश्वा यथा व्योम्नि शब्दश्च श्रुति गोचराः ॥६८॥

अर्थ—जिस प्रकार तिलमें तैल शरीर में वीर्य काष्ट में अग्नि है आकाश में शब्द व्यापक है जो कान के द्वारा सुना जाता है ॥६८॥

वायौ स्पर्शो यथा व्याप्तः यथा रूपञ्च तेजसि ।
रसोऽप्सु वा चितौ गन्धः ईश्वरः सर्वगस्तथा ॥६९॥

अर्थः—जैसे स्पर्श से वायु सन्सार में व्याप्त है अग्नि में रूप है जल में रस है पृथ्वी में गन्ध है ऐसे ही ईश्वर सर्वत्र व्यापक है ॥६९॥

तत्प्रभावाद्भवन्त्येते सर्वे स्वे कर्मणि स्थितः ।
नाज्ञाभङ्गञ्च कुर्वन्ति राज्ञा माज्ञां यथा प्रजाः ॥७०॥

अर्थः—तिस ईश्वर के प्रभाव से सब अपने २ कर्म में स्थित रहते हैं उसकी आज्ञा भङ्ग कोई नहीं करता जैसे प्रजा राजा की आज्ञा को भङ्ग नहीं करती ॥७०॥

दत्तेऽवकाश माकाशः वाति वायु निरन्तरम् ।
ज्वलनो ज्वलयत्येधः समुनत्युदकं महीम् ॥७१॥

अर्थ—जिस प्रकार आकाश अवकाश देता है हवा निरन्तर बहती है, अग्नि हमेशा प्रज्वलित रहती है पृथ्वी में जल सदैव प्रवाहित रहता है ॥७१॥

धरा धरति भूतानि सूर्यो भ्राम्यति नित्यशः ।
चीयते चीयते चन्द्रः ध्रुवो ध्रौव्येन तिष्ठति ॥७२॥

अर्थ—पृथ्वी सब भूतों को अपने ऊपर धारण करती है सूर्य नित्य भ्रमण करता रहता है और चन्द्रमा बढ़ता घटता रहता है ध्रुव एक जगह अचल स्थित रहता है ॥७२॥

यथा स्थानं भ्रमन्त्येता ग्रह नक्षत्र तारकाः ।
सूर्या चन्द्रमसौ राहुः स्वकाले ग्रसति ग्रहः ॥७३॥

अर्थ—अपने अपने स्थानों पर सब ग्रह नक्षत्र तथा तारा घूमते रहते हैं सूर्य और चन्द्रमा को राहु अपने समय पर ग्रसता है ॥७३॥

जीमूतो जीवनं जीवाञ्जीवयन् विसृजत्ययम् ।
ओषधीरोषधीशश्च पुष्णात्यमृत सिञ्चते ॥७४॥

अर्थ—बादल जो जीवों को जीवन देने वाले जल को बरसाते हैं जिस जल से समस्त अन्न उत्पन्न होता है जो जीवों के प्राणों का आधार है उसी वर्षा के जल से औषधियाँ उत्पन्न होती हैं जो रोगों का नाश करती हैं वही पवित्र जल नदियों में बहता हुआ कृषि को सिञ्चित करता है ॥७४॥

प्रतिज्ञामिव धर्मात्मा वेला मेष महोदधिः।
नाति क्रामति शक्तोऽपि भीतस्तस्मान्महेश्वरात् ॥७५॥

अर्थ—धर्मात्मा लोगों की यह प्रतिज्ञा है कि समुद्र भी जिसके भय से अपनी मर्यादा पर स्थिर रहता है सब उस ईश्वर के भय से अपनी अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ते ॥७५॥

स्व काले मिथुनी भावं तिर्यञ्चोऽञ्चान्ति नान्य था।
स्वे स्वे नियमिते काले लताः सर्वा द्रुमाः समे ॥७६॥

अर्थ—पशु पक्षि तिर्यगुयोनि सब अपने अपने समय से व्यवहार करते हैं लता द्रुम (बेलैं-पौधे) भी अपने अपने समय से फलते फूलते हैं ॥७६॥

असिञ्चताः सिञ्चिता वा फुल्लन्ति च फलन्ति च।
ऊर्ध्वं दीपशिखा याति निम्नं गच्छन्ति निम्नगाः ॥७७॥

अर्थ—अपने अपने नियत समय में द्रुम लतायें फलती और फूलती हैं दीपक की शिखा भी ऊर्द्ध जाती है नदियां सदैव नीचे को बहती हैं यह ईश्वरीय मर्यादा प्रत्यक्ष है ॥७७॥

तिर्यक् सदागतिर्वाति विहायाः सर्वतः स्थितः।
मांस भक्षो मृगेन्द्रोऽसौ घासं नाश्नाति कर्हिचित् ॥७८॥

अर्थ—वायु सदा ही टेढ़ीबहा करती है आकाश सर्वत्र व्यापक है मांस भक्षि सिंहादि पशु घास कभी नहीं खाते ॥७८॥

हरिणास्तृणमश्नन्ति चातकः स्वाति विन्दु भाक्।
दिने दिन चराः सर्वे निशायाञ्च निशाचराः ॥७९॥

अर्थ—हरिणादि घास भक्षि पशु मांस कभी नहीं खाते, चातक स्वाति नक्षत्र का जल छोड़ अन्य वर्षा का जल कदापि नहीं पीता दिन चारी जीव सब दिन को ही चलते हैं। रात्रिचारी रात्रि को ॥७९॥

केचराः के खेचरा खे कुचराः कौ चरन्ति च।
यानि कानि च भूतानि लघूनि च महान्ति च ॥८०॥

अर्थ—जल चारी जल में आकाश चारी आकाश में पृथ्वी के चलने वाले पृथ्वी में सब छोटे बड़े अपनी अपनी गति से चलते हैं ॥८०॥

नियतं कर्म कुर्वन्ति भीतानि परमेश्वरात् ।
स एव सकलाल्लोकान् सृजत्यवति हन्ति च ॥८१॥

अर्थ—जिस ईश्वर के भय से सकल चराचर अपने अपने नियत कर्म करते हुये नहीं विचलते वही ईश्वर इस संसार की उत्पत्ति रक्षा और विनाश करने वाला है ॥८१॥

योऽयं यादृक्प्रभावोऽयं परमात्मा सनातनः ।
तस्य सर्वं मयाख्यातं ज्ञानं विज्ञान सङ्गतम् ॥८२॥

अर्थ—सनातन परब्रह्म परमात्मा का ही यह प्रभाव है उन्ही परब्रह्म परमात्मा के आख्यान (रहस्य) का ज्ञान करने वास्ते सत्सङ्ग करना उचित है ॥ ८२ ॥

ब्रह्मविद्येच्छुना पुंसां सेव्यं भारतमद्भुतम् ।
उदञ्चति यतः साक्षाज्ज्ञानं भास्कर सन्निभम् ॥८३॥

अर्थ—यदि आप लोगों को ब्रह्मविद्या प्राप्त करने की इच्छा है तो तुम पवित्र भारत वर्ष (हिन्दुस्तान) के श्रेष्ठ साधुओं का सेवन करो कारण ब्रह्म विद्या (ज्ञान) रूपी भास्कर भारत से ही उदय हुआ है जो आज तक समस्त देश में प्रखरित हो रहा है ॥८३॥

एवमाभाष्य गम्भीरं तत्त्वं श्रुति गिरां परम् ।
विरराम महातेजाः सर्व आनन्द दायकाः ॥८४॥

अर्थ—महा तेजस्वी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ऐसा श्रुति तत्व को कथन कर मष्ट (चुप्प) कर जाते भये आप का गम्भीर उपदेश सबको आनन्द दायक हुआ ॥ ८४ ॥

श्रुत्वेदमद्भुतं ज्ञानं श्रीचन्द्राच्चन्द्र सन्निभात् ।
तुष्टुवुस्तं महा प्राज्ञं भारता भिजनं मुहुः ॥८५॥
नत्वा नत्वा एहंयाता चिरेण विस्मयान्विताः ।
श्रीचन्द्रश्च ततश्चक्रे प्रस्थानं पूजितो भृशम् ॥८६॥

अर्थ—ऐसा अद्भुत ज्ञान श्रवण करके श्री ११०८ जगद्गुरू श्रीचन्द्र भगवान् के समीप बैठै सभी सन्तुष्ट हो कहने लगे कि भाई भारतवासी महात्मा बड़े बुद्धिमान हैं ऐसा कह सब

श्री गुरु जी को नमस्कार कर कर अपने अपने निवास स्थान को जाते भये तथा श्री गुरु जी भी आगे को प्रस्थान करते भये ॥८५-८६॥

एवमेव कथाः कुर्वन् मार्गे मार्गं विदां वरः ।
देशान्तराणि स्वच्छन्दं बभ्राम केशरी यथा ॥८७॥

अर्थ—इस प्रकार मार्ग में धर्मोपदेश करते हुये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् विदेश में स्वच्छन्द विचरण करते भये जैसे जङ्गल में सिंह घूमता है ॥८७॥

इति श्री साधुवेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गा मध्यवर्ति सक्खर नगरे श्री मद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये-मुनिजन मानस हंसे मक्का, मदीना, बक्दाद अलल्पो ईरान लन्दन फ्रांसादि में उपदेश देन प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी पञ्च विंशतितमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२५॥

॥ अथ षड् विंशति किरण प्रारम्भः ॥

शिष्यैः सं वलितः श्रीमान् शनकै रिटली गतः ।
ततश्च रोमनगरं तत्रापि गिरिजा गृहम् ॥१॥

तदध्यक्षादिकांस्तत्र श्रावयित्वा शुभाः कथाः ।
नेपोली नाम नगरं यातो नेपल्सकं ततः ॥२॥

पम्पीञ्च ब्रिएडसीञ्चैव बोलनीया भिधां पुरीम् ।
फलोरेसं पुरं गत्वा जगाम क्रिश्चिया नियाम् ॥३॥

नार्वेऽभिधान देशस्य राजधानीञ्च तामयम् ।
रञ्जयामास विविधै रुपदेशैः सुधोपमैः ॥४॥

ट्राञ्जेमं स्वीडनं दृष्ट्वा रूस देशं विशेषतः ।
उपदेशै र्निजै र्धर्म्यैः नन्दयामास मानवान् ॥५॥

स्वीनमण्डे समायातः पोत मारूढ वांस्ततः ।
शार्मण्य शेखरी भूतां वर्लिनाख्यां पुरीं ततः ॥६॥

राजधानीं धनैराढ्यां गुणाढ्योऽसाव भूषयन् ।
चन्द्रमिवोदितं दृष्ट्वा भृशं मुमुदिरे जनाः ॥७॥

अर्थ—श्री ११०८ हिन्दू धर्म रक्षक महाप्रभु जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी साधु मण्डली समेत (साथ के सर्व उदासीन साधु) इटली, रोम नगर, नेपोली, नेपल्स, पम्पीं विण्डसी, बोलिनिया, पाडुवा वोनिस आदि २ नगर देश देखते हुए सबको धर्मोपदेश देते क्रिश्चियानिया जो नारवेकी राज्य धानी का नगर है आगे ट्राकजेम होते स्वीडेन रूसका मुल्क देखते स्वीन मण्डे जो जर्मन का बन्दर गाह है इसके आगे ८४ मील पर जर्मन देश की राज्यधानी का नगर धनशाली तथा गुण की खान बरलिन में आके विराजे ॥१-२-३-४-५-६-७॥

श्रुत्वा समागतं चन्द्रं कर्णा कर्णिकया मिथः ।
यै कृता भारती यात्रा ते जग्मुस्तं दिदृक्षवः ॥८॥
ब्रह्मण्या ब्रह्म वेत्तारः कर्मण्याः कर्म शिक्षकम् ।
शरण्याः शरणे साधुं शार्मण्या नेमुरुत्सुकाः ॥९॥

अर्थ—कानों कान श्री ११०८ जगद्गुरू श्रीचन्द्र भगवान् का आना सुन आय आय कर श्री महाराज का विलक्षण स्वरूप देख बड़े आश्चर्य में भर गये परन्तु जो जर्मनी भारतवर्ष (हिन्दुस्तान) की यात्रा कर गये थे उन्होंने कहा यह कोई भारतीय साधु महात्मा है चलो इनसे कुछ ब्रह्म विद्या तथा कर्म काण्ड के सम्बन्ध में वार्ता करें साधु महात्मा से बार्ता करने में कुछ गुण की ही प्राप्ति होती है ऐसा विचार सब श्री गुरू जी के शरण आय प्रणाम कर उत्सुकता पूर्वक आपको देखते हुए बैठ गये ॥८-९॥

मुहूर्तं नीरवं स्थित्वा वाग्मी वाक्य विदां वरम् ।
वेल्मसो वेदतत्वज्ञं वेद भेदांश्च पृष्टवान् ॥१०॥

अर्थ—मुहूर्त भर देखने के वाद वार्तालाप करने का विचार कर आये हुये जर्मनी लोगों में से एक जिसका नाम वेल्मस था जो बेदों के तत्व का ज्ञान रखता था अपने आप को बड़ा पण्डित मानता था बोला ॥१०॥

भगवन् ! वेद वेत्तासि भारतीयो भवान्यतः ।
ततस्त्वं पृच्छ्यस्ते भक्त्या सर्वं वक्तुमिहार्हसि ॥११॥

अर्थ हे भगवन् भारतीय हिन्दू लोग वेद के बड़े ज्ञाता होते हैं इसलिये मैं भक्ति पूर्वक आपसे पूछता हूँ कृपा करके सर्व भेद बताइये ॥११॥

कति वेदाः कथं वेदाः किन्नामानश्च ते पुनः ।
कति शाखाः प्रशाखाश्च किन्नाम्न्यो वा पृथक् पृथक् ॥१२॥

अर्थ—कितने वेद हैं वेद क्या चीज हैं उनके नाम कौन कौन हैं उनकी शाखा प्रशाखा कौन कौन हैं उन सब के नाम पृथक २ श्रवण कराइये ॥१२॥

कानिचाङ्गा न्युपाङ्गानि किन्नामानि च तान्यथ ।
उपयोगश्च कस्तेषां वेदे वेद विदां वर ॥१३॥

अर्थ—हे वेदों के विदाम्वर उन वेदों के अङ्ग उपाङ्गों के क्या नाम हैं तथा उनका उपयोग कैसे किया जाता है ॥१३॥

कति काः स्मृतयः सन्ति पुराणानि च कान्यथो ।
तासां तेषां सभेदानां नामानि च यथा क्रमम् ॥१४॥

अर्थ—स्मृति कितनी हैं पुराण कितने हैं उन सब का भेद तथा नाम यथा क्रम सहित सुनाईये ॥१४॥

संस्कृतं वाङ्मयं सर्वं समासेनोच्यतां विभो ।
इत्युक्त्वा विरामाऽसौ प्रश्नं प्रश्न विदां वरः ॥१५॥

अर्थ—संस्कृत का समस्त भेद समेत हे प्रभो उच्चारण करिये इस प्रकार का प्रश्न जब वेल्मस करता गया ॥१५॥

निशम्य सकलं प्रश्नं ज्ञात्वा च क्रमशस्तथा ।
श्रीचन्द्रो भगवान् धीरं गम्भीरां वाचमाददे ॥१६॥

अर्थ—सब प्रश्नों को सुन के क्रम सहित बताने वास्ते श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो बड़े धीर गम्भीर हैं बोलते भये ॥१६॥

श्रूयतामनु पूर्वेण संक्षेपेण न विस्तरात् ।
अनन्ताः खलु ते वेदाः वक्तुं शक्यं न कृत्स्नशः ॥१७॥

अर्थ— सुनिये मैं आपको सर्व भेद संक्षेप में श्रवण कराता हूं " अनन्ता वै वेदाः" यह उपनिषद् बताता है ॥१७॥

नोट—यह बात तो स्वयं वेद उपनिषद तथा स्मृतिओं में ही लिखी है "अनन्ता वैवेदाः" (श्रुति)। भगवान् राम के राज काल में वेद के मन्त्र भाग की ११८० शाखायें थीं ऐसा मुक्तिकोपनिषद् में हनुमान के प्रश्नोत्तर से ज्ञात होता है तथा शुक्र नीति अ० ४ लिखा है।

४४

ऋग्यजुः सामचाथर्वा वेदा आयु र्धनुः कृमात् ।
गांधर्वश्चैव तंत्राणि उपवेदाः प्रकीर्तिताः ॥२६७॥

अर्थ—ऋक्, यजु, साम, अथर्व, एचार वेद हैं आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और तन्त्र एचार उपवेद हैं। अधिकतया से तन्त्र का नाम उपवेदों में कम आता है इसके बजाय अर्थ वेद का नाम आता है ॥२६७॥

शिक्षा व्याकरणं कल्पो निरुक्तं ज्यौतिषं तथा ।
छन्दः षडंगानी मानि वेदानां कीर्तितानि हि ॥२६८॥

अर्थ—व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द ये छः वेद के अङ्ग हैं ॥२६८॥

नोट—ऋग्वेद का उपवेद अर्थ वेद है जिसमें विज्ञान कला कौशल कृषि वाणिज्य इत्यादि धन उपार्जन करने के साधन वर्णन हैं (Scinces of Mechanics and Technology) ऋग्वेद १-१-२३में बतलाया हैकि सब रोगों की औषधि पानी से हो सकती है जिसे जल चिकित्सा कहते हैं आगे इसी वेद के १-८-१०-११ में तार यंत्र का वर्णन है ऋग्वेद १-३-६-७ १-३-९-४ में नौका रथ और विमान का वर्णन आता है। यजुर्वेद २३-६२ में खगोल विद्या का वर्णन है, ऋग्वेद ८-२-१०-१ में पृथ्वी घूमती है ऐसा लिखा मिलता है। रावण जल, पवन, अग्नि को अपने वश में करके उनसे सब काम लेता था, पुष्पक विमान (हवाई जहाज Aeroplane) पास में था सेतु बांधने की कला राम चन्द्र के शिल्पी (Artist) नल नील जानते थे युधिष्ठिर का सभा भवन इस कला से निर्माण किया गया था कि जिसमें जल में स्थल और स्थल में जल दिखाई देताथा राजा पौंड्रक ने काठ का गरुड़ बना रखा था उसमें ऐसे यंत्र लगाये थे जहाँ चाहता था वहाँ उड़ के आता जाता था। चित्र रेखा तुरन्त मूर्ति (चित्र) बनाने में कुशल थीं इसी प्रकार आज के सभी चमत्कारी कार्य आगे थे किन्तु जब से हिन्दुओं में गृह कलह (आपस की फूट) ने आकर निवास किय तब से वैज्ञानिक शोध कार्य मन्द पड़ते पड़ते प्रायः लुप्त से हो गये उन्हीं को पाश्चात्य निवासी पूर्ण रूप से शोध के पुनः कार्य रूप में ले आये हैं हमारे वेदों में सब प्रकार की विद्या बीजरूप से विद्यमान है केवल पुरुषार्थ से अन्वेषण करने की आवश्यकता है।

(२) यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद जिसमें राजनीति शस्त्रास्त्र कला और युद्ध विद्या का वर्णन है (Military Sciences) (३) सामवेद का उपवेद गांधर्व वेद जिसमें सङ्गीत कला वर्णन है (Science of Music including dancing Dramatic) (४) अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद अर्थात् चिकित्सा शास्त्र (Sciences of Medicine surgery Hygene

Chemistry Physiology Anotomy etc.) इसके अतिरिक्त वेद के छः अङ्ग (१) शिक्षा Science of Phonetics and Orthoepy.) (२) कल्प जिसमें धर्म सूत्र अर्थात् प्रजा शासन सम्बन्धी नियम आदि हैं (Logic Metaphysics) (३) व्याकरण (Grammar) (४) निरुक्त (Philology and Lixicon) (५) छन्द (Prosody) (६) ज्योतिष (Astonomy)

जपहोमार्चनंयस्य देवता प्रीतदं भवेत् ।
उच्चारान्मन्त्र संज्ञंत द्विनि योगिच ब्राह्मणम् ॥२७२॥

अर्थ—जिसके उच्चारण से जप होम पूजन देवता को प्रसन्न करे उसको मन्त्र कहते हैं और जिसमें विनियोग हो उसे ब्राह्मण कहते हैं ॥२७२॥

ऋग्रूपायत्रये मन्त्राः पादशोर्धश्च शोपिवा ।
येषां हौत्रं सऋग्भागः समाख्यानं च यत्रवा ॥२७३॥

अर्थ—ऋग्वेद का जो मन्त्र है वह पाद हो चाहे आधी ऋचा हो जिनसे होता के करने का कर्म होता है अथवा जिसमें इतिहास हो वह ऋग्वेद है ॥२७३॥

प्रश्लिष्ट पठिता मन्त्रा वृत्त गीत विवर्जिताः ।
आध्वर्यवंयत्र कर्म त्रिगुणं यत्र पाठनम् ॥२७४॥

अर्थ—जो भिन्न २ मन्त्र भिन्न २ पढ़े जाते हों और जिनमें वृत्तान्त और गीत न हो अध्वर्यु का कर्म हो वह तिगुना पढ़ा जाय वह मन्त्र और ब्राह्मण रूप यजुर्वेद कहा है ॥२७४॥

मन्त्र ब्राह्मणयोरेव यजुर्वेदः स उच्यते ।
उद्गीथं यस्य शास्त्रादेर्यज्ञेतत्साम संज्ञकम् ॥२७५॥

अर्थ—जिसमें यज्ञ के बीच शास्त्रादिका ऊँचे स्वर से गान है उसको सामवेद कहते हैं ॥२७५॥

अथर्वां गिरसोनाम ह्युपास्यो पासनात्मकः ।
इति वेद चतुष्कंतु ह्युद्दिष्टं च समासतः ॥२७६॥ } शुक्र नीति अ० ४

अर्थ—जिसमें उपासना और पूजा के योग्य वर्णन कहा है वह अथर्व और अंगिरा, ये संक्षिप्त से चारों वेद कहे हैं ॥२७६॥

प्रथम एक ही वेद था इनके चार भेद वर्तमान के २८वें मन्वन्तर के द्वापर युग में महर्षि कृष्ण द्वैपायन (व्यास) द्वारा हुआ है।

अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते ह्यस्मिन् वै द्वापरे द्विजाः ।
पराशर सुतो व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽभवत् ॥
स एव सर्व वेदानां पुराणाम प्रदर्शकः । ⎫ कूर्म पुराण
पराशर्य्यो महायोगी कृष्ण द्वैपायनो हरीः ॥ ⎭ अध्याय ४९

अर्थ—अट्ठाइसवे द्वापर युगमें महा योगी साक्षात् हरिने पराशर मुनि के पुत्र कृष्ण द्वैपायन नाम से अवतार धारा था उन्हे वेद का विभाग करने से वेद व्यास कहा गया है। वेद की उत्पत्ति सृष्टि प्रारम्भ काल के समय में ही भारत में हुई है, जिस समय समुद्र-हिमालय से नीचे उतर रहा था उसी समय सृष्टि रचना काल में ईश्वर ने हिमालय में बैठ के वेद उच्चारण किया है, भागवत स्कन्ध ६ अ० १४ में लिखा है।

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्व वाङ्मयः ।
देवोनारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एवच ॥४८॥
पुरूरवस एवास्ति त्रयी त्रेता मुखे नृपः ।
अग्नि न प्रजया राजा लोक गांधर्व मेयिवान् ॥४९॥

अर्थ—हे राजन् पहिले सतयुग में सब प्रकार के वाक्यों का वीज भूत ओंकार ही एक मात्र वेद था नारायण ही अकेले देवता थे। अग्नि ही अकेला देवता, लौकिक वर्ण भी एक ही था। भिर त्रेता युग के आरम्भ में पुरूरवा से ३ वेद उत्पन्न हुये इसलिये इस युग में यह राजा अग्नि रूप प्रजा द्वारा गन्धर्व लोक को प्राप्त हुआ ॥४८-४९॥

कास्मीर के अन्तर्गत स्थान का नाम गन्धर्व लोक है जहाँ मनुष्य रहें वह लोक कहा जाता है, हिन्दुओं का सर्व प्रधान और सर्वमान्य धार्मिक ग्रन्थ वेद सब ग्रन्थों से आदिका माना जाता है, साधारण पुरुषों को भी यह ज्ञान है कि वेद चार हैं, और ब्रह्माके मुखसे निकले हैं, ब्रह्माकृत चार वेद कहने का मतलब यह है कि ब्रह्मा ने अपने चार मुख से वेद का उच्चारण किया है, इसकर चार वेद कहे जाते हैं, वास्तव में वेद एक ही है वेद का चार विभाग व्यास ने किया है दर्शन शास्त्र का सिद्धान्त है कि एक मन की वृत्ति दूसरे काम को नहीं कर सकती यदि चार वेद होते तो एक वृत्ति चारों के उच्चारण एक कालावच्छन्न में नहीं कर सकती एकही वेदको चार मुख से उच्चारण करना एक मनवृत्ति का काम है, इससे स्पष्ट है कि एकही मनकी वृत्ति से एक वेद को ब्रह्माजी ने अपने चार मुख से कहा है, सनातनधर्मी हिन्दू लोग तो वेदोंको नित्य अपौरषेय (किसी पुरुषकृत नहीं) मानते हैं।

ऋग्वेदस्यतु शाखास्स्युरेक विंशति संख्यकाः ।
नावाधिक शतंशाखा यजुषो मारुतात्मजः ॥१२॥
सहस्र संख्यया जाताः शाखा साम्नाः परंतपः । } मुक्ति को पनिषद्
अथर्वणस्य शाखाः स्यु पञ्चाशद्भेदतो हरे ।१३। }

यही बात कूर्मपुराण अध्याय ४६ तथा महाभाष्य पातञ्जलि और सूत संहिता में भी आती है एक एक शाखा का एक एक ब्राह्मण और एक एक उपनिषद् है।

एकैकस्यास्तु शाखाया एकैको पनिषन्मतः । } मुक्ति कोप निषद्

ऋग्वेद सब से पुराना है। इसमें दस विभाग हैं जिनको मण्डल कहते हैं। प्रत्येक मण्डल में बहुत से सूत्र और ऋचायें हैं। ये सूक्त छन्दों में लिखे गये हैं। २१ शाखा हैं, इसके ब्राह्मण भाग के दो नाम हैं आत्रेय और कौशकी **यजुर्वेद** में यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान तथा वर्णाश्रम धर्म भी आया है इसमें ४० अध्याय हैं १०१ साखा हैं इसमें दो भेद हैं १ शुक्ल २ कृष्ण, **सामवेद** में दो काण्ड हैं एक में ६ और दूसरे काण्ड में ६ कण्डिका हैं **अथर्ववेद** में २० काण्ड ७६० सूक्त हैं १००० साखा हैं। साम वेद के आठ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थ है। चारों वेद की एक लक्ष श्रुति हैं, जिसमें अस्सी हजार कर्म काण्ड १६००० उपासना ४००० ज्ञान काण्ड जो उपनिषदों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन सब उपनिषदों के नाम मुक्तिकोपनिषद अ० १ श्लोक ३० से ३९ तक में लिखे हैं। तथा (Paul Deussen the Philosophy of the Upanishads 117 पालड्योसन दि फिलोसफी ऑफ उपनिषद् पृष्ठ ११७ History of Indian Philosophy भारतीय तत्वज्ञान का इतिहास पृष्ठ ८७ प्र० सै० इस पुस्तक के लेखक ने उपनिषदों का निर्माण काल २३वीं शताब्दी लगाया है सो भूल है। वेदोंके तीन मुख्य भाग हैं, संहिता-ब्राह्मण और आरण्यक या उपनिषद् (३) संहिता भाग में स्तोत्र, प्रार्थना, मन्त्र, प्रयोग, आशीर्वादात्मक सूक्त यज्ञ विधि से सम्बन्ध रखने वाले मंत्र और अरिष्टादि की शान्ति के लिए प्रार्थना आती है, वेदों का यही अंश मन्त्र भाग भी कहा जाता है। शौनक मुनि अपने वृद्ध देवता नामक ग्रन्थ में सूक्त का लक्षण इस प्रकार करते हैं **"सम्पूर्ण मृषि वाक्यंतु सूक्त मित्यभि धीयते"** ऋषि का पूरा पूरा वाक्य (रचना) सूक्त कहा जाता है, इन बिखरे हुये परंपरागत मौखिक (कंठस्थ) सूक्तों को शाकल्य मुनिने एकत्रित कर १० मण्डल में विभक्त करके संहिता का रूप दिया। ऋचस्तूयते, धातु से ऋच शब्द बना है, जिसका शब्दार्थ स्तुति होता है उन ऋचाओं के संग्रह को ऋग्वेद कहते हैं। मण्डल का लक्षण शौनक मुनि इस प्रकार करते हैं। **"बहुना सूक्तां नाम कर्षि कर्तृक संग्रहो मण्डलम्"** अर्थात् एक ऋषि द्वारा बहुत से सूक्तों का संग्रह किया

जाय उसे मण्डल कहते हैं। ब्राह्मण भाग में एक प्रकार से बड़े बड़े गद्य ग्रन्थ आते हैं जिन में अनेक देवताओं की कथायें, यज्ञ सम्बन्धी विचार और भिन्न भिन्न ऋतुओं में होने वाले धार्मिक कृत्यों के व्यवहारिक तथा अध्यात्मिक महत्व का निरूपण है। आगे जब बड़े बड़े यज्ञादिकों के समय पर ऋषि मुनि उदासीन विद्वान् महात्मा लोग एकत्र होते थे तब अनेक गहन विषयों पर विचार हुआ करता था। अभी तक उदासीन साधुओं में यह चलन उपस्थित है कि जब कभी भण्डारे या तीर्थादि कुम्भ महापर्व के सुअवसर पर एकत्र होते हैं तब संसार के बिगड़े वायु मण्डल को स्वच्छ बनाने का विचार किया करते हैं, इस एकत्रता का नाम वर्तमान में सभा, सम्मेलन, कान्फ्रेंस, समागम आदि २ नाम से पुकारते हैं यज्ञ के भिन्न २ कृत्यों पर स्वतंत्र रीति अलग-अलग अध्यक्ष नियत किये जाते थे, उन अध्यक्ष का नाम ब्रह्मा होता था आज कल जिसको सभा पति, प्रेजीडेण्ट (President) कहते हैं यज्ञ कृत्यों में जब कोई विवाद उपस्थित होता था तब उसका फैसला ब्रह्मा करता था, आज भी सभासदों के विवाद का फैसला प्रधान (सभापति) करता है। जो ब्रह्मा निर्णय कर देता था वह फैसला सब को मान्य होता था, बहुत फैसले होने के कारण उन फैसलों को प्रथक ही रखा गया। ब्रह्मा के फैसले करने कर यह फैसले ब्राह्मण भाग कहाये यह वैदिक काल की रीति थी। बनों में रह कर उदासीन मुनि ऋषियों ने परमेश्वर जगत और मनुष्य इन तीनों के गहन सम्बन्ध का विचार कर कर के लिखा करते थे उस भाग को आरण्यक कहते हैं इसमें हिन्दुओं का तत्व ज्ञान भरा हुआ है।

ऋग्वेद के सूक्तों के ऊपर ऋषि छन्द और देवता लिखे रहते हैं। कात्यायन मुनिकृत सर्वानुक्रमणिका में इनका वर्णन अच्छी रीति से किया गया है। जिस सूक्त में जिस देवता की स्तुति है वही देवता उस मन्त्र का कहा जाता है ऐसे ३३ देवता मुख्य माने हैं।

इन वेदों पर हमने भाष्य किया है जो श्रीचन्द्र भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है वेद को हम हिन्दू लोग अनादि अपौरषेय मानते हैं इनका स्थान संसार की सभी धर्म पुस्तकों से ऊँचा है. वेद की उत्पत्ति सृष्टि उत्पत्ति काल से ही ईश्वर से हुई जो लोग वेदों को ईशा से ४-५ हजार वर्ष प्रथम का मानते हैं वह बड़ी भूल करते हैं वेद सर्व विद्या कला ज्ञान विज्ञान का भण्डार है संसार में जितने भी धर्मशास्त्र हैं सब का आधार स्थंभ वेद ही है और उदासीन भेष का उद्गम स्थान भी वेद ही है वेद में सब से प्रथम ॐ अक्षर आता है जिसको प्रणव उद्गीथ आदि भी कहते हैं इसी ॐ से उदासीन शब्द बना है तभी उदासीन मात्रा में लिखा है—"**ओं अं आदि उदासी आये**"

इसलिये वेद का पाठ करना, कण्ठ करना, पढ़ना तथा पढ़ाना वेद का प्रचार करना, वेदों की रक्षा करना वेद मार्ग पर सब को चलाना, वेदानुयायी सबको बनाना यह हम उदासीनों का जन्म सिद्ध अधिकार है

एवं सर्वस्य प्रश्नस्य सम्बंद्धंक्रमशास्फुटम् ।
श्रुत्वोत्तरञ्च शार्मण्याः तुष्टवुश्चन्द्रमद्भुतम् ॥१८॥

अर्थ—इस प्रकार सर्व प्रश्नों का क्रम बद्ध सम्बन्ध सहित उत्तर आये हुये लोग सुन कर सर्व जर्मनी तुष्ट हो गए ॥१८॥

धन्या ते जननी विद्वन् धन्यस्तातः स धार्मिकः ।
धन्या सा जन्म भूमिस्ते यस्यां जातो भवानयम् ॥१९॥

अर्थ—वे सब बोलते भये कि आप की माता तथा पिता धन्य हैं तथा आपकी जन्म भूमि भारत वर्ष भी धन्य है जहां पर आप ऐसे नर रत्न उदासीन महात्मा उत्पन्न हुये ॥१९॥

अथ तैः पूजितः सम्यक् शार्दूल गतिरद्भुतः ।
हंसैः साकं राज हंसो यथा शिष्यैस्ततोऽचलत् ॥२०॥

अर्थ—आपका दर्शन करके हम लोग कृतार्थ हुए ऐसा कहकर सब ने आपकी पूजा की तत्पश्चात् आप राज हंस तथा शार्दूल के सदृश अपने उदासीन साधु मण्डली सहित वहाँ से चलते भये ॥२०॥

आष्ट्रैलिया राज धानीं वियानामगमत्ततः ।
हंग्रीं दृष्ट्वा समारुह्य जलयानं चचाल सः ॥२१॥
डैन्यूवाख्यां नदीं तीर्त्वा बूडा पेष्टं पुरं गतः ।
वेलग्रेडं वल गेरियां टर्कीं पश्यञ्छनैः शनैः ॥२२॥

अर्थ—आगे आस्ट्रेलिया की राजधानी वियाना नगर होते हन्गरी को जहाज द्वारा डैन्यूब नदी दृश्य देखते बूडापेस्ट नगर आप यह नगर नदी के दोनों कूलों पर बसा है आगे वेलग्रेड होते बल गेरिया देख टर्की की राजधानी कुस्तुन्तुनियां में आए ॥२१-२२॥

कुशतुन्तुनियामायात् कुर्वंश्चित्राः कथाः पथि ।
पुर्यां तस्याश्च घोरायामासीद्यवन शासकः ॥२३॥
महात्मानं समायातं श्रुत्वा त्वरितमादिशत् ।
भृत्येन् विज्ञायतां कोऽसौ यवनोवाऽपरोयतिः ॥२४॥

अर्थ—यहां मुसल्मानी जोर अधिक था यहा के मुसल्मान शासक ने जब सुना कि हमारे नगर में एक हिन्दू फकीर आया है ॥२३-॥२४॥

यदि कश्चिद्भवेदन्यः तत्क्षणाद्धि निहन्यताम् ।
यवनी क्रियतां यद्वा वध्वा वा ऽऽनीयतामितः ॥२५॥

अर्थ—उस बादशाह ने कहला भेजा कि यदि वह हिन्दू फकीर दीन इस्लाम कबूल करले तो छोड़देना नहीं तो बाँध लाना या मार डालना ॥२५॥

तैर्गत्वा तस्य वाक्यानि श्रावितानि यथातथम् ।
तच्छ्रुत्वा भगवानाह यथेच्छं क्रियतां खलु ॥२६॥

अर्थ—तब उन नौकरों ने आकर बादशाह ने जैसा कहा था वैसाश्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को सुनादिया उसे सुन कर श्री गुरु जी बोले सब को अपना अपना धर्म प्यारा है तुम्हारी या तुम्हारे हाकिम की क्या शक्ति है जो हमारा धर्म छुड़ा सके, जैसा तुम्हारी इच्छा कर सकते हो ॥२६॥

ततो मत्तगजं चन्द्रं हन्तुं ते प्रेरयन् खलाः ।
स करेण समुत्थाप्य पृष्ठमारोपयत्स्वकम् ॥२७॥

अर्थ—यह बात सुनकर उन लोगों ने श्री गुरु देव को मारने के इरादे से उनके आगे मस्त खूनी हाथी छोड़ दिया वह हाथी महाराज को मारने के अतिरिक्त अपनी सूण्ड से उठाकर अपनी पीठ पर चढ़ा लेता भया ॥२७॥

तद् दृष्ट्वा चकिता म्लेच्छा गत्वा राज्ञे न्यवेदयन् ।
स आह मज्यतामप्सु गले वध्वा दृढां शिलाम् ॥२८॥

अर्थ—यह देख कर सब मुसलमान चकित हो बादशाह के पास जाकर कहते भये राजा बोला कि उसे पत्थर से बाँध कर जल में डुबा दो ॥२८॥

तथा कृतेऽपि चन्द्रोऽसौ नौकाया मिव संस्थितः ।
शिलायामुपविष्टो हि ततारादुभुत विक्रमः ॥२९॥

अर्थ—नौकरों ने ऐसा ही किया परन्तु वह बड़ा पत्थर डूबने की जगह नौका के समान पानी पर तैरने लगा जिसके ऊपर श्री गुरु श्रीचन्द्र महाराज स्थित थे यह अद्भुत विक्रम चमत्कार देखकर समस्त नगर में हलचल मच गई कि हिन्दू फकीर औलिया आया है ॥२९॥

समागत्य स क्रोधात्मा वध्वा श्री गुरु सुन्दरम् ।
ऊर्द्ध हस्त क्रिया सर्वे ऊर्ध्वं हस्त स तिष्ठते ॥३०॥

अर्थ—यह बात सुन कर वहां का बादशाह अपने अमात्यों सहित क्रोध में भर श्री ११०८ जगद्कुरु श्रीचन्द्र भगवान् को पकड़ने के निमित्त ऊपर को हाथ उठाता भया उसका हाथ ऊपर ही खड़ा रह गया ॥३०॥

विलोक्य विस्मया सर्वे काजी मुल्ला ससैनकः ।
त्राहि त्राहि गुरु रक्षं दीनानाथ दयालवः ॥३१॥

अर्थ—यह देख कर सब के सब आश्चर्य में भर काजी मुल्ला और सेना समेत त्राहि त्राहि करते हुये बोले हे पीर शाइं गुरु जी रक्षा करो आप दीनानाथ दयालु हैं ॥३१॥

प्रणम्य सकला दीना ययाचे तं क्षमा नराः ।
सद्गुरु कृपया दृष्ट्वा पूर्ववत् बाहु आगता ॥३२॥

अर्थ—ऐसा कह सब बड़े आधीन हो प्रणाम कर क्षमा माँगते कहते भये कि यह फकीर खुदा का रूप है साधारण बन्दा नहीं है तब सद्गुरु जी की कृपा दृष्टि से उसकी बाँह पूर्ववत् नीचे आगई ॥३२॥

तन्निशम्य सहामात्यः यवनाधिपतिः स्वयम् ।
समागत्य प्रणम्याऽथ ययाचे तां क्षमा पुनः ॥३३॥

अर्थ—यह देख बादशाह मन्त्री मुल्ला काजी सहित श्री गुरुदेव को बड़े नम्र भाव से हाथ जोड़ प्रणामकर क्षमा माँग अपने गृह जाता भया ॥३३॥

ततः सम्पूजितस्तेन ययौ शिष्यान्वितः कृती ।
एथेन्सं मिलनं चीनं जापानं तिब्बतं शनैः ॥३४॥

अर्थ—उन लोगों से पूजित हो श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी उदासीन साधु मण्डली सहित वहाँ से चलकर एथंस, मिलन चीन, जापान, तिब्बत भूटान होते ॥३४॥

वाणाकाश रसेन्दौच वैक्रमे विशदे शुचौ ।
एकादश्यां सोमवारे गङ्गावतरणं गतः ॥३५॥

अर्थ—वि० सं० १६०५ जेष्ठ मासकी शुक्ला ११ (निर्जला) सोमवार को गङ्गोत्री आते भये जहांसे श्री गंगा महारानी का अवतरण हुआ है मार्ग में सर्व स्थलों में धर्मोन्नति जाति एकता का प्रचार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का होता रहा ॥३५॥

नोट—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के उपदेश कई भाषाओं में मिले हैं

उनका अनुवाद बड़े परिश्रम के साथ यथावत् संस्कृत तथा हिन्दी में कराके पाठकों के लाभार्थ उपस्थित किया गया है।

॥ समभ्कानी ॥

समस्त भूम्यां भ्रमणं विधाय देशे विदेशे च तथा कुदेशे।
धर्म प्रचारः क्रियते महद्भिः सनातनो वैदिकमार्ग एषः ॥३६॥
यद्यप्यनेकेच निषेधवाक्यैर्विदेश यात्रात्वति खण्डिताच।
तथापि योग्यं नमतं तदीयं केचितुमतं चेति वदन्ति सन्तः ॥३७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की विदेश यात्रा पढ़कर कोई यह सन्देह न करे कि प्रथम हिन्दू लोग भारत से बाहर न जाते थे, विदेश यात्रा का निषेध है, विदेश यात्रा तो अब अंग्रेजी राज्य में प्रसिद्ध हुई है हमारे पूर्वज विदेश आते जाते व्यापार और धर्म प्रचार के साथ साथ विवाहादिक सम्बन्ध भी करते थे कारण प्रथम सब हिन्दू ही थे अन्य कोई जाति नहीं थी, देखो महाभारत—

वणिग्यथा समुद्राद्वै यथार्थं लभते धनम् (शान्ति पर्व)
निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे विपन्ननावो वणि जो यथार्णवात्
उद्धिरेनौभि रिवार्णवाद्रथैः सुकल्पितै र्दौपि दिजाः स्वमातुलान् } कर्ण पर्व

अर्थ—इसी प्रकार कई स्थल में विदेश जाने आने का प्रकरण महाभारत में आता है, धीरे धीरे क्रिया लोप होने से जाति और कर्म बदल गये, महाभारत के युद्ध में सभी देशके योद्धा सम्मिलित थे जो सभी हिन्दू थे। रघुवंश सर्ग ४ श्लोक ६० में महाराज रघु के फारस जाने का प्रसङ्ग आता है।

भारत से हिन्दुओं की पहिली शाखा जो यूरुप में गई उसीसे केल्ट, ट्यूटन, स्लाव, इटालिक तथा ग्रीक नामक पाँच जातियां बन गईं अरब और फारस के इतिहास पर मनन करने से पता लगता है कि वहाँ भारत से हिन्दू (आर्य) लोग जाकर बसे हैं। पारसियों की धर्म पुस्तक "अवस्ता" में फारसी, ग्रीक, रोमन, जर्मन आदि जातियों को आर्य हिन्दू जातिके वंशज भारतवर्ष से जाकर उन देशों में बसना स्वीकार किया है।

इस बातको कोई इतिहासकार अस्वीकार नहीं कर सकता कि भारतीय क्षत्रीवंश (सूर्यवंश, चन्द्रवंश, असुरवंश, नागवंश) नामक चार वंश प्रतापी राजकुल हिन्दू हुये इनसे पीछे कई वंश बने जिसमें असुर वंश का प्रतापी राजा बलि इसी भारतवर्ष से निकलकर असीरिया (पाताल) में पहुँचा और वहाँ से उसके वंशज अमेरिका जा पहुँचे, चन्द्रवंशी उसीनर नृप के बड़े पुत्र सुबीर ने (हवीरी वल्क हिरात) देशकी स्थापना की उसीनर का पुत्र मद्र था

जिसने गोर और गजनी के बीच मद्र राज्य स्थापन किया जिसके वंशकी पुत्री माद्री थी जो राजा पाण्डु को ब्याही गई थी। इस तरह ईरान राज्यवंश का आरम्भ उसीनर राजा से हुआ कंधार संस्थापक गांधार राजकुमार ययाति के वंशका था हैहयवंशी तालजंघ ने तूरान और चीन में आर्यवंश की वृद्धि की।

भारत पर आक्रमण करने वाले शीदियों की उत्पत्ति भारत के नाग बंश हिन्दुओं में से है। जब भारतीय दल उत्तर को बढ़ने और वहाँ के निवासियों पर विजय पाने लगे तब पारस असीरिया आदिक देश में हिन्दू लोग बस गये और यही लोग केल्ट, स्लाव ट्यूटनादि बन कर यूरुप में गये इन्हीं के वंशज वेल्स आइरिस, पोल, रूसी, सर्वियन, जर्मन आदि कहाने लगे। मिश्रदेश ब्राह्मणों का था। जिस का प्रमाण अभी तक भारतवर्ष में मिश्र ब्राह्मण उपस्थित हैं।

श्रीचन्द्र मण्डित जटातट निर्गतायां,
हैमाचलस्थल विस्संखलनाञ्चितायाम्।
मुक्ताच्छ वारिकण वीचि विरोचितायां,
सस्नौ स चन्द्र भगवान् सुर निम्नागायाम् ॥३८॥

अर्थ—भगवान् शङ्कर जिनके भाल में चन्द्रमा विराजमान हो रहा है तथा सिर पर जटा सुशोभित हैं उसी जटा से निकली हुई श्री गङ्गा जी हिमालय पर्वत से गिरती हैं जिनके जल के विन्दु मोती के समान चमक रहे हैं उसी के किनारे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज विराजमान शोभा पा रहे हैं॥ ३८॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमदुदासीनवर्य्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डि-देव गुरु चरणकमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसेजर्म नदेशे वेदोपदेश कुस्तुनतुनिया चीन जापान तिब्बतादि में उपदेश विदेशयात्रावरणन, समुम्प्रानी आदि २ प्रकरण सकल कलि कल्मषनाशिनी षट्विंशति किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२६॥

॥ सप्तविन्शति किरण प्रारम्भः ॥

गङ्गा वताराद् यमुनावतारं केदार नाथं बदरीश्वरञ्च।
सर्वाणि तीर्थानि विधायचन्द्रः बभ्राम भूमौ गिरीशावतारः ॥१॥

अर्थ—श्री गङ्गा यमुना का अवतार तथा श्री केदारनाथ बद्रीनाथ जी तथा सर्व तीर्थों का स्वरूप श्री शङ्कर जी स्वयं आकर श्री१९०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के नाम से भूमि में भ्रमण कर रहे हैं ॥१॥

भगीरथस्य भूपस्य तपः कल्पलता शुभा ।
पुण्या भागीरथी गङ्गा पुनाति भुवन त्रयम् ॥२॥

अर्थ—राजा भगीरथ के तप की शुभ कल्प लता श्री पुण्य सलिला भागीरथी गङ्गा जी तीनों भुवन को पवित्र करने वाली हैं ॥२॥

विष्णोः पादोदकं पूर्वं त्रिविक्रम तनो र्विभोः ।
कमला सनदेवस्य कमण्डलु जलं पुनः ॥३॥

अर्थ—पूर्व में विष्णु के चरण कमलों से प्रादुर्भाव हुआ है जिनका वामन भगवान् के विराट रूप धारण करने पर श्री कमलासन ब्रह्मा जी ने अपने कमण्डल के जल से वामन भगवान् का चरण धोया उसी पवित्र जल को श्री शंकर भगवान् ने अपने मस्तक के ऊपर जटा जूट में धारण किया वही पवित्र जल श्री गंगा जी के नाम से पृथ्वी पर आके विचरता प्रवाहित हुआ ॥३॥

चन्द्रचूड जटा जूटाऽटवी विपिन देवता ।
शैल राज शिला संघः संस्तवाऽच्छपयोधरा ॥४॥

अर्थ—भगवान् शङ्कर के जटा जूट रूपी वन से विचरण करती हुई श्री गंगा जी आगे चल शैलराज हिमालय के नीचे प्रवाहित होती भई जैसे गऊ के स्तन से दुग्ध की धारा चलती है ॥४॥

जन्हो राचमनी भूता, श्रुति पूता सुरैः स्तुता ।
जान्हवी जन्हु कन्येयं पावयन्ति महीतलम् ॥५॥

अर्थ—जिन पवित्र सुरों से स्तुत्य श्री गंगा जी को आगे चलके जन्हु मुनि ने एक आचमन में पान कर लिया पुनः निकाल देने से गंगा जी का नाम जान्हवी (जन्हु की कन्या) जो पृथ्वी (भारतवर्ष) तल को पवित्र कर रही हैं ॥५॥

देव प्रयाग देवीयं टिहरी हरिणी शुभा ।
रुद्र प्रयाग रामा च हृषीकेश विशेषिणी ॥६॥

हरिद्वार हरिद्वारे प्रतीहारी मनोहरा ।
कर्ण पूरी कृता स्वैरं कर्ण पूरेण चारुणा ॥७॥
प्रयागेण प्रयागेण तीर्थ राजेन पूजिता ।
कालिन्द्या लिङ्गनामन्दा नन्द सन्दोह मोहिता ॥८॥
सरस्वत्या सरस्वत्या रसवत्या रसान्विता ।
कालिन्द्या लिङ्गितै वेयं गूढ़ं पादाभि वन्दिता ॥६॥
अर्द्ध चन्द्रा कृतिं काशीं काशयंती स्वयं तथा ।
विश्नाथं वीक्षमाणा कटाक्षैर्वक्र वीचिभिः ॥१०॥
सुपुत्रं पाटली पुत्रं लालयन्ति मुदान्विता ।
आश्लिषा वाहुभि र्गाढं कान्तां कालिकतां सखीम् ॥११॥
कापिल तल संप्लुष्टान् सागरान् सुर निम्नगा ।
क्रोडी कृत्य समाश्वास्य प्रेषयित्वाऽमरा वतीम् ॥१२॥

अर्थ—श्री गंगा जी गंगोत्री से चल टिहरी रुद्र प्रयाग, देव प्रयाग, ऋषीकेश, हरिद्वार, कानपुर, प्रयाग राज से आगे काशी में अर्ध चन्द्राकार वहती हुई श्री विश्वनाथ जी की नगरी से होती पटना कलकत्ता से आगे बंगाल सागर में जाके मिल जाती है जहाँ पर कपिलदेव जी उदासीन का स्थान है उसे गंगा सागर कहते हैं ॥६-७-८-९-१०-११-१२॥

दयिता दयि तस्याथ सरसा च सरस्वतः ।
स्वैरं निलीयते गङ्गा हृदये हृदये शितुः ॥१३॥

अर्थ—श्री गंगा जी सब की दुख दरिद्रता तथा पापों का नाश करती हुई हृदय को शीतल और पवित्र करती हैं ॥१३॥

गङ्गावतरणां दृष्ट्वा हृष्ट चितस्तदुत्तरम् ।
उत्तरां काशिकां यातः यमुनावतरं ततः ॥१४॥
देवप्रयागमायातः भीलेश्वर मतः परम् ।
कूर्माञ्चलिं गढ़वालं लोकमानः शनैः शनैः ॥१५॥

दृष्ट्वा श्रीनगरं रम्यं श्रीचन्द्रो मुमुदे भृशम् ।
रुद्र प्रयागमागत्य केदारनाथ मुत्सुकम् ॥१६॥

बाणाकाश रसेन्दौ च वैक्रमेऽब्दे शुचौ शिते ।
पूर्णिमा याञ्चन्द्रवारे चन्द्रदेवः समागतः ॥१७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् गंगोत्री से चल उत्तर काशी यमनोत्री देवप्रयाग भीलेश्वर श्री नगर जो गढ़वाल की राजधानी का नगर है उसे देखते रुद्र प्रयाग से आगे श्री केदार नाथ जी का दर्शन वि० सं० १६०५ आषाढ़ शुदी १५ सोमवार को आकर किया ॥१४-१५-१६-१७॥

अथ केदार नाथश्च ज्ञात्वा चन्द्रं समागतम् ।
सम्भावनाय भूतेशं स्वावतारं समुत्थितः ॥१८॥

स्वागतन्ते महाभाग धन्योऽसि कृतिमानसि ।
लोक कल्याण सम्पत्यै मयारूप मिदं धृतम् ॥१९॥

अर्थ—श्री केदार नाथ जी ने अपना स्वरूप श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी को आया देखकर उनका स्वागत किया और कहा कि हे महाभाग आज आपने अपने दर्शन देकर हमको कृतार्थ किया आपने संसार का बहुत भला किया है और अभी आगे भी करना है इस समय शान्ति से उपदेश देने की बड़ी आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति के लिये ही हम नें अपना स्वरूप आपका धारण किया है। १८--१९॥

कृतवान् भूरिकार्याणि कर्तासि परतोऽपि च ।
प्रवर्त्यन्तां मङ्गलानि लोकानां हित काम्यया ॥२०॥

अर्थ—अब आप अपने ध्येय में कृत कार्य होवें और लोगों को शुभ कर्म में प्रवृत्त करें आपकी इच्छा तो सदैव ही लोगों की हित कामना में रहा करती है॥ २०॥

त्वयि सम्पूजिते लोकैः प्रसीदामि तमामहम् ।
सत्कृत्यानेक शस्तेन विसृष्टो व्यचलत्ततः ॥२१॥

अर्थ—इस घोर कलियुग में आपको पूजा करना हमारी ही पूजा करना है जो हमारी पूजा करता है वह आपकी पूजा करता है तथा जो आपकी पूजा करता है वह हमारी पूजा करता है ऐसा करने वाला सुखी हो अन्त में हमारे धाम में आकर निवास करेगा तथा जो

अपनी मन्द बुद्धि से आप से द्वेष करेगा वह नरकों में पड़ा २ सड़ता हुआ यम की मार खायेगा। यह हमारा सत्य वचन है ॥ २१ ॥

लोकयन्शैललालित्यं विविधं विधुशेखरः।
सलीलं शिष्य संयुक्तः ऊखामठमथाऽऽद्र सः ॥२२॥

उत्तुङ्गं तुङ्ग नाथञ्च प्रणम्यामि ति विक्रमः।
ज्योतिर्मठं समायातः ज्योतिषा हासयन् दिशः ॥२३॥

अर्थ—इस प्रकार श्री केदारनाथ* जी का दर्शन कर अपनी शिष्य मण्डली सहित श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वहाँ से चल ऊषा मठ, तुङ्गनाथ, जोशीमठ, होते श्री बदरी नाथ जी आते भये ॥ २२ ॥ २३ ॥

वाणाकाशरसेन्दौ च वैक्रमे श्रावणेऽसिते।
वदरीशं दिदृक्षुश्च द्वादश्यां भौम वासरे, ॥२४॥

अर्थ—वि० सं० १६०५ श्रावण कृष्ण १२ भौमवार को श्री बद्रीनाथ जी का दर्शन किया ॥२४॥

नरनारायणाभ्याञ्च पदमुद्रा विमुद्रितम्।
वदरीवन मासीनं वदरीनाथ मा गमत् ॥२५॥

---

* श्री केदारनाथ जो द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक ज्योतिर्लिङ्ग हैं द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों के नाम शिव पुराण ८ वां खण्ड अध्याय १ में इस प्रकार आते हैं।

"सौराष्ट्रे सोमनाथञ्च श्री शैले मल्लिकार्जुनम्
उज्जयिन्यां महाकाल मोंकार ममलेश्वरम्
परल्यां वैजनाथञ्च डाकिन्यां भीम शङ्करम्
सेतु बन्धेतु रामेशं नागेशं दारका वने
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे
हिमालयेतु केदारं घुसृणेशं शिवालये

अर्थ (१) सौराष्ट्र देश में सोमनाथ, (२) श्री शैलपर मल्लिकार्जुन, (३) उज्जैन में महाकालेश्वर, (४) ऊँकार में अमलेश्वर, (५) पूर्व में वैद्य नाथ, (६) डाकनी तीर्थ में भीम शंकर (७) दक्षिण में सेतु बन्ध रामेश्वर (८) दारुकवन में नागेश (९) काशी में विश्वनाथ (१०) गोदावरी में त्र्यम्बकेश्वर (११) हिमालय मे केदारनाथ, (१२) घुसृणेश्वर।

अर्थ—श्री बद्रीनाथ जी नर नारायण पहाड़ में स्थित हैं यहीं पर श्री नर नारायण जी ने तपस्या की थी यह श्री बद्री बन के नाम से शास्त्रों में प्रसिद्ध है ॥२॥

नारदं नारदं कुण्डं नलिनीषण्ड मण्डितम् ।
दृष्ट्वा स्नात्वा तथाचम्य श्रीचन्द्रो सुमुदेतराम् ॥२६॥
सुतसं तप्त कुण्डश्च तुषार शैलमध्यगम् ।
स्नानमा चमनं कृत्वा परं विस्मयमध्यगात् ॥२७॥

अर्थ—नारद कुण्ड, तप्तकुण्ड आदि सर्वकुण्डों में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् आनन्दित मन से स्नान करते भये वहाँ के पवित्र शिखर वर्फ से आच्छादित स्वच्छ चाँदी के समान चमक रहे हैं ॥२६-२७॥

समष्टि भोजनं तत्र श्रीचन्द्रोऽकारयत् सुधीः ।
षड्भी रसैः सर्व लोका स्तृप्ता उचुर्जयेतिते ॥२८॥

अर्थ—यहां पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने समष्टि अटूट भण्डारा दिया जिसमें षटरस भोजन बना था जिसे खाकर सब लोग तृप्त हो गये और श्रीगुरु जी की जय जय कार करने लगे ॥२८॥

नाना विधैश्च शास्त्रार्थैः कथा भिरभि रञ्जिताः ।
जिताश्च पण्डिताः सर्वे धन्यो धन्य जयोजयः ॥२९॥

अर्थ—अनेक विद्वानों से नाना प्रकार के शास्त्रार्थ हुये और अपनी मनोहर कथा से सब का मन मुग्ध करते हुए सब पण्डितों को जीत लिया तब लोगों ने कहा आप धन्य हैं धन्य हैं आप की जाय हो जय हो ॥२९॥

विप्रश्च नारायण दत्त शर्मा प्रश्नं विशालं कथयञ्चकार ।
भवे चवद्धः सुकृती च मुक्तो लोके कथंस्यात् तदुपाय धारा ॥३०
प्रकाश्यता मेष सुवैदिकश्च त्वामंतरा नैवहिकोपि वक्ता ।
एनेन लोकाः सुखिनो भवेयुः गुप्तातिगुप्तं सुरहस्यमस्ति ॥३१॥

अर्थ—एक दिन पण्डों का पुरोहित पं० नारायण दत्त जो अपने को बड़ा विद्वान (पण्डित) मानता था साथ में दश पन्द्रह ब्राह्मणों को ले महाराज के पास आय नम्र भाव से हाथ जोड़ विनती पूर्वक पूछता भया कि कृपा करके यह बताइये कि इस पृथ्वी में कौन कर्म के

करने से मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा कौन कर्मों के करने से नरक मिलता है। मृतक होकर शरीर को मृतिका के समान त्याग परलोक जाते समय कौन इसके साथ जाता है। आपका ऐसा वक्ता और कोई मेरी दृष्टि में नहीं आता, इसलिये आप कृपा करके वह गुप्त से गुप्त रहस्य का भेद समुझाने का कष्ट उठायें जब ऐसा प्रश्न प्रोहित नारायणदत्त ने किया तब श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोलते भये ॥३०-३१॥

जीवस्तु माया वशगा कदाचित् धर्मोपदेशाद्विमुखः कदाचित् ।
इतस्ततो धावति वानरेण तुल्यस्सदा चञ्चल वृत्ति धारी ॥३२॥

अर्थ—श्री ११०८ महाप्रभु श्रीचन्द्र भगवान् कहते हैं हे प्रोहित जी आप सब जानते हैं किन्तु औरों को श्रवण कराने वास्ते परम पवित्र प्रसंग पूछा है, यह जीव अकेला ही जन्मता और अकेला ही मरता है, अकेला ही आपत्तियों से मुक्त होता और अकेला ही दुर्गति को प्राप्त कर भोगता है, माता, पिता, भाई, ज्ञाति, कुटुम्ब, नातेदार कोई इसके साथी नहीं बनते सब इस मृतक शरीर को काष्ठ मिट्टी की न्यांई त्यागदोचार घड़ी रो पीट चले जाते हैं, शरीर त्यागने वाले के साथ केवल धर्म और अधर्म ही जाता है, धर्मी पुरुष स्वर्ग में सुख अधर्मी नरक में कष्ट पाते हैं ॥३२॥

वर्णाश्रमाचार कथानुराग हिन्दुप्रसेवाभिरतो जदैव ।
धर्मोन्मुखः कर्ममुखः कलावान् उपासकानांविदुषां वरिष्ठः ॥३३॥
शुद्धे सदाचार पथे प्रलग्नः हिन्दूपदेष्टा परिरक्षकश्च ।
भ्रांत्वा चदेशं सकलं प्रसिद्धं धर्म प्रचारं कुरुते यथेच्छम् ॥३४॥
समाधि निष्ठौ विजेतेन्द्रियश्च श्रौते ह्युदासीन पथे प्रसक्तः ।
स्वप्नंनस पश्यत नारकीयं वदन्ति वेदाश्च तथा निबंधाः ॥३५॥

अर्थ—जो जन्म से लेकर समस्त आयु दृढ़ता पूर्वक अपने हिन्दूधर्म का ही सेवन करता है वह पुरुष उस धर्म के प्रताप से शुद्ध हो श्रौत उदासीन महात्मा के बताये मार्गपर चलता हुआ सदैव स्वर्ग में सुख भोगता है; वह कभी स्वप्न में भी नरक का मुख नहीं देखता और जो अपना हिंदूधर्म त्याग अधर्म परायण हो विषया लम्पट बन जाता है वह मर के यमराज के द्वारा दण्डपाय नरक भोग कर्मवसात् अनेक योनियों में भ्रमण करता दुःख पाता है ॥३३।३४।३५॥

कर्मानुकूलं नरकञ्च यस्य यदस्ति तत् श्री गुरु राजगाद ।
वेदे प्रसिद्धं च पुराण निष्ठ मजीगणात् श्री गुरु चन्द्र देवः ॥३६

अर्थ—मोह से संयुक्त यह जीव इस लोक में जिस जिस कर्म द्वारा जिस जिस योनि में उत्पन्न होता है उसको मुझसे सुनो चार वेद को पढ़कर मोह से संयुक्त ब्राह्मण पतित दान लेने से मृत्यु के पीछे गधे की योनि पाता है, गधे से फिर बैल होता है, बैल के बाद ब्रह्मराक्षस की योनिमें जा पुनः ब्राह्मण की योनि प्राप्त करता है। जो शिष्य अपने मन की प्रेरणा से अधर्मी हो गुरु की भार्या का संभोग करता है वह मर के बड़े भयानक शरीर (कुत्ता कृमि आदि योनियों) को पाता है। जो पुत्र माता पिता और गुरु की अप्रतिष्ठा करता है वह मृत्यु के पीछे प्रथम गधा हो पुनः कुम्भीपाक नरक में एक वर्ष रह फिर मनुष्य देह में नीच योनि में जन्म लेता है जो प्राणी जिस मालिक का अन्न खावे और उसी के साथ शत्रुता या विश्वास घात करे वह मरके बन्दर की देह को पाता है पीछे चूहा पुनः कुत्ता शरीर पाय फिर मनुष्य शरीर पाता है, किसी की धरोहर हजम करने वाला हजार जन्म कृमियों का पाता है दूसरे के गुण में दूषण लगाने वाला मरके शारंग (पपीहा) पक्षी होता है विश्वासघाती मछली का जन्म लेकर आठ वर्ष पीछे मृगा फिर छाग (बकरी) पुनः कीट के बाद कहीं मनुष्य जन्म पाता है, पराई स्त्री से भोग करने वाला, भेड़िया, कुत्ता, सियार गिद्ध, व्याल, और बकुला होता है। जो प्राणी विवाह यज्ञ और दान में विघ्न पाता है वह कृमि होता है जो मनुष्य देव कार्य पितृ कार्य आये अतिथ साधु को भोजन न देकर आप भोजन करता है वह काक योनि में १००० वर्ष रह फिर मुर्गे की पुनः सर्प की योनि पाता है। भोजन चुरानें वाला मक्खी का शरीर पाता है हे पुरोहित जी प्रत्येक पाप कर्मी को मर के तिर्यक योनि में जन्म लेना पड़ता है कई जन्मान्तर के पीछे वह मनुष्य शरीर पाते हैं वह भी नीच जाति में। इसलिये पाप कर्मों से बच के अपने हिन्दू धर्म की रक्षा करना चाहिये ॥३६॥

परद्रव्येस्वभिध्यानं मनसानिष्ट चिन्तनम्।
वितताभि निवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥३७॥

अर्थ—अन्याय से पराया धन हरण करने की चिन्ता करनी मन से दूसरे का अनिष्ट चिन्तन करना परलोक को मिथ्या जानना ए तीन प्रकार के मानसिक मन्द कर्म हैं ॥३७॥

पारुष्य मनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असंवद्ध प्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥३८॥

अर्थ—कठोर बोलना, झूठ बोलना, परोक्षमें दूसरे को द्वेषी ठहिराना बिना प्रयोजन सब की बातें बकते फिरना ए चार प्रकार के वाचिक मन्द कर्म हैं ॥३८॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवा विधानतः।
परदारोप सेवा च शारीरं त्रविधं स्मृतम् ॥३९॥

अर्थ—अन्य का धन हरण करना अबोध की हिंसाकरना, पर स्त्री से संगम ए तीन प्रकार के शारीरिक मन्द कर्म हैं ॥३९॥

मानसंमनसैवाय मुप भुंक्ते शुभाशुभम् ।
वाचा वाचाकृतं कर्म कायेनैव च कायकम् ॥४०॥

अर्थ—मनुष्य मानसिक शुभाशुभ को मनसे वाचक को बचन से और शारीरिक कर्म को शरीर से भोगता है ॥४०॥

शरीर जैः कर्मदोषै र्यातिस्थावर तान्नरः ।
वाचकैः पक्षिमगताम्मानसैरन्त्य जातिताम् ॥४१॥

अर्थ—शरीर से पाप करनेवाला स्थावर होता है, वाणी से पाप करने वाला पशु पक्षियों की योनि पाता है, मनसे पाप करनेवाला चाण्डाल, गुरुपत्नि से भोग करनेवाला लंगड़ा, ब्रह्म हत्यारा स्वेत कुष्टी, चुगलखोर का मुँह सड़ जाता है, धान्य चुरानेवाला अंगहीन, अन्य की वस्तु को अन्य में मिलानेवाला अधिक अंग, अन्न चुराने वाले को मन्दाग्नि का रोग, बचन चुरानेवाला गूंगा, घोड़ा चुरानेवाला लंगड़ा, दीपक चुरानेवाला अन्धा, दीपक बुझानेवाला काना हिंसा करने या कराने वाला अनेक रोग युक्त, पर स्त्री गामी क्लीव होता है। हे पुरोहित जी ये जो हमने आपको शरीरों के रोगादि की अवस्था बताई है वह सब पाप करने वाले पापी घोर नरकों की यातना भोग पुनः उपरोक्त बताये शरीरों में जाके रोगी हुआ करते हैं ॥४१॥

प्रश्न—नरक कितने हैं।

उत्तर—तामिस्रोंधतामिस्रो रौरवो महा रौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकर मुखमंधकूपः क्रुमि भोजनः संदंशस्तप्त सूर्मि र्वज्रकण्टक शाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसन लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयः पानमिति । किञ्च क्षार कर्दमो रक्षोगण भोजनः शूल प्रोतो दंद शूकोऽवट निरोधनः पर्या वर्तनः सूचीमुख मित्यष्टाविंशति नरका विविधयातना भूमयः ।

(भागवत स्कन्ध ५)

अर्थ—वैसे तो नरक बहुत हैं पर ८४ विशेष माने जाते हैं उनमें भी २८ बड़े घोर नरक हैं उनके नाम आपको सुनाते हैं १ तामिस्र, २ अन्धतामिस्र, ३ रौरव, ४ महारौरव, ५ कुम्भीपाक, ६ कल्ल सूत्रक, ७ असिपत्र वन, ८ शूकर मुख, ९ अन्धकूप, १० क्रुमि भोजन, ११

संदश, १२ तप्तसूर्मि, १३ शालमलि, १४ वैतरणी १५ पूयोद, १६ प्राणरोध, १७ विशसन, १८ लालाभक्ष १६ सारमेयादन, २० अवीच, २१ अय:पान, २२ क्षार कर्दम, २३ रक्षोगण भोजन २४ शूलप्रोत २५ दंदशूक, २६ अवट निरोधन, २७ पर्य्यावर्तन, २८ सूची मुख, आदि आदि अनेक दुःख दायक नरक हैं।

इतना कह फिर जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी बोले कि अब यह सुनों जो पापी पुरुष उपरोक्त नरकों में डाले जाते हैं ! जो झूठी गवाही देता है वह रौरव नरक में जाता है। देवता, गऊ साधु के लाभार्थ देना पड़े तो कोई पाप नहीं, भ्रूण हत्या करने वाला स्वर्ण चुराने वाला, विश्वास घाती, दूसरे का द्रव्य हरण करने वाला साधु, ब्राह्मण, गुरु, माता, पिता, पुत्री का मारने वाला कुम्भीपाक नरक में जाता है। स्त्री बेचने वाला तप्त लोह नामक नरक में जाता है। गुरू का तिर- -स्कार करनेवाला बड़ों को तथा अतिथ और अपने आश्रित पुरुषों को न भोजन कराय पहिले आप भोजन करनेवाले वेद लोक मर्यादा तोड़नेवाले साधु ब्राह्मण देवताओं से द्वेष करनेवाले एसब अन्धतामिश्र नरक में जाते हैं। हत्या करनेवाला, अग्नि लगाने वाला, परायाधन हरण करनेवाला, दानदेके पुनः वापिस लेनेवाला, कन्या बेचनेवाला, हिन्दूधर्म बदलनेवाला, (छोड़नेवाला) आदि वैतरणी नरक में जाते हैं. ब्रह्मघाती गलित कुष्टी, सोना चुरानेवाला मकड़ी, साँप गिरगिट, प्राणियों का वधकर मांस खानेवाला गीध कुत्ता होता है।

धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलम्प्लवः।
मधु दंशः पयः काको रसं श्वानकुलो घृतम् ॥४२॥

अर्थ—अन्नका चुरानेवाला चूहा, कांस चुरानेवाला हंस, जल चुरानेवाला, पनडुब्बी, मधु चुरानेवाला दंश, दूध घी चुरानेवाला निवला, बस्त्र चुरानेवाला तीतर, गऊ चुरानेवाला, गोह, गुड़ चुरानेवाला चमगादर होता है। साधु ब्राह्मण का बध करनेवाला मरके कुत्ता, शृंगाल, सुअर, गदहा, ऊँट, बकरा, मेढ़ा, मृग होने के बाद मनुष्य शरीर में चाण्डाल अथवा व्याध के घर जन्म लेता है। सुरा (शराब) पीनेवाले क्रमिकीट, पतंग विष्टा खानेवाले पक्षि हिंसादिक हिंसक जीव होते हैं।

महापातकं यत् चिन्हं सप्त जन्मनि जायते।
उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि पाप समुद्भवम् ॥४३॥

अर्थ—स्मृतियों के मतानुसार महापातक का चिन्ह ७ जन्म तक, उपपातक का चिन्ह ५ जन्म तक अन्य साधारण पापों का चिन्ह ३ जन्म तक प्रगट होता है।

दुष्कर्मजा नृणां रोगा यन्ति चोप क्रमैः शमम्।
जपैः सुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषां शमो भवेत् ॥४४॥

अर्थ—निन्दित कर्म से उत्पन्न रोग जप, तप, देवपूजन, हवन, दान करने से शान्त होते हैं ॥४४॥

पूर्वं जन्म कृतं पापं नरकस्य परिक्षये ।
वाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥४५॥

अर्थ—परन्तु पूर्वजन्म के पाप नरक भोग करने के अन्त में व्याधिरूप होकर दुःख देते हैं जिस प्रकार पुरुष पापों का फल भोगते हैं उसी प्रकार स्त्रियां भी भोगती हैं ये पाप जप करने से शमन (नाश) होते हैं ॥४५॥

कुष्टं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा ।
मुत्र कृच्छ्राश्मरीकासा, अतिसार भगन्दरौ ॥४६॥
दुष्टव्रणं गण्डमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम् ।
इत्येव मद्योरोगा महापापोद्भवाः स्मृताः ॥४७॥

अर्थ—कुष्ट, राजयक्ष्मा, प्रमेह, संग्रहणी, मूत्र, कृच्छ, पथरी, खासी, अतीसार, भगन्दर, दुष्टघाव, गंडमाला, पक्षघात, और नेत्रों का नाश इत्यादि रोग महापातक वालोंको दूसरे जन्म से होते हैं। जलोदर, तिल्ली, शूल, व्रण, श्वांस, अजीर्ण, ज्वर, वमन, भ्रम मूर्च्छा, गलेका रोग, इत्यादि उपपातकियों को होते हैं। बवासीर, कुष्ट अति (महा) पापियों को होते हैं वह महापाप कौन २ हैं सो भी बताते हैं भगवान् विष्णु और शिवकी निन्दा करनी, साधु ब्राह्मण का बध, गुरु पत्नि से भोग, क्रोध, लोभ मोह, या प्रमाद से साधु श्रेष्ठ पुरुषों को कुवाक् कहना, दान, दिया पुनः वापिस लेना ये सब ब्रह्म हत्यारे महापापी कहे जाते हैं। इसलिये हे प्रोहित जी जो इन बुरे कर्मों से बच के श्रेष्ठ कार्य्यों में लगेगा उसका ही मनुष्य जन्म सफल होगा ऐसा कह भगवान् मष्टकर जाते भये ॥४६-४७॥

देव देव जगन्नाथ प्रसीद गुरु देवयः ।
त्वमेव धाता सर्वस्य जगतोस्य जगन्मयः ॥४८॥

अर्थ—इस प्रकार का उत्तमोपदेश श्रवण करके प्रोहित नारायणदत्त जी बोले हे देवों के देव जगत के नाथ श्री गुरुदेव जी प्रसन्न हो, आपही संसार के सर्वस्व उत्पत्ति करनेवाले रक्षा करनेवाले सब कुछ आपही हैं ॥४८॥

रक्षिताचत्वमेयास्य संहर्ता च स्वरेश्वरः ।
अवलोकय मांनाथ शीतलै र्नयनाञ्चलैः ॥४९॥

अर्थ—संसार के रक्षक तथा संहार कर्ता सुरों के भी सुर जो आप हैं आपका दर्शन करके हे नाथ मेरे नेत्र शीतल हो गये ॥४९॥

नत्वासमोस्ति लोकेऽस्मि न्नाथ लोकत्रयेऽपिवा ।
कुतस्त्वदधिकस्तस्मान्निः समोभ्यधिको भवान् ॥५०॥

अर्थ—समस्त लोक आपको नमस्कार करते हैं, आपके सदृश्य तीन लोक में आपही हैं आपसे अधिक कौन होगा ॥५०॥

न वेदाध्ययनेन त्वां न यज्ञै र्नियमै रपि ।
न दानैश्च तपोयोगै र्विना भक्त्यान दृश्यते ॥५१॥

अर्थ—वेदाध्ययन से नहीं नहीं यज्ञादि नियम पालन करने पर न दान तप योग से आप उतना शीघ्र प्रसन्न होके दर्शन देते हैं जितना भक्ति से प्रसन्न होके शीघ्र दर्शन देते हो ।५१॥

मद्भाग्योपचयेनत्वं दृग्गोचर मुपागतः ।
साधुरूपंच देवेश कल्याणार्थं दयानिधे ॥५२॥

अर्थ—हे दयानिधे मेरे भाग्य उदय हुये जो आपके पवित्र दर्शन मेरे को गृह बैठे हुये यह आपकी बड़ी कृपा हुई आपने जगत के कल्याणार्थ उदासीन साधुका रूप धारा है आप देवों के ईश साक्षात् महेश हैं ॥५२॥

धन्योस्म्यनुग्रहीतोऽस्मि दर्शनेन तव प्रभो ।
चक्षुषोः सफलं जन्म जातमद्य सुरेश्वर ॥५३॥

अर्थ—मेरा गृह धन्य है जहाँपर आपका दर्शन हुआ हे प्रभो मेरे नेत्र सफल हुये जन्म भी सफल हुआ आप सुर जो देवता हैं उनके भी ईश्वर नाम मालिक होकर यहाँ आयके अवतार धारा है ॥५३॥

एवं स्तुवति विप्रेन्द्रे नारायणश्च प्रोहितम् ।
प्रणम्य शिरसा देवं जगाम निज मन्दिरम् ॥५४॥

अर्थ—पण्डित नारायणदत्त इस प्रकार श्री गुरु देवजी की स्तुति कर बारम्बार शिर से प्रणाम कर अपने घर जाता भया ॥५४॥

नोट—बहुत लोग श्री १२०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का चरणामृत पी गुरु मन्त्र ले सेवक बन जाते भये ।

सर्वं मङ्गल प्रदं शिक्षां शोक संताप नाशनम् ।
हर्षानन्द करं शाश्वद्धर्म मोक्षसुहृत्प्रदम् ॥५५॥

अर्थ—प्यारे हिन्दू पाठक वृन्द आप लोग भी पूज्य गुरुवर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की इस शुभ शिक्षाको कर्त्तव्य [अमल] में लाके उपरोक्त दुर्गुणों से बचें जिससे सब प्रकार का आनन्द प्राप्त हो शोक संताप का नाश हो मोक्ष प्राप्त कर लोक परलोक सुधारें ॥५५॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे गंगोत्री, यमनोत्री, केदारनाथ बद्रीनाथ यात्रा पण्डित नारायणदत्तोपदेश, नरकात् वचनार्थम् सकल कलि कलमश नाशिनी सप्तविंशतितमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२७॥

॥ अष्टविंशतितमा किरण प्रारम्भः ॥

॥ अलका पुरी ॥

तस्मिन् सम्वत्सरे पुण्ये श्रावण्यां प्रतिपद्गतिम् ।
चकार चलितस्तस्मात्तीर्थं विन्दु सरोवरम् ॥१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी उदासीन साधु मण्डली सहित श्री बद्रीनाथ जी से वि० सं० १६०५ श्रावण सुदी १ को आगे चल मैनाक पर्वत को देखा जिसकी सुनहरी चोटियों पर नाना प्रकार के पक्षी रहते हैं उसके ऊपर विन्दु सर तीर्थ है उसमें स्नान कर विश्राम करतेभये ॥१॥

दृष्ट्वा सौ हिमवत्सूनोः विविधं रमणीयकम् ।
श्रीचन्द्रो भगवांश्चित्ते भेजे मोद भरं परम् ॥२॥

अर्थ—यहां पर वृक्ष और वेलों की लतायें फल पुष्प के भार से झुक रहीं थीं कोकिलादि पक्षी उनपर बैठे मधुर बोलियां बोल रहे थे यह देख श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् आनन्दित होते भये ॥२॥

स्नानञ्च कृत्वा विमले च तीर्थे कृतश्रम श्रान्ति मुपाजहार ।
ततो विशालामलका पुरीञ्च जगाम धीरस्त्वति हिन्दु वीरः ॥३॥

अर्थ—उस पवित्र तीर्थ में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने स्नान करके अपनी थकावट दूर किया उसके बाद विशाल अलका पुरी में हिन्दुओं में वीरता का भाव भरने वाले जगद्गुरू जी मन्द २ गति से पधारे ॥३॥

सीता तीर्थ ततो गत्वा स्नात्वा ध्यात्वाच सादरम् ।
कमले कमलं दृष्ट्वा विस्मयं परमागतः ॥४॥

अर्थ—वहां से आगे चल सीता तीर्थ में आय स्नान किया और ध्यान किया वह सरोवर कमल पुष्पों से सुशोभित निर्मल जल से भरा था शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलता हुआ मन को आनन्द दे रहा था ॥४॥

व्योमयानं समारुह्य वियता वियता पुरीम् ।
अलकां राज राजस्य राजधानीं मुदं ययौ ॥५॥

प्राप्यतामलकां नाम नगरीञ्च गरीयसीम् ।
मानितश्च कुबेरेण विमानं विजहौ विभुः ॥६॥

अर्थ—वहां से विमान द्वारा आप अलकापुरी आते भये जो कुबेर की राजधानी है कुबेर देवता आगे से आकर स्वागत कर विमान से उतारते भये ॥५-६॥

स्वसिंहासन मारोप्य धनदो विनतोऽब्रवीत् ।
स्वागतं चन्द्र तुल्यस्य चन्द्र देवस्य जायताम् ॥७॥

अर्थ—अन्दर लाकर अपने सिंहासन पर विराजमान किया कुबेर जी बड़े विनीत भाव से बोलते भये कि हे जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् आप का आना चन्द्रमा के समान आनंद कारक हुआ है ॥७॥

इदमर्घ्यमिदं पाद्यं मधुपर्कोऽयमद्भुतः ।
सुधेयं सुधियाधेया सर्वमन्यच्च गृह्यताम् ॥८॥

अर्थ—ऐसा कह अर्घ, पाद्य, मधुपर्क, आदि षोड़षोपचार से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का पूजन किया और कहा ॥८॥

कच्चिन्मे स्मरणं कुशलं प्रभो कल्याण कारिणः ।
कच्चिन्मे स्मरणं चित्ते करोषि वृषभध्वजः ॥९॥

अर्थ—हे प्रभो आप कुशल पूर्वक तो हैं आप शंकर जी के अवतार हैं और लोक कल्याण वास्ते इस उदासीन रूप में आए हैं, आपने अपने चित में मुझे स्मरण किया यह हमारे परम सौभाग्य की बात है ॥९॥

ततस्तं सर्वमाख्याय लेभे गोष्ठी सुखं चिरम् ।
सखीनां दर्शनं पुण्यं कस्य नाल्हाद कारणम् ॥१०॥

अर्थ—आपके अवतरण होने का सर्व आख्यान मुझे विदित है आपकी बात चीत से हमको बड़ा आनन्द हुआ है पुण्यात्मा महा पुरुषों का दर्शन करके किसको आह्लाद नहीं होता कुवेर जी की स्तुति सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो अनेक प्रकार के धर्मोपदेश देते भये ॥१०॥

वाणाकाशरसेन्दौच वैक्रमे भाद्र शुक्लके ।
पञ्चदश्यां चन्द्रदेवः धर्मलोकं जगाम सः ॥११॥

अर्थ—वि० सं० १६०५ भादों सुदी १५ को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अलकापुरी से चल धर्मलोक जाते भये ॥११॥

इन्द्रः स्वरथमारोप्य चन्द्रं चन्द्रसु शीतलम् ।
ययौ विहायसा देवः दर्शयन् दृश्यमद्भुतम् ॥१२॥

अर्थ—इन्द्र देवता आकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को कुबेरपुरी से अपने रथपर सवार करके ले चला मार्ग में देवता लोग आपका दर्शन करके चन्द्रमा के समान शीतल (आनंदित) होते भये ॥१२॥

गन्ध मादन शैलस्य, शिखरेऽति मनोहरे ।
हनूमान् राम भक्त्याग्रः रुद्ररूपोऽमिलन् मुदा ॥१३॥

अर्थ—मार्ग में गन्धमादन पर्वत जो अति मनोहर है वहांपर श्रीराम भक्तों में अग्रगण्य श्री हनुमान जी से मिले जों रुद्रावतार थे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले कि हे हनुमान जी आपने संसार में भगवद्भक्ति करके श्रीराम जी को अपने बसकर रखा है आप धन्य हैं, हम भी आपके दर्शन कर बड़े प्रसन्न हुये हैं ॥१३॥

धर्मराज पुरीं तूर्णं तुराषाट् प्रापयद्विभुम् ।
अवतीर्णोरथात्तत्र पुरस्कृत्य च मातलिम् ॥१४॥

अर्थ—वहाँ से चल धर्मराज की पुरी में शीघ्रही रथ पहुँचता भया वहाँ की शोभा देखते श्री प्रभु मातली से बोले कि यहां रथ रोको ॥१४॥

तमा गतं समाकर्ण्य चित्रगुप्त पुरस्सरः ।
प्रत्युद्गतो धर्मराजः धर्मानुष्ठान पेशला ॥१५॥

अर्थ—आपका आगमन सुन चित्रगुप्त आगे से आकर मिलता भया पुनः श्री धर्मराज भी आकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् धर्मानुष्ठान के करनेवाले मन सुखकारी का दर्शन कर लाके अपने से उच्च सिंहासन पर बैठाता भया॥१५॥

लोकाल्हाद प्रदं चन्द्रं लोकमाना विकल्मषाः ।
नारकीयाः सर्व जीवाः विमानैः स्वर्गमागता ॥१६॥

अर्थ—लोक को अह्लाद के देनेवाले चन्द्रमा सदृश्य पाप रहित श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन करके सर्व नारकीय विमानों पर चढ़ स्वर्ग में आगये ॥१६॥

धर्मराजेन सत्कृत्य पूजितः सेन्द्र चन्द्रकः ।
धर्मं प्रबोध्यतं भूयः सेन्द्रो यातोऽमरावतीम् ॥१७॥

अर्थ—धर्मराज ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का सत्कार पूजन किया श्री गुरु जी ने अनेक प्रकार से धर्मोपदेश दे इन्द्र के सहित अमरावती पुरी आते भये ॥१७॥

तल्लोचनासेचनकं नन्दनं सुरनन्दनम् ।
वनमालोक्य लोकेशः चन्द्रो विस्मयमागता ॥१८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को जो नेत्रों को आनन्द देनेवाले नन्दन बन जिसमें सुगन्धित पुष्प मनोहर कभी न मलीन होनेवाले लग रहे थे उसकी शोभा देखते भये जो देवताओं को आनन्द देने वाला था सर्व देवते भी गुरुजी को आया देख विस्मय से भर गये ॥१८॥

तत्र कल्प तरुच्छाया सुखा सीनां सनन्दिनीम् ।
वन्दनीयां कामधेनुं कामधेनुं ददर्शशः ॥१९॥

अर्थ—कैसा है इन्द्रलोक कल्पवृक्ष जहांपर सुशोभित हो रहा है जिसके नीचे सुख पूर्वक नन्दनी गऊ वैठी है, उसी जगह जगद्वन्दनीय कामधेनु जो सकल कामनाओं के देनेवाली दर्शन दे रही है ऋषि मुनि संयुक्त ॥१९॥

अविदूरे नन्द नस्य मन्दा किन्याश्च साभ्रमुम् ।
ऐरावतं मदोन्मत्तं विहरन्तं व्यलोकयत् ॥२०॥

अर्थ—इन्द्रलोक में नन्दन वनके समीप ही मन्दाकिनी शोभा पा रही थी मस्त एरावत हाथी विचर रहा था ॥२०॥

नन्दने विहरन्तीनां स्वर्वालानामुखेन्दुभिः ।
नीलेन्दी वर मालाभि रिन्दुरेषोऽभ्य पूजयत् ॥२१॥

अर्थ—देवाङ्गनाओं के झुण्ड के झुण्ड बिहार कर रहे थे जिनके मुख चन्द्रमा के सदृश्य प्रकाश कर रहे थे, शीतल मन्द सुगन्धित वायु चल रही थी, पुण्यात्मा जीवों से सेवित, नील कमलों की श्रेष्ठ माला जो स्वच्छ चन्द्र की चन्द्रिकावत् देदीप्य थीं वह लाकर देवताओं ने श्री गुरुजी को पहिरा के पूजन किया ॥२१॥

एवं तैरर्च्यमानोऽयं पश्यन् दृश्यावधिं मुहुः ।
जयन्ताऽध्युषितं रम्यं वैजयन्तं प्रमोद सः ॥२२॥

अर्थ—मार्ग में अनेक प्रकार के दृश्य देखते हुये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को इन्द्रपुरी में इन्द्र का पुत्र जयन्त आय नमस्कार कर बड़े आनन्द पूर्वक पुष्पों की वैजयन्ती माला से भूषित करता भया ॥२२॥

इन्द्र इन्द्रासने चन्द्रं समावेश्याभ्य पूजयत् ।
सर्वे देवर्षयोदेवाः तं सम्पूज्या भ्यनन्दयन् ॥२३॥

अर्थ—इन्द्र ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को लाकर अपने इन्द्रासन पर बैठा के आप थोड़ा नीचे दूसरे आसन पर बैठ षोड़षोपचार से पूजन करता भया पुनः सर्व देवर्षिओं ने आनन्दित हो पूजन किया ॥२३॥

साध्या रुद्रा मारुतश्च विश्वेदेवा स्तथाश्विनौ ।
आदित्या वसवः सर्वे तुषिता भास्वरास्तथा ॥२४॥

ब्रह्मर्षयश्च सिद्धाश्च गन्धर्वाश्चा प्सरोगणः ।
राजर्षयश्च यक्षाश्च किन्नराः पितरस्तथा ॥२५॥

वेदव्यासश्च वत्सश्च देवरातश्च नारदः ।
वात्स्यायनः सुमन्तश्च जैमिनिः पैलनस्तथा ॥२६॥

पिप्पलादो देवलश्च शाण्डिल्यो गौतमोऽसितः ।
मैत्रेयश्च वशिष्ठश्च कौशिकश्च बृहस्पतिः ॥२७॥

हारीतो लोमशोऽत्रिश्च च्यवनः शुक्र पर्वतौ ।
सनकश्च सनन्दश्च सनातन विरञ्चि भूः ॥२८॥
सनत्कुमार कपिलौ वाल्मीकिस्तुम्बुरुस्तथा ।
मौद्गल्यश्चैव रामश्च तृणविन्दुः पराशरः ॥२९॥
पुलहश्च पुलस्त्यश्च कश्यपश्च कचश्च सः ।
मरीचिरङ्गिराः कण्वः श्वेतकेतुश्च गालवः ॥३०॥
धौम्यो विभाण्ड कश्चैव माण्डवो मुद्गलोभृगुः ।
शङ्खश्च लिखितश्चैव याज्ञवल्क्य कलापिनौ ॥३१॥
मार्कण्डयेः शुकश्चैव कुम्भयोनिः समुद्रयः ।
ऋष्यश्रृङ्गः कर्दमश्च जावालिर्वालखिल्यकाः ॥३२॥
एव सर्वे उदासीना मुनिवराः समागतः ।
दर्शं दर्शं परं हर्षं लेभिरेते सुरर्षयः ॥३३॥

अर्थ—जहाँ अनेक प्रकार के शंख दुन्दुभी बज रही थीं, वहाँ पर साध्य गण, विश्वे देवा, मरुत गण, दोनों अश्विनी कुमार, बारह सूर्य, आठ बसु, ग्यारह रुद्र, ब्रह्म ऋषि, राज ऋषि, देव ऋषि, जैसे वेदव्यास, नारद मुनि, देवरात, वात्स्यायन, सुमंत, जैमिन, पैलन, शाण्डिल्य, देवल, मैत्रेय, असित, बशिष्ठ, कौशिक, हारीत, लोमस, अत्रेय, वृहस्पति शुक्राचार्य्य, च्यवन, सनक, सनन्दन, सनातन सनत कुमार, कपिल, वाल्मीक, तुम्बुर, मौद्गल्य परशुराम, तृणबिन्दु, पिप्पलाद, पुलह, कच, कश्यप, पुलस्त्य, क्तुर्दत्त, पराशर, मरीच, अंगिरा, कण्डव, गौतम, गालव, धौम्य (प्रोहित), विभाण्ड, माण्डव्य, मारकण्डे, याज्ञवल्क्य, शंख, लिखित, इन में कई सपत्नीक भी थे ये सब उदासीन महामुनि आय के भगवान् श्रीचन्द्र जी का दर्शन करते भये। श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् संसार मर्यादा रक्षक उठके यथा योग्य परस्पर प्रणाम कर आदर सत्कार करते भये। उपरोक्त सर्व उदासीन महामुनियों ने जगद्गुरु श्री श्रीचन्द्र भगवान् के गले में उन देव पुष्पों की माला पाई जो कभी न कुम्भिलाने वाले थे हाहा हूहू नाम गन्धर्वों ने उठके श्रीचन्द्र जी को प्रणाम किया ॥२४ से ३३ तक॥

स्वागतैः कुशल प्रश्नैः पाकशासन शासनात् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चक्रुः तौर्य्ययिकम निन्दितम् ॥३४॥

अर्थ—फिर इन्द्र ने स्वागत करके कुशल प्रश्न पूछा तत्पश्चात् इन्द्र की आज्ञा से गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने गाना सुनाया ॥३४॥

हाहा हू हू प्रभृतयो गायका वादकाः स्थितः ।
तुम्बुरु नारदाद्याश्च विपञ्ची क्वणने रताः ॥३५॥

अर्थ—हा हा हू हू आदि गन्धर्व तथा तुम्बुर नारदादि गाने बजाने वाले आकर स्थिति हुये ॥३५॥

उर्वशी मेनका रम्भा मञ्जुघोषा तिलोत्तमा ।
सुकेशीच घृताचीच ननृतुर्नृत्य पेशलाः ॥३६॥

अर्थ—उर्वशी, मेनका, रम्भा, मञ्जुघोषा, तिलोत्मा, सुकेशी, घृताची आदि अप्सरायें आकर आनन्द पूर्वक नृत्य दिखलाने लगीं ॥३६॥

ततोदेव गणाः सर्वे वादयन्देव दुन्दुभीः ।
शङ्खा नापूरया मासु वीणाश्च मुमुचुः स्वरान् ॥३७॥

अर्थ—तब देव गण सब मिलके दुन्दुभी शङ्ख वीणा आदि बाजाओं को ऊँचे स्वर से बजाने लगे ॥३७॥

षड् जादीन् समतालेन गन्धर्वा ललितं जगुः ।
ननृतु दिव्याप्सरसः सुस्वरं गीत लालसाः ॥३८॥

अर्थ—षड्ज से आदि लेकर समस्त तालों द्वारा गन्धर्व लोग ललित स्वर से गाने लगे दिव्य अप्सरायें मीठे स्वर से गान करने लगीं जिनके कण्ठ गीत के सुनने की लालसा बड़े बड़े लोगों को लगी रहती है ॥३८॥

संस्त्रीक इन्द्रश्च तथा सपुत्रो न्यूतासने स्वस्थिति मेव कृत्वा ।
पप्रच्छदेवं गुरुदेव देवं जगद्गुरु धर्म युक्तं वचश्च ॥३९॥

अर्थ—पुनः इन्द्र अपने राजमहल में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को लेगया, वहाँ परशची और जयन्त के समेत पूजन कर बहुत प्रकार के स्वादिष्ट भोजन कराये आचमन के बाद एक दिव्य पलङ्ग पर बैठाय कर आप अपनी स्त्री शची तथा अपने बेटे जयन्त के साथ बड़े आनन्द से कुछ नीचे दूसरे आसन पर बैठ हाथ जोड़ कर नम्र हो बोला हे भगवन् कोई उत्तमोपदेश श्रवण कराइये ॥३९॥

हे इन्द्र देवेशकृत प्रयत्न जीवस्य कर्तव्य यथोपदेशः ।
पुरातनै र्ज्ञान तरङ्ग मानैः प्रोक्तस्तथा सम्प्रति वार्य तेव ॥४०॥

अर्थ—यह सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले कि हे इन्द्र जीव के उद्धार वास्ते कर्तव्य कर्म का जैसा उपदेश शास्त्रों में किया है वैसा ही इस समय हम आप से कहते हैं ॥४०॥

विचित्र शक्तिं लभते मनुष्यस्सत्सङ्गतीनामुपसेवनाच्च ।
स उत्तमो वै पुरुषो चलोके दम्भो न लोभो नच यत्र हिंसा ॥४१॥

अर्थ—महात्माओं की संगति और सदुपदेश से साधु सेवा करने पर सद्गति मनुष्य पाता है संसार में वह पुरुष धन्य है जिसमें दम्भ, लोभ, हिंसा नहीं है ॥४१॥

न स्वार्थमात्रा नच कोप भावश्शुद्धस्सदाचार परायणश्च ।
अध्यात्म लाभार्थ कृत प्रयत्नस्सदाऽवधानश्च परोपकृत्यै ॥४२॥

अर्थ—जो पुरुष स्वार्थ का त्याग कर परमार्थ में ही लगे रहते हैं और सदाचार पालन करते रहते हैं वह परोपकार करते हुये ज्ञान प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं ॥४२॥

आत्मा विकारादि गुणै र्विरक्तो नित्यो विभुर्व्यापक देव देवः ।
तदाश्रयादिन्द्रिय कर्म सर्वं सजायते सत्यमिदं स्वरूपम् ॥४३॥

अर्थ—यह आत्मा दोषों से अलग है नित्य विभु और व्यापक है उसी की सहायता से इन्द्रियों में चैतन्य भाव उत्पन्न होता है यही जीवका सत्य स्वरूप है ॥४३॥

जड़े शरीरे यदि चेतनत्वमात्मा प्रसादादिदयेव युक्तम् ।
स निर्गुणो निष्क्रिय निष्क्रियश्च जगद् प्रपञ्चाद्विरतो विवेकी ॥४४॥

अर्थ—जड़ शरीर में आत्मा के सम्बन्ध से चैतन्यता आती है वह आत्मा निर्गुण क्रिया रहित संसार के प्रपंचों से अलग है जिसको विवेकी पुरुष जानते हैं ॥४४॥

श्री सच्चिदानन्द समष्टिरूप आत्मा सदा प्रेरक प्रेरकश्च ।
आधार भूतश्च समस्त सृष्टेरिदं मतं सार्व जनीनमस्ति ॥४५॥

अर्थ—यह आत्मा सत्, चित, आनन्द, स्वरूप, जाति स्वरूप, प्रेरणा करने वालों का प्रेरक है समस्त सृष्टि का आधार भूत आत्मा है ॥४५॥

विश्वम्भरोऽयं शुभ वृत्ति धारी न चास्ति जीवेश्वर भेद भावः ।
भ्रमा अनेके प्रभवन्त चात्रमतान्यनेकानि वदन्ति केचित् ।४६।

अर्थ—संसार का पालन पोषण करनेवाला जीव ईश्वर से अलग नहीं है इस विषय

में अनेक मत हैं जो भ्रम मूलक हैं परन्तु जीव ईश्वर में भेद नहीं यही सिद्धान्त ईश्वर में है कोई कहता है ईश्वर नहीं है कोई कहता है यह भ्रम है ॥४६॥

अस्तीश्वरंश्चेति वदन्ति के चिन्ना स्तीश्वरश्चेति चकेचिदेव ।
ग्रन्थे चदृष्टे बहुसन्दि हन्तिन् चास्ति सत्यं किमितीति निर्णयः ॥

अर्थ—शास्त्रों को देखने से सन्देह पैदा होता है जीव ब्रह्म का अभेद भाव जानने पर संशय निवृत होता जाता है कि ईश्वर सत्य है ॥४७॥

ज्ञातेच विम्बे प्रति विम्बयोश्च शुद्धे रहस्ये नहि संशयोऽस्ति ।
आकाश देशे शुभसूर्य विम्वजले तदीयं प्रति विम्बमस्ति ।४८।

अर्थ—परन्तु आत्म साक्षात्कार होने से शुद्ध रहस्य ज्ञात होनेपर संशय नहीं रहता जैसे आकाश में सूर्य का बिम्ब एक है और अनेक जलके घटोंमें प्रतिबिम्ब अनेक भासते हैं ॥४८॥

ब्रह्मास्ति विम्बं प्रति विम्ब मन्तः कृतौ तदा भास सुरूप जीवः
जलाद्युपाधौ विरते जहीय सूर्यान्न चाकाश गतश्च सूर्याः ॥४६॥

अर्थ—इसी प्रकार ब्रह्मबिम्ब एक है जीव उसीका प्रतिविम्ब अनेक हैं जैसे जल उपाधि के हट जाने पर एकही सूर्य विम्ब दिखाई देता है वैसही उपाधि के मिट जाने पर एक ब्रह्म रह जाता है ॥४६॥

भिन्नोन भिन्नस्सविता यथास्ति न ब्रह्मणो जीव जनो विभिन्नः ।
रज्जौ यथा हे भ्रमणञ्च लोके शुक्तौ यथा सद्रजत प्रवृत्ति ॥५०॥

अर्थ—जिस तरह दो सूर्य नहीं हैं उसी तरह जीव ब्रह्म दो नहीं हैं। रस्सी में सर्प सीप में चाँदी का भ्रम जैसे होता है ॥५०॥

स्वप्ने च हस्त्यादि वल प्रमादः स्थाणौ नितान्तं पुरुष भ्रमश्च ।
तप्ते सुवर्णे दहनेन लोके विशुद्धभावः किल निर्मलत्वम् ॥५१॥

अर्थ—जैसे स्वप्न में देखा हुआ हाथी, घोड़ा, धन, स्थानादि पुरुष के जागने पर भ्रम (मिथ्या) मालूम होता है, अग्नि से तपा हुआ सुवर्ण जैसे निर्मल रहता है वैसे ही ज्ञान ज्योति होने पर जीव भी ब्रह्म भाषित होने लगता है ॥५१॥

निश्शङ्कमायाति तथा विशिष्टज्ञाने च जाते सकलम्मुधैव ।
जगत्समग्रं प्रलयं प्रयाति ब्रह्मैव सत्यं प्रति भासते च ॥५२॥

अर्थ—शुद्ध ज्ञान होने पर समस्त संसार मिथ्या हो जाता है नष्ट सा भासित होता है केवल ब्रह्म ही घट पटादि रूप से झलकता है ॥५२॥

विच्छिप्त चिन्ताः पुरुषा यथैव भ्रमन्ति लोकेन फलानुकूलाः ।
ज्ञानेन विज्ञान तमेन हीनास्स्रष्टौ मनुष्याः पशुभिस्समानः ।५३।

अर्थ—जैसे पागल आदमी जो चाहता है निरर्थक बोला करता है उसी तरह शुद्ध ज्ञान से हीन पुरुष संसार में पशुओं के समान बकता रहता है ॥५३॥

तदान्नदुःखन्न सुखन्न किञ्चन्न चापिमानन्न तथाऽपमानम् ।
भयन्नकिञ्चन्न च मोह शोकौ ते दुर्गुणाश्च प्रलयं प्रयान्ति ॥

अर्थ—जब शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है तब सुख दुःख मानापमान भय, मोह शोकादि जि‑ने दुर्गुण दोष हैं सब के सब भाग जाते हैं ॥५४॥

जगद्गुरुः श्री भगवान् महेशो बहूपदेशं कृतवान् मघोने ।
प्रसन्न चित्तो भगवान् विडौजा स्थालीश्च रत्नेः खचितां समर्प्य ।

अर्थ—जब इस प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने इन्द्र के प्रति उपदेश श्रवण कराया तब इन्द्र बड़ा प्रसन्न हो चरणों में प्रणाम करता हुआ रत्नों से भरा थाल आगे भेट रखा ॥५५॥

आनन्द भावं भजते तदानीमितः परन्नैव सुखं कदाचित् ।
तत्प्रेम संरक्षण हेतवे च स्थली गृहीत्वा निरपेक्षकामः ॥५६॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जीने उस थाल को लेकर प्रसाद रूप में आस पास के श्रोता और दर्शकों को सब बाँट दिया ॥५६॥

इत्थ मानंद सन्दो हे स्तैस्तैर्दिव्यै विनोदिभिः ।
विविधै रुपदेशैश्च समयं समयापयत् ॥५७॥

अथ—इस प्रकार आनन्द पूर्वक दिव्य उपदेश रूपी विनोद वार्ता विविध प्रकार से करते हुये सुख पूर्वक समय व्यतीत होता रहा ॥५७॥

मासाच दिवसा जाताः दिवसाच कलापिताः ।
कला क्षणायितास्तय कालो ना ज्ञापि वेगवान् ॥५८॥

अर्थ—इस प्रकार एक मास ऐसे व्यतीत हुआ जैसे एक क्षण व्यतीत होता है आनन्द का समय व्यतीत होते किसी ने नहीं जाना शीघ्र समय चला गया ॥५८॥

सुप्तोत्थित इव प्राज्ञः स्मरन् लोक कृतिं कृती ।
यातु कामोऽब्रवी द्वाक्यं सोत्प्रासं स पुरन्दरम् ॥५९॥

अर्थ—जैसे सोकर उठने पर बुद्धिमान् पुरुष लोक के किये काम का स्मरण करता है उसी प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी की बातों का इन्द्र स्मरण करता रहा ॥५९॥

रसाकाश रसेन्दौच वैक्रमे माघ मासके ।
वसन्त पञ्चमी दृष्ट्वा ध्रुव लोकाय सोऽचलत् ॥६०॥

अर्थ—वि० सं०१६०६ माघ सुदी ५ (वसन्त पञ्चमी) को इन्द्र लोक से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ध्रुव लोक वास्ते चलते भये ॥६०॥

शिष्यान्वितो व्रजन् मार्गे ग्रहनक्षत्र तारकाः ।
नाना विधा लोकमानः लोकोत्तरमगात्सुखम् ॥६१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद् गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी उदासीन साधु मण्डली समेत ध्रुव लोक पहुँचे जिस ध्रुव की सब ग्रह नक्षत्र, तारागण, परिक्रमा करते हैं जो देव लोक से ऊपर है ॥६१॥

औत्तान पादि मालोक्य ग्रहैः प्रदक्षिणी कृतम् ।
सप्तर्षिभि सुराः सर्वे परमां मुदमा वहत् ॥६२॥

अर्थ—ध्रुव जी ने श्री ११०८ जगद् गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को देखते ही उठके प्रदक्षिण किया तथा सप्तर्षियों और वहाँ के सब देवताओं ने भी बड़े आनन्द से आपका आदर सम्मान किया ॥६२॥

नाना सम्भार पूजाभिः पूजितो जितमन्मथः ।
ध्रुवेण ध्रुवलोकस्थः स्वस्थः शान्ति सुखं ययौ ॥६३॥

अर्थ—ध्रुव ने बहुत प्रकार की सामग्रियों से जो शंकर जी का अवतार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् हैं उनका चरण धोकर पूजन किया, वह ध्रुव लोक कैसा है जो सुख शान्ति और स्वास्थ्य देने वाला है ॥६३॥

त्वमेव देवश्च गुरुस्त्वमेव त्वमेव लोकस्य सुरक्षकश्च ।
स्त्रष्टात्वमेवं परिरक्षकस्त्व संहार कर्ता प्रभु पाद पद्मः ॥६४॥

अर्थ—ध्रुव जी बोले हे गुरु देव आप देवों के देव हैं संसार के रक्षक हैं सृष्टि करने वाले आप हैं रक्षा और संहार करने वाले भी आप ही हैं ॥६४॥

दया सत्य धारा कला काल मालो महोङ्कार सोङ्कार छालः प्रतालः ।
समस्ताल वाल लला लीन लालो जगच्चाल शाल प्रभालो ल्ललश्च

अर्थ—दया और सत्य की धारा के मार्जक आप ही हैं ॐ सोऽहम् रूप आप ही हैं संसार में जितनी लीला हैं सब को झलकाने वाले आप ही हैं ॥६५॥

त्वमेवासि सर्वं त्वमेवासि सर्वं त्वमेवासि सर्वं महा संप्रधानः ।
समस्ता व्यवस्था सतीमानिता तानिता तान विज्ञैर्धरामान भान ॥६६॥

अर्थ—समस्त दृश्यमान् पदार्थों में जो कुछ है प्रधान कारण स्वरूप आप ही हैं जो कुछ व्यवस्था है वह नित्य है या अनित्य सब को रचने वाले आप ही हैं ॥६६॥

देवास्समस्ताश्च भजन्ति पाद पद्म न्त्वदीयाम्विमल प्रभावम् ।
वदन्तिवेदाऽखिलेश्वर त्वमगम्यं रूपोऽमित विक्रमश्च ॥६७॥

अर्थ—सब देव गण आप ही की स्तुति करते हैं आप का चरण सरोज निर्मल है समस्त वेद कहते हैं कि सब के स्वामी आप हैं, आप अगम्य हैं अपार हैं अगोचर हैं ॥६७॥

ध्रुवेंकृते संस्तवने तदैव साक्षाच्छिवो ह्लादतमोऽपविष्टः ।
ध्रुवत्वमेवाखिल भक्ति काण्ड नेतोपनेता सगुणोपदेष्टा ॥६८॥

अर्थ—श्री ध्रुवजी की ऐसी स्तुति करने पर साक्षात् शिव स्वरूप गुरुदेव श्रीचन्द्र भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले हे ध्रुवजी आप अखिल ब्रह्माण्ड में भक्तिकाण्ड के नेता उपनेता हुये हैं सगुनोपासना आपने अपूर्व की है ॥६८॥

वालेचकाले भगवत्प्रभक्ति प्रभाव धारा भिन्नवोन्मुखश्च ।
वेदस्थ साद्गुणस्य यथोप जं षीन त्वादृशः कोऽपि कला प्रविज्ञः ॥६९॥

अर्थ—बाल्यकाल ही में आपने भगवान् की भक्ति किया वैदिक सगुण उपासना का खूब अभ्यास किया आपके बराबर भक्तिकला जानने वाला कोई नहीं है ॥६९॥

एवम्महेशेन निवेदिते च कृतार्थ भावश्च ध्रुवस्सुलेभे ।
तल्लोकजास्सौख्य युता व भूवु र्गुरो कृपासागर लसत्प्रमालाः ॥७०॥

अर्थ—इस प्रकार गुरुजी के आशीर्वाद देनेपर ध्रुवजी तथा उनके साथी सब कृतार्थ हुये परम सौख्य पाये ध्रुवलोक वासियों का जीवन पवित्र हो गया ॥७०॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमदुदासीनवर्य्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डि-देव गुरु चरणकमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे अलकापुरी, धर्मलोक, इन्द्रलोक एवं ध्रुवलोक गमनोपदेश प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मषनाशिनी अष्टाविंशति तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२८॥

॥ एकोन त्रिंशतितमा किरण प्रारम्भः ॥

श्रीचन्द्र देवो ध्रुव लोकतोऽथ समण्डली मण्डित सर्व लोकः ।
विरिञ्चिलोकाय विशाल नेत्रः चचाल वालार्क इवोदयाद्रेः ॥१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र मुनि जी अपनी उदासीन साधु मण्डली सहित ध्रुवलोक से चल सब लोकों को सुशोभित करते हुये ब्रह्मा के लोक में आते भए जो बाल सूर्य के समान देदीप्यमान दया से द्रवित होने वाले विशाल नेत्र वाले हैं ॥ ॥

पद्मासनं पद्म समान पादः वृद्धं प्रवृद्धाखिल ज्ञान राशिः ।
चतुर्मुखं चारु मुखेन्दु लक्ष्मीः वेदान धीयान मनन्त वेदी ॥२॥

अर्थ—ब्रह्मा जी कमल के आसन पर बैठे हैं जो वृद्धों से भी वृद्ध अखिल ज्ञान की राशि हैं जिनके चार मुख बड़े सुन्दर चन्द्रमा के सदृश्य श्रीयुत हैं जिनसे वेदाध्ययन कर रहे हैं ॥२॥

उपास्यमानं सनकादि सिद्धै रुपास्यमानः स्वसमग्र शिष्यैः ।
गत्यै विमानी कृत राजहंसं गत्या विमानी कृत राज हंसः ॥३॥

अर्थ—सिद्ध सनकादिकों तथा समग्र शिष्यों से जो उपास्यमान हैं जिनका चलने का विमान (सवारी) राजहंस है जहां पर श्रेष्ठ पुरुष ही जाया करते हैं ॥३॥

विसृष्ट नाना विधलोक राशिं विसृष्टनाना विधलोक राशिः ।
सरस्वतीवास पवित्र कण्ठं सरस्वतीवास पवित्र कण्ठः ॥४॥

अर्थ—जिस ब्रह्मा जी ने अनेक प्रकार की सृष्टि की रचना की है जिस विस्तार सृष्टि में अनेक प्रकार के लोगों का समूह है जिन ब्रह्मा जी के पवित्र कण्ठ में सरस्वती निवास कर रही है, वही सरस्वती पवित्र पुरुषों के कण्ठ में निवास करती है ॥४॥

पितामहं मोदित सर्वलोकः श्रीचन्द्र देवः शुभमार्ग गामी ।
तथैव तस्मादपि नैकरूपमातिथ्य मङ्गीकृतवान् कृतज्ञः ॥५॥

अर्थ—ऐसे पितामह (ब्रह्मा जी) सर्व लोकों को प्रसन्न करने वाले श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज को देखते भये जो शुभ मार्ग के चलने वाले थे गुरु श्रीचन्द्र जी ने ब्रह्मा जी का आतिथ्य सत्कार स्वीकार करके बड़ी कृतज्ञता प्रकट की ॥५॥

॥ विष्णुलोक ॥

कृच्छ्रेण तेनानुमतोऽथ चन्द्रः चचाल वैमानिक वन्द्यमानः ।
विमान मार्गेण लघु प्रपेदे द्वारं रमाकान्त गृहस्य देवः ॥६॥

अर्थ—ब्रह्मलोक से अकेले चलकर अपने साथ के उदासीन साधुओं की मण्डली को यहीं छोड़ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् विमान् द्वारा बैकुण्ठ में विष्णु भगवान् के दरवाजे पर पहुँचते भये ॥६॥

जयोऽपि दृष्ट्वा विजयोऽपि चन्द्रं विषिस्मिये सस्मित चारुवक्त्रम् ।
वक्तुं तमित्थञ्च चकार बुद्धिं धीमाञ्जयः प्राञ्जलिनम्र मूर्तिः ॥७॥

अर्थ—जय विजय ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का स्वरूप देख करके विस्मित हो सुन्दर बचनों द्वारा नम्र भाव से दोनों हाथ जोड़ पूछते भये ॥७॥

कुतोभवान् कश्च भवान् किमर्थं समागतः सद्भिरुपास्यमानः ।
नियोज्यतामेष जनो निकामं किमत्र कार्यं भवतो विधेयम् ॥८॥

अर्थ—आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं क्या काम है क्या नाम जो आपका काम हो हमको कहिये ॥८॥

॥ जगद्गुरु श्रीचन्द्र उवाच ॥

श्रीचन्द्र नामाहमनन्त शायिनः श्री चक्रपाणेः शुभदर्शनेच्छुकः ।
संसूच्यतां वारिधि कन्यका धवः मां वेत्ति सर्वात्मतया स सर्ववित् ॥९॥

अर्थ—मेरानाम श्रीचन्द्र है चक्रपाणि विष्णु भगवान् का दर्शन करने की मेरी इच्छा है आप जाकर उनको सूचना दो वह हमारी सर्व व्यवस्था जानते हैं क्योंकि वह सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी हैं ।९॥

जयेन गत्वा विनिवेदितं तत् श्रुत्वा हरिः स्मरेमुखः प्रतस्थे ।
प्रसन्न श्रीचन्द्र शिवावतारः मया स्वरूपो नहि भेद रश्च ॥१०॥

अर्थ—जय ने जाकर श्री विष्णु भगवान् से सब समाचार निवेदन किया भगवान् सुनते ही बड़े प्रसन्न हो बोले कि वह साक्षात् शङ्कर जी हैं उन्होंने कलियुगी जीवों का उद्धार करने को अपना मनुष्य शरीर धारण किया है उनमें और हम में कोई भेद नहीं है ॥१०॥

तत्स्वागतार्थं कथयाञ्चकार लक्ष्मीं स्वकीयामभि संप्रवृद्धाम् ।
सम्भार कूटो वहुभिः प्रकारैरेकत्र संगृह्य च शीघ्र मेव ॥११॥

अर्थ—लक्ष्मी जी से बोले कि जल्दी से पूजा की सामग्री इकट्ठी करो बड़े पुण्य से शंकर का अवतार भगवान् श्रीचन्द्र जी आये हैं ॥११॥

तत्पूजनार्थं क्रिय तां प्रबन्धः पुण्याधिका च्छङ्कर देवयात्रा ।
दृष्ट्वा तु विष्णुं सनमाम योगी स्वयम्महेशं हृदये ललाग ॥१२॥

अर्थ—उनकी पूजा का समस्त प्रबन्ध तय्यार करो ऐसा कह आप बाहर गये विष्णु भगवान् को देख योगिराज श्रीचन्द्र देव जी ने नमस्कार किया विष्णु जी ने शंकर रूप श्रीचन्द्र को गले लगाया ॥१२॥

शङ्ख चक्र धरं श्रीशं वरा वनत हस्तकम् ।
किरीट मुकुटो पेतं कुण्डलाभ्यां विराजतम् ॥१३॥

अर्थ—शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, श्री (लक्ष्मी) के ईश (पति) क्रीट, मुकुट पहिरे हुये कानों में कुण्डल विराजमान ॥१३॥

दिव्या भरण संपूर्णं पीताम्बर धरं विभुम् ।
कोटिकंदर्प लावण्यं श्री पतिं विष्णु देवकम् ॥१४॥

अर्थ—दिव्याभरण से पूर्ण सुसज्जित पीताम्बर धारी कोटि काम देव की लावण्यता के लजावन हार लक्ष्मी पति श्री विष्णु भगवान् देवाधि देव ॥१४॥

सहस्रादित्य संकाशः सहस्रेन्दु सम प्रभः ।
सहस्रहुत् भुव प्रख्यो विख्यात विभवोदयः ॥१५॥

अर्थ—सहस्र सूर्य के समान प्रकाश था सहस्रों चन्द्रमा के समान प्रभा विराज मान थी, सहस्रों अग्नि के समान प्रखरित (उजाला) हो रहा था विश्व विख्यात विभव का उदय हो रहा था ॥१५॥

हस्तौ गृहीत्वा विमले च सिंहासने तु संस्थापितवान नादि ।
प्रक्षाल्य पादौ गुरुदेवकस्य पूजाञ्चचक्रे कमला स विष्णुः ॥१६॥

अर्थ—श्री विष्णु भगवान् गुरु श्रीचन्द्र जी का हाथ पकड़ अन्दर लाय उत्तम सिंहासन पर अपने साथ बैठाया और लक्ष्मी ने गुरुदेव जी का चरण कमल धोके सब प्रकार से पूजन किया ॥१६॥

विष्णु शिवेनैवहि कोऽपि भेदो य एव विष्णुस्सचशङ्करोहि ।
दिव्यान्तु मालां स ददौ तदीय गले विशाले गुरुदेव कस्य ।१७।

अर्थ—शिव, और हमारे में कोई भेद नहीं है जो हम हैं वही शिव हैं ऐसा कहकर विष्णु जी ने एक दिव्य ज्योतिवाली माला श्रीचन्द्रदेव गुरु के गले में डाल दिया ॥१७॥

॥ बैकुण्ठवासी उवाच ॥

अये ज्ञान मूर्ते महाकाल काल कलाकोल कल्लोल भल्लोल जाल ।
विशालोल्लसज्जालमालाति माल प्रभाभाल तालातिताल प्रचाल ॥१८॥

अर्थ—वैकुण्ठ निवासी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की स्तुति करते बोले कि हे भगवन् आप ज्ञान कला सागर ज्ञानमूर्ति महाकाल के काल महा विद्या महाकला के कल्लोल में नाना प्रकार की सत्या सत्य की रचना करनेवाले परम पवित्र विशाल भाव युक्त माला को धारण करने वाले प्रकाश की छटा आपके ही मस्तक से प्रखरित होने वाली ॥१८॥

अयेव्यापक ब्रह्मजंजाल जाल महायोगि निर्वाण लीला प्रचाल ।
ह्युदासीन लावण्य लीलातिलीन समायामि बैकुण्ठ निष्ठस्समृद्धिम् ॥

अर्थ—हे व्यापक ब्रह्म समस्त जंजाल के ढाने वाले महायोग निर्वाण लीला के चलाने वाले उदासीन सम्प्रदाय की लावण्यमयी लीला में सदा निमग्न रहनेवाले आपके दर्शन से हम वैकुण्ठ वासी लोग अगणित सुख समृद्धि को पा रहे हैं ॥१६॥

त्वदीयाकृपा भारते नैव सृष्टौ सदानन्द दात्री पुराणी प्रसिद्धा ।
समाश्रित्य हिन्दु प्रजाश्वेत ऐपि भजन्ते नमस्यन्ति सुद्धं महेशम् ॥

अर्थ—हे प्रभु श्री जगद्गुरु जी आपकी कृपा न केवल भारत पर ही है किन्तु समस्त सृष्टि में आनन्द देनेवाली सनातन चिरन्तं अपार अगम्य अगोचर परम गोचर अनादि काल से प्रसिद्ध है हिन्दू प्रजा एवं समस्त प्राणी आपका ही आश्रय लेकर शुद्ध महेश आपको ही हर प्रकार से नमस्कार तथा पूजा करते हैं ॥२०॥

त्वमेवासि बैकुण्ठ रूपं समग्रं त्वमेवासि नारायण ब्रह्म तत्वम् ।
त्वमेवासि भूमिर्जल पर्वताश्च त्वमेवासि खं ब्रह्मवेद स्वरूपम् ॥२१॥

अर्थ—हे जगद्गुरु अनाथ नाथ सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान श्रीचन्द्र महाराज आपही स्वयं वैकुण्ठनाथ हैं, नारायण हैं, ब्रह्म हैं, परंतत्व हैं, आपही पृथ्वी हैं आपही जल पर्वत आकाश वेद सब कुछ हैं ॥२१॥

त्वमेवासि कर्त्ता विधिर्ब्रह्मनामा त्वमेवासि विष्णुर्महारक्षकश्च ।
त्वमेवासि शेषो महेशो भवेशः दयेशः क्षमेशः कला काम लेशः ॥२२॥

अर्थ—आपही ब्रह्मा हैं, आपही विष्णु हैं, आपही महेश हैं, आपही शेष हैं, आपही भवेश हैं, आपही दया के मालिक हैं, आपही क्षमाके मालिक हैं, आपही कलाके मालिक हैं ॥२२॥

त्वदीयाच्छटा चेतनांशं सदैव जडेस्थापत्यत्र नैवास्त वादः ।
यदस्तमेवसत्तत्वमत्रैव सृष्टौ त्वमेवासि सर्वन्त्वमेवासि सर्वम् ॥२३॥

अर्थ—आपका ही ज्ञानविंदु चेतनांश सदा जड़को चेतन करता है इसमें कोई विवाद नहीं है इस सृष्टि में जो सततत्व है वह सब आरही हैं ॥२३॥

त्वमेवासि माया ह्यसत्तत्त्वमेव त्वमेवास्त्य निर्वाच्य वाच्याभिरायः ।
मुनीनां सहस्रैस्तथा देव वृन्दै मनुष्यै महर्षि प्रवीरैः प्रसिद्धैः ॥२४॥

अर्थ—हे गुरुदेव माया स्वरूप भी असत् तत्व भी यदि है तो भी आपही हैं यदि अनिर्वाच्य कोई है तो भी आप ही हैं, हजारों मुनि देव मनुष्य ऋषि महर्षि आदि जितने भी प्रसिद्ध उपासक हैं वह भी आप ही हैं ॥२४॥

त्वमेवास्त्युपास्य स्त्वमेवास्त्युपास्यो न कोऽप्यस्ति लोके पृथक् शक्तिशाली ।
त्वमेवासि विष्णुस्त्वमेवासि शेषो गणेशो न भेद प्रभावः कथञ्चित् ॥

अर्थ—जितने भी उपासक हैं सब के आप ही एक अनन्य उपास्य देव हैं आपको छोड़कर दूसरा कोई उपास्य है नहीं क्यों कि आप ही विष्णु, शिव, शेष, गणेशादि हैं आप में तथा इनमें भेद भाव किञ्चित भी नहीं है ॥२५॥

तवैवास्ति नामापि विष्णु र्विधिश्च न जिज्ञासवो भेद भावं भजन्ति ।
त्वमेवासि शक्ति र्महा शक्ति रिष्टा त्वमेवासि सर्वन्त्व मेवासि सर्वम् ॥

अर्थ—आप का ही नाम विष्णु आपका ही नाम ब्रह्मा आप का ही नाम शिव है, बुद्धिमान लोग इसमें भेद नहीं मानते आपही शक्ति आपही महाशक्ति दश महा विद्या हैं अब मैं कहां तक गिनाऊँ जो कुछ भी हैं वह आप ही आप हैं ॥२६॥

महायोग शीला महा ध्यान शीला महा कर्म लीला लवङ्गा जनाये ।
सदा जानते जानते गुप्त भेदरहस्यन्तु सायुज्य मुक्तिं प्रदञ्च ॥२७॥

अर्थ—महायोग शील, महा ध्यान शील, महा कर्म लीलाधिराज आप हैं और आप के भक्त ही इस परम पवित्र गुप्त रहस्य को जानते हैं जो सायुज्य मुक्ति देने वाले हैं ॥२७॥

वैकुण्ठ वासिनस्सर्वेस्स्तुतिं कृत्वा जगद्गुरोः ।
कृत कृत्यावभूवश्च धन्योऽहमिति वर्णकाः ॥२८॥

अर्थ—वैकुण्ठ निवासी इस प्रकार स्तुति करके बोले हे जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी आप के दर्शन से हम कृत्य २ हो धन्य हुये हैं ॥२८॥

॥ विष्णु रुवाच ॥

तदा च भगवान् विष्णु रुवाच वचनं मुदा ।
तवो पदेशाच्छ्रीचन्द्र निर्मलञ्जगदेव हि ॥२९॥

अर्थ—भगवान् विष्णु बड़े प्रसन्न हो बोलते भये हे श्रीचन्द्र जी आपने संसार में अपने उपदेश द्वारा कलुषित हृदयों के हृदय शुद्ध कर धर्म परायण बना दिये आगे और भी बनावोगे ॥२९॥

तव पूजां करिष्यन्ति भक्ति भाव युताश्च ये ।
मम पूजा फलन्तेषा न्नावयोर्भेद भावना ॥३०॥

अर्थ—संसार में जो आपकी पूजा करेगा वह हमारा ही पूजन हुआ समझा जायगा तथा जो हमारा पूजन करेगा वह आप का पूजन माना जायगा हमारे आप में कोई भेद नहीं है कारण ॥३०॥

शिवश्च ममरूपश्च मम रूपश्च शङ्करः ।
मन्यते च तयो र्भेदं नरा नरक गामिनः ॥३१॥

अर्थ—शिवजी मेरा ही रूप हैं और हम शिव रूप हैं जो मनुष्य हमारे तथा शङ्कर में भेद भाव की बुद्धि रखता है वह नरक गामी होता है ॥३१॥

अहं तोष करिष्यामि तव पूजां करोतिशः ।
तव पूजानुरक्ताना मद्वैकुंठ समागमः ॥३२॥

अर्थ—जो कोई हमको प्रसन्न करना चाहे वह आपकी सेवा पूजा श्रद्धा से करे आप की सेवा पूजा करने वाला सदैव धन धान्य से परिपूर्ण रह कर अन्त में सीधा वैकुण्ठ धाम में हमारे पास आ जावेगा ॥३२॥

उदासीन पथो नित्यः श्रौतश्च मम सम्प्रियः ।
त्वयामा कश्च तत्रैव मे की भूय वसाम्यहम् ॥३३॥

अर्थ—आपने अपने उदासीन सम्प्रदाय की अच्छी उन्नति की है तथा आगे भी करनी है, यह उदासीन भेष हमको अत्यन्त प्यारा है ॥३३॥

नत्वा च विष्णुं गुरु देव नामा जगाम गेहाच्च विशाल वृत्तेः ।
सम्मेलनार्थं परमेश्वरस्य तल्लोक गामी च वभूव सद्यः ॥३४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् श्रीविष्णु भगवान् को नमस्कार कर वि० सं० १६०७ चैत्र सुदी ८ को ईश्वर से मिलने वास्ते जाते भाये ॥३४॥

पूर्वमेव महामाया समुवाच सनातनम् ।
ईश्वरस्य सुलोके च कथमागमनन्तव ॥३५॥

अर्थ—वहाँ जाने पर महामाया आकर श्रीचन्द्र भगवान् से पूछती है कि आप सनातन शंकर यहाँ कैसे आये हैं आपका दर्शन दुर्लभ है ॥३५॥

महा माये दर्शनन्तु तद्भिन्ना नैव कामना ।
कृपया सूचना देया दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥३६॥

अर्थ—गुरू श्रीचन्द्र जी बोले कि हे महामाये हम ईश्वर का दर्शन करने आये हैं, और काम नहीं है तुम कृपा करके हमारे आने की सूचना दे देव ॥३६॥

गता चशक्तिः परमेश्वराय निवेदयामास शिवस्स्वयन्तु ।
समागतो दर्शन लिप्सयातु सदा ह्युदासीन तरङ्ग मग्नः ॥३७॥

अर्थ—ऐसा वचन सुनके माया अनादि शक्ति ने जाकर ईश्वर से कहा कि शिव स्वरूप श्रीचन्द्र जी उदासीन भेष धारण किये हुये मृत्युलोक से आपके दर्शनार्थ आये हैं ॥३७॥

विशाल वृत्तं समवाप्य देवो ब्रह्मापि शीघ्रं प्रससान तत्र ।
तमाजुहावाखिल देव देवं न चावयोः कोऽपिच भेद भावः ॥ ३८॥

अर्थ—ऐसा पवित्र समाचार सुन शीघ्र अह्लादित होकर ईश्वर ने कहा कि उनको हमने आपही बुलाया है, मेरे उनके में भेद नही है वह साक्षात् शङ्कर हैं ॥३८॥

श्री शक्ति राद्या परि पूज्य देवमन्तस्तदानीं समुपेयिवांश्च ।
प्रवेशयामास जगन्निवासे सिंहासनस्थेस्तुतिमाततान ॥३६॥

अर्थ—आदि शक्ति शंकर देव की पूजा करके भीतर ईश्वर के पास ले गई श्रीचन्द्र देव जी ईश्वर को प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥३६॥

॥ श्री गुरु श्रीचन्द्र उवाच ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव लोकेऽत्वति व्यापकोऽसि ।
तवैव लीला जगति प्रसिद्धा तवैव सर्वं चलति प्रतिष्ठम् ॥४०॥

अर्थ—आप संसार के माता पिता हैं आपही सब लोक में व्याप्त हैं आप ही की लीला जगत प्रसिद्ध है उसी लीला से समस्त संसार चल रहा है ॥४०॥

अनादौ संसारे जनिमृतमये दुःखतमना,
मुमुक्षुः सन्कश्चिच्चजिति हि गुरुं ज्ञान परमम् ।
ततो ज्ञात्वायं वै तुदति न पुनः क्लेश निवहै,
भजेऽहं तं देवं भवति च परो यस्य भजनात् ॥४१॥

अर्थ—अनादि संसार में दुखित मन अज्ञानी लोग जन्म मरण का दुःख पाते रहते हैं जो मुमुक्षु जन हैं वह गुरु की कृपा से परम ज्ञानको पाय आप का भजन कर सुखी होते हैं जब आपका ज्ञान प्राप्त हो जाता है. पुनःकिसी प्रकार का क्लेश नहीं रह जाता आपके भजन करने से सब का भजन हो जाता है आप करुणाधाम हैं आपका मरम आपकी कृपा बगैर कोई नहीं जान सकता, आप अलख हैं अगोचर हैं गहिर और गम्भीर हैं, हे ईश्वर आपकी तुल्यता पर आप ही हैं, सर्व गुणागार त्रिगुण से परे अतीत हो ४१॥ तभी गीता अ० १८ में कहा है

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्रा रूढानिमायया ॥६१॥

श्रीचन्द्रेण कृतां श्रुत्वा स्तुतिं तां शम्भुरभ्यधात् ।

॥ ईश्वर उवाच ॥

साधु साधु महा भाग ! तुष्टोऽस्मि त्वयि सन्ततम् ॥४२॥

अर्थ—जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो शंकर जी के अवतार थे उनकी स्तुति सुनकर

ईश्वर बोले कि हे महाभाग तुम धन्य हो धन्य हो तुम्हारी स्तुति सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ ॥४२॥

मयैवेदं कृतं रूपं संसार हित वाञ्छया ।
कार्या के नापि जाड्येन नावयो र्भेद भावना ॥४३॥

अर्थ—हमारी ही इच्छा से आपने यह रूप धारण किया है जो संसार के हितार्थ है आप जो कार्य करते हैं वह हमारे ही कार्य हैं इसमें कोई भेद भाव नहीं है ॥४३॥

श्रीचन्द्रदेव प्रबल प्रतापिन् तवोपदेशात्सकलाश्चलोका ।
तृप्ता भवन्त्यत्र न कोपिवादः तस्मात्त्वमेवासि यथार्थ नामा ॥४४॥

अर्थ—यह श्रवण कर ईश्वर प्रसन्न हो बोलते भये हे श्रीचन्द्र जी आपका दर्शन करके हम महान आनन्द को प्राप्त हुए आपनेसंसार में उपदेश द्वारा जितने लोगों को सीधे मार्ग में लगाया है आज तक इतना सरल निष्पक्ष यथार्थ हितकारी उपदेश किसी ने नहीं दिया आपने हमारे उदासीन भेष को फिर से उन्नति करके शिखर पर चढ़ा दिया आपने अपना कर्तव्य पूर्ण रीति से चरितार्थ कर दिखाया। कलियुग के प्राणीअल्प से अल्प बुद्धि वाले भी आपके सरल उपदेशों से लाभ उठा कर अपना जीवन सफल करेंगे जो महत् पुरुष संसार के कल्याणार्थ कार्य करते हैं वह प्रशंसनीय हुआ करता है ॥४४॥

तवानेनोपदेशेन लोकाः साफल्यमागताः ।
पारं पिपीलिका याति राजा संबद्ध सेतुना ॥४५॥

अर्थ—आपके मुख का उपदेश सुननेवाले वाले लोग हमारे लोक में आकर निवास करेंगे और भवसागर से ऐसे पार हो जावेंगे जैसे राजा के बनाये हुये पुल पर चींटी पार कर जाती है ॥४५॥

निष्पक्ष पात गम्भीरा भारती भारती व ते ।
सर्व लोकोपकारण्य जायतां शाश्वतीः समाः ॥४६॥

अर्थ—आपका उपदेश पक्षपात रहित सर्वलोक का उपकार करनेवाला है और सदा स्थिर रहनेवाला है ॥४६॥

इत्थमाभाष्य दोर्भ्यां तं कण्ठे जग्राह शङ्करः ।
एका जाता तदा मूर्तिः पयसीव यथा पयः ॥४७॥

अर्थ—ऐसा कह ईश्वर ने श्री शङ्कर जी के अवतार जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को

अपने गले से लगाय कहा हमारे आपमें कोई भेद नहीं है जैसे दूध और दूध को बनी हुई वस्तु में भेद नही होता ॥४७॥

तिर्यग्विलोक या मास ततो हैमवती श्वरम् ।
स्मरे चारुमुखः सोऽपि तामित्थं प्रत्यबोधयत् ॥४८॥

अर्थ—हे शंकर जी संसार में जो टेढे पुरुष हैं वह भी आपके सुन्दर मुख से निकले उत्तम ज्ञान का प्रवोध पायकर सीधे हो जाते हैं ॥४८॥

गिरिजे नावयो भेदः एकोऽहं द्विविधोऽभवम् ।
न रोचते तवेदं चेत् भिन दुम्येष प्रसीद में ॥४६॥

अर्थ—हे शंकर जी आप में और हमारे में कोई भेद नही है दो शरीर से होते हुये भी एक हैं, जिसपर आप कृपा करेंगे उस पर हमारी कृपा है जिसपर हम कृपा करेंगे उसपर आपकी कृपा है ॥४६॥

इत्युक्त्वा सहसा भूयः पृथक्चक्रे तनुद्वयम् ।
कृताञ्जलि पुटश्चन्द्रः यातु कामोऽब्रवीद्भवम् ॥५०॥
निर्विकल्पं परं ज्योतिः मम चेतो दिदृक्षति ।
अनुमन्यस्व देवेश भूयासं सफलो यतः ॥५१॥
इति विज्ञापितस्तेन विषमाचोऽभ्य भाषत ।
यथेच्छं गच्छ शक्तोऽसि त्वं सर्वं कर्तुमद्भुतम् ॥५२॥

अर्थ—जब इस प्रकार से ईश्वर ने कहा तब श्री गुरु श्रीचन्द्र जी हाथ जोड़कर बोलते भये आप आशिर्वाद करें जिससे मैं सच खण्ड जाकर निरञ्जनी ज्योति का दर्शन करूँ। ईश्वर ने प्रसन्न हो कहा आप सच खण्ड में जाकर परम ज्योति का अवश्य दर्शन करें, सच खण्ड यहां से कई लक्ष योजन दूर और ऊँचा है, अगम और अगोचर है जहां अनाहद शब्द रूपी नगाड़ा बजता रहता है प्रकृति जिससे जराभी सम्बन्ध नही रखती, वहांकी सब बातें अलक्षित (अजगैब) हैं, जहां निरंकार का निवास है, वहांतो कोई विरला ही पहुँचता है, जो सुन्ना वस्था में ताड़ी लगाकर बैठे वही वहाँ आप सरीखा कोई पहुँच सकता है, आपकी वृत्ति चिदाकाश को चढ़ी है इसलिये आपको कुछ अगम नहीं है, यह हमारा कहना सत्य सत्य है ॥५०-५१-५२॥

॥ परम ज्योति दर्शन ॥

अथ श्रीचन्द्र भगवान् सहसा पावनी तनूम् ।
पश्यतामेव सर्वेषा विधायान्तर्दधे विभुः ॥५३॥

अर्थ—अब श्री१०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ईश्वर के पास से पवन में अपने प्राणों को मिला के उड़ गये, यह देख सब आश्चर्य में भर गये कारण तत्त्व में तत्व मिला के आज तक कोई ऊपर न गया था आप सब को देखते थे आपको कोई न देखता था ॥५३॥

परंज्योतिराख्यं परञ्ज्योतिराख्यं परञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिराधार तत्वम् ।
महाशून्य शून्यं निराधार शून्यं समतुर्ध्वात्समर्ध्वम्परं नैववाच्यम् ।५४।

अर्थ—महा सून्य से ऊपर सचखण्ड है जहाँ पर अनाहद का डङ्का बज रहा है निरञ्जनी ज्योति प्रकाश रही है जिसका प्रकाश करोड़ों सूर्य से भी अधिक हो रहा था ॥५४॥

मायोपाधि प्रपञ्चादि विहीनं परमा मृतम् ।
ध्रुवं ज्योतिः समालोक्य मुमुदे चन्द्र उत्तमम् ॥५५॥

अर्थ—माया की उपाधि प्रपञ्चादि से प्रथक परम सुख दाई अचल ज्योति का अवलोकन कर श्री१०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अति प्रसन्न होते भये ॥५५॥

यत्र सृष्टि तरङ्गाणां ब्रह्माब्धौ नास्ति कल्पना ।
तत्परं ज्योति रासाद्य चन्द्रश्चन्द्र इवा भवत् ॥५६॥

अर्थ—जगद्गुरु जी सुन्न से आगे गये तब जल विम्व को पार कर सचखण्ड जापहुँचे कैसा है सचखण्ड जहाँ पर सृष्टि के रचइताब्रह्मा की बुद्धि जो समुद्रवत् है वह भी कल्पना नहीं कर सकी अर्थात् ब्रह्मा की कल्पना से बाहर जो परम ज्योति है वहां श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् चन्द्रमा सद्दश्य पहुँचते भये॥५६॥

ब्रह्मरन्ध्र प्रविष्टानां योगिनां गोचरं परम् ।
निर्विकारं निरालम्वं परं ब्रह्माभिधीयते ॥५७॥

अर्थ—ब्रह्मरंध्र में प्रविष्ट हो उदासीन साधू योग करने वाला ही अपनी इन्द्रियों का विचार (ज्ञान) कर निर्विकार निरालम्ब हो परब्रह्म काबोध करते हैं ॥५७॥

न तत्र द्योतते चन्द्रः न वह्निर्न च भास्करः ।
स्वतः प्रकाशमानं तत् निर्मलं ज्योति रिष्यते ॥५८॥

अर्थ—न वहाँ पर चन्द्रमा उदय होता है न अग्नि प्रकाशित होती है न भास्कर (सूर्य) का ही उजाला होता है वह परम ज्योति तो स्वतः प्रकाशमान निर्मल है ।।५८।।

ततो निवर्तमानश्च श्रीचन्द्रः सर्व शक्तिमान् ।
दृष्ट्वा भगवतीं तत्र मणिवन्धेऽति भास्वरे ।।५६।।

अर्थ—श्री११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् सचखण्ड के द्वार अधर खण्ड के ऊपर को नेत्र उठाकर देखा जिसके देखते ही परम ज्योति दृष्टिगोचर हुई, जिसका दर्शन कर बड़े प्रसन्न हो हाथ जोड़ते भये, उसके वर्णन करने की किसको शक्ति है, जिसने उसे देखा वही वर्णन करे तो कर सकता है अन्य की क्या शक्ति जो कह सकै वहाँ से लौटते समय सात शून्य पार कर ब्रह्मलोक से अपने साथ वाले उदासीन साधुओं को साथ लै मणिवन्ध पुर में आय भगवती से मिलते भये जो मणिवन्ध पुर अत्यन्त प्रकाशमान है ।।५९।।

ततश्च विवधं पश्यन् कौतुकं कौतुकी परम् ।
नीलगिरिं समायातः नील माणिक्य मण्डितम् ।।६०।।

अर्थ—वहाँ अनेक प्रकार के कौतुक देखते हुये परम कौतुकी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य्य नीलगिरि पर आते भये जो नोले माणिक्य के समान शोभायमान हो रहा था ।।६०।।

चिरञ्जीवित मा लोक्य तत्र रामानु रागिणम् ।
काक भुशुण्डमत्यन्तं चन्द्रो मोद मुपा ययौ ।।६१।।

अर्थ—जहाँ पर चिरञ्जीवी कागभुशुण्ड जी निवास करते थे जो श्री राम जी के अत्यन्त भक्त थे वह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी को देख कर परम आनन्दित हो प्रणाम पूजन कर आसन पर बैठाय स्वागत करते भये ।।६१।।

समायातं समालोक्य श्रीचन्द्रं साधु मण्डली ।
औन्नत्यं सत्यलोकस्य पप्रच्छ भृशमुत्सुका ।।६२।।

अर्थ—श्री ११०८ जगदगुरु श्रीचन्द्र भगवान् को श्री काकभुशुण्ड जी अत्यन्त प्रसन्नता से देखते रहे। गुरु श्रीचन्द्र जी के साथ के साधुओं ने नमस्कार कर हाथ जोड़ सच खण्ड की ऊँचाई और वहां का समस्त वृत्तान्त बड़ी उत्सुकता पूर्वक पूछते भये ।।६२।।

तन्निशम्य स सत्यस्य लोकस्यौन्नत्यमद्भुतम् ।
श्रीचन्द्रः क्रमशस्तत्र वक्तुं समुपचक्रमे ।।६३।।

अर्थ—उनका प्रश्न जो लोक की उन्नति करने में अद्भुत था उसको श्री ११०८ जगद् गुरु श्रीचन्द्र भगवान् समझा के कहने लगे ॥६३॥

वैकुण्ठादधरः खण्डः पर्वतः परमाद्भुतः ।
पञ्च विंशति साहस्र योजनानि स्थितो महान् ॥६४॥

अर्थ—हे मुनीश्वरो वैकुण्ठ से २५ हजार योजन पर अधर खण्ड पर्वत है जो परम अद्भुत है ॥६४॥

साहस्राणि च पञ्चाश योजनानां ततः परम् ।
ईनार पर्वतो भाति तुङ्ग शृङ्गोऽति विस्तरः ॥६५॥

अर्थ—उसके आगे ५० हजार योजन पर ईनागिरि आता है जिसके उत्तुङ्ग शिखरों का अति विस्तार है ॥६५॥

योजनानाञ्च द्वेलक्षे समतीत्य ततः पुनः ।
कलका पर्वतो भाति सानुभिर्मणि मण्डितैः ॥६६॥

अर्थ—आगे दो लक्ष योजन पर कलिका पर्वत आता है जो मणियों के समान सुशोभित है ॥६६॥

योजनानामनन्तानि लक्षाणि परतस्ततः ।
ध्वान्ता वृतं सर्व मेव नान्यत् किञ्चन दृश्यते ॥६७॥

अर्थ—आगे घोर अन्धकार (धुन्धकार) जो कई लक्ष योजन है जहां पर कुछ भी दिखाई नहीं देता ॥६७॥

अनिर्वाच्य शब्द मनिर्वाच्य शब्दं तुदन्ध्वन्येत सत्य खण्डातिखण्डन् ।
निराधार धारं सदाऽधारधारं महाऽधार धारं कदाचिन्नवाच्यम् ॥६८॥

अर्थ—जो अनिर्वाच्य (वाणी से अगम) मनसे भी अगम घोर ध्वंधाकार सत्य खण्ड जो सब खण्डों से उत्तम निराधार होता भी सर्वदा सबका आधार महाधार कभी नहीं विचलनेवाला ॥६८॥

ततोऽपि परतो गत्वा कोटि सूर्य प्रकाशवत् ।
प्रकाशते प्रकाशोऽसौ ध्वान्तं तत्र न विद्यते ॥६९॥

अर्थ—उसके आगे चलने पर फिर बड़ा तीव्र प्रकाश आता है जो करोड़ों सूर्य से

भी अधिक प्रकाशमान है जिसके प्रकाश से संसार में प्रकाश होता है जहाँ पर अन्धकार नहीं रहता ॥६९॥

स एव बुध्यतां द्वारं सत्य खण्डस्य शाश्वतम् ।
अनाहतस्तत्र नादः अधरं खण्ड मुच्यते ॥७०॥

अर्थ—वही सच्च खण्ड है जिसका फाटक अधर खण्ड है जहाँ पर अनाहद का डंका बजा करता है ॥७०॥

ततस्तत्रत्य वृत्तान्तः आख्यातः सर्व एव हि ।
साधुभ्यश्चन्द्र देवेन श्रुतो विस्मित मानसैः ॥७१॥

अर्थ—वहाँ का सब वृत्तान्त आद्योपान्त सुनकर सब मुनि मण्डली जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की स्तुति कर धन्य २ कहने लगे ॥७१॥

ततः श्रीचन्द्र भगवान् परतो वक्तुमुत्सुकः ।
सर्वं संश्रावयामास यथावृत्तं तदद्भुतम् ॥७२॥
ऋष्याकाश रसेन्दौ च वैक्रमे चैत्रि के सिते ।
नवम्यां राम जन्मिन्या मीश्वरं दृष्टवानहम् ॥७३॥

अर्थ—फिर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोलते भये कि वि० सं० १६०७ चैत्रसुदी ९ (रामनवमी) को हमने ईश्वर का दर्शन किया था ॥७२-७३॥

एकादश्यां मया दृष्टं परं ज्योति र्विकल्मषम् ।
सर्वं रूप मरूपञ्च यच्च चित्रं विराजते ॥७४॥

अर्थ—पीछे चैत्रसुदी ११ को हमको परम ज्योति का दर्शन हुआ जो सब कल्मष का नाशक है जिसको वेद कहता है "रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव" ॥७४॥

एतदाकर्ण्य सर्वे ते शिष्याः प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ।
धन्या वयं परं ज्योतिर्द्रष्टुस्तव विलोकनात् ॥७५॥
इत्युक्त्वाऽऽनन्द वाष्पौघ समाच्छन्न विलोचनाः ।
श्रीचन्द्रचरणा जेते साष्टाङ्गाश्च ववन्दिरे ॥७६॥

अर्थ—यह समस्त प्रसंग सुनकर सर्व उदासीन मुनिमण्डली बड़े आश्चर्यित हो हाथ जोड़कर बोलते भये कि आपका ही यह काम था जो परम ज्योति का दर्शन कर आये, हमलोगों

का भी बड़ा भाग्य है जो आपके संगसे स्वर्गलोक ब्रह्मलोकादि का दर्शन कर लिया और आपका दर्शन हमको परम ज्योति के दर्शन के बराबर है आप धन्य हैं ऐसा कह सर्व साधु परम आनन्दित हो साष्टांग प्रणाम करते भये ॥७५-७६॥

सप्तर्षि शून्य रस चन्द्रमिते च वर्षे मेषार्क तिथ्यां बुधवासरे च
मायांपुरी सोऽभिजगाम साधुनाम्ना हरिद्वार पदाभिधेयाम् ॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वि० सं० १६०७ मेष संक्रमण (संक्रान्त) वैशाखी वाले दिन काकभुशुण्डि के पाससे अन्तर्धान हो मायापुरी हरिद्वार में आकर अपने सर्व साधुओं समेत प्रकट होते भये ॥७७॥

आविर्भूतं चन्द्रमालोक्य लोकाः हर्षोत्फुल्लाः स्वागतं प्रोचुरस्य ।
उदासीन वेषं जगतं विधाय स्वं कीर्त्तिं वर्णयामास सर्वम् ॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का आविर्भूत संसार के लिये ऐसा सुखदायी हुआ जैसा रात्रिको चन्द्रमा का प्रकाश होता है सब लोग हर्षसे प्रफुल्लित हो आपका स्वागत करते थे उदासीन भेष जो जगत का पूज्य है उसको आपने धारण किया जिसकी सर्वत्र कीर्ति वर्णन की जा रही है ॥७८॥

इदं चरित्रं पठितं पाप नाशन वै भवम् ।
या श्रृणोति नरो भक्त्या विष्णु लोकं स गच्छति ॥७९॥

अर्थ—यह चरित्र जो प्रेम और श्रद्धा से पढ़ेगा उसके सर्व पाप नाश होंगे, और वैभव प्राप्त करेगा अथवा जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रवण करेगा वह अन्त में विष्णुलोक को जावेगा ॥७९॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन-वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १०८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे ब्रह्मलोक, विष्णुलोक होते ईश्वर सम्मेलन परम ज्योति दर्शन काकभुशुण्डि मिलन प्रकरण वर्णनं सकल कलि कलमश नाशिनी एकोनत्रिंशतितमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥२९॥

॥ त्रिन्शति किरण प्रारम्भः ॥

पुण्यतीर्थे हरिद्वारे गङ्गा तीरेऽति पावने ।
श्रीचन्द्रो भगवांस्तस्थौ सह शिष्यो मुदान्वितः ॥१॥

अर्थ—हरिद्वार जो पवित्र तीर्थ है जहाँ पर परम पावन श्री गङ्गाजी बह रही हैं उसी के किनारे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी मण्डली समेत आकर विराजते भये ॥१॥

वर्ष षट्कान्तरे यत्र यान्ति सन्तस्तथा जनाः ।
अर्ध कुम्भोत्सवं कर्तुं स्नातुं दातुं समन्ततः ॥२॥
मेषराशौ स्थिते सूर्य द्वादशे परिवत्सरे ।
पूर्ण कुम्भ महा पर्वोत्सवः सञ्जायते महान् ॥३॥

अर्थ—जहाँ पर हमेश छः साल के पीछे अर्द्ध कुम्भी तथा १२ वर्ष के पीछे पूर्ण कुम्भ महापर्व का बड़ा मेला मेष राशि के सूर्य में होता है जिस अवसर पर जन समुदाय आकर स्नान दान भजन आदि किया करते हैं ॥२।३॥

एकदा भगवांश्चन्द्रः सशिष्य भक्त मण्डली ।
स्थितो विष्णु पदी तीरे चक्रे पुण्या महा कथाः ॥४॥

अर्थ—एक समय भगवान् श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज तथा साधु महात्मागण भागीरथी गंगा तटपर विराजमान थे और गुरु श्रीचन्द्र जी को चारों तरफ घेरे हुये बैठे थे पुण्यमयी कथा श्री गुरु जी कर रहे थे ॥४॥

एतस्मिन्नन्तरे कश्चित् प्राञ्जलिर्भक्ति संयुतः ।
भक्तो भक्त प्रियं देवं वाक्यं वाक्य विदं ब्रवीत् ॥५॥

अर्थ—कथा पूर्ण होने के पश्चात् भक्तमण्डली से एक भक्त उठकर हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक पूछता भया कि हे भक्तों के प्रिय गुरु देव कृपा करके अमृत वाणी से सुनाइये ॥५॥

भगवन् श्रोतुमिच्छामः माहात्म्यं कुम्भ पर्वणः ।
सर्वज्ञा हि महात्मानः हस्तामलकवज्जगत् ॥६॥

अर्थ—हे भगवन् कुम्भ महापर्व का महात्म्य सुनने को मेरी इच्छा है आप सर्वज्ञ महात्मा हैं आपको हस्तामलकवत् (हाथ में लिया हुआ आँवला सदृश्य) जगत भासता है ॥६॥

तच्छ्रुत्वा वचनं देवः वाच्यंध्यात्वेव किञ्चन ।
श्रूयतामिति चा मन्त्र्य धीरं गिर मुदैरयत् ॥७॥

अर्थ—उसका बचन सुनकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने थोड़े समय उसके बचन का ध्यान कर फिर उसके प्रश्नों का उत्तर सुनाने को आनन्दित हो गम्भीर गिरा से बोलते भये ॥७॥

श्रूयते हि पुराणेषु कुम्भपर्व महोदयः ।
व्यासेन च समासेन सच संक्षिप्य वर्ण्यते ॥८॥

अर्थ—हे महोदय ! कुम्भपर्व के उत्तम महात्म्य को पुराणानुसार सुनो जैसा श्री व्यास जी ने कहा है उसको संक्षिप्त में हम वर्णन करते हैं ॥८॥

आसी दैवा सुरं युद्धं समुद्र मथने पुरा ।
मोहिनी वञ्चना क्रुद्धै रसुरैः स्वः सदां भृशम् ॥९॥

अर्थ—समुद्र मथने के पश्चात् अमृत के लिये एक समय देवासुर संग्राम हो रहा था वहाँ पर भगवान् मोहनी रूप धर क्रुद्ध दैत्यों को ठग अमृत देवतों को देते भये ॥९॥

युद्धा वधि सुधा कुम्भं धिषणार्क हिमांशवः ।
गोप्तुं युक्ता महस्वन्तः जुगुपुः सुर सत्तमैः ॥१०॥
कथञ्चिज्ज्ञातवन्तस्ते छिद्रान्वेषणतत्पराः ।
सुरक्षितं सुर श्रेष्ठैः सुधा कुम्भन्तु दानवाः ॥११॥

अर्थ—पुनः अमृत दैत्यों के हाथ लगा विचार देवतों के गुरु बृहस्पति मुनि उस अमृत कुम्भ को छिपाने वास्ते असुरों के सिविर से चुप चाप उठालाये । दैत्यों को यह विदित होते ही वह बृहस्पति मुनि के पीछे लग कष्ट देने लगे और छिद्र देखने में तत्पर हो गये ॥१०-११॥

अनुजग्मुरथैतेषां पीयूषा हरणैषिणः ।
तेषां परस्परं तत्र कलह सुमहान भूत् ॥१२॥
स्थानात्स्थानान्तरं निन्युः सुधा कुम्भं सुरर्षभाः ।
सर्वत्रानुगता दैत्याः क्लेशयन्तो भृशं सुरान् ॥१३॥
कलशं कर्षतां तेषां यत्र यत्र मही तले ।
सुधाया विन्दवः शीर्णाः तीर्थं तत्राऽभवन्महत् ॥१४॥

अर्थ—उस अमृत घर के हरण से परस्पर महान कलह होता देख श्री बृहस्पति जी

जल्दी २ चलने लगे तथा दैत्यों के क्लेश देने (आपस की खींचा खांचो) से घड़े से अमृत पृथ्वी में चार स्थल उछल पड़ा, जहाँ २ सुधा के विन्दु गिरे थे वहां २ तीर्थों का माहात्म्य बढ़ गया और कुम्भ का पर्व लगने लगा ॥१२-१३-१४॥

गोदावर्यामुज्जयिन्यां गङ्ग द्वार प्रयागयः ।
कुम्भ पर्वोत्सव स्तस्मात्क्रियते तत्त्ववेदिभिः ॥१५॥

अर्थ—गोदावरी, उज्जैन, हरिद्वार और प्रयाग में कुम्भ का परवोत्सव उदासीन महात्मा जो बड़े तत्व वेत्ता थे उन्होंने लगाना प्रारम्भ कर दिया ॥१५॥

कुम्भपर्वणि सर्वेषां सतां सम्मेलनं महत् ।
जायते धर्म रक्षार्थं लोक कल्याण कांक्षिणाम् ॥१६॥

अर्थ—बारह २ वर्ष में एक स्थल में साधु महात्मा एकत्र हो के संसार के बिगड़े हुये धार्मिक वातावरण के सुधारने का कार्य क्रम बना के पुनः सब उसी लक्ष को रख सब ओर हिन्दू धर्म का प्रचार करते रहते हैं जिससे लोक का कल्याण होता है यह इच्छा सदैव श्रेष्ठ साधु महात्माओं की रहा करती है ॥१६॥

हरिद्वारे महा पर्व कुम्भ लग्नस्थिते गुरौ ।
तीर्थ राजे कुम्भ पर्व वृषलग्ने वृहस्पतौ ॥१७॥
त्र्यम्बके कुम्भ पर्वस्या द्धिषणे सिंह लग्न गे ।
उज्जयिन्यां कुम्भ पर्व वृश्चिकस्थे च गीष्पतौ ॥१८॥
तस्मिंस्तस्मिन् पुना राशौ द्वादशे परिवत्सरे ।
वर्तते हि सुरा चार्यः तस्मात्कुम्भोत्सवो महान् ॥१९॥

अर्थ—कुम्भ के वृहस्पति होने पर हरिद्वार में वृष के वृहस्पति होने पर प्रयाग में, सिंह के बृहस्पति होने पर त्रिम्बक (गोदावरी) में और बृश्चिक के बृहस्पति होने पर उज्जैन का कुम्भ होता है। वृहस्पति १२ वर्ष में पुनः उसी राशि में आता है इस कारण से बारह वर्ष में कुम्भ महा पर्व लगता है जो महान् पवित्र माना जाता है ॥१७॥१८॥१९॥

अस्मिन् कुम्भोत्सवे दत्तं दानं लक्ष गुणं भवेत् ।
सुकृतश्चैव मन्यच्च कृतं कोटि गुणं भवेत् ॥२०॥

अर्थ—ऐसे पवित्र महा कुम्भ पर्व में कई लक्षों के अंदाज में श्रद्धालु जनता आय २

स्नान, पाठ, पूजा, दान करती है, ऐसे अवसर पर का किया पाठपूजा, दान कोटि गुणालाभ दायक होता है यह बड़े सुकृती जीवों को प्राप्त हुआ करता है ॥२०॥

शिव पुराण ज्ञान संहिता अध्याय ५४ में कुम्भ पर्व का महात्म्य कहा है यह कुम्भ पर्व पुराणों में प्रसिद्ध है तथा विष्णु याज्ञादि ग्रन्थों में भी लिखा है, गुरु सूर्य चन्द्रादि १२ रासियों ने मिलके गुरु वृहस्पति की रक्षा की इसी से १२ रासियों में १२ कुम्भ होते हैं ८ देव लोक में ४ भूलोक में।

पद्मनी नायको मेषे कुम्भ राशि गतोगुरुः।
गङ्गाद्वारे भवेद् योगः कुम्भ नामा तदोत्तमः॥

अर्थ—मेष राशि में सूर्य और कुम्भ राशि में गुरू होने से हरिद्वार का कुम्भ होता है हरिद्वार को ही गङ्गद्वार भी कहा जाता है।

मकरेक दिवाना थे अजगेच वृहस्पतौ।
कुम्भ योगो भवेत् तत्र प्रयागो ह्यति दुर्लभः॥

अर्थ—मेष में गुरु और मकर में सूर्य का योग होने से प्रयाग राज का कुम्भ होता है जो महान दुर्लभ है।

घटे शूरिः शशी सूर्यः काह्लादा मोदरे यदा।
धारयां चतदा कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः॥

अर्थ—तुलाराशि में सूर्य गुरु चन्द्रमा का योग अमावस्या में होने पर उज्जैन का कुम्भ होता है।

कर्के गुरुस्तथा भानुश्चन्द्रश्चन्द्रक्षयास्तथा।
गोदावरी तदा कुम्भो जायतेऽवनि मण्डले।

अर्थ—कर्क राशि में गुरु आने से गोदावरी का कुम्भ होता है, यही बात तीर्थ दर्पण तथा शेषरादि ग्रन्थों में भी लिखी है।

अथातः श्रूयतां भद्राः वारुणी विषयां कथाम्।
समासेन प्रवक्ष्यामि समहात्म्यां यथार्थतः॥२१॥

अर्थ—यह आपको कुम्भ महापर्व का प्रकरण सुनाया अब तीन प्रकार की वारुणी, महावारुणी महा महावारुणी का प्रसंग भी सुनाते हैं॥२१॥

चैत्र कृष्ण त्रयोदश्यां नक्षत्रं यदि जायते ।
शतभिषाभिधं सन्तः वारुणी पर्व जायते ॥२२॥

अर्थ—चैत्र के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को शत भिषा नक्षत्र हो तो उसको शास्त्रकार वारुणी पर्व कहते हैं ॥२२॥

शनैश्चरः सङ्गतस्या यदि तत्रैव पर्वणि ।
प्रोक्तः महावारुणीति वारुणी मर्म वेदिभिः ॥२३॥

अर्थ—यदि चैत्र कृष्ण त्रयोदशी शतभिषा नक्षत्र के साथ साथ शनिवार हो तो उसको महावारुणी पर्व कहते हैं ॥२३॥

शुभयोगः पुनस्तत्र यदि सङ्गच्छते क्वचित् ।
महा महा वारुणीति निगदन्ति मनीषिणः ॥२४॥

अर्थ—तथा चैत्रके कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी भी हो शनिवार भी हो शतभिषा नक्षत्र भी हो साथही शुभयोग भी हो तब उसको महा महा वारुणी पर्व कहते हैं ॥२४॥

गङ्गायां मज्जनं पुण्य मेतेषु त्रिषु पर्वसु ।
यज्ञो दानं जपः पूजा ध्यानं स्वाध्याय एवच ॥२५॥

अर्थ—इनतीनों पर्वपर श्री गङ्गाजी का स्नान और गङ्गा तटका दान महान् पुण्यकारी बताया है जो पुरुष इन तीनों पर्वों पर श्री गङ्गा जी में स्नान, जप, दान, करते हैं वह अपने सौकुलों को उद्धार करते हैं ॥२५॥

श्रद्धया सेवितं तीर्थं फलं यच्छति पुष्कलम् ।
अश्रद्धया सेवितन्तु जायते पाप वृद्धये ॥२६॥

अर्थ—जो पुरुष ऐसे २ शुभ औसरों पर विद्वान् साधु को पुस्तक वस्त्र भोजन, जूता छतरी आदिका दान श्रद्धा से करते हैं ऐसे सात्विकी दाता हिन्दूकी स्वर्ग में देवता आरती उतारते हुये आदरमान करते हैं और जो अश्रद्धा से तीर्थ पर खोटे कर्म करते हैं उनके पापों की वृद्धि होती है ॥२६॥

जगत्प्रकाशकेभानौ भासमाने यथा दिवा ।
न लभन्ते दिवा भीताः प्रकाशं विश्वकाशकम् ॥२७॥

सर्वशः पावने तीर्थे तथा पापा नु वर्तिनः ।
न लभन्ते तीर्थ पुण्य मजितेन्द्रिय मानवः ॥२८॥
तीर्थे पापानि नश्यन्ति सतामेष हितैषिणाम् ।
स्वदार परि तुष्टानां हिंसारहित चेतसाम् ॥२९॥
स्वदेश जाति भक्तानां यतीनां सत्य वादिनाम् ।
तितिक्षूणां विनीतानां पैशून्य रहितात्मनाम् ॥३०॥
अक्रोधाना मलोभानामनिन्दानाम वैरिणाम् ।
फलं लक्षगुणं तेषामन्येषामन्य था भवेत् ॥३१॥

अर्थ—स्मरण रखनेवाली बात है कि तीर्थों पर पाप उन्हीं सत्पुरुषों के नष्ट हुआ करते हैं जो पुरुष अपने हिन्दू जाति से द्वेष नहीं रखता, सबका प्रेमी अकारण कृपालु, ममता और अहंकार से दूर सुख दुःख में समान भाव, सत्यभाषी, इन्द्रियनिग्रही अपनी स्त्री के सिवाय किसी अन्य स्त्रीपर कुदृष्टि न डालनेवाला, स्वार्थ त्यागी, परोपकारी, ज्ञानी, विनई, संकट पड़ने पर भी अपने हिन्दूधर्म से न हटने वाला, पाठ पूजा आदि २ कार्य नियम पूर्वक करनेवाले से यदि किसी प्रकार का पाप भूल से अथवा असावधानता बस हो जाता है वह सर्वपाप तीर्थ में स्नान करने से नाश हो जाते हैं। किन्तु दम्भी, चोर, चुगल, जुआरी, क्रोधी, पाखण्डी, शरावी व्यभिचारी, लम्पट लोग एक नहीं अनेक बार तीर्थ स्नान करें तब भी पाप नाश नहीं होते सूर्यका प्रकाश उन्हीं को अपना प्रकाश दिखा सकता है जिनको भगवान् की अनुग्रह से देखने की शक्ति नेत्रों में है, अन्धे को सूर्य भी प्रकाश नहीं कर सकता ऐसे ही तीर्थों का भी दृष्टान्त समझना अर्थात् साधनों से साध्य (फल) की प्राप्ति होती है ॥२७-२८-२९-३०-३१॥

श्रुतिस्मृतीतिहासानामेवं तत्त्वोपदेशनैः ।
सार्धं वर्षं स भगवान् गङ्गातीरेऽवसेत्सुखम् ॥३२॥

अर्थ—इस प्रकार श्रुति स्मृति इतिहास का तत्व सुन सर्व भक्त मण्डली प्रणामकर कर कर चली जाती भई इस प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् डेढ़ वर्ष हरिद्वार में सुख से रह तपस्या करते हुये हिन्दुओं को समयोचित उपदेश दिया करते थे ॥३२॥

ऋष्याकाशरसेन्दौ च वैक्रमे शुभ वत्सरे ।
गङ्गावाता हते रम्ये शिलोच्चया शिलातले ॥३३॥

अर्थ—वि० सं० १६८७ शुभ सम्वत में श्री गङ्गा महाराणी के रम्य प्रवाह तट शिलापर बैठ ॥३३॥

वद्ध सिद्धासनो देवः सर्वशास्त्रार्थ तत्त्ववित् ।
वैयासिकेषु सूत्रेषु विदधे भाष्य मद्भुतम् ॥३४॥

अर्थ—सिद्धासन बांध श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् सर्वशास्त्र के अर्थों के तत्व ज्ञाता ने श्री वेद व्यास मुनि के विमल सूत्र (वेदान्त दर्शन) पर सर्वोत्तम तथा से नवीन भाष्य की रचना करते भये ॥३४॥

भाष्याण्यनेकानिच यद्य पीति जातो न तैरे व विनिर्णयश्च ।
यथार्थतः सम्प्रतिगूढ़ गूढं युक्तश्च तत्वं परिवर्णि तश्च ॥३५॥

अर्थ—यद्यपि संसार में अनेक भाष्य बने हुये हैं किन्तु उनसे श्री व्यासाभिप्रायका याथर्थ निर्णय होता न देख श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने सरल रीति से भाष्य बना के जगत का बड़ा उपकार किया ॥३५॥

श्री निर्गुणं ब्रह्म सदैवमाया मयं च सर्वां वितनोति सृष्टिम् ।
इदश्चसद्वैत मिवा प्रमेय मद्वैत तत्वं समवेद सिद्धम् ॥३६॥

अर्थ—निर्गुण ब्रह्म जो है वह सगुण प्रकृति अनादि को लेकर समस्त रचना करता हुआ द्वैत के अनुसार झलकता हुआ वस्तुतः अद्वैत है यह वेद सिद्ध है ॥३६॥

एक द्वितीयं स्वयमेव सिद्धौ मनादि शक्तिः परमेश्वरश्च ।
द्वाभ्याश्च सर्वं सकदाचिदेव मेकं सदा निर्गुण निर्गुणश्च ॥३७॥

अर्थ—एक अखण्ड ब्रह्म स्वयं सिद्ध तथा अनादि महा शक्ति (प्रकृति) दोनों मिलकर संसार वाटिका को प्रफुल्लित करते हैं फिर भी स्वयं ब्रह्म ही कहा जाता है द्वन्द्पना मिट जाता है एक ही ब्रह्म की वह शक्ति द्वैत रूप से भासती है नहीं तो स्वेच्छा पूर्वक ब्रह्म एक का एक ही रहता है ॥३७॥

यत्र श्रीचन्द्रभगवानागत्यो वास भूतले ।
कनखलेऽधुनाप्यस्ति शिलाविग्रहवानसौ ॥३८॥

अर्थ—हरिद्वार में जहाँ पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् निवास करते थे वह स्थान अभी तक कनखल में श्री गुरु श्रीचन्द्र जी के नाम से प्रसिद्ध है यहाँ पर भगवान् श्रीचन्द्र महाराज की पाषाण विग्रह प्रतिमा बहुत पुरानी इस बात की परिचायक है ॥३८॥

निवसन्ति महात्मानः उदासीना निरन्तरम् ।
पूजयन्ति च तां मूर्तिं श्रद्धा भक्ति समन्विताः ॥३६॥

अर्थ—जहाँ पर उदासीन औत चतुर्थाश्रमी महात्मा सदैव निवासकर मूर्ति की पूजा आर्ती बड़ेश्रद्धा भक्ति से किया करते हैं ॥३६॥

श्रीचन्द्राश्रम नाम्ना च सर्वै राख्यायते जनैः ।
द्रष्टुं दृश्यं सदा यान्ति भक्ता भक्ति समायुताः ॥४०॥

अर्थ—वह आश्रम श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का जगत् प्रसिद्ध है उसके दर्शन को यात्रि (भक्त मण्डली) सदा भक्ति और श्रद्धा से आते हुये अपना जन्म सफल समझते हैं ॥४०॥

भीम कुण्डो परिष्टाच्च श्रीचन्द्र शिखरं महत् ।
तपस्ततं भगवता स्थित्वा यत्रासने ध्रुवे ॥४१॥

अर्थ—तथा भीम गोड़े के ऊपर श्रीचन्द्र शिखर है जिसका मार्ग काली देवी के पास से जाता है वहाँ भगवान् श्रीचन्द्र जी बैठकर तप करते थे और नीचे कनखल में आकर लोगों को उपदेश देते थे, कनखल वाले स्थान की जगह प्रथम सनतकुमाराश्रम था, यह महाभारत वनपर्व अध्याय १३४ में लिखा है ॥४१॥

वस्वाकाश रसेन्दौच वैक्रमे शरदा गमे ।
विजयादशमी कृत्वा मायापुर्या अथादसौ ॥४२॥
पूर्वं यातो हृषीकेशं द्रोण दून मतः परम् ।
सारङ्गपुर मागत्य गढ़मुक्तेश्वरं ययौ ॥४३॥
स्वर्णपत्रं पुरं गत्वा सशिष्यः प्रथयन् कथाः ।
भृगु क्षेत्रं दिदृक्षुः स प्रतस्थे तदनन्तरम् ॥४४॥
ग्रहाकाशरसेन्दौ च वैक्रमेऽब्देशुचौ शिते ।
अमावस्यादिनेदेवः कुरु क्षेत्रं समागतः ॥४५॥

अर्थ—मायापुरी हरिद्वार से वि० सं० १६०८ आश्विन शुदी १० के दिन चल कर ऋषिकेश, दून, सहारनपुर, मेरठ, गढ़मुक्तेश्वर, सुनपत होते कुरुक्षेत्र में वि० सं०

१६०६ ज्येष्ठ की अमावस्या को आते भये उस समय सूर्य ग्रहण का मेला भर रहा था सर्वत्र अपने हिन्दूधर्म की उन्नति का प्रचार किया ॥४२।४३।४४।४५॥

विशाल सूर्य ग्रहणे च काले धर्मोपदेशं प्रकरोति सिंहः ।
जनाश्च सर्वे नितरां प्रसेदु राज्ञीसमेतः प्रभुराज राजः ॥४६॥

अर्थ—उस विशाल तीर्थ में जब सूर्य ग्रहण लगता है तब अपार भीड़ होती है वहाँ पहुँच कर आपने विशाल धर्मोपदेश आरम्भ किया जिसे सुनकर जनता प्रसन्न हुई, उस समय एक राजा अपनी रानी समेत आयके श्रीगुरु जी का दर्शन करता भया ॥४६॥

उपरक्ते तदा पूष्णि श्रीचन्द्रो भगवान् सुधीः ।
सूधामयीः कथाः कृत्वा रञ्जयामास मानवान् ॥४७॥

अर्थ—अमृत रूपी कथा श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रभगवान् की सुन के लोगों के मन अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥४७॥

एकदा जनता जुष्टे श्रीचन्द्रो चन्द्र वंशजः
भूपतिः कोऽपि तत्रागात् धार्मिकश्चण्ड विक्रमः ॥४८॥

अर्थ—एक समय जनता बहुत एकत्र हो रही थी भगवान् श्रीचन्द्र जी का उपदेश हो रहा था इतने में चन्द्रवंशी एक राजा अपनी रानी के सहित आता भया जो बड़ा विक्रमी और धार्मिक था ॥४८॥

स्वर्ण मुद्रा सहस्राणां पूर्णं पात्रं पुरः स्थितम् ।
विनिवेद्य विनीतोऽसाविदं वचनमब्रवीत् ॥४९॥

अर्थ—सहस्रों स्वर्ण मुद्रा से भरा थाल लाके श्री गुरु जी के आगे रख विनती पूर्वक पूछता भया ॥४९॥

भगवन् कौतुकं श्रोतुं सकौतूहल चेतसः ।
वाञ्छन्ति जनताः सर्वाः भवांश्च कौतुकाकरः ॥५०॥
कुरुक्षेत्रमिदं तीर्थं कथं जातं कदावधि ।
किं महात्म्यं रहस्यञ्च साकल्पेन निरुच्यताम् ॥५१॥

अर्थ—हे भगवन् ! यह तीर्थ कैसे भया इसका महात्म्य क्या है जिसके सुनने को मेरे मनमें बड़ी इच्छा लगी है सो आप कृपाकर सुनाइये ॥५०-५१॥

इतिराज्ञोवचः श्रुत्वा सनयं विनयान्वितम् ।
मुमुदे भगवांश्चन्द्रः प्रसंशं स तमादरात् ॥५२॥

अर्थ—ऐसा राजा का नम्रता तथा विनय पूर्वक बचन सुनकर आनन्द सहित श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी आदर पूर्वक मधुर वाणी से बोलते भये ॥५२॥

साधु साधु महाराज जनासि वक्तुमुत्तमम् ।
अलङ्कारः कुलीनानां नम्रता नय गर्भिता ॥५३॥

अर्थ—हे राजन् आपने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया आपके बोलने से हम जान गये कि कुलीन पुरुष अपने बचनों में अलंकार, नम्रता, विनय और सारगर्भित भाव रखकर ही बोलते हैं ॥५३॥

जानन्तोऽपि महात्मानः लोककल्याण कांक्षया ।
पृच्छन्ति महतामग्रे निसर्गोऽयं मनीषिणाम् ॥५४॥

अर्थ—तुम सब महात्म्य जानते हो परन्तु लोक कल्याण इच्छा रखकर हमारे आगे पूछा है तुम बड़े बुद्धिमान पुरुष हो ॥५४॥

पुरा प्रजापति ब्रह्मा यज्ञमत्राहर द्विभुः ।
ब्रह्म क्षेत्रं ततो लोके लोकैः ख्यापितमद्भुतम् ॥५५॥

अर्थ—पूर्व में प्रजापति ब्रह्मा ने भगवान् को प्रसन्न करने के लिये यहाँ पर यज्ञ किया तबसे इसका नाम ब्रह्म क्षेत्र करके लोकमें प्रसिद्ध हुआ ॥५५॥

इष्टवन्तस्ततो देवाः क्रतुभि भूरि दक्षिणैः ।
देवतीर्थं पुनश्चास्य नाम लोकैर गीयत ॥५६॥

अर्थ—देवताओं को अभिलाषित बहुत दक्षिणा मिली इस करके पुनः इसको लोग देवतीर्थ करके कहने लगे ॥५६॥

जामदग्न्यो महावीरः भ्राम्यन् भूमि तलंमुहुः ।
एक विंशति कृत्वश्च जिगाय क्षोणि मण्डलम् ॥५७॥

क्षतजै र्बाहुजानाञ्च तेन पञ्च ह्रदा भृताः ।
रामह्रद इति ख्यातं नामास्य तदनन्तरम् ॥५८॥

अर्थ—पश्चात् परशुराम जी उदासीन महात्माने २१ वार अन्यायी राजाओं का वध कर यहाँ पर ५ तालाब बनाय पञ्चतीर्थों में स्नान, तर्पण और श्राद्धकर पितृगणों से आशीर्वाद माँगा कि यह ह्रद भूमण्डल में प्रसिद्ध और परम पवित्र तीर्थ हो, तब से यह स्थल रामह्रद के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥५७५८॥

शाकुन्तलेयाद् भरतात्सप्तमः पुरुषोमहान् ।
पुरुवंश्यः कुरु राजा बभूवामित विक्रमः ॥५६॥

अर्थ—शकुन्तला के पुत्र भरत के बाद सातवीं पीढ़ी में पुरुवंश को चलाने वाला कुरु राजा हुआ जो बड़ी विभूति और विक्रम वाला था ॥५६॥

सच सांवरणेधीरः तपश्चक्रेऽत्र दारुणम् ।
कुरुजाङ्गलनाम्नाच ख्यातिमेतत्स्थलं ययौ ॥६०॥

अर्थ—संवरण के पुत्र राजा कुरु ने यहाँ पर दारुण तपस्या की, तब से इस स्थल का नाम कुरु जङ्गल देश प्रसिद्ध हो गया ॥६०॥

शशास सुचिरं राज्यं स राजा धर्म वित्तरः ।
यष्टु कामेन तेनाथ कदाचित्कर्षिता मही ॥६१॥

अर्थ—एक समय उस चन्द्रवंशी धर्मवीर राजा के सुन्दर राज्य में अकाल पड़ा तब उसने हल से पृथ्वी को जोता ।६१॥

कुरुक्षेत्रं ततोनामं जात मस्याति पावनम् ।
इदानीमपि तन्नाम्ना गीयते भुवनत्रये ॥६२॥

अर्थ—तब से इसका नाम कुरु क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ जो अत्यन्त पावन है और आज तक लोग इसे इसी नाम से तीनों लोक में पुकारते हैं ॥६२॥

धार्तराष्ट्रै र्हतराष्ट्राः पाण्डवा धर्म मूर्तयः ।
जेतुं युयुधिरे धीराः जितवन्तोऽखिलानरीन् ॥६३॥

अर्थ—पश्चात् यहीं पर कौरव और पाण्डवों का युद्ध हुआ जिसमें धर्ममूर्ति राजा युधिष्ठिर की जीत हुई ॥६३॥

तस्मिन्नेव महायुद्धे प्रथमे ऽहनि शौरिणा ।
भीष्म पर्वणि पार्थाय प्रपन्नाय महात्मने ॥६४॥

अर्थ—यहीं पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने परम प्यारे सखा अर्जुन को गीतामृत श्रवण कराया जो हिन्दुओं को अजर अमर और अभय बनाने वाला लोकोपकारी अमूल्य ग्रन्थ है यह महाभारत के भीष्म पर्व के अन्तर्गत है ॥६४॥

श्रुतिस्मृतीतिहासानां पुराणानाञ्च सर्वशः ।
तत्त्वमाहृत्य कृष्णेन गीता गीता गरीयसी ॥६५॥

अर्थ—श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण का तत्व भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में सुनाया तभी गीता बड़ा गूढ़ ग्रन्थ है ॥६५॥

गङ्गेव पावनी गीता पुनीते जगतां त्रयम् ।
कुरुक्षेत्र सुता सापि कुरुक्षेत्रं ततो गुरु ॥६६॥
सर्व शास्त्रमयीं गीतां भूयो भूयोऽति विस्तरात् ।
व्याचख्यौ भगवांश्चन्द्रः मुमुदे जनताऽखिला ॥६७॥

अर्थ—गीता गङ्गा के समान त्रिभुवन में पावन है सर्व शास्त्रों का निचोड़ तथा सारे संसार में प्रसिद्ध है, इस प्रकार भगवान् श्रीचन्द्र जी ने सुनाया तब सब जनता प्रसन्न हो गई ॥६६-६७॥

प्रश्न—हे भगवन् उस गीता में क्या कहा गया है।

उत्तर (क) गीता में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त का अच्छा समन्वय किया गया है वेद और उपनिषदों का सार, कर्म, ज्ञान, भक्ति का रहस्य बता के मनुष्य को निर्भय बनाया गया है, गीता ग्रन्थ अद्वितीय, अनुपम, अत्यन्त उपदेय पदार्थ है गीता हिन्दू जाति की परम निधि है, वेद और उपनिषद् तथा सर्व शास्त्रों का सार है। गीता हिन्दुओं को धीर, वीर और साहसी बना के कर्मण्यता का पाठ पढ़ा आपस में प्रेम भाव उत्पन्न करती हुई संगठन करना सिखाती है। गीता हिन्दुओं को लोक परलोक दोनों के मङ्गलमय मार्ग की दिखाने वाली है, गीता के टक्कर का कोई दूसरा ग्रन्थ आज तक संसार में नहीं देखने में आया। गीता की महिमा अवर्णनीय है इससे हिन्दू जातिका सदैव शिर ऊँचा रहेगा। भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर थे उनके मुख से उच्चारण करने से गीता परमेश्वरीय वाणी है। गीता का दर्शन हरी का दर्शन है गीता का पाठ भगवद् से वार्ता लाप करना है, इसलिये निजकल्याण चाहने वाले प्रत्येक नर नारी को गीता अनुशीलन करके जीवन संगनी बनाना चाहिये, उदासीन साधु इस रहस्य तत्व को भली प्रकार जानते हैं तभी वह हिन्दू जाति के उठाने का प्रचार सदैव गीता द्वारा किया करते हैं।

(ख) आज के समय में पूर्ण कर्मयोग सिखाने को गीता ही एक अकेला ग्रन्थ है

ऐसा कह श्री गुरुजी बोले यह स्वर्णमुद्रा उठा ले जाओ कारण ग्रहण काल में उदासीन साधु किसी का दान नहीं लेते यह सर्व शास्त्र मर्यादा है। यह सुन राजा रामपालसिंह तथा उनकी स्त्री कमलावती दोनों ग्रहण छूटने के बाद स्नानकर आय महाराज से गुरुमन्त्र ले पूजाकर आनन्दित होते भये साथही और भी बहुत लोग गुरुमन्त्र के साथ साथ चरणामृत पीके अजर अमर हो लोक परलोक सुधारते भये।

(ग) इस प्रकार महासिद्ध योगी राज आचार्य प्रवर हिन्दू धर्म रक्षक गुरुओं के गुरु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य्य लोगों को सदोपदेश द्वारा सीधे मार्गपर लगा के सब का कल्याण करते हुये।

(घ) कुरुक्षेत्र का विशेष महात्म्य महाभारत बनपर्व ८३ अध्याय तथा शल्यपर्व के ५३ अध्याय में आता है।

ग्रहाकाशरसेन्दौच वैक्रमेऽब्दे शुचौ सिते।
चतुर्दश्यां शुक्रवारे ननकानां समागतः ॥६८॥

अर्थ—कुरुक्षेत्र से शनैः २ चल विक्रम सं० १६०६ अषाढ़ सुदी १४ शुक्रवार के दिन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी उदासीन साधु मंडली सहित अपने स्थान ननकाणा साहब में आकर विराजते भये और प्रातःकाल अषाढ़ सुदी १५ (गुरुपूर्णिमा) के दिन सबने आकर श्री गुरुजी का दर्शन और पूजन किया ॥६८॥

अहो चन्द्रं दृष्ट्वा कुमुदवनवत्सर्व जनता।
प्रफुल्ला भृङ्गाली कल निनदवत्स्वागत गिरः।
गिरन्ती सम्भ्रान्ता नयन पुटकैः पातु मखिला,
समायाता त्यक्त्वा सकल गृहचर्यां गुरुमपि ॥६९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को देखकर वहां की जनता ऐसी प्रसन्न हुई जैसे चन्द्रमा को देखकर कुमुदनी का वन खिल जाता है और उन्होंने श्री गुरुजी का स्वागत करते हुये जय जयकार का शब्द किया वह ऐसा प्रतीत होता था मानों भ्रमर प्रसन्न होकर गुंजार रहे हैं एक से एक धक्का देकर आगे से आगे दर्शन करने की इच्छा करके आगे बढ़ते हैं, सब लोग अपने अपने गृह का कार्य छोड़कर श्री गुरुजी के पास आते भये ॥६९॥

पदेनामं नामं नयन सुखदस्याखिल गुरोः।
मुहुः स्तावं स्तावं सकल भुवनानन्द निलयम्।

भृशं दर्शं दर्शं त्रिभुवन ललामं गुणनिधिम्,
न याता निर्वाणं सकल मल हीनापि जनता ॥७०॥

अर्थ—सब गुरुजी के चरणों में नमस्कार करते हैं वह गुरु जी कैसे हैं जो सब के नेत्रों को सुखदाई हैं, और सब लोग खड़े २ बड़े आनन्द से महाराज के मुखारविन्द का दर्शन कर रहे हैं, जो त्रिभुवन में सुन्दर और गुणों की खान हैं जिनका दर्शन जनता को शुद्ध बनाता हुआ निर्वाण पद को देने वाला है जहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता ॥७०॥

यत्र यत्र च यातिस्म गुरु देवो महेश्वरः ।
जगत् पूज्य समादाय सर्वे आनन्ददायकः ॥७१॥

अर्थ—जहां २ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जाते थे वहाँ २ उनकी पूजा प्रतिष्ठा होती थी तथा सब प्रसन्न होते थे ॥७१॥

उदासीनै र्महा प्राज्ञै स्यापि ता दृशम्मतम् ।
अन्न दानं महा पुण्यं प्रत्यहं कुरुतेऽनिशम् ॥७२॥

अर्थ—सब जगह अपना भण्डारा स्वतन्त्र बनवाते थे जिसमें साथ के उदासीन साधु तथा आये गये सब हिन्दू भोजन पाते थे यह अन्न दान करने की उदासीन सम्प्रदाय में प्राचीन प्रथा है जो आज तक उदासीन सम्प्रदाय में चली आती है ॥७२॥

हिन्दु धर्म प्ररचार्थं भ्रमणंचन्न प्रदानकम् ।
नै तादृशस्सम्प्रदायो वर्तते भुवने त्रये ॥७३॥

अर्थ—हिन्दूधर्म की रक्षा, अन्न वस्त्र का दान परोपकारादि पवित्र गुण उदासीनों में आजतक अधिकाधिक पाया जाता है ॥७३॥

इति श्रीसाधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमद् उदासीनवर्य्यं परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डि-देव गुरु चरणकमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे हरिद्वार कुम्भ पर्व, कुरुक्षेत्र गीता महात्म्य वर्णनं सकल कलि कल्मषनाशिनी त्रिंशति तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥३०॥

॥ एकत्रिंशति किरण प्रारम्भः ॥

चन्द्र चन्द्र रसेन्दौ च, वैक्रमे चाश्विने सिते ।
दशम्यां धर्म चन्द्रोऽसौ मठाधीशः कृतोऽमुना ॥१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् हिंदू धर्म रक्षक वि० सं० १६१२ आश्विन शुदी १० (विजयादशमी) को अपने चेले धर्मचन्द्र उदासीन को अपने स्थान ननकाना का महन्त बनाया ॥१॥

उत्तराधि कृतं शिष्यं धर्मचन्द्रं प्रवोध्य च ।
सर्वाश्च जनतां स्निग्धं सान्त्वयित्वा शनैः शनैः ॥२॥

अर्थ—श्री महन्त धर्मचन्द्र जी को भली प्रकार हिन्दू धर्म रक्षा करते रहने का प्रवोध दे सर्व जनता जो आप के प्रेम से भरपूर थी उसे भी भली प्रकार सान्त्वना दे धीरे धीरे ॥२॥

करचन्द्ररसेन्दौ च कार्तिके शुक्ल पक्षके ।
तृतीयायां कतिपयान् साधून्नीत्वा ततोऽचलत् ॥३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् दिवाली करके वि० सं० १६१२ कार्तिक सुदी २ को कुछ उदासीन साधुओं को अपने साथ ले देश की रक्षा तथा हिन्दू जाति के उद्धारार्थ तीसरी यात्रा को चलते भये ॥३॥

सर्वत्रोपदिशन् धर्मं पञ्चालेषु भ्रमञ्छनैः ।
माघे कृष्णे च सप्तम्यां दिल्ली नगर माययौ ॥४॥

अर्थ—पञ्जाब प्रान्त में सर्वत्र उपदेश करते हुये माघ वदी ७ को आप आके देहली पहुँचते भये ॥४॥

मज्जनूकूटमागत्य तस्थौ शिष्यान्वितः कृती ।
तमागतं समाकर्ण्य नागरा उत्सुकाः गताः ॥५॥

अर्थ—देहली* में आके मजनू टीला में अपनी सर्व मण्डली सहित निवास किया

*देहली का प्रथम नाम इन्द्रप्रस्थ था इसको राजायुधिष्ठिर ने बसाया था, हस्तिनापुर में राज्य दुर्योधन का था, महाभारत के युद्ध के ३६ वर्ष पीछे जब यदुवंशियों का नाश प्रभासक्षेत्र में हुआ उसमें बचे हुये अनुरुद्ध के पुत्र बज्रदंष्ट को युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ का राजा बनाया तथा अर्जुन के पोत्रे अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को हस्तिनापुर का राज्यासन दिया यदुवंश, के बाद तक्षकवंशी क्षत्रियों का, बाद मौर्यवंशी क्षत्रियों का, बाद तोमर वंशियों का राज्य हुआ। मौर्यवंशी राज राज्य पालने इन्द्रप्रस्थ नाम हटाय दिल्ली रखा, वि० सं० १२४९ मे दिल्ली पर मुसलमानी अधिकार हुआ ।

समस्त नगर में आपकी प्रशंसा रूपी कौमुदी प्रसरित होती २ जाके बादशाह तक पहुँच दम लिया ॥५॥

हिमायुश्च सहामात्यः ससेनः ससुहृज्जनः ।
गत्वा नत्वा च श्रुत्वा च सूपदेशान् कृती बभौ ॥६॥

अर्थ—उस समय दिल्ली का बादशाह हिमायूँ बड़ा बुद्धिमान श्री १६०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का सेवक था वह अपने आमात्यों के सहित श्री गुरुजी के पास आय नमस्कार कर कुछ उपदेश श्रवण करने की प्रार्थना करता भया ॥६॥

राज्यनीतिं उपदेशैः शिक्षा सर्वत्र लाभदः ।
बादशाह नतो पृथ्वी जगाम निज मन्दिरम् ॥७॥

अर्थ—जो काम सब के हित का हो साथ में अपनी क्षति भी न हो वही करे, खाली धर्म के ही झगड़े न छेड़ बैठे आपस का विद्रोह अच्छा नहीं होता जब इस प्रकार महाराज ने धर्म के साथ २ राजनीति का बहुत सुन्दर उपदेश दिया तब सब प्रसन्न हो महाराज के चरणों में मस्तक झुकाय २ प्रणाम कर अपने २ निवास स्थान को जाते भये ॥७॥

नोट—बादशाह के सङ्ग एक मोलवी कर्मअली आया था वह महाराज से बोला सूरमा किसको कहते हैं।

श्री गुरुजी बोले सूरमा वह है जो अपनी इन्द्रिय और मन को जीते सच बोले अन्याय न करे गरीब को न सतावे।

मोलवी—गरीब किस को कहते हैं श्री गुरु जी—गरीबी का लक्षण यह है किसी से वाद विवाद न करे बड़े का अदब रक्खे, सरल और सच्च निष्कपट, दम्भ मिथ्याचार से दूर हो उसे गरीब कहते हैं। मोलवी पूछता है खुदा के पास पहुचने का क्या रास्ता है।

श्रेष्ठ कर्म करोन्नित्यं न सीदन्तु निरर्थकः ।
दुर्वृत्तिं न प्राप्नोति खुदा दर्गाहभिस्तयः ॥८॥

अर्थ—श्री गुरुजी बोले नेक काम करने वाला, किसी कोन सताने वाला, खोटे काम त्याग ने वाला, खुदा का रास्ता पाता है। रिश्वत खोर चुगल खोर किसी का धन मान और धर्म हरण करने वाला, किसी बेगुनाह की आत्मा को जो सताता है वह खुदा के घर का मार्ग नहीं पाता, ऐसा पुरुष चाहे दिन में सौ निवाज क्यों न पढ़ता हो कबूल एक नहीं होती, ऐसे पुरुषों से खुदा गुस्से हो दोजख की आग में साड़ता है चाहे वह खुदा का प्यारा पैगम्बर ही क्यों न हो। इस लिये हे मोलवी तुम हिन्दू को बुरा और मुसलमानों को अच्छा समझना

यह द्वैत बुद्धि अपने मन से हटा दो गरूर खुदा को अच्छा नहीं लगता इन्सान गलतियों का घर है, खुदा के लिये क्या हिन्दू क्या मुसलमान क्या गऊ क्या बकारा सब एक समान है, इन-साफ करने से इन्सान कहलाने के हक्दार बनोगे ॥८॥

वोधया मौलवीन्तत्र चमा मेव जजाचिरे ।
गुरूपदेश जनता वहुलान्तृति भूहिरे ॥९॥

अर्थ—जब इस प्रकार श्री गुरु श्रीचन्द्र जी ने समझाया तब मोलवी कर्म अली पानी पानी (लज्जित) हो गया, अपने बड़प्पन का गरूर कापूर हो गया, आके श्री गुरु जी से बोला आप सच मुच खुदा के रूप कामिल फकीर हैं आपका एक २ कलमा जादू वाला असर (प्रभाव) रखवा है, यह इन्सान की ताक़त से बाहर बात है, आप हमारे सब गुनाह मुआफ करें, आप पीरों के भी पीर फक़ीर हैं; हम गुनहगार बन्दे हैं, ऐसा कह बारम्बार चरणों में पड़ मोलवी बादशाह हिमायूँ के सङ्ग वापिस जाता भया ॥९॥

नानाप्रश्नै रुत्तरैश्च रञ्जयित्वा जनानसौ ।
दिल्लीतः प्राचलच्चन्द्रः नीत्वा तां साधु मण्डलीम् ॥१०॥

अर्थ—यह देख दिल्ली के तमाम हिन्दू आय २ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के चरणों में पड़े सर्व प्रकार के संशयों को प्रश्नोत्तरों द्वारा निवृत्तकर सतोपदेश ग्रहण कर चरणामृत के साथ २ गुरुमन्त्र लै सेवक बन लोक पर लोक सुधारते भये । श्री गुरुजी अपनी साधु मण्डली सहित दिल्ली से आगे चलते भये ॥१०॥

मधुरां मधुरां दृष्ट्वा हरेः पापहरः पुरीन् ।
गवां वृन्दावनं यातः वृन्दावन मथाद्भुतम् ॥११॥

अर्थ—श्री ११०८ पतित उधारन जगत पावन उदासीनाचार्य श्रीचन्द्र भगवान् मथुरा होते श्री वृन्दावन आय यमुना किनारे विराजमान होते भये जो सर्व पापों को हरने वाला धाम है ॥११॥

वृन्दारकाणां वृन्देन वन्दितं नन्द नन्दनम् ।
वन्दित्वाऽऽनन्दमायातो सर्वं हृदय चन्दनम् ॥१२॥

अर्थ—समस्त लोग श्री नन्द नन्दन को बन्दना करते हैं जो श्रीकृष्ण भगवान् सब के हृदय को शीतल करने वाले हैं ॥१२॥

तत्रैव यमुनातीरे रुचिरे धीरं मारुति ।
आसनं कल्पयामास श्रीचन्द्रो भगवान् मुदा ॥१३॥

अर्थ—यमुना के किनारे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् आसन पर विराजमान थे जो बड़े धैर्यवान् शोभनीक थे ॥१३॥

योगेश्वरोनाम समाजगाम तत्रैकदा विप्र कुलावतंसः ।
स जीवकल्याण विधौ विनम्रं प्रश्नं व्यधाच्चन्द्रपुरः प्रसन्नः ।।१४।

अर्थ—इतने में एक ब्राह्मण जिसका नाम योगेश्वर था वह आय प्रणाम कर नम्रभाव से प्रश्न करता भया कि हे महाराज जीव का उद्धार किस तरह होता है ॥१४॥

समादधे तच्च स चन्द्र मौलीः लोकोपकाराय परोपकारी ।
श्रुत्वोत्तरं विप्रवरोऽपरे च ननन्दु रज्ञान तमो विनाशात् ।।१५।।

अर्थ—उसका समाधान करने वास्ते लोकोपकारी महाप्रभु हिन्दूधर्म रक्षक श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोलते भये कि हे विप्रवर ! ज्ञानरूपी चन्द्रमा के प्रकाश से अज्ञान-रूपी अन्धकार का नाश होता है । हे पण्डित जी बिना सत्संग किये जीव किसी प्रकार जाग नहीं सकता, वह सत्संग बिना भगवान् की कृपा हुये मिलता नहीं इसलिये करोड़ों में कोई एक पुरुष जागता है । जब पुरुष इस मोह माया की निद्रा से जागृत हो जाता है तब उसके हृदयागार में परमेश्वर की भक्तिरूपी खेती जमती है, भक्तिरूपी खेती को भजनरूपी जल की सर्वदा आवश्य-कता रहती है, कदाचित भजनरूपी जल भक्तिरूपी खेती में न पड़ा तो खेती सूख जाती है । भक्ति के नौ विधान भक्ति रूपी खेती की मेड़े (क्यारे) हैं । आत्मवत् सर्व भूतों को देखने और समझने लगना भक्ति रूपी खेती को फूल आना है । परमेश्वर के रूप में रूप मिल जाना फल लगना है, श्रेष्ठ कर्मरूपी रक्षक इस खेती में अवश्य नियत करने पड़ते हैं कारण बिना रक्षक के खेती उजड़ जाती है जैसे किसान नाना प्रकार के पशु पक्षियों से खेती को बचाता है एक क्षण खाली छोड़ जाय तो तुरन्त पशु पक्षि खेतीको चरकर नष्ट भ्रष्ट कर जाते हैं, इसी प्रकार इस भक्ति रूपी खेत का भक्तरूपी किसान काम क्रोधादि अनेक विषय विकार रूपी पशु पक्षियों से सावधानता पूर्वक रक्षा करता रहता है किञ्चित असावधानी हुई नहीं कि खेती को पशु पक्षियों ने खाया नहीं ।

सो हे पण्डित जी करोड़ों में एक ही कोई इस खेती की रक्षा करने में जागता है, और इस संसार में जगाने वाले साधु महात्मा हीं होते हैं दूसरा कोई नहीं, हे पण्डित जी अपना भला चाहने वाले पुरुष को ए चार बातें अवश्य ध्यान में रखना उचित हैं, एक तो हर समय सोते उठते बैठते खाते पीते चलते फिरते अर्थात् सर्व सांसारिक व्यवहार करते हुये परमेश्वर का ध्यान रखना । दूसरे धनी, विषई, मूर्ख स्वार्थी, कपटी, दम्भी, लोलपी, कामी, विश्वासघाती, से

कदापि संसर्ग न रखना। तीसरे निर्भिमानो होना चौथे मन और इन्द्रियों को अपने आधीन रख साधु सेवा करना अशुभ कर्म से सदैव बचना ॥१५॥

ईश्वरः राधकः कोस्ति भक्ति ज्ञान परायणाः।
ब्रूहि सम्मथ्य वेदान्श्च त्रीणाञ्च हित कारकम् ॥१६॥

अर्थ—पण्डित जी ने पूछा हे दीन दयाल सच्चे बादशाह सद्गुरु महाराज परमेश्वर की प्रीत वाले का पता किस प्रकार लगे, यह सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् प्रसन्न बदन बोले हे पण्डित जी परमेश्वर के प्रीत वाले का पता लगाना सहज नहीं जैसे हीरे की परीक्षा हर एक नहीं कर सकता इसी प्रकार भगवत् भक्त की परीक्षा हर एक संसारी पुरुष नहीं कर सकता, जिस पुरुष ने सत् शास्त्रों का अध्ययन उदासीन साधु महात्माओं द्वारा किया होगा वृद्धों का सत्सङ्गी होगा वही परमेश्वर की प्रीति वाले का पता लगा सकेगा। परमेश्वर की प्यारे की यह पहिचान है कि सरल, छल, हीन, मृदुभाषी होना विषय विकार से अलग होना इत्यादि अनेक पहिचान हैं, हे पण्डित जी परमेश्वर को ढूढ़ने कहीं जाना नहीं है, वह तो अपने ही अन्तः करण में है, और शरीर में जगत है यही बातों का विचार करना मुख्य है, जो अपने आत्म चिन्तन में रहते हैं वह परमेश्वर को प्राप्त कर लेते हैं और जो शरीर के ही चिन्तन (देहाध्यास) में लगे रहते हैं उनको संसार में ही लगे रहना पड़ता है ॥१६॥

जगद्गुरुश्चापि वहूपदेशं कृत्वाच सन्तर्पित वान्नलोकम्।
धन्यश्च कालो यमुना च धन्या धन्याति धन्यो गुरु देव देवः ॥१७॥
इत्थं दिशन्धर्म विधिविज्ञः समस्त भूमण्डल गन्तु कामः।
शिष्यान्वितः शासित सर्वलोकः शनैः शनैः शान्त मतिः प्रतस्थे ॥१८॥

अर्थ—इस प्रकार का उपदेश जबश्री गुरु जी से सुना तब पण्डित जी धन्य धन्य करते तुरन्त चरणों पर गिर प्रणाम किया और अपने कमण्डल से जल निकाल जगद्गुरु श्री श्रीचन्द्र जी का चरण धोय पिया पीते ही अज्ञान का आवरण सब हट गया दिव्य ज्ञान का प्रकाश हृदय में उसी समय हो गया, महाराज ने उसको सत्यनाम के साथ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय का गुरु मन्त्र अनुष्ठान सहित बताय अपना सेवक बनाय आप वहाँ से आगे चल गोवर्धन, गोकुल, नन्दगाम, बरसाना आदि घूमते मेरठ, मुजफ्फरपुर, जगादरी रुड़की होते वि० सं० १६१२ मेष संक्रांति वाले दिन पुनः हरिद्वार आते भये, कारण कुम्भ महापर्व का स्नान था, इससे हरिद्वार में साधु मण्डल बहुत आया था आप भी अपनी प्रथम वाली जगह में आय विराजते भये, अन्न क्षेत्र अटूट चलने लगा साथही ज्ञान धारा भी अखंड रूप से प्रवाहित थी, समस्त

मेले में आपका सुयश लोग गायन करते थे आये हुये श्रद्धालुओं को अपने हिन्दू धर्म रक्षा करने का सुन्दर उपदेश दे सुखपूर्वक कुछ दिन निवास कर वहां से आगे चल बिजनौर मुरादाबाद होते, बरेली आये ॥१७-१८॥

॥ मानस सरोवर ॥

कौवेरीं दिशमास्थाय वरेलीं प्रथमं गतः ।
काष्ठगोदाम मायातः भीम तालं ततः परम् ॥१९॥

दृष्ट्वा रामगढ़ं पुण्य मलमोढ़ामया दसौ ।
जागेश्वरं प्रणम्याथ वागेश्वर मुपागतः ॥२०॥

अर्थ—बरेली से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् काठगोदाम नैनीताल, भीमताल देखते रामगढ़ अलमोड़ा हो जागेश्वर बागेश्वर का दर्शन किया ॥१९-२०॥

सरयूवां मज्जनं कृत्वा गर व्याङ्गं समाययौ ।
रावण ह्रदमालोक्य मानसं सर आगतः ॥२१॥

अर्थ—आगे चल सरयू का स्नान कर गरव्याङ्ग, राक्षसताल (रावण ताल) होते परम पवित्र तीर्थ मानसरोवर पहुँचते भये ॥२१॥

विलोक्य सज्जनस्येव मानसं मानसं सरः ।
सरसं सरसं जातं चित्तं चन्द्र कला भृतः ॥२२॥

वाहु चन्द्र रसेन्दौ च वैक्रमे श्रावणे सिते ।
पूर्णिमायां सोमवारे सस्नौ चन्द्रः सरोवरे ॥२३॥

दशयोजन विस्तीर्णं सुगूढ़ं शैलमालया ।
नानोत्कलि कयाकान्तं जुष्टं जल चरैः सदा ॥२४॥

अर्थ—वि० सं० १६१२ श्रावणी पूर्णिमा सोमवार को मानसरोवर में स्नान किया तथा तीन दिन निवास किया जिस मानसरोवर का विस्तार १० योजन का है, गहराई का अन्त नहीं जिसमें अनेक प्रकार के जलचर रहते हैं ॥२२-२३-२४॥

हंस कारण्डवै र्जुष्टं नलिनी षण्डमण्डितम् ।
विधात्रा मानसात्सृष्टं मानसं सर उत्तमम् ॥२५॥

रत्न वालुकया रम्यं मुक्ता जाल विमण्डितम् ।
सरसीरुह किञ्जल्कैः विश्वक् चन्द्रांकितं सरः ॥२६॥

अर्थ—इस मार्ग में आपको कई प्रकार के मनुष्य, यक्ष, नाग, किन्नर देवता मिले नर भक्षि बड़े २ शेर, चीते, भालू, आदि पशुओं का भी सामना हुआ, किन्तु गुरु महाराज को सब ने आदर की दृष्टि से देखा और नीचे मस्तक करके महाराज का मार्ग निर्विघ्न किया। मानस सरोवर ब्रह्मा जी के मानस से उत्पन्न परम पवित्र है इसकी उपमा हमारे हिन्दू धर्म ग्रन्थों में बहुत पायी जाती है। यह प्राकृतिक सरोवर अद्वितीय आश्चर्य जनक द्रव्यों से सुशोभित हिमालय *पर्वत मालाओं से ऊँचा अत्यन्त रमणीक, नयनाभिरामहंसों से भरपूर अनुमानतः २० कोस लम्बा और २० कोस चौड़ा होगा ॥२५-२६॥

दर्शं दर्शं परं हर्षं लेभे चन्द्र कलाधरः ।
शिष्या मुमुदिरे सर्वे विरक्ता अपि सन्ततम् ॥२७॥
परिक्रम्य च कैलासं पश्यन् दृश्यं समन्ततः ।
शनैः शनैः साधु जुष्टः पीताम्बर पुरं ययौ ॥२८॥

अर्थ—वहाँ सब का दर्शन करते हुये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी साधु मण्डली सहित समस्त कैलास की परिक्रमा करते सुन्दर दृश्य देखते शनैः शनैः चल पीलीभीत आते भये ॥२७।२८॥

गोला गोकर्णनाथस्य कृत्वा दर्शनमद्भुतम् ।
नैमिषारण्य मायातः तीर्थं तद्धि पुरातनम् ॥२९॥

---

*हिन्दू धर्म शास्त्रानुसार हिमालय के सर्वोच्च शिखर का नाम गौरीशङ्कर (गौरी शिखर) है, जिसका नाम अब अंग्रेजों ने एवरेस्ट रक्खा है इसकी ऊँचाई २९१४१ फिट की है। समस्त हिमालय १५०० मील लम्बा और २०० मील चौड़ा होगा। हिमालय के मध्य में नन्दा देवी, पञ्चचुली, गुरलामान्धाता, कामर आदि आदि ८२ चोटियां आती हैं।

स्वेन हेडन साहब ने अपनी सोध के पश्चात् लिखा है कि मानस सरोवर (कैलास) से ४ नदियां निकली हैं जिनके नाम यह हैं सतलुज मानस सरोवर से चल ज्यूगुफक्ष के निकट जाकर प्रथम रावण ह्रद में गिरती है पुनः यहां से बड़ी नदी का रूप धारण कर पश्चिम (पञ्जाब) चली गई है दूसरी ब्रह्म पुत्र मानस सरोवर के दूसरे ओर से पूर्व आसाम के ओर चली गई है, तीसरी सरयू, चौथी द्दाकछू नदी जो नीचे आके सिन्धु नदी के नाम से प्रसिद्ध है।

अर्थ—आगे गोला गोकर्णनाथ महादेव का दर्शन करते परम पवित्र और प्रचीन तीर्थ नैमिषारण्य में आये ॥२९॥

॥ नैमिषारण्य ॥

वाहुचन्द्र रसेन्दौ च वैक्रमे फाल्गुने सिते ।
तृतीयायां गुरौचन्द्रः चक्रतीर्थं समस्पृशत् ॥३०॥

अर्थ—वि० सं० १६१२ फाल्गुन सुदी ३ गुरुवार को जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने चक्रतीर्थ में स्नान किया ॥३०॥

शतरूपान्वितः श्रीमान् मनुः स्वायम्भुवः स्वयम् ।
तपस्तेपे यत्र घोरं वर्षाणामयुता युतम् ॥३१॥
ददौ दधीचिरस्थीनि शक्राय दानि सत्तमः ।
यैस्त्वष्टा विदधेऽरीणां भिदुरं भिदुरं महत् ॥३२॥
वैकुण्ठस्य महाबाहो रकुण्ठं चक्रमद्भुतम् ।
सुदर्शनं नाम यत्र सुदर्शनम शीर्यत ॥३३॥
अतो हेतो स्तस्य नाम चक्रतीर्थं व्यजायत ।
तत्र स्नातु विंनश्यन्तिचक्राणि सकलैनसाम् ॥३४॥
स्वागता दिभि रर्चाभिः नैमिषारण्य वासिनः ।
चन्द्र प्रसादया मासुः रुड संघा इवा खिलाः॥३५॥

अर्थ—यह बहुत पुराना सतयुगी तीर्थ है यहीं राजा स्वायंभू मनु और रानी शतरूपा ने तप किया था, यहीं पर दधीचि ऋषि नें अपनी अस्थि इन्द्र को दी थीं जिसका वज्र बना था श्री विष्णु भगवान् का पवित्र चक्र यहीं पर गिरा था, तबसे चक्रतीर्थ नाम पड़ा जिसमें स्नान करने से सब पाप नाश होते हैं। वहाँ के तप करनेवाले साधुओं ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र गुरुदेव को उच्चासन पर बैठाके सविधि पूजन किया ॥३१-३२-३३-३४-३५॥

सिंहासनं समासीनः सानन्द श्चन्द्र उत्तमम् ।
नैमिषारण्य तीर्थस्य पुरावृत्तं न्यवेदयत् ॥३६॥

अर्थ—उन लोगों की शुद्ध भक्ति को देखकर गुरुदेव जी बहुत प्रसन्न हो नैमिषारण्य तीर्थ का महात्म्य वर्णन कर सुनाया ॥३६॥

दिव्यामिमां कथां श्रुत्वा प्रमदाकुल मानसाः ।
वद्धाञ्जलि पुटः सर्वे तुष्टुवुश्चन्द्र मद्भुतम् ॥३७॥

अर्थ—यह सुन्दर दिव्य कथा सुनकर समस्त मनुष्य प्रसन्न हो हाथ जोड़कर श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की स्तुति करते बोले आप निर्गुण निराकार होकर भी अपने भक्तों की रक्षार्थ साकार रूप अपनी माया के आधार से अवतार धारण करते हो आप अजन्मा, अविनाशी और भूत मात्र के ईश्वर हैं समूचे संसार की उत्पत्ति और लय का कारण हैं । समय समय पर अवतार धरके भूभार उतारा करते हो आप एक अद्वितीय परमात्मा, परब्रह्म, पूर्ण पुरुषोत्तम, सच्चिदानन्द, स्वरूप हैं उदासीन भेष जो श्रौत चतुर्थाश्रमी सृष्टि प्रारम्भ काल से चला आता है । इसको धारण करके आपने इसकी उपमा और मान्यता को अत्यन्त अनुपम बना दिया, आप योगियों के सिरताज योगेश्वर धर्मोपदेशक, राजनीतिज्ञ तत्वज्ञानी, जगद्गुरु हिन्दू-जाति सन तन धर्म के रक्षक हैं, हिन्दू धर्म संस्थापक, सर्वान्तर्यामी, सर्व शक्तिमान्, सर्वज्ञ सर्व व्यापक, शरणागत् वत्सल, पतितपावन, सर्वभूत सुहृद, सर्व तन्त्र स्वतन्त्र होते हुये भी भक्त के आधीन रहनेवाले सर्व विद्याओं के श्रोत ऋद्धि सिद्धि प्रदाता आपही हैं । आपने बड़ी कृपा की जो कि हम लोगों को दर्शन देकर आनंदित और कृतार्थ किया ॥३७॥

पूजां प्रचक्रुः किलषोडशोपचारैश्चतं देव गुरुं महान्तम् ।
धन्या वयं तीर्थ मिदञ्च धन्यं पुण्याधिकैस्ते शुभ दर्शनन्तु ॥३८॥

अर्थ—ऐसा कह सबोंने षोडषोपचार से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का पूजन कर कहने लगे कि आपके पधारने से यह तीर्थ धन्य हुआ हमारे बड़े पुण्य उदय हुए जो आपका शुभ दर्शन पाया ॥३८॥

रामेन्दुरस चन्द्रेच लोकय ल्लक्ष्मणां पुरीम् ।
नवम्यां रामजन्मिन्यामयोध्यामयमागतः ॥३९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् नैमिषारण्य से चल मिश्रिक, लक्ष्मण पुरी (लखनऊ) लोधेश्वर होते वि० सं० १६१३ राम नवमी (चैत्र सुदी ९) के दिन अयोध्या पुरी आते भये युद्ध से जो न जीती जावे उसका नाम अयोध्या है ॥३९॥

अयोध्यामयोध्यां दृष्ट्वा सरव्वापाद लालिताम् ।
सस्मार रामराज्यस्य वारं वारमसौ तदा ॥४०॥

अर्थ—सारी अयोध्या का दर्शन करते भये जो कैसी है अयोध्या सरयू जी से सुशोभित श्री राम जी को स्मरण कराने वाली है ॥४०॥

स्वर्गद्वाराभिधेघट्टे स्नात्वासन परिग्रहम् ।
चक्रे चन्द्र कलामौलिः ललिते सरयू तटे ॥४१॥

अर्थ—यहाँ सरयू के किनारे स्वर्ग द्वार घाट पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् विराजमान हुए ऐसे शोभा पा रहे थे मानों तारागणों के मध्य चन्द्रमा ॥४१॥

महत्यां जायमानायां मेलायां सर्व मानवाः ।
आगत्या गत्य तं दृष्ट्वा परं मोद भरं ययुः ॥४२॥

अर्थ—राम नवमी का महान् पर्व होने कर जन समूह का बड़ा मेला लग रहा था लोग आय आय श्री गुरु जी का दर्शन कर बड़े आनन्दित हो रहे थे ॥४२॥

एतस्मिन्नतरे चैकः वैष्णवः साधु सत्तमः ।
नारायणाभिधो देवं दृष्ट्वा विस्मित मानसः ॥४३॥
चन्द्र पार्श्वे समागत्य समासीनः शनैः शनैः ।
चन्द्रकान्त इवासिक्तः शिशिरैराननांशुभिः ॥४४॥

अर्थ—इतने में एक नारायण दास जी नामक वैरागी साधु जो बड़े बुद्धिमान थे वह आय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का प्रभाव शाली मुखारविन्द देख विस्मित मन से बैठकर शनैः शनैः महाराज के मुखचन्द्र की प्रभा को देखते हुये प्रेम से गद्गद हो बोलते भये ॥४३-४४॥

प्रेम गद्गदया वाचा तंप्रष्टुमुपचक्रमे ।
सन्तो हि सन्त मालोक्य जिज्ञा सन्ते समादरात् ॥४५॥
कोभवान् कुत आयातः किन्नामा किञ्चिकीर्षति ।
सर्वंशुश्रूयते चेतः कौतुकं व्यपनीयताम् ॥४६॥

अर्थ—श्रीमान् जी आप कौन भेष के साधु हैं यह जानने को मेरे मन में बड़ी जिज्ञासा है, आप कौन हैं, कहां से आ रहे हैं, आपका क्या नाम है और आपकी क्या इच्छा है ॥४५-४६॥

श्रीचन्द्रोऽहमुदासीनः कैलासाच्च समागतः ।
दत्त चित्तोऽस्मि लोकानां कल्याणाय निरन्तरम् ॥४७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने कहा कि हमारा नाम श्रीचन्द्र है और जिस भेष को कपिल मुनि ने धारण किया जिसमें विश्वामित्र सुशोभित हुये जिसे श्री राम जी ने

५३

अपनाया जो ईश्वर से उदासीन सम्प्रदाय चला आ रहा हैं उसी भेष के हम साधु हैं कैलाश से आरहे हैं लोगों के कल्याण में हम निरन्तर दत्त चित्त से लगे रहते हैं ॥४७॥

श्रुत्वेदं वचनं तस्य राम भक्तः स सादरम् ।
रामनाम महात्म्यञ्च श्रोतुञ्चक्रे पुनर्मनः ॥४८॥

अर्थ—यह बचन महाराज का सुन के राम भक्त श्री नारायण दास जी राम नाम के महात्म्य श्रवण कराने की प्रार्थना करते भये ॥४८॥

ततः स भगवांश्चन्द्रः निमील्येव विलोचने ।
किञ्चिद् ध्यात्वेव तं प्राह श्रूयतां तत्त्वमद्भुतम् ॥४६॥

अर्थ—नारायणदास जी की यह विनय सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कुछ देर नेत्र मूँद कर ध्यानावस्थित हो गये पुनः नेत्र खोलकर बोलते भये ॥४६॥

अपार माहात्म्य मिदन्तु यच्च पृष्टं च नारायणदास धीमन् ।
परंकलौ तारण हेतवे च श्रीराम रामश्शरणञ्च चान्यत् ॥५०॥

अर्थ—हे नारायण दास जी राम नाम की महिमा अपार है कौन कहकर पार पाय सकता है। सत्युग, त्रेता, द्वापर में यज्ञ तपदानादि करते हुये सब में नाम का आधार होने से श्रेष्ठ माने गये परन्तु कलि के बीच तो राम नाम के सिवाय और साधन सब कठिन से प्रतीत होते हैं, वेद शास्त्र और साधु महात्माओं ने सभी युग के लिये मुक्त कण्ठ से राम नाम की महिमा गायन की है परन्तु कलियुग में रामनाम स्मरण के समान सहज मुक्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं है। सतयुग में भगवान् विष्णु का ध्यान करने से जो फल प्राप्त होता है, वह फल कलियुग में केवलहरि कीर्तन से प्राप्त होता है। ईश्वर के अनेक नाम हैं जो जिसके पसन्द आवे जपे, परब्रह्म परमात्मा अशरण शरण भक्त भयहारी के सर्व नामों की अपार महिमा इस संसार में है आराध्य चरण एक परमात्मा का ही मुख्य माना गया है। वही परमात्मा निरगुण सर्व शक्तिमान अपने भक्त रक्षार्थ अनेक रूप से अवतार धारण किया करता है यह बात गीता में स्वयं भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन के प्रति कह रहे हैं ॥५०॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूताना मीश्वरोऽपिसन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्म मायया ॥६॥ } अध्याय ४

अर्थ—मेरा जन्म प्राकृत मनुष्यों के सदृश्य नहीं है मैं अविनाशी स्वरूप अजन्मा सब भूतों (प्राणियों) का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को आधीन करके अपनी योग माया द्वारा प्रगट होता रहता हूँ ॥६॥

नमेविदुः सुरगणाः प्रभवंन महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥　} गीता अ० १०

अर्थ—भगवान् कहते हैं हे अर्जुन मेरी उत्पत्ति को न देवता जानते हैं न महर्षिगण ही जानते है, क्यों कि मैं देवता और महर्षियों का भी आदि कारण हूँ। हे नारायण दास जी परमात्मा सर्वत्र व्यापक विभु है उसका आना जाना नहीं होता। यह अवतार धारण करना तो वहीं का वहीं आवश्यकतानुसार रूप धर के प्रगट हो जाना है। यह उनकी शक्ति का विकाश है। तभी पञ्चदशी में कहा है ॥२॥

सर्व शक्ति मयं ब्रह्म नित्यमा पूर्ण मद्वयम् ।
यथोल्लसति शक्त्यासौ प्रकाश मधिगच्छति ॥

अर्थ—अवतार होने से बहुत जीवों को लाभ पहुँचा करता है इस लिये परमात्मा के अनेक अवतार हुये हैं जिनकी संख्या लगाना अति दुस्तर है।

नोट—कला भेद से पाँच प्रकार के अवतार माने जाते हैं १ पूर्णावतार २ अंशावतार ३ विशेषावतार, ४ आवेशावतार ५ नित्यावतार। कहीं २ इस प्रकार भी लिखा मिलता है कच्छ मच्छादिककला अवतार, मरीचयादि मुनि अंशांश, ब्रह्मादि अंश, परशुराम आवेश, नर नारायण पूर्ण, और परिपूर्णतम साक्षात् राम और कृष्ण स्वयं भगवान् ही आकर संसार में प्रगटे हैं, जिनको षोडशकला पूर्ण कहते हैं यह षोडशकला की पूर्ण शक्ति परिपूर्णतम परमात्मामें ही होती है ऐसा छान्दोग्योपनिषद् अ० ६-खण्ड ७ में लिखा है **"षोडशकलः सौम्यपुरुषः"** इसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी आया है **"षोडशकलो वै पुरुषः"** **"षोडषकला प्रजापतिः"** (शतपथ ७।२।१७) **"षोडशकलं वै ब्रह्म** (जै० ३।३ ३८।८) षोडश कला का हिसाब यों आता है (१) एक कला अन्न में होती है, अन्नमय कोष द्वारा उद्भिज योनि के जीवों की उत्पत्ति होती है तथा जीव मात्र की तृप्ति अन्न से ही होती है, कलियुग में विशेषतया प्राण अन्न में ही रहते हैं, (२) स्वेदज में दो कला अन्नमय प्राणमय का विकाश है, उद्भिजों में प्राणमय कोष का विकाश न होने से चल फिर नहीं सकते, इससे जड़ कहे कहे जाते हैं, स्वेदजों में जो चलने फिरने की शक्ति होने से प्राणमय कोष का काम है (३) अंडजों में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय तीन कला का विकाश होने से इनमें प्रेमकी अधिकता होती है (४) जरायुज में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, तथा विज्ञानमय, चार कला का विकास होता है (५) मनुष्यों में अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्दमय पांचकला का विकास है, इससे संसार में अपने पराये भले बुरे का ज्ञान होता है, यह गुण साधारण तया से सब मनुष्यों में पाये जाते हैं (६) किसी प्रकार की अधिक शक्ति का होना यह छठी कला

का विकास है इस अधिकशक्ति को विभूति कहते हैं यह कला जिसपर भगवान् की कृपा होती है उसी के पास आती है।

यद्यद्विभूति मत्सत्वं श्री मदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोऽशसंभवम् ॥४१॥ } अ० १० गीता

(७) वीं कला धर्म की (८) अर्थ की (६) भक्ति की (१०) सर्व-शक्ति (११) सर्वज्ञ (१२) योग, (१३) यश (१४) तप, (१५) सर्व तन्त्र स्वतन्त्र (१६) सर्वोपर होना। उपरोक्त सर्व कला भक्त भगवान् राम, कृष्ण, हुये हैं भगवान् के अनन्त नाम सभी साधुओं तथा भक्तों को संसार सागर से पार लगाने वाले हैं परन्तु सबमें से राम नाम की बड़ाई शास्त्रों में अधिक गाई है।

इदंदृश्यमानं जगत्स्याल सूक्ष्मं सदा राम राम स्सदा राम रामः।
नतद्भिन्न मस्त्येव किञ्चिद्धि लोके महा व्यापकंकार रामस्वरूपम् ॥५१॥

अर्थ—दृश्यमान संसार सब स्थूल सूक्ष्म राम ही हैं उनसे भिन्न कुछ नहीं है इसलिए सर्वत्र व्यापक राम ही राम है इससे भिन्न कुछ नहीं जानना ॥५१॥

इदात्रिर्गुणं रामनामाभि रामं सदा व्यपकं ब्रह्म वेदान्त गम्यम्।
इदं सत्यमस्त्येव मिथ्या समग्रन्नरामाति रिक्तं पदार्थ स्वरूपम् ॥५२॥

अर्थ—श्री राम का नाम प्रकृति के गुणों से अतीत है यही राम का नाम सर्व व्यापक ब्रह्म स्वरूप है यह वेदान्त से जाना जाता है। सृष्टि के दृश्यमान पदार्थ सब राम से भिन्न होने कर मिथ्या हैं इसका जान लेना ही सच्चा राम नाम का जानना है ॥५२॥

न चाऽप्यक्षरं रामनामाति रिक्तं जगत्सर्वमत्रैव लीन प्रयाति।
इदन्तत्वमेकन्तु रामेति नाम न तद्भिन्न मस्त्येव लोकेऽपि किञ्चित् ॥५३॥

अर्थ—राम नाम से अलग अक्षर कुछ नहीं है संसार राम से उत्पन्न हो के राम ही में लीन होता है शुद्ध निर्मल तत्व एक राम नाम ही है भिन्न कुछ नहीं है ॥५३॥

यथा स्वप्न दृष्टा पदार्थाश्च नष्टा भवन्त्येव सञ्जागरा याम जस्रान्।
यथा शुक्ति कायां भ्रमो राजतश्च यथा रज्जुरूपे भ्रमोऽहेर्नितान्तम् ॥५४॥

अर्थ—जैसे स्वप्न के पदार्थ जागने पर मिथ्या हो जाते हैं उसी प्रकार ज्ञान हो जाने पर यह संसार शुक्ति में रजत और रज्जु में सर्पवत् भासता है ॥५४॥

यथा स्थाणु रूपेयथा चश्चिकायां भ्रमोजायते पौरुषस्सत्पुरुषः ।
तथा सर्वमेतद् भ्रम ज्ञानमात्रं नरायातिरिक्तकिञ्चिन्नकिश्चत् ॥५५॥

अर्थ—जैसे खाली स्थान में पुरुष को भ्रम हो जाता है उसी प्रकार संसार में राम के अतिरिक्त सब भ्रम मात्र है ॥५५॥

इदं रामनामाभि रामश्च सत्यं सुसत्यं सुसत्यं महा सत्य मस्ति ।
जगद्भासमात्रं जगद्भासमात्रमिदं रामनाम महाभास मात्रम् ॥५६॥

अर्थ—यह राम नाम सत्य है महा सत्य है संसार मरु मरीचिका है ॥ ५६॥

इदं रामनामैव वेद स्वरूपमिदं सर्जकं सृष्टि कर्तृत्वमस्ति ।
इदं पालकं हारकं स्वेच्छयैवमिदं राम रामेति नित्यं प्रगीतिः ॥५७॥

अर्थ—यह राम नाम सृष्टि करनेवाला है पालक है संहारक है सब कुछ है इसलिये नित्य हर समय राम नाम जपना उचित है ॥५७॥

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति राम पदेनासौ परं ब्रह्म भिधीयते ॥६॥
मन्त्रोऽयं वाचकोरामा वाच्यः स्याद्योग एतयोः ।
फलतश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः ॥२॥

—राम पूर्वतापिन्युपनिषद

अर्थ—इसका अर्थ इस प्रकार है योगी लोग जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्मा में रमण करते हैं उसी का राम पद से बोध होता है उसी को परब्रह्म कहते हैं राम नाम मन्त्र वाचक है और राम वाच्य है, इन दोनों का जो जोग है वह सब प्रकार के साधुओं को फल देने वाला है इसमें कोई संशय (संदेह) नहीं है अब राम नाम के जप करने की प्रक्रिया बताते हैं ।

रकार हेतु वैराज्ञं परमं यच्च कथ्यते ।
अकारो ज्ञान हेतुश्च मकारोभक्ति हेतुकम् ॥

अर्थ—रकार वैराज्ञ द्वारा परलोक में और अग्नि द्वारा लोक में पोषण करता है, अकार ज्ञान द्वारा परलोक में और भानु द्वारा लोक में पोषण करता है और मकार भक्ति द्वारा परलोक में और चन्द्रमा द्वारा इस लोक में सुख देता है इस प्रकार श्री राम नाम लोक परलोक दोनों में लालन पालन करता है ।

रकारगुरु राकारस्तथा वर्णं विपर्ययः ।
मकार व्यञ्जनश्चैव प्रणवंचा भिधीयते ॥
अकारः प्रणवेत्सत्व मकारश्च रजोगुणः ।
तमोहलमकारः स्यात् त्रयो हे कारमुद्भवे ॥ } महा रामायण

प्रिये भगवतो रूपो त्रिविधो जायतेऽपिच ।
विष्णु त्रिविरहं चैव त्रियोगुण विधारिणः ॥

अर्थ—रकार की अकार तथा रकार में जो गुरु आकार है वह हुआ उकार यह वर्ण व्यञ्जन में न आकर स्वर में आते हैं तथा मकार व्यञ्जन में आता है इस लिये स्वर और व्यञ्जन दोनों का सम्बन्ध मिलाके राम शब्द निश्चय प्रणव (ओम्) शब्द है प्रणव में अकार सतोगुण से विष्णु रूप प्रगट हो सर्व ब्रह्माण्डका पालनकरता है उकार रजोगुण से ब्रह्मा रूप हो सकल ब्रह्माण्ड की रचना करता है, और मकार तमोगुण से रुद्र रूप धारण करके ब्रह्माण्ड का संहार करता है यह प्रणव अगुण सगुण दो भेद से है अगुण अनुपम, सगुण दिव्य गुण सम्पन्न है प्रणव लिखने से सगुण और जपने से निर्गुण है

प्रश्न—प्रणव किसको कहते हैं।

उत्तर—ओंकार को ही वाचक रूप में प्रणव कहा जाता है "तस्य वाचकः प्रणवः" (पातञ्जलि सूत्र १॥२७)

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा योयदिच्छति तस्यतात् ॥२-१६॥ } कठोपनिषद्

अर्थ—यह ओंकार अक्षर ही ब्रह्म है इस ओंकार रूप अक्षर को जानकर जो मनुष्य जिस वस्तु को चाहता है उसको वही मिलती है इसी बात को भगवान् श्री कृष्ण अपनी गीता अ० ८ में कहते हैं।

ओमित्ये काक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मा मनुस्मरन् ।
यः प्रयातित्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

सो यही ॐ सब का बीज रूप है।

"यश्यांसे नैव ब्रह्मा विष्णु महेश्वरा अपिजाता महा विष्णु यंश्य दिव्य गुणांश्च सयेव कार्य कारणयोः परः परम पुरुषो रामो दासरथी वभूवः" ॥

यस्यांशेन समुद्भूता ब्रह्मा विष्णु महेश्वरा ।
नानाकृति धरा भूताः सर्वे ध्यायन्ति तं सदा ॥ } महा रामायण

अर्थ—जिसके अंश से ब्रह्मा विष्णु महेश्वर उत्पन्न होकर नाना प्रकार के कार्य करते हुये सदा पर ब्रह्म परमात्मा का ध्यान किया करते हैं ।

ब्रह्माविष्णुमहेशाद्या यस्यांशे लाभ साधकः ।
तमादि देव श्री रामं विशुद्धं परमं भजे ॥ } स्कन्ध पुराण

अर्थ—जिसके अंश से ब्रह्मा विष्णु महेश उत्पन्न हो सब को लाभ पहुँचाते हैं वही श्री राम विशुद्ध परम परमेश्वर का भजन करना चाहिए। सृष्टि आदि काल से हिन्दू धर्म का आधार भूत पुस्तक वेद माना जाता है कारण वेद के सिद्धान्त से ही सर्व धर्मों का आविष्कार हुआ है सोवेद में श्री रामोपासना की प्राचीनता ऋग्वेद मण्डल ७ अनुवाक् ८६ में मन्त्र रामायण नामक एक प्रख्यात प्रकरण है उसके १४१ मन्त्र में श्री राममन्त्रोद्धारक का वर्णन आया है। श्री राम तापनी उपनिषद् की चतुर्थ कंडिका में श्री राम मन्त्र का वर्णन किया है। काशी में शिव जी ने राम जी को जपा है।

एतन्मन्त्र मगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्व माप्नुयात् ।
ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकोस्त्वमरेशताम् ॥ } वृहद् हारीत स्मृति अ० ६

अर्थ—इस राम मन्त्र को ब्रह्मा शङ्कर वशिष्ठ अगस्त्य कश्यप, कौशिक, कार्तिकेय, इन्द्र, सूर्य, नारदादि सब ने जप के रामोपासना कर दिव्य दैवत्व पद को प्राप्त हो गये। रामोपासना सृष्टि के आदि काल से अविच्छिन्न रूप से चली आती है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में समस्त मुनि (साधु) ऋषि लोग रामोपासक हो गये हैं। अगस्त्य संहिता १९ तथा २५ पञ्च रात्र, ब्रहद्ब्रह्म संहिता द्वितीय पाद अ० ७, पद्मपुराण उत्तर खण्ड अध्याय २३५, वृहद् नारदीय पुराण पूर्व भाग अ० ३७ आदि सब यही कहते हैं कि रामोपासना प्राचीन है।

इत्थं नाना विधेरेष उपदेशैः सुधोपमैः ।
स्नपयामास सकलां जनतां जन जीवनः ॥५८॥

अर्थ—इस प्रकार उत्तमोपदेश श्रवण कर महात्मा नारायण दास जी अति प्रसन्न हो वारम्बार श्री गुरुदेव श्रीचन्द्र महाराज को दण्डवत कर अपने आश्रम की ओर चले जाते भये ॥५८॥

अनेकोपदेशैरयोध्यास्थ जीवा प्रसन्नाश्च तृप्तां महामोद युक्ता।
यशेगान चित्ता गुरुर्देवदेवेति मन्त्रं जपन्तो विरक्तो बभूवुः ।५६।

अर्थ—इस प्रकार श्री गुरुदेव ने अनेकोपदेश से अयोध्या निवासी मनुष्यों को खूब आनन्दित किया सब जीव गुरु जी का यशोगान करने लगे "ॐ श्रीचन्द्राय गुरुवेनमः" ऐसा मन्त्र सब लोग जपने लगे चरण धोय चरणामृत पी गुरुमन्त्र ले सेवक बनते भये ॥५६॥

यत्र श्रीचन्द्र भगवान् तदासीनो नदी तटे।
स्वर्गद्वाराभिधं घट्टं सम्प्रत्यपि विराजते ॥६०॥

अविदूरे लक्ष्मणस्य मन्दिरात्सद्भिरासितम्।
उदासीनैरुदासीनैः विषयेभ्यो दिवा निशम् ॥६१॥

अर्थ—अयोध्या में सरयू किनारे स्वर्गद्वार घाट पर जहांपर बैठकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने लोगों को सतोपदेश दिया था वहाँ पर उदासीन आश्रम अभीतक वर्तमान है जो श्री लक्ष्मण मन्दिर के समीप है ॥६०-६१॥

अयि मानव ! पाप चयं धवितुं, यदि वाञ्छसि तच्छृणु मे वचनम्।
हृदयेन समूह्य दया निलयं, पठ चन्द्र चरित्रमिदं विमलम् ॥६२॥

अर्थ—हे हिन्दूवीरो ! यदि तुम तीनों पापों से छटना चाहते हो तो हमारा बचन सुनके अपने हृदय में समूचे दयाके आगार जो श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् हैं उनका विमल चरित्र सर्व प्रकार के कुतर्क त्याग श्रद्धा भक्ति भाव से पढ़ा करो तभी भला होगा ॥६२॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन-वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे देहली मथुरा, वृन्दावन, मानसरोवर नैमिषारण्य, अयोध्यादि भ्रमण रामनामोपदेश वर्णनं सकल कलि कल्मश नाशिनी एकत्रिंशतितमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥३१॥

॥ द्वात्रिन्शति किरण प्रारम्भः ॥

अयोध्यायाध्यायी सह सकल शिष्यः शम धनः,
गतोदर्शं दर्शं नव नव विलासाञ्जन पदाम्।

प्रयागं यज्ञीयं नयन रमणीयं नरमणिः,
त्रिवेणी स्नाने नामलमपि वपुः पूतम करोत् ॥१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अयोध्या से अपनी समस्त उदासीन साधु मण्डली सहित चल मार्ग में लोगों को दर्शन देते नवीन से नवीन उपदेश का आनन्द देते हुये तीर्थ राज प्रयाग आते भये, जो नयनाभिराम तीर्थों में मणिवत् राजा के समान तीर्थ राज है। वहां पर त्रिवेणी में स्नान करने से सब पाप ताप नाश हो करके शरीर पवित्र हो जाता है यहां आनन्द भोग अन्त में वैकुण्ठवास पाता है ॥१॥

मुहुर्नामं नामं त्रिनयन जटा जूट गलिता,
मसौ गङ्गा मङ्गी कृत नरतनुः शैल निलयः।
अहो स्तावं स्तावं प्रणयकुपितामेष नियतम्,
समानेतुं भूयः सुरसरित मागाच्छशि धरः ॥२॥

अर्थ—तीन नेत्र वाले शंकर जी की जटा से निकली हुई श्री गङ्गा महारानी बार २ नाम लेने वाले मनुष्यों को पवित्र कर देती है, इसलिए मैं बार २ गंगा को प्रणाम करता हूँ कि कहीं आप कुपित न हो जावे इस नियत से। आप (गंगा जी) के समान संसार में कौन होगा जिसको शंकर जी ने अपने शिर पर धारण किया है ॥२॥

पुनर्नत्वा वद्धाञ्जलि कमल कान्ते न शिरसा,
सखीमस्याः श्यामां तरणितनयां चाटुवचसा।
नुनावायं गङ्गा हृदय ममली कर्तुमहह,
वचोवर्त्मा तीतस्तव तु नदि सौभाग्य गरिमा ॥३॥

अर्थ—फिर हाथ जोड़कर यमुना जी को सिर से नमस्कार करता हूँ जो शंकर जी के सिर पर विराजमान गङ्गा जी की सखी श्याम शरीर वाली सूर्य की कन्या बोलने में बड़ी चतुर ऐसी श्री यमुना जी प्रयाग राज में श्री गङ्गा जी के हृदय में लीन होने वाली बड़ी सौभाग्य शाली हैं ॥३॥

अथ श्रीचन्द्र भगवान् स्नातो गङ्गामलैर्जलैः।
प्राणानायम्य पूतात्मा प्रतस्थे दक्षिणां दिशम् ॥४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् त्रिवेणी के निर्मल जल में स्नान कर

पवित्रात्मा प्राणायाम करने लगे उसी समय पूर्व दिशा में कुछ दक्षिण दिशा के भाग में श्री भुवन भास्कर (सूर्य नारायण) उदय होते भये ॥४॥

गत्वा कतिचन क्रोशान् रीवाँ राज्यमवाप सः ।
तत्रत्या जनता सर्वा तंदृष्ट्वा विस्मिताऽभवत् ॥५॥

अर्थ—अनेक पुरुषों को धर्मोपदेश दे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् प्रयाग राज से चल रीवाँ राज्य में आते भये वहाँ की समस्त जनता आप का दर्शन कर बड़ी प्रसन्न होती भई ॥५॥

श्रीचन्द्रो भगवान् गत्वा सर्वर्तुमदिते शुभे ।
उद्याने स्वासनं चक्रे साधु मण्डल मण्डिता ॥६॥

अर्थ—श्री ११०८ हिन्दूधर्म रक्षक महाप्रभु गुरुओं के गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी मण्डली सहित रीवाँ में आकर राजा के बगीचे में ठहरे ॥६॥

एका विचित्रा किल वाटिका च निम्बादि वृक्षैः परिशोभिताच ।
शुष्कातिशुष्काऽधिक वासरैश्च गुरो प्रयाणादति सार्द्र रूपा ॥७॥

अर्थ—रीवाँ राजधानी में एक बहुत सुन्दर बगीचा था, जिसमें निम्ब, कदम्ब, आम, अंगूर, अनार, चम्पा, अमरूद गुलाब, आदि मोतिया बेला, चमेली आदि २ पुष्प के वृक्षों से सुशोभित था किन्तु बहुत दिनों से बगीचा सूखा पड़ा था ॥७॥

कालेच यस्मिन् गुरुपाद पद्मस्समा गतो राज्य कला सुकेकः ।
फलेन पुष्पेन सुसज्जिताश्च वृक्षाश्च वायु र्वहते सुगन्धिम् ॥८॥

अर्थ—जैसे हीं श्री गुरूजी ने अपना परम पावन पाद पद्म उस उद्यान में रखा वैसे ही वह एकदम हरा भरा होगया सब वृक्ष फल फूल से लद गये जिससे वायुदेव शीतल मन्द सुगन्धित बहने लगे ॥८॥

हरिद्रुम लता जालैः कूजितैः मृग पक्षिणः ।
सर्वर्तु फलपुष्पाढ्य वाटिका लहलहायते ॥९॥

अर्थ—सर्व वृक्ष लताओं से वेष्टित हरित हो भूमि में फल पुष्प के भारसे झुक गये जिनमें मृगादि पशु तथा पक्षिगण कल्लोल करते चहचहाने लगे सर्व ऋतु के फल पुष्प लग गये इस प्रकार वह बाग हरा हो लहलहाय उठा ॥९॥

कदम्ब चम्पकाशोक करञ्ज वकुलाशनैः ।
पलस मन्दार कुंदश्च चूत योतैरलं कृतम् ॥१०॥

अर्थ—जिस बाग में कदम्ब, चम्पा, अशोक करञ्ज वकुल आशन, पलास, मन्दार, कुन्द, आम, आदि नाना प्रकार के फल से वृक्ष शोभा पा रहे थे ॥१०॥

पुष्पञ्च गुरु पूजार्थं मानदासस्य प्रार्थये ।
गुरु शिक्षा शिरोधार्य आगता पुष्प हर्षयः ॥११॥

अर्थ—इस प्रकार बाग को हरा भरा देखके श्री गुरु जी के साथ का एक साधु जिसका नाम मानदास था वह हाथ जोड़के बोला कि हे सद्गुरु जी आज्ञा देवें तो आपके पूजार्थ पुष्प इस बाग से तोड़ लाऊँ। तब श्री गुरुजी ने कहा कि बाग के माली से पूछ के लाना, बिना पूछे कभी किसी की वस्तु चाहे वह फूल पत्ती भी हो साधु लोग नहीं लेते, यही साधुओं की श्रेष्ठता है। यह सुन वह साधु प्रसन्नता पूर्वक बागके माली से पूंछ के श्री गुरु श्रीचन्द्र जी के पूजार्थ पुष्प तुलसी बेल पत्रादि लाता भया ॥११॥

अत्यद्भुतं तच्चरितं शिवस्य दृष्ट्वा च माली समुवाच राज्ञः ।
एकश्च योगी वहु साधु युक्तः समागतो मे खलु वाटिकायाम् ॥१२॥

अर्थ—इस बगीचे का माली यह आश्चर्य लीला देख राजा से जाकर बोला हे राजन् एक साधु जिसके साथ बहुत साधु हैं आपके बगीचे में आया है बड़ा करामाती है सिद्ध त्रिकालज्ञ हैं ॥१२॥

समागते च तत्र वाटिकायामानन्द धाराभिनवा ववर्ष ।
सन्नग्नयाद्राज कलाभिमानी सामात्य वृन्दो गुरु सन्निधौच ॥१३॥

अर्थ—उनके आने से बगीचा में आनन्द धारा नवीन सी होगई है राजा ने पूँछा वह अकेले हैं या और भी कोई साथ है। बागवान बोला १५-२० साधु और भी साथ हैं, जिनमें कुछ नागे हैं जो अखण्ड विभूति लगाये शिर पर जड़ाव कमर में जंजीर गले में शेली पहर रक्खी है तथा जो परम हंस है वह शिर मुण्डित भगवे वस्त्र वाले हैं, विद्वान सभी हैं कारण कल कई आदमी शहर के गये थे उनसे बात चीत होते हमने सुना था। उन सब साधुओं के बीच एक बड़ा प्रतापी तपस्वी महात्मा हैं, जिनके शरीर के आकार से तो प्रतीत होता है कि दश बारह वर्ष का बालक होगा किन्तु अवस्था बड़ी है, साथके सब साधु साम सबेरे उनको नमस्कार करते हैं जब वह महात्मा उठते हैं तब सब उठ खड़े होते हैं उनके बैठने के बाद सब बैठते हैं, उनकी आज्ञा के बिना कोई साधु कुछ काम नहीं करता। इससे अनुमान होता है कि वह सब साधुओं का सरदार (महन्त)

है, एक बात और भी विलक्षण देखी कि वह लोग रात को कोई सोते नहीं, सभी आसन में बैठ आँख मूंद ध्यान लगाके भजन करते हैं ॥१३॥

अर्द्ध रात्रिगतं पश्चात् युग्मसिंहो महा बली।
तं दृष्ट्वातिभयं मूर्च्छा नर नारी धरं वपुः ॥१४॥

अर्थ—आधीरात के पीछे दो शेर बड़े भयानक हृष्ट पुष्ट आये जिसको देख के हमारा कलेजा दहल गया, प्राण बचने की आशा न रहगई, किन्तु वह किसी से न बोले, उन शेरों को देखते ही मुख्य साधु को छोड़ बाकी के सब साधु उठ खड़े हुये, उन दोनों शेरों ने बड़े (मुखिया) साधु के सामने पहुँचते ही अपना शरीर बदल एक पुरुष दूसरा स्त्री बन गया और उन स्त्री पुरुषोंने उनके सामने प्रणाम और स्तुति की जो हमरे समझ में नहीं आई किन्तु ॥१४॥

यस्मिश्चापि समासीना मुनयः साधु संगमः।
अगस्तस्य मुनिं नाम लोपामुद्रा महौयशः ॥१५॥

अर्थ—इतना हम जरूर समझते थे कि वार्तालाप करते समय उस मुखिया साधुने शेर वाले आदमी का नाम अगस्त्य मुनि और शेरनी (स्त्री) का नाम लोपामुद्रा करके लिया था पीछे फिर वह दोनों शेर का रूप धारण कर जिधर से आये थे उधर ही चले गये, यह सुन राजा समझ गया कि कोई कलावान् पहुँचे महात्मा हैं। राजा ने फिर पूछा कि उनके भोजनादि का भी प्रबन्ध तुम लोगों ने किया है या नहीं, तब माली ने कहा कल तो शहर के लोग बड़े प्रेम से उन्हें खिला गये थे तथा उनका प्रसाद हम लोगों को भी दे आप सब भी खा गये थे ॥१५॥

आगतोहं महीपाल समारोहश्च संयुता।
प्रसन्न वदनं प्राह मम भाग्योदयः प्रभुः ॥१६॥

अर्थ—यह सुन सब दरबारियों समेत राजा नंगे पांव नौकरों सहित गुरु देव जी के पास आकर प्रसन्नवदन बोला कि मेरा भाग्य उदय हो गया जो आप यहाँ पधारे ऐसा कह ॥१६॥

नत्वा समागत्य विचित्र तेषं समर्थयामास वहूपचारैं।
वद्धाञ्जलि र्भक्तियुतो दयालु स्तुष्टाव राज्ञो भगवन्तमाद्यम् ॥१७॥

अर्थ—प्रणाम कर अनन्तोपचार से गुरु देव जी का पूजन किया, भक्ति श्रद्धा से हाथ जोड़ राजा गुरु देव की स्तुति करता बोला, कि आप का चरण तीर्थ रूप है, जिसमें पापियों के तारने की शक्ति है, आपका प्रत्येक वचन वेद रूप है, आपकी प्रत्येक क्रिया हिन्दूओं की शिक्षा वास्ते संजीवनी बूटी रूप है, आप गुणातीत सिद्ध योगिराज सच्चिदानन्द स्वरूप हैं ॥१७॥

ततोविशालं प्रथितं च शास्त्रेप्रश्न श्श्च काराखिल सिद्धये च ।
शान्तिर्दयासत्य ततश्च कर्म यद्वैदिकं सर्व जनानु कूलम् ॥१८॥

अर्थ—अखिल सिद्धि (कल्याण) के वास्ते राजा ने गुरु देव से प्रश्न किया शान्ति क्षमा दया सत्य संतोष सब श्रेष्ठ गुण कैसे संसार में मिलते हैं ॥१८॥

लभ्यङ्कथङ्कारमिदं स्वरूपं युक्त्या च संशिक्षय योगिराज ।
सत्सङ्गतेश्चापि गुरोः कृपालो ह्यलभ्य लाभो भवतीत सिद्धिः ॥१६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले हे राजन् मान, मोह, मद, क्रोध, डाह, लोभ, दम्भ त्याग कर सद्गुरु की शरण जाय उसकी बताई युक्तियों को अमल में लाने से मनुष्य, मनुष्य से देवता बन परमानन्द की प्राप्ति करता है। इसकी युक्ति ब्रह्मनिष्ठ उदासीन साधुओं के पास ही मिल सकती है। केवल शास्त्र पढ़ने से नहीं, धर्मात्मा पुरुष जिस ग्राम नगर देश में रहता है वह तो सुखी रहता ही है, साथ में अपने धर्मा चरण के प्रताप से औरों को भी सुखी कर देता है। महाभारत विराटपर्व अ० २८ में महाराज भीष्म दुर्योधन के प्रति यही बात कहते हैं कि महाराज युधिष्ठिर जहां रहते होंगे उस देश के मनुष्य दान शील उदार, जितेन्द्रिय धर्मात्मा होंगे कारण श्रेष्ठों की संगत मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है। तभी तो शास्त्र कार सत्संग का बड़ा महात्म्य बताते हैं ॥१९॥

दूरी करोति कुमतिं विमली करोति, चेतश्चिरं तनमघं चुलकी करोति ।
भूतेषु किञ्च करुणां बहुली करोति संङ्गः सतां किमुन मङ्गल मातनोति ॥

वाञ्छा सज्जन संगतौपर गुणेप्रीति गुरौनम्रता,
विद्यायां व्यसनं स्वयोषित रतिर्लोकापवादाभयम् ।
भक्तिः शूलनि शक्ति रात्मदमने संसर्ग मुक्तिः खले,
ष्वेतेयेषु वसन्ति निर्मल गुणास्तेभ्यो नरेभ्योनमः ॥६२॥
(भर्तृहरि नीति शतकम्)

अर्थ—सज्जनों के संग की बाञ्छा, पराये गुण में प्रीति, बड़े लोगों से नम्रता, विद्या में व्यसन (प्रेम), अपनी स्त्री से प्रीत, लोक निन्दा से भय, महेश्वर में भक्ति, आत्मा के दमन की शक्ति और खल के संग का त्याग, ये निर्मल गुण जिन हिन्दू पुरुषों में हैं भर्तृ हरि जी कहते हैं वह पुरुष नमस्कार योग्य है। अपना २ धर्म करना सबको श्रेष्ठ है, जिनका धर्म नहीं वह स्वयं नहीं, इसलिये स्वरक्षार्थ स्वधर्म (अपने हिन्दू धर्म) का पालन नितान्त अपेक्षित है। अपनी हिन्दू जाति की रक्षा करने से हिन्दू धर्म सदा ही रक्षित बना रहता है

भावी अमिट है समस्त प्राणी कर्म रूपी सूत्र में बंध कर रथ चक्र की भांति इस संसार के बीच में आवा गमन करते रहते हैं। जन्म, बालक, युवा, वृद्ध मृत्यु ये शरीर के भेद हैं। अविद्या जन्म कामना कृत कर्मों से यह मनुष्य शरीर रचा गया है। इसलिये आत्मज्ञानी पुरुष इस देह में कभी आसक्त नहीं होते वह जानते हैं आत्मा शरीर से अलग है, कारण आत्मा एक है, शरीर बालक युवा वृद्धादि के भेदसे अनेक प्रकार का दृष्टि आता है, आत्मा शुद्ध चैतन्य है शरीर मलीन है आत्मा स्वयं प्रकाश है शरीर जड़ वस्तु है आत्मा निर्गुण है, शरीर सगुण है निर्गुण का नाश नहीं होता, सगुण रहता नहीं, आत्मा गुणों का आश्रय है, शरीर कारण भूत गुणों के आश्रित है, आत्मा सर्व व्यापक है, शरीर परिच्छिन्न है, आत्मा आवरण रहित है शरीर घर द्वार से आवृत है, आत्मा सब का साक्षि है, शरीर दृश्य है आत्मा दुःख रहित है शरीर दुःख सहित है, आत्मा सबसे परे है, जो पुरुष इस प्रकार आत्मा और शरीर के भेद को समझ जाते हैं उनको फिर क्लेश नहीं रह जाता वही मनुष्य शांति पाते हैं, चाहे वह संसार प्रकार से लगे रहें चाहे प्रथक रहेंऐसा कह महाराज मष्ट कर जाते भये।

वहूपदेशं श्रुतवान् नरेशः प्रक्षाल्य पादौ च गृहीति मन्त्रः।
शिष्यः प्रतापी च कला कलाज्ञो गुरोः प्रसादादवनीं ततान ॥२०॥

अर्थ—इस प्रकार रीवां *नरेश अनेकोपदेश सुनके श्री गुरुदेव जी का चरण धोय गुरु मन्त्र ग्रहण कर सेवक होगया धर्म कला को बिधिवत जानां गुरुजी के प्रतापी आशीर्वाद से नाना प्रकार से पृथ्वी में आनन्द से अपना यश विस्तार किया ॥२०॥

॥ चित्रकूट ॥

गुण चन्द्ररसैश्चन्द्रे सम्मते विक्रमेशुभे।
जेष्ठ शुक्ले हरेस्तिथ्यां श्रीचन्द्रो भगवान् गुरुः॥२१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् रीवाँ से चल नागौर मइहर होते वि० सं० १६१३ जेष्ठ सुदी ११ को चित्रकूट आय, कामदनाथ, हनुमानधारा, देवाङ्गना, अनुसुइया भरत कूपादि दर्शनीय स्थानों को देख फटिक शिला के समीप सिरसावन में विराजते भये ॥२१॥

*रीवां राज्य को बाघ देव ने गुजरात से आके वि० सं० ६३७ में बसाया इनका पुत्र कुरन देव वि० सं० ६७२ को राजा बन, राज की बड़ी वृद्धि की और अपने राज का नाम बघेलखंड रक्खाइन के वंश परम्परा में १९वें राजा वि० सं० १६०१ में वीर भानराव गद्दी पर बैठे इसी के समय वि० सं० १६१३ जेष्ठ बदी १० को श्री ११०८ हिन्दू धर्म रक्षक भगवान् श्री चन्द्र महाराज गये थे।

दृष्ट्वा प्रतापी मुखमद्वितीयं ज्योतिश्छटादीप्तमपूर्व रूपम् ।
नत्वा जनास्तच्चरणारविन्दं ददौ शुभाशीर्वचनं च धर्मम् ॥२२॥

अर्थ—जनता ने दूर से ही अद्वितीय प्रतापी मुखारविन्द की जगमगाती ज्योति की छटा को देख के पूर्ण साधु जान आय आय श्री चरणारविन्दों में नमस्कार कर बैठ जाते भये श्री गुरू महाराज उनको शुभाशीर्वाद देते हुये अपने धर्म रक्षा पर परिपक्क रहने का सुन्दर सदोपदेश दिया ॥२२॥

चिन्तातुरो वैश्य वर्यो रामाधीन पदा भिधः ।
निवेद्य कष्टं गुरुवे शान्त चित्तो वभूवह ॥२३॥
दयालु र्भगवानीशः ददौ मूर्तिं वरां सकाम् ।
स प्राणि वर्गस्ते नैव ततर्प गुरु वंदनात् ॥२४॥

अर्थ—इतने में एक वैश्य जिसका नाम रामाधीन था अपनी स्त्री के साथ मुख मलीन शरीर से कृश चिन्तातुर दुःखी आके श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के आगे प्रणाम कर हाथ जोड़ अपनी सब दीनावस्था की विकट वेदना श्रवण कराता भया, उसकी अवस्था पर जगद्गुरु जी को दया आ गई, प्रसन्न बदन से आशिर्वाद देते धूनीकी विभूति का तिलक लगाके बोले जा तेरी गरीबी नष्ट होगी। ऐसा बचन महाराज के मुख से निकलते ही कुदरत ने क्या रङ्ग दिखाया कि एक आदमी शहर की ओर से दौड़ता रामाधीन को खोजता हुआ समीप आके बोला लेव यह १०००) रुपया तुम्हारे असामी रामगोपाल ने दिया है बाकीका फिर देगा ॥२३-२४॥

दम्पति प्रेम संयुक्त गृहीत्वा गुरु सत्कृपाम् ।
भूयो नत्य गुरुं देवं अग्रहीष्टाञ्च दीक्षणाम् ॥२५॥

अर्थ—यह देख रामाधीन तथा उसकी स्त्री जिसका नाम सरला था बड़े आश्चर्य में आ हृदय में हर्षोल्लास करते विचार किया कि यह जगद्गुरु जी को कृपा का तत्काल परिणाम निकला है यह ध्यान में आते ही तुरत दोनों वारम्बार श्री गुरु जी को प्रणाम कर चरण धोय चरणामृत पी गुरुमन्त्र ले सेवक बन लोक परलोक सुधारते भये ॥२५॥

जनेभ्यस्तत्समाचारं श्रुत्वा तत्र जनेश्वरः ।
समागत्यार्चयित्वा च सच्चकार तमादरात् ॥२६॥
कृत कृत्यं निजंमेने दर्शनेनाद्भुतेन हि ।
विविधानुपदेशांश्च तस्माच्छुश्राव सादरम् ॥२७॥

श्रीचन्द्रो भगवांस्तस्मै राजनीति पुरस्सरान् ।
सत्सङ्गतेः प्रभावांश्च सद्दृष्टान्तान भाषत ॥२८॥

भूयस्ते नार्चितोदेवः चन्द्रः शिष्य समान्वितः ।
प्रतस्थे प्रथयन् पुण्यं धर्म्याः कुर्वन् कथा पथि ॥२६॥

अर्थ—जनोंके जो ईश्वर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उनका सुयश का समाचार अपने भक्तजनों के उद्धार करने का समस्त नगरी में फैलजाता हुआ। सुनके लोग आय २ श्रीगुरु जी का दर्शन कर विविध प्रकार के लाभकारी उपदेश श्रवण के साथ आपकी संगत करने से कृतार्थ हो शिष्य (सेवक) बनते भये ॥२६-२७-२८-२९॥

रामपाद पवित्रस्य चित्रकूटस्य दर्शनम् ।
कुर्वन् विन्ध्याचलं दृष्ट्वा मन्द मग्रेऽचलद्विभुः ॥३०॥

अर्थ—इस प्रकार चित्रकूट पर्वत जो श्री राम जी के पवित्र चरणों से स्पर्श किया हुआ था उसका दर्शन कर आगे प्रयागराज होते विन्ध्यचल देखते श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने साथ के उदासीन साधुओं समेत ॥३०॥

॥ काशीपुरी ॥

रामाकाश रसेन्दौ च वैक्रमेऽब्दे शुचौ सिते ।
द्वितीयायां सोमवारे काशीमायान्महेश्वरः ॥३१॥

अर्थ—वि० सं० १६१३ आषाढ़ सुदी २ सोमवार को श्री काशीपुरी में आय गङ्गा तट असी घाट पर विराजते भये ॥३१॥

श्री चन्द्रचूड़शिरसो गिरिराज श्रृङ्ग,
भूमिं ततो निपतितां पतिता वनीश्च ।
दृष्ट्वा पुनः कृत निमज्जन पूत गात्रः,
विश्वेश्वरं सकल वन्ध पदं ववन्दे ॥३२॥

अर्थ—श्री शंकर जी के शिर से प्रगट हो गिरराज हिमालय के चोटी से निकल भूमि पर आनेवाली पृथ्वी के पतितों को शुद्ध करने वाली श्री गङ्गा जी का दर्शन स्नान कर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने साधुओं के समेत सकल जन वन्दित श्री विश्वनाथ जी का आय के दर्शन नमस्कार करते भये ॥३२॥

अथ श्रीचन्द्र भगवान् स्तुत्वा नाना विधैः स्तवैः ।
विश्वनाथं निजाभिन्नमसी घट्टं ययौ ततः ॥३३॥

अर्थ—अनेक प्रकार के स्तोत्र द्वारा श्री ११०८ श्रीचन्द्र भगवान् से स्तुति सुन श्री विश्वनाथ जी प्रसन्न हो बोले आप तो हमाराही रूप हैं आप हम से भिन्न नहीं हैं ॥३३॥

तत्र गत्वा नदी तीरे समाधौ तस्थिवान सौ ।
ब्रह्मरन्ध्रे समाधाय प्राणान्निश्चल विग्रहः ॥३४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् श्री गंगातट असीघाट पर आय आसन मार ब्रह्मरन्ध्र द्वारा प्राणायाम के जरिये समाधि लगाय अचल (स्थित) हो जाते भये ॥३४॥

समाधेरुत्थितोऽपश्य त्पुरतो द्वे कुमारिके ।
रूप यौवन सम्पन्ने नानालंकार भूषिते ॥३५॥

अर्थ—समाधि से उठके क्या देखते हैं कि दो कुमारी जिनके मुखकी समता करने में चन्द्रमा भी लज्जास्पद हो रहा था, कारण चन्द्रमा का प्रकाश (कला) घटता बढ़ता रहता है किन्तु इनके मुख का प्रकाश एक रस बना रहता है अपनी बोली में (पिक) कोकिल को मात करनेवाली हंसगमनि अपनी सखियों के समेत भोजन के थाल लेकर श्री गुरुदेव के समक्ष आकर स्तुति करते खड़ी हो गई ॥३५॥

अथापृच्छच्छनैश्चन्द्र चन्द्र विम्व समानने ।
के युवां किमिदं कस्य कन्यके किमिहा गते ॥३६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने पूछा कि हे कन्याओं तुम युवावस्था वाली यहाँपर इस समय क्यों आई हो ॥३६॥

किमिच्छथः स्फुटं सर्वं, बीत शङ्क निवेद्यताम् ।
इति पृष्ट्वा स्थिते चन्द्र गंगाप्राह प्रगल्भवत् ॥३७॥

अर्थ—शङ्का निवृत करके अपनी इच्छा कहो यह बात सुनकर गंगा नामक कन्या बोलती भई ॥३७॥

सर्वं जानासि सर्वज्ञ किमिज्ञ इव पृच्छसि ।
अन्न पूर्णयमेषा च गङ्गा गङ्गाधरा कृते ॥३८॥

अर्थ—हे भगवन् आप सर्वज्ञ हो सर्व जानते हुये अज्ञ के समान पूछते हैं, मेरा नाम गंगा और इनका नाम अन्नपूर्णा देवी है ॥३८॥

तवागमन हृष्टेन विश्वनाथेन नोदिते ।
सत्कारार्थं मिदं नीत्वा मिष्टान्नं समुपागते ॥३९॥

अर्थ—श्री विश्वनाथ जी ने आपका आगमन देखकर बड़ी प्रसन्नता से हम लोगों को आपका स्वागत करने की आज्ञा देते भये तब हम आप के पास मिष्ठान्न लेकर यह थाल लाई हैं ॥३९॥

गृहाण भुज्यतामेनद् भोजनं भोजन प्रिय ।
आतिथ्यं स्वीकुरुष्वाद्य समा स्वाद्य रसायनम् ॥४०॥

अर्थ—कृपा कर इसको स्वीकार करके भोजन करिये ऐसा उनका वचन सुनकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी ने उनका आतिथ्य स्वीकार कर भोजन ग्रहण किया ॥४०॥

ततः प्रसन्न बदनः चकितैरवलोकितः ।
शिष्यैः शिष्येभ्यएवासौ दात्वान्नं बुभुजे स्वयम् ॥४१॥

रसायनमिदं भुक्त्वा शिष्या विस्मयमाययुः ।
अहो चित्रमिदं भुक्तं न दृष्टं न श्रुतं पुरा ॥४२॥

भुक्तशेषं चन्द्र देवः प्रसादं स प्रसाद वांक् ।
भक्तेभ्योऽपि ददौ ते तु स्वादमासाद्य विस्मिताः ॥४३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् प्रसन्न वदन अपने साथ के साधु मण्डल में भोजन वर्ताय कर स्वयं भी भोजन किया, पास के बैठे सत्संगियों को भी प्रसाद (भोजन) दिया गया, वह अमृत जैसा प्रसाद खाय के चकित हो आपस में सब कहने लगें कि न ऐसा स्वादिष्ट भोजन हमने कभी खाया, न देखा, न सुना है ॥४१-४२-४३॥

इति प्रोवाच गङ्गायां तव दर्श फला भव ।
तव चरण स्पर्शस्य सकलंऽघ विनाशनम् ॥४४॥

अर्थ—गङ्गा कहती है आप के दर्शन से मेरा जन्म सफल हुआ आप के चरण मेरे में पड़ते ही मेरे सब पाप नाश हो गये, मैं प्रथम भारत वर्ष में आने को तय्यार न थी, इसका कारण जब ब्रह्मा जी ने पूछा, तब मैंने कहा कि पापी आदमी मेरे में स्नान कर, अपना सब पाप छोड़ के चले जायेंगे, तब वह पाप मैं कहां त्यागने जाऊँगी, ब्रह्मा ने कहा कि तेरे में साधु महात्मा आके स्नान करेंगे जिससे तेरे सब पाप उतर जाँयेगे, फिर मैंने पूछा कि उन साधु महात्माओं का

वह पाप कहां उतरेगा, तब ब्रह्मा ने कहा कि साधु महात्मा लोग जप तप करके पापों का नाश करेंगे, या जो कोई साधु महा पुरुषों से द्वेष कर उनकी निन्दा करेगा वह पाप सब साधु निन्दक के पास चले जायेंगे इस लिये साधु की निन्दा कभी न करनी चाहिये ऐसा कहती दोनों कन्यायें प्रणाम कर अन्तर्धान हो गईं ॥४४॥

रामाकाशरसेन्दौच वैक्रमेऽब्देशुचौसिते ।
गुरु पूर्णिमायां सर्वे पण्डितास्तं सिषेविरे ॥४५॥

अर्थ—वि० सं० १६१३ अषाढ़ शुदी १५ (गुरुपूर्णिमा) के दिन काशी के समस्त पण्डित श्री गुरु जी के पास आते भये ॥४५॥

विद्या निधिं कलित सर्व कला कलापं, तापं हरन्तमखिलस्य जनस्य नित्यम् ।
वाराणसी वसति लब्ध समस्त विद्याः ह्यंधा बुधा उपगता गुरुपूर्णिमायाम् ॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरू श्रीचन्द्र भगवान् जो विद्या के निधि सर्व कला सम्पूर्ण अखिल जनों का नित्य ताप हरने वाले थे उनके पास गुरु पूर्णिमा के दिन संध्या समय काशी के वसने वाले समस्त विद्वान् पण्डित लोग आते भये ॥४६॥

श्रीचन्द्र देव बदनाम्बुज दर्शनेन, फुल्लानि सर्व नयनानि तदा जनानाम् ।
फुल्लारविन्द रचितैश्च स भृङ्ग माल्यै, रानचुरुज्ज्वल पदावलिपद्य काराः ।४७।

अर्थ—११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र देव जी का प्रभाव शाली मुखार विन्द का दर्शन कर सब के नेत्र इस प्रकार प्रफुल्लित हो गये जैसे खिले हुये कमलों को देखकर भ्रमर का चित्त प्रफुल्लित हो जाता है और महाराज के चरणों के नखों की पंक्ति ऐसी शोभा पा रही है जैसे सुन्दर कविता की पंक्ति शोभा पाती है ॥४७॥

धन्या धनानि च फलानि च तारहारा, नानीय नम्रतर मूर्ति विशेष शोभाः ।
सच्छ्रेष्ठनिस्तमभिगम्य विधाय पूजां, जन्मान्यमूनि सफलानि च मेनिरेते ॥

अर्थ—सब विद्वान् बोलते भये आपके आगमन से पृथ्वी धन्य धन्य हो गई और प्रफुल्लित हो गये, आपका शोभनीक विशेष नम्र स्वभाव को देखकर हमलोगों ने भी अपना जन्म सफल माना ॥४८॥

छात्राः समेसमभिगत्य विनीतभावा, भावप्रधान ललितैः कवितानिबन्धैः।
सत्काव्य मर्मविदमेतमनिन्द्यपद्यं, चक्रुः प्रसन्न वदनं सदनं गुणानाम् ॥

अर्थ—आपकी छात्रावस्था में हमसे आपका समागम हुआ था तब हमने आपका

विनीत भाव देखा था, उस समय भी आप भाव प्रधान ललित कविता बनाते थे, उस सुन्दर काव्य में किसी प्रकार का पक्षपात आक्षेप अपनत्व राग द्वेष मान अपमान का लेशमात्र भी न होता था सबका हित भरा होता था, यह विशिष्ट गुण हमलोगों ने आप में ही देखा है, आप प्रसन्न वदन देश भ्रमण करते हुये यहाँ पधारे हैं सद्गुणों के आप सदन हैं ॥४६॥

नचोपदेशे खलु पक्ष पातो न खण्डनं कस्य कदाचि देव ।
अयं महात्मा समदृष्टि पाती सर्वोपकाराय धृता वतारः ॥५०॥

अर्थ—हिन्दूधर्म का रक्षक ऐसा कोई नहीं है आप प्रसिद्ध अवतार हैं आपके उपदेश में पक्षपात नहीं, आप कभी किसी का खण्डन नहीं करते, आप महात्मा समदर्शी पुरुष हैं आपने प्राणि मात्र के उपकारार्थं अवतार लिया है ॥५०॥

नैवम्विधः कोऽप्यवतार भारवोढाति वोढा न वभूव पृथ्याम् ।
विष्णोशिशवाच्छक्ति पदाभिधेया द्विशिष्ट शक्तिन्तनुते दयार्द्रः ।५१।

अर्थ—आप अवतार लेकर भी आप ऐसा पुरुष संसार का भार सम्हालने वाला दूसरा नहीं है विष्णु शिव सब शक्ति धारण करने वाले दया से युक्त आपही हैं ॥५१॥

कार्यं मनुष्यस्य धृतं च यद्यप्यन्नना ऽनादि सुदेव देवः ।
किन्तु स्वयम्भूः प्रभुरेव साक्षात्कैलास वासी विभु नीलकण्ठः ।५२।

अर्थ—आप यद्यपि मनुष्य शरीर धारण किये हैं परन्तु अनादि देवाधि देव हैं, कैलास वासी स्वयम्भू नीलकण्ठ महादेव हैं इस प्रकार स्तुति कर सब जाते भये ॥५२॥

काश्यामुदासीन मठश्च नित्यो यत्रो पदेशो गुरुणा कृतश्च ।
विराजते साधु सुसेव नन्तु नित्यं महन्तः कुरते मठस्थः ॥५३॥

अर्थ—अस्सीघाट पर जिस जगह श्री गुरुदेव जी ने लोगों को उपदेश किया था वहां पर उदासीन मठ आजतक काशीपुरी में विद्यमान है ॥५३॥

क्षेत्रञ्चलंत्येवमखण्ड रूपं जीवोद्धतिर्नास्ति न कुत्र तादृशी ।
श्रीचन्द्रदेवस्य पदारविंदं भजन्ति धीराश्चकवि प्रवीरा ॥५४॥

अर्थ—अन्नक्षेत्र अखण्ड चल रहा है साधु सेवा पूर्णरूप से हो रही है, जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के चरणारविन्दों का पूजन होता है ॥५४॥

श्री विश्वनाथञ्च यथा वदन्ति तथा सदैवं गुरु देव देवम् ।
काश्यामुदासीन पथानुगाश्च भक्ता अनेके च गुरूपदेशात् ॥५५

अर्थ—जिस तरह विश्वनाथ जी का भजन लोग करते हैं उसी तरह श्री गुरुदेव जी की भी स्तुति भजन करने से महापुण्य होता है श्री गुरुदेव जी के पवित्रोपदेश से काशी में उदासीन जो अनादि सम्प्रदाय है उसके अनन्तानन्त शिष्य सेवक हो गये ॥५५॥

श्रीचन्द्र देवं वहुकीर्तयन्ते श्री विश्वनाथन्नितरां विहाय ।
नतेन तुल्यो गुरुदेव देवो न तेन तुल्यश्च महर्षिवर्य्यः ॥५६॥

अर्थ—काशी में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का बहुत लोग यशोगान करने लगे कि विश्वनाथ जी के सदृश्य ही आपका सुयश है ॥५६॥

समस्त सृष्टौ नहिकोऽपि तादृक् औपम्य भावंलभते न कश्चित् ।
वाचा न लभ्यो मनसा तथैव न चेन्द्रियैः कैश्चिद तीवशुद्धै ॥५७॥

अर्थ—आपके सदृश्य समस्त सृष्टि में अन्य कोइ दृष्टि गोचर नहीं होता आप मन वाणी तथा इन्द्रियों से अगम्य अतीव शुद्ध स्वरूप हैं ॥५७॥

न विद्यया ज्ञानतरङ्ग निष्ठया ह्यगम्य गम्योमहिमा च यस्य ।
समस्त कल्पेव युगे समस्ते यशोविचित्रं परिधावतीति ॥५८॥

अर्थ—आपका स्वरूप वचन इन्द्रिय विद्या किसी से भी लभ्य नहीं है अगम्य अपार महिमा है कल्प २ में युग २ में अपने पवित्र यश को फैलाते हैं ॥५८॥

सूर्यस्तदाज्ञावशतश्च चन्द्रोवायुर्महाप्राण परायणश्च ।
जलं क्षितिः पावक नामधारी वश्यातिवश्यश्चलते धरायाम् ॥५९॥

अर्थ—इन श्री गुरु देव की आज्ञा से सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी, अग्नि, जल, पर्वत, सबही चलते हैं ॥५९॥

स्वेच्छातिचारी वहुरूप धारी मायावशादेक मनेक रूपम् ।
प्रयोजनश्चास्ति च यस्य यत्र तथैन्द्र जालन्तनुते महेशः ॥६०॥

अर्थ—आप अपनी इच्छा से बहुरूप धारी हैं माया बरा एक से अनेक होते हैं जहां पर जैसी जरूरत देखी वैसा रूप आप धारण कर लेते हैं ॥६०॥

ब्रह्मा च विष्णुश्शिवदेव देव इन्द्रश्च काली कमला सनापि ।
सभैरवो भूतभयङ्करश्च समस्त देवाश्चकिता भवन्ति ॥६१॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, काली, भूत, भैरव सब आपकी विचित्र लीला को देख के चकित हो जाते हैं ॥६१॥

आश्चर्यं वृत्तं सकलं च दृष्ट्वान मानिनां बुद्धि कथा च सुष्ठुः।
भ्रान्ता समस्तं खलु भूतलन्तु धर्मोपदेशं कृतवान् गुरुश्च ॥६२॥

अर्थ—इनका आश्चर्य चरित्र देख अभिमानियों के दांत खट्टे हो जाते हैं श्री गुरुदेव ने समस्त भूतल में भ्रमण कर धर्मोपदेश किया है ॥६२॥

आचार धर्मस्त्वधिकोपयोगी श्री नीति धर्मश्च समस्त देशे।
अनित्य देहं समुपास्य यावान् श्रमः कृतोऽयं गुरुणाजगत्याम्।६३।

अर्थ—हिन्दू धर्म का प्रचार सब देशों में फैलाया नीति धर्म को दृढ़ किया मनुष्य देह धारण कर जगत का बहुत उपकार किया है ॥६३॥

न तादृशो योगिवरैश्च कैश्चि वदन्ति सर्वे मुनयस्तु वाक्यम्।
तस्येतिहासो धरणी तले च विख्यातिमायाति विविक्त तत्वः ॥६४।

अर्थ—ऐसा धर्मोद्धार का कार्य पृथ्वी में कोई भी योगी उदासीन ने नहीं किया इसी से हे गुरु देव जी आपका इतिहास देश में सर्वोपरि है ॥६४॥

इदं चरित्रं परमं पठन्ति भक्त प्रवशिश्रति भाव भाजः।
ज्ञानानुगामोच्च पदं लभेरन्निदञ्च सत्यम्वचनञ्च वेदम् ॥६५॥

अर्थ—इनका चरित्र जो पढ़ेगा वह भक्ति पावेगा ज्ञानी होकर मोक्ष पावेगा ॥६५॥

शृणोति संश्रावयते च जीवो देव क्रियायां कुशलोऽतिमान्यः।
एतद्र हस्यञ्च महर्षिवर्या जानन्ति केचिन्नसमग्र जीवः ॥६६॥

अर्थ—इस रहस्य को जो सुनेगा दूसरे को सुनावेगा वह अर्थ धर्म काम मोक्ष चारो पदार्थ पावेगा ऐसा कह बहुत से लोग श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चरण धोय चरणामृत पी गुरुमन्त्र ले सेवक बने ॥६६॥

रामचन्द्र रसेन्दौ च वैक्रमे भाद्र शुक्ल के।
दशम्यां मङ्गले वारे काशीतो व्यचलद्विभुः ॥६७॥

अर्थ—वि० सं० १६१३ भाद्रो सुदी १० मङ्गलवार को काशी से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी मण्डली के साधुओं समेत चलते भये ॥६७॥

सारनाथं प्रणम्याथ पुनपुना नगरीं पुनः।
गयामयादसौ धीमान् साधुसंग समन्वितः ॥६८॥

अर्थ—प्राणनाथ महादेव पुन पुना होते गया जो में अपनी उदासीन साधु मण्डली सहित आते भये ॥६८॥

तत्र विप्र गृहे श्रीमान् श्रीचन्द्रोऽवसदच्युतः ।
आश्विने कृष्ण दशमी दिने स्वस्यं पितु मुदा ॥६६॥

अर्थ—गया जी में एक ब्राह्मण के घर आकर ठहरते भये आश्विन वदी १० के दिन अपने पिता श्री गुरु नानकादेवजी भेष उदासीन के निमित्त ॥६६॥

श्रद्धायुक्तेन मनसा श्राद्धं चक्रे विधानवित् ।
विविधै र्भोजनैः सर्वे जनाः सन्तोषिता भृशम् ॥७०॥

अर्थ—श्रद्धा युक्त पक्का भण्डारा (जिसमें बहुत प्रकार के भोजन बने थे) उदासीन साधुओं को दिया साथ ही गया के सभी नर नारी उस भण्डारे का भोजन (प्रसाद) पाकर सन्तुष्ट होगये ॥७०॥

कांचन्ति पितरः सर्वे नरकान्तर भीरवः ।
गयां यास्यति यः पुत्रस्सन स्त्राता भविष्यति ॥७१॥

अर्थ—नरक से भय खाने पर पितर गण यही इच्छा रखते हैं कि मेरा पुत्र गया में आकर मेरा श्राद्ध करके हमें वचावे गया में श्राद्ध करने का बड़ा महात्म्य बताया गया है ॥७१॥

गया शिरेतु यत्किञ्चिन्नाम्ना पिण्डंतु निर्वपेत् । } लिखत
नरकस्थो दिवंयाति स्वर्गस्थो मोक्ष माप्नुयात् ॥१२॥ } स्मृतिः

अर्थ—गया में जिसके नाम से पिण्ड दिया जाता है वह यदि नरक में रहता हो तो स्वर्ग चला जाता हैं और स्वर्ग रहने वाला मोक्ष पाता है तभी हिन्दू धर्म में अपने पितरों के निमित्त श्राद्ध करना परमावश्यकीय बताया गया है।

सर्व शास्त्रार्थगमनं सर्व तीर्था वगाहनम् । } अत्रि
सर्व यज्ञ फलं विद्या च्छ्राद्ध दानान्नसंशयः ॥३६३॥ } स्मृति

अर्थ—श्राद्ध करने वाले को सर्वशास्त्र पढ़ने का फल सर्व तीर्थ स्नान करने का फल सर्वयज्ञ करने का फल प्राप्त होता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥३६३॥

सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धंयोन गृहाश्रमी ।
धनं पुत्रं कुलं तस्य पितृ निश्वास पीडया ॥

अर्थ — आश्विन कृष्ण पक्ष में अथवा माता पिता के मृत्यु तिथि में ग्रहण आदि में श्राद्ध करने से अश्वमेध यज्ञ का फल माना है देव कार्य पूर्वाह्न (दिनका पहला पहर) में मनुष्य कार्य अर्थात् अतिथि सत्कार आदि मध्य दिन में तथापितृ कार्य अपराह्न (बारह बजे के पीछे) में यत्न पूर्वक करना चाहिये। श्राद्ध करने से अपने पूर्वजों की याद बनी रहती है, रात्रिको श्राद्ध नहीं होता दोनों सन्ध्याओं में भी नहीं होता जो गृहस्थ कन्या के सूर्य (आश्विन) में श्राद्ध नहीं करता है वह पित्रों की लम्बी स्वांस से उसका धन पुत्र और कुल नष्ट हो जाता है ३५७-३५८ अत्रि स्मृति।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धि श्राद्ध मथापरम्।
पार्वण ञ्चेति विज्ञेयं श्राद्धं पञ्च विधंवुधैः ॥७२॥

अर्थ—मुनि लोग नित्य नैमित्तिक काम्य वृद्धि और पार्वण ए पांच प्रकार के श्राद्ध कहते हैं, प्रतिदिन जो श्राद्ध किया जाता है उसको नित्य, स्वर्गादि की इच्छा से जो श्राद्ध करते हैं उसको काम्य, ग्रहण छाया आदि में करना नैमित्तिक, पुत्रोत्पत्ति के समय का श्राद्ध वृद्धि (अभ्युदायक), पर्व के समय में जो श्राद्ध किया जाता है उसको पार्वण कहते हैं, मासिक श्राद्ध प्रतिमास मरने की तिथि में, वार्षिक श्राद्ध प्रतिवर्ष मरने के महिने वाली तिथि को, और पहला श्राद्ध ११ वे दिन करे पिता पितामह (दादा) प्रपितामह (दादा का पिता) माता, मातामही प्रमातामही वृद्ध प्रमातामही, मातामह प्रमातामह वृद्ध प्रमाता मह, पितामही और प्रपिता मही का श्राद्ध होता है इसके अलावा और कोई नहीं माताओं का श्राद्ध नौमी के बाद नहीं होता, पुत्र हीन पुरुष का श्राद्ध भाई का लड़का पुत्री का पुत्र अथवा और कोई सपिंडी तथा स्त्री भी कर सकती है परन्तु वैश्या का पुत्र नहीं कर सकता न वेश्या का पुत्र धन पाने का ही अधिकारी है।

भोजयेद्योगिनं पूर्वं तत्वज्ञान रतं परम्।
अलाभे नैष्ठिकं दान्त मुपकुर्वाण कन्तु वा ॥९॥ } उशन स्मृति अ० ४

अर्थ—श्राद्ध में प्रथम योगियों से अर्थ साधु लेना उनके पश्चात् तत्व ज्ञानियों को, उनके अभाव में नैष्ठिक अथवा उपकुर्वाणक ब्रह्म चारियों को, इनके भी न मिलने पर मुमुक्षु को भोजन कराना चाहिये ९-१० अ० ४ उशन स्मृति। उदासीन साधुओं को भी श्राद्ध में भोजन के लिये जाना चाहिये ऐसा श्रौत सर्वस्व महालय श्राद्ध मीमांसा पृष्ठ १११ में लिखा है, यही बात ब्रह्माण्ड पुराण में भी कही है। जो मनुष्य निकट रहने वाले वेद पाठी ब्राह्मण को छोड़ के मूर्ख ब्राह्मण को श्राद्ध में बुलाता है उसके उस पाप से ७ पुरुषे दग्ध हो जाते हैं ११७ उशन स्मृति अ० ३॥

द्वौ दैवेपितृ कार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥१२५॥
सत्क्रियां देश कालौच शौचं ब्राह्मण संपदः ।
पञ्चैतान्विस्तरोहन्ति तस्मान्ने हेत विस्तरम् ॥१२६॥ } मनुस्मृति

अर्थ—देव कार्य में दो और पितृ कार्य में तीन अथवा दोनों कार्यों में एक एक ही ब्राह्मण खिलाना चाहिये, धनवान होने पर भी इस से अधिक ब्राह्मण को नहीं भोजन करावे क्योंकि बहुत ब्राह्मण के खिलाने से सत्क्रिया देश काल, शुद्धता और सुपात्र ब्राह्मण का लाभ इन पांचों का नियम भङ्ग हो जाता है इसलिये अधिक ब्राह्मण के भोजन का विस्तार नहीं करे ॥१२५॥ १२६॥ यही बात बौधायन स्मृति २ प्रश्न—आठ अध्याय श्लोक २९-३० में तथा वशिष्ठ स्मृति ११ अ० श्लोक २४-२५ में लिखो है ।

यस्य विप्रस्य गेहेऽसौ श्रीचन्द्रो न्यवसत्कृती ।
अचिरञ्जीवि गर्भाऽऽसो त्तस्य भार्या पतिव्रता ॥७३॥

अर्थ—सत्कार्य के करने वाले श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जिस ब्राह्मण के घर ठहरे हुए थे उसकी पतिव्रता भार्या गर्भणी थी उसके बच्चे होकर मर जाया करते थे ॥७३॥

तदानीं पञ्चमो गर्भः सुशीलाया अवर्तत ।
सा हि नित्यं सदाचार सिषेवे चन्द्रमादरात् ॥७४॥

अर्थ—जब गुरु जी महाराज उसके पास ठहरे हुये थे उस समय उस सुशीला नाम्नी विप्र भार्या को पाँचवाँ गर्भ था और वह दोनों बड़े सदाचारी थे और श्री ११०८ जगद् गुरु श्रीचन्द्र महाराज की सेवा आदर पूर्वक नित्य करते थे ॥७४॥

सेवा सन्तुष्ट चित्तेन दत्तस्तस्यै वरौ वरः ।
वरयन्त्यै चिरञ्जीवी पुत्रस्तेऽस्तु वरानने ॥७५॥

अर्थ—श्री गुरु जी उन दोनों की सेवा से प्रसन्न हो वर देते भये कि जो अब यह तुम्हारा पुत्र होगा वह चिरञ्जीवी होगा ॥७५॥

तेनैव ते महावंशः पृथिव्यां ख्याति मेष्यति ।
स महात्मा समुद्धर्ता सप्त वंश्याम् परावरान् ॥७६॥

अर्थ—उससेतुम्हारा वंश बढ़ेगा जो पृथ्वी में विख्यात होगा वह पुत्र महात्मा होता हुआ आपकी सात पीढ़ियों को तार देगा ॥७६॥

अथवै जनने मासे समायाते मनोहरे ।
आश्विनस्य चतुर्दश्यां सुतं सूतवती सती ॥७७॥

अर्थ—दशवें मास गर्भ की पूर्णावस्था में आश्विन बदी १४ के दिन उस ब्राह्मण के घर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥७७॥

यावत्पुत्रोत्सवं हर्षात् कुर्वाते विप्र दम्पती ।
तावत्सद्यः सुतः तस्याः जातमात्रो मृतिं गतः ॥७८॥

अर्थ—ब्राह्मण स्त्री पुरुष पुत्र होने की खुशी मना ही रहे थे कि इतने में तुरन्त का पैदा हुआ बालक मर गया ॥७८॥

रुदन्तौ तौ गतौ तत्र यत्रास्ते चन्द्रशीतलः ।
श्रीचन्द्रः करुणा सिन्धुः तयो दर्शन हर्षितः ॥७९॥

अथो—सब रोते हुये वहाँ पर जाते भये जहां पर चन्द्रमा के समान शीतल श्री १००८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् विराजमान थे रोते २ बोले कि हे करुणा के सिन्धु आपके दर्शन से लोगों को प्रसन्नता होती है ॥७९॥

सोरस्ताडंपदेतस्य निपेतु र्भृश दुःखितौ ।
मन्युगद्गदया वाचा तमूचाते दयानिधिम् ॥८०॥

अर्थ—आपकेचरण पड़ने से समस्त दुःख नाश होते हैं फिर यह दुःख कैसे आया इस प्रकार रोता हुआ गद्गद वाणी से वह ब्राह्मण बोल रहा है कि हे दयानिधि आप बताओ तो ॥८०॥

सत्यवादिन् प्रभो सिद्ध सिद्धा वाचो भवादृशाम् ।
वैपरीत्यं कथं जातं येन नौ पुत्र को मृतः ॥८१॥

अर्थ—आप सत्यवादी हैं सिद्ध हैं सिद्धों का बचन कभी अन्यथा नहीं होता फिर यह क्यों विपरीत बात हुई जो पुत्र होते ही मर गया ॥८१॥

करुणाजल सिक्तान्तः करणोऽर्ति हरोऽब्रवीत् ।
अभयं त्यज्यतां दुःखं जीवयामि क्षणात् सुतम् ॥८२॥

अर्थ—दुःख के हरने वाले श्री १००८ जगद्गुरु श्री चन्द्र भगवान् करुणा से नेत्रों में जल भरते हुये बोले कि तुम दुख को छोड़ो अभय हो हम क्षण मात्र में देखते देखते पुत्र को जिला देते हैं ॥८२॥

इत्युक्त्वा निश्चल स्तस्थौ समाधौ करुणा करः ।
यामीं ययौ पुरीं तूर्णं वायु कायो जितेन्द्रियः ॥८३॥

अर्थ—ऐसा कह श्री ११०८ जगद्गुरू श्रीचन्द्र भगवान् निश्चल समाधिस्थ हो शीघ्र ही वायुरूप होकर यमराज की पुरी में पहुँच जाते भये ॥८३॥

तं दृष्ट्वा शमनः सद्यः स्वासना द्भूतलं गतः ।
स्वागताऽऽचारसत्कारै रर्चयामास सादरम् ॥८४॥

अर्थ—यमराज आपको देखते ही उठके प्रणाम कर अपने आसन पर बैठाय स्वागतार्थ सत्कार करने के निमित्त सब प्रकार से पूजन करता ॥८४॥

कृताञ्जलिरथापृच्छत्कृतान्तः कान्तया गिरा ।
श्री मतः श्रोतु मिच्छामि किमागमन कारणम् ॥८५॥

अर्थ—हाथ जोड़के पूछता भया कि आप एकाएक कैसे आ गये आप अपने आने का कारण सुनाइये ॥८५॥

श्रीचन्द्रो भगवानाह विप्रपुत्रस्त्वयाऽऽहृतः ।
मया च वचनं दत्तं चिरञ्जीव्या दिती दृशम् ॥८६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले कि हमारे सामने आपने ब्राह्मण के बालक का प्राण निकालते जरा भी संकोच नहीं किया जिसको हमने चिरञ्जीवी होने का आशिर्वाद दे रखा था ॥८६॥

कृताञ्जलिः पुनः प्राह विनीतं यमुनाग्रजा ।
भगवन् सर्व जीवानां स्वं कर्मैवापराध्यति ॥८७॥

अर्थ—यह सुन हाथ जोड़के विनीत भाव से पुनः यमुना का बड़ा भाई यमराज बोला हे भगवन् सर्वजीव अपने २ कर्मानुसार जीवन मरण पाया करते हैं ॥८७॥

त्वाज्ञया हि सर्वस्य जगतश्चलति क्रिया ।
निर्वहन्ति निजं धर्मं लोकपालास्त्वदिच्छया ॥८८॥

अर्थ—यह नियम भी तो आपकी ही आज्ञा से जगत में चल रहा है और आपको भी अपने नियम को निवाहना ही है जिससे संसार चक्र नियमित रूप से चलता रहे यह सब आपकी इच्छा ही से हो रहा है ॥८८॥

यदिस्वो नियमःस्वेन विनाश्येत महत्तरैः ।
तदा कैव कथा ऽन्येषां जन्तूनां जगती तले ॥८६॥

अर्थ—यदि आप अपने नियम को मिटायेंगे तो संसार की सब व्यवस्था नष्ट हो जायगी फिर संसार के जीवों की क्या दशा होगी ॥८६॥

परतस्तु यथादिष्टं विधास्ये तव कांक्षितम् ।
इत्युक्त्वा धर्मराजस्तु विरराम नताननः ॥९०॥

अर्थ—जैसा आपके समक्ष में आवे हमको आप जैसी आज्ञा दें वैसाही हम करें शिर नीचा करके ऐसा कह धर्मराज चुप हो गया ॥९०॥

ईषत्स्मित्वा तु भगवान् श्रीचन्द्रो मधुरा क्षरम् ।
उवाच वचनं शान्तं शाश्वतो भक्त वत्सलः ॥९१॥

अर्थ—यमराज का यह युक्ति युक्त वचन सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् मीठे वचनों से बोले जो शान्त हृदय सदैव भक्त वत्सल हैं ॥९१॥

सत्यं मर्यादितं सर्वं मया भूतं चराचरम् ।
भक्तानान्तु कृते स्वैरं स्वां प्रतिज्ञां त्यजाम्यहम् ॥९२॥

अर्थ—हे यमराज आपने जो कुछ कहा है वह मर्यादानुसार सत्य है और यह भी सत्य है कि संसार में चर अचर सब मेरे ही बनाये हुये हैं, किन्तु मैं उस ब्राह्मण की भक्ति से प्रसन्न हो बालक के जिलाने का वर दे चुका हूँ इसलिये आप उसे छोड़ दीजिये ॥९२॥

अथ तन्निश्चयं ज्ञात्वा ददौ पितृ पतिः सुतम् ।
ब्राह्मणस्य तमादाय श्रीचन्द्रो ऽन्तर्दधे पुनः ॥९३॥

अर्थ—यह निश्चय श्री गुरु महाराज का सुन यमराज ने ब्राह्मण पुत्र की आत्मा को वापस कर दिया और श्रीचन्द्र भगवान् वहां से अन्तर्धान हो गये ॥९३॥

तत्र चोद्घाटयामास समाधिमोमिति ब्रुवन् ।
पुनः प्रत्यागत प्राणः रुरोद शिशुरुच्चकैः ॥९४॥

अर्थ—इधर श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की समाधि खुली उधर बालक ने पुनः प्राण आने से ऊंचे स्वर से रोदन करना प्रारम्भ कर दिया ॥९४॥

झटित्यङ्के समादाय मातास्तन्यमपाययत् ।
दृष्ट्वेदं चरितं दिव्यं नगरा विस्मयं गताः ॥९५॥

अर्थ—यह देख माता तुरत उसे उठाय अपनी गोद में ले स्तन पान कराने लगी यह दिव्य चरित्र देखकर समस्त नगर के लोग विस्मय से भर गये ॥९५॥

समेत्य पूजयामासुः श्रीचन्द्रं सकला जनः ।
ततश्च दीक्षिताः सर्वे शिक्षितास्तेन तेपुनः ॥९६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास सब लोग आय२ कर पूजा करते हुये गुरु मन्त्र ले सेवक हो ध्यान परायण होते भये ॥९६॥

ततस्ततोऽचलच्छिष्यैः सह पश्यन् नदी वनम् ।
दिनैः कैश्चित्समायातः रम्यां पुष्प पुरीमसौ ॥९७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी साधु मण्डली समेत गया से चल पटना पहुँचते भये ॥९७॥

धर्मः सनातनः श्रेष्ठः सर्व धर्मेषु निश्चलः ।
सर्व रत्नालयः श्रीमान् पयः स्वेव पयोनिधिः ॥९८॥

अर्थ—यहां पर महाराज ने लोगों को उपदेश दिया कि हिन्दू सनातन धर्म सर्व श्रेष्ठ है सर्व धर्म इस में ही स्थित हैं यह अचल धर्म है सर्व रत्नों की खान जैसे समुद्र है उसी प्रकार हिन्दू सनातन धर्म है जो सृष्टि प्रारम्भ काल से चला आ रहा है ॥९८॥

धर्मे स्थिता वसुमती वसुशस्य पूर्णा, पुष्णान्ति जीव निचयं क्षमते भरञ्च ।
धर्मेस्थितां गिरिवराश्च धरा धरास्ते, धाराधरोजलमलं समये ददाति ॥९९॥

अर्थ—इसी हिन्दू धर्म के आधार पर वसु मती (पृथ्वी) स्थित हो रही है जिसमें विश्व बस रहा है जीव अपने अपने कर्मानुसार योग क्षेम पा रहे हैं, धर्म के ही आधार पर पृथ्वी पर बड़े बड़े गिर (पहाड़) विराज मान हैं, धर्म के ही आधार से बादल समयानुसार जल वर्षा करते रहते हैं ॥९९॥

धर्मोदधाति सकलं भुवनं सदैव, धर्मः करोति सकला भ्युदयञ्जनानाम् ।
धर्मः सतां कुलधनं मरणेऽपि मित्रं, धर्मः समाहित मनोभि रुपासनीयः

अर्थ—धर्म से ही १४ भुवन सर्वलोग उन्नति करते हैं हिन्दूधर्म ही श्रेष्ठ पुरुषों का

धन है जो मरने के पीछे भी मित्रता का व्यवहार करता है इसलिये धर्मको स्थिर मान करके उपासना करना उचित है ॥१००॥

वेलोल्लङ्घन मातनोति न भृशं शक्तोऽपि वाराान्निधिः,
सम्पूर्णं धरणीतलं जलमयं कर्तुं चणाल्लीलाया ।
शेषः चोणि भरेण वक्रितफणा चक्रोऽपि नो मुञ्चति,
चोणिं धर्म विजृम्भितं फलमिदं धर्मेण सर्वं धृतम् ॥१०१॥

अर्थ—अनेक दुःख होने पर भी अपने हिन्दू धर्म को न छोड़ना चाहिये कारण धर्म की शक्ति को समुद्र भी नहीं उल्लङ्घन करने की शक्ति रखता जो सम्पूर्ण धरणीतल को जलमयी कर सकता है, शेषजी जो अपने फण पर पृथ्वी को धारण किये हैं वह भी धर्म की सत्ता को हटा नहीं सकते, पृथ्वी में सर्वजीव धर्मके ही प्रताप से फूलते फलते हैं इसलिये हिन्दू धर्म की रक्षा सर्वदा रखने योग्य है ॥१०१॥ जो हिन्दू अपने धर्म की रक्षा नहीं करता वह पातकी हत्यारा कहा जाता है, तभी परशुराम सूत्र में लिखा है। "हिन्दू रक्षति रक्षतिः" ॥८५॥ हिन्दू की रक्षा ही अपने धर्म की रक्षा है "यतोहिन्दुस्ततो जयः" ॥८६॥ जहाँ हिन्दू हैं वहीं जय है "सर्व सनातन मतः" ॥८३॥ यही हिन्दू जाति का मत (धर्म) सनातन धर्म है "यतो हिन्दुस्तत सनातनः ॥८४॥ (परशुराम सूत्र)

अर्थ—जबसे हिन्दू हैं तब से सनातन है और जब से सनातन है तब से हिन्दू हैं इसलिये प्रत्येक हिन्दू को सनातन धर्म की रक्षा करना मुख्य कर्तव्य है जो ऐसा नहीं करता उसके लिये भगवान् श्रीकृष्ण महाभारत द्रोणपर्व अ० १८१ श्लोक २८ में कहते हैं।

ऐहि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव ।
धर्म संस्थापनार्थंहि प्रतिज्ञेषा मया कृता ॥

अर्थ—जो पुरुष धर्मका नाश करता है मैं उसका वधकर डालता हूँ धर्म की स्थापना करना ही मेरी प्रतिज्ञा है ॥२८॥ यही बात मनुजी भी कहते हैं।

धर्मएव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो नहंतव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ } मनु० अ० ८ श्लो० १५

अर्थ—जो मनुष्य धर्मको नष्ट करना चाहते हैं वह अधर्म द्वारा आपही नष्ट हो

जाते हैं, धर्म के रक्षा करनेवाले को धर्म रक्षा करता है इसलिये धर्म का त्याग अथवा धर्म की अवहेलना कभी न करना चाहिये सदा धर्म की रक्षा करने वाला ही मनुष्य वृद्धि को पाता है ॥१५॥

चलालक्ष्मीश्चलाप्राणा श्चला जीवन मन्दिरे ।
चला चले च संसारे धर्म एकोहि निश्चलाः ॥ } चाणक्य नीति

अर्थ—लक्ष्मी चली जाती है प्राण भी नहीं रहते फिर जीवन कहाँ रहेगा मकान और संसार भी चला जायेगा परन्तु अपना हिन्दू धर्म ही एक निश्चल रहने वाला है।

ज्ञात्वाचानुतिष्टन्धर्मः प्रशस्य तमो भवति ।
लोके प्राप्तयेच स्वर्गं लोकं धर्म समश्नुते ॥२॥ } वशिष्ठ स्मृतिः अ० १

अर्थ—जो मनुष्य जान कर अपने हिन्दू धर्म का पालन करता है वह धर्मात्मा प्रसंशा के योग्य है और मृत्यु के वाद वह स्वर्ग पाता है। अब धर्म के लक्षण बताते हैं, वृहन्नील तन्त्र में भी लिखा है।

वैदिक प्रतिपाद्यश्च अर्थौ धर्मः प्रकीर्तितः ।
विपरीतं महेशानि अधर्मो भवति प्रिये ॥

अर्थ—वेद ने जिस अर्थ को प्रतिपादन किया है उसी का नाम धर्म है तथा जो अर्थ उससे उलटा है अर्थात् वेद ने जिसका निषेद किया वह अधर्म कहा गया है अर्थात् वेद प्रति पादित ही फल वाला अर्थ (धर्म) होता है यही बात वशिष्ठ स्मृति अ० १ अंक ३-४ में भी कही है।

"श्रुति स्मृतिः विहतो धर्मः ।३। "तद्लाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्"
"यतोऽभ्युदयनिश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः" ॥२॥ वैशेषिक दर्शन सूत्र

जिसके द्वारा अनन्त सिद्धि हो और अन्त में मोक्ष प्राप्त हो वही धर्म है

वेद स्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधंप्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥१२॥ } मनु स्मृति अ० २

अर्थ—वेद, धर्म, शास्त्र सज्जनों का आचार और आत्म संतुस्टि ये चार साक्षात धर्म के लक्षण कहे गये हैं ॥१२॥ यही बात याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १ श्लो० ७ में भी लिखी है और भी मीमांसा दर्शन में कहा है—

चोदना लक्षणोऽर्थोधर्मः (जैमिन शूत्र १-१-२)

हमारे पूर्वज महर्षि, ऋषि लोग आलसीन थे उन्होंने बड़े परिश्रम से हिन्दू धर्म का निरूपण किया है महा भारत कर्ण पर्व अ० ६६ श्लो० ५६। इसी लिये जो अपने धर्म को स्थित रखता है वह प्रतिष्ठा योग्य कहाता है मनु जी कहते हैं

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मं स्तिष्ठति केवलः ॥२३६॥ } मनु अ० ४

अर्थ—परलोक में सहयतार्थ पिता, माता, पुत्र, भार्या और जाति के लोग उपस्थित नहीं रहते वहाँ तो केवल हिन्दू धर्म ही सहायक होगा। मनुष्य को अपने कल्याणार्थ धर्माधर्म का विचार करना ही उत्तम कार्य कहा गया है, यह धर्माधर्म का विचार अत्यन्त ही सूक्ष्म है (धर्मोहि सूक्ष्मो गति :) धर्म की अत्यन्त सूक्ष्म गति है हिन्दू धर्म शास्त्रों ने इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल धर्म को कहते हुये धर्म को दो विभाग में बांटा है एक साधारण धर्म दूसरा विशेष धर्म । साधारण धर्म वह है जो मनुष्य मात्र (यहां पर मनुष्य मात्र का अर्थ हिन्दूमात्र का लगाना कारण जिस समय यह विधान धर्म के किये गये हैं उस समय हिन्दू के सिवाय अन्य दूसरी और कोई जाति संसार में न थी) के लिये एक सामानता कहा गया है, जैसे सत्य का बोलना, असत्य से बचना चोरी न करना आदि २ सर्व हिन्दूमात्र के लिये धर्म माना गया है तथा और भी साधारण धर्म श्री मद्भागवत् स्कंध ७ अ० ११ में कहे हैं

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेच्छा शमो दमः ।
अहिंसाब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥८॥

अर्थ—सत्य बोलना, दया, तप, शौच, तितिक्षा, इच्छा (अर्थात् शुभाशुभ अथवा कार्याकार्य का विचार) शम दम अहिंसा ब्रह्मचर्य दान स्वाध्याय (विद्या पढ़ना) सरलता ॥८॥

संतोषः समदृक्सेवा ग्राम्ये हो परनः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौने नात्म विमर्शनम् ॥६॥

अर्थ—संतोष, समदृष्टि (परमार्थ विचार में न व्यवहार में) साधु सेवा, ग्राम और देश का भला चाहना 'नृणां विपर्य हे क्षणम्, अर्थ निषिद्ध और नीच पुरुषों की संगति से बचना अथवा जो कार्य मनुष्य को नीच बनावें उसको न करना मौन (निन्दा, चुगली, कलह, असत्य, में चुप रहना) आत्म विचार, ॥६॥

अन्नाद्यादेः संविभागे भूते भ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्म देवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥१०॥

अर्थ—अन्न को बांट के खाना अपने सदृश सबको सुख पहुँचाने का भाव रखना, अथात् किसी को कष्ट न पहुँचाना॥१०॥

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्या वनति दास्यं सख्यमात्म समर्पणम् ॥११॥

अर्थ—भगवान् का नाम स्मरण करना, भगवान् की कथा करनी और सुननी भजन करना, वड़ों को प्रणाम करना, अपने को परमात्मा का दास समझना ॥११॥

नृणामयं परोधर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान्राजन् सर्वात्मायेन तुष्यति ॥१२॥

अर्थ—किसी से अभिमान न करना ये तीस लक्षण साधारण धर्म के प्रत्येक हिन्दू मात्र के वास्ते कहे हैं जिनके पालने से सर्वान्तर्यामी परमात्मा प्रसन्न होता है ॥१२॥

इसी प्रकार महाभारत तथा गीता अ० १६ में बताया है ।

योभक्ति हीनस्सच शुष्क काष्ठं यो वेद हीनस्सपशुः पशूनाम् ।
योज्ञान हीनस्सच सृष्टि पुञ्जन्नित्यं वहिर्भूततरोऽतिलएठः॥१०२॥

अर्थ—जो मनुष्य भक्ति हीन है वह सूखे काठ के समान है जो वेद हीन है वह परम पशु है जो ज्ञान हीन है वह मूर्ख सृष्टि के नियम से बाहर है ॥१०२॥

सत्सङ्ग हीनोऽशुभ कर्म निष्ठो विवेक हीनो न मनुष्यनामा ।
एवं प्रचारो गुरुणा कृतश्च तृप्ता स्समग्राजन पुञ्ज काश्च ॥१०३॥

अर्थ—सत्सङ्ग से हीन नर मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है ऐसा प्रचार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचंद्रदेवजी ने किया जिसको सुनके सब नगर निवासी प्रसन्न हो गये ॥१०३॥

मन्त्रोपदेशञ्च गृहीत वन्तश्शिष्या अनेक खलु तत्र जाताः ।
धन्यो गुरुर्धन्य तमाश्च शिष्या गुरुश्च यत्रास्तिस धन्यदेशः॥१०४॥

अर्थ—अनेक लोग गुरु मन्त्र ले सेवक बन बोले आप ऐसे गुरू धन्य हैं हम लोग भी आपके सेवक होने से धन्य हैं जिनको ऐसे गुरुदेव मिले, वह नगर धन्य है जहां श्रीगुरु देव विद्यमान हैं ॥१०४॥

इदमतीव मनोज्ञ पदावली वलितमद्भुत चन्द्र मुखाच्च्युतम् ।
सुचरितञ्च तदीयमहर्दिवं पिवतु भक्त जनोलभतां श्रियम् ॥१०५॥

अर्थ—यह अत्यन्त करके मन को प्रसन्न करने वाला ललित अद्भुत पदों से युक्त श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का सुन्दर चरित्रामृत अत्युत्तम है, इसको जो रात्रि दिन पिवतु अर्थात् पढ़ते और श्रवण करते रहते हैं वह भक्त जन श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर अजर अमर हो जाते हैं ॥१०५॥

इति श्रीसाधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमद् उदासीनवर्य्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डि-देव गुरु चरणकमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे प्रयागराज-रीवाँ, चित्रकूट, काशीपुरी गया, पटमादि भ्रमणोपदेश प्रसङ्ग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी द्वात्रिंशतिकिरण सम्पूर्णतामधिगता ॥३२॥

॥ त्रित्रिन्शततमाकिरण प्रारम्भः ॥

पूजितः सर्व भावेन ततो जनतया तया ।
श्रीचन्द्रो भगवाञ्छिष्यैः सहितः प्रययौ मुदा ॥१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् सर्व लोगों से पूजित अपने साधु मण्डली सहित पटना से आनन्द पूर्वक चलते भये ॥१॥

राम चन्द्र रसेन्दौ च वैक्रमे कार्तिके सिते ।
पूर्णिमायां रवौ धीरः धर्मोद्धाराय धार्मिकः ॥२॥
उपदिशन् वृषं मार्गे पश्यन् राजगृहं शनैः ।
वैद्यनाथाभिधं धाम जगाम नर पुङ्गवः ॥३॥

अर्थ—बखत्यार पुर राजगृही होते वि० सं० १६१३ कार्तिक सुदी १५ रविवार को धर्मोद्धार करने में बड़े धीर धार्मिक श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् श्री बैजनाथ धाम को आते भये ॥२-३॥

शिवद्वादश लिङ्गेषु ज्योति लिङ्ग मिदं शुभम् ।
यत्र गङ्गा जलं लोकः समर्पयति धार्मिकः ॥४॥

अर्थ—भगवान् शङ्कर के द्वादश लिंगों में से यह एक लिंग है जहाँ पर काशी, हरिद्वार, गंगोत्री से गंगा जल को लाके लोग चढ़ाते हैं ॥४॥

तत्रनाना विधा धर्म्याः कथास्तेन कृताः शुभाः ।
तच्चरित्रं समाकर्ण्य दूरादपि जना ययुः ॥५॥

अर्थ—वहाँ पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के नाना प्रकार के धार्मिक उपदेश (कथा) से जनता लाभ उठाती हुई दूर २ से आने लगी ॥५॥

छत्तीसगढ भूपालः कुष्ठी कष्टा कुलो भृशम् ।
तत्रागत्य निजंकष्टं श्रीचन्द्राय न्यवेदयत् ॥६॥

अर्थ—छत्तीस गढ़ का राजा कुष्ठ से अति दुःखी था वह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास आय अपना दुःख निवेदन करता भया ॥६॥

निवेदयामास गुरोमदीयं कुष्ठश्च नष्टं कथमाशु वप्येम् ।
नकोप्युपायो लगतीति कष्टे राज्ञा समुक्ते वचने तदानीम् ॥७॥

अर्थ—गुरुदेव की इस प्रकार स्तुति करके पूछता भया कि हे महाराज हमारा कुष्ट का रोग किस प्रकार जायगा इसका समुचित उपाय गुरुदेव जी कर दीजिये आप से बड़ा कौन होगा बहुत उपाय किया परन्तु लाभ नहीं हुआ आप दया करो ॥७॥

तन्निशम्य दयोदन्वान् श्रीमांश्चन्द्र कलाधरः ।
भूपं प्रत्यवदद् राजन् वैद्यनाथोऽभि पूज्यताम् ॥८॥

अर्थ—उसका दुःख सुनकर श्री गुरुदेव जी ने कहा कि आप इसी धाम में वैद्यनाथ भगवान् शङ्कर की पूजा करें ॥८॥

सतेकष्ठं दिनैः कैश्चिन्नाशयिष्यति निश्चितम् ।
इत्याभाष्य ददौ मन्त्रं शैवं पञ्चाक्षरं शुभम् ॥९॥

अर्थ—कुछ दिनों में तुम्हारा कुष्ट नष्ट हो जायगा यह बात निश्चिय है ऐसा कह उसको शैवपञ्चाक्षर "ॐनमः शिवाय" मन्त्र दिया वह अनुष्ठान पूर्वक जपता रहा ॥९॥

रात्रौस्वप्ने च भूपालः शङ्करं लोक शङ्करम् ।
दृष्ट्वा तच्चरणे नत्वा कृताञ्जलिर भाषत ॥१०॥

अर्थ—एक दिन रात्रि में सोते हुये राजा को शङ्कर जी ने दर्शन दिया जो लोक के कल्याण कर्ता हैं देखते ही राजा हाथ जोड़ चरणों में प्रणाम कर बोलता भया ॥१०॥

कृतकृत्योऽस्मि देवेश दर्शनेन तवामुना ॥
इत्युक्तस्तेन शम्भुश्च तमुवाच वचोऽमृतम् ॥११॥

अर्थ—हे देवेश आपके मुखारविन्द के दर्शन करने से मैं कृत कृत्य हो गया जब इस प्रकार उसने शङ्कर जी से कहा तब शङ्करजी अमृत रूपी बचन बोलते भये ॥११॥

राजन् भक्तोऽसि मे नित्यं, प्रसन्नोऽस्मि तवोपरि ।
श्रीचन्द्रपाद जलं पीत्वा कुष्ठ रोगो विनंक्ष्यति ॥१२॥

अर्थ—हे राजन् हम तुम्हारी नित्य की भक्ति से प्रसन्न हुये अब तुम श्रीचन्द्र भगवान् के चरणों का धोया जल पियो तुम्हारा कुष्ट रोग नष्ट हो जायगा ॥१२॥

लोकानां हित सिद्ध्यर्थं मया रूप मिदं कृतम् ।
चन्द्र चूड़े च चन्द्रे च भेदलेशो न विद्यते ॥१३॥

अर्थ—लोकों के हितार्थ मैंने ही अपना रूप पृथ्वी में श्रीचन्द्र के नाम से धारण किया है उनमें और हम में किञ्चित भेद नहीं है ॥१३॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः राजा प्रातः प्रसन्नधीः ।
गुरुपादोदकं पीत्वा सद्यो लेभे निजां तनूम् ॥१४॥

अर्थ—ऐसा कह शङ्करजी अन्तर्धान हो गये राजा प्रातः काल प्रसन्न मन से श्री ११०८ जगद्गुरु श्री चन्द्र भगवान् का चरण धोय चरणामृत पिया पीते ही तुरन्त रोग से मुक्त होगया पुनः श्री गुरूजी से गुरु मन्त्र लै सेवक बन पूजा भेट चढ़ाय प्रणामकर अपने घर जाता भया ॥१४॥

विहारस्य विहाराय हरमूर्तिरगात् पुनः ।
पुनानः पावनैः पाद न्यासैः पृथ्वी ततः शनैः ॥१५॥
स्थितं गङ्गातटे सौम्यं भागलं पुर मागतः ।
यत्र जन्हुमुनिस्तेपे तपः परम दारुणम् ॥१६॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी वैद्यनाथ धाम से चल विहार भ्रमण करते अपने परम पावन पादों से पृथ्वी को पवित्र करते शनैः२ भागल पुर आय गङ्गा तट स्थित होते भये जहां पर जन्हु मुनि नें दारुण तप किया था ॥१५-१६॥

निपीता स्वर्ण दीयेन भगीरथ रथानुगा ।
मदोन्मत्ता स्वसौभाग्यात् निजाश्रम विनाशिनी ॥१७॥

नृपेण प्रार्थितो भूयः कर्णाभ्यांतामुदैरयत् ।
जान्हवीति ततो नाम गङ्गायः प्रथितं भुवि ॥१८॥

अर्थ—यहीं पर श्री जन्हु मुनि ने गङ्गा जी को पी लिया था पुनः भगीरथ की स्तुति करने पर अपनी जंघा चीर के लोकोपकरार्थ गङ्गा जी को निकाल दिया तब से गङ्गा जी का नाम जान्हवी पड़ा ॥१७-१८॥

भागल पुरात्पुनश्चन्द्रः साधु मण्डल मण्डितः ।
मिथिला राज धानीञ्च दरभङ्गामभूषयत् ॥१६॥

अर्थ—भागल पुर में हिन्दू धर्म का प्रचार कर सब को सुखी कर श्री योगीराज जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी उदासीन साधु मण्डली सहित मिथला की राजधानी दुर-भङ्गा में आते भये ॥१९॥

यवनः क्रूरकर्मा सीत्तदानीं तत्र शासकः ।
प्रजायेन भृशं खिन्ना हाहाकारं चकारसा ॥२०॥

अर्थ—दरभङ्गा नगर मिथला प्रदेश में है जहां प्रथम विदेह वंशीय राजधानी रही है जिसमें राजा जनक विदेह बड़े भाग्य शाली राजा हुये हैं निमिवंशियों में सीरध्वज राजा के सीता नामक पुत्री से भगवान् राम का पाणिग्रहण हुआ था, पीछे इनके परम्परा में राजा बहु-लाश्व हुये हैं, जिनको नौयोगीश्वर उदासीनों ने ज्ञान उपदेश दिया था। याज्ञवल्क्य उदासीन मुनि इनके विशेष पुरोहित थे, इनकी राजाधानी जनक पुर कह लाती थी। निमिवन्शियों के पश्चात् वृज्जिवन्श, उसके वाद मगधेश अजात शत्रु का राज हुआ पीछे मौर्यवन्शी, गुप्तवन्शी, पालवन्शी और सेनवन्शियों का राज्य क्रमशः चलता आया तेरव्हीं सदी में सिमराव वंश के हिन्दू राजाओं से पठान बादशाह तुगलक ने शासन की बागडोर लेकर राजा कामेश्वरसिंह के हाथ में दे दी जो अनुमानसे १६ वीं सदी तक रही राजा शिवसिंह के विद्रोहियों के बलका प्रभाव पाय मुसलमान शासकों का सिक्का जम जाने से हिन्दुओं के ऊपर विपत्ति के पहाड़ टूट पड़े ॥२०॥

तांश्चश्रीचन्द्र भगवान् समाश्वास्या ब्रवीद्वचः ।
राज्यं हि चाऽत्र विप्राणां भविता नास्ति संशयः ॥२१॥

अर्थ—उन लोगों का दुखित समाचार सुन के श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् सर्व हिन्दुओं को धैर्य देकर बोले कि यहाँ पर कुछ समय के बाद ब्राह्मण का राज्य होगा इस हमारे आशीर्वादी भविष्य वाणी में कोई संशय नहीं है ॥२१॥

महेशदत्तनामाच ब्राह्मण एक एकदा ।
प्रार्थयामास तं देवं शान्तिः केन भवेन्नृणाम् ॥२२॥

अर्थ—एक दिन महेशदत्त नामक ब्राह्मण ने आकर प्रार्थना की कि हे श्रीगुरुदेव जी ऐसा कोई उपदेश दीजिये जिससे शान्ति हो ॥२२॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा श्रीचन्द्रः सर्वशास्त्र वित् ।
यथोक्त मुत्तरं तस्मै प्रदातुमुप चक्रमे ॥२३॥

अर्थ—उसका यह बचन सुनके सर्व शास्त्रों के ज्ञाता श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र-भगवान् उसको यथार्थ उत्तर देने वास्ते बोलते भये। हे ब्राह्मण देवता यह मनुष्य देही सर्व श्रेष्ठ देही है ८४ लक्ष योनियों* में भ्रम के जीव पुण्योदय से मनुष्य शरीर प्राप्त करता है ॥२३॥

लब्ध्वा कथं चिन्नर जन्म दुर्लभं तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपार दर्शनम् ।
स्वात्ममुक्तैच नयतेतमूढधीः सत्रात्महास्त्वंविनहन्ति सद्ग्रहात् ।२४

अर्थ—जीव यदि प्रबल पुण्यों के द्वारा किसी प्रकार भी मनुष्य शरीर पा जावे उसमें भी पुरुष का और वह भी वेदाधिकारी अर्थात् द्विजाति का फिर भी यदि मुक्ति के लिये श्रेष्ठ कर्म नहीं करता, वह मूर्ख आत्म घाती है अर्थात् अपने ही हाथों अपना नाश करता है और भी कहा है "एतद्धि दुर्लभत्तरं लोके जन्म यदी द्रसम्" केवल मनुष्य शरीर में ही पर-मात्मा ने यह शक्ति दी है कि मनुष्य चाहे तो अपने उद्यम द्वारा नर से नारायण बन सकता है इसी शरीर से सब साधन हो सकते हैं प्रथम कर्म के साधन-यज्ञ, हवन, पूजन, जप, तप, तीर्थ

---

*स्थावरं विंशते लक्षं जलजंनव लक्षकम्
कूर्मश्च रुद्रलक्षं च दश लक्षश्च पक्षिणः
त्रिंस लक्षण पशूनाँ चचतुर्लक्षश्च वानराः

अर्थ—८४ लाख योनियों के नाम और गिनती—२० लक्ष स्थावर (वृक्षलतादि) नौलाख जलचर, ११ लाख कमठ १० लाख पक्षि, ३० लाख पशु ४ लाख वानर इस प्रकार ८४ लाख होते हैं। इनमें चार प्रकार के भेद होते हैं, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, और जरायुज, जो पसीने से उत्पन्न होते हैं वे स्वेतज, जो अण्डे से पैदा होते हैं वे अंडज, जो पृथ्वी को फोड़ के निकलते हैं वे उद्भिज, जों योनि से उत्पन्न होते हैं वे जरायुज कहाते हैं।

तुखारी छन्द मः १ अण्डज जेरज स्वेतज उद्भिज घट घट जोति समानी ॥१४॥ (आदि ग्रन्थ सा०)

व्रत, आतम विचार, परोपकार, जाति, देश, साधु, माता, पिता, गुरु और अतिथि सेवा है। ज्ञान के साधन-विवेक वैराग्य, सम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षता, श्रवण मनन, निदिध्यासन, तत्त्वं पदार्थ का सोधन, हठ योग के साधन यम नियमादि आठ प्रकार से भक्ति के साधन श्रवणादि नौ, पूजा पाठ, माला, जाप, एकान्त में ध्यान, सत्संङ्गादि नरक के साधन जुवा, चोरी, व्यभिचार, निन्दा, चुगली, मद्य, मांस आदि का सेवन इन से जो प्राणी बचके उपरोक्त कथित किसी भी साधन से मोक्ष प्राप्त कर सकता है अन्य किसी भी शरीर से नहीं। इसी लिये मनुष्य शरीर में शुभ इच्छा रखने वाले को प्रथम साधनों की आवश्यकता है किन्तु श्रेष्ठ साधन साधने में प्रथम अनेक विघ्न आय करते हैं अतः उन विघ्नों में प्रथम शरीर का बिगड़ना माना गया है इस लिए साधक को शरीर रक्षा पर प्रथम विशेष ध्यान देना पड़ता है रोग पीड़ित शरीर से कोई श्रेष्ठ काम जप, तप, देश सेवा, परोपकार, भवद्भजन नहीं हो सकता शरीर आरोग्य रहता है ठीक समय सोने, प्रातःकाल उठने, प्रकृत सेवन नियमित व्यायाम करने से,अनुकूल शुद्धता पूर्वक भोजन करने से खान पान के असंयम से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है जिससे शारीरिक और मानसिक व्यथा उत्पन्न होकर कष्ट पहुँचाती है कारण अन्न के ही अनुसार मन बनता है, मनुष्य जिस प्रकार का भोजन करता है उसके भाव विचार बुद्धि और स्फुरणायें प्रायः वैसे ही होती हैं **"आहार शुद्धो सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः"** (छान्दोग्योपनिषद् अ० ७ खण्ड २६-४) इसलिए शुद्ध अहार अपनी सत्य की कमाई से प्राप्त कर जितेन्द्रिय बनो, तब मन शुद्ध हो विषय विकारों से हट परमेश्वर के तरफ लगेगा। भक्त को अपने गुरु और शास्त्रों पर श्रद्धा विश्वास रखना चाहिये जैसे गुरु ने भगवद्भक्ति प्राप्त का मार्ग बताया हो उसपर चलने से मनुष्य भगवान् परायण हो ईश्वर की प्राप्ति कर लेता है, और जो मनुष्य नित्य नये गुरू बदल के कभी योग, कभी ज्ञान, कभी प्राणायाम, कभी मूर्त्ति पूजा, कभी कुछ, कभी कुछ करता रहता है उस प्राणी को कुछ हाथ नहीं लगता, जैसे दो नौका पर चढ़ने वाला पार नहीं पहुँचाता इस लिए सद्गति चाहने वाले पुरुष को गुरू के उपदेश पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखने की बड़ी आवश्यकता है ॥२४॥

स्वजीवनं धन्य तमं यदा स्यात् अहर्निशं ब्रह्म कलौप सेवी।
त्यक्त्वा च दुष्कर्म समस्तमेव क्षणैक मात्रं भगवान् सुसेव्यः ॥२५

अर्थ—दिन रात्रि के साठ घड़ी में कम से कम ५-७ घड़ी अवश्य ईश्वर चिन्तन करना चाहिये भगवद् भजन में चापलूसी, पक्षपात, दम्भ, कपट, पाखण्ड, अश्रद्धा अभिमान बड़ाई और बाहरी चमक दमक न आनी चाहिये। कुसंगति से बहुत बचना कुसंगति केवल मनुष्यों की ही नहीं होती, खोटादेश, दृश्य, साहित्य, चित्र, विचार भाव और बचनों में भी बुरे भावों

की उत्पत्ति होना कुसंगति है। ऐसे विचार या भावों को सुनन और मनन करना उचित नहीं, जिन से मन में कुसंस्कार जन्मते हों, ऐसों से बोलना और उनका बचन सुनना त्याग देना चाहिये जिनसे घृणा द्वेष, वैर, काम, क्रोध लोभादि की उत्पत्ति हो। कम से कम विषई (पर स्त्री गामी) नशई प्रमादी, आलसी, अकारण क्रोधी, साधु विरोधी, अभिमानी, पर निन्दा परायण, अन्याय अथवा अन्याय करने की सलाह देने वाला, पर छिद्रान्वेषी आदि दोषों वाले पुरुष का संग कदापि न करे, इस प्रकार जानने समझने और करने पर जीवन का लक्ष ठीक हो जायगा फिर संसार दुःख मय न भाषित हो सुखमय बन जायगा उस समय कर्तव्या कर्तव्य का ज्ञान उत्पन्न हो जाने से कर्म बन्धन फिर नही सताते ॥२५॥

एवं गुरोपदेशश्च विप्र विज्ञान भाष्करः ।
गुरु मन्त्रश्च ग्रहणं पीत्वा चरणोदकं पुनः ॥२६॥

अर्थ—जब इस प्रकार जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् मुनि ने पं० महेश दत्त को समझाया तब उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो गया उसी समय श्रीगुरु जी से मन्त्रोपदेश ले चरणोदक पी सेवक बनता भया ॥२६॥

आशीः प्रदानं कृतवांस्तदानी राज्यश्चविप्रस्य भविष्यतीति ।
इदं गुरोरेव सुयोग्य कार्यं विप्राय राजस्य समर्पराख्यम् ॥२७॥
गुरोस्समाशीर्वचना च्चवाद शाहोक्वरो वीर बहादुरश्च ।
महेशदत्ताय समस्त तिर्हुत् राज्यं ददौ वेद विदे कदाचित् ॥२८॥

अर्थ—जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के आशीर्वाद से ही कुछ काल के पीछे पं० महेश दत्त की विद्वता के प्रताप से अकबर बादशाह ने महेशदत्त जी पर प्रसन्न हो समस्त तिरहुत का राज्य प्रदान कर दिया, तब से आज तक दरभंगा में ब्राह्मण वंशीय हिन्दू राज चला आता है यह श्री११०८ उदासीनाचार्य जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का प्रत्यक्ष प्रताप विद्यमान है इसीसे दर्भंगा राज्य में उदासीन साधुओं का राज्य की ओर से आदर सत्कार आज तक अधिक होता चला आ रहा है। तथा जब कोई राज्य वन्श की शादी या सन्तान उत्पन्न होती है अथवा गद्दी पर बैठते हैं तब श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का रोट प्रसाद कराया जाता है, दरभङ्गा में नदी तट जहाँ पर बैठ के श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने ब्राह्मण को तथा औरों को उपदेश दिया था वहाँ पर उदासीनाश्रम बना हुआ है उदासीन साधु रहते हैं स्वयं हम दर्शन करके आये है ॥२७।२८॥

ततश्चकालादिह मण्डले च विप्रस्य राज्यश्चलति प्रवृद्धम् ।
ततश्चलित्वा जनकस्य राज धान्याश्च नैपाल सुदेश देशम् ॥२९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् दर्भङ्गा से चल जनकपुर, गौतम कुण्ड, सीतामढ़ी देखते वि० सं० १६१३ फाल्गुण वदी १३ शिवरात्रि के अवसर पर नैपाल राज्य में आय पशुपति नाथ का दर्शन किया ॥२६॥

गिरिनिर्झर संयुक्तं नदी वागमती युतम् ।
विविधै वृक्षषण्डैश्च पुष्पितै रूपशोभितम् ॥३०॥

अर्थ—कैसा है नैपाली पर्वत झरनों से संयुक्त वागमती नदी से सुशोभित विविध प्रकार के वृक्ष युत पुरुषों से भर पूर था ॥३०॥

मालती कुन्द कुटजैः सिन्धु वारैः कुरंटकैः ।
पलसार्जुन वंशैश्च चन्दनैः वहु शोभनम् ॥३१॥

अर्थ—मालती कुन्द कुटज पलस अर्जुन बाँस चन्दनादि से बहुत प्रकार सुशोभित वन था ॥३१॥

तुष्ट पुष्ट मृगा कीर्णं सिंह शार्दूल शोभितम् ।
क्रीड़ा विलास निरतै र्वानरैं र्गज गर्जितैः ॥३२॥

अर्थ—मोटे ताजे मृगा, सिंह शार्दूल वन में क्रीड़ा विलास नाच कूद करते शोभा पा रहे थे वानर और हाथी गर्जना करते थे ॥३२॥

रामाकाशरसेन्दौ च बैक्रमे फाल्गुने ऽसिते ।
त्रयोदश्यांरवौ वारे साधुसंघ समन्वितः ॥३३॥
नयपाले नयपाले रामणीयकमण्डिते ।
गत्वा पशुपतिं दृष्ट्वा मुमुदे विधुशेखरः ॥३४॥

अर्थ—वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदी १३ रविवार को अपनी साधु मण्डली सहित जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् नैपाल पशुपति नाथ पर पहुँचते भये यहाँ शिवरात्रि के पर्व पर बड़ा भारी मेला हिन्दुओं का भरता है भगवान् श्रीचन्द्र जी ने पशुपति नाथ चन्द्रशेखर का दर्शन किया ॥३३।३४॥

रूपनारायण स्तत्र राजवंश्यस्तदन्तिकम् ।
समागत्य नृणां शान्त्यै सदुपायश्च पृष्टवान् ॥३५॥

अर्थ—यह तीर्थ नैपाल देश में परम प्रसिद्ध है बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक ज्योतिर्लिंग है महाराज बाहर विराजमान थे मेला विशाल भर रहा था इतने में रूप नारायण सिंह

जो नैपाल राजा के वंश में था उसने आय नमस्कार कर हाथ जोड़ श्रीगुरु देव जी से शान्ति प्राप्ति का उपाय पूछा ॥३५॥

सतमुवाच वचो निगमान्वितं भवतियेनमनो विमलं क्षणात् ।
श्रुतिपुटेन निपीय तुतोष सः नरपते रखिलं निजगाद तत् ॥३६॥

अर्थ — जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले वेद शिक्षा से मन क्षण में विमल हो जाता है जिसके अमृतोपदेश पीने से कर्ण पुट तृप्त हो जाते हैं हे राजन् तुम्हारा मन क्या सारा संसार सन्तुष्ट हो जाता है ॥३६॥

मनोनिरुध्यैयतनं गुरोश्च पप्रच्छ सशान्ति युतो विवेकी ।
सद् ब्रह्मविद्या परिचिन्तनेन शान्तिस्समायाति सुखाय लोके ॥३७॥

अर्थ — श्री गुरु देव जी ने कहा कि ब्रह्म विद्या के अभ्यास से ही ज्ञान का संचय हो सुख होता है, मन को आत्मा में लगाओ जो स्वयं ज्योति शुद्ध, बुद्ध और व्यापक है इस कार्य में जब तुमको मनो विकार रूपी मलिन वासनायें उद्विग्न करें तब तुम्हें उनसे उपराम हो जाना चाहिये, उस समय यह ध्यान करना उचित है कि मैं तो मन नहीं हूं, मैं आत्मा हूँ, शुद्धसच्चिदानन्द हूँ, निरविकार, निरलेप, विमुक्त हूँ। जब आप को यह दृढ़ निश्चय हो जायगा तब मनोविकार कैसे प्रभावित कर सकेंगे मन से लड़ाई करते हुए इन्द्रियों को दमन करो, शुद्ध संकल्प से श्रद्धा पूर्वक सत्य में निवास करो, ॐ में विचरो, ब्रह्म भावना और निदिध्यासन के द्वारा आत्मा में रमोगे, तब सारी विघ्न वाधायें समस्त अशुभ विषय, मनोविकार वाले अपने आप दूर हो जायेंगे। जैसे बाघ एक बार नररक्त का स्वाद ले लेता है तो वह सदा मनुष्यों को ही मारने के अन्वेषण (ताक) में घूमा करता है वह नर भक्षि बन जाता है। इसी प्रकार जब मन एक बार विषय सुख का आस्वादन कर लेता है तो यह सदा विषयों के पीछे ही दौड़ा करता है इसके रोकने का केवल मात्र एक ही उपाय ब्रह्म विद्या का पुनः २ विचार करना है ॥३७॥

गत्वा किलां सोऽपि प्रधान राजे गुरोश्चरित्रं कथयाञ्चकारा ।
सेना समेतस्सच भूपतिश्च प्रसन्न चित्तो मतिमान धीरः ॥३८॥

अर्थ—यह सुन रूप नारायण सिंह बड़ा प्रसन्न हो श्री ११०८ महा प्रभु श्रीचन्द्र भगवान् के चरणों में प्रणाम कर जाय अपने राजा को समस्त वृतांत प्रसन्नता पूर्वक सुनाया ॥३८॥

वृत्तान्त मेतश्च निशम्य राजा ससेन आगत्य ददर्श देवम् ।
श्रुत्वोपदेशान् विविधांश्च तस्मान्मोदं परं प्राप मही महेशः ॥३९॥

अर्थ—समस्त वृत्तांत सुनकर राजा अपने अमात्यों सहित आय श्री गुरु महाराज के चरणों में नमस्कार कर बैठ जाता भया ॥३६॥

श्रुत्वोपदेशं गुरुदेवदेव मुखारविन्दा च्चकितो बभूव ।
गृहीत मन्त्रश्चकृत प्रणामशिशष्यस्सदाचार परायणश्च ॥४०॥

अर्थ—श्री महा प्रभु श्रीचन्द्र भगवान् का मुखारविन्द देखकर चकित हो गया हाथ जोड़ महाराज से अनेक सतोपदेश ग्रहण कर उसी समय चरणामृत के साथ गुरु मन्त्र ले बहुत साद्रव्य भेंट रखता भया। महाराज ने कहा इस धन से सदैव मेले के अवसर पर आये साधुओं को भोजन और पूजा भेट दिया करना, तब से लेकर आज तक उसी धन से मेले के समय साधुओं को भोजन तथा चलते समय विदाई पूजा राजा के ओर से सब साधुओं को मिलती चली आती है ॥४०॥

धन्योऽवतारी पुरुषो महात्मा मदीय देशश्च पुपाव साधुः।
यत्रोपदेशश्च कृतः प्रतापिना स्थानश्च भस्मेश्वर नाम तश्च ॥४१॥
अद्यापि लोके च जन प्रसिद्धं सताञ्च सेवा शुभ राज धान्यात् ।
अखण्ड सत्रं चलतीतिवार्ता लोक प्रसिद्धा जनसम्मता च ॥४२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने नैपाल पशुपति में जहां पर बैठ के राजा तथा आये यात्रियों को सतोपदेश दिया था वह स्थल भस्मेश्वर के नाम से आज तक उदासीन महात्मा के अधिकार में चला आता है, जहाँ पर सदैव अन्न क्षेत्र के साथ २ धर्म चर्चा चलती रहती है तथा नैपाल के राजा का मुख्य कर्तव्य है कि शिव रात्रि के दिन वहाँ जाके उस जगह (भस्मेश्वर) की पूजा करते हुये उदासीन साधुओं की पूजा करना ॥४१॥४२॥

नोट—नैपाल राज्य गोरखा क्षत्रिय हिन्दुओं का है काठमांडू का प्रथम नाम मंजुपाटन था, वि० सं० ७८० के लगभग राजा गुनकमदेव ने इसका नाम काठमांडू रक्खा, इसमें नेवार हिन्दुओं की वस्ती अधिक है।

ततश्चलित्वा च सचन्द्रदेवः श्री काम रूपं विषयं जगाम।
तत्रापि नानाविधधर्म चर्चा कृतामुना सर्व कला धरेण ॥४३॥

अर्थ—वहां से चल श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कामरू देश में जाते भये और वहां पर नाना प्रकार की धर्म चर्चा करते रहे ॥४३॥

वेदचन्द्ररसेन्दौच वैक्रमे चैत्रिके सिते।
अष्टम्यां मङ्गलेवारे कामाख्यांसमलोकयत् ॥४४॥

अर्थ—वि० सं० १६१४ चैत्र मास की शुक्ल पक्ष ८ मङ्गलवार को कामाक्षादेवी का दर्शन किया कामाक्षादेवी की कथा देवी भागवत स्कन्ध ७ अध्याय ३८ तथा अन्य पुराणों में भी आती है ॥४४॥

ब्रह्मपुत्र नदस्याथ कच्छे कच्छप संकुले ।
पावनैः पवनैर्धीरैः शिशिरैरभि सेविते ॥४५॥

अर्थ—ब्रह्मपुत्र नदी उसस्थल को ऐसे घेरे है जैसे कछुवा अपनी संकुली में घिरा रहता है पवित्र शीतलमंद सुगंध पवन चल रही है ॥४५॥

तस्थौ समाधिमाधाय धीरोभूधर निश्चलः ।
साधुः परिवृतः श्रीमान् भासयंश्च दिशोदश ॥४६॥

अर्थ—नदी के किनारे आप समाधि लगाकर ऐसे विराजमान थे जैसे पृथ्वी पर पर्वत अचल रहता है समस्त उदासीन साधु मण्डली आपको चारों तरफ से घेरे बैठी थी ॥४६॥

तत्रस्थितञ्च तंलोकाः समागत्य सिषेविरे ।
उपदेशैश्च तान्देवः प्रत्यहं सममोदयत् ॥४७॥

अर्थ—कुछ लोग भी आकर स्थित होते भये जिनको श्रीगुरु जी ने सुन्दर उपदेश सुनाया ॥४७॥

तन्त्र मन्त्रौ विशेषेण व्याख्यातौ तन्त्र वेदिना ।
यथापात्रं प्रदानंहि महतां नियतः क्रमः ॥४८॥

अर्थ—इस देश में तन्त्र मन्त्र का विशेष प्रचार था इसलिये श्री गुरु जी ने हिन्दुओं को यथार्थ लाभप्रद उपदेश दिया ॥४८॥

अन्येच विषयाः शेषा यथा स्थानं निवेशिताः
सनातनस्य धर्मस्य प्रचारोऽति महान् कृतः ॥४९॥

अर्थ—हिन्दुओं को अनेक प्रमाणों द्वारा समझाते हुये हिन्दू सनातन धर्म का रहस्य समझाय ॥४९॥

तान्त्रिका मान्त्रिकाः सर्वेदृष्ट्वेदं विस्मयं ययुः ।
प्रशशंसुर्भृशं चन्द्रं न दृष्टस्त्वादृशः पुमान् ॥५०॥

अर्थ—जितने तन्त्र मन्त्र करने वाले थे वह सब श्री गुरु जी का सुन्दर उपदेश सुन के विस्मित हो भूरि२ प्रशंसा करते कहने लगे कि आप के सदृश्य पुरुष कोई नहीं आया हम लोगों ने आप के समान यथार्थ वक्ता नहीं देखा ॥५०॥

नास्माकं चलिता मन्त्रा न तन्त्राणि न वेतरत् ।
सर्वथाऽद्भुत कर्मासि वेत्सि सर्वाः कला दृढम् ॥५१॥

अर्थ—आप पर न हमारा कोई तन्त्र चला न कोई मन्त्र चला सर्वथा अद्भुत कर्म वाले आप सर्व कला पूर्ण हो ॥५१॥

देशोऽयं सफलोजातः वयं धन्या धरा शुभा ।
भवतश्चरणौयत्र पतितौ पतितावनौ ॥५२॥

अर्थ—आज हमारा देश सफल हुआ और पृथ्वी धन्य हुई जहां पर आपके पवित्र चरण पड़ते भये ॥५२॥

तन्त्र मन्त्र विदोतार्य साफल्यं नैव लेभिरे ।
मोहितो न सताएव तेन सर्वा विमोहिताः ॥५३॥

अर्थ—तन्त्र मन्त्र आदि से कोई परमार्थिक सफलता नहीं प्राप्त होती, असली आनन्द नहीं मिलता यह तो लोगों को मोहित करने ही भर को हैं ॥५३॥

अर्थयित्वा क्षमां भूयः संस्तूय गृहमागमत् ।
मायापतौ कथं माया कस्यापि सफला भवेत् ॥५४॥

अर्थ—इसलिये आप क्षमा करें ऐसा कह सब प्रणाम कर अपने २ घर आते भये मायापति से माया करके कब सफलता प्राप्त हो सकती है ॥५४॥

यन्त्र मन्त्रादिप्रवीनं योषितां तु विशेषतः ।
श्रीगुरुं दर्शयामास कर्तुं प्रपञ्च सत्वरम् ॥५५॥

अर्थ—इस यंत्र, मन्त्र तन्त्र में प्रायः स्त्रियां ही कुशल देखी जाती हैं जिस जगह पर श्री गुरु देव जगत रक्षक मोहनी मूर्ति हजारों काम देव के लजाने वाले कोटि सूर्य सम प्रकाश वाले बैठे थे। सायंकाल को पांच सात यौवन मद मत्त ललनायें पानी भरने जाती हुई महाराज का दर्शन करते ही मुग्ध होकर, लगीं अपने सुभाव का परिचय देने, कोई मन्त्र पढ़ती है, कोई धागा बांधने दौड़ती है, कोई कुछ करती है कोई कुछ। इधर त्रिभुवन मोहन बैठे २ सबकी लीला देखते मन्द २ मुस्कराते हुये कुछ नहीं बोले ॥५५॥

परन्तु काचिन्न गुरोः प्रतापा तपस्वि वर्यस्य महात्मनश्च ।
समापरूपानुगुण फलञ्च श्रीचन्द्र देवो भगवान्न्य धन्यः ॥५६॥

अर्थ—उन स्त्रियों को क्या खबर थी कि तन्त्र मन्त्र के रचयिता स्वयं भगवान् शंकर आये बैठे हैं, इन पर तन्त्र मन्त्र क्या असर करेगा। जब उन स्त्रियों की सर्व प्रकार की शक्ति निष्फल गई तब वह अपनी गुरु आनी के पास जाय के बोलीं कि हे मालिकिन आज हमने नदी तट पर एक बालक सा साधु देखा है यदि उसकी लावण्यता और रूप माधुरी की शोभा पूछो तो हमारी वाणी शक्ति नही रखती जो वर्णन कर सकै। हम लोगों ने उसको आप के पास लाने के लिये अपने सब यंत्र मन्त्र तन्त्र काममें लाईं पर वह सब निष्फल गये इससे पता चलता हैं कि वह कोई करामाती साधु है निरापरा बाबा ही नहीं है ॥५६॥

राज्ञीतदीयापि समाजगाम तीर्थ प्रधाना सकलोपदेष्ट्री ।
क्षमा ययाचे गुरुदेव देवं पूज्यस्तुमेवासि महेश देवः ॥५७॥

अर्थ—यह सुन गुरु आनी अपने साथ में मुख्य २ जादूगीरनी स्त्रियों को साथ में लेकर आई और सब प्रकार के यन्त्र मन्त्र तन्त्र करके थक गई किन्तु आशातीत सफलता की प्राप्ति न देख अपने राज्य की मुख्य राजरानी के पास दौड़ी हुई गई और समस्त घटना सुनाती भई उसने सुनकर अपनी कौंसिल समेत विचार किया कि जब इन प्रबल जादूगीर्णियों का जादू उस साधु पर कुछ नहीं चला तो होन हो वह कोई पूर्ण महात्मा ही होगा चलो सब उनका दर्शन कर उनकी शिक्षा से अपना २ जन्म सफल करें साथ ही इन लोगों का अपराध क्षमा करावें, मता कहीं उनकी क्रोधाग्नि से हमारा राज्य ही भस्म न हो जाय। ऐसा विचार सब की सब बड़े सज धज (ठाट बाट) से महाराज के दर्शन करने गईं और बड़े श्रद्धा प्रेम से प्रणाम कर डरती हुईं क्षमा मांग हाथ जोड़ बोली ॥५७॥

त्वदीय गुप्तं चरितं न केचित् जानन्ति लोके न जनाः कदाचित् ।
तवैव माया वसगा समभ्राभ्रमन्ति जीवा इतिशास्त्र वेता ॥५८॥

अर्थ—हे भगवन् आप शान्त स्वरूप हैं आप का चरित्र गुप्त है जो हम लोग कुछ भी नहीं जान सकतीं आपकी माया के वशीभूत सब प्राणी भ्रमण कर रहे हैं इससे इन अज्ञानियों का अपराध क्षमा करें, यह अपने सुभाववस आपके साथ भी यंत्र मन्त्र तन्त्र करने लगीं, सो आप कृपा करके इनका अपराध क्षमा करो, इस प्रकार बहुत प्रार्थना करती हुई महाराज के चरणों में पड़ गई। प्रसन्न बदन जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उनको सुमति देने के लिये मन्द २ गम्भीर वाणी से बोले ॥५८॥

श्रेष्ठ शिक्षां गुरूं दद्या घोषिता सर्व मङ्गलम् ।
लोकाणां हितकाराय यन्त्र तन्त्र विवेचनम् ॥५६॥

अर्थ—हे माताओं इस संसार में चार दिन का जीवन है, शरीर क्षण भंगुर है, इस अन स्थाई शरीर में रोग, शोक, अनेक प्रकार की अग्नि ज्वाला इसको भस्म करने को मुख फैलाये बैठी हुई है, कच्चे घड़े के जल की भांति जीव का जीवन प्रतिक्षण क्षीण होता चला जा रहा है । यह जीवन तो भगवान् की भक्ति तथा अपने हिन्दू धर्म रक्षा करने से ही सफल होता है न कि तन्त्र मन्त्र यन्त्र करके किसी को फँसाय कर दुःख देने से इससे तो उलटा नरक वास मिलता है ।

प्रश्न—क्या भगवान् शंकर का चलाया तन्त्र नरक ले जाने वाला है ?

उत्तर—जगद्गुरु जी बोले भगवान् शंकर का चलाया तन्त्र कभी नरक नहीं पहुँचाने वाला परन्तु तन्त्र में लिखा क्या है, कभी यह भी विचारा है तन्त्र में यह नहीं लिखा कि तुम अपने स्वार्थान्ध वश हो किसी को मेढ़ा किसी को बकरा बना लो या किसी को विना कारण मार दो इसके करने से पाप होता है । तन्त्र में जो विषय है वह तुम्हें बताकर समझाते है, तन्त्र शास्त्र तीन भागों में विभक्त है, आगम यामल और मुख्य तन्त्र, वाराही तन्त्र के अनुसार सृष्टि प्रलय देवताओं की पूजा सर्व कार्यों का साधन पुरश्चरण षटकर्म साधन और चार प्रकार के ध्यान योग का वर्णन हो उसे आगम, और जिसमें सृष्टि तत्व ज्योतिष नित्य कृत्य, क्रम, सूत्र, वर्ण भेद और युगधर्म का वर्णन हो उसे यामल कहते हैं। और जिसमें सृष्टि लय मन्त्र निर्णय देवताओं के स्थान यन्त्र निर्णय तीर्थ आश्रम धर्म कल्प ज्योतिष संस्थान व्रत कथा शौच अशौच स्त्री पुरुष लक्षण, राज, धर्म दान धर्म युवा धर्म व्यवहार, तथा अध्यात्मिक विषयों का वर्णन हो वह तन्त्र कहाता है, इसलिये तन्त्र का रहस्य समझे बिना जो तुम्हारा तन्त्र मन्त्र करना है यह नरक ले जानेवाला है इससे सदा बचके सच्चे मन से भगवान् का भजन और अपने २ पति सेवा में मन लगाना हिन्दूधर्म शास्त्रों में स्त्रियों को पति सेवा के बराबर अन्य कोई भी कार्य नहीं कहा है तभी शास्त्रों में कहा है ॥५६॥

पतिर्देवस्तु नारीनां पतिर्वन्धुः पतिर्गुरुः ।
पतिंविना गतिर्नास्ति देवतानां यथा गतिः ॥६०॥

अर्थ—स्त्री के लिये पति देवता, पति बन्धु पति बड़ा रक्षक पालक पति के सिवाय गति नहीं है, इसलिये जो समझदार स्त्री सदैव अपने पति के चरणों की सेवा में मन लगाती है वह देवतों से पूजी जाती है ॥६०॥

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च ।
यस्मिन् नेव कुलेनित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६१॥

अर्थ—जहां पर स्त्री से पति और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है वह कुल सदा सर्वदा सुखी रहता है, फलता फूलता है अपने पति से प्रेम और ईश्वर में भक्ति साधु गुरु गरीब हिन्दू भाई की सेवा अपने आश्रित जनो पर दया बड़ों से नम्रता शील शर्म सदा प्रसन्न रहना अपने गहने वस्त्र भोजन के लिए पति को क्लेशित न करना, अपने आचरण में किसी प्रकार दूषण न आने देना ही सच्ची हिन्दू ललना की शोभा है ॥६१॥

कामिन्यां सुख संभोग स्वर्ग भोगात्सु दुर्लभः ।
तद्दर्शन मुपस्पर्श वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः ॥
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा ।
पतिव्रतान्नमस्कृत्य मुच्यते पातका नरा ॥

(ब्रह्मवैवर्त पु० ब्रह्मखण्ड अ० २३)

अर्थ—पतिव्रता स्त्री संसार में सुख भोगकर स्वर्ग में भी सुर दुर्लभ सुख भोगती हुई अपने दर्शन से अनेकों का उद्धार कर देती है। पतिव्रता स्त्री के चरणरज पड़ने से पृथ्वी शीघ्र पवित्र हो जाती है नमस्कार करने से बड़े २ पातक छूट जाते हैं। इस लिए तुम लोग अपने-अपने पति सेवा में मन लगा के जन्म सफल करो साथ ही अपने बालकों को बीर बनाना, अभय बनाना, हिन्दू धर्म पर दृढ़ रखना, हिन्दू भाई की रक्षा पालना करना, सिखाना, यह उत्तम कार्य स्त्रियों को यह लोक और परलोक का सुख प्रदाता होता है साधु का दर्शन पूजन भगवान् का पूजन माना है साधु का उपदेश चार पदार्थ का देने वाला है।

एवं हितोपदेशञ्च श्रीचन्द्रो भगवान् गुरुः ।
नमामि पादपद्मञ्च शिष्यो भूत्वा च संयुतम् ॥६२॥

अर्थ—जब इस प्रकार हितकारी उपदेश श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रजी ने दिया तब सब आय २ महाराज के चरणों में पड़ चरणामृत ले गुरु मन्त्र श्रवण कर सेवकानी बन सदा चारणी हो अपने २ गृह जाती भईं ॥६२॥

कामरूपात् कामरूपी प्रतस्थे साधु संयुतः ।
भ्राम्यन् वङ्गेषु सर्वत्र नवद्वीपं समाययौ ॥६३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी साधु मण्डली समेत कामरू देश का समस्त भ्रमण कर बंगाल घूमते २ नव द्वीप में आये ॥६३॥

ततोऽपिढक्का पुरमागमत्सः तत्रत्यहिन्दून् समसान्त्वयच्च ।
म्लेच्छैरजस्त्रं परिपीड्यमानान् धीरोपदेशै र्नयगर्भितैश्च ॥६४॥

अर्थ—वहां से ढाका आके यहां पर हिन्दुओं को धर्मोपदेश देते बोले अपने धर्म पर दृढ़ रहो मुसलमानों के अत्याचार से विपत्ति में धैर्य का अवलम्बन करो धीर पुरुष विचलित नहीं होते ॥६४॥

उपदिशति महेशे तत्र पाठीन एकः
स वलवल सहायः शासकस्तूर्णमागात्
अकथयदथ चन्द्र गृह्यतामेष धर्मः,
यदि तव वहुकालं जीवितुं वष्टि चेतः ॥६५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् इस प्रकार का उपदेश कर ही रहे थे कि इतने में अपने सहायकों सहित वहां का शासक पठान आता भया और श्री गुरु जी के पास हिन्दुओं का जमघट देख बोला आप हिन्दू फकीर हैं हम लोगों के विरुद्ध हिन्दुओं को भड़काते रहते हैं, इस लिए यदि आपको कुछ दिन संसार में जीवित रहना है तो हमारी बात मान के हमारा इस्लाम धर्म ग्रहण कर मुसलमान बन जावो ॥६५॥

श्रीचन्द्रदेवोऽथ जगाद धीरं सनातनोमेऽस्ति सनातनोऽयम् ।
अशाश्वतं यावन धर्ममेतं हितं न मन्ये श्रुतिमार्गभिन्नम् ॥६६॥

अर्थ—यह सुन श्री गुरु देव जी ने क्रोध करके कहा कि हमारा सनातन हिन्दूधर्म जो प्रारम्भ से चला आ रहा है इसको संसार में कोई नाश नहीं कर सकता है यह बात वह वेद विरोधी मुसमान न मानता भया ॥६६॥

ऐहतासौ जले क्षेप्तुं तश्च पाठीन शासकः ।
अशक्तः कृतयत्नोऽपि निवृत्तो नगरं निजम् ॥६७॥
सार्धयोजनमार्गश्च समतीत्य च्युतो व्यसुः ।
न्यपतत्सेनयोत्थाप्य चन्द्रपार्श्वे त्वनीयत ॥६८॥
तंनिपात्य पदेतस्य हाहाकारमथा करोत् ।
अहंसर्वै भृशं दीना दीनावन मयाचत ॥६९॥

५६

आर्तनादमिमं श्रुत्वा श्रीचन्द्र करुणावशः ।
कमण्डलोर्जलं नीत्वा तंसमुज्जीवितं व्यधात् ॥७०॥
नाहमतः परं हिन्दून् पीडयिष्यामियामि च ।
इत्युक्त्वा पदयोर्नत्वा यथा यातं ययौ पुनः ॥७१॥

अर्थ—पठान शासक ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को जल में डुबाने वास्ते हाथ उठाना चाहा, मन में यह विचार उत्पन्न होते ही वह अकस्मात आध योजन पर जा के काँपता हुआ गिरा, यह देख उसके साथियों ने उठा के श्री गुरु जी के पास लाय उनके चरणों में डाला, तब पठान श्री गुरुदेव जी के समक्ष बहुत प्रकार से माफी मांगता हुआ प्रतिज्ञा किया कि आगे को कभी भी हिन्दुओं को न सताऊँगा। तब श्री गुरु जी ने अपने धूने की विभूति वा तिलक लगाय कर्मण्डल का जल छिड़का जिससे आराम हो गया तब भेंट धर प्रणाम कर अपने नगर को जाता भया ॥६७।६८-६९-७०-७१॥

तत्रैकदा वंशवने वनवन्हिर दीप्यत ।
कान्दिशीका जना सर्वे चन्द्र पार्श्वेमथाययुः ॥७२॥

अर्थ—जहां पर श्री गुरुदेव जी विराजमान थे वहां पर बांस का विशाल जंगल था उसमें एका एक अग्नि लग गई, पवन के वेग से एक दम प्रचण्ड हो इधर को ही आने लगी जहां पर श्री गुरु जी बैठे लोगों को धार्मिक उपदेश दे रहे थे। यह देख सर्व सत्संगी घबड़ा के हाहाकार मचाते बोले कि हे भगवन् अब हम सब लोगों का जीवन नहीं रह सकता कारण अग्नि ने चहुँ ओर से घेरा पा लिया किधर से भी भाग निकल ने का मार्ग नहीं रह गया अब आप ही कृपा करें तो शायद कोई बचाव हो सके ॥७२॥

कमण्डलूदकं नीत्वा श्रीचन्द्रोमन्त्र पूर्वकम् ।
आश्रयशिऽश्चिपत्तेन शान्ता सर्वन्य वेदना ॥७३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् इस प्रकार उन लोगों का आर्तनाद सुन करुणा के वशीभूत हो अपने कर्मण्डल से जल निकाल अञ्जली में पाय अग्नि की ओर फेकते (उच्छालते) भये तुरत ही अग्नि शान्त हो गई ॥७३॥

चारित्रयमेतच्च जनादि दृष्ट्वा गुणोर्विशालं चरणंप्रजग्मुः ।
धन्यस्त्वमेवासि जगद्गुरुश्च नत्वा दृशेहिन्दुहितैषिवर्य्यः ॥७४॥

अर्थ—समस्त लोग यह चरित्र श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र-भगवान् का विलोक

चरणों में प्रणाम करते विशाल सुयश गायन के साथ धन्य २ करते बोले कि आज आपने हम सब लोगों के प्राण बचा लिये, नहीं तो यम धाम पहुँचने में कोई विलम्ब न रह गया था आप ऐसा हिन्दू हितैषी दूसरा कोई दृष्टि नहीं आता ॥७४॥

यत्रेयं घटना जाता तत्र तेनेन्दु मौलिना।
स्वशिष्यस्थापितो ध्यानी नत्था साहब नामकः ॥७५॥
इदानीमपि तत्स्थान मुदासीनसतां वशे।
वर्ततेऽन्नव्रतं नित्यं चलत्यक्षुण्ण धारया ॥७६॥

अर्थ—बहुत से लोगों की प्रवल इच्छा यह थी कि जहाँ पर श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् विराजमान थे वहाँ पर एक आश्रम बनाया जाय, यह देख श्री गुरु जी ने अपनी ओर से वहाँ पर एक आश्रम बना दिया, पीछे उसी स्थान पर श्री नत्था साहब जी उदासीन विराज़ मान भये इस कर वह आश्रम नत्था साहब की धर्मशाला के नाम से आज तक प्रसिद्ध है, जिसमें उदासीन महात्मा बराबर मालिक चले आते हैं जहां पर अन्न क्षेत्र सदैव चलता है ॥७५॥७६॥

अथ श्रीचन्द्र भगवान् प्रतस्थे शिष्य संयुतः।
कलिकातां पुरीं दृष्ट्वा गङ्गा सागर मागतः ॥७७॥

अर्थ—पूज्यपाद श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी उदासीन साधु मण्डली समेत ढ़ाका से चल बंगाल देश घूमते कलकत्ता (किलकिला) नगर देखते गङ्गा सागर आते भये ॥७७॥

ततोऽपि कटकं गत्वा भुवनेश्वर माययौ।
पश्यञ्जनपदान्रम्यान् कोणार्का दीन् नवान् नवान् ॥७८॥

अर्थ—गङ्गा सागर में स्नान कर कपिल देव उदासीन मुनि का दर्शन कर कटक भुवनेश्वर होते कोणार्क का दर्शन किया जो दीनों पर दया करने वाले थे ॥७८॥

वेदाकाश रसेन्दौ च वैक्रमे ऽब्दे शुचौ सिते।
द्वितीया दिवसे श्रीमान् जगन्नाथ मुपागमत् ॥७९॥

अर्थ—वि० सं० १६१४ आषाढ़ सुदी २ को श्री गुरुदेव जी जगन्नाथ धाम पहुँच के समुद्र तट पर आसन जमाया ॥७९॥

॥ श्रीजगन्नाथधाम ॥

मन्दिरे दर्शनार्थं सः समायातः सतां प्रियः।
देवा जीवाः प्रत्यवोचन् स्वाप कालोऽधुना प्रभोः ॥८०॥

अर्थ—श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर में दर्शन करने की इच्छा से उसी समय रात्रि को आते भये, विलम्ब होने के कारण पुजारी लोगों ने आपका तेजस्वी स्वरूप देख के हाथ जोड़ कहा कि हे भगवन्! भगवान् के शयन का समय हो गया है अब आप कल पधारियेगा ॥८०॥

निवृत्तो नीरधेस्तीरे स्वासनं पर्य कल्पयत् ।
याताया यामयामिन्यां जगन्नाथ उपागतः ॥८१॥

अर्थ—ऐसा वचन सुन श्री गुरुदेव जी लौट के समुद्रतीर अपने आसन पर विराज मान हो समाधिस्थ हुये। जब अर्द्ध रात्रि व्यतीत हुई तब श्री गुरुदेव जी के पास श्री जगन्नाथ जी आते भये ॥८१॥

पक्वान्न पूरितां स्थालीं दर्शयित्वा जगाद च ।
पूजकानामपराधः क्षम्यतां भुज्यतामिदम् ॥८२॥

अर्थ—पक्वान मिठाई से भरा हुआ थाल लायकर सामने रख प्रेम से मिलते हुये कहा कि आप पुजारियों का आपराध क्षमा करें आप साक्षात् शिवयोगी राज हैं अब लीजिये यह प्रसाद भोजन करें ॥८२॥

सर्वेभोक्तुं सहैवाथ प्रवृत्ता वारिणा बिना ।
श्रीचन्द्रो भगवांस्तत्र जल कुण्डं विनिर्ममे ॥८३॥

अर्थ—भगवान् के यह प्रेम भरे बचन सुनके श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् प्रसन्न हो श्री जगन्नाथ जी के लाये भोजन को परोसने वास्ते अपने साथ के साधु को आज्ञा की, तब साधु ने दो आसन बिछाय श्री गुरु जी तथा श्री जगदीश जी को भोजन कराया पीछे साथ के सब उदासीन साधुओं ने खाया। जब पड़ी जल की आवश्यकता तब जगन्नाथ जी ने कहा हे भगवन् आप के प्रेम में शीघ्रता वश हमजल लाना भूल गये। तब श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज ने अपने हाथ के आसे से वहीं पर थोड़ी मिट्टी हटाई कि तुरत ही मीठा जल का श्रोत जारी हो गया ॥८३॥

प्रच्चाननन्तुष्टिककश्च दृष्ट्वा सर्वे समाश्चर्यमया अभूवन् ।
पुर्यात्र चैतादृश सिद्ध योगी कश्चित्समाधान परायणश्च ॥८४॥

अर्थ—प्रेम से दोनों देवों ने सब साधुओं समेत भोजन पाया जल पीते भये यह लीला अपूर्व हुई ॥८४॥

समागतो धर्म विवर्द्धनाय सुदेव देवो भगवान् गिरीशः ।
यस्याञ्जलश्चापि गृहीत मेव चिरन्तनी साखलु वापिका च ॥८५॥

अर्थ—श्री जगन्नाथ जी बोले कि हमारी पुरी में आप के सदृश्य सिद्ध योगीराज हिन्दू धर्म का बढ़ाने वाला शङ्करावतार कोई नहीं आया। आज से यह परम पवित्र तीर्थ चिरस्थाई बन गया गुरु श्रीचन्द्र बावली के नाम से प्रसिद्ध होगा जो कोई हमारे दर्शन करने आवेगा वह जब तक यहां आकर इस बावली के जल को पान नहीं करेगा ॥८५॥

स्नानं प्रकुर्वन्ति जनाश्चतत्र नृणामजस्रंखलु मेलनन्तु।
गुरो कृपा तीर्थ गति प्रवाहे न धोन्मुखी सौख्य करी सदैव ॥८६॥

अर्थ—अथवा स्नान न करेगा तब तक उसकी यात्रा सफल न होगी कारण हमारे आप में भेद कुछ नहीं है, आप साक्षात् शंकर जी हैं, कलयुगी जीवों का उद्धार करने को मृत्यु लोक में पधारे हैं, ऐसा कह श्री जगन्नाथ जी श्री गुरु जी से विदा हो अपने स्थान में आते भये ॥८६॥

नोट— प्यारे हिन्दू वीरो उदासीन सम्प्रदाय में प्रारम्भ काल से यहप्रथा चली आ रही है कि बांट के खाते हैं जो कुछ भी भोजन का सामान उदासीनों के पास होगा उसको पास बैठे वालों में बांट के खायेंगे अकेले न खाना यह इनमें सर्वोत्कृष्ट महत्व की बात है।

नोट—सज्जनों तब से लेकर आज तक का इस बावली का मीठा जल भगवान् श्रीचन्द्र जी की कृपा से चला आता है और इस बावली वाले स्थान के उदासीन साधु मालिक हैं, वर्तमान् महन्त राम दास जी उदासीन हैं, आपकी गुरु प्रणाली इस प्रकार है, श्री गुरु, अविनाशी राम जी, गुरु श्रीचन्द्र भगवान्, बाबा गुरु दित्ता जी, बाबा बालू हसना जी, बाबा बादव राय जी, बाबा सहाय दास जी, बाबा जीवन दास जी, बाबा बालक दास जी, बाबा योधा राम जी, बाबा संगत दास जो, बाबा निद्धा दास जी, बाबा विष्णु दास जी, बाबा गुरू प्रसाद जी वर्तमान महन्त राम दास जी उदासीन हैं आप हिन्दू धर्म के प्रचारक हैं।

मंगूमठ—को श्रीमान् मंगू राम उदासीन ने अपने नाम से बसाया यह उदासीन भेष का दर्शनीय स्थान श्री जगदीश मंदिर के सामने है। इस स्थान की उपरोक्त गुरु प्रणाली के साथ श्रीमान् बाबा निद्धादास जी तक एक है आगे निद्धा दास के बाबा गोदड़ दास जी के मंगूदास जी उदासीन महात्मा हुये हैं।

श्री जगन्नाथ पुरी उड़ीसा प्रांत में भारत वर्ष के पूर्व समुद्र तट हिन्दुओं के चारस धामों में से एक प्रसिद्ध धाम है यहां भारत की श्रद्धालु हिन्दू जनता बहुत आती है।

श्रीचन्द्र देवस्य चरित्र चित्रं, पठन्तु भक्त्या श्रवणं नयन्तु।
श्रियं समासाद्य भवे मनोज्ञां, देहावसाने च दिवं व्रजन्तु ॥८७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज का पवित्र चरित्र जो चित्त लगा कर भक्ति पूर्वक पढ़े या सुनेगा, वह संसार में लक्ष्मी वान हो सुखभोग देहावसान होने पर देवलोक जावेगा ॥८७॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन-वर्य्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्रांकिते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनि जन मानस हंसे राज-गृही, वैद्यनाथ धाम, दरभङ्गा, (जनक पुर), नैपाल (पशुपति नाथ), आशाम देश, ढाकाएवं जगन्नाथपुरी भ्रमण, दर्शन हिन्दू धर्मोपदेश वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनो त्रित्रिंशति किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥३३॥

॥ चतुर्त्रिन्शति किरण प्रारम्भः ॥

दक्षिण भ्रमण

श्रीचन्द्रो भगवान् भूयः शनैः साधु गणान्वितः ।
श्री जगन्नाथ धाम्नश्च चक्रे प्रस्थानमात्मवान् ॥१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी साधु मण्डली सहित श्री जगन्नाथ धाम से चलते भये ॥१॥

साक्षि गोपाल मालोक्य विजगापट्टमं पुनः ।
पीठापुरं ततो यातः उप्पड़ा नगरं परम् ॥२॥
काकिनाडापुरीं दृष्ट्वा प्रतस्थे तदनन्तरम् ।
राजमहेन्द्र तीर्थे च गोदावर्यां कृतप्लवः ॥३॥

अर्थ—साखी गोपाल, विजगापट्टम्, उप्पड़ा, काकनाड़ा, राजमहेंद्री में आय गोदावरी गङ्गा का स्नान करते भये ॥२-३॥

स्थाने स्थाने यथाकालं कुर्वन् पुण्याः कथा ययौ ।
विजवाड़ा पत्तनं सौम्यं समालोक्य पुनस्ततः ॥४॥

अर्थ—आप प्रत्येक स्थान में हिन्दुओं को आपस में मिल कर रहने का सुन्दर उपदेश देते हुये विजवाड़ा नगर आते भये ॥४॥

पन्ना नृसिंहमालोक्य मद्रदेशेऽभ्रमच्चिरम् ।
साम्प्रदायिक भेदेन कलहं कुर्वतां मिथः ॥५॥

अर्थ—विजवाड़ा से आगे पन्ना नृसिंह देखते हुये दक्षिण प्रान्त में भ्रमण करते रहे इस देश के सम्प्रदायक भेदियों को समुझाय ॥५॥

मद्रासदेशे बहुधा विवादोश्शैवेच विष्णुश्च गणेश सूर्यः ।
तद्वारणार्थं भ्रमणं गुरोश्च सम्मेलनं हिन्दुततौ यया स्यात् ॥६॥

अर्थ—इधर मद्रास प्रान्त में साम्प्रदायक झगड़े ब्राह्मण अब्राह्मण ऊँच, नीच तैलगू, तामिल मलयालम, कनाड़ी भाषा, भाषियों के तथा शैव वैष्णवों के आपस में दिन रात्रि लगे रहते हैं इसी के निवारणार्थ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने इस प्रांत में भ्रमण किया ॥६॥

ऐक्योपदेश मधुरैः वचोभिः शमयन् भिदाम् ।
शान्तिं संस्थापयामासं शान्तात्माभूत भावनः ॥७॥
पञ्चदेवोपासनायां मतिं सर्वस्य सोऽकरोत् ।
एकभक्तोऽपरद्वेषी नियतं नरकं व्रजेत् ॥८॥

अर्थ—हिन्दू जाति बर्धक महाप्रभु उदासीनाचार्य श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज ने इस प्रान्त में प्रेम और एकता का सच्चा यथार्थ उपदेश देते हुये बताया कि आप सब हिन्दू के नाते एक हैं वेद के मानने वाले आप सब एक हैं, पञ्च तत्व प्रकृति सब एक है, रहा आसा, इष्ट, उपासना सो अपनी २ रुचि अनुसार जिसको जो पसन्द आवे वह करे । वेद में शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य और विष्णु को एक ही परब्रह्म का अंश (रूप) माना है, सभी उपासक अपने उपास्य देव को ईश्वर स्वरूप मान के पूजते हुये अपना२ कल्याण चाहते हैं भगवान् तो कहते हैं जो मुझको जैसा भजता है मैं भी उसको उसकी भावनानुसार वैसा ही होके फल देता हूँ "येयथामां प्रपद्यन्ते तांस तथैव भजाम्यहम्„ तभी सनातन धर्म में पंच देवोपासना हिन्दुओं को बताई गई है, इस प्रकार किसी भी देव को परमेश्वर मान के उनके चरण कमलों में अपनी अनन्य श्रद्धा से भक्ति पूर्वक पूजन पाठ ध्यान नाम स्मरण करते हुये अपना जीवन सुख मय वितीत कर अन्त काल में जीव दुस्तर संसार समुद्र के पार अनायास पहुँच परम धाम प्राप्त कर कृत्य २ हुआ करते हैं जहां पहुँच के पुनः आवागमन का कष्ट मिट जाता है साथ ही अनन्त आनन्द की प्राप्ति होती है ॥७-८॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालय मशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमांगताः ॥१५॥
मामुपेत्य तुकौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

गीता अ० ८

ऐसा विचार आपस का कलह त्याग सब हिन्दुओं से प्रेम भाव रखो तभी हिन्दू जाति की उन्नति होगी ।

एवं कुर्वन् कथाः पुण्यः भ्राम्यन् भूमितलं प्रभुः ।
पक्षि तीर्थं समायात पक्षि कूजित पूजितम् ॥९॥

अर्थ—ऐसे २ अनेक उपदेश एकता वाले देते हुये बल वीरता का संचार करते मद्रास होते जाय के पक्षी तीर्थ का दर्शन किया ॥९॥

शिवकाञ्चीं विष्णुकाञ्चीं कमनीयां विलोकयन् ।
नटेश्वरं प्रणम्याऽथ मायावर मुपागतः ॥१०॥
नागा पट्टन मालोक्य कुम्भकोणमलोकयत् ।
तञ्जोर नगरं दृष्ट्वा त्रिचना पल्लिकां ययौ ॥११॥
मातृकेश्वर मानम्य श्रीरङ्गञ्च ददर्श सः ।
कावेर्याः पावने तोये कृतस्नानोऽव्रजत्पुनः ॥१२॥

अर्थ—पक्षी तीर्थ से शिवकांची, विष्णुकांची, नटेशशिव, मायावरम् नागापट्टन कुम्भकोणम, त्रिचनापल्ली मातृकेश्वर महादेव श्रीरङ्ग देव में कावेरी गङ्गा का स्नान कर जो बड़ी पवित्र नदी हैं वहां श्री रङ्ग जी का दर्शन करते भये ॥१०-११-१२॥

जम्बुकेश्वर मागत्य गन्धमादन माययौ ।
मैनाक्षीं प्रविलोक्यासौ सुतरां सम रञ्यत ॥१३॥
शिष्यैरनुगतोऽपश्यत् सुन्दरं सुन्दरेश्वरम् ।
अलगर्जं समायातः पावनं तदनन्तरम् ॥१४॥
नौकामारुह्य तत्रासौ वेदाकाश रसेन्दुके ।
वैक्रमे शिवरात्र्याञ्च रामेश्वरमयात्पुनः ॥१५॥

अर्थ—श्री रङ्ग से चल जम्बुकेश्वर होते मदुरा में मीनाक्षी देवी और सुन्दरेश्वर महादेव को देखते अलगर्जी प्यारे से पावन आय नौका द्वारा वि० सं० १६१४ शिवरात्रि के दिन श्री रामेश्वर में आते भये ॥१३-१४-१५॥

॥ श्रीरामेश्वर धाम ॥

लोकाभि रामो रामोऽसौ दशानन बनानलः ।
स्वयं तं स्थापयामास तस्माद्रामेश्वरोऽभवत् ॥१६॥

अर्थ—लोकाभिराम श्री रामचन्द्र जी ने रावण से विजय पाने निमित्त यहाँ पर स्वयं अपने हाथ से शिव जी की स्थापना किया तब से यह रामेश्वर जी कहलाये ॥१६॥

श्री श्रीचन्द्रमुनि श्रेष्ठ तीर्थं रामेश्वरा गता ।
तीर्थाति तीर्थं पूज्यंते दक्षिणाब्धि मुखे तटे ॥१७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो मुनियों में श्रेष्ठ महामुनि हैं वह श्री रामेश्वर धाम में आते भये, कैसा रामेश्वर तीर्थ है जो तीर्थों का भी तीर्थ पूज्य दक्षिण समुद्र के तट पर विराजमान है ॥१७॥

एवं समस्ते भुवि श्रेष्ठ तीर्थं श्री राम रामेश्वर धामनामम् ।
महात्म्यमेतत्सुविशालशास्त्रं तद्दर्शनं सौख्यदमेवलोके ॥१८॥

अर्थ—समस्त पृथ्वी मण्डल में यह श्रेष्ठ तीर्थ श्री रामचन्द्र जी के हाथ से स्थापित हुआ रामेश्वर धाम है जिसका महात्म्य विशाल रूप से शास्त्रों में वर्णन किया गया है जिसके दर्शन से सब प्रकार के सुख वैभव इस लोक में प्राप्त होते हैं ॥१८॥

राघवो विजयी यस्मात्कीर्तिमाञ्छ्री समन्वितः ।
तद्दर्शनान्मानवोऽपि नत्तत्फल मवाप्नुयात् ॥१९॥
गङ्गावतार तीर्थाच्च गाङ्गमम्भो हनूमता ।
समानाय्य च यं देवं स्नातं चक्रेरघूद्वहः ॥२०॥
ततस्तुष्टोभवोऽवादीत् योगाङ्गेनाम्भसा मम ।
अभिषेकं नरः कुर्यात् सायुज्यं नियतं ब्रजेत् ॥२१॥

अर्थ—इसकी कथा वाल्मीकी रामायण लंका काण्ड सर्ग १२४-१२५, ब्रह्मांड पु०, शिव पु० ज्ञान संहिता अ० ३८, पराशर स्मृति अ० १२७, गरुड़ पु० पूर्वार्द्ध ८१ अ०, मत्स्य पु० अ० २२, ब्रह्म वैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड अ० ७६ तथा स्कन्द पु० सेतुबंध खण्ड अ० १ से ५२ तक विस्तार से आती है। रामेश्वर टापू मदुरा से ९० मील है सेतुबंध खण्ड में इसका नाम गंद मादन पर्वत लिखा है, यह टापू उत्तर से दक्षिण लगभग ११ मील का विस्तार रखता होगा यह हिन्दुओं के चार धाम में से एक धाम है। यहाँ पर श्री रामेश्र जी को गंगोत्तरी जी का गंगा जल लाकर जो चढ़ाते हुए पूजा प्रतिष्ठा करते हैं वह सायुज्य मुक्ति पाते हैं उनके ऊपर भगवान प्रसन्न होते हैं ॥१९-२०-२१॥

समुद्रस्य तटे कृत्वा स्वास्नं साधुसंगतः ।
उपदेशैरनेकैस्तै रञ्जयामास मानवान् ॥२२॥

अर्थ --श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् यहाँ सर्व दर्शन कर समुद्र तट पर अपने आसन पर उदासीन साधुओं सहित विराजमान थे उपदेशामृत का प्रवाह चला रहे थे ।२२।

समागतास्तत्र जना अनेके तेष्वेवकश्चिछिमल प्रभक्तः ।
मनोनिवृत्यै गुरुदेव देवं पप्रच्छ साधु भगवन्त साद्यम् ॥२३॥

अर्थ—इतने में ५-७ यात्री लक्ष्मण कुण्ड में स्नान कर मन्दिर की ओर जाते समय मार्ग में देदीप्यमान मुख वाला एक श्रेष्ठ साधु को कई साधुओं के मध्य में बैठा देख प्रणाम कर ठहर गये उनमें से एक हाथ जोड़ बोला महाराज घर के धन्धों में लगे रहने पर मन शान्ति नहीं पाता इस लिए कहीं एकान्त में जाके मन शांत करने की इच्छा है, सो आप कृपा करके कोई सुन्दर उपाय बतायें ॥२३॥

साकार पूजा विहिता च वेदे शास्त्रे पुराणेच यथेतिहासे ।
तथा निवृत्ति र्मनसो नितान्त मेष प्रयत्नो हितकार कश्च ॥२४॥

अर्थ—यह सुन महाराज बोले हे भाई चाहे जंगल में रहो चाहे घर में रहो जब तक अपने विचार शुद्ध न हों मन वासनाओं में लगा हो तब तक शाँति कहाँ। उद्वेग, क्रोध, असन्तोष, प्रतिहिंसा संदेह, पक्षपात, ईर्षा, द्वेष असहिष्णुता, उत्तेजना, व्याकुलता, विषाद इन सबको आध्यात्मिक साधन द्वारा त्याग सत्व गुण के उत्कर्ष, ॐ का ध्यान के साथ गुरु मन्त्र के सतत विचार द्वारा समूल भ्रम नष्ट करने पर शान्ति प्राप्त होगी । इसीलिए शास्त्रों ने साकार पूजा बतलाई है, जब चित्त में शान्ति आयेगी तब सर्व प्रकार के भोगों प्रति विरक्ति आ जायगी, जब शक्तिशालिनी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाँयगी तब अज्ञान से उत्पन्न मलिन वासना वाला मन आप से आप शुद्ध हो शान्त हो जायगा, संसारिक कामनाओं में पड़ा मनुष्य का मन कभी शान्ति नहीं पाता, मन के जीतने से संसार जीता जावेगा, जिसने संसार जीत लिया वही जीवन मुक्त होता है ऐसा कह महाराज उसको अधिकारी जान आत्म विद्या का उपदेश देते भये जिससे उसका मन एक दम शान्त हो गया, यह देख उसके समेत बहुत लोग महाराज से गुरु मन्त्र की दीक्षा ले सेवक बन संसार सागर से पार उतर जाते भये ॥२४॥

श्रीचन्द्रो भगवान् यत्र स्थित्वा चक्रे कथाः शुभाः ।
उदासीना महात्मानः आसते तत्र साम्प्रतम् ॥२५॥

अर्थ—जिस स्थल में जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने बैठकर लोगों को सुन्दर उपदेश दिया था, वह स्थल अभी तक उदासीन सम्प्रदाय के आधीन चला आता है और उस स्थान में उदासीन महात्मा रहते हैं ॥२५॥

वेद चन्द्र रसेन्दौच वैक्रमे फाल्गुणेऽसिते ।
पञ्चदश्यां होलिकायां सिंहलंद्वीपमाययौ ॥२६॥

अर्थ—वि० सं० १६१४ फाल्गुन सुदी १५ होली के दिन आप श्री रामेश्वर धाम से चल सिंहल द्वीप पहुँचते भये ॥२६॥

सर्वैश्च सत्कृतो देवः वसन्तोत्सवमोदिभिः ।
विविक्ते वसतिं चक्रे पुण्योद्याने जलान्तिके ॥२७॥

अर्थ—वहां पर सब से सत्कार पाते हुये एक उद्यान में जल के समीप आसन लगाते भये जहां पर होली का खूब धूम धाम से उत्साह मनाते हुए लोग आनन्दित हो रहे थे ॥२७॥

तत्रासीद्धन धान्याढ्यः सदाचारे सदारतः ।
भूमनशाहाभिधोवैश्यः सज्जनो धार्मिकः शुचिः ॥२८॥

अर्थ— सिंहल द्वीप में एक भूमन शाह बड़ा धनाढ्य बणिक रहा करता था, धन की कृपा से किसी वस्तु की कभी कमी नहीं थी। सुन्दर भवन, उद्यान आज्ञाकारी भृत्य, पतिव्रता स्त्री हाथी, घोड़े बाग, बंगले सब कुछ थे साधु सेवी इतना था कि यदि आधी रात्रि को कोई साधु आ पड़े तो निद्रा से उठके भी उसकी सेवा करता था ॥२८॥

गुरुं समागतं श्रुत्वा सपत्नीकः सचटेकः ।
पक्वान्नानि समादाय समायातस्तदन्तिके ॥२९॥

अर्थ—भूमनशाह ने सुना कि शहर से बाहर एक बड़े तपस्वी सिद्ध महात्मा आये बैठे हैं, तुरन्त अपनी स्त्री और नौकरों के साथ पक्का का भरा थाल ले जा भेट रख प्रणाम कर हाथ जोड़ सामने बैठ जाता भया ॥२९॥

नमस्कृत्य निवेद्यान्नं कृताञ्जलिरभाषतः ।
इदमन्नमयं भक्तः गृह्यतामनु गृह्यताम् ॥३०॥

अर्थ—नमस्कार कर हाथ जोड़ निवेदन करता बोला कि इस अन्न को कृपा करके ग्रहण कीजिये मैं बड़ी भक्ति पूर्वक लाया हूँ ॥३०॥

ततस्तं कुशलं पृष्ट्वा हृष्टाचित्तोऽब्रवीत्सतः ।
भोज्यतां भुज्यतामेतन्मिष्टान्नमिति चन्द्रमाः ॥३१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् प्रसन्न चित्त मीठी वाणी से उससे कुशल पूछ के अमृत समान उसके लाये भोजन को ग्रहण कर प्रसाद उसको देते भये ॥३१॥

ततस्तथाकृते भूयः श्रीचन्द्रोभगवाञ्छनैः ।
भक्तं पप्रच्छ सर्वत्र कच्चिदानन्दमङ्गलम् ॥३२॥

भूमनशाहः प्रत्यवोचत्पत्न्या सह कृताञ्जलिः ।
भगवन् पुण्यपापाभ्यां कुशला कुशलेममः ॥३३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पूछने पर भक्त प्रवर भूमनशाह हाथ जोड़ बोला आपकी कृपा से सर्वत्र सर्व प्रकार से कुशल है ॥३२-३३॥

कथमित्याह भगवन् जानन्नपि विमूढवत् ।
महान्तोहि विदन्तोऽपि जडवत्पर पृच्छकाः ॥३४॥

अर्थ—आप से मैं क्या कहूँ आप सब कुछ जानने वाले हैं परन्तु ऐसा पूछ रहे हैं मानों कुछ जानते ही नहीं आप के पूछने से मैं निवेदन करता हूँ ॥३४॥

भगवन् सर्वमस्त्यन्यत्केवलं दुर्लभोनृणाम् ।
दीपकै र्दीपिते गेहे नास्त्येकः कुल दीपकः ॥३५॥

अर्थ—हे भगवन् और तो सर्व कुशल है आपकी कृपा से सर्व पदार्थ प्राप्त हैं, परन्तु जैसे दीपक के बिना घर में अंधकार रहता है उसी प्रकार बिना पुत्र के हमारा घर सूना है ॥३५॥

वैश्यभूमनशाहस्य पुत्रेनास्ति च तद्गृहे ।
धनधान्यादि सम्पत्तौ दुःखाऽधिक्यम्मुहुर्मुहुः ॥३६॥

अर्थ—भूमन शाहने कहा हे भगवन् और तो सब कुशल है किन्तु घर में कोई पुत्र न होने से रात्रि दिन चिन्ता लगी रहती है इस चिन्ता के हटाने को सब उपाय मैं कर थका किन्तु बना कुछ नहीं, जो भी महात्मा पण्डित आता है वह यही कहता है कि तुम्हारे भाग्य में पुत्र लिखा नहीं, यदि आप चाहें तो कृपा करके मेरी इस चिन्ता को दूर कर सकते हैं कारण साधु महात्मा रेख में मेख मार दिया करते हैं असंभव को सम्भव बनाना आप के लिये कोई बड़ी बात नहीं है, साथ ही मेरी सद्गति होने के लिये भगवद्भक्ति का मार्ग कृपा करके श्रवण कराइये आप पूर्ण महात्मा विशेष अवतारी पुरुष हैं, यह आप के मुख की कान्ति से ही प्रतीत हो रहा है मैंने हजारों साधुओं के दर्शन किये हैं किन्तु आप के तुल्य मधुर मूर्ति प्रज्वलित मुखारविन्द किसी का नहीं देखा, इसलिये आप मेरे सब रोग दोष को अपने बचनामृत से नष्ट करने की अनुग्रह करें ॥३६॥

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति ग्रहीजन्म निरर्थकः ।
यज्ञदानादि पूजांश्च स्वर्गं नैवाप्नुयात्पुमान् ॥३७॥

अर्थ—बिना पुत्र के गृहस्थ का जन्म व्यर्थ है उसकी गति नहीं होती, यज्ञ दानादि पूजा शुभ काम सब विफल हो अन्त में स्वर्ग भी नहीं मिलता ॥३७॥

ययांचे गुरुदेवञ्च पुत्रं देहि जगत्प्रभो ।
अन्यथा गति नास्त्येव त्वमेव शरणं मम ॥३८॥

अर्थ—इस प्रकार जगत्प्रभो श्री गुरुदेवजी से पुत्र की याचना करता भूमनशाह बोला कि हे भगवन् पुत्र के बिना मेरी गति नहीं हो सकती इसलिये आप मुझे पुत्र दान अवश्य दीजिए मैं आपकी शरण हूँ ॥३८॥

एवञ्च श्रीगुरुं श्रुत्वा प्रसन्न बदनं प्रभो ।
श्रेष्ठोपदेश तंदत्वा भव कल्याण कारकः ॥३६॥

अर्थ—इस प्रकार उसकी प्रार्थना सुन प्रसन्न वदन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले हे भूमनशाह प्रारब्ध के स्वाधीन हुआ यह शरीर सुख दुःख को प्राप्त होता है किन्तु जिसने आत्मा को जान लिया है उसे बाहरी प्रपञ्च नहीं भुलाते वह जानता है कि जैसे अग्नि एक प्रकार की होते हुये भी काठ की लम्बाई चौड़ाई के भेद से विभिन्न प्रकार की प्रतीत होती है वैसे ही आत्मा एक होने पर भी प्रत्येक देह में नाना प्रकार का प्रतीत होता है। इसलिये कार्य कारण रूप अथवा सत् असत् रूप इस भगवत की निज शक्ति रूप माया को भगवत् कृपा से ही जीत अपने आपको और भगवत् को एक रूप समझना भगवद्रूप होना अनन्य भगवद्भक्ति का प्राप्त करना है, सो यह रहस्य पूर्ण ज्ञान महात्मा ही बताया करते हैं, इसलिये साधु की संगति किया करो, सद्गति हो जायगी। पुत्रादि कुटुम्ब, गृह, धन पशु या बन्धुजनों से सुख की इच्छा करना वन्ध्या पुत्र या आकाश के पुष्पवत् मिथ्या है ॥३६॥

उत्तमोपदेशं श्रुत्वा दयाभूर्धामिकः शुधीः ।
ददौ विभूतिं पुत्रार्थं वणिक् सिद्ध मनोरथः ॥४०॥

अर्थ—जब भूमनशाह ने यह उत्तम उपदेश श्रवण किया तब बड़ा प्रसन्न हो चरणों में प्रणाम करता बोला भगवन् यद्यपि पुत्रादि से वास्तविक सुख कोई नहीं किन्तु फिर भी सांसारिक व्यवहार में पुत्र के बिना पितृ ऋण नहीं उतरा करता इसलिये आप अपने आशीर्वाद से मेरे को पुत्र प्रदान करें ॥४०॥

श्रीचन्द्रो भगवाञ्छ्रुत्वा वचस्तस्य तथा विधम् ।
विभूतिं प्रददौ तस्मै श्लक्ष्णं वचनमाह च ॥४१॥
विभूतिः पुत्रदा सौम्य इयमस्मै प्रदीयताम् ।
परतो दशमे मासिद्वौ पुत्रौ ते भविष्यतः ॥४२॥
उपदेशैस्ततो रम्यैः वेदान्तै र्दान्त मानसः ।
सान्त्वयित्वा स तं गेहं प्रैषयत्प्रेष्य संयुतम् ॥४३॥
यथाकाले कुले तस्य सुतौ वंश विवर्द्धनौ ।
जातौयाभ्यां दम्पती तौ मुमुदाते सुधार्मिकौ ॥४४॥

अर्थ—महाराज ने यद्यपि उसका वेदान्त के उपदेश से मन शान्त कर दिया था किन्तु फिर भी उसको पुत्र के लिये अति आग्रह करते देख अपने धूने की विभूति दे बोले जाओ इस के प्रताप से तुम्हारे दो पुत्र समय पाके होंगे भगवान् श्रीचन्द्र मुनि के आशीर्वाद से भूमनशाह के दो पुत्र एक साथ जन्म लेकर गृह के बुझते दीपक को पुनः प्रज्वलित कर देते भये उन अपने दोनों पुत्रों को देख कर दम्पति अत्यन्त आनन्दित हो गये ॥४१॥४२॥४३॥४४॥

तत्रप्रचारमधिकं कुर्वन् धीरोमहामुनिः ।
नव जीवनमाप्राप्य तोषयामास देशजान् ॥४५॥

अर्थ—श्री १००८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महामुनि के अद्भुतसार गर्भित प्रचार से उस देश के लोगों में नवीन जीवन आगया सब को संतोष होगया ऐसा उत्तम आपका प्रचार प्रभावशाली सुन्दर था ॥४५॥

नोट—प्यारे हिन्दू वीरों कोलम्बो (सिलोन) में हमको भूमनशाह के उन दोनों पुत्रों के वंशज जो महाराज के आशीर्वाद से हुये थे वह मिले थे उन्होंने ही उपरोक्त प्रकरण का सार सुनाया था, तथा उनके गृह में सब से अधिक पूजा और मान्यता श्री १००८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की ही आज तक होती है।

एवं श्रीचन्द्र भगवान् सिंहले द्वीप सत्तमे ।
नित्यं प्रचारयामास धर्मं धर्म विदां वरः ॥४६॥

अर्थ—इसी प्रकार श्री १००८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का सिंहल द्वीप में नित्य प्रचार होता रहा जो बड़े धर्म के जानने वाले हैं ॥४६॥

ततः कुर्वन् स्वधर्मस्य प्रचारं प्रचुरं प्रभुः ।
कुमारी तीर्थमायातः दक्षिणोदधि तीरगम् ॥४७॥

अर्थ—सिंहल द्वीप से लौटकर पुनः रामेश्वर होते देवी पत्तन, दर्भसैन, तिरुनुलवेली, पालमकोटा, श्री रङ्गमन्दार, पापनाशन, तोतादरी, लम्बेनारायण, छोटेनारायण, होते सर्व जगह हिन्दूधर्म का प्रचुर प्रचार करते कन्या कुमारी आते भये, जो दक्षिण समुद्र के किनारे है ॥४७॥

तत्रापि विविधास्तेन कृता धर्मान्वितः कथाः ।
जनता मुदिता शर्वा श्रावं श्रावं दिवानिशम् ॥४८॥

अर्थ—यहाँ पर विविध प्रकार के धर्मोपदेश की कथा आप से जनता सुनती हुई रात्रि दिन आनन्द पाती थी ॥४८॥

एकदा भगवांश्चन्द्रः शिष्यमण्डल मण्डितः ।
गृहस्थानां गुणान् वक्तुमुपचक्रे प्रधानतः ॥४९॥

अर्थ—एक समय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् हिन्दू सद्गृहस्थों को धर्मोपदेश देते हुये गृहस्थ के गुण बतलाते हैं, गृहस्थ रूपी गाड़ी के स्त्री पुरुष रूपी दो पहिये बराबर होने से ही सुख पूर्वक चल सकती है। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है "आत्मै वेदमग्र आसीदेक, एवसोऽकामयत जायामे स्यादथ प्रजायेए अर्धो हवा एव आत्मनीजाया" अर्थात् संसार की रचना से पहिले पुरुष रूप एक आत्माही प्रकट हुआ था (उसने मानसिक सृष्टि उत्पन्न की पर वह बढ़ न सकी) तब उसने इच्छा की कि बगैर स्त्री के सृष्टि वृद्धि नहीं हो सकती, इसलिये मेरे ही समान स्त्री हो तो मैं उसमें सन्तान रूप से प्रकट हो सृष्टि की वृद्धि करूँ, इस इच्छा से उसने अपने ही एक रूप को दो भाग में पतन (विभक्त) किया, इसी पतन के अर्थ से एक दक्षिण भाग का नाम पति तथा दूसरे वाम भाग का नाम पत्नि हुआ इसी सिद्धांत से पत्नि पुरुष की अर्द्धाङ्गी कही जाती है। स्त्री पुरुष दोनों दैव शक्तियां हैं अन्य जातियों में विवाह केवल भोग विलास की सामग्री मानी गई है किन्तु हिन्दू धर्म में विवाह जन्म जन्मांतर का एक दूसरे का साथी है, दाम्पत्य जीवन प्रेम से व्यतीत होना गृहस्थ को यहीं वैकुण्ठ का सुख भोगना है, स्त्री गृह लक्ष्मी है, इस लिये पुरुष को सदैव अपनी स्त्री का भरण पोषण सन्मान करना चाहिये ॥४९॥

दयालज्जाक्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता ।
गुणायस्य भवन्त्येते गृहस्थो मुख्य एवसः ॥७०॥ } दक्ष स्मृति अ० २

अर्थ—दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, बुद्धिमता, त्याग, कृतज्ञता, (अन्य के किये उपकारों

को मानना) ये गुण जिसमें हों वह उत्तम मुख्य गृहस्थ माना जाता है। और भी आदर्श गृहस्थ के लक्षण गीता अध्याय १२ श्लोक १३ से १६ में भगवान् श्री कृष्ण ने बताये हैं वे अवश्य पढ़ने और धारण करने योग्य हैं और भी महाभारत में कहा है ॥८०॥

षड़ेवत गुणाः पुन्सा न हातव्याः कदाचन ।
सत्यं दान मनालस्य मनसूया क्षमा धृतिः ॥८१॥ } उद्योग पर्व अ० ३३

अर्थ—ये छः गुण कदाचित भी पुरुष को न त्याग करना चाहिये एक तो सत्य बोलना दूसरा दान देना, तीसरा आलस्य न करना, चौथा अनसूइया, अर्थात् दूसरे के गुण विषय दोषा रोपण न करना, पाँचवाँ क्षमा और छठां धैर्य, आगे छः दोष से सदैव बचे रहने को वताते हैं ॥८१॥

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्य भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधो आलस्यं दीर्घ सूत्रता ॥ } शुक्र नीति अ० ३ श्लो० १४

अर्थ—जो पुरुष ऐश्वर्य की इच्छा वाला हो उसको उचित है इन छः दोषों का सदैव परित्याग करे (१) निंद्रा वहुत करना, (२) तन्द्रा, (उघांई) (३) भय (४) क्रोध, अत्यन्त क्रोधी को चाँडाल तक बताया है।

॥ दोहा ॥

निन्दक कृतघन पिशुनजन पुनि जेहि क्रोध विशाल
चारो कर्मों के स्वपच पञ्चम जाति चण्डाल } सारुक्तावली

(५) आलस्य मनुष्य का परम शत्रु है (६)दीर्घ सूत्रता कोई भी कार्य को वहुत देर तक सोचते रहना या बहुत देर से काम करना।

सन्ध्यास्नानं जपोहोमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
वैश्यदेवं क्षमातिथ्यमुद्द धृत्यापिच शक्तितः ॥८॥ } दक्ष स्मृति अ० ३

अर्थ—सन्ध्या, स्नान, जप, होम, वेदपाठ, देवता पूजन वैश्य देव, क्षमा, यथा शक्ति अन्न दान करना ए नौ शुभ कर्म गृहस्थ वास्ते आवश्यक कहे गये हैं।

"दध्याज्या दर्श सिद्धार्थं विल्व गौरोचन स्त्रजिम् ।
वाजि वारण गासाधु हरिद्रा शत पर्वणम्" ॥

अर्थ—दही, घृत, सफेद सरसों, वेल, गोरोचन, फूलमाला, घोड़ा हाथी, गऊ, साधु, हल्दी, वाँस, दूब, ऐ सब मंगल द्रव्य कहाते हैं इनमें से किसी का भी प्रातः उठकर अवश्य

दर्शन करना चाहिये, इससे पीछे यदि माता, पिता, दादा, दादी, गुरु या अन्य कोई गृह में अपने से बड़ा हो तो उसको प्रथम नमस्कार करे। कारण बड़ों के नमस्कार से चार लाभ होते हैं अर्थात् आयु, विद्या यश और बल बढ़ता है ऐसा शास्त्रकारों ने बताया है—

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपि सेवनः।
चत्वारितस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशो बलम्॥ } मानव धर्म संहिता

प्रातर्नत्वाप्रनिदिनं पितरं मातरं गुरुम् } (४७ अ० २ शुक्र नीति

नित्य प्रातः स्नान के बाद शरीर को खूब गीले वस्त्र से पोछना चाहिये पीछे आसन पर बैठ शिखा बांध के नित्य नेम संध्या गायत्री गुरु मन्त्र का पाठ ध्यान उपासना ठाकुर पूजनादि करै, यह कार्य हिन्दुओं में प्रारम्भ काल से ही चले आते हैं, ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में अग्नि, वायु, सन्ध्यो पासना त्रिवर्णीक प्रत्येक गृहस्थ को करना लिखा है। सन्ध्या कर लेने के पश्चात् चन्दन लगाना ठाकुर जी और गुरु जी का चरणामृत पीना। मल का त्याग, स्नान, दन्त धावन, अञ्जन, और देव पूजन पूर्वाह्न (दिन के पहिले पहर) में करे १५२ अ० ४ मनु, जिस मार्ग से सत्पुरुष पिता पितामह चलते हों उसी मार्ग से चलना चाहिये याने अपने बाप दादे वाली शान मर्यादा और हिन्दू धर्म को बनाये रखना ही कुल धर्म है, इसी को श्रीकृष्ण भगवान् सनातन धर्म गीता अध्याय १ में बताते हैं "कुल धर्माः सनातनाः" इस प्रकार सद्गृहस्थों वास्ते उपदेश देते।

नित्योपदेसं कुरुते गुरुश्च श्रृण्वन्ति हिन्दूपदवीं गता ये।
अस्पृश्य शूद्राः कथयन्ति वार्तां पुरो गुरोस्वापमिते स्स्वरुपम्॥५०॥

अर्थ—हिन्दुओं को प्रेम से एकता के मार्ग पर चलने वास्ते गुरु जी ने समझाया सबने मान लिया बड़ा ही प्रभाव पड़ा श्री गुरु देव जी शङ्कर स्वरूप हैं सृष्टि उलट सकते हैं नवीन रच सकते हैं सर्वकला सम्पन्न हैं, वेद इन का ही यश गायन करते हुये अपने को कृतार्थ मानते हैं। ऐसा कहते हुये बहुत लोग श्री गुरु जी के चरण धोय चरणामृत पी गुरु मन्त्र ले सेवक बनते भये॥५०॥

नोट—प्यारे हिन्दू भाइयो श्री गुरुदेव जी के बताये उपदेश पर जो सद्गृहस्थ चलेगा वह अपना लोक परलोक सुधारेगा।

उदासीनसतां नीत्वा मण्डलीं महतीं शनैः।
कन्यातीर्थात्प्रतस्थेऽसौ समुद्धतुं सनातनम्॥५१॥
किष्किन्धां नाम नगरीं प्रथमं वालि पालिताम्।
ततः पञ्चवटीं चन्द्रः राम चन्द्र इवाव्रजत्॥५२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी उदासीन साधु मण्डली सहित कन्या कुमारी से चल दक्षिण प्रदेश का भ्रमण करते २ किष्किन्धा देखते हुये जहां पर प्रथम बालि का राज्य था आगे पञ्चवटी तीर्थ आते भये जहाँ पर श्री रामचन्द्र जी आये थे ॥५१॥५२॥

गोदावरीं पुनर्दृष्ट्वा त्र्यम्बकेश्वर माययौ ।
एकदाचन्द्र मागत्य कृताञ्जलिर्नताननः ॥५३॥
सभायां च विशालायां भक्तः पप्रच्छ सादरम् ।
भगवन् योषितां धर्मः प्रोच्यतां शास्त्र सङ्गतः ॥५४॥
पुमां सोहि वहु स्त्रीणां कुर्वते पाणि पीडनम् ।
जगद्गुरुं प्रसन्नात्मा प्रोवाच सह सादरम् ॥५५॥

अर्थ—गोदावरी नदी का दर्शन स्नान कर जाके श्री त्र्म्बेकश्वर जी का दर्शन किया वहां पर विशाल सभा लगी, आये श्रद्धालु हिन्दू भाइयों को हितकर उपदेश देने लगे, एक सत्सङ्गी ने हाथ जोड़ के पूछा हे भगवन् जैसे पुरुषों को कई विवाह होने का प्रमाण शास्त्रों में लिखा मिलता है तथा लोकमें प्रचलित भी है कि प्रथम विवाहिता स्त्री की मृत्यु होजाती है तब पुरुष दूसरा विवाह कर लेते हैं, इसी प्रकार यदि स्त्री का पति मर जाय या स्त्री को छोड़ के भाग जाय तो स्त्री भी दूसरा विवाह क्यों न करले, किन्तु पुरुष स्त्री को ऐसा करने से रोकते हैं सो आप कृपा करके बताइये शास्त्र में इसके लिये क्या विधान कहा है; यह सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् प्रसन्नात्मा बोलते भये ॥५३-५४-५५॥

मृते भर्तरिकिं कुर्यात् पत्नी यौवन शालिनी ।
पुनर्विवाहः कर्तव्यो यथा पुंसा तथा तया ॥५६॥

अर्थ—हे हिन्दू भाइयों यदि दुर्भाग्यवश किसी स्त्री का पति मर जाय तो वह पत्नी यद्यपि यौवन शालनी भी हो तो भी वह स्त्री अपना जीवन ब्रह्मचर्यावस्था में पालती हुई पुत्रों के बीच में रहे ऐसी धर्मा चरण करने वाली स्त्री मरने के पीछे सद्गति पाती है, यदि उसका मन अपने काबू में न रहे तो वह पुनर्विवाह कर सकती है जैसे पुरुष वैसे स्त्री ॥५६॥

यथा न दूषितः पुंसः स्त्रियन्तरस्य करग्रहः ।
कथं स दूषितस्तस्याः पुरुषान्तर संश्रयः ॥५७॥

अर्थ—जैसे पुरुष दूषित नहीं होते तैसे स्त्री भी दूषित नहीं होती फिर उनमें दूषण लगाने की क्या आवश्यकता है पुरुष और स्त्री में निस्संदेह कोई अन्तर नहीं है ॥५७॥

वैषम्येऽत्र कथं शास्त्रे निर्णयो वर्त्ततेऽचलः ।
स समाधीयतां विज्ञ साधवो हि विपश्चितः ॥५८॥

अर्थ—शास्त्रों में कुछ निर्णय पूर्वक वैषम्यता वर्णन की गई है उसका समाधान हे विज्ञ पुरुषो सुनो ॥५८॥

भवं विप्रश्नितस्तेन श्रीचन्द्रो धर्म वित्तरः ।
धर्म शास्त्राणि संग्राह्य धर्म्यमुत्तर मभ्यधात् ॥५६॥

अर्थ—धर्म वेत्ता श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वोले हे विप्र धर्म शास्त्र का निर्णय सर्व ग्राह्य है ॥५६॥

स्त्रियः खलु पुरा देहे कृतानां कृष्ण कर्मणाम् ।
विपाकं विधवा भावं लभन्तेऽन्यत्र जन्मनि ॥६०॥

बहुस्त्रीवत्त्वमस्त्येव पुंसां शास्त्रेषूदीरितम् ।
विधीयतेन कुत्रापि स्त्रीणान्तु पुरुषान्तरम् ॥६१॥

विश्वताभावमापन्ना सुशीला महिला सदा ।
जीवनंयापयेत्साध्वी ध्यायन्ती प्राणवल्लभम् ॥६२॥

अपुत्रापि भवेत् कामं गतिस्तस्या भवेद्ध्रुवम् ।
मनसापि भजेदन्यं निश्चितं नरकं व्रजेत् ॥६३॥

या सती जीवितं कृत्स्नं तपसा यापयेच्छुचिः ।
या ध्रुवं कायमुत्सृज्य दिविपत्या प्रमोदते ॥६४॥

अर्थ—पूर्व जन्म के प्रवल पापके प्रभाव से स्त्री को तरुण अवस्था में वैधव्यता का कष्ट सहन करना पड़ता है, उस पाप से उद्धार (प्रायश्चित्त) वास्ते विधवा माता को अपने पुत्रों की अनुमति से पति का ध्यान करती हुई व्रत दानतीर्थादि सर्व कार्य करती हुई जीवन यात्रा व्यतीत करै, ऐसी धर्माचरण करने वाली देवी पति के देवलोक होने पर भी अपने सत कर्मो के प्रताप से मरने के पीछे सद्गती पाती है। पुत्र का धर्म है माता की हर प्रकार से आज्ञा मानता हुआ किसी प्रकार का कष्ट न दे अर्थात् यथा शक्ति दान पुण्य व्रत तीर्थादिक करने से न रोके इसीमें पुत्रका यश और धर्म है। बहुतसी स्त्री विना सन्तान के ही प्रारब्ध वेग से तरुण या किशोर अवस्था में ही विधवा हो जाती हैं वह अपने शरीर को सब प्रकार से संयम द्वारा रख पति

देव या भगवान् का स्मरण करती हुई अपना जीवन व्यतीत करतीं हैं वह मरण के पश्चात् उत्तम लोक को जाती हैं, यद्यपि आज कल के वातावरण में यह कठिन व्रत पालन करना अत्यन्त दुस्तर है, किन्तु जो नारी इस दुर्गम परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाती है वह भगवान् का धाम प्राप्त करती है ॥६० ६१-६२-६३॥

नरकेऽपिगतं स्वेन कर्मणापतिमुद्धरेत् ।
स्वैरिणी तु दिवं यातं पातयेन्नरके पतिम् ॥६५॥

अर्थ—जो स्त्री अपने पति को छोड़कर दूसरा पति करती है वह स्त्री स्वैरणी कहलाती है संसार में अपयश पाती हुई मरने के पीछे नरक में जाती है ॥६५॥

वान्धवैरपि दुःखिन्या विधवाया दिवानिशम् ।
लालनं पालनं स्नेहात् कार्यं धर्मेनिजेस्थितैः ॥६६॥

अर्थ—बहुत से कुटुम्बी लोग विधवाओं को रात्रि दिन खाने पहिरने से क्लेशित करते हैं, धर्म कार्यादि कार्यों में नहीं लगाते यह उनकी भारी भूल है जिसका परिणाम बुरा निकलता है ॥६६॥

दुस्सङ्गं वर्जयेत्साध्वी दुस्सङ्गाद्धि विनश्यति ।
साध्वीनां चैव वृद्धानां सङ्गं कुर्यात्सदा सती ॥६७॥

अर्थ—विधवा को हमेशा कुसङ्ग से बचनेका उपदेश देना चाहिये, कारण दुष्ट सङ्गत विनाश करती है, वृद्धा तथा सदाचारी की सङ्गत सदैव करना चाहिये ॥६७॥

सपतीनां सतीनाञ्च कुलटा सङ्गमाद्ध्रुवम् ।
मनोविक्रियते शुद्धं का कथा विधवाजने ॥६८॥

अर्थ—साध्वी स्त्रियों को कुलटा की संगत खराब कर देती है फिर विधवा स्त्रियों का क्या कहना है, देश काल युग और पात्रानुसार नियम शास्त्रकारों ने निर्माण किये हैं, इसका—विचार सदा समझदार मनुष्य के मस्तक पर निर्धारित चला आया है शास्त्रों के पढ़ने से यह भी पता लगता है कि आगे भी हिन्दू जाति में पुनरविवाह का प्रचार था ॥६८॥

नष्टेमृतेप्रव्रजिते क्लीवेच पतिते पतौ ।
पञ्च स्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ } पाराशर स्मृति अ० ४ श्लोक २८

अर्थ—विवाहित पति के मर जाने पर, सन्यासी हो जाने पर, नपुसंक निकल जाने पर, पतित हो जाने पर (पतित उसको कहते हैं जो अपने हिन्दू धर्म को छोड़ कर दूसरा धर्म

ग्रहण कर लेता है ऐसा व्यक्ति न दीन का न दुनिया का उभय भ्रष्ट पतित कहाता है) स्त्री को ऐसी अवस्था में अन्य पति कर लेने का विधान (हक्क) है आगे और भी लिखा है।

पतिनासेयथा पुंसौ भर्तृनाशे तथा स्त्रियः ।
पुनर्विवाह कर्तव्य कलावपि युगे जनैः ॥ } व्यास स्मृति

अर्थ—पत्नि के नाश होने में जैसे पुरुष का दूसरा विवाह होता है वैसे ही पुरुष के मरनेपर स्त्री को भी पुनः विवाह करने का अधिकार है। कलियुग में स्त्री पुरुष दोनों को सामान अधिकार हैं, ईश्वर की सृष्टि में दो प्रकार की शक्ति पाई जाती हैं एक पुरुष दूसरी स्त्री दोनों को परमात्मा ने एक स्थान से ही उत्पन्न किया है।

द्विधा कृत्वात्मनोदेहे मर्धेन पुरुषोऽभवेत् ।
अर्धेन नारी तस्यांस विराजमसृजत् विभुः ॥ } मनु० अ० १ श्लोक ३२

अर्थ—इस प्रकार बहुत प्रमाण पुनर्विवाह (विधवा विवाह) वास्ते भरे पड़े हैं अक्षत योनि को कन्या के समान शास्त्र कार लिखते हैं वशिष्ठ स्मृति अ० ८ विवाह प्रकरण।

उद्वाहिता च या कन्या न सं प्राप्ता च मैथुनम् ।
भरतारे पुनरम्भेति यथा कन्या तथैव सा ॥४४॥ } शातातप स्मृति

अर्थ—जिस कन्या का विवाह हो चुका हो किन्तु पति से सहवास न हुआ हो वह प्रथम पति के मरजाने पर दूसरा पति प्राप्त करे कारण वह अविवाहिता कन्या के समान है ॥४४॥

समुद्र एह्यतुतां कन्यां साचेदक्षत योनिका ।
कुलशीलवतेदद्या दिति शातातपोऽब्रवीत ॥४५॥ } शातातप स्मृति

अर्थ—महर्षि शातातप जी कहते हैं कि विवाहिता कन्या पति के सहवास से बची हो, अर्थात् अक्षत योनि हो तो उसको कुलीन और शीलवान पुरुष के साथ पुनः विवाह देना चाहिये ॥४५॥

यही बात वशिष्ठ स्मृति अ० १७ श्लोक० ६५-६६ में कही है इसमें इतना और भी अधिक लिखा है कि मन्त्रों द्वारा विवाह संस्कार होने से पहिले यदि किसी ने बल पूर्वक कन्या को हर लिया हो तो वह कन्या (मिलजाने पर) विधि पूर्वक अन्य वर को दे देनी चाहिये क्योंकि वह अविवाहिता के समान है यही बात बौधायन स्मृति प्रश्न ४ अ० १श्लो० १६-१८ तक कही है।

नोट—इससे समझदार हिन्दू लोग आज तक हरण की हुई कन्या का पता लग जाने पर यदि वह हरन करने वाला अपने जाति कुल सभ्यता के सदृश्य हुआ तो उससे नहीं तो

कन्या को लाकर अपनी जाति में विवाह कर देते हैं, उदाहरण मानो एक सेठ की कन्या को किसी चोर ने उसके जेवर के लोभ में आय कन्या का हरण कर लिया और उसके जेवर उतार कूप में, अथवा जंगल में उसे अधमरी करके डाल देता है यदि उस कन्या का पता पिता को लग जाता है तो वह लाकर उस को अपने घर में रख उसका विवाह अपनी जाति बिरादरी में ही कर देता। है जो हिन्दू लोग अज्ञानता वश ऐसा नहीं करते वह महाभूल करते हैं, कन्या का वहिस्कार कहीं लिखा नहीं उनकी इस महाभूल से ही गैर हिन्दूलाभ उठाते हुये अपनी संख्या बढ़ाते चले जाते हैं, जिससे हिन्दू कौम का दिनों दिन ह्रास होता चला जा रहा है। जब इस प्रकार श्री गुरु जी ने उन लोगों को समझाया तब सब चरणों में पड़ षोड्शोपचार से पूजन करते हुये गुरुमन्त्र ले चरणामृत पी प्रसाद खाय २ कृतार्थ होते भये।

त्र्यम्बकेश्वरतः श्रीमान् एवं कृत्वा शुभाः कथाः।
शिष्यानादाय शान्तात्मा प्रतस्थे प्रथिते तिथौ ॥६९॥

अर्थ—अधम उधारण श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी साधु मण्डली सहित त्रम्बकेश्वर से चल सुन्दर कथा करते हुये पूने में आकर विराजते भये ॥६९॥

वेदचन्द्र रसेन्दौ च वैक्रमे माधवेऽसिते।
सप्तम्यां गुरुवारे च पुण्य पत्तन मागतः ॥७०॥

अर्थ—वि० सं० १६१४ वैशाख कृष्ण ७ गुरुवार को पूना में आते भये ॥७०॥

नगराद्बहिरागत्य स्थितं ज्ञात्वा च तं जनाः।
दर्शनाय समाजग्मुः नत्वा नत्वा ह्युपाविशन् ॥७१॥

अर्थ—पूना नगर के बाहर एक टेकरी पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को विराज मान देखकर लोग आय २ दर्शन और प्रणाम कर बैठ जाते भये ॥७१॥

उवाचनरायण रावनामा हिन्दू धृतीस्याच कथं दयालो।
उपद्रवाणामधिकः प्रचारः न हिन्दुवर्गः सुख संयुतोस्ति ॥७२॥

अर्थ—इन में से एक ब्राह्मण जिसका नाम नारायण राव था हाथ जोड़ बोला हे भगवन्! भगवान् की प्रकृति वड़ी विलक्षण है जिसने हम लोगो को अपना हिन्दू धर्म पालन करना दुस्साध्य बना रक्खा है ऐसी परिस्थिति में हम लोग क्या करें सो कृपा करके उपदेश करिये ॥७२॥

प्रकृतिं चतुरोरूपा ऊर्ध्वं गच्छन्ति नित्यशः।
तेषां ज्ञेयं च धर्मश्च विमुखा नामधोगतिः ॥७३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले हे पण्डित जी भगवान् की प्रकृति के चार स्वरूप हैं, यथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय, प्रकृति जीव को निरन्तर ऊपर को ही ले जाना चाहती है, यह उसका स्वाभाविक गुण है इसी गुण से प्रकृति को ऊर्ध्वगति शील प्रवाह कहते हैं, मनुष्यादि जीव प्रकृति के उस ऊर्ध्वगति शील प्रवाह के विरुद्ध आचरण करते हैं, जिससे अधः पतित होते हैं यह उन जीवों के पाप कर्मों का फल है, भगवान् गीता अ० १६ में कहते हैं "आसुरीं योनिमापन्नामूढा जन्मनि जन्मनि" यही श्रुति भगवती भी कहती है "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं" समर्थ रूपिणी स्वतन्त्र शक्ति को पाकर मनुष्यादि जीव पाप कर्म करते हैं, और उसी से वे अधः पतित होते हैं, यद्यपि ऐसे पापियोंकी अधोगति समष्टि-रूप से प्रकृति माता के अधोगति शील प्रवाह के अनुरूप प्रतीत होती है, किन्तु वह अज्ञानियों का भ्रम है इस प्रकृति के समझने का नाम ही धर्म कहा गया है, और इसके विरुद्ध चलने को अधर्म कहा है, प्रकृति का प्रवाह ऊपर की ओर ले जानेवाला है इसलिये उद्भिज्ज से लेकर उच्च पशुपर्यंत जीव की गति प्रकृति के अनूकुल होने से क्रमोन्नति अवश्य ही होती है, परन्तु मनुष्य योनि में आकर स्वाधीन तथा अहंकारी होने से जीव जब प्रकृति के विरुद्ध चलने लगता है तब उसकी उन्नति रुक कर अवनति होने की सम्भावना हो जाती है, कारण विचार हीन मनुष्य के अहार निद्रा, मैथुन सभी अप्राकृति हुआ करते हैं, पशुपक्षियों के अहार, निद्रा, भय, मैथुनादि सभी प्रकृति के आज्ञानुसार हुआ करता है, परन्तु मनुष्य अज्ञानता से अपनी बुद्धि के विकास को काम क्रोधादि की मात्रा से अधिक बढ़ा के बिगाड़ देते हैं, जिस शक्ति द्वारा अवनतिरुक के उन्नति होते हुये जीव का कल्याण हो वही शक्ति धर्म कहाती है इस धर्म के स्वरूप को त्रिकाल दर्शी परोपकारी साधु महात्मा ही किसी पर कृपा करके बता दें तो वह जान सकता है नहीं तो कभी नहीं जान सकता। अपौरुषेय वेद वेदाङ्ग और वेद सम्मत दर्शन स्मृति पुराण तन्त्रादि में इसी हिन्दूधर्म की महिमा का वर्णन है, इस संसार में स्थूल सदाचार से लेकर ब्रह्म सद्भाव पर्यन्त प्रतिपादन करने का गौरव इस हिन्दूसनातन धर्म को ही है ॥७३॥

हिन्दूधर्मोमहा श्रेष्ठः नतुल्यास्त्येन कोपि हि।
समस्त जगदाधारो विशालोदधि सन्निभः ॥७४॥

ईश्वरस्समरणं देव भवन्तो धैर्य धारिणः।
जतंता मैक्यमाश्रित्य एष धर्मः सनातनः ॥७५॥

अर्थ—स्मरण रक्खो हिन्दूसनातन धर्म ही सार्व भौम राष्ट्र का आधार एक सर्व सम्मत धर्म होगा, हिन्दूधर्म ईसाई मुसलमानी धर्म से प्रथम का सब से बड़ा समुद्रवत् है हिन्दू

धर्म रक्षा का स्वरूप शुद्ध और निर्दोष है, तुम घबड़ाओ नहीं, विपत्तियां तो मनुष्य का भूषण हैं तुम अपने शक्ति भर धर्म रक्षा में लगे रहो ॥७४॥७५॥

महाराष्ट्रे महाराष्ट्रे स्वल्पैरेव दिनैः पुनः ।
रामराज्यमिवा क्लिष्टं हिन्दु राज्यं भविष्यति ॥७६॥

अर्थ—कुछ दिनों में इस महाराष्ट्र में महाराष्ट्रियों का राज्य होना है वह हिन्दू राज्य रामराज्य के माफिक गम्भीर होगा यह हमारी भविष्य वाणी अटल है ॥७६॥

इत्याद्यैः कोमलै रम्यैः भविष्यवचनैः प्रभुः ।
सुतरां रञ्जयामास जनतां जनता पहा ॥७७॥

अर्थ—ऐसे कोमल भविष्य वचन श्री प्रभु के सुन कर सब लोग प्रसन्न हो चरणों में पड़ चरणामृत के साथ २ कई लोग गुरु मन्त्र ले सेवक बनते भये ॥७७॥

नोट—पूना में जिस स्थल में महाराज ने बैठ के लोगों को उपदेश दिया था वह उदासीनाश्रम रामटेकरी में आज तक प्रसिद्ध है जहाँ पर उदासीन साधु रहते हुये अपने हिन्दू धर्म का प्रचार किया करते हैं यही उदासीन साधुओं का मुख्य काम सृष्टि प्रारम्भ काल से चला आता है इससे उदासीन साधुओं का मान सब से अधिक है।

पुण्यपुरात्पुनः श्रीमान् श्रीचन्द्रः साधु संयुतः ।
मल्लिकार्जुन मायातः तं संपूज्य मुदं ययौ ॥७८॥

अर्थ—पूना से चल पूज्यपाद श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी साधु मण्डली सहित मल्लिकार्जुन का दर्शन पूजन करते हुये ॥७८॥

इलोराया गुहां दृष्ट्वा घुसृणेश्वर मागतः ।
वैद्यनाथं समर्च्या सौ नागेश्वरम लोकयत् ॥७९॥
पाण्डवेन्दु रसेन्दौच वैक्रमे कार्तिके सिते ।
द्वादश्यां शौरिवारे च पण्डरं पुरमागतः ॥८०॥

अर्थ—एलोरा की गुफा देख घुसमेश्वर परली वैद्यनाथ नागेश होते वि० सं० १६१५ कार्तिक सुदी १२ शनिवार को पंडरपुर में आय कर विराजते भये, महाराष्ट्र देश के हिन्दुओं का यह मुख्य तीर्थ माना जाता है ॥७९॥

प्रणम्य विट्ठलं नाथं तत्रैवासन मास्थितः ।
भीमा नद्यास्तटे चन्द्रं कृतासनमबुद्धयत् ॥८१॥

अर्थ—श्री विट्ठल भगवान् को प्रणाम करके श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वहीं आसन लगा के भीमा नदी तट विराजते भये ॥८१॥

जनता नागरी सोत्का समयाद्द्रष्टुमञ्जसा ।
उपविष्टा क्षितौ चन्द्रं नामं नामं नवोद्गतम् ॥८२॥

अर्थ—नगर की जनता समीप आय २ प्रणाम कर जमीन पर बैठ महाराज से नाम पूछते भये, महाराज ने कहा साधु महात्माओं के नाम से क्या लोगे, यदि पूछना ही है तो कोई ज्ञान चर्चा की बात पूछो तब उन लोगों ने प्रार्थना की अच्छा आप कोई सुन्दर उपदेश श्रवण कराने की कृपा करें ॥८२॥

उपदेशाः समारब्धाः तेन तत्र नवा नवाः ।
श्रावं श्रावं सा जनता आनन्द मुदिता भवेत् ॥८३॥

अर्थ—श्री गुरु जी उन लोगों को सुन्दर सुन्दर नवीन से नवीन उपदेश हितकर सुनाते हुये ॥८३॥

सांख्ये योगेच वेदान्ते मीमांसायां मनुस्मृतौ ।
रामायणे भागवते गीतायां भारते तथा ॥८४॥

अर्थ—सांख्य, योग, वेदांत, मीमांसा आदि षट दर्शन तथा मनु स्मृति, रामायण भागवत, गीता और महाभारत का सार तत्व समझाते ॥८४॥

एकैका प्रत्यहं जाता कमनीयाद्भुता कथा ।
इत्यमन्या यथा कालं न त्यक्ता चारुभाषिणा ॥८५॥
धर्मे प्रधानता तत्र कथायां सर्वदा भवत् ।
आकाश इव सर्वेषा माधारः सहि सर्वथा ॥८६॥

अर्थ—बोले कि मितिव्ययी बनो, अपने उद्यम से धर्म की कमाई पर संतोष रखो, यदि भगवान् ने धन दिया है, तो सत्पात्र में खर्च करो, सफाई से रहो, दूसरों को भी सदैव उत्तम शिक्षा देवो, बदचलन, कपटी पाखण्डी, विश्वासघाती, हिन्दू कौम घातक का कभी संग न करो परमात्मा का ध्यान करो, सदैव अपने हिन्दू धर्म की रक्षा करते रहना, अरक्षित वस्तु की रक्षा होती है, यह हिन्दू धर्म सदा सर्वदा सुरक्षित है, हिन्दू धर्म ईश्वर विरचित है, ईश्वरीय स्वरूप है, इसकी रक्षा स्वयं ईश्वर आप करता है आप लोग तो निमित्त मात्र हैं ॥८५॥८६॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितिः । } मनु अ० ८
तस्माद्धर्मो न हंतव्यो मानो धर्म हतोऽवधीत् ॥१५॥ } श्लो० १५

इस लिये अपने हिन्दू धर्म को कभी न छोड़ना चाहिये "श्रुति स्मृतः विहतो धर्मः तद्लाभे शिष्टा चारः प्रमाणम्" (वशिष्ट स्मृति अ० १) "यतोऽभ्युदय निश्रेय सिद्धि स धर्मः ॥२॥" (वैशेशिक दर्शन)

वेदस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । } मनु स्मृति
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥१२॥ } अ० २

अर्थ—वेद धर्मशास्त्र सज्जनों का आचार और आत्म संतुष्टि ये चार साक्षात् धर्म के लक्षण बताये गये हैं ॥१२॥

ततः श्रीचन्द्र भगवान् मालवा प्रान्त मागतः।
स्नात्वा च नर्मदा नद्यां नौका मारुह्य सोऽचलत् ॥८७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् पंडर पुर से चल शनैः २ मोरतका मालवा प्रान्त भ्रमण करते स्नान कर नावद्वारा नर्मदा नदी पार ओंकारेश्वर को आते थे ॥८७॥

नर्मदायाप्रवाहेच पूर्ण नौका प्रचालने ।
जलोच्छ्वास भयेनैव नौका पारयतुं क्षमाः ॥८८॥

अर्थ—उस नाव पर और भी १५-२० आदमी सवार थे जब नाव मध्यधार में पहुँची तब एका एकी ऐसी प्रबल आंधी आई जिससे इतना अंधकार छा गया कि हाथ पसारे भी न दृष्टि आता था, पवन के वेग से नर्मदा का जल समुद्र से भी अधिक जोर से उछल रहा था जिसकी ठोकर से नाव का एक किनारा भी थोड़ा टूट गया था ॥८८॥

किङ्कराय भवन्तेव गुरुदेवश्चतुष्टुवुः ।
धन राज मलेतश्च वेगश्शांतो जलस्य च॥८६॥

अर्थ—चढ़े लोग तथा मल्लाह सब घबड़ा के त्राहि २ करते बोले अब जीवन बचने का कोई आसरा नहीं है, हे परमात्मा कृपा करो। इतने में नाव पर का चढ़ा एक मुसाफिर जिसका नाम धनराज मल था वह आय जगद्गुरु जी से हाथ जोड़ इस विपत्ति से सब की रक्षा होने निमित्त प्रार्थना करने लगा ॥८६॥

सर्व शक्ति मयः साधुः स्वतन्त्रो नात्र वन्धनः ।
भ्रकुटी भङ्गमात्रेण सृष्ट्युत्पत्ति विनाशिता ॥६०॥

अर्थ—साधु लोग स्वतन्त्र होते हैं वह चाहे तो भ्रकुटी फिरानेमात्र में ही सृष्टि नई बना दे या बनी सृष्टि का लय कर दें । देखो विश्वामित्र उदासीन महात्मा नवीन सृष्टि बनाने ही लगे थे, दुर्वासा मुनि ने यदुवंशियों को शाप देही दिया जिसके रक्षक स्वयं पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण थे॥६०॥

हे हे दयालो भगवन्कृपालो ह्यनाथ भूतो परमं दयालो ।
विपत्ति काले समुपस्थिते चसदा त्वया रक्षित धर्म एषः ॥६१॥

अर्थ—हे हे दयालु भगवन् आप बड़े कृपालु मूर्ति अनाथनाथ हैं, हम सब लोग इस समय परम अनाथ विपत्ति काल के उपस्थित होने पर आप के समक्ष रक्षा की भिक्षा लेने को उपस्थित हुये हैं आपका धर्म ही शरण आये की विपत्ति से रक्षा करना है ॥६१॥

श्री श्रीचन्द्र दया मूर्त्तिं जगाद वचनं मुदा ।
नेत्रोन्मीलन संयुक्ता सर्वोपद्रव नाशनम् ॥६२॥

अर्थ—भगवान् उसकी इस प्रकार से आधीनगी तथा सब के प्राण संकट में आये देख दयाकर बोले, अपने २ नेत्र सब बन्द करलो। जब सब ने नेत्र खोले तो आंधी पानी का नाम तक नहीं और नाव आके ओंकारेश्वर के किनारे लगी खड़ी है। यह देख नौकामें चढ़े सब लोग आनन्दित होकर धन्य २ श्री गुरुदेव जी को कहते बोले कि हे धर्म मूर्तिं आपकी अपार कृपा से आज हम लोगों का पुनर्जन्म हुआ है। नाव पर के चढ़े सब लोग आय २ श्री गुरु जी का चरण पकड़ गुरु मन्त्र ले सेवक बनते भये, यह दिन वि० सं० १६१५ माघ सुदी १५ का था ॥६२॥

गिरि प्रदेशं सकलञ्च तत्र पश्यन् भ्रमन् धर्म गुरुर्गरीयान् ।
क्रमेण देशं शुभ कर्म युक्तं कुर्वन् सुहिन्दू पद संयुतञ्च ॥६३॥

अर्थ—श्री गुरुदेव हिन्दुओं के विपत्ति रूपी अँधकार को नाश करने में सूर्य के समान सब का कल्याण करते हैं श्री गुरुदेव जी समस्त देश भ्रमण करते धर्म प्रचार के साथ २ हिन्दुओं के जान माल की भी रक्षा किया करते थे ॥६३॥

शृण्वन् हि दीनम्बचनं जनानां बहूपकारं कुरुते महात्मा ।
यत्र प्रदेश गमनञ्च तस्य तृप्तास्तथा तृप्त तमा जनाश्च ॥६४॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी अनाथ गरीबों का बचन सुन के उचित उपकार करते थे जहाँ पर श्री गुरुदेव जी जाते रहे अपने उपदेश से सब को तृप्त करते रहे ॥६४॥

ओङ्कारनाथ मव लोक्य मनोज्ञ मूर्तिं, श्रीचन्द्र देव हृदयं सुतरां तुतोष।
सम्पूज्य तं जनतया सहितस्तदानीं, तेनं कथां पुनरसौ जगतां हिताय ॥६५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी महाराज सुन्दर मूर्ति श्री ओंकारेश्वर का दर्शन कर सब को सन्तुष्ट कर जनता से पूजित हो लोगों को जगत हितकर कथा सुनाने वास्ते ओंकारेश्वर से आगे चलते भये ॥६५॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन-वर्य्यं परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्रांकिते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनि जन मानस हंसे दक्षिण भ्रमण, श्री रामेश्वरधाम, सीलोन होते लौट मार्ग के तीर्थ करते त्रम्बकेश्वर, पूना, ओंकारेश्वर दर्शन कर सर्वत्र हिन्दूजात्योन्नति, हिन्दू धर्मोपदेश वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशनी चतुस्त्रिंशति किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥३४॥

॥ पंचत्रिन्शति किरण प्रारम्भः ॥

ओङ्कारेश्वरतः श्रीमान् साधु वर्ग समन्वितः।
पथि पुण्याः कथा कुर्वन् शनैर्ब्रह्म पुरीं गतः ॥१॥
ततो विष्णु पुरीं भूयः याता शिव पुरीं पुनः।
ततोऽप्यग्रे ययौ धीरं चतुर्विंशति वेदिकाम् ॥२॥
प्रतस्थेऽसौशनैर्भूयः दृष्ट्वा ताः सप्तमात्रिकाः।
मार्कण्डेय शिलांयातः गोमुखं तदनन्तरम् ॥३॥
प्रचारं विदधद्धर्म्यं पर्यटन् क्षोणिमण्डलम्।
नररत्ना करंयातः क्षोणिमण्डल शेखरम् ॥४॥
प्रतापसिंह सूर्यस्याऽभ्युदयं ह्युदयं पुरम्।
तड़ाग स विधे शैले कृतासन परिग्रहः ॥५॥

आसीत्तत्र महाराजः सर्व लक्षण लक्षितः ।
प्रजानां पालकः श्रीमान् वदान्यः सिंहविक्रमः ॥६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने साथ के उदासीन साधुओं समेत ओंकार नाथ (ब्रह्मपुरी, विष्णुपुरी, शिवपुरी) का दर्शन कर चौबीस औतार, सातमात्रा मार्कण्डे शिला, गोमुख आदि देखते सब जगह प्रचार करते मेवाड़ देश चितौर गढ़ राणा उदय सिंह के राज्य में आकर पिछोला तालाब के पास वाली पहाड़ी की झाड़ी में वि० सं० १६१६ चैत्र सुदी ५ को आसन लगाया, साथ के सब साधुओं ने भी आसन लगाय धूनी प्रज्वलित करते भये ॥१-२-३-४-५-६॥

उदयपुर नरेशोह्युदय सिंहनामा करोत्येव नित्यश्च धर्मप्रचारम् ।
परन्तु महादुष्ट दुष्ट ग्रहेस्ताडितस्ताड़ितो मर्दि तो मर्दितश्च ॥७॥

अर्थ—राणा उदयसिंह हिन्दू धर्म प्रेमी अपने देश को स्वतन्त्र रखना चाहता था परन्तु मुसलमानों के हमले से घबड़ाया हुआ था ॥७॥

न किञ्चित्प्रकर्तु समर्थोऽपि राजा महा चिन्तया चिन्तयामास कार्यम् ।
ततो मृगया व्याज माश्रित्य राणा प्रताप प्रताप प्रताप प्रतापी ॥८॥

अर्थ—मुसलमानों के आतङ्क से कुछ न कर सकता था इस चिन्ता से राणा आहाड़ ग्राम के समीप वि० सं० १६१६ चैत्र सुदी ७ गुरुवार के दिन अपने नाम से राजधानी का नगर पहाड़ पर बसाने का काम प्रारम्भ कर दिया था दूसरे दिन शिकार खेलने के व्याज से वह वीर जङ्गल को गया ॥८॥

भ्रमन् गह्वरं गह्वरं काननं स गुहा कन्दरं कन्दरं दुर्गमञ्च ।
सुपश्यन् गुरु धर्मतत्वानुकूलं महादेव देवं विशाल स्वरूपम् ॥९॥

अर्थ—घोर से घोर जङ्गल में घूमता हुआ पिछोला तालाब के समीप जगत् हितकारी शिवरूप धारी श्री गुरु जी का विशाल रूप देखता भया ॥९॥

तत्रा जगाम यत्र श्रीचन्द्र देवस्तपस्यति ।
विस्मयं परमं यातः दृष्ट्वा तं दिव्य दर्शनम् ॥१०॥

अर्थ—वहीं पर श्री ११०८ जंगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो साक्षात् तप स्वरूप थे उनका दिव्य दर्शन देख के परम विस्मय में भर ॥१०॥

जगद्वन्दनीयं द्वितीयावतार मनादि स्वरूपमननतान्त कृत्यम् ।
प्रसन्नो वभूव पिछोला सुकूपे गिरे गह्वरे दुर्गमे संस्थितश्च ॥११॥

अर्थ—जो शिव का द्वीतीयावतार हैं अनन्त हैं जगद्वन्दनीय हैं सुन्दर कूप पर पिछोला पर्वत के कठिन दुस्तर जगह पर बैठे हैं ॥११॥

समीपमेत्य नत्वा च कृताञ्जलि पुटोनतः ।
प्रार्थयामास तं देवं शनैः स विनयं नृपः ॥१२॥

अर्थ—राणा उदय सिंह महाराज के समीप आय प्रणाम कर हाथ जोड़ सविनय प्रार्थना करता भया ॥१२॥

भगवन् कर्तुमिच्छामि राजधानीं नवामहम् ।
आशिषा वर्ध्य तां सैषा यतः स्याद्वीर पालितः ॥१३॥

अर्थ—हे भगवन् मैं एक विशाल नगर राजधानी का बसा रहा हूँ सो आप आशीर्वाद करें तो मैं अपने कार्य में सफल होऊँ ॥१३॥

ततः श्रीचन्द्र भगवान् तथास्त्विति वरं ददौ ।
पुन राह महावीरः यशवर्ती तवात्मजः ॥१४॥

अर्थ—उसका बचन सुनके महाराज ने कहा कि तुम हमारी आज्ञा मान कर अपनी राजधानी का नगर यहां बनाओ तो हमारे आशीर्वाद से तुम्हारे वंश में राज्य चिरस्थायी रहेगा और तुम्हारा पुत्र प्रताप अपने हिन्दू धर्म रक्षा में एक प्रख्यात वीर बहादुर राजा होगा ॥१४॥

भूयात्पुण्यप्रतापः प्रणतनृपशतः शक्र तुल्यः पृथिव्यां,
सत्कर्ता सज्जनानां प्रतिहत सकलाऽमङ्गलो दीनबन्धुः ।
आदर्ता कौशलानां कुलजन शरणः कर्मठानां प्रणेता,
दाता वित्तस्य याता रणभुवि विजयं नित्य सक्तः स्वधर्मे ॥१५॥

अर्थ—पुण्यात्मा प्रबल प्रतापी होगा और सैकड़ों राजा उसे नत मस्तक होंगे, पृथ्वी में शक्र के समान ऐश्वर्य शाली सत्कर्मी सज्जनों से अवरुद्ध, सकल अमङ्गलों का नाशक, दीनों पर दयाल, सबका आदर करने में कुशल, कुल के जनों को शरण देन वाला, अपने कर्मों में दृढ़, दाता, धन का उपार्यन करने वाला युद्ध में कुशल, विजयी, स्वधर्म को नित्य रखने वाला होगा ॥१५॥

आदर्शः सत्कृतीनां स्मृति पथ पथिकः पापिनां कालदण्डः,
संहर्ता लुण्ठकानां समदगज घटा भेदि सद्बाहु दण्डः ।

अत्याचारैक सक्त प्रबल रिपुवन ज्वालने दाव वन्हि,
म्लेच्छ ध्वंसी मनस्वी प्रकृतिहित रतः शान्त गम्भीर चेताः ॥१६॥

अर्थ—सत्कार्य करने वालों के मार्ग पर चलने में आदर्श, पापियों को काल के सदृश दण्ड देने वाला, लोभी, पाखण्डी, अभिमानी, अत्याचारियों को प्रबल शत्रु के समान शमन करने वाला, प्रबल अग्निवत् म्लेच्छ ध्वंसी, प्रकृत हितकारी, शान्त गम्भीर चित्त वाला ॥१६॥

धैर्य शैला धिराजो नय निगम विधौ वृष्णिवंशावतंसः,
गाम्भीर्यैतोयराशिः सकलमणिगणैः पूरिताऽशेष कोषः।
दाने कर्णो गदायां प्रकुरु करिहरि भीमसेनः प्रचण्डः,
माने मानोन्नत श्री रथ कनकगिरिः सन्निधौ राजराजः ॥१७॥

अर्थ—पर्वत के सदृश धैर्य धारी न्याय परायण, सूर्य वशावतंस, गम्भीर समुद्रवत् समस्त मणियों से कोष पूर्ण करने वाला, कर्ण समान दानी, भीमसेन वत् प्रचण्ड, अपने स्वमान की उन्नति करने वाला, सुमेरु पर्वत के सदृश सब राजों में स्थित होगा ॥१७॥

शेषोबुद्धः क्षमायां क्षिति भरहरणे केशवः केशिघाती,
चापे रामः सभायां सुरगुरुरचलो हैहयः खड्गयोगे।
सत्ये धर्माधिराजः खल सुजन गुणालोचने राजहंसः,
भीष्मः सन्धाविधाने रिपुतिमिरहरश्चित्र भानुः प्रतापे ॥१८॥

अर्थ—क्षित का भार उठाने में शेष वत् पृथ्वी का भार हरने में केशी घातक श्री कृष्णवत्, धनुर्धारी राम सदृश, वृहस्पति के समान सभा में सुशोभित, सत्य धर्म के रखने में युधिष्ठर, धर्मवक्ता भीष्म सदृश, रिपुतिमर नाशक सूर्य सदृश्य होगा ॥१८॥

पर्जन्यः पालनायां प्रमुदित भुवनश्चन्द्रमा मोदनायां,
लोकालोकः प्रजानां परकृतकदनान्निश्चलोगूहनायाम्।
आचारेचक्र नाभि ध्रुव उपरिगतः सर्वलोक स्थितीनां,
राजाराजाप्रतापः प्रकटित विभवः शत्रुतापः प्रतापः ॥१९॥

अर्थ—प्रजा के पालन में प्रमुदित चित्त चन्द्रमा के सदृश्य भुवन में आनन्द देने वाला पृथ्वी में सर्वोपर विराजमान राजाओं का राजा प्रताप सिंह शत्रुओं को तपाने वाला होगा ॥१९॥

एवमाभाष्य भगवाञ्छ्रीचन्द्रो विवधाः कथाः ।
प्रत्यहं कर्तुमारेभे महान्तो हि हितैषिणः ॥२०॥
राजचक्रे राजधानीं याधुनापि विराजते ।
यां शशास महाराजः प्रतापः शत्रु तापनः ॥२१॥

अर्थ—राणा* उदय सिंह यह महाराज का आशीर्वादी बचन सुन अपने किये काम को बन्द कर, उनकी इच्छानुसार जहाँ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बैठे थे वहीं पर अपने हाथ से महल बनाने की नीव उसी समय रख राजधानी का नगर बसाय नाम उदयपुर रक्खा। पीछे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का चरण धोय चरणामृत पी गुरु मन्त्र ले सेवक बन रोट प्रसाद कराय श्री गुरु जी का भोग लगाय सब को प्रसाद बांट आप भी खाकर प्रसन्न होता बोला ॥२०-२१॥

पादोदकं पाद धृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ।
योददाति प्रसन्नस्तु नोप सर्पति तं यमः ॥२२॥

अर्थ—वह गृहस्थ धन्य है जिसके घर में साधुओं के चरण धोये जाते हैं पादुका दीप अन्न और रहने का स्थान प्रसन्नता से दिया जाता है ऐसे गृहस्थ के पास यमराज कभी नहीं आते हैं ॥२२॥

साधु पादोदक क्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदनी ।
तावत् पुष्कर पात्रेषु पिवन्ति पितरोऽमृतम् ॥२३॥

अर्थ—साधु महात्मा के धोये चरण के जल से जब तक पृथ्वी भीगी रहती है तब तक उस गृहस्थ के पितर कमल के पत्तों में अमृत पीते रहते हैं ॥२३॥

वैकुण्ठस्थो हरि साक्षाद् वसते साधु आत्मनः ।
इति में सत्य वचनं नासत्यं वाक्य कश्चनः ॥२४॥

---

*राणा उदय सिंह जी से एक साधु का मिलाप तथा साधु के कहने से साधु के बेठने वाली जगह में उदयपुर का बसाना पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा अपने रचित उदयपुर राज का इतिहास नामक पुस्तक पृष्ठ ४०६ में लिखा है, किन्तु साधु का नाम नहीं लिखा। विदित होता है कि ओझाजी ने नाम खोजने का कष्ट नहीं उठाया यदि थोड़ी खोज जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की जीवनी के ओर करते तो उन्हें स्पष्ट हो जाता कि राणा जी से मिलने वाले साधु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य्य ही थे।

अर्थ—वैकुण्ठ के बसने वाले हरिसाक्षात् साधु के आत्मा में निवास करते हैं यह मेरा सत्य वचन है इसमें किञ्चित भी असत्य नहीं है ॥२४॥

इत्युक्त्वा वचनं राज्ञं प्रसन्न हृदयं महा।
गुरुतेव नमस्कारं भाग्यवान्कुशला भुवि ॥२५॥

अर्थ—ऐसा वचन बोलके राजा बड़े हर्षित हृदय से श्री गुरु देव जी को नमस्कार करता भया, इसका भाग्य खुल गया। इस प्रकार श्री गुरु देव जी की आज्ञा से उदयपुर नगर बसा जो आज तक विद्यमान है जिसमें राणा उदय सिंह जी के वंश धर बराबर राज्य करते चले आ रहे हैं ॥२५॥

तत्र श्रीचन्द्र भगवान् किञ्चित्कालमुवास सः।
एकलिङ्ग नमस्कृत्य गन्तुं चक्रे मनस्ततः ॥२६॥
रसचन्द्ररसेन्दौ च वैक्रमे कार्तिके सिते।
दशम्यां मङ्गले वारे अजमेरं समाययौ ॥२७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी मण्डली सहित उदयपुर में कुछ दिन निवास कर वहाँ से चल एकलिङ्ग महादेव का दर्शन करते सर्वत्र प्रचार द्वारा आनन्द मन्दाकिनी प्रवाहित करते वि० सं० १६१६ कार्तिक सुदी १० मङ्गलवार को अजमेर आते भये ॥२६॥२७॥

ततः पुष्कर तीर्थं स समायातः शनैः शनैः।
कार्तिके पौर्णमास्याश्च समभूत्स महोत्सवः ॥२८॥

अर्थ—वहाँ से श्री पुष्कर राज तीर्थ को जाते भये यहाँ पर प्रतिवर्ष कार्तिक सुदी १५ का भारी मेला भरता है, बड़ा उत्साह होता है। पुष्कर राज्य सर्व तीर्थों का गुरु है, पुष्कर जी का विस्तार प्रसङ्ग पद्म पुराण सृष्टिखण्ड अ० १५ से १६ तक तथा अग्नि पुराण अ० १०८, वामन पु० अ० २२, महाभारत वनपर्व ८२ अ० तथा शङ्ख स्मृति अ० १४ में आता है ॥२८॥

तत्र तेन कृता चित्रा कथा रम्या दिवानिशम्।
कथा वसान समये केन चिद्भक्ति लक्षणम् ॥२९॥

अर्थ—यहाँ पर श्री गुरु देव जी निवास कर रात्रि दिन सुन्दर कथा द्वारा अपने हिन्दू धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया, कथा के होने पश्चात् एक सज्जन ने भक्ति का लक्षण पूछा ॥२९॥

पृष्टं श्रीचन्द्र देवस्य सकाशान्नम्र मौलिना ।
तमित्थं प्राह भक्तानां तापशान्ति विधानवित् ॥३०॥

अर्थ—यह सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले कि भक्ति का प्रकरण जो ताप के शान्ति का विधान है वह सुनाते हैं ॥३०॥

सर्वथा सर्वदा देवेऽनन्या या चानपायिनी ।
मनोवृत्ति र्मनुष्याणां सा भक्तिरभिधीयते ॥३१॥

अर्थ—मनुष्य को परमात्मा में सर्वथा सर्वदा अनन्य प्रेम का लगाना इसको अनपायनी भक्ति कहते हैं, भगवद्गीता में कई जगह इसका विवेचन आया है जैसे ॥३१॥

"मयि चानन्य योगेन भक्तिर व्यभिचारिणी" ॥१० अ० १३॥
"मां चयोऽव्यभिचारेण भक्ति योगेन सेवते" ॥२६ अ० १४॥

भक्ति भगवान् की कृपा होने से सहज ही विना किसी साधन के भी प्राप्त हो सकती है, तथा इस में सब स्त्री पुरुष का अधिकार है। ब्राह्मण से लेके चाण्डाल तक बालक वृद्ध भगवान् की कृपा से भगवान् को प्राप्त हो भव बन्धन से मुक्त हो गये हैं, भगवान् का आसरा सभी लेते हैं (गीता अ० ६ श्लोक ३२), भक्ति में जाति विद्या रूप कुल धन और क्रिया का भेद नहीं है (नारद सूत्र ७२), निन्दित से निन्दित योनि तक सब का भक्ति में अधिकार है (शाण्डिल्य सूत्र ७८), सभी देश सभी युग सभी जाति के सभी अवस्था के मनुष्य भगवान् की भक्ति कर सकते हैं भगवान् सब के हैं (पद्म पु० अ० ४२ श्लोक १०) अनन्य भक्ति प्रेम की मग्नता में सर्वत्र भगवान् के सिवाय और कुछ न दिखाई दे "सापराऽनुरक्ति रीश्वरे" ऋद्धि सिद्ध संसार के जितने भी वैभव हैं यह सब भक्ति से हटाने के प्रलोभन हैं, अनिर्वचनीय ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिए भगवद्भक्ति के सदृश्य कलियुग में भव-सागर से पर होने का और कोई सरल उपाय नहीं है।

नतपोभिर्नवेदैश्च न ज्ञाने नापि कर्मणा ।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिका ॥१६॥ } भागवत माहात्म्य अ० ३

गीता में भक्ति का इतना उच्चस्थान भगवान् श्रीकृष्ण ने बताया है कि अनन्य भाव से भक्ति करने वाला बड़ा दुराचारी भी साधु ही गिना जाता है।

अपिचेत्सुदुराचारो भजतेमामनन्य भाक् ।
साधु रेव समन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहिसः ॥३०॥ } गीता अ० ६

इस शुद्ध प्रेमाभक्ति का नाम ही परा भक्ति है जिससे पूर्णज्ञानी निर्गुण ब्रह्म की उपासना के साथ सगुण ध्यान योग के अभ्यास के द्वारा प्राप्त करता है। परा भक्ति के अन्दर वैराग्य और ज्ञान दोनों लीन हो जाते हैं इस पद के प्राप्त होते ही भक्त को यह अनुभव हो जाता है "करिष्ये वचनं तव" भगवान् जो चाहेंगे वही मेरे से होगा, भगवान् की प्रेरणा ही मेरा ध्येय है। मतलब भगवान् की इच्छा में अपनी सब वासनाओं का अन्त कर देना इसी का नाम तन्मयता भक्ति है। इसी परम पावन परमानन्द मयलक्ष को समाने रख के प्रेम पथ पर अग्रसर होना भक्ति के साधक की साधना है, इस भगवद्भक्ति का जब कर्म तथा ज्ञान से सम्पर्क हो जाता है तब सकल विघ्न समूहों का स्वतः ही नाश हो जाता है। भक्ति के प्रताप से धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति सहज में होती है। श्रीमद्भागवत में बताया है।

सालोक्य साष्टि सामीप्य सारुप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विनामत्सेवनं जनाः ॥१२॥ (भागवत स्कन्ध ३ अ० २९)

अर्थ—श्री भगवान् कहते हैं कि मै सालोक्य (भगवान् के लोक में रहना) साष्ठि (समीप रहना) इन दोनों में किनका मत है कि चतुर्भुज होके रहता है, किनके मत में विना चतुर्भुज ही रहता है। सारूप्य (चतुर्भुज रूप होके रहना), एकत्व (अभेद हो जाना) ए चार प्रकार की मुक्ति अपने प्यारे भक्त को देने को तैयार रहता हूँ पर वह मेरी सेवा छोड़के किसी भी मुक्ति को ग्रहण नहीं करते। भागवत में भक्ति के नव अङ्ग बताये हैं।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ॥२३॥ (भागवत स्कन्ध ७ अ० ५)

अर्थ—भगवान् की कथा सुननी—कथा श्रवण करने में दश दोषों से बचे रहना चाहिये, (१) कथा सुनते समय जो पान खाते हैं वह जानों मल भक्षण करते हैं, (२) कथा सुनते समय कथा करने वाले से ऊंचे आसन पर बैठते हैं वह मरके अर्जुन का पेड़ होते हैं, (३) जो कथा में जाय के विना प्रणाम किये बैठ जाते हैं, वह मरके विष के वृक्ष होते हैं, (४) कथा में जाके जो सो जाते हैं, वह मृत्यु के पीछे अजगर होते हैं। (५) जो कोई कथा में जाय के वक्ता के बराबर अथवा एक आसन पर बैठते हैं वह गुरु तल्पगवाला पाप भोगते हैं, (६) जो कथा को सुनके फिर उसमें दोष निकालते और वक्ता की निन्दा करते हैं वह सौ जन्म तक स्वान (कुत्ता) का जन्म पाते हुये दुःख उठाते हैं, (७) जो कथा होते में वाद विवाद करते हैं वह गधे की योनि पाते हैं, (८) जो कथा में जाय के आपस में बात करने लग जाते हैं जिससे औरों को कथा सुनने में बाधा पड़ती है ऐसे लोगों को मरने के बाद चित्रगुप्त *नरकों में

*चित्रगुप्त की कथा "नैषद चरित्र" सर्ग १४ में आती है।

डालता है जहाँ कष्ट उठाते हुये पुनः वन में तिर्यक् योनिका शरीर पाते हैं, (९) जो कथा में जाके जान बूझ के कथा में विघ्न (बाधा) करते हैं वह रौरव नरक में जाते हैं वाद में कुत्ते का जन्म पाते हैं, (१०) जो भगवान् की कथा को तुच्छ जान के अपने को बुद्धिमान मानता है वह लोक निन्दित नरको में जाता है। अत्यन्त तीव्र भयानक कष्टों का मिलना पाप का फल है, पर ब्रह्म परमात्मा पापियों को असह्य यन्त्रणा रूप दण्ड देकर उनका उद्धार करता है, जैसे बिलकुल न रुचने वाली कडुवी दवा रोग मुक्त होने का एक मात्र उपाय समझ के ग्रहण की जाती है। खोटे सोने को खरा बनाने के लिये जलती हुई आग जैसे एक मात्र उपाय है, वैसे ही पापी पुरुष के उद्धार के लिये घोर नरक यंत्रणा भोगना ही एक मात्र उपाय है मुसलमान और ईसाइयों में भी हिन्दू धर्म के लिखे अनुसार नरक स्वर्ग माना जाता है। भारत में बहुत गन्दे स्थान को नरक स्थान कहते हैं, अधिक, पीड़ा भोगने को नरक भोगना कहा जाता है, अधर्म का काम करने वाले को नारकी जीव कहते हैं, उत्तम काम करने वालेकी लोग प्रशंसा करते हैं, हिन्दू धर्मशास्त्र में नरक से आये हुये प्राणी के यह चिन्ह बताये हैं।

अत्यन्त कोपः कटुका च वाणी दरिद्रता चस्स्वजनेषुवैरम्।
नीच प्रसङ्गो कुलहीन सेवा चिन्हानि देहे नरक स्थितानाम्॥

सो भाई उपरोक्त दोष बचाके जो कथा श्रवण करता है वही कथा श्रवण का पूर्ण फल पाता है। भगवान् की कथा सुननी और सुन के ध्यान में रखना पुनः उस शिक्षानुसार चलना तब कथा फलीभूत होती हैं कथा सुननी प्रथम भक्ति कहाती है, (२) कीर्तन (गायन) करना (३) स्मरण (भगवत् नाम का स्मरण) (४), पादसेवा (५) अर्चन (६) वन्दन (७) दास्य भाव जैसा हनुमान जी ने किया (८) सखाभाव (९) आत्म निवेदन, उपरोक्त नवों अङ्गों का विशद विवरण हिन्दूधर्म व्यवस्था पुस्तक में भलीप्रकार से लिखा गया है पाठक वहां अवश्य पढ़ें। श्री गुरुदेव जी ने कहा कि हे भाई इस प्रकार भगवद्भक्ति का अतुल महात्म्य कहा गया है भगवद्भक्ति में अतुल अकथ अलौकिक शक्ति है, सच्चिदानन्दघन भगवान् प्रेमके बशीभूत होकर ही नाना अवतारों द्वारा अमित विचित्र लीला करते हुये भक्तों के निमित्त छोटा बड़ा कोई भी कार्य करते नहीं सकुचाते। देखो प्रह्लाद के कारण नृसिंह बने, नाम देवकी-झोपड़ी छाई, शूकर, कच्छप, मच्छ आदि रूप धारे, द्रोपदी की साड़ी बढ़ाई, देवतों के लिये मोहनी रूप बनाया, नरसी की हुण्डी सकारी धन्ने की गऊ चराई, सैने वास्ते नाई बने, राजा बलि के पहरेदार बने, अर्जुन के सारथी हुये, भगवान का यह प्रण है जो कोई मेरे को जैसे भी स्मरण करै मैं उसको उसी प्रकार से दर्शन देता हूँ।

एवं श्रुत्वा भक्ति मार्गं प्रसन्नं समर्चितं चित्त मनन्य बुद्ध्या।
वदन्ति धन्या शुभ साधुवेषा कृत्वा प्रणामं गुरुपाद पद्मम्॥३२॥

अर्थ—इस प्रकार भक्ति भाव का प्रकरण सुनके सब के सब वारम्वार चरणों में प्रणाम करते हुये कहने लगे धन्य है उदासीन महात्मा जिनको भगवद्भक्ति और ज्ञान उपासना के गूढ़ रहस्यों का पूर्ण ज्ञान है, यह सुन दूसरा बोला एतो साक्षात् धर्म का अवतार ही हैं, तीसरा बोला हिन्दू जाति के आधार हैं, चौथा बोला हिन्दुओं के प्राण हैं, पांचवा बोला हमलोगों के तारनहार हैं, छठां बोला विद्या में उदासीन सम्प्रदाय अपनी समता आप ही रखता चला आ रहा है, इन में कथा की शैली व्याख्यान की शैली, पठन पाठन शैली, उपदेश शैली ग्रन्थ रचना शैली, सदैव ही अनुपम रहती चली आई है, यह बात संसार में प्रसिद्ध है, ऐसा मैं अपने पिता पितामह के मुख द्वारा सुनता आ रहा हूँ, सातवां बोला इन लोगों की नम्रता, परोपकार, देश सेवा, उदारता भी किसी से छिपी नहीं है, आठवां बोला उदासीनो के सदृश्य अन्न खिलानेवाला भी मैंने कोई नहीं देखा, इस प्रकार सब कहते हुये अपने २ गृह जाते भये ॥३२॥

एवं नाना विधैस्तत्र श्रीचन्द्र उपदेशनैः ।
जनतां रञ्जयित्वाथ प्रतस्थेऽसौ ततः शनैः ॥३३॥

अर्थ—इस प्रकार नाना विधि के उपदेश वहां श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् देके लोगों का चित्त प्रसन्न करते भये, कई लोगों ने श्री गुरु जी का चरणामृत पी गुरु मन्त्र ले सेवक बन लोक परलोक सुधाते भये ॥३३॥

रसचन्द्र रसेन्दौच वैक्रमे पौषकृष्ण के ।
सप्तम्यां काव्यवारे च ययौ योधपुरं विभुः ॥३४॥

अर्थ—पुष्कर राज से चल श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वि०सं० १६१६ पौष बदी ७ शुक्रवार को आके योधपुर पहुँचते भये ॥३४॥

तमागतं समाकर्ण्य मालदेवो नराधिपः ।
सप्रजः सवलः श्रीमान् सामात्यः सपुरोहितः ॥३५॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी का आगमन सुन के योधपुर के राजा श्री मालदेव जी अपने आमात्यों और प्रजा तथा पुरोहित के सहित आता भया ॥३५॥

ससमारोहमागत्य सच्चकार महामताः ।
कथां श्रोतुं मनश्चक्रे चन्द्रचन्द्रा ननात्पुनः ॥३६॥
ततोऽसौभगवांश्चन्द्रः नीतिगर्भा वृषान्विताः ।
अर्थे शास्त्र समायुक्तः मोक्ष मार्ग प्रदर्शिनीः ॥३७॥

अर्थ—इस प्रकार राजा अपने समारोह के साथ अ:य प्रणाम कर भेटा रख श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से कुछ कथा (उपदेश) श्रवण कराने की प्रार्थना करता भया ॥३६-३७॥

सर्वशास्त्र गतः सौम्याः कथाश्चक्रे हितावहाः ।
याः श्रुत्वा स प्रजोराजा परमां मुदमाययौ ॥३८॥

अर्थ—राजा का नीति पूर्वक नम्र सुभाव देख अर्थ शास्त्र से युक्त वचन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोलते भये जो मोक्ष मार्ग के दर्शाने वाले थे ॥३८॥

धर्मेण सर्वे सुखिनो भवन्ति धर्मेण सर्वे परलोक गाश्च ।
धर्मेण सर्वेच यशोभिगाश्च लोके प्रतिष्ठा अति कीर्तिमन्तः ।३६।

अर्थ—अपने २ धर्म रक्षा करने से सब सुखी रहा करते हैं, स्वधर्म ही मनुष्य को परलोक ले जाके स्वर्ग भोगादिका आनन्द प्रदाता बनाता है, धर्मी पुरुष ही संसार में यश के भागी बनते हैं, लोक में प्रतिष्ठाप्राप्त कर मृत्यु के पश्चात् लोग धर्मात्मा की कीर्ति गायन किया करते हैं ॥३६॥

धर्मातिरिक्तो नहि किञ्चि देव पदार्थ जातो भुवि सम्प्रसिद्धः ।
सौख्य प्रदोनित्य महोपदेश संसेवनीयो वहुवर्णनीयः ॥४०॥

अर्थ—हिन्दू धर्म को छोड़ दुनिया में कोई उत्तम पदार्थ नहीं है सुख का देने वाला धर्म ही सेव नीय है, सुःख दुःख दोनों कालं में अपना धर्म न छोड़ना चाहिये ॥४०॥

जह्यान्न धर्मं विपदः प्रभावे जह्यान्न धर्ममरण प्रसङ्गे ।
जह्यान्न धर्मं कुमति प्रकारे धर्मेण तुल्यो नहि कश्चिदत्र ॥४१॥

अर्थ—घोर विपत्ति भी आ पड़े तब भी अपने हिन्दू धर्म को न छोड़े मरण काल तक अपने स्वधर्म पर दृढ़ बना रहें, धर्म की रक्षा करता हुआ कभी कुमति को न ग्रहण करे संसार में स्वधर्म के तुल्य अन्य कोई भी वस्तु नहीं है ॥४१॥

धर्मेण सूर्यो भगवान्छशां को धर्मेण पृथ्वी परिरक्षतीति ।
धर्मेण वायुस्सकलाश्च सृष्टिं संचालयत्यत्र न कोऽपि वादः ॥४२॥

अर्थ—धर्म से ही सूर्य भगवान् तपते हैं, धर्म से ही चन्द्रमा प्रकाश करके शीतलता प्रदान करता है, धर्म से ही पृथ्वी रक्षा करती है, धर्म के ही प्रभाव से वायु सकल सृष्टि में प्रवाहित होती है, इसमें कोई विवाद नहीं है अर्थात् यह वार्ता सत्य है ॥४२॥

धर्मेण वेदाः परियान्ति लोकान् धर्मेण शुद्धं खलु भारतन्तु ।
धर्मेण वृष्टिः क्रियते चमेघैरेव प्रबन्धाः किल धर्म तश्च ॥४३॥

अर्थ—धर्म की मर्य्यादा का प्रति पालन लोक में वेद वाक्य करते हैं, स्वधर्म रक्षा से ही यह भारत वर्ष सर्व प्रदेशों से शुद्ध माना जाता है। धर्म से ही मेघ वृष्टिकर समस्त प्राणि के जीवन प्रदाता अन्नादिकों की उपज का साधन बनते हैं, इसी प्रकार सर्व प्रबन्ध भगवान् के धर्म के ऊपर ही निर्भर रहा करते हैं ॥४३॥

राज्ञः प्रजा पालनमेव धर्मः प्रधान वृत्तिर्जगदेक रम्या ।
न्यायेन कोशस्य शुरक्षणन्तु विद्याः प्रचारः शुभ राज धर्मः ॥४४॥

अर्थ—शाम दाम दण्ड भेद से शत्रु को अपने आधीन करना न्याय से प्रजा को पुत्र के समान पालन करना, स्वामी मन्त्री देश किला कोश सेना मित्र इन सातों का संग्रह और यत्न से रक्षा करने से राज्य की उन्नति होती है यह श्रेष्ठ राज धर्म है ॥४४॥

पञ्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणां मनुप्रवीरैः कथिताश्च शास्त्रे ।
तेपालनीयास्सकलाश्च राजकुल प्रसूतैरभि शिक्षितैश्च ॥४५॥

अर्थ—पाँच यज्ञ राजाओं वास्ते मनु आदि ऋषियों ने कहा है वह सब राजाओं को पालन करना चाहिये ॥४५॥

एवं प्रचारे गुरुणा कृतेच समस्त राज्यश्च ततर्प शीघ्रम् ।
राजा चसेवा भिरतौ नितान्त मानन्दयत्येव प्रजास्समग्राः ॥४६॥

अर्थ—इस प्रकार श्री गुरुदेव जी का कल्याण प्रद उपदेश सुन राजा समेत सब महाराज के चरणों में पड़ विनती कर बड़े प्रेम से अपने राज महल में लाय, रानी समेत चरण धोय चरणामृत पी गुरु मन्त्र ले सेवक बन बड़े प्रेम से कुछ दिन अपने पास टिकाय सेवा करता आनन्द मनाता भया ॥४६॥

नराश्च नार्य्यो नर धर्म धारा भक्तावभूवस्समवेत कामाः ।
स्थाने विविक्ते मठमेव योग्य निर्मापयामास जगद्गुरुश्च ॥४७॥

अर्थ—राज महल में महाराज का नित्य दोनों समय कल्याण कारी उपदेश हुआ करता था, जिसे श्रवण कर हिन्दू नर नारी धर्म परायण भगवद्भक्त बन लोक परलोक सुधारते भये अनेकों ने महराज से गुरु मन्त्र लिया ॥४७॥

सुबहूनि दिनान्येष तत्र तस्थौ सहाऽनुगः ।
अथगन्तुं मनश्चक्रे देशान्तर मनिन्दितः ॥४८॥

अर्थ—इस प्रकार जोधपुर में कुछ दिन निवास कर श्री ११०८ जगदगुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी उदासीन साधु मण्डलो सहित आनन्दित हृदय से आगे चलते भये ॥४८॥

रस चन्द्र रसेन्दौच वैक्रमे माघ शुक्लके ।
वसन्त पञ्चमी देवं वीकानेरपुरं गतः ॥४९॥

अर्थ—वि० सं० १६१६ माघ सुदी ५ (वसन्त पञ्चमी) को बीकानेर शहर में श्री गुरु देव जी आते भये ॥४९॥

श्रीचन्द्रं चन्द्र बदनं नयनानन्ददायकम् ।
तत्रत्योऽपि महाराजः सादरं गृहमानयत् ॥५०॥

अर्थ—चन्द्र वदन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो नेत्रों को आनन्द देने वाले थे, उनके पास बीकानेर का राजा कल्याण सिंह जो बड़ा प्रतापी था, वह गुरुदेव का आगमन सुन अपने दरबारियों समेत आय बहुत प्रकार विनतीकर अपने राजमहल में ले गया ॥५०॥

सादरं परिपूज्यामु मुपचारैश्च तैः समैः ।
भोजनं कारयामास पक्वान्नै दिव्य सम्मितैः ॥५१॥

अर्थ—चरण धोय षोड़श प्रकार से पूजन कर पक्वान्न भोजन कराय आप नीचे बैठ हाथ जोड़ विनय करता भया कि हे भगवन् राज धर्म हिन्दू रक्षा का उपदेश सुनायें ॥५१॥

भविष्यती त्येवन चाऽप्युपायः के पीति वाक्यं सफलंममैव ।
यन्नित्यदानं दयया ततश्च क्षमाचशीलं परमार्थ वृत्तिः ॥५२॥

अर्थ—श्री गुरु जी ने कहा कि आपस में एकता से हिन्दू रक्षण होगा दूसरा उपाय नहीं है नित्य दान दया क्षमा शान्ति सदाचार से सब की विजय होती है ॥५२॥

न चेन्द्रियाराधन तत्परत्वमति प्रसस्तं भुविमानितञ्च ।
शान्तिस्सदाचार विशिष्ट वृत्तिस्सत्येन सर्वञ्जयतीहलोके ॥५३॥

अर्थ—इन्द्रियों के वशीभूत होने से शान्ति नहीं मिलती, इन पर विजय पाने वाला सत्य प्रतिज्ञ इस लोक में विजयी माना जाता है, न्याय से प्रजा पालन करते हुए अपने हिन्दू धर्म की मान शान को सदैव सुरक्षित रखना, तभी राज्य चिरस्थायी रहेगा, यह उपदेश सुन राजा

कल्याण सिंह जी महाराज को वारम्बार प्रणाम कर गुरु मन्त्र ले सेवक बन बड़े प्रेम से सेवा करता भया महाराज जी कुछ दिन बीकानेर में रहे और उपदेश किया ॥५३॥

एवं प्रकारैरुपदेशिताश्च जनाः प्रसेदुस्सुखभाक् प्रसेव्याः ।
यत्रोपदेशो गुरुणा कृतश्च स्थानन्त्विदानीयपि सिद्धयति ॥५४॥

अर्थ—इस प्रकार अनेकोपदेश से सब जनता प्रसन्न हुई जिस स्थान में गुरुदेव जी ने उपदेश दिया था वह स्थान आज भी उदासीनाश्रम के नाम से बीकानेर राज्य में वर्तमान है ॥५४॥

सेवा चसाधोरधिकाच तत्र सञ्जायते नित्यमयश्च धर्मः ।
वासो भिरन्नैश्च जलैस्सदैव राज प्रबन्धाच्च गुरु प्रसादात् ॥५५॥

अर्थ—जहाँ पर साधु सेवा होती है श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की कृपा से राज्य से अन्न क्षेत्र की सहायता मिलती है ॥५५॥

दिने दीना जना ये ये यान्ति शान्ति भजन्ति ते ।
रात्रौ भूतगणाः सर्वे सेवन्तेऽनन्यमानसाः ॥५६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की दिन को भक्त लोग शान्ति पूर्वक सेवा करते थे रात्रि को समस्त भूतगण अनन्य मन से सेवा करते थे ॥५६॥

मृगेन्द्राश्च गजेन्द्राश्च गण्डकाः शरभाः वृकाः ।
शशकाः फेरवाः घूकाः काकाः निर्वैर मागताः ॥५७॥

अर्थ—सिंह, हाथी, गेड़ा, ऊँट, भेड़िया, खरगोश, गीदड़, उल्लू, कौवा अपना २ वैर त्याग कर गुरु महाराज जी के पास आते भये ॥५७॥

भुजङ्गा मूषका स्वैरं सार्धं खेलन्ति निर्भयाः ।
हरिणा हरिणा साकं वीत शङ्का वसन्ति ते ॥५८॥

अर्थ—सर्प, चूहा अपने २ वैर को त्याग कर निर्भयता से खेलते हैं और हरिण अपना २ वैर त्याग कर एक साथ बस रहे हैं ॥५८॥

करिणोऽपि करैः स्वैरं कर्षन्ति हरिकेशरान् ।
गोलाङ्गूला वानराश्च लाङ्गूलं लालयन्ति हि ॥५९॥

अर्थ—सिंह और हाथी आपस में प्रेम से रहते हैं। गोलांगूल (बन्दर) लंगूर आपस का वैर त्याग मिल मिल के विचर रहे हैं ॥५९॥

कोकिलाः काक संवासे रज्यन्ते विगताभयाः ।
नकुलानां कुलंतत्र विलेशय विलेशयम् ॥६०॥

अर्थ—कोकिल तथा काग भय को त्याग कर आपस में मिलकर रहते हैं, नेवला और साँप भी आपस का वैरत्याग विचर रहे हैं ॥६०॥

निश्शङ्कास्तत्र रङ्गन्ति भुजङ्गा भुजङ्गा इव ।
लोलवर्हा भ्रमन्त्यत्र मेघनादानुलासिनः ॥६१॥

अथ—सर्प और भुजंगा (एक विशेष पत्ती) निशंक भाव से विचर रहे हैं खेतों में अनेक तरह के पत्तो मोरादि कलोल कर रहे हैं ॥६१॥

समानयन्ति चन्द्राय पुष्पं कीशा जलं गजाः ।
अग्नि कुण्डाय काष्ठानि गजा एव समानयत् ॥६२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जी को बन्दर फूल फल तथा हाथी जल और अग्नि कुण्ड वास्ते लड़की ले आते हैं ॥६२॥

दिने दिने समायान्ति पत्र पुष्प फलादिभिः ।
उपायनैः सुसज्जास्ता सादरं वन देवताः ॥६३॥

अर्थ—आदर सहित वन के देवता नित्य प्रति पत्र पुष्प फल आदिक लाकर दिया करते थे जो श्री गुरुजी बड़े प्रेम से ग्रहण करते थे ॥६३॥

इत्थं समस्त भुवने भ्रमणं विधाय, कृत्वोपदेश सुधया जनता सुशान्तिम् ।
नीत्वा यशः सकल सागर पार देशं, दत्वाऽभयं परमयं तप आतनोति ॥

अर्थ—इस प्रकार समस्त भुवन में भ्रमण करते अमृत समान जनता को उपदेश देते थे, जिसके ऊपर चलने से लोगों को नीति पूर्वक यश की प्राप्ति होती थी, और वह भव सागर से पार हो जाते थे सर्व प्रकार के दुःखों की निवृत्ति हो जाती थी ॥६४॥

सर्वेषु धाम सु धुरन्धर पण्डितानां,
गर्वं विनाश्य यशसा श्रियमाप्य सौम्याम् ।
नाना विधान् खलु मठान् महनीय कीर्तिः,
संस्थाप्य दिव्य मधुना तपआतनोति ॥६५॥

अर्थ—सब स्थान के धुरन्धर पण्डितों का गर्व भी आपके उपदेश से शमन होता भया, आपने अनेक प्रकार से अपने मठों की स्थापना की जिससे महान् कीर्ति हुई, जिसमें वर्तमान समय में भी आये हुये जीवों का दुःख निवृत्त होता रहता है ॥६५॥

उद्धृत्य धर्म मखिलं श्रुति सार भूतं, स्मृत्या निबद्ध मनवद्यमुदार चेताः ।
नेता सनातन मतस्थ जनस्य भव्यः, शान्त्यै समग्र जगतस्तप आतनोति

अर्थ—अखिल वेदों का सार भूत हिन्दू सनातन धर्म को उठाया स्मृतिओं के कहे हुये नियमों का भी उदार चित्त से प्रचार किया, समस्त हिन्दू जनता के मन में यह भाव बैठ गया कि यह हिदू सनातन धर्म ही मुख्य धर्म है, आप उसके पूर्ण नेता हैं समग्र जगत के तप से दुखित पुरुषों का दुःख निवारण करने वाले हैं ॥६६॥

निर्वैरभूत निवहावृत पार्श्व भागः, शान्तेन्द्रियो भ्रुकुटि मध्य निविष्ट दृष्टिः।
पद्मासनः स्थिरतनुः परिवेश दीप्तः, श्रीचन्द्र देव उरु तत्तप आतनोति ॥

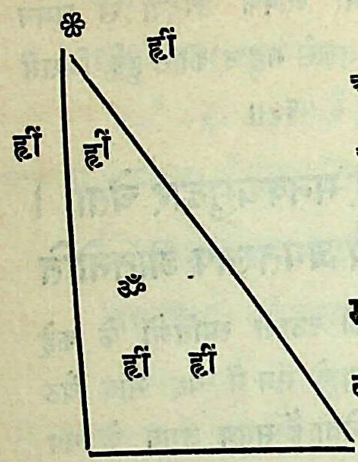
अर्थ—संसार में आपका कोई बैरी नहीं था, आप शान्तेन्द्रिय थे, भृकुटी के मध्य दृष्टि रखते हुये एकाग्र चित्त पद्मासन स्थिर प्रकाश पुञ्ज श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् हृदय के तीनों ताप को हरने वाले हैं ॥६७॥

इति श्री साधुवेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमद् उदासीनवर्य्ये परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डि-देव गुरु चरणकमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे चित्तौरगढ़, उदयपुर, पुष्करराज, भक्तिप्रसङ्ग, जोधपुर राजधर्मोपदेश बीकानेर सर्वत्र भ्रमणोपदेश वर्णनं सकल कलि कलमष नाशिनी पञ्चत्रिंशति किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥३५॥

॥ षष्ठ त्रिन्शतिकिरण प्रारम्भः ॥

टाली साहबतः श्रीमान् श्रीचन्द्रः साधु संयुतः ।
चचाल शनकैः पश्यन् शस्य श्यामल भूतलम् ॥१॥

वीकानेरा चलित्वा तु टाली साहब मागतः ।
तपश्चचार धर्मात्मा गुरुदेवो महा प्रभुः ॥२॥



अर्थ—महाप्रभु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी साधु मण्डली सहित बीकानेर से चल शनैः २ पञ्जाब देश आय एक टाली(१) (शीशम) के वृक्ष के नीचे बैठ तपस्या करने लगे जहाँ की धरती सदा खेती से हरी भरी थी ॥१॥२॥

मध्यान्हे सदुपदेषः पश्चात् पंक्ति भोजनम् ।
कथा कीर्तन सन्ध्यायां नित्यकृत्य समाचरेत् ॥३॥

अर्थ—दिन को आये भाग्यशाली स्त्री पुरुषों को हितकर उपदेश दिया करते थे, मध्यान्ह को खुला भण्डारा होता था, पङ्गत में छोटे बड़े अमीर गरीब हजारों मनुष्य (नर नारी) तृप्त होके रोज भोजन पाते थे, सायंकाल को कथा होती थी, भण्डार का कुछ काम अपने उदासीन साधु करते थे ॥३॥

जगाम नन्द रामश्च ज्वालादेवी महोत्सवः ।
दर्शितं गुरु श्रीचन्द्रं ययाचेपुत्र रत्नकम् ॥४॥

अर्थ—वि० सं० १६२२ चैत्र वदी ३० को एक नन्द राम खत्री जो लाहौर जिले का रहने वाला था वह ज्वाला जी के दर्शन को जाता हुआ मार्ग में गुरुदास पुर के पास महाराज श्रीचन्द्र भगवान् का निवास सुन के ढूँढता हुआ टाली के नीचे आके महराज का दर्शन कर पुत्र होने की याचना करता भया ॥४॥

प्रणम्य गुरुदेवन्तु कथया दुःख सत्वरम् ।
समूचे ज्ञान मार्गन्तु दत्वोपदेश सद्गुरुम् ॥५॥

❀इस यन्त्र को गोरोचन से अनार की कलम से सिद्ध नक्षत्र में सहदेवी के पत्ते में "ॐ जगद्गुरू श्रीचन्द्राय नमः दुष्ट सकल हन हन मुञ्च २ स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़ते हुये लिख के धूप दे पुनः जिस बच्चे को नजर लगी हो उसके गले में बांध दे सब प्रकार की नजर उतर जायगी विश्वास रखे श्री ११०८ जगद्गुरू श्रीचन्द्र भगवान् का रोट प्रसाद करे यथा शक्ति उदासीन साधू, हिन्दू गरीबों को भोजन करावे ।

(१) टाली साहब वाला स्थान आज तक पञ्जाब प्रान्त जिला गुरुदास पुर में उदासीन साधुओं के अधिकार में है ।

अर्थ—बड़े नम्र भाव से प्रणाम कर अपने हृदय की सब वेदना सुनाता भया कि मेरे पास धन तो परमात्मा ने बहुत दिया है पर सन्तान कोई नहीं है यही चिन्ता मुझ दम्पति को रात्रि दिन सताती रहती है। आप कृपा करके मेरा इस कष्ट से उद्धार करें साथ ही संसार बन्धन से छूटने का उपाय भी बताने की कृपा करें। श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले संसार के पदार्थ सब नाशवान हैं, इनको पाय के कभी अभिमान न करना चाहिये, जहाँ तक हो सके अपने गरीब हिन्दू भाईयों के रक्षा में खर्च करना सबसे उत्तम कार्य है। यदि मनुष्य सब दुःख से सदा के लिये पृथक होना चाहे तो परिणामी पदार्थों से उपराम रह किसी उत्तम ब्रह्म निष्ठ उदासीन साधु से उपदेश ले आत्मानन्द का रस लेता हुआ जीवन मुक्त हो विचरे। स्त्री, पुत्र, धन, राज्य यौवन सब बादल की छाया वत् हैं। इनसे सुख की आशा करना आकाश के पुष्प पाने की आशा समान मिथ्या है, इस लिये संसार शूल से मुक्त होने वास्ते अपने स्वरूप का सम्यग्ज्ञान प्राप्ति करना चाहिये। ज्ञान भेद रहित आत्म स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाला है जो आत्म ज्ञान सब से श्रेष्ठ माना गया है। स्त्री पुत्र कुटुम्ब राज्य विभव यौवन में आशक्त हो जीव कीचड़ में फँसे हुये बनहस्ती के सदृश्य संसार पङ्क में मग्न हो अत्यन्त कष्ट पाता है। यह त्रिगुण मई माया द्वारा कर्म रूप प्रवृत्ति मार्ग में पड़ा कामनी परायण जीव संसार रूपी अरण्य में निरन्तर भ्रमण करता हुआ सुख नहीं पाता। इस घोर भवाटवी में जीवन भर विषया शक्ति के कारण विषय वासना जटित चित्त मरने के समय भी उस चिन्ता को नहीं छोड़ता कारण जीवन में अभ्यास की हुई बलवती चिन्ता और कर्म संस्कार उदय हो प्रारब्ध रूप में स्थित हो जाते हैं। इसलिये विषई जीव विषयों की ही चिन्ता करते हुये मरने के बाद उसी चिन्तानुसार गति प्राप्त करते हैं। सूक्ष्म शरीर कारण शरीर और जीवात्मा मन में उदय हुये संकल्प के अनुसार ही निर्दिष्ट गति को प्राप्त होता है ॥५॥

यं यं वापिस्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तंतमे वैतिकौन्तेय सदातद्भाव भावितः ॥६॥ } गीता अ० ८

इदं शिक्षा गुरुं दत्वा ज्ञानोदय भाषकरः।
नन्दरामश्च सानन्दं गुरु मन्त्रञ्च गृह्यताम् ॥६॥

अर्थ—जब इस प्रकार का उपदेश महाराज ने दिया तब नन्द राम को ज्ञान प्राप्त हो संसार से उपरामता आगई। महाराज का चरणामृत पी गुरु मन्त्र ले सेवक बनता भया ॥६॥

गुरोराशि प्रभावेण तद्गृहे पुत्र सम्भवः।
स पुत्रः सुथराशाह नाम्ना लोकेच विश्रुतः ॥७॥

उदासीन् सम्प्रदायश्च प्रसिद्धः मोद वर्धनः ।
करामाती भवेद् सिद्धो श्रौत धर्म विवर्धकः ॥८॥

अर्थ—महाराज ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी पुत्र की इच्छा भी वृद्धा वस्था में सफल होगी, और वह पुत्र ज्ञानवान हो उदासीन भेष धारण कर संसार में अपने हिन्दू धर्म का श्लाघा योग्य प्रचार करेगा । यह आशीर्वाद पाय नन्दराम अपने घर आय भगवान् श्रीचन्द्र जी के बताये उपदेशानुसार आत्म विचार में मग्न हो साधु सेवा में अपना समय व्यतीत करने लगा । वि० सं० १६८३ माघ सुदी ७ को नन्दराम के घर पुत्र उत्पन्न हुआ, इसी ने आगे चल के सुथराशाह के नाम से प्रसिद्ध हो उदासीन साधु बन बड़ा करामाती सिद्ध अपने हिन्दू धर्म की रक्षा किया इसका प्रसङ्ग आगे लिखा जायगा इस प्रकार जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का भविष्य वचन सत्य हुआ ॥७॥८॥

अद्यापि रक्षा भवतीति वार्ता जानन्ति लोके सकला जनाश्च ।
एवन्नकोऽप्यस्ति जगत्तलेऽस्मिन् महोपदेष्टा धरणी तलस्थः ॥६॥

अर्थ—हंस मुनि उदासीनाचार्य कहते हैं कि इस समय में ऐसा प्रचार कार्य करने वाला दूसरा नहीं था ॥६॥

भक्ता भजन्ते गुरुदेव देवमनादिदेवं भगवन्त माद्यम् ।
यत्रापि यातिस्म गुरु प्रवीरः करोति शीघ्रं विजयं स्वकीयम् ॥१०॥

अर्थ—सब भक्त गण अनादि गुरु देव को भजते हैं जहां गुरु देव जी जाते थे वहां पर विजय होती थी ॥१०॥

भक्ता अनेकेच भवन्ति सद्यो लोके विरक्ताश्च सुसाधवोऽपि ।
योगि प्रवीरा वहवश्च शिष्याः परम्परा कार्य मुपाश्रिताश्च ॥११॥

अर्थ—जिनके उपदेश से इस लोक में शीघ्र ही अनेक भक्त हो गये हैं तथा अनेक विरक्त उदासीन साधु भी हो गये हैं ॥११॥

मठा अनेके किल भारते च विदेश देशे विमलास्तथैव ।
क्षेत्राण्यनेकानि च पाठशाला लोकोप कृत्यै शुभ धर्मशाला ॥१२॥

अर्थ—अनेक मठ भारत देश तथा विदेश में गुरु देव जी ने बनवा दिये अनेक अन्न क्षेत्र, पाठशाला, धर्मशाला बनवा दीं ॥१२॥

न मन्दिराणां गणनान्त्विदानीं क्रियन्ति सन्तीति जना वदन्ति ।
लोका वतारस्य जगद्गुरोश्च कृपावशाद्धर्म तरङ्ग धारा ॥१३॥

अर्थ—अनेक देव मन्दिर श्री गुरुदेव के उपदेश के प्रताप से बन गये जिसमें हिन्दू धर्म धारा अनेक तरह से प्रवाहित हो उठी ॥१३॥

अनेक रूपा जगति प्रसिद्धा वहन्ति सर्वे सुखिनो मनुष्याः ।
त्रेता युगे सत्ययुगे विशाले श्री द्वापरे यश्च सुखं च धर्मः ॥१४॥

अर्थ—अनेक प्रकार से मनुष्य अनेक लाभ तथा सुख पाने लगे त्रेता, सतयुग, द्वापर में जो धर्म सुख था वही गुरु देव जी के काल में मनुष्यों ने पाया ॥१४॥

ततोधिकं श्री गुरुदेव काले गदन्ति सर्वे वचनम्विविक्तम् ।
अभूतपूर्वं चरितं जनेषु नूत्नं तथा नूत्नतरं प्रसिद्धम् ॥१५॥

अर्थ—श्रीगुरु देव जी का मन्त्र सब को शीघ्र फल देने वाला है संसार में सुख देता हुआ परलोक में भी सुख देता है यह जगत प्रसिद्ध वार्ता है ॥१५॥

ससम्प्रदायो गुरु देव मन्त्रो लोकोपकृत्यै नियमो गुरोश्च ।
शीघ्रं फलं तच्चददाति नूत्नं धन्यो गुरुर्देव गुरुर्महात्मा ॥१६॥

अर्थ—जो भी श्री ११०८ जद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की शरण में आते हैं उनकी सब मनोकामना लौकिक पार लौकिक शीघ्र फलीभूत होती हैं ऐसा श्री गुरु देव जी का प्रत्यक्ष महात्म्य है, धन्य हैं महात्मा श्री गुरु देव जी ॥१६॥

यल्लौकिकंयच्च सुखं परस्मिन् लोकेऽनुगं मोक्ष पदं प्रतिष्ठम् ।
सर्वश्च प्रत्यक्षतमं प्रयाति न कोऽपिस्रष्टौ नरकानुगामी ॥१७॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी की शरण में आने वाला प्राणी लौकिक पारलौकिक सुख पाता है, वह नरक गामी कदापि नहीं होता ॥१७॥

वाय्वादि तत्वानि विलक्षणानिफलोन्मुखान्येव सदाऽनतानि ।
ऋतुव्यवस्था विमला समास्तेही च्छन्ति यद्यत्फलदायिका सा ।१८।

अर्थ—वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सब कोई गुरुदेव के सामने हाथ जोड़ खड़े रहते हैं ऋतुयें फल फूल सदा तैयार रखती हैं ॥१८॥

कालेच यस्मिन् किल यस्य यादृशी जायते नव्यतरेच्छिकाच ।
तदानुकूल्यं फलमाश्रयन्ति भजन्ति तं देव गुरुं महान्तम् ।।१६।।

अर्थ—जिसकी जैसी इच्छा हुई वह फल उसको तत्काल देते हैं ऐसी उनकी परम कृपा है इसलिये ऐसे महान् गुरु देव का सदैव भजन करना और कराना चाहिये ।।१६।।

यस्यैव लोके विमलं चरित्रमभूत पूर्वं मनुजा भणन्ति ।
यस्यावतारात् यवनार्दिताश्च हिन्दू प्रवीरानव शक्ति भाजः ।।२०।।

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का अद्भुत विमल चरित्र है अपार लीला है जिनके अवतार से मुसलमानी अत्याचार दब कर हिन्दुओं में नवीन जाग्रति आगई ।।२०।।

इतस्ततो धावन तत्पराश्च श्रीचन्द्र देवस्य यशः प्रगाते ।
लोकावतारो वहवो वभूवुः परन्तु केचित्नहि तत्समाश्च ।।२१।।

अर्थ—जिनके अवतार से पंड़ित हिन्दू नव जीवन नव शक्ति पाकर गुरुदेव श्रीचन्द्र जी का यश गावे थे इधर उधर घूमने वाले भी श्री गुरु देव का सुयश वर्णन करते थे ।।२१।।

ग्रन्था अनेके प्रचलन्ति लोके मुखारविन्दाद्धि विनिश्रिताश्च ।
शिष्या अनेके ह्यतिपण्डिताश्च देशे विदेशे वहवो भ्रमन्ति ।।२२।।

अर्थ—लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा की, श्रीगुरुदेव के बनाये हुये अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं जिनके अनेक विद्वान् शिष्य देश विदेश में भ्रमण कर रहे हैं ।।२२।।

हिन्दू जनानां परिरक्षणार्थे सनातनानांमति पोषणार्थम् ।
यथेन्द्र लोके सुरराज राज प्रताप पुञ्जात्सकलाश्च तृप्ताः ।।२३।।

अर्थ—अनेक शिष्य (चेला) उदासीन साधु श्रीगुरु देव के देश विदेश में भ्रमण करते हैं, जिनका हिन्दू सनातन धर्म की रक्षा करने का लक्ष्य है, जैसे इन्द्रलोक में इन्द्र के यश प्राताप से सब देव तृप्त हैं उसी तरह श्री गुरु देव जी के चरण पराग जहाँ २ पड़ते थे ।।२३।।

संशेरतेन्नैव भयन्न शोको मोहः कदा चिन्नगरन्नयाति ।
तथा कलौ श्री गुरु देव देव प्रतापतोऽयं च युगो नवीनः ।।२४।।

अर्थ—वहाँ २ शोक, मोह, भय द्रारिद्रादि नहीं रहता था कलियुग के बीच में श्रीगुरु श्रीचन्द्र जी के प्रताप से इस सम्प्रदाय में जो २ जिसकी इच्छा हुई वह शीघ्र पाता है ।।२४।।

श्री सम्प्रदाये च गुरोः कदाचिदिच्छा च कस्यापि यदा भवेच्च।
सद्देवदेवेन समो मनुष्यों नाना सुखं स लभते च भक्तः ॥२५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के प्रताप से इस उदासीन सम्प्रदाय में आने की भूल से भी इच्छा करने वाले की समस्त दुर्वृत्ति शमन हो जाती हैं तथा जो इसमें प्रत्यक्ष आजाता है वह मनुष्यों में देवता बन ऋद्धि सिद्धि का भण्डार हो औरों को अपने सतोपदेश से मनइच्छित फल देने वाला हो जाता है ॥२५॥

एतस्य नित्यं परमार्थ वृत्तं येवैकरिस्यन्ति महाप्रचारम् ।
सुखेन युक्ताश्चनरा भवेयुः गुरोर्महत्वं जगति प्रसिद्धम् ॥२६॥

अर्थ—इस प्रकार नित्य परमार्थ के करने वाले श्री गुरु देव जी के उपदेश को जो खूब प्रचार करेगा वह सुखी हो संसार में प्रसिद्धि पावेगा ॥२६॥

इति श्री साधुवेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहन्सावतंस ब्रह्म निष्ठ निखिल शास्त्र विष्णात् योगी राज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्रांकिते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे पाञ्चल देशे आगमन टाली प्रसङ्ग, श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महात्म्य वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी षटत्रिंशति किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥३६॥

॥ सप्त त्रिन्शति किरण प्रारम्भः ॥

पाञ्चालेषु कथा कुर्वन् भ्रामं भ्रामं पुरात्पुरम् ।
सिन्धुं कच्छं गुर्जरञ्च दृष्ट्वाऽर्वुदमुपाययौ ॥१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने साथ कुछ उदासीन साधुओं को लेके टाली वाले अपने स्थान से पुनः चल पंजाब, सिन्ध, कच्छ, गुजरात होते हुये सर्वत्र अपने हिन्दू धर्म का प्रचार करते सबकी सार सम्भार लेते आबू पहाड़ में आते भये ॥१॥

आसनं कल्पयामास विजने विपिने घने ।
साधवो परितस्तस्थुः स्वं स्वमासनमास्थिताः ॥२॥

अर्थ—एक निर्जन बन में आसन पर विराजमान थे साथ के सब साधु आप के चौतर्फ यथा योग्य आसन लगाकर बैठे थे ॥२॥

सायं प्रातः प्रतिदिनं कथास्तत्राऽभवञ्छुभाः ।
द्रष्टुं श्रोतुञ्च यातिस्म जनता चाधिकाधिका ॥३॥

अर्थ—नित्य प्रति सायंकाल तथा प्रातः काल आपकी कथा होती थी, जिसके सुनने की इच्छा रख के अधिक से अधिक जनता आया करती थी ॥३॥

वसु बाहु रसेन्दौ च वैक्रमे फाल्गुने सिते ।
पूर्णिमायाञ्च सन्ध्यायामद्भुता घटनाऽभवत् ॥४॥

अर्थ—वि० सं० १६२८ फाल्गुन सुदी १५ होली के दिन सायंकाल को जब श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी कथामृत सुनारहे थे उसी समय एक विचित्र घटना घटती भई ॥४॥

श्रीचन्द्रे तत्र लोकानामुपदेश प्रदायिनि ।
महा सभा मध्य गते मायी मायां मुमोच ताम् ॥५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी महती सभा के बीच में लोगों को उपदेश दे रहे थे उसी समय एक मायावी (चेटकी) साधु की माया को नाश करते भये ॥५॥

मायया च तया सर्वे विचेष्टा गत चेतनाः ।
भूमौ निपतिता दीना चन्द्रस्तिष्ठति केवलः ॥६॥

अर्थ—उस मायावी साधु ने जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के ऊपर विजय पाने के निमित्त अपने मन्त्र बल से पिशाची सेना भेजी जिसने आय के महाराज के पास बैठे सब लोगों को बे-चैन कर दिया, केवल श्री गुरु जी सावधान बैठे रहे और सब बेचैन हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥६॥

कश्चिच्छिरो वेदन याऽति दुःखी कश्चिच्च विक्षिप्त तमस्समास्ते ।
एवं कुचेष्टामधि गम्ययोगी दध्मौ च शङ्खं गुरुमन्त्र सिद्धम् ॥७॥

अर्थ—उस चेटकी साधु की कुचेष्टा से कोई शिर की पीड़ा से पीड़ित, कोई पेट दर्द का मारा, कोई देह से विहाल, कोई रोने लगा, कोई गाने लगा, कोई पागल भया घूम रहा था, लोगों की यह दशा देख श्री गुरु देव जी ने जोर से अपना शङ्ख बजाया ॥७॥

इदमालोक्य सहसा शङ्खं दध्मौ महा रवम् ।
विनष्टा सकलामाया समुत्तस्थु र्जनाः समे ॥८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का शङ्ख जोर से बजते ही पिशाची

माया सब एकदम नष्ट हो गई और चेटकी साधु का समस्त मन्त्र बल लोप हो गया यह देख पास के बैठे सब लोग सुखी हो गये मनमें बड़ा आश्चर्य मानते भये ॥८॥

नामं नामं पदे तस्य स्तावं स्तावं गुणैरिमम् ।
कृत कृत्यं जनाः सर्वे मेनिरे सुख संयुताः ॥९॥

अर्थ—आय २ सब लोग श्री गुरु जी का गुण गायन करते हुये नमस्कार कर जय जय कार बुलाते बड़े प्रसन्न भये ॥९॥

प्रादुर्वभूव तत्रैव समायी घोर दर्शनः ।
श्रीचन्द्रस्य पदे नत्वा ययाचे च क्षमांमुहुः ॥१०॥

अर्थ—पिशाच वृत्ति वाला चेटकी साधु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के शरणागत हो अनेक विनती कर अपने अपराध को क्षमा मांगी और आगे से फिर किसी को न सताने का प्रण किया ॥१०॥

नाहमग्रे करिष्यामि कर्मेदं भृशदारुणम् ।
शपे सत्येन शान्ता मे मायिकत्वाभि मानिता ॥११॥
इत्युक्त्वा च पुनर्नत्वा नष्टा क्वापि स मायिकः ।
मुमुदे जनता सर्वा श्येन मुक्तेव पक्षिणी ॥१२॥
प्रभावं तस्य तं दृष्ट्वा जनः सर्वो विसिस्मिये ।
मेने च मनस्य नूनं कोऽप्येष गुरु शक्तिमान् ॥१३॥
दीक्षां नीत्वा जनाः सर्वे पीत्वा पादोदकं शुचि ।
तुष्टुवुश्चन्द्र देवं ते नाम रूप गुणो दयैः ॥१४॥
वहोः कालाद्वयं देव मायिनानेन पीडिताः ।
अद्यते करुणा दृष्ट्या सञ्जाताः सुखिनो भृशम् ॥१५॥
एवं प्रतिदिनं तत्र जनतां जनतापहा ।
उपदेशामृतैः सिञ्चन् तस्थौ शान्तजितेन्द्रियः ॥१६॥

अर्थ—इस प्रकार चेटकी साधु स्तुति कर बारम्बार शीश नवाय चला जाता भया यह देख सब के सब नर नारी आय २ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चरणों में पड़

साष्टाङ्ग प्रणाम कर चरणामृत पी गुरु मन्त्र ले लोक परलोक सुधारते बोले हे भगवन् इस चेटकी साधु ने हम लोगों को बहुत दिन से कष्ट दे रक्खा था। यद्यपि हम लोगों ने अनेक प्रकार से इसकी पूजा और भेटा भी की किन्तु यह न माना, आज आप के भय से भागा है। आप की अपार कृपा से हमारे लोगों का यह कष्ट निवृत्त हुआ आप धन्य हैं जय होय जय होय आपकी जय होय ॥११ से १६ तक॥

नोट—आबू में अर्बुददेवी तथा देलवाड़े का जैन मन्दिर जो वि० सं० १२००—१३०० के मध्य का बना हुआ है जिसकी शिल्प कला देखने ही योग्य है उसे देखते आरासुरो अम्बिका होते मारवाड़ के हिन्दुओं में अपने हिन्दू धर्म पर दृढ़ रहने का प्रचार करते॥

अङ्क बाहुरसेन्दौ च वैक्रमे ज्येष्ठ शुक्लके।
एकादश्यां शुक्रवारे चित्तौरं नगरं गतः ॥१७॥

अर्थ—वि० सं० १५२६ ज्येष्ठ शुक्ल ११ निर्जला एकादशी शुक्रवार के दिन चित्तौर गढ़ आते भये ॥१७॥

तत्रासीद्राज शार्दूलः म्लेच्छ वंश दवानलः।
स्वातन्त्र्य देवताऽनन्य भक्तः क्षत्र गणाग्रणी ॥१८॥

अर्थ—वहाँ का राजा प्रताप सिंह जो नरों में सिंह के समान दुश्मनों को जलाने में अग्निवत् स्वतन्त्र देवता का पुजारी अनन्य भक्त क्षत्रियों में अग्रगामी था ॥१८॥

रामवंशावतंसश्च रामवत्सत्य सङ्गरः।
नीतिज्ञश्च विनीतश्च धार्मिकः कर्मठोऽचलः ॥१९॥

अर्थ—भगवान् रामचन्द्र जी के वंश में उत्पन्न हुआ राम के ही समान संग्राम में वीर था, बड़ा नीतिज्ञ, विनीत भाव वाला अपने हिन्दू धर्म कर्म पर अचल रहनेवाला था ॥१९॥

यः पालयति वात्सल्यात् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
सदाचार परो नित्यं सतां सेवी द्विषां यमः ॥२०॥

अर्थ—प्रजा को पुत्रवत् पालने वाला सदाचार और परोपकाररत वृद्ध संयमी पुरुषों का सदैव संङ्ग करने वाला था ॥२०॥

प्रतापः शत्रु तापोऽसौ भामगुप्तेन मन्त्रिमान्।
संश्रुत्य चन्द्रदेवस्य समागमन मद्भुतम् ॥२१॥

नगराद्बहिरागत्य सच्चक्रे सहमन्त्रिभिः ।
अर्हणाभिः समग्राभिः सम्भावय दच्युतम् ॥२२॥
सोऽपि तस्मै धर्म मुख्यैः नीति गर्भै र्मनोहरैः
उपदेशैः समुत्साहं ददौ धीराय धीधनः ॥२३॥

अर्थ—राणा प्रतापसिंह के भय से शत्रु तापित रहते थे जिसका मन्त्री भामा शाह था, वह श्री गुरुजी के चरणों में नगर से बाहर अपने मन्त्रियों के सहित आकर प्रणाम कर दुश्मनों से रक्षा पाने वास्ते तथा अपने देश को स्वतंत्र बनाने के लिये प्रार्थना करता भया, तब श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने कहा तुम धैर्य धारण करो पुरुषार्थी पुरुष ही विजय पाता है ॥२१-२२-२३॥

राजन्निदानीं धर धैर्य धारां त्वद्रक्षकोहं शिवरूपधारी ।
समान्तराय प्रशमं करिष्ये हिन्दु प्रजा राज्य तमं प्रभावि ॥२४॥

अर्थ—हे राणा तुम इस समय धैर्य से काम लो तुम्हारे रक्षक सदा शिवजी महाराज हैं, यह सब सामन्त (वीर सरदार) आपके सहायक बन हिन्दू प्रजा तथा हिन्दू राज्य के बढ़ाने में तत्परता से सहयोग देंगे ॥२४॥

शरीर मेतच्च विचार केन्द्रं संशास्ति मस्तिष्क मतिप्रगाढ़म् ।
गुप्तातिगुप्तं चरितं च राज नीताव्पादे पतयं प्रसिद्धम् ॥२५॥

अर्थ—यह शरीर विचार का केन्द्र है इसलिये मनुष्य को चाहिये कि अपनी विशाल बुद्धि से काम ले कारण कि राजनीति में बहुत गुप्त रहस्य भेद भरे पड़े हैं ॥२५॥

सद्राज विद्या किलराजनीति स्सद्धर्म विद्या खलु धर्म नीतिः ।
द्वयोश्च सम्मेलन मेव यत्र स एव धन्यश्शुभ राज वर्गः ॥२६॥

अर्थ—राजनीति धर्मनीति दोनों का सम्मेलन जहाँ पर है यह विचार पुरुषार्थ करने में लगो ॥२६॥

आशीः प्रदानं प्रकरोमि तुभ्यं येनैव शीघ्रं विजयीत्वमेव ।
स्वल्पाश्च सेना किल राजराजो हस्ते गृहीत्वा वचनं गुरोश्च ।२७।

अर्थ—हे राजन् हम तुमको आशीर्वाद देते हैं जिससे तुम शीघ्र विजयी होगे तुम अपने मन से यह भय निकाल दो कि हमारे पास थोड़ी सेना है बादशाह अकबर के पास बहुत है ॥२७॥

सन्धावयामास जयार्थ मेव सर्वे तदानीं यवनाः परास्ताः ।
श्रीराज सिंहासनमारुरोह गुरोस्तुतिं कर्तुमति प्रयेते ॥२८॥

अर्थ—गुरुदेव श्रीचन्द्र जी के अमृत भरे वचन राजा के हृदय में ऐसे प्रवेश कर गये जैसे वर्षा का जल पृथ्वी में प्रवेश कर अंकुर पैदा करता है। महाराज की बहुत विनती कर अपने राजमहल में हाथी पर सवार करा कर तथा साथ के उदासीन साधुओं को भी दूसरी सवारियों पर चढ़ाकर बाजे गाजे सहित राजमहल में लाय सिंहासन पर बैठाया। रानी और पुत्र अमरसिंह सहित चरण धोय चरणामृत पी विविध प्रकार से पूजन कर गुरु मन्त्र लै सेवक बन गया भोजन कराय भेट रक्ख स्तुति की ॥२८॥

साधूनां दर्शनं तीर्थं तीर्थ भूताश्च साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधु समागमः ॥२६॥
गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्प तरुर्हरिः ।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यो हरति साधुवः ॥३०॥

अर्थ—साधु का दर्शन तीर्थ के दर्शन बराबर है, कारण साधु तीर्थ रूप होते हैं तीर्थ देरी में फल देता है साधु दर्शन धर्मामृतोपदेश से शीघ्र फल देता है। गङ्गा पाप काटती है चन्द्रमा ताप मिटाता है कल्पवृक्ष दीनता हरता है परन्तु साधु समागम शीघ्र ही तीनों प्रकार के फल को देता है ॥२६॥३०॥

राणाप्रतापो गुरु देवदेव प्रसादतः श्री विजयी बभूवः ।
प्रत्यक्ष भूतो महिमा गुरोश्च सत्यश्च सत्यस्य तथाति सत्यः ॥३१॥

अर्थ—राणाप्रताप को श्री देवाधिदेव श्री गुरुदेव के आशीर्वाद से ही विजय प्राप्त हुई यह प्रत्यक्ष महिमा गुरुदेव की सत्याति सत्य है ॥३१॥

नोट—राणा प्रताप ने श्री ११०८ जगद् गुरु श्रीचन्द्र जी के आशीर्वाद का बल पाय अपनी थोड़ी सी सेना लेकर अकबर बादशाह का सामना करने का विचार कर लिया, यह वही अकबर बादशाह है जिससे शेर शाह ऐसे बली परास्त हो गये थे, अकबर के समक्ष कई राजपूत राजे हार मान उसकी पराधीनता स्वीकार कर बैठे थे, वही अकबर बादशाह राणा प्रताप को जल्दी जल्दी न परास्त कर पाया। वि० सं० १६३२ श्रावण सुदी ६ को अकबर के पुत्र सलीम (जहांगीर) के सेना समेत चढ़ आने से हलदी घाटी पर घोर संग्राम हुआ। राणा प्रताप ने अपने रण पांडित्य से सूर्य वंश हिन्दू क्षत्रियपने की आनशान को हाथ से न जाने दिया, मेवाड़

का अधिक भाग अपने आधीन कर वि० सं० १६५३ माघ सुदी ११ को असार संसार से पधार गये किन्तु अपनी अमर कीर्ति सदैव के लिये जीवित छोड़ गये ।

भामा शाह नरः श्रेष्ठ शिष्यो श्रीचन्द्रपावनम् ।
सर्वं सम्पत्ति राज्ञाश्च धर्म रक्षार्थ देहिताम् ॥३२॥

अर्थ—नरों में श्रेष्ठ भामाशाह जो परम पावन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का सेवक था उसने अपना समस्तधन राणाप्रताप सिंह जी को स्वदेश तथा धर्म रक्षार्थ युद्ध के समय में दे दिया ॥३२॥

अद्भुतं चरितं त्वेतद्यः पठेच्छ्रुणुयादपि ।
श्रीचन्द्र देवस्य तप सा ऐकामुष्यकं फलम् ॥३३॥

अर्थ—यह अद्भुत चरित जो पढ़ेगा सुनेगा वह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र गुरुदेव की महिमा से इस लोक तथा परलोक दोनों का भागी बनेगा ॥३३॥

हिन्दूनां विपदि प्रकृष्टमतिना श्रीचन्द्र देवेन सा,
धन्या धर्ममयी कृतिः कृतिमुदेलोके समुद्भासिता ।
यातः कीर्ति मिमां यया त्रिभुवने ज्योत्स्ना भया कान्तया,
तस्येमां चरितावलीं पठत हे स्वर्गैषिणो मानवाः ॥३४॥

अर्थ—हिन्दुओं को विपद से बचानेवाले उत्तम बुद्धि श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् धर्ममूर्ति धन्य जन अपने सत् कर्म के करने में उत्साहित लोक को आनन्दित करने वाले त्रिभुवन में कीर्ति का प्रकाश चन्द्रमा के सदृश्य प्रखरित करने वाले थे उनका चरित्र पढ़ने वाला मनुष्य स्वर्ग वासी होता है ॥३४॥

येनानिन्द्यमिदं स्वधर्म गतिना धर्मस्य संरक्षणं,
कृत्वा ख्यापितमद्भुतं क्षिति तले पुण्यं यशो नूतनम् ।
गायं गायमिदं चरित्रममृतं तुष्टा न देवा अपि,
भाव्याः स्वात्म हिताय दत्तमनसः शृण्वन्तु तत्सादरम् ॥३५॥

अर्थ—हिन्दू धर्म रक्षा करने में अनिन्द्य, अपना नवीन पुण्य यश पृथ्वी मण्डल में स्थापित करने वाले ऐसे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का चरितामृत के गायन करने वाले तथा सुनने वाले मनुष्यों की आत्मा का हित होता है ॥३५॥

वेदान्तं निखिलंनिपीय घनवन्मुक्तं जगत्पुष्टये,
सांख्यं ख्यापित मुच्चकैः कपिलवत्कल्याणमा कांक्षता ।
योगो योग्य जनाय येन सकलैरङ्गैरुपस्थापितः
श्रीचन्द्रो भगवान् पुनातु स जगद् व्याप्यस्थितो व्योमवत् ॥३६॥

अर्थ—अखिल वेदान्त के तत्व वेत्ता जगत को पुष्ट करने वाले मेघों की वर्षावत् सांख्य स्थापित कपिलमुनि उदासीन वत, कल्याण की इच्छा रखनेवाले योग के सम्पूर्ण अंगों को जानते हुये सर्वाङ्ग पूर्ण औरों में भी धर्म स्थापित करने वाले ऐसे उदारात्मा श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् सकल जगत में आकाशवत् स्थित कृपा करें ॥३६॥

रेरेभोगविलास लोल मनसः शून्येरताः मानवाः ।
कल्याणं यदि शीघ्रमेव भवतां चित्तं परं कांक्षति ।
तन्मे वाक्यमिदं चणं श्रुति पुटै रापीयतां स्वस्ति वः,
श्रीचन्द्रस्य निशम्यतां सुमधुरा चित्रा चरित्रावली ॥३७॥

अर्थ—अरे भोग विलासों में लालायित मन, असत्य पदार्थ में लगने वाला अज्ञानी यदि तू शीघ्र ही अपना कल्याण चाहता है तो श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज का उपदेशामृत मधुर चरित्र वाली लीला का अपने कानों द्वारा पीता हुआ कल्याण कर ॥३७॥

॥ सर्वोच्च प्रचार कार्य ॥

यद्यप्ययं धर्म सुमूर्ति धारी समस्त देशेभ्रमणश्चकार ।
तथापि पाञ्चाल सुसिन्ध देशं काश्मीर देशञ्च तथान्यदेशम् ॥३८॥

अर्थ—यद्यपि गुरुदेव जी ने समस्त देशों में भ्रमण कर अपूर्व प्रचार किया परन्तु पाञ्चाल सिन्ध काश्मीर आदि देशों में जहां पर यमन अत्याचार का जोर चढ़ा बढ़ा हुआ था वहां पर खास कर आपने अपने उपदेश द्वारा हिन्दुओं की रक्षा की ॥३८॥

पवित्रयामास वहूपदेशैरनेककष्टं समुपाश्रितोऽपि ।
नग्नाऽसिधारा जनदाहिकाच विशेषतो हिन्दु जन प्रणाशा ॥३९॥

अर्थ—जिस समय हिन्दुओं को नाश करने वाली नंगी तलवार की धार दुष्टों की चल रही थी ऐसे विकट समय में श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जी का अवतार हुआ ॥३९॥

तस्यां प्रवेशोन कदाचि देव कस्यापि तस्मात् गुरुदेव जन्म ।
जातं जगत्यां जन रक्षणाय जागर्ति यद्दिव्यतरं यशश्च ॥४०॥

अर्थ—उसको रोकने का साहस किसी को नथा तब ऐसे विकट समय में श्री गुरुदेव जीने अवतार लिया ॥४०॥

एते विशाला नियमा गुरोश्च लोग प्रचाराय च वर्णयामि ।
यत्र प्रयाणश्च गुरोर्यदैव प्रचारणीया नियमा भवन्ति ॥४१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य का इतना विशाल भ्रमण केवल लोकोपाकारार्थ का लक्षरख प्रचार करने निमित्त ही हुआ जो हमने आप लोगों के समक्ष वर्णन करके सुनाया महाराज का प्रचार नियम वद्ध हुआ करता था ॥४१॥

विशिष्ट वृत्तः परमेश्वरोऽपि सन् व्यापको भक्षक रक्षकश्च ।
आयश्च धर्मस्य सदा विधेयो ह्युपार्जितेऽपि दशमांश दानम् ॥
हिन्दु प्रजाभ्य इति धर्म तत्व मातिथ्य धर्मो नितरां प्रपाल्यः ।
सत्सङ्ग मार्गे गमनं सदैव पित्रोर्गुरुणामति सेवनन्तु ॥४३॥
प्राण प्रयाणेन च हिन्दुधर्मं रक्षा विधेया शतधानृभिश्च ।
अनाथ हिन्दोरनिशश्च रक्षा वाचा शरीरेण धनेन चापि ॥४४॥
सत्रश्च हिन्दौ परिदेयमस्ति विद्या प्रदानं विततन्तथैव ।
लब्धान्न भागं सुविभज्य हिन्दु प्राण प्रपुष्यर्थ मितिक्रमोऽयम् ।
एते विशिष्टा नियमाश्च हिन्दौ संस्थापनीया अति धर्म शीलैः ।
तदाऽति शुद्धं परमार्थ वृत्तं सद् भारतं भारतवर्ष मेतत् ।४६।
धर्मेणरक्षयास्सकला जनाश्च जनैः प्ररक्ष्यो भगवान्हि धर्मः ।
परस्पराणाश्च परस्पराशाऽन्योऽन्या श्रमोऽयं व्यवहार काण्डः ॥४७॥

अर्थ—पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जहां २ गये सबको आखिर में निम्नलिखित दश बातों का उपदेश देते रहे जो सबको लाभ प्रद हुआ (१) परमात्मा को सब स्थल में विद्यमान हाजिर नाजिर समझो (२) धर्म की कमाई करो (३) कमाई का दशमांश सत्पात्र हिन्दुओं में दान दिया करो (४) साधु अतिथि की सेवा करना

(५) सत्सङ्ग कथा व्याख्यान करना और कराना, (६) माता पिता गुरु बड़े का सब प्रकार से आदर सेवा करना, (७) प्राण चले जांय पर अपना हिन्दू धर्म न जाने पावे, (८) अपने हिन्दू गरीब भाइयों को पालना करनो, (९) अपने हिन्दू भाइयां में अन्न दान विद्या दान यथा शक्ति करना, (१०) हिन्दूओं में बांट के खाना गैर हिन्दू के आगे शिर न झुकाना। "धर्मो रक्षति रक्षतः" आप धर्म को जब रक्षा करता है तब धर्म उसकी रक्षा करता है अर्थात् धर्म बढ़ता है ॥४२-४३-४४-४५-४६-४७॥

चारित्र्यमेतत्परमाद्भुतश्च गुरोर्गुरुस्सर्वमिदम्बुबोध ।
श्रीचन्द्र देवो भगवान् प्रभुश्च नरावतारी शिव तत्व धारी ।४८।

अर्थ—यह गुरुदेव का अद्भुत परम पावन चरित्र सब लोगों ने जान लिया श्री गुरु श्रीचन्द्रजी नरावतारी शिवरूप धारी हैं ॥४८॥

कायेन वाचा मनसा च बुद्धया ज्ञानेन्द्रियैर्योग कला ललामैः ।
कर्मेन्द्रियैर्वेद कथा रसज्ञै श्रीचन्द्र देवो भगवानगम्यः ॥४९॥

अर्थ—शरीर, बचन, मन, बुद्धि ज्ञानेन्द्रिय, योगकला कर्मेन्द्रिय कथा रस आदि से गुरुदेव श्रीचन्द्र जी की महिमा अगम्य है ॥४९॥

अगोचरा दिव्य कला कटाह कल्लोल लोलाभि लसैरलभ्यः ।
वेदा यदीयं चरितं प्रवक्तुं पारन्न संयाति च शक्ति हीनाः ।५०।

अर्थ—दिव्य कलाओं से अगोचर चारों वेद जिसके चरित्र को गाकर पार नहीं पाते हैं अर्थात् शक्ति हीन हो जाते हैं ऐसे श्री ११०८ जगद्गुरु श्री चन्द्रदेव गुरुदेव हैं ॥५०॥

चतुर्मुखश्चाचर्चनरुचार चारी च चेता चतुरो विचारी ।
चलेचलाचञ्चल चञ्चरीक चञ्चचण प्राणसु चुञ्चुचञ्ची ॥५१॥

अर्थ—चार मुख वाले ब्रह्मा भी जिसके गुण का वर्णन नहीं कर सकते हैं तो एक मुख वाले की क्या कथा चल सकती है ॥५१॥

वक्तुं समर्थो नहि सृष्टि मात्रे कथा च काह्येक मुखस्य लोके ।
भूभार हृत्यै यवनाधिकार नाशाय धर्मोन्मथितो गुरुश्च ॥५२॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी की महिमा कहने को सृष्टि मात्र में किसी की शक्ति नहीं है, फिर मैं एक मुख से क्या कह सकता हूँ। पृथ्वी का भार उतारने को तथा मुसलमानी अनधिकार कुचेष्टा के शमन करने को, तथा हिन्दू धर्म रक्षार्थ श्री गुरुजी आये हैं ॥५२॥

शिवावताराखिल धर्म मार्ग वृद्धये ह्यनाथे किल भारते च ।
हिन्दु प्रजाप्राण सुपोषणाय वहुप्रकारैं र्यततेस्म साधुः ॥५३॥

अर्थ—अखिल धर्म मार्ग के बताने वाले इसवृद्ध अनाथ भारत में शिवजी आके अवतार धार हिन्दुओं के प्राण, धन कुटुम्ब धर्म की रक्षा बहुत प्रकार से की ॥५३॥

गूढ़ाति गूढं प्रवलं रहस्यं वेदेषु निर्दिष्टतमं प्रभाति ।
प्रमथ्य सारल्प तमश्च कृत्वा प्रचार यत्येव शिवाऽपराख्यः ।५४।

अर्थ—अति गूढ़ प्रवल वेदाभिप्राय को मन्थन करके शिवस्वरूप धारी श्री गुरुदेव जी हिन्दू धर्म का प्रचार करते रहे हैं ॥५४॥

अष्टाङ्ग योगास्सकला जनेषु योग्येषु संस्थाप्यतीन्द्रवर्य्यः ।
नृसिंह देवश्च यशस्वि वीरो हिन्दू प्रपूज्यो गुरु नाम तारी ।५५।

अर्थ—अष्टाङ्ग योग की सकल क्रिया का सांगोपाङ्ग प्रचार संसारी जीवों के हितार्थ यतीन्द्र वर्य्य श्री गुरुदेव जी ने किया जो नृसिंह के समान यशस्वी हिन्दुओं को वीर बनाने के लियें अवतार धारण किये थे ॥५५॥

कीर्तिश्च यस्यापि सजीवनीति गुरुश्च कल्पान्तकर प्रजीवी ।
लीलावतारश्च कलावतारो धर्मावतारस्त्ववनावतारः ॥५६॥

अर्थ—श्रीराम जी के समान यशस्वी हिन्दुआचार्य श्रीचन्द्रदेव जी हैं संसार में जिसकी कीर्ति है वह सदा जीवित रहता है श्री गुरुदेव जी की कीर्ति अखण्ड है अनन्त कल्पतक जीने वाले हैं लीला १ कला २ धर्म ३ रक्षा ४ चार रूप से श्री गुरुदेव जी का अवतार हुआ है ॥५६॥

यशोऽवतारोऽखिल वेदधामावतार तारस्तरणावतारः ।
समुत्तीतीर्षोस्तरणे तरिश्च सतारकाणामपितारकश्च ॥५७॥

अर्थ—यश का अवतार वेद और हिन्दू धर्म के स्थान पापियों के भी तारकों के भी तारक, मुमुक्षु पुरुषों, को संसार से मोक्ष करने वाले और तारकों के भी तारक आप श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् शिवावतार हैं ॥५७॥

इदञ्चरित्रं भगवद्गुरोश्च शृण्वन्ति भक्त्या च पठन्ति ये वै ।
पश्येयुरेवन्न यमस्य किञ्चितच्छासनंयन्मनुज प्रसिद्धम् ॥५८॥

अर्थ—इस परम पवित्र श्री गुरुदेव जी के विमल चरित्र को जो पढ़ेगा, अथवा श्रवण करेगा वह यमराज के बन्धन से सदा मुक्त रहेगा ॥५८॥

तेषाञ्च सोपान परम्पराऽपि वैकुण्ठ धामानुगमार्थमुच्चा ।
सिद्धाऽनिवार्य्य गुरु पादपद्मं कृपावशादाकृषते च हिन्दून् ।५६।

अर्थ—वैकुण्ठ जाने के लिये सीढ़ी अर्थात् रास्ता सदा खुला रहेगा श्री गुरुदेव जी की कृपा से हिन्दू जन वैकुण्ठ धाम को जाते हैं ॥५६॥

वाहुराम रसेन्दौ च वैक्रमे ज्येष्ठ कृष्णके ।
नवम्यां मङ्गलेवारे उदयादुदयात्पुरात् ॥६०॥

पञ्चालेषु समागत्य गुरुदास पुरे शुभे ।
शिंशपापादपच्छायां समाश्रित्य तपोऽकरोत् ॥६१॥

अर्थ—उदयपुर से चल वि० सं० १६३२ जेठ वदी ९ को पञ्जाब देश जिला गुरदास पुर में आय एक टाली (शीशम) के वृक्ष के नीचे बैठ भजन करने लगे ॥६०-६१॥

तस्मिंस्तपस्य माने च निशायामेकदा वणिक् ।
दुःख दग्धः समागत्य नमस्कृत्योपविष्टवान् ॥६२॥

अर्थ—एक दिन महाराज तपस्या कर रहे थे रात्रि में एक वणिक जिसका नाम राम दयाल था वह दुःख से दग्ध मन श्री गुरु जी के पास आय नमस्कार कर बैठ गया ॥६२॥

होराद्वयात्परं चन्द्रः चक्षुषी उन्मिमील सः ।
पुरतस्तं समालोक्य शनैरापृच्छदिङ्गि तैः ॥६३॥

अर्थ—कुछ देर के पीछे जब श्रीचन्द्र भगवान् ने नेत्र खोले तब उससे पूछते भये कि तुम इतनी रात्रि को यहां कैसे आये ॥६३॥

भगवन् वैश्य वंश्योऽस्मि धनाढ्य कुल संभवः ।
राम दयालु रिति च नाम मे दुःखितोऽस्म्यहम् ॥६४॥

अर्थ—राम दयाल ने कहा हे भगवन् मैं एक वैश्य वंश में धनाढ्य कुल में उत्पन्न हुआ हूँ मैं बड़ा दुखी हूँ ॥६४॥

दुश्शीला क्रूरचित्ता च भार्या परुष भाषिणी ।
नाज्ञां मे मनुते स्वैरी पुत्रोऽमित्र इवा जनि ॥६५॥

अर्थ—मेरी स्त्री बड़ी दुःशीला क्रूर चरित्रा कठोर भाषणी मेरी आज्ञा से रहित स्वेच्छा चारिणी है तथा पुत्र भी मेरी आज्ञा में नहीं चलता ॥६५॥

भृत्यामामवमन्यन्ते तिरस्कुर्वन्ति बान्धवाः ।
मुख मे नाभि वीक्षन्ते सर्वे च प्रति वेशिनः ॥६६॥

अर्थ—बान्धव तथा भृत्यलोग भी मेरा तिरस्कार करते हुये मेरा मुख देखने को भी तैय्यार नहीं हैं ॥६६॥

प्राणेभ्योऽप्यधिकं यस्याः प्रेम्णा रक्षणमा चरम् ।
अवधुनोति मामद्य सा भार्या हा हतोऽस्म्यहम् ॥६७॥

अर्थ—यह महान् गृहकलह रूपी कष्ट से जल में डूबने की इच्छा धार इधर जाता हुआ आप का दर्शन कर मैं यहाँ बैठ गया ॥६७॥

देवताराधनै र्यस्य मनोरथशतैश्चिरात् ।
मुखं विलोकितं सोऽद्य पुत्रो मां खेदयत्यहो ॥६८॥

अर्थ—देवताओं की आराधना करने से जिस पुत्र की हमको प्राप्ति हुई है, वही पुत्र हमारा तिरस्कार कर रहे हैं यह बड़े खेद की बात है ॥६८॥

श्रेयो मे मरणं देव एतस्मात्पाप जीवितात् ।
सोऽहं व्यवसितः प्राणानुत्स्त्रष्टुं मज्जनाजले ॥६९॥

अर्थ—हे श्री गुरु देव जी इस दुःखमय जीवन से मरना श्रेष्ठ विचार के आत्म हत्या करने के निमित्त जल में डूबने वास्ते मैं जा रहा था ॥६९॥

जीवतो मृत्युरेवायं किन्तु दुःखमतः परम् ।
तन्मयाऽध्यवसायोऽयं मरणाय ध्रुवं कृतः ॥७०॥

निशीथे गच्छताभर्तुं भवान्मार्गेऽवलोकितः ।
इदं मे मङ्गलं जातं कल्याणं मे भविष्यति ॥७१॥

अर्थ—दुखी जीवन से मृत्यु ही अच्छी है ऐसा विचार कर मैं नदी में डूबने जा रहा था अब आपके दर्शन होने से मैं अपना कल्याण विचार आपके पास बैठ गया ७०-७१॥

धैर्यमा धीयतां भद्र सर्वं श्रेयो भविष्यति ।
आत्म घातो न कर्तव्यः त्यज्यतामेष निश्चयः ॥७२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले हे भद्र धैर्य धारण करो भविष्य में सब अच्छा होगा आत्मघात करने का निश्चय त्याग दो ॥७२॥

अन्धकूपे निगच्छन्ति ये के चैवात्म घातिनः ।
पापं नातः परं किञ्चिद्विद्यते जगती तले ॥७३॥

अर्थ—जो कोई आत्मघात करता है वह अन्ध कूप में गिरता है आत्म घात के बराबर संसार में दूसरा कोई पाप नहीं है ॥७३॥

विपदो हि समायान्ति यान्ति भूयो यथा गतम् ।
निशावसाने दिवसः नियमेनैव जायते ॥७४॥

अर्थ—विपत्ति जैसे आती है वैसे जाती भी है, जैसे रात्रि के पीछे दिन और दिन के पीछे रात्रि आती है संसार का यह नियम है ॥७४॥

प्रावृडा याति साह्लादा भीष्माद्ग्रीष्मादनन्तरम् ।
शीर्ण पत्राच्च शिशिराद्वसन्तोऽलङ्करोति गाम् ॥७५॥

अर्थ—दुःख के पीछे सुख, सर्दी के पीछे गर्मी आती है, शिशिर में पत्ते जीर्ण होकर गिरते हैं वही बसन्त में वृक्ष को फिर अलंकृत करते हैं ॥७५॥

सत्वं धैर्य समालम्ब्य शेस्व शान्तेन चेतसा ।
अत्रैवेमां निशं प्रातः सर्वं भद्रं भविष्याति ॥७६॥

अर्थ—तुम मन को शान्ति देते हुये धैर्य धारण कर यहां सो जाओ प्रातः भविष्य में सब कल्याण होगा ॥७६॥

साष्टाङ्ग प्रणिपत्यासौ सुखं सुप्तः कुशासने ।
पर्यङ्के स्वेगृहे सुप्तं प्रबुद्धो निज मैक्षत ॥७७॥

अर्थ—ऐसा बचन सुनकर साष्टाङ्ग प्रणाम कर सुख से कुशासन पर वहीं अपनी इच्छा की पूर्ति की धारणा कर सो गया ऐसी निद्रा आई जैसे अपने घर में पलङ्ग पर सोता है ॥७७॥

प्रभात काले च यदोत्थितस्स. स्हीय खट्वा शयनञ्च लेभे ।
दारैस्समेतश्च विबराय चेता आश्चर्य मेतन्न च दृष्ट मस्ति ॥७८॥

अर्थ—श्री गुरुदेव की कृपा से सवेरे जागा तो अपने कुटुम्ब के सहित अपने घर की चारपाई पर अपने को देखकर आश्चर्यान्वित हो गया ॥७८॥

गृहे स्वकीये च समागतोऽहं निद्रां गृहीत्वा शयनम्बनेमे ।
पतिव्रता सा सुखदा बभूव पुत्रस्तदाज्ञा वशगः प्रभाते ॥७९॥

समाधि सिद्धस्य गुरोस्समाज्ञा वशात्कृताद्यैशयनम्बने च ।
तस्य प्रभावादधुनामदीयो दुःप्राणि वर्गः प्रतिशोधितोऽभूम् ।८०।

अर्थ—श्रीगुरुदेव की कृपा से स्त्री और पुत्र आज्ञाकारी हो गये एकाएक यह परिवर्तन देख बड़ा प्रसन्न हो समझा कि रात्रि वाले महात्मा का प्रत्यक्ष फल है। मेरे घर का कलह मिट कर सुखमय जीवन हो गया ॥७९-८०॥

विवेक सिद्धस्य महात्मनश्च साधो कदाचिद्यदि दर्शनं स्यात् ।
समस्त दुखस्य पलेन नाशो लोके प्रसिद्धो व्यवहार काण्डः ।८१।

अर्थ—ज्ञानी सिद्ध महात्माओं का दर्शन यदि हो जाय तो पल भर में समस्त विपत्ति शान्त हो जाती हैं यह बात संसार में प्रसिद्ध है ॥८१॥

तुष्टाव वैश्यस्सकलञ्च वृत्तं संश्राव्य पश्चाद्गमनञ्चकार ।
पुत्रैश्चदारैस्सहितो बने च सन्दर्शनार्थं भगवद्गुरोश्च ॥८२॥

अर्थ—रात्रि की घटना अपने कुटुम्ब को सुनाकर वह वैश्य पुत्रों स्त्री समेत वन में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के पास पुनः दर्शनार्थ गया ॥८२॥

योगी त्व सद्योग कला कुलीनः त्वमेव विद्याधि पति कुलीनः ।
त्वत्तस्समेतं जगदेव नित्यं चलत्य जस्रं शुभ वाञ्छितञ्च ॥८३॥

अर्थ—वहां जाकर गुरुदेव की स्तुति करने लगा हे योगी राज सर्व योग कला में पूर्ण विद्या के स्वामी आप हैं आप ही से सब सृष्टि चल रही है ॥८३॥

अज्ञान सागर समुत्तरणे प्रशस्तं सुज्ञान सेतु रचने निपुणं बुधेड्यम् ।
उदासीन वेषं सुरवरार्चित् महेशं दारिद्र दुःख दुरितौघनिशाचरघ्नम् ।८४।

अर्थ—अज्ञान का सागर पार करने को तथा श्रेष्ठ ज्ञान समुद्र में पुल बनाने में तमाम बुद्धिमान उदासीन भेष में आप बड़े २ देवतों से पूजित महेशरूप श्रीचन्द्र महाराज दारिद्र दुःख तथा बड़े २ दुरित अघ रूपी निशाचरों के नाश करने वाले हैं ॥८४॥

मायापते कोऽपि जयेन्नमायां यया जनो मुह्यति वेदनातः ।
उदार चित्तो भगवान् महेशो मायापहंत्वां शरणं प्रपद्ये ॥८५॥

अर्थ—हे माया पते आपके शिवाय और कोई माया का उत्पन्न करने वाला नहीं है वेद भी आपका अन्त नहीं पाते आप उदारचित्त साक्षात् भगवान् महेश हैं सो आप मेरे सकल महा पापों का संहार करो मैं आप के शरण पड़ा हूँ ॥८५॥

सिद्धि प्रदत्वं किल देववर्य त्वत्प्रेरितोऽहं जगरक्षणाय ।
भवाब्धि तारोत्तम नाम श्रेष्ठं नमाम्यहं संकट शैलनाशनम् ॥८६॥

अर्थ—सर्व सिद्धि के दाता आप ही श्री गुरुदेव श्रेष्ठ हैं आपकी ही प्रेरणा (कृपा) से जग में रक्षा पाय संसार सागर से आप के श्रेष्ठ नाम का सहारा ले कर पार होने का इच्छुक होता आप को नमस्कार करता हूं आप पहाड़ ऐसे संकट को तुरत नाश करने वाले हैं ॥८६॥

त्वंयुक्त योगी सकलं च कर्म प्रत्यक्ष भूतं परमेश्वरस्त्वम् ।
एवं स्तुते श्री शुभयोगिराजे प्रसन्न चित्तो गुरु देव देवः ॥८७॥

अर्थ—आप मुक्त योगी हैं प्रत्यक्ष परमेश्वर हैं कर्म स्वरूप हैं ऐसी स्तुति करने पर श्री गुरुदेव जी प्रसन्न हो गये तब राम दयाल अपने पुत्र पत्नी समेत गुरु मन्त्र ले चरणामृत पी सेवक बन गया ॥८७॥

तद्दकालात् वारठग्राम स्तीर्थं तुल्यो मतो जनैः ।
उदासीनाश्च गच्छन्ति स्नान दर्शनहेतवे ॥८८॥

अर्थ—जिस जगह महाराज बैठे थे वह जमीन तथा और भी जमीन मिला के एक ग्राम वसाया जिस ग्राम का नाम महाराज ने वारठ ग्राम रखा वह गुरु देवका स्थान तीर्थ स्थान होगया जहाँ उदासीन साधु तथा अन्य यात्री भी बराबर वहां पर जाते हैं दर्शन से कृतार्थ होते हैं ॥८८॥

तद्ग्रामाधिपतिर्नित्यमुदासीनाश्रमी पतिः ।
गुरु स्थान रहस्यन्तु विसदी कुरुते सदा ॥८९॥

अर्थ—उस मठ के अधिपति उदासीन साधु हैं जहां पर नित्य श्री गुरुदेव जी की विशद कथा होती रहती है ॥८९॥

एतन्माहात्म्य पठनात्त्रिलोक्यान्तु जनस्सुखी ।
श्रवणादपि लोके च भक्ति भावं समश्नुते ॥९०॥

अर्थ—इस माहात्म्य को पढ़ने से तीनों लोक में मनुष्य सुखी होगा श्रवण करने से लोक में भक्ति भाव को प्राप्त होगा ॥९०॥

श्रुत्वा सुधामय मिदं चरितं पवित्रं श्रोत्रं कुलं कलिमलं सुजनाः पुनन्तु ।
श्रीचन्द्रदेव चरणाब्ज मधु ब्रतानां नाशं ब्रजन्तु दुरितानि पुरातनानि ॥

अर्थ—यह परम पवित्र चरित्र अमृत मयी के सुनने वाले के समस्त कुल का पाप नाश हो श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र देव के चरण कमलों में मधुकर के समान मन लगाने वाले के सारे कष्ट नष्ट हो जाते हैं ॥९१॥

एतच्चरित्र समलं भवसिन्धु मग्ना पोतंविधाय मनुजाः शिवधाम यान्तु ।
श्रीचन्द्र चूड़चरणौ शरणौ यदिस्तां भीतिः कुतस्त्रिभुवनेखलु सज्जनानाम् ॥

अर्थ—यह विमल चरित्र भव सिन्धु में मग्न मनुष्यों के वास्ते जहाजवत् पार कर भगवान् शङ्कर के धाम पहुँचाने वाला है श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की शरण में जो आजाता है उस सज्जन को त्रिभुवन में कौन सा डर रह जाता है ॥९२॥

सकल निगमगेहः क्षीरपिण्डाभदेहः सुजन कुमुदचन्द्रःसृष्टिरक्षा वितन्द्रः ।
खलबल लयकारी लोकशोकापहारी शमयतु भवतापं देहिनां सर्व पापम् ॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वेदों के आगार जिनका शरीर दूध के समान सफेद सज्जन पुरुषों के हृदय रूपी कुमुदिनी को खिलाने वाले चन्द्रमा सदृश्य सृष्टि की रक्षा करने में तत्पर दुष्ट लोगों के बल का नाश करने वाले, लोगों का शोक हरने वाले संसार के ताप तथा देह के सर्व पापों का शमन करने वाले हैं ॥९३॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन-वर्य्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्रांकिते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनि जनमानस हंसे आबू राणाप्रतापोपदेश, सर्वोच्चप्रचार कार्यं टालीसाहब प्रसङ्ग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी सप्त त्रिंशति किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥३७॥

॥ अष्ठ त्रिन्शतिकिरण प्रारम्भः ॥

आसीद्रामैक भक्तः शिव विधि धनदा निन्द्र सूर्यानिलादीन्,
देवान् सर्वान् नितान्तं दशरथ तनयानेव तान्मन्यमानः ।

६७

साङ्गो पाङ्ग सभेदान् स्मृति निचययुतान् सर्व वेदान धीत्य,
कर्त्ता लोकोद्धृतीनां धृति गुण महितो वैष्णवो रामदासः ॥१॥

अर्थ—श्री समर्थ *राम दास जी वैष्णों साधु श्री राम के अनन्त भक्त शङ्कर कुबेर, इन्द्र सूर्य अग्नि आदि सर्व देवों में नितान्त दशरथ पुत्र रामचन्द्र जी को देखने वाले भक्ति में तन्मय सकल सांगोपाङ्ग वेदाध्ययन के साथ २ स्मृतियों के ज्ञाता लोगों के उद्धार में बड़े धीर ॥१॥

स सर्व लोकस्य दिदृक्षयैकदा भ्रमन्भुवं तीर्थ निकाय मानमत्।
पदेपदे राममयैः कथामृतैः समस्य लोकस्य मनांसि रञ्जयन् ॥२॥

अर्थ—एक समय समस्त लोकों का दर्शन करने निमित्त तीर्थ यात्रा करने निकले पद २ में श्रीराम नाम जपते राम कथा करते सब के मनको प्रसन्न करते थे ॥२॥

क्षणे क्षणे नाम नयन् नवं नवं विदहेजा प्राण धनस्य धन्विनः।
शनैः शनै राम पदार विन्दयोः मिलिन्दवृत्त्या विनिवेशयन्मनः ॥३॥

अर्थ—क्षण क्षण में नवीन से नवीन नाम भगवान् श्री राम के जपते धीरे २ श्री राम पादारविन्द में अपने मन भवर को लगाये हुये ॥३॥

उदाहरन राम चरित्र मानसं प्रचारयन् दिक्षु विदिक्षु तद्गुणान्।
पितुः कृतिं पुत्रकृतिं प्रसूकृतिं पतिव्रताया अनुजस्य तां कृतिम् ॥४॥
निसर्ग धीरस्य रघूद्वहस्यतान् गुणान्विशिष्टान्प्रथयन्दिगन्तरे ।
समुद्धरन्दीन जनान् दयामृतैः कथां मृतैराम चरित्र वर्णनैः ॥५॥
विमर्दयन्नास्तिक भाव मञ्जसा प्रवर्तयन् राम पदे रतिं नवाम् ।
विवोधयन्मूढ़ जनं जनार्दने निवेशयं श्चित्तममुष्यसा कृतौ ॥६॥
कदर्थयञ्जाड्यमपाहरन्तमे मनः स्थितं बोध मरीचि मालिना ।
निषिञ्चयन् भक्ति रसामृतैरसां सृजन् सङ्गममद्भुतंहितम् ॥७॥

अर्थ—श्री राम चरित्र मानस कथा का उदाहरण देते हुये सर्व हिन्दुओं को समझाते थे कि जैसे पिता पुत्र का कर्तव्य, माता पुत्र का कर्तव्य, स्त्री पति का कर्तव्य, भाई भाई का श्रेष्ठ कर्तव्य का ज्ञान जैसा शीघ्र रामायण से विदित होता है वैसा अन्य ग्रन्थों से नहीं। रामायण से मूढ़

*समर्थ राम दास जी का जन्म वि० सं० १६६५ में तथा मृत्यु वि० सं० १७३८ में हुई।

पुरुष भी शिक्षा पाय भगवान् के भक्त बन जाते हैं फिर सज्जनों की संगत से हृदय पवित्र होने में क्या सन्देह है ।।४-५-६-७।।

जयीजगन्नाथ पुरीं पुरा पुनः तथैव रामेश्वर मब्धि तीरगम् ।
ततःशनै द्वारिवतीं विलोकयन् हिमालयस्थं बद्रीश्वरं ययौ ।।८।।

अर्थ—श्री समर्थ राम दास जी श्री जगन्नाथ श्री रामेश्वर श्री द्वारका होते हिमालय स्थित श्री बद्रीनाथ केदार नाथ का दर्शन करते ।।८।।

एवं द्वादश वर्षाणि भ्रामं भ्रामं भुवस्तले ।
सिन्धौ पाञ्चाल देशेषु हरिद्वारादि पावनान् ।।९।।
तीर्थ भूतान् तीर्थभूतः पावयन् विषयान् यतिः ।
समर्थो रामदासोऽसौ सामर्थ्यं दर्शयान्निजम् ।।१०।।
ज्वालामुखीं द्रस्टुकामः वारठं ग्राम मागतः ।
यत्र श्रीचन्द्र भगवान् तपस्यति महत्तपः ।।११।।

अर्थ—इस प्रकार धरती के पवित्र तीर्थों में १२ वर्ष तक भ्रमण करते श्रीसमर्थ राम-दास जी सिन्ध पंजाब आने का विचार कर हरिद्वार होते श्री ज्वाला जी को जाते हुये मार्ग में वारठ ग्राम आते भये, जहां पर श्री ११०८ जंगद्गुरु अधम उधारण पतित पावन उदासीनाचार्य श्रीचन्द्र भगवान् रहते हुये तपस्या करते थे ।।९-१०-११।।

रामचन्द्रो सूर्यचन्द्रा विव पर्वाणि सङ्गतौ ।
आलिङ्गय सादरं दोर्भ्यां मुमुदाते चिरायतौ ।।१२।।

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास आये श्री रामदास जी आपके दर्शन करते भये, श्री गुरुजी बड़े आदर से आलिङ्गन कर प्रेम से अपने समीप बैठाते भये । इन दोनों का मिलाप सूर्य चन्द्रमा के सदृश्य जगत् हितकर हुआ ।।१२।।

विलोकयन्तौ साश्चर्यं प्रशंसन्तौ परस्परम् ।
कुशलं परि पृच्छन्तौ कुशलौ सत्कृतावुभौ ।।१३।।

अर्थ—दोनो दोनों को परस्पर साश्चर्य विलोकते आनन्द से भर आपस में कुशल प्रश्न पूछते भये ।।१३।।

आनन्दाम्बुधि संमग्नौ कृतासन परिग्रहौ।
चिरस्य विविधालापान् कुर्वन्तौ तौ स्थितौ मुदा ॥१४॥

अर्थ—दोनों आनन्द के समुद्र में भरे हुये अपने अपने आसन में बैठे, श्री रामदास जी ने कहा मैंने बहुत दिन से आप का सुयश सुन रखा था मन में दर्शन की लालसा लगी थी वह आज पूर्ण हुई। श्री गुरु जी समर्थ रामदास जी को भोजन कराय पुनः वार्ता करने निमित्त बोलते भये ॥१४॥

तदीयां पवित्रे व्यवस्थाञ्च दृष्ट्वोपदेश श्चकाराखिलेशोऽखिलेशः।
सदाकीर्तनं हिन्दु वर्गैस्समेतं तु सद्रामनाम्नस्त्वया कार्य मेव ॥१५॥

अर्थ—समर्थ रामदास जी का पवित्र भाव हिन्दू जाति को उठाने का देख श्री गुरुदेव जी ने सदुपदेश किया ॥१५॥

यथा हिन्दु धर्मस्य रक्षा जगत्यां यथा हिन्दुराज्यमविघ्नं समायात्।
यथा हैन्दवी धर्मरूपापताका विजेत्री विजेत्री विजेत्री विजेत्री ॥१६॥

अर्थ—आप अपने देश में हिन्दू धर्म की व्यवस्था, रक्षा अचलता अविघ्नता, हिन्दू धर्म पताका के विजय करनेवाला उपदेश दीजिये जिससे हिन्दुओं की विजय होय ३ ॥१६॥

ततः परं रामदासः राम पादाब्ज भृङ्ग राट्।
हिन्दु धर्म प्रचाराय देशान्तर भयात्पुनः ॥१७॥

अर्थ—तभी से श्री रामदास जी राम पादाब्ज में अपने मन भ्रमर को लीन किये हुए अपने हिन्दू धर्मोन्नति का प्रचार करते पुनः देश भ्रमण में तत्पर होते भये ॥१७॥

शिवराजो राम दासं समासाद्यस्स्वतन्त्रताम्।
अङ्केशयां प्रियां मेने सत्सङ्गात् किमु दुर्लभम् ॥१८॥

अर्थ—दक्षिण देश आय शिवराज (शिवाजी) को इस कार्य में सुयोग्य देख अपना शिष्य बनाय सुन्दर उपदेश हिन्दू जाति के उत्थान वाला दिया ॥१८॥

जन्मापि जातं सफलं ममैव कुलं पवित्रं जननी च जातिः।
नालभ्यमस्त्येव जगत्सु किञ्चित् तवप्रसादादिति मे विवेकः ॥१९॥

अर्थ—शिवाजी बोले आपके दर्शन से मेरा कुल जन्म जाति सब कृतार्थ हो गई आपके दर्शन से धर्म अर्थ काम मोक्ष सब कुछ मिल गया ऐसा मेरा विचार है ॥१९॥

महात्मनो दर्शनमेव सर्वं विभूति मात्रं कथितं मुनीन्द्रैः ।
संशाधि शिष्यं गुरु मन्त्र दीक्षया सर्व कार्यं सफलं भवेन्मे ॥२०॥

अर्थ—महात्माओं का दर्शन ही सब कुछ है अब मेरे को आप गुरु मन्त्र देकर शिष्य बनालो तब मेरा कार्य सिद्ध होगा ॥२०॥

प्रसन्नचित्तो भगवत्प्रपन्नो श्रीरामदासश्च ददौ सुदीक्षाम् ।
शिष्यस्तदानीं शिवराजनामा समर्थ राज्यं सकलं स्वकीयम्॥२१॥

अर्थ—समर्थ राम दास जी ने प्रसन्न चित्त हो शिवराज को दीक्षित किया शिवराज जी ने गुरु दक्षिणा में अपना समस्त राज्य ही समर्पण कर दिया ॥२१॥

इयम्मदीया गुरुदक्षिणा च पुरोगुरो ते विनिवेदि तास्ति ।
गृहाण शीघ्रन्त्वभिषिच्य शिष्यं वर प्रदानं विजयार्थ मास्ताम् ॥२२॥

अर्थ—आपके आगे यह गुरु दक्षिणा तैय्यार है आप शीघ्र इसे ग्रहण करके मेरे को विजय होने के लिये वर दीजिये ॥२२॥

विरक्त वीरो जगदेक साधुस्सराम दासस्सकलं च राज्यम् ।
शिष्याय तस्मै खलु हिन्दु धर्म रक्षार्थ मेवं प्रति स त्रिवेद्य ॥२३॥

अर्थ—श्री रामदास जी ने कहा कि यह राज्य शक्ति नित्य हिन्दू धर्म के रक्षा में लगा दो तुम राज्य करो गुरु शिष्य में कोई भेद भाव नहीं है हमारी निशानी भगवा झण्डा रखना ॥२३॥

वद्धाञ्जलि र्नमस्कृत्य सादरं तमुवाचसः ।
चिरं भगवतः कीर्तिं श्रुत्वा द्रष्टुमशक्नुवन् ॥२४॥

अर्थ—तब शिवाजी हाथ जोड़ के सादर कहते हैं कि आपको मेरी नमस्कार है बहुत दिनों से आपकी कीर्ति सुन रहा था आज बड़े भाग्य से दर्शन हुआ ॥२४॥

उत्सुकं मे मनो दृष्ट्वा त्वमद्य सफलं विभो ।
दर्शनानि हि पुण्यानि सतां सर्व हितैषिणाम् ॥२५॥

अर्थ—मेरा मन आपके दर्शनों को बड़ा उत्सुक था वह आज आपके आने से सफल हुआ बड़े पुण्य से साधुओं का दर्शन प्राप्त होता है ॥२५॥

रघुवंशेकुमारोऽस्मि रामचन्द्रो गति र्मम ।
वशिष्ठ इव रामेण त्वंमया शरणी कृतः ॥२६॥

अर्थ—रघुवंशी रामचन्द्र के वंश में मैं जन्मा हूँ और रामचन्द्र ही मेरी गति है इसलिये जैसे वशिष्ठ मुनि ने श्री रामचन्द्र को उपदेश दिया था वैसे ही आप भी मेरे को अपनी शरण जान के उपदेश दीजिये ॥२६॥

मल्लराजो मल्लराजः ख्यातो मे प्रपितामहः ।
साहसाङ्कः साहसाङ्कः पिताशूरोऽरि मर्दनः ॥२७॥

अर्थ—मल्लयुद्ध में मेरे प्रपितामह (दादा का पिता) प्रख्यात थे पिता भी मेरे बड़े साहसियों में प्रथम प्रसिद्ध थे जो वैरियों के मर्दन करने में बड़े शूर थे ॥२७॥

जीजादेवी च जननी कौशल्येव हरे र्मम ।
शास्तिमामनिशं सातु रम्यां रामायणीं कथाम् ॥२८॥
राघवोऽहं धैर्यधनः सत्य सन्धः प्रजाहितः ।
सनातनस्य धर्मस्य गवां वेदस्य रक्षकः ॥२९॥

अर्थ—मेरी माता जीजा देवी बड़ी कौशल (चतुर) हैं जिन्हूने मेरे को बड़ी उत्तम जाग्रति वाली शिक्षा दी है जिनका शासन मेरे मन पर चिरा नमान है रामायण की कथा सदृश्य रमणीक है श्री रामचन्द्र के सदृश्य धैर्य धारण करके प्रजाहित के साथ गऊ वेद की रक्षा करना यही मेरा सत्य संध सनातन धर्म है ॥२८॥२९॥

वालानाञ्चैव वृद्धानामवलानाञ्च रोगिणाम् ।
हिन्दुवानाञ्च देवानां नित्यं रक्षण लक्षणः ॥३०॥
एकन्तु भगवन्नास्ति साहाय्यं मे कुतश्चन ।
तत्त्वया क्रियतां विद्वन् ! येन स्यां सफलो रणे ॥३१॥

अर्थ—बालवृद्ध अवला रोगी हिन्दू की देवताओं की नित्य रक्षा करने का मेरा मुख्य ध्येय है, इस कार्य में मेरा कोई सहायक भी नहीं है आप कृपा करके आशीर्वाद करें जिससे रण में मेरे को सफलता प्राप्त हो ॥३०॥३१॥

अत्याचरन्ति दुर्वृत्ता इमेम्लेच्छाः पुरो मम ।
सोढुं नोत्सहते चेतः जाल्मानेतान रुन्तु दान ॥३२॥

अर्थ—म्लेच्छ (मुसलमान) लोग मेरे पुर में अत्याचार करते हैं वह मेरा मन नहीं सहन करता उन जालिमों को उत्तर अवश्य मैंने देना है ॥३२॥

या नन्दिनी दिलीपेन स्वप्राणैरभि रक्षितः ।
तत्सन्ततिं तस्य वंश्यः पश्यामि पुरतो हताम् ॥३३॥

अर्थ—जिस नन्दिनी गऊने राजा दिलीप की रक्षा अपने ऊपर कष्ट सहके किया उसी के वंश (गऊ) की हत्या हमारे पुर में होती है यह भला मैं कैसे सह सकता हूँ ॥३३॥

पूर्वै राजर्षिभिर्गुप्ता पुत्रवृत्त्या च या प्रजा ।
तामेव साम्प्रतं म्लेच्छैः लोके लोकेऽभि पीडिताम् ॥३४॥

अर्थ—मेरे से पूर्व के राज ऋषियों ने अपनी प्रजा को पुत्र समान पाला है उन्हीं के वंश में मैं हूँ अब मेरे सामने जो मुसलमान अत्याचार करते प्रजा को सताते हुये पीड़ित करते हैं वह मेरे को बड़ा कष्ट दायक हो रहा है इससे उद्धार का उपाय बताइये ॥३४॥

ततो रामः शिवं प्राह साधु साधु महीयते ।
धन्योऽसि कृतपुण्योऽसि प्रजा पालन तत्परः ॥३५॥

अर्थ—यह बात सुनकर समर्थ रामदास जी ने शिवा जी महाराज को कहा कि हे राजन् ! तुम्हारा विचार बड़ा श्रेष्ठ है तुम्हारी बुद्धि को धन्यवाद है तुमने बड़ा पवित्र संकल्प किया है जो प्रजा पालन में तत्पर हो रहे हो ॥३५॥

तुष्टोऽस्मि नरशार्दूल जानासि कुल गौरवम् ।
उदारास्ते मनोभावः वत्स सिध्यन्तु शाधिगाम् ॥३६॥

अर्थ—हे नरों में सिंह के समान मैं तुम्हारे कुल के गौरव को जानता हूँ और तुम्हारे उदार भाव को भी जानता हूँ मैं प्रसन्न होकर तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि तुम अपने कार्य में सफल हो ॥३६॥

उपागच्छतु त्वां लक्ष्मीः विनश्यन्तु तवाऽहिताः ।
वान्धवा वृद्धिमायान्तु वंशस्तेऽस्तु निरामयः ॥३७॥

अर्थ—तुम्हारे घर लक्ष्मी (धन) बहुत आवे, अहित (वैरी) विनाश हों बान्धव वृद्धि युक्त हों, वंश सुखी रहे ॥३७॥

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि वक्तुं जानासि संसदि ।
सावित्राणां पवित्राणि चरित्राणि च सर्वशः ॥३८॥

अर्थ—तुम्हारे वक्तव्य से हम जान गये कि तुम शूर भी हो और विद्वान् भी हो। सूर्य वंश के बीच तुम्हारे सब चरित्र पवित्र होगें ॥३७॥

एषकुलवतां धर्मः एतत्पुंसां परायणम् ।
एषा कल्पलता पुण्या धीराणां पद्धितिर्ध्रुवा ॥३९॥

अर्थ—तुम्हारे कुल का यही धर्म है कि पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष हो तुम्हारा किया हुआ यह कर्म पुण्यलता के समान प्रफुल्लित होगा ॥३९॥

असहायं न मन्येथाः मा कृथा हृदये शुचम् ।
मृगेन्द्रे नेदृशी चिन्ता गाहमाने गजावलिम् ॥४०॥

अर्थ—अपने को असहाय न मानों, तुम्हारा हृदय पवित्र है क्या हाथियों के झुण्ड को देखकर सिंह कभी यह चिन्ता करता है कि मैं अकेला हूँ ॥४०॥

तमसां राशि मालोक्य परिवृद्धं समन्ततः ।
कुतो धामनि धेश्चिन्ता वनवन्हे र्वनेऽथवा ॥४१॥
चिरं खड्ग सखः शत्रून् विजयस्व गतज्वरः ।
एहि दीक्षां प्रदास्यामि पात्र भूतोऽसि सर्वथा ॥४२॥

अर्थ—जिस प्रकार बड़े वन को देख कर अग्नि को चिन्ता नहीं होती उसी प्रकार तुमको विपक्षियों की विशाल सेना देख कर चिन्ता नहीं करना चाहिये। अब तुम अपने हाथ में खड्ग लेकर शत्रुओं से भिड़ जाओ यही हमारी शिक्षा है तुम्हारी सर्वथा विजय होगी ॥४१-४२॥

दिक्कुञ्जर कराभेण बाहुना पाहि गां क्षतात् ।
काषायं ध्वजमेकन्तु मम चिन्ह त्वमुद्वह ॥४३॥

अर्थ—महाराष्ट्र का राज्य चिरस्थायी होगा और तुम इन्द्र के समान पूजित होगे तुम हमारा चिन्ह भगवा झण्डा रखना ॥४३॥

इत्युक्तः शिरसा नत्वा स्वी चकार कृताञ्जलिः ।
नाति क्रामन्ति सच्छिष्याः गुरोराज्ञां गरीयसीम् ॥४४॥

अर्थ—जब इस प्रकार समर्थ राम दास जी ने कहा तब शिवाजी ने प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर बोला कि आपकी आज्ञा स्वीकार है गुरु की आज्ञा मानना ही शिष्य का श्रेष्ठ कर्म है ॥४४॥

राम नागरसैश्चन्द्रैर्मिते श्री वैक्रमे शुभे ।
वैशाष शुक्ल पञ्चम्यां सञ्जज्ञे शिव राजकः ॥४५॥

अर्थ—वह लग्न शुभ ग्रह अवलोकित है हिन्दू धर्म का मूल है जब कि १६८३ विक्रमी वैशाख शुक्ल ५ को शिवराज का जन्म हुआ था ॥४५॥

श्रीचन्द्रेण भगवता समये समये मतिः ।
येभ्यो दत्ता महात्मभ्यः तेषां नामनिशम्यताम् ॥४६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् समय २ पर अनेक महत् पुरुषों को अपनी हिन्दू जाति की उन्नति का उपदेश (सलाह) देते रहे जिनके कुछ नाम नीचे दिये जाते हैं ॥४६॥

अनन्यदासो विपुल प्रभावो महात्मवर्योऽखिलयोग कर्मा ।
श्रीचन्द्र देवस्य महोपदेशा हिन्दु प्रचर्चां कुरुते सदैव ॥४७॥

अर्थ—महात्मा अनन्य दास जी जिनका अच्छा प्रभाव था वह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से उपदेश ले भगवद्भक्ति के साथ २ अपने हिन्दू धर्म का प्रचार करते रहे ॥४७॥

वस्वङ्क वाण चन्द्रे च वैक्रमे श्रावणेऽसिते ।
अनन्यदास सञ्जज्ञे वासरे च शनैश्चरे ॥४८॥

अर्थ—आप (महात्मा अनन्यदास जी) का जन्म वि॰ सं॰ १५९८ और देव लोक वि॰ १६३८ में हुआ ॥४८॥

वाणवाणवेद चन्द्रे वैक्रमे कार्तिकेऽसिते ।
रामानन्दस्य शिष्योऽसौ लेभे जन्म कवीरकः ॥४९॥
येन प्रवर्तितो लोके कवीर पथ नूतनः ।
तदालम्बा वदन्त्येत द्वैष्णवा वयमित्यपि ॥५०॥
कविवर कवीरस्य कविता ग्रन्थ साहबे ।
वहुत्र दृश्यतेऽस्माभिः मनोहर पदक्रमा ॥५१॥

अर्थ—कवीर साहिब का जन्म वि॰ सं॰ १४५५ में हुआ स्वामी रामानन्द जी के चेले पूर्ण महात्मा भगवद्भक्त हुये हैं आपके सम्प्रदाय के कबीर पंथी साधु कहाते हैं जो अपने को वैष्णव मतावलम्बी मानते हैं। आपकी कविता प्रसिद्ध है तथा आदि ग्रन्थ में भी कबीर साहब के बहुत शब्द आते हैं। आप ने अपने हिन्दू धर्म प्रचार वास्ते वेधर्मियों के अनेक कष्ट सहने पर भी हिन्दूधर्म न छोड़ा। वि॰ सं॰ १५७५ में देव लोक हुये धन्य है आप की कर्मण्यता तथा

६८

हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा जो किसी से छिपी नहीं है, कबीर साहब को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन पञ्जाब ननकाणा उदासीनाश्रम में हुआ था ॥४६।५०।५१॥

रस वाणेषु चन्द्रे श्री वैक्रमे पौष कृष्णके ।
श्री रहीम खानखाना जज्ञे कवि गणाग्रणी ॥५२॥

अर्थ—अब्दुल रहीम खान खाना ये अकबर के दरबार के नव रत्नों में एक थे यह वि० सं० १५५६ में लाहौर में उत्पन्न हुये थे, इनको श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की सङ्गति कई दफे हुई थी तभी इनमें नीति बहुत थी जो इनका रचित ग्रन्थ रहीम सतसई से प्रगट है ॥५२॥

वाहु वेदेषुचन्द्रे श्री वैक्रमे फाल्गुने सिते ।
पौर्णमास्यां वङ्ग देशे नवद्वीपे व्यजायत ॥५३॥
जगन्नाथ शचीत्याख्यौ पितरौ तस्य विश्रुतौ ।
वङ्गे वैष्णव धर्मस्य येन धारा प्रवाहिता ॥५४॥
महाप्रभुश्च चैतन्यं सात्वन्तः सात्विकाश्च ये ।
तेऽवतारं भगवतो मन्यन्ते हि मनस्विनः ॥५५॥

अर्थ—श्री चैतन्य देव महाप्रभु जो वेद वक्ता थे आपका जन्म वि० सं० १५४२ फाल्गुण सुदी १५ को बङ्गाल देश के नव द्वीप नगर में हुआ पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र और माता का नाम सची देवी था, आप बचपन में ही अपनी विद्या की अपूर्वता रखते थे, उन दिनों बंगाल में शाक्तधर्म का प्रचार था, आप २४ वर्ष की अवस्था में गृह त्याग साधु बन गये थे, ६ वर्ष तक भ्रमण करके अच्छा प्रचार वैष्णव धर्म का किया जैसा श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी ने सलाह दी थी ॥५३।५४-५५॥

हिंसा महापाप मति प्रगाढ़ं समस्त देशे च निरोधनीयम् ।
एवं प्रचारं कुरुते महात्मा औतार चैतन्य महाप्रभुश्च ॥५६॥

अर्थ—शाक्त मत में जीव हिंसा बहुत होती है जो वेदों के प्रतिकूल है इसके हटाने निमित्त ही श्री ११०८ जगद्गुरु महाप्रभु श्रीचन्द्र जी ने चैतन्य महाप्रभु को बंगाल में वैष्णव धर्म अर्थात् जीव रक्षा का प्रचार करने को सलाह दी थी बंगाल में हिन्दू लोग इन्हें अवतार करके मानते और पूजते हैं ॥५६॥

वेदवाहुरसेन्दौ च वैक्रमेऽब्देतु केशवः ।
सनाढ्ये च धनाढ्ये च ब्राह्मेवंशे व्यजायत ॥५७॥
महा कवि वरोह्येष लक्षलक्षण तत्त्व वित् ।
येनानेके कृता ग्रन्थाः रसभाव समन्विताः ॥५८॥

अर्थ—धर्मानुकूल जितेन्द्रिय पं० केशव दास जी का जन्म वि० सं० १६२४ में सनाढ्य ब्राह्मण के घर हुआ था आप अच्छे कवि लोक प्रसिद्ध थे, इनके अनेक ग्रन्थ बने हैं जिनको देखने से विदित होता है कि अलङ्कार, लक्षणा, व्यञ्जना, कोष इत्यादि काव्य रचना के अंगों से विज्ञ थे इनको भी अपने हिन्दूधर्म रक्षा का बड़ा ख्याल था जो सद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की प्रेरणा का फल था ॥५७॥५८॥

वाण वेद रसेन्द्रौ श्री वैक्रमे गान मानदः ।
तान सेनो दिवं यातः विरहप्य स सज्जनान् ॥५६॥

अर्थ—तानसेन ने एक दफे जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को अपना गाना सुनाया भगवान् ने आशीर्वाद दिया जा तेरे समान गवैया तेरे सामने भारतवर्ष (हिन्दुस्तान) में कोई न होगा यह बात ऐसे ही हुई। तानसेन के मन में हिन्दू मुसलमान का भेद भाव नहीं था यह बादशाह अकबर के दरबार के नौ रत्नों में से एक थे तानसेन की मृत्यु वि० सं० १६४५ में हुई ॥५६॥

इषुवसु वाण चन्द्रे नन्दयन्नन्द नन्दनम् ।
सनाढ्ये ब्राह्मणे वंशे नन्द दासो व्यजायतः ॥६०॥
अस्मासीद्विट्ठलो नाथः गुरुर्गुरु गुणान्वितः ।
येन भागवतं सर्वं, व्रज भाषामयं कृतम् ॥६१॥

अर्थ—नन्द दास जी का जन्म वि० सं० १५८५ में सनाढ्य ब्राह्मण के घर हुआ था यह महात्माओं के सत्संगी थे तभी सत्संग का प्रचार करते थे, गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी इनके गुरू थे यह वृन्दावन में रहा करते थे, इन्हों ने समस्त भागवत को भाषा में बनाया, यह देख व्रज के विद्याभिमानी इन से द्वेष कर बुराभला कहने लगे, तब यह खिन्न हृदय हो अपनी रचना उठाय जमुना में फेंकने लगे ही थे बहुत सा भाग फेंक भी दिया था कि इतने में भगवान् श्रीचन्द्र जी पहुँच गये और नन्ददास को इस कार्य से रोका, तब नन्ददास ने समस्त व्यवस्था कह सुनाई भगवान् बोले श्रेष्ठ पुरुष किसी के कहने सुनने का ध्यान न देकर अपने श्रेष्ठ कर्तव्य का पालन करने से नहीं हटते, गंगा में अच्छा और बुरा सब पानी आता है गंगा अपने प्रवाह से सब शुद्ध कर देती है, इसी अनुसार आप किसी के कहे सुने को ध्यान न कर अपनी कविता को नष्ट न

करिये यह बची हुई आपकी कविता किसी समय में जगत मान्य होगी नन्ददास जी का प्रसिद्ध रासपञ्चाध्यायी वही ग्रंथ है जो जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी की शिक्षा से यमुना में फेंकने से बच गया था ॥६०॥६१॥

जन्मान्धः खलु नाभा जी नारायणाभिधः पुरा ।
त्रिगर्ते पुण्य भूभागे गोदावर्यास्तटे शुभे ॥६२॥
राम भद्रा चले रम्ये रामचन्द्र परायणः ।
रेमे चिराय चित्तेन जानकी जीवनं स्मरम् ॥६३॥

अर्थ—श्रीनाभा जी जन्मांध थे इनका वास्तविक नाम नारायण दास था तैलङ्ग देश गोदावरी तट रामभद्राचलम् पर्वत पर रहा करते थे आप सदा रामपरायण हो अपना समस्त जीवन जानकी वल्लभ के ध्यान में निमग्न रह व्यतीत करते थे ॥६२-६३॥

एकदा तीर्थराजस्य कुम्भ पर्वणि सङ्गतम् ।
श्रीचन्द्रं चन्द्र संकाशं दृष्ट्वा हृष्टो वभूव सः ॥६४॥

अर्थ—एक समय श्री तीर्थराज प्रयाग में कुम्भ महा पर्व के अवशर पर आप (नाभाजी) आये हुये थे संयोग से यहीं पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् भी कुम्भ पर आये हुये थे श्रीगुरु जी का सुयश सुनके श्रीनाभा जी आयके दर्शन करते भये, पहिले भी आप (नाभाजी) अपने गुरु अग्रदास जी से श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की उपमा सुन चुके थे ॥६४॥

श्री चन्द्रो भगवानाह दृष्ट्वा तं करुणा वशः ।
उन्मीलयामि ते नेत्रे यदि ते रोचते वद ॥६५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् करुणा करके बोले हे नाभाजी यदि आप कहें तो आपके नेत्र खोल दिये जांय ॥६५॥

अथ किञ्चित्स्मितं कृत्वा नाभा जी विनयान्वितः ।
तमूचे मयि चेच्छ्रीमान् प्रसन्नो वरदोऽधुना ॥६६॥
किमेताभ्यमनर्थाभ्यां लोचनाभ्यान्तु चर्मणः ।
उन्मील्येतां प्रभो क्षिप्रं कृपया ज्ञान चक्षुषी ॥६७॥

अर्थ—यह सुनकर श्री नाभा जी कुछ मुस्क्यराते विनती पूर्वक बोले यदि आप प्रसन्न हैं तो यही वर्दान दीजिये कि मेरे ज्ञान चक्षु सदा खुले रहें इन वाह्य चक्षुओं ने मुक्ति थोड़े ही देनी है ॥६६-६७॥

इति तेनार्थितश्चन्द्रः तथास्त्विति ददौ वरम् ।
पुनश्चाह स तं तुष्टः भक्तानां चरितावली ॥६८॥
संगृह्यतां महाभाग यतस्तुष्यति केशवः ।
भक्ता हि कृष्णचन्द्रस्य प्राणेभ्योऽपि प्रिया मता ॥६९॥

अर्थ—यह सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने प्रसन्न हो श्री नाभा जी को ज्ञान चक्षु के विकसित होने का आशीर्वाद देते हुये कहा तुम पूर्ण भक्त हो इसलिये भक्तों का चरित्र संग्रह करो जिससे भगवान् श्रीकृष्ण तुम पर संतुष्ट होंगे। भगवान् के लिये भक्त प्राण तुल्य प्यारे हैं ॥६८-६९॥

इति तेनाऽनु शिष्टस्तु नाभा जी भक्त सत्तमः ।
भक्त माला भिधं ग्रन्थं प्रणिनाय मनोहरम् ॥७०॥
अष्टोत्तर शतं यत्र सन्ति पद्यानि धीमतः ।
वाहुबाण रसेन्दौ च निर्माणं सत्कृतेरभूत् ॥७१॥
खंवसु रस चन्द्रे च प्रिया दासेन साधुना ।
कृता पद्यमयी टीकायां दृष्ट्वा विस्मिता जनाः ॥७२॥

अर्थ—नाभा जी ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जी के आदेशानुसार एक ग्रन्थ भक्तों के चरित्र का बनाया उसका नाम भक्त माल प्रसिद्ध हुआ। यह ग्रन्थ १०८ छप्पय का वि० सं० १६४२ और वि० सं० १६८० के बीच में बना है। इसी भक्त माल की स्वामी प्रियादास जी ने टीका कविता मे की है ॥७०-७१-७२॥

ऋषि चन्द्र रसेन्दौ श्री वैक्रमे कान्यकुब्जके ।
विप्रेकुले वीरवरः जज्ञे बुद्धि मतां वरः ॥७३॥
सरस्वत्याः प्रसादेन बुद्धिरस्य गरीयसी ।
श्रीचन्द्रस्य कृपा दृष्ट्या विख्यातो धरणीतले ॥७४॥
अकबरो यवनोऽपि राज्यतेस्म गुणैकवित् ।
हिन्दवो मानितायेन प्रभावाद्वीर मन्त्रिणः ॥७५॥

अर्थ—बीरबल का जन्म वि० सं० १६१७ में कान्य कुब्ज ब्राह्मण के घर हुआ था इनको देवी की उपासना करने का मन्त्र अनुष्ठान के सहित गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने बताया

था जिसके प्रताप से बीरबल हाजिर जवाबी में प्रसिद्ध थे। बादशाह अकबर के मुख्य प्रधानों में थे इनसे सदैव हिन्दुओं को लाभ पहुँचता था ॥७३-७४-७५॥

रसखानो रसखानि वृन्दावन कृतस्थितिः ।
श्रीचन्द्रस्य प्रभावेण कवि श्रेष्ठोऽभिधीयते ॥७६॥
बाहुवेदरसेन्दौ च वैक्रमे श्रावणेऽसिते ।
रसखान श्चन्द्रदेवं वृन्दारण्ये व्यलोकयत् ॥७७॥
स्त्री सक्तं मानसं यस्य श्री चन्द्रेण निवारितम् ।
कृष्ण चन्द्रे निवेश्याशु गोलोकं धाम धावितम् ॥७८॥
रसखानस्य कविता रस भाव पद क्रमैः ।
रसिका नां परं हृद्या कामिनीव विराजते ॥७९॥

अर्थ—रसखान का भगवान् श्री कृष्ण का प्रेमी होना श्री १००८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की ही कृपा का फल है। रसखान जी रईस घर के बालक थे इनका मन किस स्त्री पर इतना लोभाय गया था कि यह सारा दिन उसी के पीछे २ दिवाने से फिरा करते थे। भगवान् जगत् रक्षक श्रीचन्द्र जी ने एक दिन अपनी कृपा भरी दृष्टि से देख के इनको कहा कि तुम भागवत पढ़ा करो भागवत का पढ़ना और इनका मन श्रीकृष्ण परायण होना। रसखान श्री कृष्ण प्रेम में मतवाले हो वृन्दावन में आय भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन वि० सं० १६४२ में किया। आपकी कविता भगवत प्रेम में मतवाली करनेवाली बड़ी सुन्दर है ॥७६-७७-७८-७९॥

खंबाण रस चन्द्रे च गायका नां पुरस्सरः ।
रामदासश्चन्द्र देवं ददर्शार्कवरैः सह ॥८०॥

अर्थ—राम दास बाबा भी वि० सं० १६५० में अकबर के दरबारी गवैया रहा करते थे। इनको भगवान् श्रीचन्द्र जी का दर्शन अकबर के साथ ही पञ्जाब में हुआ था ॥८०॥

पञ्चविंशति वर्षीयः हरिदासो गृहं जहौ ।
वृन्दारण्यं गच्छता च श्रीचन्द्रोऽपि विलोकितः ॥८१॥
फर्रुखाबाद नगरे श्रीचन्द्रेण महात्मना ।
उपदिष्टा कृष्ण भक्तिः यतोऽसौ सफलोऽभवत् ॥८२॥

तेन लब्धा कृष्ण मूर्तिः मानसाख्यात्सरोवरात् ।
बांकेविहारि नाम्ना च विख्याताऽद्यापि विद्यते ॥८३॥

अर्थ—हरिदास जी ने २५ वर्ष की अवस्था में गृहत्याग वृन्दावन जाते समय भगवान् श्रीचन्द्र जी का दर्शन फरुखाबाद में किया। भगवान् ने इनको भगवद्भक्ति का रहस्य सहज तरीके से समझाया। बताये रास्ते से हरिदास जी ने वृन्दावन में भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी की भक्ति करनी प्रारम्भ करदी यहीं पर एक मूर्ति श्री बांकेविहारी जी की आपको मानसरोवर से मिली जिसको आपने एक बृहद् मन्दिर बनवा के पधरा दिया। यह मन्दिर बांकेविहारी जी के नाम से आज तक वृन्दावन में प्रसिद्ध है। इसी के करीब श्री गुरु उदासीन पंचायती बड़े अखाड़े का भी मकान है ॥८१-८२-८३॥

अङ्क वाणेषु चन्द्रे श्री वैक्रमे माधवे सिते ।
एकादश्यां हरवंशः जज्ञे देवुद ग्रामके ॥८४॥
वृन्दावनं शिश्रियेऽसौ सन्तत्युत्पत्यनन्तरम् ।
होडले ग्राम के चन्द्र ददर्श प्रणनाम च ॥८५॥
नम्राय सात्विकायास्मै चन्द्रो भक्ति वरं ददौ ।
स्वप्ने च राधिका तस्मै मन्त्रं दत्तवती निजम् ॥८६॥
वाहु वसु वाणचन्द्रे राधामाधवयोः शुभा ।
संस्थापिता तेन मूर्तिः राजतेऽद्यापि पावनी ॥८७॥
तत्प्रवृत्तः सम्प्रदायः राधावल्लभ नामतः ।
विख्यातो भुवने जातः वैष्णवैरभिपूजितः ॥८८॥

अर्थ—हितहर वंश जी ने देउद ग्राम में जन्म वि० सं० १५५६ वैसाख सुदी ११ को लिया था। जब विवाह और सन्तान हो गई तब आप वृन्दावन आय निवास करने लगे मार्ग में होडल ग्राम के समीप आप को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन हुआ अनेक प्रेम भरे वार्तालाप होनेके पश्चात् हितहर वन्शजी ने जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से भक्ति का वर्दान मांगा। तब भगवान् ने प्रसन्न हो तथास्तु ऐसा ही होगा कहा। सज्जनो हिन्दी शब्द सागार में लिखा है कि हितहर वंश को स्वप्न में राधा जी ने मन्त्र दिया तभी इन्होंने वि० सं० १५८२ में राधावल्लभ जी की मूर्ति वृन्दावन में स्थापित की इसी से इनके मत वाले राधा वल्लभी कहाते हैं ॥८४-८५-८६-८७-८८॥

खं वेदरस चन्द्रे च विलग्रामी मुबारकः ।
सुरवाणीं पिपठिषुः चन्द्रं प्रार्थितवान्नतः ॥८६॥
तमाह भगवांश्चन्द्रः हिन्दूनां विरुदावली ।
यदि गातुं त्वया शक्या तत्ते संस्कृतमुद्भवेत् ॥६०॥
स्वीकृतं तेन तद्वाक्यं पठित्वा चा भवत् कविः ।
अलक तिलके तेन शतके च विनिर्मिते ॥६१॥
यत्र सर्वो हि हिन्दूनां गीयते महिमा महान् ।
श्री चन्द्रस्य कृपा दृष्ट्वा को न जानाति मानवः ॥६२॥

अर्थ—सैय्यद मुबारक अली विलग्रामी का जन्म वि० सं० १६४० में हुआ था इसने संस्कृत पढ़ने की इच्छा श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के आगे प्रगट की भगवान् ने कहा कि यदि तुम हिन्दुओं की उपमा गावो तो तुम्हें संस्कृत आ सकती है, जब उसने स्वीकार किया, तब महाराज ने आशीर्वाद दिया जिसके प्रताप से वह संस्कृत का धुरन्धर विद्वान् हो गया और उसने अपने रचित (अलक शतक और रतिल शतक में हिन्दुओं की उपमा महाप्रभु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज की आज्ञानुसार लिखी ॥८६-६० ९१-६२॥

चन्द्राकाश रसेन्दौ च गुर्जरेऽहम्मदे पुरे ।
दादू दयालुः सञ्जज्ञे दादूपथ प्रवर्तकः ॥६३॥
निराकारोपासना च येन विख्यापिता भुवि ।
आमेरे चन्द्र देवेन मिलितः शान्त मानसः ॥६४॥
खं रस रस चन्द्रे च भराना पर्वतो परि ।
पञ्चतामश्वता लोकाः वञ्चिताश्चिर सञ्चिताः ॥६५॥
दिवं गते दादु देवे तत्र तच्छिष्य सेवकैः ।
स्मारकं तस्य चिन्हं तु मन्दिरं निर्मितं महत् ॥६६॥
यत्खलु दादु शिष्याणां सेवकानाञ्च सर्वशः ।
जातं तीर्थं महत्पुण्यं सर्व श्रेष्ठं मही तले ॥६७॥

अर्थ—दादूदयाल का जन्म वि० सं० १६०१ में गुजरात अहमदाबाद में हुआ इनके मत के साधु दादूपंथी कहाते हैं, दादूदयाल जी अच्छे संत हुये हैं, इनकी वाणी अधिकतर कबीर जी से मिलती जुलती है, यह जब आमेर में थे तब इनको श्री ११०८ जगद्वन्दनीय श्रीचन्द्र भगवान् मिले थे, इन्होंने भी निरञ्जन निराकार की उपासना का प्रचार किया अन्त में वि० सं० १६६० को भराने की पहाड़ी में शरीर छोड़ा यह स्थान दादूपन्थी साधुओं का मुख्य माना है ॥९३-९४-९५-९६।९७॥

रामवाणरसेन्दौ च चैत्रे शुक्ले शुभे बुधे ।
नवम्यां सुन्दरोदासः सञ्जज्ञे जयपत्तने ॥९८॥
द्यौसा ग्राम निवासीच दादूशिष्योऽस्ति बुद्धिमान् ।
प्रणिनाय बहून् ग्रन्थान् कविश्रेष्ठो गविष्ठिरः ॥९९॥
जगज्जीवन दासेनो दासीनेन महात्मना ।
काशीं सं प्रस्थितोऽपश्यत् पञ्चाले चन्द्रमद्भुतम् ॥१००॥
श्री चन्द्रशासनादेव वाराणस्यां स सुन्दरः ।
साङ्गोपाङ्गान्सरहस्यान् पुराणान्यखिलानि च ॥१०१॥
स्मृतीश्च भारतश्चैव रामायण मनुत्तमम् ।
इतराणि च शास्त्राणि समाधीत्या प्रचारयत् ॥१०२॥
सुन्दर विलास नामा च ग्रन्थोऽस्य विततो भुवि ।
रसवेद ऋषीन्दौच दिवं यातस्तु कार्तिके ॥१०३॥

अर्थ—सुन्दरदास जी का जन्म वि० सं० १६५३ चैत्र सुदी ९ जयपुर राज्य में द्यौसा नामक ग्राम में हुआ यह दादू जी के चेले थे और जगजीवन दास उदासीन महात्मा के साथ काशी जाते समय पञ्जाब में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन कर महाराज के आदेशानुसार काशी में समस्त संस्कृत हिन्दी विद्याध्ययन कर पुनः हिन्दू धर्म का प्रचार निर्गुण वाद के सहारे करते रहे जो इनके रचित ग्रन्थ "सुन्दर विलास" से प्रकट है। आपका देव-लोक वि० सं० १७४६ कार्तिक सुदी ८ को सांगानेर ग्राम में हुआ ॥९८-९९-१००-१०१-१०२-१०३।

चन्द्र राम रसेन्दौ च वैशाखे कृष्णपञ्चके ।
प्रयागस विधेजज्ञे कड़ा ग्रामे कवौ दिने ॥१०४॥

मलूकदासः पञ्चाब्दः क्रीडन् वालैः सहाद्भुतम् ।
श्रीचन्द्रं वीथिकायां सा लुतो के लोक पावनम् ॥१०५॥
श्रीचन्द्रो भगवान् दृष्ट्वा बालकं तं सुलक्षणम् ।
तातं तस्याऽऽह्यत्तूर्णं तमाह प्रणतं पदे ॥१०६॥
महाबाहुरयं वालेः विशालंभाल शोभिताः ।
चक्रवर्ति गुणैः सर्वैः राजितः शीलवाञ्छुचिः ॥१०७॥
सप्तद्वीपां वसुमतीं नूनमेष प्रशाशिता ।
ब्रह्मवेत्ता महात्मास्या दन्यथा तव पुत्रकः ॥१०८॥
सतथैव महात्माऽभूत् कीर्तिर्यस्य महीतले ।
यत्प्रसादं जनोभुङ्क्ते श्री जगन्नाथ धामनि ॥१०९॥
अङ्करामऋषीन्दौच श्री मलूकों विलापयन् ।
भक्तान् सर्वान् जगत्त्यक्त्वा देवलोकं व्यलोकयत् ॥११०॥
विस्तराच्चरितंत्वस्य विचित्रं विमलञ्चतत् ।
मलूकदास वाण्यां हि लोक नीयं स कौतुकैः ॥१११॥

अर्थ—मलूकदास जी का जन्म वि० सं० १६३१ वैसाख कृष्ण ५ को इलाहाबाद जिले के कड़ा नामक ग्राम में लाला सुन्दरदास खत्री के घर हुआ था, जब पांच वर्ष के हुये तब गली में खेल रहे थे, कि उधर ही श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् आ निकले और इनको देखकर लोगों से पूछा कि यह किसका लड़का है सुन्दरदास का पता लगने पर उसे बुला के बोले कि तुम्हारे लड़के की लम्बी २ भुजा इस बात की सूचक हैं कि या तो यह सप्तद्वीप का अखण्ड राजा हो या ऊँचा साधु हो, इस बात को सुन के सुन्दरदास तो हक्का, बक्का, रह गया पर मलूकदास बोले महात्मा जो आप ठीक कहते हैं, सज्जनों महाराज सद्गुरु श्रीचन्द्र जी के बचनानुसार मलूकदास अच्छे पहुँचे सन्त हुये हैं। आप विट्ठलदास उदासीन महात्मा के चेले थे। हिन्दू मुसलमान दोनों को उपदेश देने में प्रवृत्त देख लोग इनको निर्गुणमत का संत कहते थे, आप अच्छे करामाती संत थे आपके नाम का टुकड़ा जगन्नाथ धाम में यात्रियों को अभी तक प्रसाद में मिलता है आप का देव लोक वि० सं० १७३९ में हुआ, आप का जीवन चरित्र मलूक दास की वाणी नामक पुस्तक में विस्तार से छपा है ॥१०५-१०६-१०७-१०८-१०९-११०-१११॥

वसुबाणेषु चन्द्रे श्री वैक्रमे समये शुभे ।
मनिरामस्य शिष्योऽभूत् कुतुबनः शुद्धमानसः ॥११२॥
लवपुरे चन्द्रदेवं स ददर्श महामनाः ।
यत्प्रसादात्कविर्जातः कीर्तिराप्ताऽमलाभुवि ॥११३॥

अर्थ—कुतवन वि० सं० १५५८ के समय में थे और शिष्य मनीराम उदासीन महात्मा के थे। श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन लाहौर में हुआ था । कुतवन शेरशाह बादशाह के पिता हुसेनशाह के पास नौकरी किया करता था, मनीराम जी उदासीन महात्मा फारसी की कविता करने में बड़े कुशल थे तभी कुतवन ने आप से कविता करना सीखा था ॥११२-११३॥

मलिक (महंमद) ज्यायसी च श्रीचन्द्रस्य पदे रतः ।
शिष्योऽभूद्येन संप्राप्ता कविता कवितापहा ॥११४॥
पद्मावतं नाम ग्रन्थं प्रणिनाय प्रकृष्टधीः ।
पद्मावती पतिप्राणा महिला यत्र वर्णिता ॥११५॥

अर्थ—मलिक महंमद जायसी प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मुहीउद्दीन के शागिर्द थे यह दोनों गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के शिदकी सेवक थे। गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की संगत और उपदेश का ही फल है जो मलिक मुहंमद जायसी ने पद्मावत ग्रन्थ की रचना की जिसमें हिन्दू राजा सिंहल द्वीप की कन्या पद्मावती का प्रकरण वर्णन कियां गया है जिसके पढ़ने से पता लगता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और प्रेम की पीर से भरा हुआ था। जायसी का होना शेरशाह के समय का माना जाता है ॥११४-११५॥

वाण वाण रसेन्दौ श्री वैक्रमे श्रावणेऽसिते ।
पञ्चाम्बु देशे सञ्जज्ञे हृदयरामो महामतिः ॥११६॥
बारठे चन्द्रदेवस्य दर्शनं ह्येष लब्धवान् ।
पञ्चनदीय भाषायां मिश्रिता विविधेलिमम् ॥११७॥
रामायणं महाभाग सर्वशास्त्रमयं हि तत् ।
इत्युक्तोऽसौ तथेत्युक्त्वा चक्रे रामायणं शुभम् ॥११८॥

खं वसुरस चन्द्रे च हनुमन्नाटकं कृतम् ।
यच्च सर्व गुणोपेतं मुष्णाति सहृदो मनः ॥११९॥

अर्थ—हृदयरामजी पंजाब के रहने वाले कृष्ण दास के पुत्र वि० सं० १६५५ के अनुमान में जन्में थे। इनको श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन बारठ ग्राम में हुआ, तब महाराज ने हृदय राम जी को कहा कि आप पंजावी भाषा से मिश्रित हिन्दी भाषा में राम चरित बनावें जिसमें लोगों की रुचि भगवान् राम के तरफ खिचै। यह आज्ञा मान हृदय राम जीने वि० सं० १६८० में हनुमान नाटक बनाया जिसकी कविता बड़ी सुन्दर और परिमार्जित है कविता भाषा का यह हनुमान नाटक (राम चरित्र) पंजाब प्रान्त में अभी भी बहुत प्रसिद्ध है ॥११६-११७-११८-११९॥

हिन्दी साहित्य खे सूरः सूरदासो महाकविः ।
चन्द्राद्भक्ति वरंलेभे कदाचिद्गृह मागतात् ॥१२०॥
आकाशाङ्केषु चन्द्रे श्री वैक्रमे श्रावणेऽसिते ।
हित्वा गेहं नीत्वा देहं वृन्द्रारण्यं वशोरतः ॥१२१॥
सूरसागर नाम्ना च प्रबन्धोऽति महान् कृतः ।
ब्रजभाषा मयं सर्व तद्धि भागवतं मतम् ॥१२२॥
ये नैव ग्रन्थ रत्नेन सूरदासो महा कृती ।
प्रथमं पदमापासौ हिन्दी साहित्य संस्तृतौ ॥१२३॥

अर्थ—सूरदास (मदन मोहन) यह संडीले ग्राम के अमीन अकबर बादशाह के समय के थे, इनको साधु सेवा से बड़ा प्रेम था जो कुछ पास में होता वह सब साधुओं को खिला दिया करते थे। इन्हें श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने इनके घर पर ही दर्शन दिये थे, तब इन्होंने भगवान् की भक्ति का वदान मांगा था जो महाराज ने प्रसन्न होके दिया, तब से यह भगवद्भक्ति में मस्त हो अपना घर छोड़ वि० सं० १५६० से आ वृन्दावन में रहने लगे ॥१२०-१२१-१२२-१२३॥

वाहुर्षिवाणचन्द्रे च कवि गङ्गो व्यजायत ।
अकंवर सभा मुख्यः कविरेष इति श्रुतम् ॥१२४॥
आगरा नगरेऽनेन श्रीचन्द्रः प्रविलोकितः ।
वरंलेभे च तस्मात्सः महाभागश्च शङ्करात् ॥१२५॥

मृत्युकाले समायाते यमदूतान् विधूयसः ।
हेरम्बोलम्बुशुण्डेन त्वां विनेष्यति कर्षयन् ॥१२६॥
तत्तथैवाभवद्भद्रा यथोक्तं चन्द्र मौलिना ।
महतां खलु सिद्धानां सिद्धा वाचो न संशयः ॥१२७॥

अर्थ—कविगंग का जन्म वि० सं० १५७२ का था यह अकबर बादशाह के दर्बारी कवि थे। इन्होंने गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन आगरे में किया था वहीं गंग कवि ने अपनी कविता महाराज को सुनाई जिससे महाराज ने प्रसन्न हो कहा कि तुम को लेने के लिये अन्त समय में गणेश जी खुद आयेंगे। सज्जनों यह बात ऐसे ही हुई जो देव कवि ने अपनी कविता में कहा है "सुनि चाह भई परमेश्वर को तब गंग को लेन गणेश पठायो १२४-१२५-१२६-१२७॥

आकाश वसु बाणेन्दौ राजा टोडरमलोऽभवत् ।
रस राम रसेन्दौ च सोऽकंवर सहायवान् ॥१२८॥
पश्चाम्बु देशमायातः श्रीचन्द्रं च ददर्श सः ।
गुरुमन्त्रश्च जग्राह यवनेन सहैव हि ॥१२९॥
रसवेद रसेन्दौ च राजा टोडर्मलो मृतः ।
सर्व शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञः प्रवीणो गणिते स्मृतः ॥१३०॥

अर्थ—राजा टोडर मल का जन्म वि० सं० १५८० में हुआ यह अकबर के दर्बारी दिवान थे, जब अकबर बादशाह वि० सं० १६३६ में पंजाब आया था तब उसके साथ ही इन्होंने श्री ११०८ गुरुवर श्रीचन्द्र भगवान् जी का दर्शन किया था और उपदेश के साथ ही गुरु मन्त्र तथा चरणामृत भी लिया था। राजा टोडर मल का देव लोक वि० सं० १६४६ में हुआ था ॥१२८-१२९-१३०॥

आकाशवेदबाणेन्दौ शूरदासोऽपरोऽभवत् ।
दृष्टिकूटा च कविता लोके तस्य हि विश्रुता ॥१३१॥
वल्लभाचार्य शिष्योऽयं वृन्दावनकृतस्थिति ।
कृष्ण लीला मयीयेन कविता विहिताऽद्भुता ॥१३२॥

अर्थ—सूरदास जी का जन्म वि० सं० १५४० का है इनकी दृष्टि कूट कविता प्रसिद्ध है, यह चन्द्र वर्दाई के वन्श में थे इनको भी वृन्दावन में सद्गुरु श्री ११०८ श्री

श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन हुआ था आप के ही उपदेश से सूरदास जी ने कृष्ण लीला के भजन बनाये थे। यह सूरदास जी श्रीवल्लभाचार्य जी के शिष्य थे यह सूरदार उपरोक्त सूरदास से प्रथक हैं ॥१३१-१३२॥

काश्यां श्रीचन्द्र मालोक्य जहाँगीरस्य कालिकः।
उसमानो महाकाव्यं चक्रे चित्रावलीं शुभाम् ॥१३३॥
हिन्दूनां यवनानाञ्च कर्तुं भेद व्यपाकृतिम्।
श्रीचन्द्रस्य प्रसादेन ह्यमोऽभूत्कवि शेखरः ॥१३४॥

अर्थ—उसमान—जहांगीर बादशाह के समय में हुये हैं जब श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् काशी में थे तब इन्होंने महाराज के दर्शन किये और शिक्षा प्राप्त की जिसके प्रताप से इनके मन से हिन्दू मुसलमान की द्वैतता विलीन हो गई तभी उसमान ने चित्रावली नामक पुस्तक में हिन्दू गाथा गाई जिसमें अँग्रेजों के द्वीप में पहुँचना लिखा है ॥१३३-१३४॥

चौहान क्षत्र वंश्यश्च प्राणदासः सतां वरः।
प्राण चन्द्रा भिधानश्च पुरातस्य गृहेऽभवत् ॥१३५॥
ऋषिरसरसेन्दौ च श्रीचन्द्रस्यैव शासनात्।
महानाटक मातेन रामायण कथानुगम् ॥१३६॥

अर्थ—प्राणदास यह जन्म के हिन्दू चौहान क्षत्री थे नाम प्राण चन्द था पीछे जब उदासीन साधु बने तब नाम प्राणदास रक्खा गया इसी से इनकी प्राणदास या प्राणचन्द दोनों ही नामों से प्रसिद्धता थी, इन्होंने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की आज्ञा से वि० सं० १६६७ में रामायण महानाटक लिखा है ॥१३५-१३६॥

आकाशवसु वाणेन्दौ भट्टो जातो गदाधरः।
वृन्दावने चन्द्र देवं दृष्ट्वाऽसौ कृतिमान बभौ ॥१३७॥
श्रीचन्द्र शासनादेव संस्कृते कवितां जहौ।
ब्रज भाषामयीं कृत्वा यशोलेभे शशिप्रभम् ॥१३८॥

अर्थ—गदाधर भट्ट का कविता काल वि० सं० १५८० था, आपको वृन्दावन में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के दर्शन हुये तब यह संस्कृत कविता कर रहे थे यह देख सद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् प्रसन्न हो बाले कि भाषा में कविता बनाओ जिससे आम हिन्दू लाभ उठा सकें तब से भट्ट जी ने हिन्दी भाषा में कविता बनाई ॥१३७॥१३८॥

वाण ऋषीषु चन्द्र च वैक्रमे शुभ वत्सरे।
मीरादेवी जन्मलेभे द्योतयन्ती निजं कुलम् ॥१३६॥
उदयपुर महाराज कुमारेण विवाहिता।
भोज राजा भिधेनासौ कृष्ण भक्ता परा सती ॥१४०॥
हरिद्वारे चन्द्रदेव मेकदा साव्यलोकयत्।
तस्योपदेशमादाय वृन्दावन मुपाश्रिता ॥१४१॥
कृष्ण भक्तिमयं गीतं गीतं हृष्टेन चेतसा।
गायं गायश्च यद्भक्ताः न तुष्यन्ति दिवानिशम् ॥१४२॥

अर्थ—मीरबाई का जन्म वि०सं० १५७५ में हुआ था और विवाह उदयपुर के राना कुमार भोजराज के साथ हुआ। मीरा आरम्भ से ही कृष्ण भक्तिनी थीं, एक समय जब यह तीर्थ यात्रा को जा रही थीं तब भगवान् श्रीचन्द्र जी का दर्शन हरिद्वार में हुआ। तब अपनी सब दुःखद कथा मीरा ने कह सुनाई जो उनको ससुराल में भगवद्भक्ति के छुड़ाने पर मिलती थी। भगवान् श्रीचन्द्र जी ने धैर्य देते हुये कहा कि धैर्य धर के भक्ति से न विचलित होना भगवान् तुम्हारी सब प्रकार से रक्षा करेगा। यह सुन मीराबाई प्रसन्न हो वृन्दावन में आके गिरधरलाल की भक्ति में लवलीन हो आनन्द से दिन बिताने लगी ॥१३६।१४०।१४१।१४२॥

एवं श्रीमान् विषय विमुखश्चन्द्र देवो जगत्यां।
भ्रामं भ्रामं सकल मनुजान् सत्यमार्गे नियुक्तः ॥
तस्यैतानि प्रमुख चरितान्याशु गायन्तु लोकाः।
कास्थादेहे नलिनदल विन्यस्त तोयाभवृत्तौ ॥१४३॥

अर्थ—इस प्रकार और बहुत से सत्पुरुष महाप्रभु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से मिलते रहे हैं उन सबके हृदय में भगवान् श्रीचन्द्र जी का उपदेश प्रेरणा करता था, कारण भगवान् श्रीचन्द्र महराज ने अपने सुहृद भाव सब के हृदय में इस प्रेम और सहानुभूति से भर दिये थे कि जिसका सभी यथेष्ट आदर करते थे। इसी का नाम बुद्धिमता है चतुरता न्याय प्रियता दूरदर्शिता सब कुछ है। इस प्रकार भगवान् श्रीचन्द्र महाराज को जो भी महात्मा मिला सब को ही अपने साथ मिला के हिन्दू धर्म रक्षा के कार्य में लगाया। आपके प्रताप से सर्वत्र शान्ति छा गई ॥१४३॥

नष्टे श्रोत्रे हिम सित कचे हीन शक्तौ च नेत्रे,
भ्रष्टे दन्ते विकलगतिके काष्ठ तुल्ये च पादे ।
लालाक्लिन्ने वलिभ वदने जाठरे चीण भूते,
कोवा कर्ता सुकृत मधु नैवारभध्वं मनुष्याः ॥१४४॥
पुत्रे शत्रौ परिजनचये शून्य भक्तौ विरक्ते,
अर्धाङ्गिन्यां प्रणयविधुरालाप भावं व्रजन्त्याम् ।
सावष्टम्भं वदति परुषं वान्धवे वृद्धभावे,
कोवा त्राता नमत चरणौ चन्द्रदेवस्य भद्राः ॥१४५॥

अर्थ—जब मनुष्य की वृद्धावस्था आ जाती है कानों से कम सुनने लगता है, नेत्रों से कम दिखाई देता है, शिर के बाल सफेद हो जाते हैं दान्त गिर जाते हैं, चलने फिरने की शक्ति कम हो जाती है, हाथ पांव काठ तुल्य हो जाते हैं अर्थात् काम नहीं देते, मुख से लार गिरने लगती है, वाणी शुद्ध उच्चारण नहीं होती, क्षुधा मंद पड़ के शरीर कृष हो जाता है, पुत्र शत्रु हो जाता है, कुटुम्बी साथ छोड़ जाते हैं, भक्ति करने में मन नहीं लगता, स्त्री प्रेम से नहीं बोलती अर्थात् वह भी छोड़ जाती है, मित्र वंधु कठोर बचन बोलते हैं। ऐसे महान् विपत्ति के समय (अरक्षित अवस्था) में सिवाय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चरणों के और कौन रक्षा कर सकता है—अरक्षितों के रक्षा करने में श्रीचन्द्र भगवान् के सदृश्य और कौन होगा जिनकी कृपा दृष्टि से अनेक दुखियों का दुख दूर हो गया। श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के सदृश्य कौन हिन्दू जाति का रक्षक होगा इसलिए उनके पवित्र चरणारविन्दों में हम लोगों का शतशः प्रणाम है ॥१४४-१४५॥

इदं चरित्रन्तु पठेत्सभक्त्यः शिवस्तदीयं शरणं प्रयाति ।
संश्रावयेत्साधु जनश्चयोवै कैलास वासी सभवेन्मनुष्यः ।१४६।

अर्थ—इस चरित्र को जो भक्ति से पढ़ें या सुनेंगे वह लोग शिव भगवान् के शरण में जाकर साधुओं वाली गति प्राप्त करते हुये कैलास वासी होंगे ॥१४६॥

वेदपाठो द्भवं पुण्यं पुराण चरितोद्भवम् ।
लभते गुरुदेवस्य भक्तिं यः कुरुते नरः ॥१४७॥

अर्थ—वेद पाठ करने से जो पुण्य होता है तथा पुराणों के पाठ का जो फल है वह श्री गुरुदेव के चरित्र पाठ से मनुष्यों को प्राप्त होगा ॥१४७॥

इति श्री साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमद् उदासीनवर्य्ये परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डि-देव गुरु चरणकमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे समर्थ रामदास मिलन, छत्रपति शिवाजी उपदेश एवं समकालीन अन्यान्य सत्पुरुष जगद्गुरु श्रीचन्द्र मिलन प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनो अष्ट त्रिंशति किरण सम्पूर्णंता मधिगता ॥३८॥

॥ एकोन चत्वारिन्शत्तमा किरण प्रारम्भः ॥

एकदा चन्द्र भगवान् कुर्वन् धर्मोपदेशनम् ।
साधोः परिवृतो देवः समायातोऽमृतं सरः ॥१॥

अर्थ—एक समय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् योगीराज हिन्दूधर्म के उपदेश द्वारा संसारी जीवों का उद्धार करते अपनी उदासीन साधु मण्डली सहित अमृत सर आते भये ॥१॥

तमागतं समाकर्ण्य रामदासो जितेन्द्रियः ।
शिष्य सेवक संयुक्तः प्रत्युद्यातः प्रसन्न धीः ॥२॥

अर्थ—संतोदासीन श्री रामदास जी चौथी पातशाही श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का आगमन सुनते ही अपने सेवक (भक्त) मण्डली सहित श्री महाराज का आदर से स्वागत करने निमित्त प्रसन्न मन से आगे आते भये ॥२॥

दृष्ट्वा प्रणम्य तैः सार्धं श्री श्रीचन्द्र निजाश्रमम् ।
निनाय विनयी सद्यः स्वागताऽऽचार पूजनैः ॥३॥

अर्थ—श्री ११०८ आचार्य्य प्रवर जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को देखते ही श्री राम दास जी श्रद्धा पूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम कर पुष्प माला (हार) पहिराते हुये बहुत विनती कर अपने आश्रम पर लाकर ऊँचे आसन पर बैठाय आप नीचे बैठ षोडशोपचार से पूजन कर बड़े प्रसन्न भये ॥३॥

समभ्यर्च्य यथा योग्यं परमां मुदमागतः ।
सतां सद्भिः सहस्थानं कस्यनाऽऽनन्दकारणम् ॥४॥

अर्थ—परस्पर कुशल मंगल पूछने के पश्चात् श्री गुरु जी का यथा योग्य आदर करते हुये श्री राम दास जी ने कहा कि आप ऐसे महापुरुषों के समागम से किसे आनन्द न प्राप्त होगा ॥४॥

तदासीन्महदाऽऽरम्भात् खन्यमानं सुधा सरः ।
तत्रापि तं निनायासौ सद्यः पावयितुं सरः ॥५॥
वेदिकायां निवेश्यामुं पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ।
चरणामृतमेतस्य क्षिप्तं तत्र सरोवरे ॥६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जिस समय श्री राम दास जी के पास आये थे उस समय श्री राम दास जी अमृतसर वाला तालाब खुदवा रहे थे उसके बीच वाले ऊँचे चौतरे पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को बैठाय, भक्ति पूर्वक चरण धोय, चरणामृत पी, बचा हुआ जल (चरणधोया हुआ अमृत) तुरत तालाब में डाल दिया ॥५।६॥

आशीर्वादं ददौ देवः राम दासाय धीमते ।
महातडाग सहिता नगरी च वसि ख्यति ॥७॥

अर्थ—श्री राम दास जी का यह प्रेम देख कर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे इस तालाब की बहुत मानता होगी यहाँ पर एक विशाल नगर बस जायगा चरणामृत के पड़ने से उस सरोवर का नाम अमृतसर रख दिया पुनः वहाँ की बसती का नाम भी धीरे २ अमृतसर पड़ गया जो आज विशाल नगर बन रहा है ॥७॥

भोजितः स ततो भक्त्या चन्द्र देवः समण्डली ।
भुक्त्वा परस्परं तेषां जाता प्रीति रनुत्तमा ॥८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को मण्डली सहित भोजन कराय पश्चात् श्री रामदास जी बड़े प्रसन्न हो आप भी अपनी भक्त मण्डली सहित भोजन पाते भये ॥८॥

ततः सलीलं श्रीचन्द्रः स्मयमान मुखाम्बुजः ।
रामं पप्रच्छ किन्न्वेतत् कूर्चं संवर्धितं वृथा ॥९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् प्रेम परीक्षार्थ मन्द २ मुस्कराते श्री रामदास जी से बोले कि इतना लम्बा दाढ़ा क्यो बढ़ाया है ॥९॥

इत्युक्तः सहसा रामः श्रीचन्द्र चरणौ नतः ।
संममार्ज स्वकूर्चेन ह्येतत्कर्त मथा ब्रवीत् ॥१०॥

अर्थ—यह बात सुनते ही श्री राम दास जी श्री ११०८ जगदगुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चरण अपनी दाढ़ी से झारते बोले इसी लिये यह दाढ़ी बढ़ाई है ॥१०॥

दोहा—चरण गहे कर प्रेम से पोछहि वारम्वार *।
इसहीहेतबधातभे सुनिये सतिगुर दयार ॥
(सूर्य प्रकाश रास २ अंशु १४)

जहसुः सकला लोकाः चन्द्रः प्रीत मना वभौ ।
साधु साध्विति धन्योति तत्र शुश्रुविरे गिरः ॥११॥
ततस्तुष्टः स भागवांश्चन्द्रो राम मथा ब्रवीत् ।
प्रत्युत्पन्न मतो तुभ्यं ददाम्येतं वरं वरम् ॥१२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् श्री रामदास जी का यह अनन्य प्रेम अपने ऊपर देख प्रसन्न हो आशीर्वाद देते बोले आप धन्य हैं २ इसी अखिल श्रद्धा और प्रेम के प्रभाव से ही आपने विश्व नियन्ता परब्रह्म को पाने का मार्ग सुगम कर लिया है ॥११॥१२॥

रसराम रसैश्चन्द्रै सम्वते विक्रमे शुभे ।
आषाढपूर्णिमायान्तु गुरुं सिद्धञ्च लब्धवान् ॥१३॥
दीक्षतो राम दासश्च हर्षा धिक्य मवापहः ।
उदासीन पथा क्रान्तः कोटि सूर्य समः प्रभः ॥१४॥

अर्थ—श्री रामदासजी ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जी की अपने ऊपर यह कृपा देख उसी समय अर्थात् वि० सं० १६३६ अषाढ़ सुदी १५ को सादिक चेला बन सिद्ध गुरू धारण किया तभी सन्त उदासीन कहाये ॥१३-१४॥

नोट—श्री रामदास जी अपना सिद्ध गुरू धारण करने का प्रमाण (सावूत) अपने वचन द्वारा श्री ग्रंथ साहब में यों देते हैं।

सूही महला ४ घर ४—हमरी जाति पाति गुरु सतिगुरु हम वेचिउ शिर गुरु के । जननानक नाम पड़ेउ गुरु चेला गुरु राखहु लाज जनके ॥४॥१॥ (आदि ग्रन्थ साहब), आगे और भी कहा है

*—यह प्रसङ्ग विस्तार से खालसा तवारीख हिस्सा १ नम्बर २ चतुर्थावृति का छपा पृष्ठ ६४०, तथा मैकालिफदी हिस्ट्री आफ सिख रिलीजन सफा २५७, गुरु उदासीन मत दर्पण दोनों भाग में, तथा हिन्दूधर्म व्यवस्था भाग चौथा पृष्ठ २२२ आदि २ ग्रन्थों में आता है।

गउड़ी पूर्वीमहला ४—हमरा विनउ सुनहु तुम ठाकुर हम शरण प्रभू हरि मांगे। जन नानक की लजपात गुरू है शिर वेचिउ सतिगुर आगे ॥५।१०।२४।६२॥ आदि ग्रन्थ साहब

नोट—इसका विस्तार प्रसङ्ग देखो हिन्दू धर्मव्यवस्था चतुर्थ खण्ड पृष्ठ २२२ से २२८ तक। सन्त उदासीन श्री रामदास जी चौथी पातशाही ने जब से श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से सादिकी का मन्त्र लिया उसके पश्चात् गृहस्थ (स्त्रीप्रसङ्ग) नहीं किया। आपका जन्म वि० सं० १५६१ कार्तिक वदी २ गुरुवार, तथा देवलोक वि० सं० १६३८ भाद्रों सुदी ३ को गोइन्द वाल में हुआ।

॥ प्रयागराज कुम्भ ॥

वसु राम रसेन्दौ च बारठे ग्राम उत्सवम्।
दीपावलीं विधायासौ चन्द्रोऽभाषत सेवकान् ॥१५॥

अर्थ—वि० सं० १६३८ मकर संक्रान्ति में प्रयागराज का कुम्भ आनेवाला था यह ध्यान कर पूज्यपाद श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बारठ ग्राम के अपने स्थान में दिवाली का महोत्सव कर अपने साथ उदासीन साधुओं की मण्डली ले इसी साल चलते भये ॥१५॥

सम्भाराः सम्भ्रियन्तां मे कुम्भ पर्वणि गम्यते।
तीर्थ राजस्य द्रष्टारः यान्तु सर्वे मया सह ॥१६॥

अर्थ—अपनी मण्डली का सम्हाल करते हुये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् तीर्थराज प्रयाग के कुम्भ महापर्व पर जाते भये ॥१६॥

सशिष्यः सेवकैर्जुष्टः प्रतस्थेऽसौ निजाश्रमात्।
मार्गे च यवना दुष्टाः रुरुधुर्वर्त्म शस्त्रिणः ॥१७॥

अर्थ—अपनी मण्डली समेत मार्ग में चलते हुये एक मुसलमानी सेना से आप का मिलाप हुआ ॥१७॥

हिन्दुं कदाचित् विरुणद्धि वोद्धा नेतीति नेतीति पद प्रचारः।
ततो विभिन्ना यवनास्समग्रा हिन्दुश्च सन्नाशयितुं सयत्नाः ॥१८॥

अर्थ—जो हिन्दुओं को दुखाने वाले थे, हिन्दू धर्म के रोकने वाले थे मुसलमान हिन्दुओं को नाश करने वास्ते अनेक यत्न करते थे ॥१८॥

अकबरो वरो दत्तः दुःखार्ताय हुमायुवे ।
श्री चन्द्रेणेति ते ज्ञात्वा कान्दिशी का दिशो ययुः ॥१९॥

अर्थ—उसने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को देख हिन्दुओं का पक्षपाती जान हिमायूँ और अकबर का वरदान देनेवाला समझ ॥१९॥

ततः परं प्रतस्थेऽसौ करनालं समागतः ।
अष्टम्यां मार्ग शीर्षे च सरस्वत्या स्तटेस्थितः ॥२०॥
तदानीमेव दैवेन मिर्जामोहम्मदोऽप्यगात् ।
दिल्लीं जेतुं सशस्त्रांस सहनीत्वा महाचमूम् ॥२१॥
चण्डकोपोऽब्रवीत्सेनां चन्द्रः सर्वानुगैः सह ।
बध्वा मत्सविधे शीघ्रं समानेयः स दाम्भिकः ॥२२॥

अर्थ—बङ्गाल के मुसलमानों ने इसीलिये बगावत करके अकबर के सौतेले छोटे भाई मिर्जा मुहम्मद को अकबर की जगह देहली का बादशाह बनाना चाहा था, वि० सं० १६३८ मार्ग शीर्ष बदी ८ को मिर्जामुहम्मद काबुल से लौटते देहलो जाते रास्ते में करनाल के समीप पहोये ग्राम में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का सिविर लगा देख अकबर का हिमायती समझ उनके पकड़ने के लिये घमण्डवश अपने सिपाही भेजता भया ॥२०-२१-२२॥

तत्तेजसा विधूतातु चन्द्र स्प्रस्टुं शशाकन ।
सेना सा चतुरः साधून् वध्वा नीतवती परम् ॥१३॥

अर्थ—सिपाहियों की क्या शक्ति थी जो श्री गुरुजी तक पहुँच भी सकैं किन्तु उन्होंने श्रीगुरु जी के साथ के साधुओं में से चार साधुओं को अवश्य पकड़ लिया ॥२३॥

सदुष्टस्तान् समालोक्य भृत्यानाह रुषा वचः ।
पेषणेषु नियुज्यन्ता दम्भिका धूर्तका इमे ॥२४॥
ततस्तथाकृते सन्तः पेषणी दत्त वाहवः ।
वाष्पैः क्लेदित चूर्णास्ते सस्मरुश्चन्द्र पादयोः ॥२५॥
सहसा सर्वपेषिण्यः चेलुस्ताश्चक्र चञ्चलाः ।
चणान्निष्पेषयन्त्यश्च राशी कृतमणांश्चणान् ॥२६॥

गउड़ी पूर्वीमहला ४—हमरा विनउ सुनहु तुम ठाकुर हम शरण प्रभू हरि मांगे। जन नानक की लजपात गुरू है शिर वेचिउ सतिगुर आगे ॥५।१०।२४।६२॥ आदि ग्रन्थ साहब

नोट—इसका विस्तार प्रसङ्ग देखो हिन्दू धर्मव्यवस्था चतुर्थ खण्ड पृष्ठ २२२ से २२८ तक। सन्त उदासीन श्री रामदास जी चौथी पातशाही ने जब से श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से सादिकी का मन्त्र लिया उसके पश्चात् गृहस्थ (स्त्रीप्रसङ्ग) नहीं किया। आपका जन्म वि० सं० १५६१ कार्तिक वदी २ गुरुवार, तथा देवलोक वि० सं० १६३८ भाद्रों सुदी ३ को गोइन्द वाल में हुआ।

॥ प्रयागराज कुम्भ ॥

वसु राम रसेन्दौ च बारठे ग्राम उत्सवम्।
दीपावलीं विधायासौ चन्द्रोऽभाषत सेवकान् ॥१५॥

अर्थ—वि० सं० १६३८ मकर संक्रान्ति में प्रयागराज का कुम्भ आनेवाला था यह ध्यान कर पूज्यपाद श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बारठ ग्राम के अपने स्थान में दिवाली का महोत्सव कर अपने साथ उदासीन साधुओं की मण्डली ले इसी साल चलते भये ॥१५॥

सम्भाराः सम्भ्रियन्तां मे कुम्भ पर्वणि गम्यते।
तीर्थ राजस्य द्रष्टारः यान्तु सर्वे मया सह ॥१६॥

अर्थ—अपनीं मण्डली का सम्हाल करते हुये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् तीर्थराज प्रयाग के कुम्भ महापर्व पर जाते भये ॥१६॥

सशिष्यः सेवकैर्जुष्टः प्रतस्थेऽसौ निजाश्रमात्।
मार्गे च यवना दुष्टाः रुरुधुर्वर्त्म शस्त्रिणः ॥१७॥

अर्थ—अपनी मण्डली समेत मार्ग में चलते हुये एक मुसल्मानी सेना से आप का मिलाप हुआ ॥१७॥

हिन्दुं कदाचित् विरुणद्धि वोद्धा नेतीति नेतीति पद प्रचारः।
ततो विभिन्ना यवनास्समग्रा हिन्दुश्च सन्नाशयितुं सयत्नाः ॥१८॥

अर्थ—जो हिन्दुओं को दुखाने वाले थे, हिन्दू धर्म के रोकने वाले थे मुसलमान हिन्दुओं को नाश करने वास्ते अनेक यत्न करते थे ॥१८॥

अकबरो वरो दत्तः दुःखार्ताय हुमायुवे ।
श्री चन्द्रेणेति ते ज्ञात्वा कान्दिशी का दिशो ययुः ॥१९॥

अर्थ—उसने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को देख हिन्दुओं का पक्षपाती जान हिमायूँ और अकबर का वरदान देनेवाला समझ ॥१९॥

ततः परं प्रतस्थेऽसौ करनालं समागतः ।
अष्टम्यां मार्ग शीर्षे च सरस्वत्या स्तटेस्थितः ॥२०॥
तदानीमेव दैवेन मिर्जामोहम्मदोऽप्यगात् ।
दिल्लीं जेतुं सशस्त्रांस सहनीत्वा महाचमूम् ॥२१॥
चण्डकोपोऽब्रवीत्सेनां चन्द्रः सर्वानुगैः सह ।
बध्वा मत्सविधे शीघ्रं समानेयः स दाम्भिकः ॥२२॥

अर्थ—वङ्गाल के मुसलमानों ने इसीलिये बगावत करके अकबर के सौतेले छोटे भाई मिर्जा मुहम्मद को अकबर की जगह देहली का बादशाह बनाना चाहा था, वि० सं० १६३८ मार्ग शीर्ष बदी ८ को मिर्जामुहम्मद काबुल से लौटते देहली जाते रास्ते में करनाल के समीप पहोये ग्राम में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का सिविर लगा देख अकबर का हिमायती समझ उनके पकड़ने के लिये घमण्डवश अपने सिपाही भेजता भया ॥२०-२१-२२॥

तत्तेजसा विधूतातु चन्द्र स्प्रस्टुं शशाकन ।
सेना सा चतुरः साधून् वध्वा नीतवती परम् ॥२३॥

अर्थ—सिपाहियों की क्या शक्ति थी जो श्री गुरूजी तक पहुँच भी सकें किन्तु उन्होंने श्रीगुरु जी के साथ के साधुओं में से चार साधुओं को अवश्य पकड़ लिया ॥२३॥

सदुष्टस्तान् समालोक्य भृत्यानाह रुषा वचः ।
पेषणेषु नियुज्यन्ता दम्भिका धूर्तका इमे ॥२४॥
ततस्तथाकृते सन्तः पेषणी दत्त वाहवः ।
वाष्पैः क्लेदित चूर्णास्ते सस्मरुश्चन्द्र पादयोः ॥२५॥
सहसा सर्वपेषिण्यः चेलुस्ताश्चक्र चञ्चलाः ।
चणान्निष्पेषयन्त्यश्च राशी कृतमणांश्चणान् ॥२६॥

अर्थ—जिन्हें मिर्जा ने अपने पास इस इरादे से कैद करलिया कि इनके छुड़ाने को यदि इनका मुखिया या और कोई आवेगा तो उसे भी पकड़ ले जाऊंगा, ऐसा विचार उस दुष्टात्मा दम्भी ने उन साधुओं के आगे चक्की में गेहूँ पीसने को धर दिया वह साधु लोग मन ही मन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का स्मरण करने लगे जिसके प्रताप से एका एकी चक्की आप से आप घूमने लगीं क्षण मात्र में अन्न का ढेर लग गया ॥२४-२५-२६॥

दृष्ट्वेदमद्भुतं सर्वे चकिताः परितः स्थिताः ।
मुखान्यालोकमानास्ते स्तब्धा विस्फारितेक्षणाः ॥२७॥

अर्थ—यह अद्भुत चरित्र सब देख के चकित रह गये तथा वह सेना नायक भी बड़ा विस्मित हो स्तब्ध (सुन्न) रह गया ॥२७॥

तत्र चन्द्रोऽब्रवीदन्यान् चल्यतां कुम्भ पर्वणि ।
वंशीदासोऽवदच्छ्रुत्वा वाचं चन्द्राननाच्च्युतान् ॥२८॥

अर्थ—इधर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अर्द्धरात्रि बीतने के पश्चात् जमात को आगे चलने का आदेश करते भये तब वंशीदास उदासीन साधु ने हाथ जोड़ के कहा ॥२८॥

प्रभो सर्वज्ञ शिष्यास्ते चत्वारो यवनैर्हृताः ।
तान मोचय पुराभूयो यास्यते कुम्भ पर्वणे ॥२९॥

अर्थ—कि हे सर्वज्ञ महाप्रभु आपकी मण्डली के चार साधुओं को मुसलमान पकड़ ले गये हैं। प्रथम कृपा करके उनको छुड़ाइये पुनः आगे चलने की आज्ञा दीजिये ॥२९॥

तदाकर्ण्य स्मितं कृत्वा चन्द्रः प्रोवाच तं प्रति ।
सङ्गस्यन्ते च ते सर्वे कुरुक्षेत्रेमया सह ॥३०॥
पुरैवते गतास्तत्र विजहीहि वृथाशुचम् ।
प्रस्थीयतां शिवाः सन्तु पन्थानः सर्वतोऽखिलाः ॥३१॥

अर्थ—यह सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले कि तुम लोग चिन्ता मत करो चलो वह चारों साधु आगे के पड़ाव कुरुक्षेत्र में तुम्हें बैठे मिल जांयगे ॥३०-३१॥

अथ वंशीधरः प्रोचे दण्डो दुष्टस्य दीयताम् ।
उवाच तं पुनश्चन्द्रः करुणासिक्त शेमुषी ॥३२॥

अर्थ—पुनः वंशी धर हाथ जोड़ बोला कि दुष्टों को कुछ दण्डतो अवश्य मिलना चाहिये यह सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले ॥३२॥

मृतस्यमारणं नाम यद्दुष्टे दुष्टता नृणाम् ।
पुरैव पापी पापेन दग्ध लोक द्वयो ध्रुवम् ॥३३॥

अर्थ—मरे हुये को क्या मारना वह अपने दुष्ट कर्म के प्रभाव से दोनों लोक में निश्चय दग्ध (भस्म) हो जाता है ॥३३॥

नोट—प्यारे पाठकों श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का वचन सत्य हुआ अर्थात् मिर्जा महंमद दिल्ली पहुँचते ही बादशाह अकबर के जरिये परास्त कर दिया गया।

कुरुक्षेत्रं समागत्य ते पृष्टाः साधवोऽब्रुवन् ।
तत्र यच्चैव यादृक्य वृत्तं वृत्तं तदद्भुतम् ॥३४॥

अर्थ—धर्म प्रचार करते हुये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कुरुक्षेत्र पहुँचे उन चारों साधुओं को आगे ही बैठे देखा उन साधुओं ने उठ करके प्रणाम किया तब साधुओं ने कहा कि श्री गुरुदेव जी की कृपा से बँधे हुये साधु छूट के आगये ॥३४॥

पौष शुक्ल दशम्याञ्च मण्डली मण्डितो विभुः ।
प्रयागं प्रययौ चन्द्रः कुर्वन् पुण्याः कथाः पथि ॥३५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपनी मण्डली सहित कुरुक्षेत्र से धीरे २ चल मार्ग में अपने हिन्दू धर्म का प्रचार करते पौषसुदी १० को प्रयागराज पहुँचते भये॥३५॥

त्रिवेणी सङ्गमं गत्वा कारयित्वोपकारिकाम् ।
भोजनैः सहताश्चित्राः प्रावर्तन्त शुभाः कथा ॥३६॥

अर्थ—श्री गङ्गा जी के पार झूसी में गङ्गा तट त्रिवेणी के समीप रम्य छावनी पाय अन्न क्षेत्र खोल दिया साथ ही सायंप्रातः अपने उपदेशामृत का प्रवाह भी जारी कर दिया ॥३६॥

अपूपाश्च मोदकाश्च पायसश्चैव सूत्रिकाः ।
इण्डुरिकाः किलाटश्च दुग्धं दधि घृतं मधुः ॥३७॥
सावलेहो पस्कराश्च नाना व्यञ्जन संयुताः ।
शष्कुल्य ओदनश्चैव किसरः सूप एव च ॥३८॥
मिष्टान्नानि तथान्यानि घृत चौरी युतानि च ।
न समासानि भुक्तानि सर्वैस्तैस्तीर्थ यात्रिभिः ॥३९॥

अर्थ—जिस अन्न क्षेत्र में पूड़े, लड्डू, खीर, पूरी, अचार, दूध, घृत, मधु, दही, चावल, मिष्टान्नादि षट्रस नाना प्रकार के भोजन बारे २ से बनते थे उस भंडार में जोभी यात्रि या साधु आता था सब को पेट भर भोजन मिलता था श्री गुरु जी के प्रताप से अन्न कभी नहीं घटता था ॥३७-३८-३९॥

दीनाअनाथास्सकलाश्चतृप्तायेनैवतीर्थे नितरां भवेयुः ।
समस्तधर्मात्प्रवलश्च धर्मो नैतादृशः कोऽपि च धर्म मार्गः ॥४०॥

अर्थ—जिस अन्न क्षेत्र में दीन, गरीब, अमीर सब प्रकार से तृप्त होते थे ऐसा धर्म करने वाला उस समय कोई नहीं था ॥४०॥

कालान्तरे तृप्तिमवाप्नुवन्ति दानान्तरेणेति फलं प्रसिद्धम् ।
वासोऽत्रदानेन न शीघ्रमेव तृप्यन्ति देवाः पितरो मनुष्याः ॥४१॥

अर्थ—और दानों से लोग दूसरे काल में तृप्त होते हैं परन्तु अन्न व विद्यादान से तत्काल ही तृप्त हो जाते हैं देव पितर भी तृप्त हो जाते हैं ॥४१॥

प्रत्यक्ष मत्रैव फलं प्रभाति गृहेचतीर्थे सकले चदेशे ।
अयं प्रवन्धस्सुजनैस्सदैव विधेय एवञ्च महान् सुधर्मः ॥४२॥

अर्थ—प्रत्यक्ष फल देश, घर, तीर्थ सब जगह मिलता है इसलिये ऐसे उत्तम अन्न दान को हिन्दू मात्र को अपने हिन्दुओं में करना चाहिये ॥४२॥

अन्न वस्त्र समंदानं नैवास्ति धरणी तले ।
सनातन निवन्धोऽयं कथितो मुनि पुङ्गवः ॥४३॥

अर्थ—अन्न वस्त्र और विद्या के बराबर पृथ्वी में दूसरा दान नहीं है सनातन से यह धर्म मुनियों ने वर्णन किया है ॥४३॥

अर्थ—प्यारे हिन्दू वीरो उदासीन महात्मा आगे से ही कर्म निष्ठ त्यागी विरक्त होते आये हैं, श्रद्धालु लोग अपनी कमाई का द्रव्य सफल करने को यदि उनके पास धन लाके देते हैं तो वह उदासीन महात्मा लोग उस द्रव्य को साधु भोजन ग्रन्थ रचना, पाठशाला, गौशाला, या अन्य किसी परोपकार में लगा देते हैं। उदासीनो के ऐसा अन्न क्षेत्र (भण्डारा) देने वाला आज तक संसार में कोई दृष्टि नहीं आता। उदासीन महात्मा शास्त्रवेत्ता हिन्दू धर्म के मर्मज्ञ यह जानते हैं।

अन्नाद् भूतानि जायन्ते जीवंतिचन संशयः ॥८३॥ (शावर्त स्मृति)

अर्थ—अन्न से ही ब्रह्माने कल्प २ में प्रजा रची है अन्न से ही प्राणी उत्पन्न होके अन्न से ही बढ़ता हुआ अन्न में ही लय हो जाता है। देखो इसी बात को श्रुति भी डंके की चोट से कहती है।

आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः आपः पृथ्वी
पृथिव्या औषधयः औषधीभ्योऽन्नम् अन्नात्पुरुषः

अर्थ—आत्मस्वरूप ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ आकाश से वायु, वायु से अग्नि अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न और अन्न से पुरुष सर्वाङ्ग उत्पन्न हुआ, इसलिये अन्न ही पुरुष का उत्पन्न करने वाला पालने वाला और लय करने वाला है, इससे अन्न को **"अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्"** अन्न ब्रह्म है ऐसा जानकर **"अन्नं न निंद्यात्"** अन्न की कभी निन्दा न करै **"प्राणोवाऽन्नम्"**। अन्न ही प्राण है **"शरीर मन्नादनम्"** शरीर भी अन्न का ही बना है **"प्राणो शरीरं प्रतिष्ठितम्"** प्राण से ही शरीर की प्रतिष्ठा है तथा शरीर के सिवाय प्राण रह नहीं सकता, इससे प्राण और शरीर दोनों परस्पर अन्न और अन्नाद रूप हैं। **"शरीर प्राणः प्रतिष्ठितः तदे तदन्न मन्ने प्रतिष्ठितम्॥ सयएतदन्न मन्ने प्रतिष्ठितम्॥ वेद प्रतिष्ठिति अन्नवा नन्नादोभवति"** इसलिये **"अन्नंन परिचक्षीत्"** अन्न का परित्याग न करै (यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् वल्ली ब्रह्मानन्द तथा भृगु)

छान्दोग्योपनिषत् में अन्न को ब्रह्म तक की उपमा दी गई है। कलियुग में प्राण ही अन्न में बसते हैं, इसलिये अन्न का दान भेद भाव मिटा के उदासीन महात्माओं के यहाँ सब से अधिक आज तक विद्यमान है। उदासीन साधु को प्रारम्भ में शिक्षा यही दी जाती है कि बांट के खाना औरों के देखते अकेले कभी न खाना, उदासीन महात्मा के स्थान में कोई भी भेष का, देश का, धर्म का, हिन्दू व्यक्ति आ जाता है तब सब से प्रथम उसको अन्न जलका सत्कार किया जाता है। यह बात अन्य लोगों में कम पाई जाती है, इसी प्रकार उदासीन महात्मा अपने सेवक गृहस्थों को भी करने का उपदेश देते हैं।

शास्त्रों में लिखा है जो मनुष्य नियमानुसार साधु महात्माओं को रोज भोजन कराता है वह एक लाख कपिला गऊ के दान का पुण्य प्राप्त करता है। वह सब कष्टों से मुक्त हो संसार में सुयश का भागी बनता है। जिस मनुष्य के पास धन होते हुये साधुओं को अन्न नहीं देता वह लोभी कृपण मनुष्य संसार में अपयश का भाजन बन अन्त में नरक को जाता है। ऐसे ही पुरुषों का द्रव्य चोरी ठगी अग्नि और सरकार के मुकदमाबाजी, शराब वेश्या, मांस तथा बीमारी आदि किसी भी बुरे काम में नष्ट होता रहता है।

माघ शुक्ले च पञ्चम्यां वर्षा जाताः सुदारुणाः ।
शीतसंकुचितः साधुः समागत्याब्रवीद्वचः ॥४४॥

अर्थ—माघ सुदी ५ (बसन्त पञ्चमी) के दिन वर्षा बड़े जोर सोर से पड़ रही थी जिस से शीत का प्रचंड प्रकोप हो रहा था इतने में एक वृद्ध साधु शीत से थर थराता कांपता आकर बोला ॥४४॥

भगवन् जायमानाया: वृष्टेर्यातो ह्यहर्गणः ।
भृशं जाड्याऽऽकुलालोकाः दन्तवीणां कणन्ति हि ॥४५॥
वृष्टि निरुध्यतां देव पितीर्यन्ताश्च मोदकाः ।
हृष्टाः पुष्टाश्च तुष्टाश्च लोका गायन्तु तेयशः ॥४६॥

अर्थ—हे भगवन् कई दिनों से प्रबल वर्षा लग रही है, सूर्य का दर्शन नहीं हुआ, शीत के मारे दांत कड़कड़ा रहे हैं, पृथ्वी जल से पूर्ण हो रही है, आप प्रतापी अवतारी साधु महात्मा हैं, सो वर्षा को बन्द कराके लड्डू, जलेबी, घेवर, कचौड़ी का चेत्र खिलावें । आपको सर्व शक्तिमान् जान के कहा है ऐसा करने से सब हृष्ट (हर्षित) पुष्ट (संतुष्ट) तुष्ट (तृप्त) हो लोग आप का यश गायन करेंगे ॥४६॥४५॥

मन्दं स्मित्वा ततश्चन्द्रः हनुमन्त मुवाच तम् ।
हनुमन् माचिरं सिद्धं द्वयमेतद्विभाव्यताम् ॥४७॥

अर्थ—यह सुन मन्द २ मुस्कराते श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले हम आपको जानते हैं, आप हनुमान जी हैं, आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दिये । तब हनुमान जी (साधु रूप में) बोले हम भी आप को पहिचानते हैं कि आप साक्षात् शङ्कर जी हैं आपने अपने हिन्दू धर्म रक्षार्थ संसार में आकर उदासीन भेष धारण कर सब का कल्याण किया है आप के दर्शन कर मैं बड़ा कृतार्थ हुआ हूँ ॥४७॥

प्रशान्ता चततो वृष्टि दिदीपे भास्करो दिवि ।
मोदकानां पुनर्वृष्टिः प्रवृत्तः सर्व मोदिनी । ४८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी बोले हे हनुमान जी आपकी इच्छानुसार दोनों कार्य हो जाँयगे श्री गुरु जी के ऐसा कहते ही वर्षा बन्द हो सूर्य निकल आया जिससे सर्व लोग सुखी हो गये ॥४८॥

ज्ञान प्रकाशमधिकार वृत्तं भाण्डारि नाम्ना प्रथितं समाजे ।
मिष्टान्न दानन्त्वधिकं विधेयं यथोक्तवान् वृद्ध तमो हनूमान् ॥४६॥

अर्थ—गुरुदेव जी ने अपने साधु को कहा कि ज्ञान प्रकाश श्री भण्डारी को कह दो कि लड्डू आदि पक्के भोजन का क्षेत्र बाँटे ॥४६॥

भण्डारं नेता च जगाद शिष्यः क्षेत्रेन चाप्यस्ति यथातवोक्तिः ।
शिष्यैस्समेतश्च गुरुस्तदानी भण्डार कोशं समुपा जगाम ॥५०॥

अर्थ—भण्डारी ने आकर कहा कि मीठा पक्का प्रसाद रसोई में आज नहीं बना है कच्चा अन्न (दाल फुल्का चावल सागादि) बना है श्री गुरुदेव जी श्री भण्डारी के सहित भण्डार घर में गये ॥५०॥

मिष्टान्न पात्रं परिपूर्णमेव पूर्णं स्वयं सिद्धतमं बभूव ।
आश्चर्य मेतच्च गुरोर्दयालोस्सर्वे नितान्तं चकिताबभूवुः ॥५१॥

अर्थ—वहाँ ज्ञान प्रकाश देखता है कि सब पक्का अन्न बना रक्खा है यह देख आश्चर्य में पड़ श्री गुरुदेव जी के चरण पकड़ बोला आप सर्व कला समर्थ हैं मेरी इतनी सामर्थ कहाँ जो आप का भेद पा सकूँ ॥५१॥

साधोर्महत्वं च समस्त लोके जानाति सर्वं परमेश्वरश्च ।
जनैरगम्यं परमाद्भुतश्च विलक्षणन्ध्येय तमञ्च वेदे ॥५२॥

अर्थ—आप ऐसे महात्माओं का महत्व समस्त लोक में परमेश्वर ही जानता है मनुष्य को अगम है आपके चरित्र का रहस्य वेदों में प्रसिद्ध है ॥५२॥

सर्वे तदानीं चरणौ गुरोश्च धृत्वा च कृत्वा प्रणिपात वृत्तिम् ।
धन्यस्त्वमेवासि महात्मवर्य शिवस्वरूप परमावतारः ॥५३॥

अर्थ—सब लोग श्री गुरुदेव का चरण पकड़ प्रणाम करने लगे आप शिव हैं आप का परम श्रेष्ठ अवतार है अन्न क्षेत्र अटूट बर्ताया गया यह देख वृद्ध महात्मा हनुमान जी स्तुति करते बोले ॥५३॥

अपन्न देवो मनुजो न यक्षो योगी प्रवीरो न च सिद्ध सिद्धा ।
किन्तु स्वयं ब्रह्म शिव स्वरूपो नृणां हितार्थं समवाततार ॥५४॥

अर्थ—आपको देख कलियुग लज्जित हो गया आप मनुष्य देव यक्ष योगी नहीं हैं किन्तु साक्षात् शिव ब्रह्म हैं, आपका अवतार जीवों के कल्याण का हेतु है ॥५४॥

किन्तु स्वयं ब्रह्म शिव स्वरूपो नृणां हितार्थं समवाततार।
व्यग्राश्च हिन्दुप्रवरा स्सुरक्षा मापुस्त्वतेधन्य तमा बभूवुः ॥५५॥

अर्थ—आप संसार के हित के लिये स्वयं प्रकट हुए हैं आपने दुःखी हिन्दुओं को सुखी किया है॥५५॥

समस्तकल्पे भगवान् स्वयम्भू हिन्दू प्ररक्षार्थं समाधि चित्तः।
सञ्जायते गुप्त तमं रहस्यं स एव जानाति स्वकं स्वरूपम्।५६।

अर्थ—सब कल्पों में आप भगवान् शिव प्रकट होते हैं हिन्दू रक्षा के वास्ते अपना छिपा रहस्य आप (गुरुदेव) ही जानते हैं॥५६॥

ऋद्धिश्च सिद्धिश्चरणौ तदीयौ संसेवते तस्य तपः प्रभावात्।
लक्ष्मीस्स्वयं तिष्ठति पादुकायां देवास्समायान्ति च दर्शनार्थम्।५७।

अर्थ—ऋद्धि सिद्धि दोनों आप के चरणों में पड़ी रहती हैं लक्ष्मी स्वयं आप के चरण-पादुका में बसती है देवगण आपके दर्शनार्थ आते हैं॥५७॥

इन्द्रस्य हस्ते विमलञ्च छत्रं पार्श्वद्वये चामर संयुते च।
ऋद्धिश्च सिद्धि परितिष्ठितीति संपश्यते शेष समूह जुष्टः।५८।

अर्थ—इन्द्र के हाथ में छत्र चामर है ऋद्धि सिद्धि बगल में हैं परन्तु आप श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी से सब देवता आकर कार्य करने की आज्ञा मांगते हैं॥५८॥

वृद्धो हनूमान् वचनं बभाषे त्वत्सम्प्रदाये न समो न कश्चित्।
यद्दान धाराऽधिक भक्ति युक्तः सन्दृश्यते ते विमले समूहे॥५६॥

अर्थ—वृद्ध हनुमान जी ने कहा कि आप के उदासीन सम्प्रदाय के बराबर कोई नहीं है इस सम्प्रदाय की समता अन्न दान करने में कोई न कर सकेगा॥५६॥

श्रौतं चतुर्थाश्रमनाम धेयं मतं ह्युदासीन पद प्रवाच्यम्।
निन्दन्ति ये बुद्धि विवेक हीना हानिं लभन्ते नितरान्तु जीवाः।

अर्थ—वैदिक चतुर्थाश्रमी अनादि उदासीन सम्प्रदाय है इस सम्प्रदाय की जो निन्दा करेगा उसका नाश हो जायगा॥६०॥

भक्तिं प्रकुर्वन्ति मतेऽच शुद्धे पुत्रप्रपौत्रादि धनेन युक्ताः।
नाना सुखं लेश गतौ च नित्वं लोकान्तरे देव सुखं प्रभातम्।

इस सम्प्रदाय की जो शुद्ध हृदय से भक्ति करेगा वह पुत्र पौत्र धन धान्य सम्पन्न होगा परलोक में परमगति पावेगा ॥६१॥

एतस्य शुद्धस्य मतस्य शिष्याः भवन्ति ये भक्ति वशाद् युगेस्मिन् ।
धन्याश्च वैकुण्ठ सुखन्नृलोके सम्प्राप्नुवन्तीति च वेदवाक्यम् ॥६२॥

अर्थ—इस सम्प्रदाय के जो भक्ति पूर्वक चेला या सेवक बनेगें वह लोग वैकुण्ठ का सुख संसार में ही पावेंगे ॥६२॥

श्रीचन्द्रो भगवानाह हनुमन्त मिदं वचः ।
राम भक्त इहास्वत्वं दर्शनात्ते जनोखिलः ॥६३॥

अर्थ—श्री हनुमान जी का यह वचन सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले हे हनुमान जी आपने अपनी प्रबल भक्ति से श्री राम जी को वशकर रखा है आप के दर्शन कर अखिल जन सुखी होंगे ॥६३॥

हनूमतश्चाप्युपदेश वाक्य फल प्रदानं कुरुते गुरुश्च ।
हेहे हनूमन्निह तिष्ठ तिष्ठ त्वद्दर्शनेनैव कलौ मनुष्याः ॥६४॥

अर्थ—श्री हनुमान जी को श्री गुरुदेव जो सदुपदेश देते बोले कि हे हनुमान जी तुम यहाँ पर स्थित हो जाओ तुम्हारे दर्शन से कलियुगी मनुष्य पवित्र होंगे ॥६४॥

श्रुत्वेतद्वचनं तस्य बद्धाञ्जलिर्नताननः ।
तथेति हनुमांस्तस्थौ दुर्गस्यैवा विदूरतः ॥६५॥
तत्र श्रीचन्द्र भगवान् कारयामास सुन्दरम् ।
सजलं विमलं शुद्धं राम भक्तस्य मन्दिरम् ॥६६॥
एतन्मन्दिर मालोक्य कोटि जन्म कृतान्यपि ।
दुरितानि विनश्यन्ति जनानां पापि नामपि ॥६७॥

अर्थ—यह बचन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का सुनकर हनुमान जी हाथ जोड़ के नमस्कार कर वहीं किले के पास त्रिवेणी के समीप निवास करते भये, जिनका दर्शन लोग दूर दूर से आकर करते हुये अपना जन्म सफल करते हैं वह मन्दिर सुन्दर मनुष्यों के पाप का नाश करने वाला है ॥६५—६६—६७॥

चरितममलमेतद्योऽद्भुतं चन्द्रभक्तः,
पठति यदि मनुष्यः सादरं वा शृणोति ।

स सकल बसुधायां दान पुण्यं वृणोति,
वसति च शतकोटि वत्सरांश्चन्द्र लोके ॥६८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का यह विमल चरित्र भक्ति भाव सहित जो पढ़ेगा और सुनेगा वह संसार में धन, धान्य, पुत्र, पौत्र से भर पूर हो भगवद्भक्ति करता हुआ अन्त में भगवान् के धाम जाय करोड़ों वर्षतक निवास करता रहेगा ॥६८॥

प्यारे हिन्दू वीरो श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के अन्न क्षेत्र खोलने से आज तक प्रयागराज हरिद्वार गोदावरी और उज्जैन आदि तीर्थों में कुम्भ अर्द्धकुम्भी आदि विशेष पर्वों के अवसर पर उदासीन साधुओं के विशाल अन्न क्षेत्र लगते आते हैं।

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहन्सावतंस ब्रह्म निष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगी राज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्रांकिते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे श्री राम दास दाढ़ी से चरण झाड़न एवं प्रयागराज कुम्भ यात्रा श्री हनूमान मिलन प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी एकोन चत्वारिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥३९॥

॥ चत्वारिन्शत्तमाकिरण प्रारम्भः ॥

॥ सुखमनी प्रसङ्ग ॥

बाण बाण रसेन्दौ च सपत्नीकः सभक्तिमान् ।
अर्जुनः पुनरायातः बारठे ग्राम उत्तमे ॥१॥

अर्थ—वि० सं० १६५५ में श्री अर्जुन देव जी पंजवी पातशाही अपनी धर्म पत्नी गंगा समेत दुबारा बारठ ग्राम आते भये ॥१॥

श्रीचन्द्र दर्शनं कृत्वा कृतकृत्यौ वभूवतुः ।
गङ्गा देवी विधुं दृष्ट्वा न कथं मोद माप्नुयात् ॥२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन कर कृतकृत्य होते भये, चन्द्रमुखी गंगा देवी ने भी महाराज का दर्शन कर वह आनन्द प्राप्त किया जो वाणी के कथन से बाहर है ॥२॥

मार्जयित्वा च कूर्चेन श्रीचन्द्र चरणौ मुहुः ।
अर्जुनश्चन्द्रदेवश्च तुष्टाव विविधैः स्तवैः ॥३॥

❋

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

अर्थ—श्री अर्जुन देव जी अपनी दाढ़ी से बड़े प्रेम और श्रद्धा से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के चरण झाड़ते हुये बहुत प्रकार से स्तुति करते भये। यह बात सबसे बड़ी (प्रथम की) वाले वाली जन्म साखी वि० सं० १९६३ लाहौर की छपी पन्ना ६४३ में लिखी है तथा सबसे अधिक मान्य प्रमाण श्री ग्रन्थ साहब में श्री अर्जुन देव जी अपने मुख से बताते हैं ॥३॥

गूजरी महला ५ केशसंग दास पग झारउ यहै मनोरथ मोर २।११।२०
सूहीम० ५ केशांका कर चवर ढुलावां चरण धूरि मुखलाई ४।७।५४
गूजरीम० ५ केशांका कर बीजना संत चवर ढुलाऊ।
शीश निहारउ चरण तल धूड़ि मुख मस्तक लाऊं॥
मिस्ट वचन बेनती करँउ दीन की निआई।
तजि अभिमान शरणी परउ हरिगुण निधि गाई ४।२।४२

अर्थ—इस प्रकार श्री अर्जुन देव जी ने बहुत स्तुति के शब्द कहे हैं जो श्री ग्रंथ साहब में लिखे हैं यहाँ ग्रंथ वृद्धि भय से नहीं लिखे।

तुष्टाव धीरं शिवमूर्तिमूर्तमक्षय्यदेवं गुरुदेव देवम्।
सदारमन्तं हृदयारविन्दे श्रीचन्द्र देवञ्च गुरुं भजामि॥४॥

अर्थ—हे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज आप अक्षय हैं साक्षात् शिव मूर्ति गुरु देव देवाधि देव हैं हृदय कमल में रहने वाले हैं मैं आप का भजन करता हूँ॥४॥

वेदैश्च सर्वै नितरां प्रवेद्यं माया मयं ज्ञान कला कटाहम्।
स्रष्टा च पादा कल काल कालः संहारकर्ता सम शक्तिशाली॥५॥

अर्थ—सर्व वेदों ने आप का यश गायन किया है सर्जक (उत्पन्न करता) रक्षक संहारक सर्व शक्तिमान आप ही हैं॥५॥

❋—इस यंत्र को प्रथम भोज पत्र पर अनार की कलम से लाल चन्दन से सवा लाख लिखे। लिखते समय "ॐ गुरु श्रीचन्द्राय नमः" यह नवाक्षर मन्त्र जपता जावे प्रति पूर्णमासी रोट प्रसाद करके श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का भोग लगावे तब सिद्ध होता है, फिर इस यंत्र को कांसे के कटोरे में लिख कर धोके स्त्री को पिलाने से सुख पूर्वक बालक उत्पन्न होता है, ऐसा श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का वर्दान है, यह सिद्ध यंत्र है।

वेदप्रवक्ता खिल कालकूट कटाह कल्लोल कलाभि काली ।
काल त्रयाऽवाध्यतमं प्रपञ्चं जानाति धीरान् गुरुदेव देवः ॥६॥

अर्थ—आप वेदों के वक्ता हैं कालकूट विष को गले में रखने वाले ब्रह्माण्ड को आनन्दित करने वाले तीनों काल अवाध्य गुरुओं के गुरु, देवों के देव महादेव हैं आपको कोई धीर पुरुष ही जान सकता है ॥६॥

द्रष्टारस्तु प्रसन्नाश्च सेव्य सेवक दर्शनात् ।
अहो धन्य तमो धीरस्सर्व कार्याभि चिन्तिकः ॥७॥

अर्थ—यह गुरु शिष्य का सच्चा भाव देख कर सब जनता प्रसन्न हो कहने लग गई हे गुरुदेव आप धन्य हैं सब के हित चिन्तक हैं ॥७॥

गुरुदेव महादेवस्साक्षात्शङ्कर शङ्करः ।
भयङ्करो भयाधाशो भय भाव भयानकः ॥८॥

अर्थ—सबकी चिन्ता करने वाले आप साक्षात् शङ्कर हैं दुष्टों को भयङ्कर हैं संसार के भयनाशक हैं॥८॥

वाण वाण रसेन्दौ श्री वैक्रमेऽब्दे शुचौ सिते ।
पौर्णमास्यां चन्द्र देवं चक्रे सिद्ध गुरुं सुधीः ॥६॥

अर्थ—इस प्रकार अनेक स्तुति करते हुये श्री अर्जुन देव जी पंजवी पातशाही ने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को वि० सं० १६५५ आषाढ़ सुदी १५ के दिन सिद्ध गुरु धारण कर संत उदासीन बने ॥६॥

श्रीचन्द्र भगवांस्तस्य श्रुतौ श्रुति गुणोदितम् ।
मन्त्रं प्रोवाचार्जुनो ऽपि स्वी चक्रे ग्रन्थ साहबे ॥१०॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने श्रुति स्मृति प्रतिपादित गुरु मन्त्र श्री अर्जुनदेव जी को सुनाया जिसका प्रमाण श्री ग्रंथ साहब में लिखा है जिसको श्री अर्जुनदेव जी स्वयं अपने बनाये श्री ग्रंथसाहब राग कानड़ा महला ५ में स्वयं स्वीकार करते हैं "मनहि प्रकाश भयो भ्रम नास्यो मन्त्रदियो गुरु कान ॥१०॥

नोट—श्री अर्जुन देवजी अपने गुरुदेव श्रीचन्द्र भगवान् को साधु मूर्ति बता रहे हैं।

विलावलमः ५-साधु मूरति गुरु भेट्यो नानक मिल सागर बून्द नहीं अनहेरा २।१।११७॥

श्रीमानर्जुन देवश्च ग्रन्थ रत्नं च निर्ममे ।
भगवन्नाम कीर्त्यर्थं सनातन पथानुगम् ॥११॥

अर्थ—एक समय वि० सं० १६६० में श्री अर्जुनदेवजी ने भगवत् नाम महिमा साधु संत की उपमा की कविता १६ अष्टपदी बनाई पीछे इनकी जबान रोग होने से रुक गई ॥११॥

साधु रौदासीन वृद्धः वोधयामास चाऽर्जुन ।
श्रीचन्द्र देव संपूज्यो सिद्धस्तेन मनोरथः ॥१२॥

अर्थ—तब बाबा बुढ़ा जी सन्त उदासीन के समझाने से श्री अर्जुनदेव जी अपनी भक्त मण्डली समेत श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास बारठ ग्राम में आय कुटिया के बाहर खड़े २ स्तुति करते बड़े प्रेम से कहते हैं ॥१२॥

सोरठ मः ५- हम मैले तुम ऊजल करते ॥१७।२०॥

तथा सूही राग म० ५ "भाग ठरे हरि सन्त तुम्हारे" से लेकर ५ शब्द तक स्तुति की है जो ये सब शब्द आदि ग्रन्थ साहब में हैं इसलिये पाठक वहां पढ़ें ।

सूहीमः ५- चरण धूरि तेरी सेवक मांगे तेरे दर्शन कउ बलिहारी,
चरण कमल तेरे धोय धोय पीवां मेरे सतिगुरु दीन दयाला ।
कुरवान् जाई उस बेला सुहाई जब तुम्हरे द्वारे आइआ ॥४।८।५५॥

इसी आशय का दूसरा शब्द भी कहते हैं ।

देव गंधारीमः ५ सरब सुखा गुरु चरणा ॥
कलिमल डारन मनहिसधारन यह आसर मुहितरना ॥१॥
॥१॥ रहाउ॥ पूजा अरचा सेवा बन्दन यहै टहल मोहि करना
विगसै मन होवै परगासा वहुरिन गरभै पड़ना ॥१॥
सफल मूरति परसउ संतनकी यहै धिआना धरना ॥
भइउ कृपाल ठाकुर नानक कउपरिउ साधकी सरना ॥२॥१६॥

भावार्थ—चरण साकार देह धारी के होते हैं न निराकार के, इसी प्रकार दर्शन भी साकार का होता है, चरण कमल धोयर के पीना प्रत्यक्ष (वर्तमान) का होता है, सो श्री अर्जुन देव जी के समय में वर्तमान श्री ११०८ सद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ही थे जिनको सिद्ध गुरु धारण किया था, तभी अपने आपको सेवक कहा है, जिनके द्वारे आके अर्जुन देव जी उनके

दर्शनार्थ खड़े २ स्तुति कर रहे हैं, उपरोक्त प्रसङ्ग की पुष्टि वास्ते देखो ग्रन्थ उदासीन सम्प्रदाय भाग १ खण्ड १ अध्याय ५ पृष्ठ १७ सरदार गुरु बक्श सिंह के प्रबन्ध से अमृतसर का छपा।

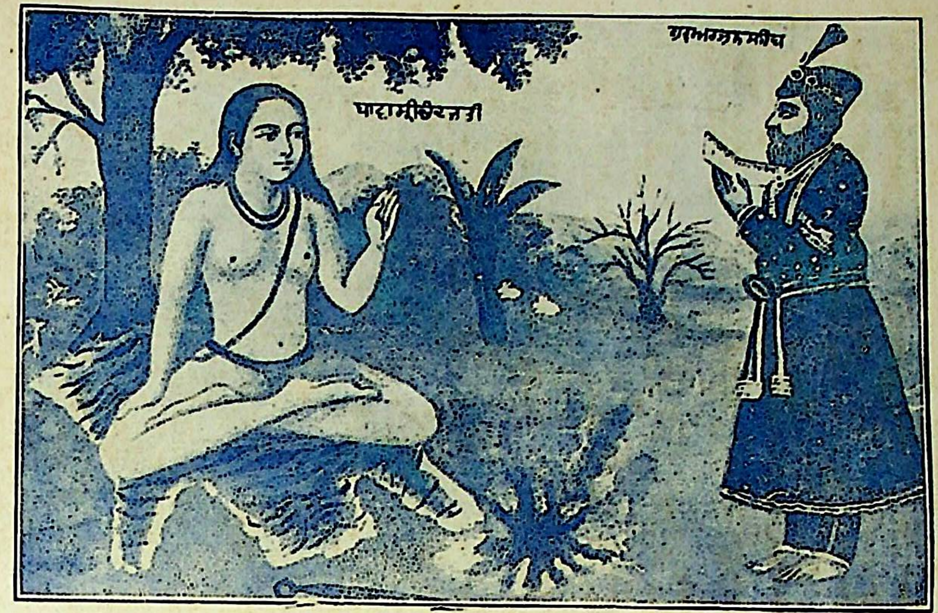
वीच सुखमनी करीबखान, सोला अष्टपदी तक जान।
फिर आगे रुक गई जबान, जकड़ गई उचरे नहि वान ॥
पुनिगुरु ने लिखदई इशारी, यह क्या हमको भइ बीमारी।
अबरसना हरि गुण नहि गाय, विषयों को बहुविधि लपटाय ॥
सैन समझ बूढ़ा यों बोले, गुरु अर्जुन हैं शूधे भोले।
गुरु श्रीचन्द्र नहि आदि मनायो, याते विघ्न तोहि पै आयो।
अब चालो सब मिल परिवार, वारठ ग्राम गुरू करतार।
सभी संगतां चलीं पियारी, श्रीगुरु श्रीचन्द्र उरमहिधारी ॥
बारठ ग्राम गये गुरु पास, दोउ कर जोर करी अरदास।

दोहा—मत्था टेकत भे तभी चरण कमल धरमाथ।
श्रीचन्द्र नानक गुरू इक्क जोति द्वै आथ ॥

कवित्त—सुत अपराध करैं जननी न चित धरै भूल चूक परै हम गुरु बक्श लीजिये। दास पर मेहर करो कुष्ट दाग चीन हरो गुरु श्रीचन्द्र जी धूड़ि चरण दीजिये। पंजसै मोहर गुरु भूषण समेत घोड़ा चरण पै शीश धरै पूजा निज लीजिये। शङ्कर औतार निर्वाण गुरु श्रीचन्द्र जी दोष जोऊ रोपै कुम्भी नरक सड़ीजिये ॥२१॥

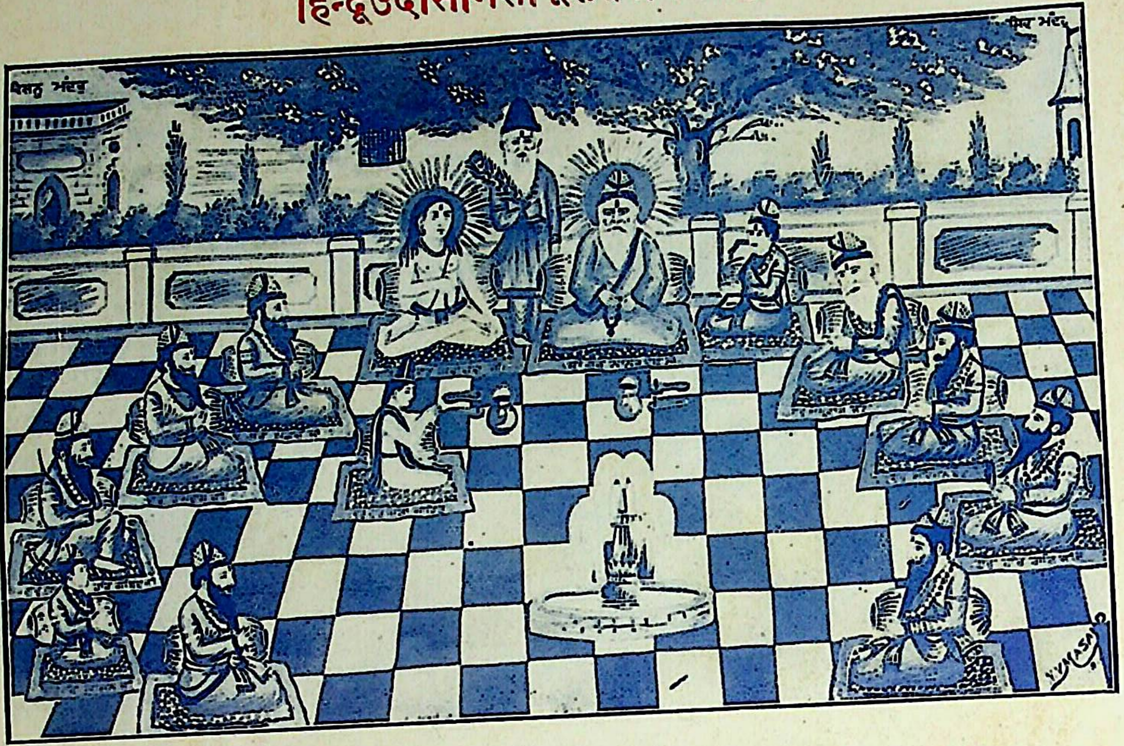
श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की जब समाधि खुली तब श्री अर्जुन देवजी ने ५००) रुपया और एक घोड़ा सजा हुआ जो साल के साल भेट दिया करते थे वह चढ़ाय हाथ जोड़ अपनी बनाई कविता १६ अष्टपदी सुनाते अपने कष्ट के निवृत्त होने की प्रार्थना की श्री ११०८ सद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले गायत्री में २४ अक्षर होते हैं तथा दिन में भी २४ घंटे होते हैं, मनुष्य के भी २४६०० स्वास एक रात्रि दिन में चलते हैं, इस लिये इस कविता में आठ अष्टपदी और बना के २४ अष्टपदी पूरी करदो, तब अर्जुन देव जी ने कहा हे सद्गुरू जी कृपा करके आठ अष्टपदी आपही बनाके पूर्ण करें, तब महाराज श्रीचन्द्र भगवान् ने आठ अष्टपदी रचनाम सुखमनी रखके बोले जो इसका नित्य पाठ करेगा उसका स्वास २ सफल होगा

श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र उदासीनाचार्य जी, को श्री अर्जुनदेव संत उदासीन सुखमनी सुना रहे हैं सुखमनी में आठ अष्टपदी पिछली जगद्गुरु श्रीचन्द्रजी ने बनाई हैं अर्थात्, अपने मुखसे उचारी हैं।



Before Shri 1108 Jagatguroo Shrichandra Udasinacharya
Shri Arjundev Sant Udasin praying taking Sukhmani.

हिन्दूउदासीनसाधूसंतपातशाही



Hindoo - Udasin Sadhu - Sant Patshahi

ऐसा कह अर्जुन देव के रोग* दोष नष्ट होने का आशीर्वाद दिया आठ अष्टपदी रचने का प्रसङ्ग देखो आदि ग्रन्थ साहब टीका फरीद कोट पहिली वार का छपा जिल्द १ पृष्ठ १२५१, गुरु तीर्थ संग्रह पृष्ठ ४०, लक्ष्मी हुलास, प्रबोध सागर, गुरु श्रीचन्द्र प्रकाश, गुरु श्रीचन्द्र सूर्य प्रताप पृष्ठ १८४, गुरु उदासीन मत दर्पण भाग २ पृष्ठ ३७-३८ हिन्दू धर्म व्यवस्था चतुर्थखंड आदि आदि पुस्तकों में विस्तार से आता है ॥

नोट—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने अर्जुन देव जी से कहा कि अब आप की आयु तीन वर्ष शेष रह गई है इसलिये पिछली अवस्था में भगवान् राम-कृष्ण साधु-संत की उपमा वाले एक ग्रन्थ की रचना करो। उसके बीच में यह सुखमनी तथा हमारी बाणी (बनाई हुई) जपुजी तथा अपने पूर्वजों के शब्द भी सम्मलित कर देना, जिसके पढ़ने से हिन्दुओं को सब प्रकार का लाभ पहुँचे। संत उदासीन श्री अर्जुन देव जी सत्य वचन कह प्रणाम कर अमृत सर आय वि० स० १६६१ में श्रीगुरु नानक देव जी से लेकर २-३-४ गुरुओं तक के शब्द मिला के अपने शब्दों के साथ सुखमनी रख ४८ महापुरुषों की वाणी का संग्रह कर एक भाषा की कविता में बृहद् पुस्तक तय्यार किया जिसे अब आदि ग्रन्थ साहब† के नाम से पुकारते हैं।

खे वाहु रसचन्द्रे च वैशाखे सप्तमे तिथौ।
मङ्गले वासरे श्रीमानर्जुनो जन्म लब्धवान् ॥१३॥
रामदासो रामदासः पिता यस्य स धार्मिकाः।
भानी च जननी पुण्या वैदिकाचार संस्कृतः ॥१४॥
पुत्रस्यापि कृतास्तेन संस्कारा वैदिकाः समे।
यज्ञ दान समायुक्ताः यथा कालं यथा विधि ॥१५॥
राम रस रसेन्दौ च ज्येष्ठे शुक्ले चतुर्थ के।
शुक्रे लव पुरे साधु रर्जुनो दिवमभ्यगात् ॥१६॥

---

*अर्जुन देव कोढ़ वक्शाया, भेट सुखमनी की दे आया (गुरु श्रीचन्द्र प्रकाश पृष्ठ ३८७)

†हिन्दू उदासीनों का बनाया जानकर ही पञ्जाब, सिन्धु, शरहदी के हिन्दुओं की ग्रन्थ साहब पर अधिक श्रद्धा थी किन्तु कुछ काल से अकाली खालसे जो अपने आपको हिन्दू होने से भी इनकार करते हुये अपने हक्क ही अलग मांगते हैं वह जहां २ ग्रन्थ साहब रक्खा हो वहाँ २ की मिल्कियत को अपनी अनधिकार चेष्टा से कब्जा करने लगे, इसका महादुःखद परिणाम यह निकला कि ग्रन्थ साहब जी से हिन्दुओं की श्रद्धा उठती चली जाती है। ऐसा न होना चाहिये।

अर्थ—श्री अर्जुन देव जी संत उदासीन का जन्म वि० सं० १६२० वैसाख वदी ७ मङ्गल वार पिता राम दास जी सोढ़ी खत्री हिन्दू के घर माता बीबी भानी जी से हुआ, मुण्डन जनेऊ विवाह संस्कार सब हिन्दू वैदिक रीति से होता रहा, वि० सं० १६६३ जेष्ठ सुदी ४ शुक्रवार को लाहौर में देवलोक हुआ ॥१३-१४-१५ १६॥

इदं चरितमद्भुतं शमधनः पठेद्यः पुमान्,
स सद्य उरुगौनसा भुजग वत्त्वचा मुच्यताम् ।
जगत्याखिल सम्पदः समनुभुज्य सायुज्य भाक्,
भवत्वम रसंस्तुतः श्रुति नुतः कुलं पावयन् ॥१७॥

अर्थ—यह अद्भुत चरित जो भाग्यवान पुरुष पढ़े या सुनेगा वह इस लोक में अखिल सम्पदा का सुख भोगता हुआ अन्त में सांप की केचुँलीवत् शरीर छोड़के सायुज्य मुक्ति पायेगा उसकी सब देवता स्तुति करेंगे उसका कुल पवित्र हो जायगा ॥१७॥

स चन्द्रकलयाञ्चितः शिखर माश्रितो भूभृतः,
तदीय तनयः मनः सदन वास बद्धादरः ।
विपन्न धरणी तलावन नरावतारो हरः,
पुनातु जन मानसं कलुषितं मरालायितः ॥१८॥

अर्थ—श्री शङ्कर जी चन्द्र कलाओं से सम्पन्न पृथ्वी पर आश्रित सब पर्वतों से ऊँचा गिरराज हिमालय की कन्या पार्वती के मन रूपी गृह में निवास करने वाले धरती के निवासी मनुष्यों का कष्ट हरण करने को आके नरावतार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का रूप धारण करते भये, वह कैसे हैं जो अपने जनों के कलुषित हृदय को शुद्ध स्वच्छ हंस सदृश पवित्र करने वाले हैं ॥१८॥

ब्रह्म महेन्द्र सुरेन्द्र मरुद्गण रुद्र मुनीन्द्र गणैरतिरम्यं,
चार अखण्ड शरीर विराजनु तं हि सतामवितार मुदारम् ।
यशसे भरभूमि सनाथ भई प्रगटी कृत चिद्घन धर्म ध्वजं,
भजतो गुरुपूरण दीन दया घन आनन्ददायक सर्व जनम् ।१९।

अर्थ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, मरुद्गण, शंकर, मुनीश्वर वृन्दवत्, सुन्दर प्रतीत होने वाले हैं जिनके शरीर में अखण्ड विभूति विराज रही है वह संसार के तारने वाले हैं जिनके सुन्दर यश से पृथ्वी सनाथ हो गई और बहुत दिन से

गिरी हुई धर्म की ध्वजा पुनः जिनके उपदेश से फहरा उठी ऐसे श्रीगुरुदेव जी जो दीनों पर पूर्ण दया करने वाले हैं उनका भजन करना सब को आनन्द दायक है ॥१६॥

इति श्री साधु बेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्तिसक्खर नगरे श्री मद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरू श्री १००८ स्वामी वनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे अन्तिम अष्ट अष्टपदी सुखमनी रचन एवं गुरु अर्जुनदेव स्तुति करण प्रसंग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी चत्वारिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥४०॥

॥ एक चत्वारिन्शत्तमा किरण प्रारम्भः ॥

पुण्ये लवपुरे श्रीमान् श्रीचन्द्रो भगवान्यतिः ।
उपादेष्टुं जहाँगीरं ययौ शिष्यैः समन्वितः ॥१॥

अर्थ—लाहौर में जहाँगीर बादशाह था उसको उपदेश देने जब श्री गुरु देव जी लाहौर गये थे तब आपके पास दो बालक नित्य सेवा करने आया करते थें वे दोनों बालक आपस में परम मित्र थे ॥१॥

तत्रनानोपदेशैस्तं तोषयामास शास्त्रवित् ।
गणरात्रं वसन्नन्यान् जनाश्चोपदिदेश सः ॥२॥

प्रत्ययं तत्र बालौ द्वौ सखायौ तुल्य कालिकौ ।
ब्राह्मण क्षत्रियो चन्द्रात्पुण्याः सुश्रुवतुः कथाः ॥३॥

अर्थ—उनको नाना प्रकार के उपदेश शास्त्रोक्त श्री गुरु महाराज ने दिये थे जिससे उनको सन्तोष आगया । उन दोनों बालक में एक ब्राह्मण था तथा एक क्षत्रिय था जो श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की पुण्य कथा नित्य सुना करते थे ॥२॥३॥

रामदेव देश राजौ नाम्ना तौ च यथाक्रम ।
स्वल्पे चाति गते काले राम देवस्य धीमतः ॥४॥

पाणि पीडन लग्नं च समा यातंमुदाङ्करम् ।
सुसज्जा वर यात्रापि प्रतस्थे श्वशुरालयम् ॥५॥

अर्थ—एक का नाम रामदेव* था दूसरे का नाम देवराज था यह क्षत्रिय कुमार था कुछ काल बीतने पर रामदेव जो बुद्धिमान था उसके विवाह के वास्ते बरात ससुराल की तरफ जा रही थी ॥४॥५॥

मार्गे भित्ति निपातेन देश राजोऽश्वपृष्ठगः ।
पञ्चतामगमत्सद्यः रोदयन् मित्र बान्धवान् ॥६॥

अर्थ—बरात चली जा रही थी कि इतने में एक मकान की दीवार एका एक देशराज की पीठ पर गिर पड़ी जिससे देशराज का शरीर शान्त हो गया यह देख समस्त बराती दुःखी हो रोने लगे ॥६॥

रामदेवोऽपि तत्कालं हित्वा वैवाहिकीं धियम् ।
श्मशानं मित्रमालिङ्ग्य ययावात्मदिधक्षया ॥७॥

अर्थ—राम देव उसी समय अपने मित्र की मृत्यु देख पालकी से उतर विवाह के भेष को फाड़ मित्र देशराज के शव के साथ २ श्मशान पहुँचा ॥७॥

मरणाद्वारितो गाढ़ं वान्धवै र्विलपन् बहु ।
वनमाशिश्रिये खिन्नः विक्षिप्तः क्षीण विग्रहः ॥८॥

अर्थ—देशराज के शव के दग्ध हो जाने के पश्चात् रामदेव घर न लौटा मित्र के मरने से खिन्न चित्त जङ्गल में भटकता हुआ जिसका शरीर दुबला हो रहा था ॥८॥

घुणाक्षरनयात्तत्र चन्द्रदेवं ददर्श सः ।
प्रणम्य प्राञ्जलिः प्राह निजो दन्तं मुहुर्मुहुः ॥९॥

अर्थ—प्रारब्ध वश जङ्गल में रामदेव को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन हुआ हाथ जोड़ प्रणाम कर अपना समस्त दुःख रो २ कर बार २ कहता भया ॥९॥

व्यसनं तस्य तद्दृष्ट्वा चन्द्रदेवो दयानिधिः ।
उपदेशं ददौ तस्मै येन शान्तिं स लब्धवान् ॥१०॥

अर्थ—दुःख से उसे दुःखी देख दयानिधि श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने ऐसा उपदेश दिया जिससे उसे शान्ति मिली ॥१०॥

---

*रामदेव का जन्म वि० सं० १६४५ माघ वदी ७ को पिता राजाराम माता रत्न देवी से ब्राह्मण के घर हुआ था ।

दुःखानल वितप्तानां जनानां भव कानने ।
उपदेशामृतैः सन्ता शमयन्ति हि सञ्ज्वरम् ॥११॥

अर्थ—संसार रूपी कानन में दुःख रूपी अग्नि से जलते हुये मनुष्यों को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का उपदेश रूपी अमृत शीघ्र ही शान्ति देने वाला है ॥११॥

तत्रैव वत्सरं चैकं यापयामास भक्तिमान् ।
श्रीचन्द्र चरणौ नित्यं सेवमानः स सादरम् ॥१२॥

अर्थ—रामदेव बड़े आदर और श्रद्धा से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की चरण सेवा नित्य प्रति एक वर्ष तक करता रहा ॥१२॥

वैराग्ये च समुत्पन्ने शान्तेष्विन्द्रिय वाजिषु ।
श्रीचन्द्र देवस्तं दृष्ट्वा दीक्षा योग्य मथा ब्रवीत् ॥१३॥
वत्स ते मनसो यातः कषायाः क्लेश कारिणः ।
वधूरिव विनीते यं शान्तिस्त्वामुपतिष्ठते ॥१४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने भी उसे आत्मा परमात्मा जीवात्मा का सुन्दर उपदेश समझाय, धर्म नीति भक्ति में परिपक्व कर, पूर्ण वैराग्यवान् बनाय शोक मोह भ्रम नष्ट कर पक्का कर्तव्य परायणी बनाते बोले अपनी रक्षा से ही सबकी रक्षा होती है, वीर्य रक्षा सबसे उत्तम बल वर्द्धक उपाय है, विद्या के साथ नम्रता होनी सब से बढ़कर मनुष्यत्वता बढ़ाने का साधन है, इन्द्रियों को अपने वश में रखना सब से श्रेष्ठ आनन्द पाने का साधन है, विश्व में पुरुषार्थी पुरुष को कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं है, संसार में सबसे दुर्लभ ईश्वर की प्राप्ति है, परन्तु उद्यमी मनुष्य वह भी प्राप्त कर लेते हैं, यह दुर्लभ शब्द तो आलसी कायरों के लिये बना है। गरीबों पर दया करना साधु सेवा, देश सेवा, धर्म रक्षा करना। संसार का एक यह भी प्राकृतिक नियम है कि एक वस्तु एक को गुण वान् और प्यारी लगती है वही वस्तु दूसरे को हानिकारक और बुरी लगती है, एक आदमी जिस बात को अच्छा समझता है दूसरा उसी बात को बुरा समझता है, इससे गुण दोष दोनों ही अपेक्षित हैं, इसलिये तुम अपनें मन को खूब पक्का करलो। यह सुन रामदेव ने हाथ जोड़ प्रार्थना की कि हे भगवन् आप कृपा करके मेरे को अपना चेला बना लो, तब श्री गुरू जी बोले हे वत्स यदि तुम्हारा मन वैराग्यवान् साधु सम्प्रदाय में रत हो गया है तो तुम पतिव्रता स्त्री के सदृश्य विनीत भाव से अपने मन को खूब दृढ़ करके उस परम पुरुष परमात्मा की भक्ति को धारण करो अर्थात् स्थित हो ॥१३-१४॥

म्लायन्ते न मुखेन्दुस्ते साम्प्रतं कठिनैर्व्रतैः ।

भक्तिश्च मेरुषा वाग्मि राकुष्टोऽपि न मुञ्चसि ॥१५॥

अर्थ—हे राम देव तुम उदासीन चतुर्थाश्रमी सम्प्रदाय को धारण कर क्लेश आने पर मुख न मलीन करना, कारण साधु सम्प्रदाय धारण करना कठिन व्रत है, मेरा जो भक्तियुक्त वैराग्योपदेश है उसको महान् कष्ट से कष्ट आ पड़ने पर भी नत्यागना चाहिये ॥१५॥

वत्स ! दीक्षां ददाम्येष प्रसन्नोऽस्मि तवोपरि ।

विनीतास्त्वादृशाः शिष्याः दुर्लभा हि मही तले ॥१६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले हे वत्स तुम्हारे को हम दीक्षा देंगे कारण तेरे ऊपर हम प्रसन्न हैं तुम्हारे ऐसा विनीत शिष्य पृथ्वी के ऊपर दुर्लभता मिलता है ॥१६॥

इत्युक्त्वा भगवांश्चन्द्रः विधि दृष्टेन कर्मणा ।

राम रस रसेन्दौ हि दशम्यां प्रातरेवहि ॥१७॥

आश्विने धवले पक्षे दीक्षयामास दुःखहा ।

कर्त्ताराय इति चक्रे रामदेवाह्वयं नवम् ॥१८॥

अर्थ—ऐसा कह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वि० सं० १६६३ आश्विन शुक्ला १० प्रातःकाल को अपना चेला बनाय श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन भेष की दीक्षा दे नाम कर्त्ताराय रखा। वि० सं० १६६५ आश्विन सुदी १० को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने हरिद्वार वाले अपने स्थान की गद्दी दी जहाँ पर प्रथम कई दफे आप स्वयं आय के निवास किया करते थे। श्री कर्त्ताराय जी बड़े जपी तपी सिद्ध करामाती मृदुभाषी, विद्वान, सदाचारी निरभिमानी याथार्थवक्ता उदासीन महात्मा हुये हैं, इन्हीं कर्त्ताराय जी उदासीन महात्मा के परम सुयोग्य चेले वक्तानन्द जी और संगत साहब जी हुये हैं इन दोनों महात्माओं का प्रकरण आगे लिखा जायगा श्री कर्त्ताराय जी का देव लोक वि० सं० १७३४ माघ सुदी १५ को सुचीन्द्रम् ग्राम दक्षिण में हुआ ॥१७-१८॥

अर्कबरस्य पुत्रोऽभूज्जहाँगीरोऽति बुद्धिमान् ।

श्रीचन्द्र देव चरितं श्रुत्वा कौतुक मागतः ॥१९॥

अर्थ—अकबर बादशाह का पुत्र जहाँगीर बादशाह अत्यन्त बुद्धिमान् था उसने श्री गुरु श्रीचन्द्र जी का करामाती सब आश्चर्य वृत्तान्त सुन रखा था ॥१९॥

दर्शनेच्छुर्वनं यातः मृगया व्याज माश्रयन् ।

सह नीत्वा ग्राम सिंहान् वन सिंह वधेच्छया ॥२०॥

अर्थ—एक समय शिकार खेलने के लिये बादशाह जहाँगीर वन में सिंह ऋक्षादि मारने की इच्छा से अपनी सैना सहित जाता भया ॥२०॥

तत्र सिंहैश्च ऋक्षैश्च व्याघ्रैश्च शरभै रपि ।
गजैश्च गण्डकैश्चैव शिवाभिः शशकैः शुकैः ॥२१॥
विस्तृमरे सृमरैश्च श्वाविद्भि र्हरिणैर्वृकैः ।
कासरै र्गोधि कासारैः व्यलैः कोल कुलैरथ ॥२२॥
गोलाङ्गूलैः प्लवङ्गैश्च मयूरै सारसै रपि ।
सारिका भिश्चक्रवाकैः हंसैः कारण्डवैस्तथा ॥२३॥
अजगरै र्महा कायैः दन्दशूकैश्च पुंध्वजैः ।
नकुलै विपुलैर्घूकैः काकैः पिक कुलैरपि ॥२४॥
वृश्चिकैः क्रकवासैश्च निर्वैरैः स्वरै चारिभिः ।
ददर्श श्रीचन्द्र देवं सेव्य मानं दिवानिशम् ॥२५॥

अर्थ—वन में क्या देखता है कि सिंह, हाथी, व्याघ्र, चक्रवाक, शशक, हंस, तोता, काग, सारस, अजगर, बन्दर, मयूर, आदि सर्व वन पशु पक्षि आपस का वैर छोड़ आनन्द से एक साथ सब मिल रात्रि दिन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की सेवा कर रहे हैं॥ २१॥२२-२३॥२४॥२५॥

विलोक्य चरितं तस्य भय विस्मयमागतः ।
दूरे संस्स्थाप्य सेनां स पदातिः सन् छनैर्ययौ ॥२६॥
पदे पदे शङ्क मानः क्रव्यादेभ्यो भयाकुलः ।
एष हन्य एष हन्ये इति सम्भ्रान्त लोचनः ॥२७॥

अर्थ—बादशाह यह चरित देख के भय और आश्चर्य में भर अपनी सेना को दूर छोड़ आप पैदल धीरे २ पैर रखता शंकित हृदय भय से आकुल हो कि यह अब मेरे को मारेंगे यह मेरी आयु वृथा ही गई, कहां आके फंस गया ऐसा बारम्बार अपने मन में विचार करता विस्मित लोचन से ॥२६॥२७॥

चन्द्रस्य स विधे गच्छन् धीरं तैरव लोकितः ।
गता युषमिवात्मानं मन्यमानो मुहुर्मुहुः ॥२८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास आय धैर्य धारण कर श्री गुरु जी को देखते ही सब विपर्जय भाव लुप्त हो गये ॥२८॥

श्रीचन्द्र चरणौ गत्वा साष्टाङ्गं न्यपतद्भुवि ।
पाहिमां पाहिमां देव इत्यवादीत्पुनः पुनः ॥२९॥

अर्थ—बारम्बार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम धरती में कर डरता हुआ बोला रक्षा करो २ ऐसा दीन हो बारम्बार कहने लगा हे दयालु भयंकर जन्तुओं का सङ्ग ठीक नहीं आपके प्रताप से सब शान्त चुपचाप आपका दर्शन कर रहे हैं सब मोहित हो रहे हैं ॥२९॥

मनोहरंपेशलमेवयच्च मुह्यन्ति सर्वे खलु जीव जीवाः ।
कोटिस्व संख्याभिरतं मनोजं लज्जायते दृष्टिपथन्त्वदास्यम् ॥३०॥

अर्थ—आपके मनोहर मुखारविंद की शोभा को देखके करोड़ों कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं ॥३०॥

नीत्वाद्भुतं वर्णयितुन्न के ऽपि सामर्थ्यमायान्ति कवि प्रवीराः ।
धीरा महा पण्डित मानिनश्च वेदेषु गाम्भीर्य कला ललाया ॥३१॥

अर्थ—बड़े २ कविराज आपके स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकते हैं बड़े २ पण्डित वेदों की सकल विद्या जानने वाले ॥३१॥

परोपदेशाय कृत प्रयत्ना लब्ध प्रतिष्ठास्समदर्शिनोऽपि ।
भारायते भूश्चलिते च पाप भवादृशः पारयितुं समर्थ ॥३२॥

अर्थ—परोपदेश कुशल समदर्शी भी आपके स्वरूप को नहीं कह सकते हैं ॥३२॥

अभयं प्राप्य हृष्टोऽसौ तुष्टाव विविधैः स्तवैः ।
प्रार्थयामास तं गेहं गन्तुं नत्वा मुहुर्मुहुः ॥३३॥

अर्थ—हे महाराज आपके दर्शनों से अभयता मिलती है और सर्व प्रकार से संतोष हो जाता है, अब मेरी बारम्बार यह प्रार्थना है कि आप कृपा करके मेरे महल में चलिये ॥३३॥

श्रुत्वा तद्वचनं तस्य श्रीचन्द्रो भगवान् सुधी ।
मन्दं स्मित्वाऽवदद्धीरं वत्स कास्ति न मे स्थितिः ॥३४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उसका वचन सुन करके मन्द २ मुस्क्याते बोले हे वत्स मेरी स्थिति सब जगह है ॥३४॥

तिले तैलमिवावेहि मां सर्वत्र स्थितं विभुम् ।
कर्तारं कारणं कार्यं सर्वं मां विद्धि शाश्वतम् ॥३५॥

अर्थ—जैसे तिल में सदैव तेल व्याप्त है वैसे मैं सर्वत्र स्थित हूँ जो कुछ संसार के कार्य हो रहे हैं उनका कारण मैं हीं हूँ ॥३५॥

न मे राज्येन सौख्यैश्च योषाभिः सेवकैं धनैः ।
सम्मानैः पूजनैश्छत्रैः वेत्रैः किञ्चित्प्रयोजनम् ॥३६॥
वन्या इमे जन्तवो मे सेवकाः परिचारकः ।
सखायो बान्धवाः सेनाः सचिवाश्च प्रजा अपि ॥३७॥

अर्थ—न हमारे को राज्य के वैभव की इच्छा है न सम्मान और पूजा की यह जितने जीव हमारे सामने देखते हो सब हमारे सखा बान्धव, सेना, और सेवक हैं ॥३६-३७॥

छन्दो विदा वानरेण श्रुत्वैतद्वचनं विभोः ।
फलानि चिरपक्वानि समानीतानि तत्क्षणम् ॥३८॥

अर्थ—महाराज का रुख पाय एक बन्दर जाय के वृक्ष से मीठे २ पके फल तोड़ लाया जिनका स्वाद अमृत के समान था और वह महाराज के सामने रखता भया ॥३८॥

सुधामधूनि दत्वा च तानि तस्मै ततोऽब्रवीत् ।
श्रीचन्द्रः कौतुकंकुर्वन् पृष्ठतस्तु विलोकय ॥३९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने उन फलों में से बादशाह को प्रसाद देते हुये कहा कि पीछे फिर कर देखो ॥३९॥

यावच्च पृष्ठतो दृष्टं तावदन्हाय पर्षदि ।
स्वर्ण सिंहासना सीनं निजं दृष्ट्वा विसिस्मिये ॥४०॥

अर्थ—जब बादशाह पीछे फिर कर देखता है तब अपने को राज दरबार में स्वर्ण सिंहासन में बैठा देखा न कहीं महाराज थे न कहीं वह जङ्गल था ॥४०॥

परिपश्यन् भृशं भ्रान्तः सोच्छ्वासौलोल लोचनः ।
हर्ष विस्मय मध्यस्थः आचचक्षे यथाऽभवत् ॥४१॥

अर्थ—ऐसा देखकर बड़ा चकित हुआ उच्छ्वास लेता हुआ चंचल नेत्रों से हर्ष विस्मय के मध्य देखने लगा महाराज को सच्चा खुदा का रूप समझ मन ही मन वारम्वार यह विचारा करता था कि मैं यहाँ कैसे आया ॥४१॥

पारिषद्याश्च तच्छ्रुत्वा कौतुका कृष्ट चेतसः ।
नूनं श्रीचन्द्र देवेन भाव्यमित्येव ते ऽब्रुवन् ॥४२॥

अर्थ—जब लोगों को उस जङ्गल के महात्मा का वृत्तान्त सुनाया तब सब ने कहा उस जंगल में तो भगवान् श्रीचन्द्रजी महाराज रहते हैं वह पूर्ण योगीराज ऋद्धि सिद्धि के भण्डार उदासीन महात्मा हैं ॥४२॥

सेनाध्यक्षान् ससचिवान् सभृत्यान् सहवाहनान् ।
प्रेषयामास सर्वान्स समानेतुं तमञ्जसा ॥४३॥

अर्थ—महाराज का नाम सुन बादशाह मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने बड़े वजीर, मन्त्री, सामन्त, दरवान, नायब आदि को महाराज के लाने वास्ते भेजा ॥४३॥

ते गत्वा प्रार्थयामासुः लवं गन्तुं नताननः ।
परोपकार दक्षस्तु श्रीचन्द्रः स्वीचकार तत् ॥४४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास वह लोग जाकर नमस्कार करके लाहौर चलने वास्ते बहुत प्रार्थना की, श्री गुरु जी महाराज जगत पर परोपकार करने में कुशल तुर्केश को सतोपदेश देने निमित्त चलना स्वीकार कर लिया ॥४४॥

गज पृष्ठं समारुह्य चामरै र्वीजितो विभुः ।
चन्द्र पाण्डुरच्छत्रेण वार्यमाणाऽऽतपो ययौ ॥४५॥

अर्थ—तब वे लोग श्री गुरु देव जी को सुसज्जित हाथी पर बैठाय छत्र, चँवर व्यं-जना, झुलाते हुये ले चले आगे अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे ॥४५॥

जहाँगीरश्च तं देवं स्वर्ण सिंहासने स्थितम् ।
अर्हणाभिश्च दिव्याभिः महयामास सादरम् ॥४६॥

अर्थ—जब जहाँगीर बादशाह ने महाराज का अपने पास आगमन सुना तब आगे से जाकर प्रणाम कर हाथी से उतार राजसभा में लाय स्वर्ण के सिंहासन पर स्थित किया और आप कुछ नीचे बैठा और बड़े आदर के साथ उनकी पूजा करता भया ॥४६॥

चन्द्र देवो विचक्षुः सन् दर्शयन् सिद्धिमात्मनः ।
कन्थाञ्च कम्पमानां तामवतार्याऽक्षिपत्स्थितो ॥४७॥

अर्थ—बादशाह ने देखा गुरु श्रीचन्द्र जी की गोदड़ी काँप रही है और भी देखने वाले चकित हो गये ॥४७॥

वेपमानञ्च तां दृष्ट्वा सर्वे ते चकितः स्थिताः ।
तुरुष्काधि पतिः प्राह किमस्यां भगवन् वद ॥४८॥

अर्थ—इस प्रकार देखकर बादशाह जहाँगीर श्री गुरु जी से पूँछता भया कि हे भगवन् सुनाओ कि इस गोदड़ी में क्या है जो कांप रही है ॥४८॥

चन्द्र स्तमाह नो कार्यं साधूनां हि परीक्षणम् ।
कथञ्चिद्यदि ते रुष्टाः सर्वस्वं नाशयन्ति भोः ॥४९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज ने उत्तर दिया कि साधुओं का भेद नहीं लिया जाता साधुओं को थोड़ा भी रुष्ट करना अपने सर्वस्व नष्ट करने का कारण बन जाता है ॥४९॥

न मेने हठमास्थाय जहाँगीरः पुनः पुनः ।
किमप्यस्तु वदै तस्यां कन्थायां सिद्धि गर्वितः ॥५०॥

अर्थ—बादशाह जहाँगीर ने बारम्बार पूछने का हठ किया कि आपकी इस गोदड़ी में क्या भरा हुआ है जिससे यह कांप रही है सो सुनाइये ॥५०॥

अथ जाड्यं बिलोक्यास्य बभाषे स्मित पूर्वकम् ।
स्वयं पश्य किमस्त्यस्यां यदि कौतुक मस्ति ते ॥५१॥
इत्युक्तः सहसा कन्थां यस्पर्श स दिदृक्षय ।
कम्पज्वरः समारूढः कम्पयन् हठिनं शठम् ॥५२॥

अर्थ—ऐसी बादशाह की जड़ता (मूर्खता) वाला हठ सुन के श्री ११०८ जगद्गुरु महाप्रभु श्रीचन्द्र भगवान् मुस्कराते हुये बोले कि यदि आपको इसका तमासा ही देखना है तो खुद ही जाके देखलो यह सुन बादशाह ने गोदड़ी के पास जाके हाथ लगाया ही था कि तुरत उस गोदड़ी वाला ज्वर बादशाह के ऊपर चढ़ गया जिससे वह थर थरा के काँपने लगा ॥५१॥५२॥

तेन क्रान्तश्च हाहेति हतोऽस्मीति रुदन् भृशम् ।
अङ्गानि प्रक्षिपन् भूयः न्यपतच्चन्द्र पादयोः ॥५३॥

अर्थ—उस ज्वर के प्रकोप से जहाँगीर बादशाह हाहाकार मचाता रुदन करता अपने अंगों को पृथ्वी पर पटकता हुआ अधम उधारण श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चरणों में पड़ गया ॥५३॥

स्मितमान मुखेन्दुस्तु चन्द्रश्चन्द्रांशु शीतलम् ।
मूर्ध्नि करतलं तस्य चक्रे सान्त्व पुरस्सरम् ॥५४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् चन्द्रमा से भी अधिक शीतल प्रसन्न बदन कृपा करके जहाँगीर बादशाह के शिर पर अपना हस्त कमल रखा जिससे उसकी सर्व पीड़ा तुरत ही शान्त हो गई और वह ज्वर पुनः पूर्ववत् गोदड़ी में चला गया ॥५४॥

ततस्तु सा पुनः कन्था प्रकम्पे सच शान्ति भाक् ।
नाहमग्रे करिष्यामि हठमीदृश कर्मसु ॥५५॥

अर्थ—जिससे गोदड़ी फिर से पूर्ववत् कांपने लगी, बादशाह को शान्ति आ गई। बादशाह बोला आगे को मैं कभी ऐसी हठ नहीं करूँगा आप योगियों की गति निराली है योगी लोग पृथ्वी को हिला देते हैं ॥५५॥

ततः संप्रार्थयामास धर्मोपदेश कर्मणे ।
श्रीचन्द्र भगवान् भूयः प्राह तं विविधोक्तिभिः ॥ ५६ ॥

. अर्थ—पुनः बादशाह हाथ जोड़कर धर्मोपदेश सुनाने की प्रार्थना करता भया यह सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोलते भये ॥५६॥

जीव शिवौ नैव भिन्नौ भिन्ना वज्ञान भाषितौ ।
ब्रह्ममयं जगत्सर्वं ततो भिन्नं न किञ्चन ॥५७॥

अर्थ—जीव और ईश्वर भिन्न नहीं है अज्ञान से भिन्न भाषित होता है, हे बादशाह ब्रह्म शोत्री ब्रह्म नेष्ठी महात्मा की कृपा से बताये हुये साधनो द्वारा श्रवण मनन निदिध्यासन के जरिये प्रयत्न करते हुये का जब अज्ञान नाश हो जाता है तब उसे आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो जीव और ईश्वर की एकता भाषित होने में देरी नहीं लगती, तब सारा विश्व ब्रह्म मय दृष्टि गोचर आने से द्वैतता मिट जाती है संसार सब ब्रह्म मय दिखाई देने लगता है। जैसे दूध से उपाय द्वारा घृत निकाला जाता है तब पौष्टिक कार्य में आता है जैसे दूध में घृत है पर दिखाई नहीं देता वैसे ही संसार में ईश्वर (खुदा) विद्यमान है परन्तु बगैर ज्ञान के समझ में नहीं आता ॥५७॥

मोहोऽयं जीवलोकोऽयं यदुपास्ते भिदा मिह ।
तरङ्ग बुद्बुदाकारं जलं शाश्वतमव्ययम् ॥५८॥

अर्थ—लोक में जीव मोह के वशी भूत हो मेर तेर का भेद समझते हैं जैसे जलको तरङ्ग और बुदबुदा जल से भिन्न नहीं होते उसी प्रकार संसार ब्रह्म से पृथक नहीं है तुमको हिन्दू मुसलमान प्रजापर समान दृष्टि रख न्याय पूर्वक प्रजा पालन करना चाहिये । खुदा का नूर सब में बराबर है ॥५८॥

उपदेशमिमं श्रुत्वा प्रणेमुः सकला जनाः ।
सेवकाः समजायन्त नुनुवुश्चन्द्रमद्भुतम् ॥५९॥

अर्थ—ऐसे सुन्दर उपदेश सुन बादशाह के समेत सब लोगों ने प्रणाम किया बहुत से लोग गुरु जी के सेवक बने ॥५९॥

रत्न स्थालीं जहाँगीरः स्थापयामास सम्मुखे ।
गृह्यतां दक्षिणा देव अनुग्राह्याश्च तेवयम् ॥६०॥

अर्थ—बादशाह रत्नों से भरा थाल श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के सम्मुख भेट रख बोला कि मेरे ऊपर कृपा करके इसे ग्रहण कीजिये ॥६०॥

इत्याभाष्य प्रणम्याथ कृत्वा तश्च प्रदक्षिणम् ।
भूयः साष्टाङ्गमानम्य कृत कृत्यो बभूव सः ॥६१॥

अर्थ—ऐसा कह साष्टाङ्ग प्रणाम और प्रदक्षिणा कर बोला कि मैं आप के दर्शन से कृत्य २ हो गया हूँ ॥६१॥

द्विहायनस्तस्य पुत्रः क्रीडाव्यसक्त मानसः ।
पतित्वा चन्द्र शालायाः पञ्चत्वं प्राप तत्क्षणम् ॥६२॥

अर्थ—इसी काल में एक आश्चर्य पूर्ण घटना यह घटती भई कि बादशाह का दो वर्ष का बालक (पुत्र) उपर से खेलता हुआ नीचे गिर कर मर गया ॥६२॥

अवरोधे च सहसा हाहा कारो महान भूत् ।
बालमुत्थाप्य चन्द्रस्य निन्युरन्तिकमञ्जसा ॥६३॥
समाश्वास्य च तान् सर्वांश्चन्द्रः यस्पर्श पाणिना ।
शिशुमुत्थाय सोऽप्यम्बा मालिलिङ्गाश्रुवर्षिणीम् ॥६४॥

अर्थ—महल में हाहाकार करुण क्रन्दन मच गया सब लोग आय २ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज से प्रार्थना करते बोले कि आप सर्व शक्तिमान हैं मारना जिलाना आप को खेल की सी बात है, इस प्रकार बादशाह तथा सब की प्रार्थना सुनकर सद्गुरु, दीनदयाल श्रीचन्द्र महाराज ने सब को आश्वासन देते अपना अमृत रूपी हाथ उस बालक के सिर पर रखा जिसके रखते ही बालक जी उठा ॥६३-६४॥

एतदालोक्य चन्द्रस्य चरित्रं चकिता जनाः ।
अहो अहो भाग्य वन्तः येदृष्टोऽयं महामुनिः ॥६५॥

अर्थ—यह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का विचित्र चरित्र देख कर सब चकित हो कहने लगे हे महामुनि आप धन्य हैं आपका दर्शन भाग्यवानों को मिलता है ॥६५॥

इत्यालपन्तः सम्भ्रान्ताः पूजयामासुरुत्सुकाः ।
बद्धाञ्जलि पुटा नम्रा नेमुः पादे मुहु र्मुहुः ॥६६॥

अर्थ—ऐसा कह उत्सुकता पूर्वक सब लोगों ने महाराज की फिर से पूजा की और बारम्बार हाथ जोड़कर नम्र हो प्रणाम करते भये ॥६६॥

नोट—प्यारे पाठकों श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने जिस शाहजादे को जीव दान दिया वही खुर्रम आगे चलके जहाँगीर के बाद शाहजहाँ के नाम से बादशाह हुआ।

श्रीचन्द्र चरितं चित्रं प्रातरुत्थाय ये नरः ।
पठिष्यन्ति च श्रोष्यन्ति सौख्यं प्राप्स्यन्ति तेध्रुवम् ॥६७॥

अर्थ—जो कोई श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के इस चरित्र को प्रातः काल उठकर पढ़ेगा या सुनेगा उसको संसार में सब प्रकार से धन, मान, पुत्र पौत्रादि सुख की प्राप्ति होगी यह बात निश्चय है ॥६७॥

भूर्ज पत्रे लिखित्वा तु द्वादशाक्षर मन्त्रकम् ।
विधिवद्यो धरेत्कण्ठे तत्र स्याच्छारदास्थिता ॥६८॥

अर्थ—तथा जो कोई "ॐ गुरु श्रीचन्द्राय नमो नमस्ते" इस द्वादशाक्षर महामंत्र को भोज पत्र पर गोरोचन या कुमकुम से सविधि लिख कर कण्ठ या दाहिने हाथ में धारण करेगा उसके पास सरस्वती का बास होगा ॥६८॥

भूतप्रेत पिशाचाश्च यक्ष गन्धर्व किन्नराः ।
ब्रह्म राक्षस वेताला तस्यनो यान्ति सन्निधौ ॥६९॥

अर्थ—भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व ब्रह्म, राक्षस, वैताल, योगिनी, आदिक की बाधा नहीं होगी ॥६६॥

धन धान्यं गोहिरण्यं गजवाजि रथादिकम् ।
पुत्र पौत्र कलत्राणि सर्वं सौभाग्य माप्नुयात् ॥७०॥
भक्ति भावेन योदध्याद्यन्त्र मेतन्महाफलम् ।
सर्वे मनोरथास्तस्य सिद्धि मायान्ति माचिरम् ॥७१॥
दम्पत्यो वैमनस्यश्च पञ्च रात्रै र्विनश्यति ।
यद्यत्कामयते लोकः कल्पवत्कल्पयेत्फलम् ॥७२॥

अर्थ—धन, धान्य, गऊ, गज, घोड़ा, रथादिक पुत्र पौत्र सम्पन्न सौभाग्य शाली होगा, उसके सर्व मनोरथ सफल होंगे सर्व सिद्ध प्राप्त करेगा दाम्पत्यप्रेम होता सर्व बाधायें नाश होंगी संसार में उसकी इच्छा कल्प वृक्ष के समान पूरी होती रहेगी ॥७०॥७१॥७२॥

इदं पुनीतं खलु पुस्तकन्तु गृहे मठे मन्दिर पाठशाले ।
गृहादि तीर्थं विमला च वाणी श्री कोमला सा कमला सदैव ।

अर्थ—यह गुरु देव का पवित्र पुस्तक जिस गृह मन्दिर मठ पाठशाला धर्मशाला में रखा जाय तो वह स्थान तीर्थ रूपी हो जाता है ॥७३॥

विराजते तस्य कुलेन कश्चित् दारिद्रय भावं मनुते कथञ्चित् ।
योगि प्रवीरा अति भक्ति मन्तो ज्ञानि प्रमाणा अति साधयश्च ।

अर्थ—जिसके गृह में रहे उसके कुल में सदा, कमला (लक्ष्मी) वास करती है उस कुल में कोई दरिद्र नहीं होगा सदा योगी भक्तज्ञानी साधु स्वभाव वाला होगा ॥७४॥

श्री पण्डिता वेद कला कुलीनाः श्री दान शीलाश्च तपस्वि वर्य्यः ।
भवन्ति पुत्राश्च कुले च तस्य नाऽधर्म भावा श्रुति गोचर स्यात् ।

अर्थ—पंडित, दानशील तपस्वी विद्वान् पुत्र पैदा होंगे कपटी दुराचारी अधर्मी कोई दृष्टि गोचर नहीं होगा, जहाँ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का मन्त्र रूपी यह ग्रंथ रखाजायगा ॥७५॥

चरित्र मेतदद्भुतं सुखा करं गुणा करं,
समस्तपाप नाशकं विकाशकं सतां हृदाम् ।

समाहितैश्च मानसैः पठन्ति ये निरन्तरं,
स चन्द्र मौलिरुच्चकै र्ददाति तेभ्य उन्नतिम् ॥७६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् महाप्रभु का यह अद्भुत सुखकारी गुणों की खान वाला चरित्र, समस्त पापों का नाश करने वाला, सत्पुरुषों के हृदय को विकसित करने वाला है, जो इसको बरावर पढ़ते हैं उनका चित्त एकाग्र हो जाता है उनको भगवान् श्रीचन्द्र जी की कृपा से सर्व प्रकार से उन्नति मिलती है ॥७६॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धुगंगामध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्री मद् उदासीन वर्य परम हंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकाय मान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे कर्त्ताराय शिष्य (चेला) बनन प्रसंग एवं बादशाह जहाँगीरोपदेश वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी एक चत्वारिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥४१॥

॥ द्वा चत्वारिन्शत्तमा किरण प्रारम्भः ॥

एकदा हरिगोविन्दः ससेनो वाजि वाहनः ।
इरावतीं समुत्तीर्य ननकानासमागतः ॥१॥

अर्थ—एक समय श्री हरिगोविन्द जी छठी पातशाही अपनी सेना समेत इरावती (रावी) नदी पार कर ननकाणा उदासीनाश्रम में आते भये ॥१॥

महन्तं धर्म चन्द्रञ्च प्रति पूज्य सभक्तिमान् ।
अनेकशः सुवर्णस्य मुद्राश्चोपाय नत्पुनः ॥२॥

अर्थ—यहां के श्री महन्त धर्म चन्द्र जी उदासीन का समुचित पूजन कर ५०० स्वर्ण मुद्रा भेट चढ़ाई और पूछा की श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कहाँ हैं, टाली साहब में सुन ॥२॥

श्रीधर्म चन्द्रश्च महन्तमेव साकं गृहीत्वा द्युति बुद्धि मन्तम् ।
श्रीचन्द्र देवस्य च दर्शनार्थं यात्राञ्चकारा खिल देव लब्ध्यै ॥३॥

अर्थ—श्री महन्त धर्म चन्द्र जी को साथ लेकर श्री हरिगोविन्द जी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र देव जी के दर्शनार्थ प्रस्थान किया ॥३॥

एवं क्रमेणैव जगाम टाली साहब समीपं गुरुदत्त चित्तः ।
उवाच वाक्यं हरि शब्द पूर्वो गोविन्द नामा भगवत्प्रपन्नः ।४।

अर्थ—टाली साहब के समीप गये जहाँ गुरुओं के गुरु श्री गुरु श्रीचन्द्र जी विराजमान थे वहाँ पहुँच श्री हरिगोविन्द जी कहते हैं ॥४॥

स्थानं विशालं च गुरो रिदानीमाभास्ते लक्ष्म विराजते च ।
वनस्य जीवास्सकला मनुष्यान्न बिभ्यतीत्येव विचित्र मस्ति ॥५॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी का स्थान समीप आगया ही मालूम पड़ता है सब चिन्ह दिखाई दे रहे हैं जंगली जानवर मनुष्यों से नहीं डरते हैं ॥५॥

धूमा अजस्रं हवनस्य वृक्षपत्राणि नीलानि समन्ततश्च ।
कुर्वन्ति मार्गो विमलश्च वृक्षा स्सुपुष्पितास्ते सफला विभान्ति ॥६॥

अर्थ—चारो तरफ हवन के धूम से वृक्ष के पत्ते काले दिखाई दे रहे हैं इससे यह स्पष्ट ज्ञान हो रहा है कि हवन इस स्थल में नित्य होता रहता है जिसका धुआं इन पत्तों को काला बना रहा है रास्ते में वृक्ष हरे भरे फल फूल से पूर्ण हैं ॥६॥

नद्यश्च नालास्सजला वनानि नाना सुशोभा परिवर्द्धितानि ।
महेन्द्र देवीय सुनन्दनेन वनेन तुल्यानि मतानि तानि ॥७॥

अर्थ—नदी नाले जलपूर्ण वन उपवन अत्यन्त नाना प्रकार से सुशोभित हैं इन्द्र के नन्दन वन के समान सब दिखाई दे रहे हैं ॥७॥

हे सारथे त्वञ्च रथन्त्विहैव संस्थाप्य सेवां कुरु वाजिनाश्च ।
गच्छामि सेना सहितो गुरोश्च पार्श्वे च तद्दर्शन लालसोऽहम् ॥८॥

अर्थ—हे सारथी श्री गुरु जी के किसी भी कार्य में विघ्न न पड़े इसलिये अब इसी जगह सवारी रोक दो, घोड़ों की सेवा तुम करो, हम सेना समेत श्री गुरुदेव जी के पास जाते हैं। हे सारथी तपसी महा पुरुष योगी राज के पास विनीत भाव से जाना चाहिये ऐसा शास्त्र कारों की आज्ञा है। जहाँ पर टाली के नीचें श्री गुरुदेव जी सूर्य के सदृश्य विराज मान हैं हम उनके दर्शनार्थ जाते हैं ॥८॥

पश्यैतमाश्रम पदं मृग पक्षि जुष्टं, घुष्टं मयूर रव कोकिल काकलीभिः ।
पुष्टाङ्ग रङ्कुकुल केलि विशेष शोभं, तुष्टाखिलान्य वन गोचर जन्तु संघम्

अर्थ—ऐसा वह आगे जाय आश्रम देखते भये वहां पर मृग तथा पक्षियों से युक्त

मोर कोयलों के सुन्दर शब्दों की ध्वनि हो रही थी वह लोग आपस में क्रीड़ा करते हुये हृष्ट पुष्ट अङ्ग वाले समस्त वन जन्तु सब एक स्थल में बैर भाव छोड़ एकत्र हो कर शोभायमान हो रहे थे ॥९॥

निर्वैर शान्त हरिणा हरिणा चरन्ति,
सिंहोऽपि हन्त करिणाऽऽदरिणा सलीलम् ।
कृष्टोऽपि केश रचये मदवत्करेण,
निद्राय माण नयनो वितनोति लीलाम् ॥१०॥

अर्थ—श्री हरिगोबिन्द जी देखते हैं कि इस आश्रम में शेर से निर्भय होकर हरिण भी शान्त भाव से घूम रहे हैं, शेर भी मद विह्वल हाथी के सुण्ड द्वारा बालों से घसीटा जाने पर भी तन्द्रायुक्त आँखों से एक प्रकार कौतुक कर रहा है अर्थात् अपने बैर का प्रति शोध नहीं कर रहा है ॥१०॥

सिंहीस्तनन्धयति शावक एष मृग्याः,
सा वत्सला निज किशोर धिया च लेढि ।
सुप्ते गजे तनु निघर्ष विनीत कण्डूः
स्वैरं प्रयाति समजं निजमेषघोणी ॥११॥

अर्थ—श्री हरिगोविन्द जी कहते हैं 'भाइयों' इधर देखो यह मृग का बच्चा शेरनी के दुग्ध का स्तन पान कर रहा है और वह भी अपने पुत्रवत् उसे प्रेम पूर्वक चाट रही है। हाथी के सो जाने पर उसके शरीर से अपनी खुजली मिटाने वाली यह सूरनी सपरिवार मन्थर गति से चलती निडर घूम रही है ॥११॥

क्रोडे च वानर किशोर मियं निधाय,
ऋची स्तनं धययति प्रतिलाल यन्ति ।
निश्शङ्कमङ्क शयनं भुजगं मयूराः,
रचन्ति पत्त्र पिहितातप ताप पीडाः ॥१२॥

अर्थ—यह देखो ऋचणी मृग के बालक को अपनी गोदी में बैठाकर प्यार करती हुई उसे बड़े प्रेम से दूध पिला रही है, एक तरफ मोर अपनी गोदी में निर्भय सोये सांप को अपने पत्तों द्वारा आतप को दूर करता हुआ रक्षा कर रहा है ॥१२॥

शाखा मृगा मृगपते र्व्रजतः सलीलं,
लाङ्गूल कर्षण विनोद मुपाचरन्ति ।

एषा च वानर वधुर्लघु सिंह शाव,
मुत्सङ्ग मानयति पाय यति स्तनं स्वम् ॥१३॥

अर्थ—देखो भाई इधर बानर जाते हुये शेर को पूँछ को कौतुक से खीच रहे हैं वह कुछ नहीं कहता है, एक ओर बानरबधू छोटे से शेर के बच्चे को गोद में लेकर अपना स्तन्य पान करा रही है ॥१३॥

श्येनं पुरः स्थितमिमेच कपोत पोताः
व्यादाय चञ्चुपुटकं क्षुधिता भजन्ते ।
एवं वदन्निजवलं प्रतिविध्य पद्भ्याम्
तं धर्म चन्द्र मुपनीय चचाल नम्रः ॥१४॥

अर्थ—यह क्षुधातुर कबूतर के बच्चे अपनी चोंच को खोलकर सम्मुख खड़े हुये बाज की ओर निर्भय निहार रहे हैं; तथा वह बाज भी अपने बलको रोक कर पैदल चल श्री महन्त धर्मचन्द्र जी के पास आकर स्वागत करता है ॥१४॥

पश्यन् नवानि सवनानि विफुल्ल मल्ली,
वल्ली निकुञ्जपिक कूजित पूजितानि ।
आश्लिष्टपादपलता सुमलोचनानि,
गुञ्जन्मिलिन्द निकुरम्ब निषेवितानि ॥१५॥

अर्थ—यह देखो पुष्पों से विकसित हुई मल्ली लताओं के समूह पर कोयल गायन कर रहीं हैं, तथा इस आम के निकुञ्ज में लतायें वृक्षों को आलिंगन किये हैं उस पर भ्रमर मधुर २ गुंजार रहे हैं ॥१५॥

रागा वृतासु नलिनीषु निलीन भृङ्ग,
हुङ्कार नादित दिगन्तर शोभनानि
पद्मावली परिमलै र्ललितानि, तानि,
हंसावली मधुर नाद निनादि तानि ॥१६॥

अर्थ—अत्यन्त रक्तवर्ण की कमलिनियों में लीन हुये भ्रमरों के हुङ्कार से गुञ्जरित दिशाओं वाले कमल के समूह से सुशोभित हो रहे मधुर २ शब्द का हंसों से व्याप्त आश्रम की शोभा को देख श्री हरिगोविन्द जी प्रसन्न होते भये ॥१६॥

पक्वैः फलै र्विनमिता खिल शाख शाखि,
रम्याणि कीश कुल जग्ध फला कुलानि ।
श्यामानि धूमलतया स वनेषु नित्यं,
निर्वैरजन्तु कुलसंकुल मृद्धिमन्ति ॥१७॥

अर्थ—पके हुये फलों से वृक्षों की शाखा प्रशाखाओं को झुकाने वाले सुन्दर २ तोते बड़े चाव से प्रति दिन सायं प्रातः सुन्दर शब्दोच्चारण करते हैं, प्रति दिन हवन होने कर धूम से कृष्णवर्ण हुये पत्ते शोभायमान हो रहे हैं, तथा विरोध रहित जन्तुओं के समूह से व्याप्त आश्रम को देख श्री हरिगोविन्द जी बड़े चकित और आनन्दित होते भये ॥१७॥

गत्वा स आश्रम पदं नयनाभि रामं,
कामारिमुज्ज्वल जटं सित पद्म कान्तिम् ।
पद्मासनं सनक वन्दित पाद पद्मं,
पद्मा लयाधव सखं शिरसा ववन्दे ॥१८॥

अर्थ—श्री हरिगोविन्द जी श्री महन्त धर्मचन्द्र जी के साथ टाली साहब के आश्रम में पहुँचते भये जो आश्रम नेत्रों को सुख देने वाला था जहाँ पर काम के रिपु शङ्करावतार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य परम तेजस्वी उज्वल जटाओं से विभूषित पद्मासन से विराज मान थे जिनके पाद पद्मों को सब लोग वन्दना करते हैं उन्हीं पाद पद्मों को हम भी सिर से वन्दना करते हैं ॥१८॥

सधर्म चन्द्रोऽपि नमश्चकार साष्टाङ्ग पातेन हिमांशु मौलिम् ।
ततः परं सर्व जनाः प्रणेमुः ये चानुगास्तस्य विनीत भावाः ॥१९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी को धर्मचन्द्र के सहित श्री हरि गोविन्द जी ने साष्टांग नमस्कार किया, पीछे आये हुये सब लोगों ने विनीत भाव से नमस्कार किया ॥१९॥

सम्भाव्य सर्वान् स्मित पूर्व भाषी, श्रीचन्द्र देवोऽपि च तान् बभाषे ।
अनामयं कच्चिदनिन्दितात्मन् यूयञ्च भोः सर्व सुखान्विताः किम् ॥

अर्थ—श्री ११०८ श्रीचन्द्र भगवान् महन्त धर्मचन्द्र जी तथा हरगोविन्द जी को आशीर्वाद देते कुशल मंगल पूछते प्रसन्न चित्त से कहा यहाँ पर आप लोग कैसे आये ॥२०॥

बद्धाञ्जलि पुटास्ते तु नामं नामं मुहुर्मुहुः ।
आनन्द बाष्प रुद्धाचाकुशलं व्याचचक्षिरे ॥२१॥

अर्थ—तब हरिगोविन्द जी हाथ जोड़ के वारम्वार नमस्कार करते बोले कि आप की कृपा से सब लोग हर प्रकार से कुशल हैं ॥२१॥

इति पृष्टः स तंप्राह भगवन् किं वदाम्यहम् ।
कुल दीपा हते गेहः दीपकैर्न विराजते ॥२२॥

अर्थ—ऐसा कह फिर हरिगोविन्द जी बोले कि हे भगवन् आप से मै क्या कहूँ आप सर्वज्ञ हैं फिर भी आपके पूछने से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे घर में कुल का दीपक जलाने वाला कोई पुत्र नहीं है ॥२२॥

सर्व सम्पत्ति युक्तस्य सर्वशास्त्र विदोऽपि च ।
सेनाभृत्यशतस्यापि जीवलोकोऽसुखाय मे ॥२३॥

अर्थ—आपकी कृपा से सर्व सम्पत्ति से युक्त हूँ सर्व शास्त्रों का ज्ञाता हूँ, सेना नौकर आदि भी सब उपस्थित हैं किन्तु यह सब जीव को इस लोक में सुख देने वाले हैं ॥२३॥

उदश्रु मुख पद्मा च पद्मिनीव हिमागमे ।
म्लाना मां गेहिनी नित्यं रुदन्ति खेदयत्यहो ॥२४॥

अर्थ—मेरी स्त्री का नित्य रोने से ऐसा मलीन मुख हो गया है जैसे सर्दी के आगमन से कमलिनी का मुख उदास हो जाता है ॥२४॥

इहा मुत्र गति र्नास्ति पुत्र दीनस्य मे विभो ।
तवैव विमलौ तस्माच्चरणौ शरणी कृतौ ॥२५॥

अर्थ—इस लोक में सद्गृहस्थ को पुत्र विना गति नहीं है इसलिये हे प्रभो पुत्र देने की कृपा कीजिये उसको मैं आपके विमल चरणों की शरण में दे दूँगा ॥२५॥

कुलं समुज्ज्वलं कुर्यादेकोऽपि कुलदीपकः ।
अनुग्राह्योऽस्मि नितरामेकेनापि सुतेनते ॥२६॥

अर्थ—जिससे मेरा कुल उज्ज्वल हो जाय ऐसा एक पुत्र कुल का दीपक आप देने को कृपा करें, मैं अनेक पुत्र पाने की आप से याचना नहीं करता हूँ ॥२६॥

इत्युक्त्वा बाष्पकण्ठोऽसौ साष्टाङ्गं न्यपतत्पदे ।
श्रीचन्द्रो भगवान् दीनं तमुत्थाप्याभ्यभाषत ॥२७॥

अर्थ—ऐसा कहते २ उनका गला भर आया और श्री गुरु जी के चरणों में पड़ गये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी अपने चरणों से हरगोविन्द जी को उठाते हुये बड़े प्रेम से बोलते भये ॥२७॥

वत्स विमुच्यतां शोकः समाश्वास्या च गेहिनी ।
पञ्चपुत्रा भविष्यन्ति लक्ष्मी विद्या बलान्विताः ॥२८॥

अर्थ—हे वत्स तुम शोक को छोड़ दो और अपनी धर्म पत्नि को भी समझा दो हमारे आशीर्वाद से तुम्हारे पाँच पुत्र होंगे जो सब लक्ष्मी विद्या और बल में भर पूर होंगे ॥२८॥

सर्वे लक्षणसंपन्नाः पुरुषायुष जीविनः ।
कुलं ते नन्दयिष्यन्ति धार्मिकाः प्रिय दर्शनाः ॥२९॥

अर्थ—सर्व लक्षण से सम्पन्न पुरुषार्थ युक्त जीवन व्यतीत करने वाले कुल का सुयश बढ़ाने वाले धार्मिक प्रिय दर्शन होंगे ॥२९॥

मातृ देवाः पितृ देवाः गुरुदेवाः क्षमा धनाः ।
कला कलाप विज्ञाश्च मोक्ष मार्गे सदारताः ॥३०॥

अर्थ—माता पिता गुरू के सेवक सर्व कलाओं में विज्ञ मोक्षमार्ग में सदा प्रवृत्त रहेंगे ऐसा कह सुन्दर उपदेश देते भये ॥३०॥

अभिवर्ष्येव पर्जन्यः विरराम हिमांशु धृक् ।
सोऽपि भूभृद्दिवा सिक्तः, नताम चरणौ पुनः ॥३१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का यह आशीर्वादी बचन सुन श्री हरिगोबिन्द जी बड़े प्रसन्न हो श्री गुरू जी के चरणों में बारम्बार पड़ प्रणाम करते भये ॥३१॥

प्रक्षाल्य चरणौ पीत्वा चरणोदकमद्भुतम् ।
दीक्षितो हरि गोविन्दः कृत कृत्यः प्रसन्नधीः ॥३२॥
वेदरसरसेन्दौ श्री वैक्रमे भाद्र कृष्ण के ।
अमावस्यादिने जाता घटनेयं मनोहरा ॥३३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का हरिगोविन्द जी चरण धोय चरणामृत पी गुरु मन्त्र ले सादिक चेला बन बड़े आनन्दित होते भये, यह दिन वि० सं० १६६४ भाद्र वदी १५ का था ॥३२-३३॥

भूयो भूयस्तुवन्चन्द्रं त्रिः कृत्वा च प्रदक्षिणम् ।
महतीं दक्षिणां दत्वा प्रस्थे सेनया सह ॥३४॥

अर्थ—बारम्बार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा कर वृहद् पूजा (भेटा) चढ़ाय आनन्द से श्री हरिगोविन्द जी सेना सहित अपने निवास स्थान में जाते भये ॥३४॥

नोट—प्यारे पाठकों श्री हरिगोविन्द जी का भी जन्म श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के आशीर्वाद के प्रताप से ही हुआ है इसका प्रसङ्ग संक्षिप्त से पाठकों के समझाने को नीचे लिखा जाता है।

हरिगोविन्द पुत्रश्चं गुरुस्त्वर्जुन सत्पितुः ।
माता गङ्गा महादेवी लक्ष्मी रूपा च सत्प्रिया ॥३५॥

अर्थ—श्री हरिगोविन्द जी का जन्म पिता श्री अर्जुन देव जी पंजवी पातशाही माता श्रीमती गंगा देवी से वि० सं० १६५२ आषाढ़ वदी १ को बड़ाली ग्राम में हुआ था, तभी सन्त उदासीन श्री अर्जुन देवजी ने अपने मुख से स्पष्ट शब्द में खोल के कहा है ॥३५॥

आसामः ५ साचेसति गुरु दीया भेज ४-७-१०१ (पढ़ो सारा शब्द)

अर्थ—श्री अर्जुन देव जी कहते हैं कि सांचे सद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने भेज दिया है, अब आप विचार करें तो साफ विदित हो जायगा कि श्री अर्जुन देव जी के समय में पुत्र देने वाले सच्चे सतिगुरु श्रीचन्द्र भगवान् थे कारण दीया शब्द वर्तमान का बोधक है इसकर साचे सतिगुरु शब्द श्री गुरु श्रीचन्द्र जी ही पर सार्थक होता है।

निधिवाण रसेन्दौश्री माघ शुक्लेच पञ्चमी ।
हरिगोविन्दोपवीतंच संस्कारश्चसम्भवेत् ॥३६॥

अर्थ—वि० सं० १६५६ माघ सुदी ५ को हरिगोविन्द का यज्ञोपवीत हुआ, देखो गुरु विलास छै पात शाही लाहौर का छपा वि० सं० १९५१ का पत्रा ८८ अ० ५ कविता अङ्क ६० तथा पुस्तक गुरु कर्तव्य लिखत ६७ पन्ना ॥३६॥

एकदा हरिगोविन्द प्रचंड ज्वर पीड़तः ।
श्रीचन्द्र देव रक्षाय वालः शीश धरोकरः ॥३७॥

अर्थ—एक समय हरि गोविन्द जी को महाताप (बड़ा ज्वर) हो गया बहुत उपाय करने पर भी न गया तब अर्जुन देव जी अपने पुत्र हरिगोविन्द जी को श्री ११०८ जगद्गुरु

७५

श्रीचन्द्र भगवान् की शरण में ले गये, महाराज का आशीर्वादी हाथ लगते ही उसका सब बुखार उतर गया, और हरिगोविन्द नवा निरोवा (अच्छा भला) हो गया, यह श्री अर्जुन देव जी अपने मुख से स्वयं कह रहे हैं ॥३७॥

बिलावल मः ५ महातपति ते भई शान्ति परसत पाप नाठे ४।१६।४६

बिलावल मः ५ सकल अनन्द किया परमेश्वर अपना विरद संभालिया

साधु जना होये किरपाला विगसे सभ परिवारिया ।

कारज सतिगुरु आप सवारिया ।

बड़ी आरजा हरिगोविन्द की सुख मङ्गल कल्याण विचारिया ।२।५।२३।

वसन्त महला ५ रोग मिटाये प्रभू आपि । बालक राखे अपने कर थापि ॥४।३॥१६॥ प्रभु श्रीगुरु श्रीचन्द्र जी हैं ।

नोट—इस प्रकार के श्री ग्रन्थ साहब में बहुत शब्द आते हैं जिनसे साफ प्रतीत होता है कि हरिगोविन्द जी की रक्षा श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने की है, इसका खुलासा प्रकरण "सच्चे का बोल बाला" नामक पुस्तक में भली प्रकार खोलकर लिखा गया है जो प्रत्येक हिन्दू के पढ़ने योग्य है ।

॥ श्री गुरुदित्ता दीनदुनी का टिक्का ॥

पुनश्चरद्धरि गोविन्दो गुरु दर्शन कांक्षया ।
समागतश्च स विधे पप्रच्छापि स्वयं प्रभुः ॥३८॥

अर्थ—जब घर में पांच पुत्र हो गये यह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का वचन सत्य देख फिर दूसरी वार हरिगोविन्द जी सपरिवार जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के दर्शनार्थ आये तब श्री गुरू जी ने पूछा ॥३८॥

पुत्राश्च कतिते सन्ति हरि गोविन्द भक्तिमन् ।
पञ्चपुत्रा गुरो धीमन् कृपया भवतो मम ॥३९॥

अर्थ—आपके कितने पुत्र हैं हरिगोविन्द जी ने कहा आप के आशीर्वाद से ५ पुत्र हैं (देखो सूर्य प्रकाश रास ५ अंशु ८७) ॥३९॥

उवाच गुरु देवस्तु तेषामेकः प्रदीयताम् ।
यो देश धर्म भक्तस्स्यादेषा कांक्षा मताधुना ॥४०॥



श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रजी
अपना शिष्य बाबा गुरुदित्ताजी को
बना रहे हैं

अर्थ—श्री ११०८ श्री गुरुदेव श्रीचन्द्र जी ने कहा कि इनमें से एक पुत्र हम को दे दीजिये जो देश और धर्म का कार्य उदासीन साधु बन के करे ऐसी मेरी इच्छा है ॥४०॥

श्रुत्वा च हरिगोविन्द पञ्च पुत्रान् महौजसः ।
समर्पयामास मुदा सन्तुष्टो भगवान् स्वयम् ॥४१॥

अर्थ—यह सुन श्री हरिगोविन्द जी ने कहा महाराज पांचों पुत्र आप की सेवा में हाजिर हैं ॥४१॥

तेषामेकं भावुकञ्च जग्राह गुरु देवकः ।
चन्द्रनाग रसैश्चन्द्रैस्सम्मिते वैक्रमे शुभे ॥४२॥

अर्थ—यह सुन गुरुदेव जी प्रसन्न हो बड़ा पुत्र जिसका नाम गुरुदित्ता था जो वि० सं १६७० कार्तिक सुदी १५ सोमवार को माता दामोदरी जी पिता हरिगोविन्द जी से उत्पन्न हुआ था। मुण्डन जनेऊ विवाह सब वेद विधान से हो चुका था उसे लिया ॥४२॥

वैसाख शुक्लपक्षे च तृतीयायां भृगौ तथा ।
सेली टोपी गुरुर्दत्वा जगद्वहन्ति शक्तितः ॥४३॥

अर्थ—वि० सं० १६८१ बैशाखी शुक्ल अक्षय तृतीया शुक्रवार को अपना चेला बनाय सेली टोपी देते भये जो जगत् वन्दनीय वाली सर्व शक्ति सम्पन्न थी ॥४३॥

उदासीन सुवेषस्य शिक्षां सर्वां च दत्तवान् ।
शिष्यञ्च प्रेरयामास धर्म चिन्ता परायणः ॥४४॥

अर्थ—उदासीन भेष की सब शिक्षा गुरुदेव जी ने उसको दिया साथ ही अपने हिन्दू धर्म की रक्षा करने का उपदेश भी दिया, श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जी की कृपा से सर्व ऋद्धि* सिद्धि† श्री गुरु दित्ता जी में आय गई ॥४४॥

---

*ऋद्धि—वनस्पति से जो चमत्कारिक वस्तु प्राप्त हो उसको ऋद्धि कहते हैं।

†सिद्धि—अणिमा १ अपनी इच्छानुसार सूक्ष्म और महान् बन सकता है, २ महिमा (छोटे से बड़ा बनना), ३ लघिमा (बड़े से छोटा होना), ४ गरिमा (भारी से भारी बनना), ५ प्राप्ति (प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार होना, हर प्रकार की भविष्य वाणी बोलना, प्रत्येक विद्या का विद्वान होना), ६ प्राकाम्य (सहस्त्रों वर्ष तक जीवित रहना एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करके पुनः पूर्व शरीर मे आ जाना), ७ ईशत्व (त्रिकालदर्शी और त्रिकालज्ञ होना द्वैत भाव न होना, (८) वशित्व (प्रत्येक जीव को अपने वश में रखना।

उदासीन वेषं परमं पवित्रं वदामि वेदं षटशास्त्र मुख्यम् ।
आदौपुरातन निज धर्मरत्ता चतुर्थ आश्रम जग पूज्य सर्वे ॥४५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले कि यह परम पवित्र उदासीन सम्प्रदाय सृष्टि आदि काल से चला आ रहा है, जिसका महत्व वेद शास्त्रादि सभी गायन करते हैं, इसका मुख्य गुण अपने हिन्दू सनातन धर्म का प्रचार करना है, जिससे हिन्दू जाति की रत्ता बनी रहे, सज्जनों इस परम पवित्र श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन भेष के गुण उदासीन मत प्रदीप पञ्चमी शिखा में इस प्रकार लिखे हैं ॥४५॥

पुत्रेभार्य्यां विनिः त्तिप्य गत्वारण्यन्तु तत्ववित् ।
एकाकी विचरेन्नित्य मुदासीनः समाहितः ॥६२॥

अर्थ—उदासीन तत्व वेत्ता विरक्त महात्मा स्त्री पुत्रादिकों को त्याग के एकाकी विचरण करता समचित्त (राग द्वष से रहित) हो सबका भलाकरे ॥६२॥

अरोषमोहः समलोष्ट कांचनः प्रहीण केशो गत सन्धि विग्रह ।
अपेत निन्दास्तुति प्रियाप्रियश्चरेदुदासीनवदेष भित्तुकः ॥६४॥

अर्थ—क्रोध मोहादि से रहित मिट्टी स्वर्ण पत्थर को बराबर जानने वाला प्रिय अप्रिय, शत्रु मित्र निन्दा स्तुति से प्रथक बहूदक (भित्तुक) उदासीन महात्मा कहाता है ॥६४॥

सुशील वृत्तो व्यपनीत कल्मषो न चेहनामुत्रचरन्तु मीहते ।
अरोषमोहो गत सन्धि विग्रहश्चरेदुदासीन वदात्मचिन्तया ॥४॥

अर्थ—सम्पूर्ण पापों से रहित सुशील सुभाव इस लोक तथा परलोक की इच्छा रखने वाला रोश मोहादिक द्वन्दों से अतीत जगत का हितकारी आत्म चिन्तन में मग्न संसार में अलिप्त रहता हुआ उदासीन महात्मा सर्वत्र हिन्दू सनातन धर्मोपदेश करता विचरे ॥४॥

ब्राह्मणः त्तत्रियो वापि वैश्यो वा प्रव्रजेद् गृहात् ।
त्रयाणां वर्णानां वेद मधीत्य चत्वाराश्रमाः ॥६७॥
वर्णत्रय विहीनश्चेदौदासीन्यं समाश्रयेत् ।
न सिद्धिं समवाप्नोति स्वधर्माच्च्यवते ध्रुवम् ॥६८॥

अर्थ—ब्राह्मण त्तत्रिय और वैश्य तीनों वर्ण वेदाध्ययन करके प्रव्रज्या चतुर्थाश्रमी उदासीन भेष धारण करते हैं तब तीनों वर्ण संज्ञा मिट एक उदासीन संज्ञा रह जाती है उदासीन भेष में सम आश्रयेत् का अर्थ सब बराबर (ब्राह्मण त्तत्रिय वैश्य का बड़ा छोटा पन

वर्ण का भेद नहीं रह जाता) ही आश्रत नाम रहते हैं जब तक उदासीन भेष को नहीं धारण करते तब तक उनको कोई सिद्धि नहीं प्राप्त होती, यह हिन्दू जाति के स्वधर्म का अचल सिद्धान्त है।

नामापि गुरुदित्तेति रच्च भगवान् स्वयम्।
हिन्दुधर्म प्रचारार्थमाज्ञां दत्वा महाप्रभुः ॥४६॥

अर्थ—उनका नाम बाबा गुरुदित्ता दीन दुनी का टिक्का जी रख दिया जिस के बल से गुरु दित्ता जी में ऋद्धि सिद्धि की शक्ति आगई, हिन्दू धर्म के प्रचारार्थ उनको उत्तम शिक्षा दिया ॥४६॥

समाधि लसनं चक्रे श्रीमानतुल विक्रमः।
गुरु दित्तोऽपि धर्मात्मा सर्वथा विजितेन्द्रियः ॥४७॥

अर्थ—समाधि लगाने वाले बाबा गुरुदित्ता जी का बड़ा प्रताप बढ़ने लगा जो बड़े धर्मात्मा जितेन्द्रिय थे ॥४७॥

॥ आत्मोपदेश ॥

प्रश्नम्विविक्तं हितकारकञ्चप्रक्षाल्य शुद्धौ चरणौ गुरोश्च।
पप्रच्छ साधुर्गुरुदित्तनामा शरीरमात्मा च किमस्ति शुद्धः ॥४८॥

अर्थ—एक समय बाबा गुरुदित्ता जी ने गुरुदेव श्रीचन्द्र जी के पवित्र चरण दवाते हुये प्रश्न किया कि हे श्री गुरुदेव जी शरीर और आत्मा क्या है ॥४८॥

किमस्ति तद्ब्रह्म किमात्मतत्वमेकश्च तद्ब्रह्म निरूपणीयम्।
आत्मैवतद्ब्रह्म विलक्षणन्तु ब्रह्मैव आत्मानतयोर्हि भेदः ॥४९॥

अर्थ—हे भगवन् ब्रह्म क्या है, आत्म तत्व क्या है ऐ दोनों एक हैं अथवा पृथक् २ हैं। यदि दोनों एक ही हैं तो उसका निरूपण कीजिये ॥४९॥

प्रकाश्यतामेष विशेष शेष पथ प्रबन्धो हितकारकश्च।
नान्यस्तु कश्चित् कथितो समर्थो लोकेतु योगी च भवा दृशोहि ॥५०॥

अर्थ—आत्मा ही ब्रह्म है ब्रह्म ही आत्मा है दोनों में भेद है या नहीं यह हित कारक विषय आप कहिये आपके सिवाय दूसरा कोई नहीं कह सकता है ॥५०॥

जहास धीरो भगवान् महात्मा प्रश्नं विशालं नितरां निशम्य।
जगादवाणीं हितकारिकाश्च प्रश्नो विशिष्टश्च नृणां हिताय ॥५१॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी यह सुन के हँसे और प्रसन्न होकर गम्भीर वाणी से बोले जो संसार को हित कारक है ॥५१॥

॥ जगद्गुरु श्रीचन्द्र उवाच ॥

ध्यानेन सर्वं शृणु वेद वाक्यं तत्त्वप्रबंधर्मं ततं विचित्रम्।
तृप्तिश्च तेनैव भवे त्वदीयाऽनीतं विशिष्टं नवनीतमेव ॥५२॥

अर्थ—वेद वाक्यों से इस प्रश्न का उत्तर देते हैं, सावधान होकर सुनो उसी से तुमको शान्ति मिलेगी ॥५२॥

"तदैक्षत वहुस्यां प्रजायेय" "तदैक्षत वहुस्यांसोऽकामयत्"

अर्थ—परमात्मा ने ऐसा संकल्प किया कि एक ही मैं अनेक नाम रूपों से होवा हूँ जो चाहता हूँ वह कर दिखाता हूँ।

यतो वायमानि भूतानि जायेतेयेन जातानिजीवन्ति प्रत्प्रयं त्यभि संविशति

अर्थ—जिस ईश्वर से यह सब जगत उत्पन्न होता है और उत्पन्न होके सर्व भूत जिस ईश्वर से जीवन को प्राप्त हो पुनः मृत्यु को प्राप्त हो जिस ईश्वर में लय हो जाता है वही सत्य ब्रह्म है "यत्प्रयं त्यभि संविशंति" यह श्रुति इस ब्रह्म में ही जगत कालय होना कथन करती है "आत्मनः आकाशः संभूतः" इत्यादिक सर्व श्रुतियों में ही चेतन ब्रह्म को अभिन्न निमित्त उपादान कारण माना है, यद्यपि उपरोक्त श्रुति से आत्मा को ही जगत की उपादानता प्रतीत होती है ब्रह्म की नहीं तथापि "तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविसत्" इत्यादिक श्रुतियों विषे ब्रह्म का ही जीव भाव करके जगत में प्रवेश करना बताया गया है। इसलिये आत्मा ब्रह्म से भिन्न नहीं है। यह ब्रह्म ही आत्म रूप है और आत्मा ही जगत का उपादान कारण है, यद्यपि माया से रहित निर्विकार शुद्ध ब्रह्म को जगत का उपादान संभवता नहीं तथापि माया उपहित ब्रह्म को यह उपादान संभवता है, इस माया उपहित ब्रह्म का नाम ईश्वर है तभी वेदों में कहा है "एकोऽहम् बहुस्यामि" इस श्रुति से पता लगता है कि जो अद्वितीय सत अस्ति मात्र अति सूक्ष्म निर्विशेष सर्वगत निरंजन निरवयव निराकार जो परमेश्वर विज्ञान घन है वही परमेश्वर एक से बहुत होने की इच्छा करता भया। उस इच्छा का नाम प्रकृति माया शक्ति आदि कहे जाते हैं, यह प्रकृति दो प्रकार की है एक जड़ दूसरी चेतन, इसी को भगवान् कृष्ण ने गीता में अपरा और परा प्रकृति कहा है। आकाश, वायु, तेज जल, पृथ्वी, मन, बुद्धि और अहंकार ए आठ प्रकार वाली अपरा जड़ प्रकृति है जिससे ये २४ विकारों वाला शरीर बना, तथा जीवत्मा परा प्रकृति है जिसको चेतन कहते हैं, शरीर युक्त

इस जीव के भी दो भेद हैं एक चर दूसरा अचर। मनुष्य, पशु, पत्नी आदि चर, वृत्त, लता, पर्वतादि अचर। उपरोक्त सब समुदाय के समूह का नाम विश्व है समस्त विश्व इन्हीं पञ्च भूतों से बना है।

॥ पञ्चमहाभूत प्रकरणम् ॥

आकाशः पवनश्चैव तेजश्चापि जलन्तथा।
पृथ्वीति पञ्च भूतानि निर्दिष्टानि मनीषिभिः ॥५३॥

अर्थ—आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी यह पाँच तत्व बुद्धिमानों ने कहे हैं, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी यह क्रम है उसी क्रम की आगे व्याख्या है ॥५३॥

शब्द स्पर्शौ च रूपञ्च रसोगन्धस्तथा क्रमात्।
गुणाएते च एतेषां स्वभाव प्रभवाननु ॥५४॥

अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध स्वभाव से पाँचो तत्व के विशिष्ट गुण हैं ॥५४॥

आकाश एकोऽहि गुणः प्रदिष्टोवायौ च युक्तञ्च गुण द्वयन्तु।
अग्नौ विशालश्च गुण त्रयन्तु चत्वार एवञ्च गुणाजलेऽपि ॥५५॥

अर्थ—आकाश में एक गुण है, वायु में दो गुण हैं अग्नि में तीन गुण हैं जल में चार गुण हैं ॥५५॥

पृथ्वां गुणाः पञ्च विशेषिताश्च प्रत्यत्त भूताः कवयो वदन्ति।
विचार दत्ताः कुशलश्च लोके जानन्ति सिद्धो प्रवलं रहस्यम् ॥५६॥

अर्थ—पृथ्वी में पांच गुण हैं यह प्रत्यत्त भाव से वर्तमान गुण शास्त्रों ने कहा है बिचारवान पुरुष लोक में इस रहस्य को ठीक २ जानते हैं ॥५६॥

आकाशादश संख्यया च पवनो न्यूनश्च वायोर्महान्,
अग्निर्न्यून तमस्ततोऽति गहनं न्यूनं जलं सम्मतम्।
अद्भ्यो न्यूनतमा मही च दशभिस्संख्याभिरामेदिता,
पूर्वेभ्योदश संख्यया च रहिता एवं क्रमो लौकिकः ॥५७॥

अर्थ—आकाश से दशगुणा वायु न्यून है, उससे अग्नि न्यून है, उससे जल न्यून है उससे पृथ्वी न्यून है, पूर्व से उत्तर दश दश संख्या न्यून हैं, यह अनुभव गम्य है ॥५७॥

पञ्चानामेव तत्वानां पञ्ची करण सत्क्रमः,
ततस्थल शरीरं तु पञ्च विंशति तत्वजम् ॥५८॥
कामः क्रोधश्च शोकश्च मोहोऽपि भय मेवहि,
आकाशस्य च तत्वानि पञ्चैव कथितानि च ॥५९॥

अर्थ—पाँचों तत्वों का पंची करण क्रम है स्थूल शरीर २५ तत्वों से होता है। काम, क्रोध, शोक, मोह, भय यह आकाश के पांच तत्व हैं ॥५८-५९॥

चलनं वलनंचैव धावनं च प्रसारणम् ।
सङ्कोचनञ्च पञ्चैव वायोस्तत्वानि सन्ति हि ॥६०॥

अर्थ—चलन, वलन, धावन प्रसारण, सङ्कोचन ये पाँच तत्व वायु के हैं ॥६०॥

क्षुधा निद्रा तृषा चैवमालस्यं क्रान्ति रेवच ।
अग्नेश्च पञ्च तत्वानि कथितानि प्रसङ्गतः ॥६१॥

अर्थ—क्षुधा, निद्रा, तृषा, आलस्य, क्रान्ति ए पांच तत्व अग्नि के हैं ॥६१॥

शुक्रं मूत्रं च रुधिरं लारस्स्वेदः तथैवच ।
अपां तत्वानि पञ्चापि वरुणस्य प्रसादतः ॥६२॥

अर्थ—शुक्र, मूत्र, रक्त, लार, पसीना ए पांच जल के तत्व हैं ॥६२॥

अस्थिमांसश्चरोमाऽपिनाड़ी त्वक् सुस्थिरास्तथा ।
भुवस्तत्वानि चेमानि पञ्च विंशति पूरणाः ॥६३॥

अर्थ—हड्डी, मांस, लोम, नाड़ी, चमड़ा, ए पृथ्वी के पांच तत्व हैं ये कुल जोड़ने से २५ तत्व होते हैं ॥६३॥

अतः स्थूल शरीरं तु पञ्च विंशति तत्वजम् ।
योगिनस्तत्व रूपं च पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषा ॥६४॥

अर्थ—स्थूल शरीर २५ तत्वों से बनता है इसे ज्ञानी लोग ज्ञानचक्षुसे देखते हैं ॥६४॥

सूक्ष्मं शरीरं वक्ष्यामि लोकानां हित चिन्तया ।
तत्वैश्च सप्तदशकै सूक्ष्मकायं प्रपद्यते ॥६५॥

अर्थ—अब सूक्ष्म शरीर का वर्णन करते हैं लोक के कल्याणार्थ १७ तत्वों से सूक्ष्म शरीर बनता है ॥६५॥

ज्ञानेन्द्रियै रेवविलक्षणैश्च कर्मेन्द्रियैः पञ्चभिरेव प्राणैः ।
बुद्धया तथैवं मनसा च सूक्ष्मं शरीर मुत्पद्यत एव लोके ॥६६॥

अर्थ—ज्ञानेन्द्रिय पांच (श्रोत, त्वक्, घ्राण, नेत्र, रसना,) कर्मेन्द्रिय पांच (हस्त, पाद गुदा, उपस्थ, वाणी), पांच प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान), मन तथा बुद्धि इन १७ तत्वों का सूक्ष्म शरीर बनता है ॥६६॥

आकाशादीनि भूतानि तमः प्रकृति जानि च ।
पञ्च भूतीय सत्वाच्च ज्ञानेन्द्रिय समुद्भवः ॥६७॥

अर्थ—आकाशादि पञ्चभूत तमः प्रकृतिज हैं, पांच भूतों के सत्व गुण से ज्ञानेन्द्रिय होती हैं ॥६७॥

आकाशस्य च सत्वांशै श्रोत्रेन्द्रिय जयो मतः ।
शब्दश्च विषयस्त्वस्य देवता दिक् सदा मता ॥६८॥

अर्थ—आकाश केसत्व गुण से श्रोत्रेन्द्रिय होती है शब्द विषय है देवता दिक् (दिशा) हैं ॥६८॥

तेजस्सात्विकांशेन चक्षु रूपं प्रसिद्धयति ।
विषयो रूपमेवास्ति देवता सूर्य उच्यते ॥६९॥

अर्थ—अग्नि के सात्विक अंश से नेत्र इन्द्रिय होती है जिसका विषय रूप देखना है देवता सूर्य है ॥६९॥

वायोश्च सात्विकांशेन त्वचा सम्पद्यते भुवि ।
विषय स्पर्श एवास्ति देवता वायु उच्यते ॥७०॥

अर्थ—वायु के सात्विक अंश से त्वचा होती है स्पर्श विषय है देवता वायु है ॥७०॥

अपाञ्च सात्विकांशेन जिह्वा तु जायते मुदा ।
विषयस्तु रसस्तस्या देवता वरुणो मतः ॥७१॥

अर्थ—जल के सात्विक अंश से जिह्वा है विषय रस है देवता वरुण हैं ॥७१॥

मह्याश्च सात्विकांशेन नाशिका जायते सदा ।
गन्धश्च विषयस्तस्या देवता च कुमारकः ॥७२॥

अर्थ—पृथ्वी के सात्विक अंश से नासिका होती है गन्ध विषय है देवता अश्वनी कुमार हैं ॥७२॥

ज्ञानेन्द्रियाश्रया बुद्धि प्रत्यक्ष फल दायिकः ।
विज्ञानवाद कुशला जानन्ति चरितं मुदा ॥७३॥

अर्थ—ज्ञानेन्द्रिय के आश्रय बुद्धि है प्रत्यक्ष फल देने वाली है ज्ञानी लोग इसे जानते हैं ॥७३॥

कर्मेन्द्रिय रुरूपंतु वर्ण्याम हिताय च ।
विषयो भाशणं वाण्या देवताग्निः समुच्यते ॥७४॥

अर्थ—अब कर्मेन्द्रिय का स्वरूप वर्णन करते हैं वाणी का विषय भाषण है अग्नि देवता है ॥७४॥

हस्तयोर्विषयो ग्राह्योदेवतेन्द्रः प्रकीर्तितः ।
पादयोश्चलनंकर्म देवतोपेन्द्र इष्यते ॥७५॥

अर्थ—हाथ का विषय ग्रहण करना है देवता इन्द्र है, पैर का चलना कर्म है देवता उपेन्द्र (विष्णु) है ॥७५॥

गुदापास्य समुत्सर्गो देवता मृत्यु रेवहि ।
उपस्थभगयोर्भोगो मूत्र त्यागः तथैव च ॥७६॥

अर्थ—गुदा का मल त्याग विषय है देवता मृत्यु है, लिङ्ग भग का विषय भोग है मूत्र वीर्य रज त्याग है ॥७६॥

प्रजापति र्देवतेति तेषां कर्माश्रयं मतम् ।
ब्रह्माच देवता तस्या बुद्धिश्च निश्चयात्मिका ॥७७॥

अर्थ—लिङ्ग का प्रजापति देवता है इसका कार्य सृष्टि करना है निश्चयात्मिक करने वाली जो बुद्धि है उसके देवता ब्रह्मा हैं ॥७७॥

अन्तःकरण वृत्तिश्च मनइत्युच्यते सदा ।
देवता चन्द्रमा तस्य ह्यहंकारस्तु चित्तकम् ॥७८॥
मनोबुद्ध्यन्तर गता वृत्ति रित्यभिधीयते ।
अन्तः करण वृत्तेश्च चित्तं नाम निगद्यते ॥७९॥

अर्थ—मनका देवता चन्द्रमा है अहंकार चित्त मन बुद्धि के अन्तर्गत वृत्ति का नाम है, अन्तःकरण वृत्ति का नाम चित्त है ॥७८-७९॥

अच्युतोदेवता तस्य कथिता वेद पारगैः ।
साभिमाना चित्त बृत्तिरहंकारः प्रकीर्तितः ॥८०॥

अर्थ—अच्युत देवता है साभिमान चित्त वृत्ति का अहंकार नाम है। ॥८०॥

देवता शङ्करस्तस्य कथितो धर्म शास्त्रिभिः ।
मिलित्वा च मनो बुद्धिर्यथैवोत्पद्यते तथा ॥८१॥

अर्थ—देवता शङ्कर है मन बुद्धि सब मिलके जिससे पैदा होते हैं ऐसा धर्मशास्त्र कहते हैं ॥८१॥

पञ्चानामेव भूतानां सात्विकांशात्व्यवस्थितिः ।
एष एव विचारस्तु सर्व सिद्धान्त संततः ॥८२॥

अर्थ—पंचभूतों के सात्विक अंश से सब व्यवस्था बनती है यह विचार समस्त सिद्धान्तों से सम्मत है। यह श्री गुरुदेव जी श्री शिव रूप श्रीचन्द्र महाराज ने उपदेश दिया, तब गुरुदित्ता जी ने पूछा पंचकोष और पंच वायु किसे कहते हैं ॥८२॥

॥ पञ्च कोषाः ॥

अन्नमयः प्राणमयः मनोमय इतः परः ।
विज्ञानमय आनन्दमयःपञ्चैव कौषकाः ॥८३॥

अर्थ—अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय ये पांच कोष कहे जाते हैं ॥८३॥

पञ्च कोषादिवत्तस्मात्कल्पनैषा समाश्रिता ।
उपेयप्रति पत्यर्था उपाया अव्यवस्थिताः ॥८४॥

अर्थ—पञ्चकोषों की कल्पना जैसे है उसी तरह आत्मदेव की कल्पना भी उपेय पदार्थ के ज्ञान के वास्ते उपायाव्यवस्थित है ॥८४॥

भृगुर्वैवारुणि र्वरुणं ब्रह्मा पृष्टवान् स उवाच अन्न ब्रह्म तस्यो त्पत्यादिकं बुद्ध्वापृष्टेपापामनोविज्ञानानन्दात्मकम् पञ्चकोषोत्तरं ब्रह्म प्रच्छंप्रतिष्ठेति गेयं ब्रह्म प्रति पादितम् ॥८५॥

अर्थ—भृगु वारुणी वरुण आदिकने श्री ब्रह्मा जी से पूछा हे भगवन् ब्रह्म क्या है उत्तर में ब्रह्मा जी ने कहा अन्न प्राण मन विज्ञान के जानने वाला ब्रह्म है अन्नादि पांचों अनित्य हैं पञ्च कोष से परे आनन्द स्वरूप ब्रह्म है ॥८५॥

उपायशिक्षमाणानां बालानामुपलालना: ।
असत्ये वर्त्मनिस्थित्वा ततः सत्यं समीहते ॥८६॥

अर्थ—जैसे शिक्षा के जिज्ञासु बालकों को सरल उपाय सुन्दर होता है, तैसे असत्य मार्ग में स्थित रह कर सत्य ब्रह्म मिलता है अरुन्धती दर्शन न्याय की तरह ॥८६॥

आत्मा स्वयं ब्रह्म सुख स्वरूपं शरीर मासाद्यच निर्वलन्तत् ।
जन्मासि मृत्युं लभते महात्मा सम्पार्य्यते योग तरङ्ग तानैः ॥८७॥

अर्थ—यह आत्मा स्वयं ब्रह्म सुख रूप होता हुआ शरीर में जाने से निर्बल हो जाता है जन्म मृत्यु भाव पाता है इसे योगी लोग पार पाते हैं ॥८७॥

सुखस्य दुःखस्य न च स्पृहास्ति तथापि भोगं समुपेत्य योगम् ।
समस्त कर्माभि लवङ्गलाना दात्मा कदाचित्सवितेव दृश्यः ॥८८॥

अर्थ—सुख दुःख की उसको चाहना नहीं तथापि शरीराविच्छिन्न होकर अयोग्य सुख दुःख का अनुभव करता है उपासना कर्म द्वारा सूर्य के सदृश्य शुद्ध होता है ॥८८॥

यथा सुवर्णो दहनाभितप्तो शुद्धस्तथा शुद्धतमः प्रसिद्धः ।
तथाऽयमात्माशुभ कर्ममृष्टः स्थानं पवित्रञ्च समश्नुतेहि ॥८९॥

अर्थ—जैसे अग्नि में तपाया हुआ सोना निर्मल होता है उसी तरह शुभ कर्म से शुद्ध हुआ आत्मा पवित्र रहस्य को पाता है ॥८९॥

जगत्समग्रं प्रलयं प्रयाति ब्रह्मैवमात्मा परितिष्ठतीति ।
जगत्सिसृक्षुर्भगवान् स्वयम्भू र्लीलां स्वकीयाम्वितनोत्यपाराम् ।९०।

अर्थ—समस्त संसार नष्ट हो जाता है केवल निर्गुण आत्मा ही स्थिर रहता है वह ब्रह्म संसार रचना की इच्छा से अपार लीला रचता है ॥९०॥

सत्पण्डिताज्ञानधनाश्च बुद्ध्वा पतन्तितन्मोहनिधौविशिष्टाः ।
लग्नाः निमग्नाः प्रवले विचारे खनन्ति गर्तं न तथापि पारम् ॥९१।

अर्थ—बड़े २ पण्डित ज्ञानी जन जान के अपार लीला मोह सागर में गिर जाते हैं खूब लगे हुये विचारों से खोजकरते हैं परन्तु पार नहीं पाते हैं ॥९१॥

अपेक्षते योगिवरस्यनित्यं साहाय मात्रं विवुधैः प्रदिष्टम् ।
तथापि सूक्ष्मातितरश्च सूक्ष्मो मार्गो गुरोर्देववर प्रसादात् ।९२।

अर्थ—बुद्धिमान लोग बहुत सहायता चाहते हैं परन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्मतर मार्ग श्री गुरु देव के उपदेशामृत से ही शीघ्र प्राप्त हो सकता है ॥६२॥

शुद्धो भवत्यत्र च सद्गुरोश्च कृपा कटाक्षस्सुतरामपेक्ष्यः ।
परंपरांच व्यवहार सिद्धा फलप्रदासत्यमिदं च शास्त्रे ॥६३॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी की कृपा के अवलम्बन से जल्दी आत्मा का ज्ञान होता है यह परम्परा व्यवहार सिद्ध है शास्त्रों में भी वर्णित है ॥६३॥

कोषेनान्नमयेनैव स्थूलं कायं सदा मतम् ।
मनोमयैः प्राणमयैर्विज्ञानमयैकस्तथा ॥६४॥
सूक्ष्मं शरीरमित्याहु धर्मतत्व समर्थकाः ।
कोषेप्राणमये चैव पञ्चप्राणः प्रतिष्ठिताः ॥६५॥
पञ्चकर्मेन्द्रियाण्येव तत्रजाग्रति नित्यशः ।
गुह्यमेतच्च जानन्ति योगिनस्तत्वदर्शिनः ॥६६॥
मनोमये मनश्चैव तथा ज्ञानेन्द्रियाणि च ।
कोषे च विज्ञानमये बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियाणिच ॥६७॥

अर्थ—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय ये पांच कोष कहे जाते हैं, इनसे आच्छादित होकर परमानन्द रूप आत्मा अपने परमानन्द रूप को भुलाकर जन्म मरण रूप दुःख को प्राप्त होता है। जिसका परिणाम दुःख है तथा वर्तमान में भी दुःख रूप है, उसमें सुख मानकर प्रवृत होना मिथ्या ज्ञान कहाता है, जन्म जरा व्याधि मरण अनिष्ट संयोग वियोग आदि सब दुःख हैं, दुःख का समीकरण तथा संयोग वियोग होने से जन्म भी दुख ही है

"दुःख विकल्पे सुखाभिमानाच्च" ॥५८॥ (अ० ४ न्याय दर्शन)

अन्नमय कोष का स्थूल शरीर है, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय इन कोषों का सूक्ष्म शरीर है, प्राणमय कोष पञ्च प्राण और पञ्च कर्मेन्द्रियां हैं। सो यह प्राणमय कोष अपंचीकृत पंचभूतों के रजोगुण अंश से उत्पन्न हुआ है। पंच ज्ञानेन्द्रिय और मन इसका नाम मनोमय कोष है। पञ्च ज्ञानेन्द्रियां और बुद्धि ये विज्ञानमय कोष है। कारण शरीर का नाम आनन्द मय कोष है। यह आनन्द मय कोष प्रिय मोद प्रमोद वृत्तियों के सहित मलिन सत्य प्रधान अविद्याका नाम है प्रिय इच्छित पदार्थ का दर्शन, मोद इच्छित पदार्थ के मिलने पर जो सुख हो वह, प्रमोद इच्छित पदार्थों के उपभोग करने पर जो सुख हो। इस प्रकार अन्नमय आदि पञ्च कोष रूपी जो तीन

शरीर हैं आत्मा इन तीनों से भिन्न है। पंच कोषों के मध्य में अनुसूयत होने से जैसे अनेक मणियों के मध्य में अनुसूयत जो धागा है वह मणियों से भिन्न है। इसी प्रकार पञ्च कोष से आत्मा भिन्न है। यह स्थूल देह रूप अन्नमय कोष और देह के अन्दर जो प्राण है सो प्राणमय कोष, मन के अन्दर जो बुद्धि है सो विज्ञानमय कोष है और बुद्धि के अन्दर आनन्दमय कोष है इन पञ्च कोषों की परम्परा रूप गुफा में आत्मा स्थित है ॥९४-९५-९६-९७॥

यथा जालन्तु तनुते मकरी स्वेच्छयासदा ।
तथाऽयमात्मा ब्रह्मैव रचनां प्रकरोति च ॥९८॥

अर्थ—जैसे मकड़ी अपनी इच्छा से जाल रचती है उसी तरह यह आत्मा ब्रह्म जगत की रचना करता है ॥९८॥

हृदिप्राणोगुदेऽपानस्समानो नाभि मण्डले ।
उदानः कण्ठ देशेस्याद् व्यानस्सर्व शरीरगः ॥९९॥

अन्नस्य परिपक्वस्य रुधिरं वीर्यकन्तथा ।
पुरीशोत्सर्जनार्थं तु समीकरणमुच्यते ॥१००॥

अर्थ—प्राण अपान व्यान समान और उदान ये पांच वायु कहाते हैं, ऊपर को चलने वाला नाशिका के अग्रभाग में रहने वाले को प्राण वायु कहते हैं, सब नाड़ियों में चलने और सर्व शरीर में रहने वाले को व्यान, नीचे चलने और गुदा स्थान में रहने वाले को अपान, ऊपर को चलता हुआ कण्ठ में रहने वाले को उदान, भोजन किये अन्न और पान किये जल को समी करण करने वाले वायु को समान वायु कहते हैं। परिपक क्रिया द्वारा भोजन करी हुई वस्तु का रुधिर वीर्य और पुरीषादि करने का नाम समीकरण है ॥९९-१००॥

कृकलो नाग कूर्मौ च देवदत्तो धनञ्जयः ।
वायवः पञ्च विख्याता केचिदेवं वदन्ति हि ॥१०१॥

अर्थ—कृकल देवदत्त नाग कूर्म धनंजय यह पांच वायु मिलके दश वायु सांख्य वाले कहते हैं ॥१०१॥

मृतकस्य शरीरे तु शवे च जड़ताङ्गते ।
धनञ्जयाख्यो वायुश्च नित्य मेवातु तिष्ठति ॥१०२॥

अर्थ—मृतक शरीर में धनञ्जय वायु शरीर दहन के पूर्व स्थित रहता है ॥१०२॥

तस्यवायोर्वलेनैव योगिनस्तत्वदर्शिनः ।
जीवयन्ति मृतंकायमाश्चर्यन्नैव किञ्चन ॥१०३॥

अर्थ—उसी वायु के बल से योगी लोग मृतक को जीवित करते हैं यह आश्चर्य नहीं है ॥१०३॥

॥ मोक्ष लक्षण ॥

पुरुषस्स्थूल सूक्ष्मश्च जीवात्मा ज्ञान प्राप्यतः ।
ब्रह्मैव भवत्यैकत्वं द्वैत सर्वत्र नाशकः ॥१०४॥

अर्थ—पुरुष का स्थूल शरीर (अन्नमय कोष) तमोगुण और सूक्ष्म शरीर जो गुण के कार्य कर्मेन्द्रिय सतो गुण के कार्य, ज्ञानेन्द्रिय पांच प्राण और मन, बुद्धि चित्त अंहकार से बनता है सूक्ष्म शरीर में सत्‌चित आनन्द ब्रह्म और उसके प्रति बिम्ब का मेल होता है तब वह जीव कहलाता है । यह जीव ही सुख दुःख का भोक्ता है और कर्मानुसार लोक लोकान्तर में जाता हुआ शरीर की उत्पत्ति का कारण बनता है । स्थूल और सूक्ष्म शरीर के मेल से जीवन की उत्पत्ति होती है, स्थूल से जब सूक्ष्म शरीर का वियोग होता है वही मृत्यु है, सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर की अपेक्षा अमर होता है । बारम्वार कर्मानुसार आता जाता हुआ सुख दुःख उठाता है, इसका नाश तब होता है जब इसके भीतर रहने वाला अविनाशी चैतन्य जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अज्ञान का कार्य सूक्ष्म शरीर है सूक्ष्म शरीर का कारण अज्ञान है इस अज्ञान के नाश होते ही अज्ञान के कार्य सूक्ष्म शरीर का नाश हो जाता है, और सूक्ष्म शरीर के नाश होते ही जीवात्मा जो उसमें बद्ध रहता है वह मुक्त हो जाता है, जीवात्मा मुक्त हो ईश्वर में और ईश्वर ब्रह्म में लय हो जाता है, यह आत्मा अजर अमर ज्ञान स्वरुप आनन्द स्वरूप एक रस अविनाशी है वही तेरा स्वरूप है जाग्रत और स्वप्न में जो कुछ देख पड़ता है वह सब मन का कार्य है मन के लय होते ही सब का लय हो जाता है, तब आधि भौतिक आधि दैविक,आध्यात्मिक तीनों तापों से रहित हो सुखपूर्वक अपने वास्तविक स्वरुप में स्थित होता है । जब मनुष्य विचार करते २ यह समझ जाय कि मैं शरीर से पृथक हूँ मेरा चैतन्य आत्मा ईश्वर से पृथक नहीं है भेद केवल इतना है कि माया ईश्वर के आधीन है और मैं माया केआधीन हूँ, जैसा ईश्वर चाहता है वैसा माया करती है और जैसा माया नचाती है वैसा मैं नाचता हूँ । जब तुम यह समझ लोगे कि मैं ही ब्रह्म हूँ मैं ही ईश्वर हूँ मैं ही चैतन्य आत्मा हूँ तो ईश्वरवत् अपने को अजर अमर अभय अविनाशी स्वरूप समझोगे ॥१०४॥

ब्रह्मादि तृण पर्यतं मायया कल्पितं जगत् ।
सत्यमेकं परब्रह्म विदित्वैवं सुखी भवेत् ॥ } महानिर्वाण तन्त्र

अर्थ—यह चराचर जगत माया के द्वारा कल्पित किया गया है वास्तव में मिथ्या है सत्य तो ब्रह्म है "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येति" (वेदान्त दर्शन) है आगे और भी में कहा है,

नित्यः सर्व गतोह्यात्मा कूटस्थो दोष वर्जितः ।
एकः संभिद्यते भ्रान्त्या मायया नस्वरूपतः ॥ } गन्धर्व तन्त्र

अर्थ—आत्मा एक है केवल माया से उत्पन्न भ्रान्ति से भिन्न २ दृष्टि आता है भेद औपाधिक है तात्विक नहीं। यद्यपि जीव के देश काल वस्तु अभिमान कार्य और धर्म पृथक २ हैं परन्तु जीव और ईश्वर के देश काल आदि का त्याग करके दोनों विषे अनुगत जो चेतन मात्र ब्रह्म है और आत्मा सो एक ही है इसी लिये जो ब्रह्म है सो मैं हूँ और जो मैं हूँ सो ब्रह्म है ऐसा दृढ़ निश्चय करना यही तत्व ज्ञान है, और इसी से ही सर्व दुःखों की निवृत्ति मानी है इस को ही कार्य सहित अज्ञान रूप अनर्थ के विघ्न की निवृत्ति कहते हैं। इसके पश्चात् परमानन्द रूप ब्रह्म की प्राप्ति का होना मोक्ष कहा है। इस मोक्ष का अवान्तर साधन निष्काम कर्म और उपासना है। पंचदशी वालेने निजानन्द मुख्यानन्द आत्मानन्द योगानन्द अद्वैतानन्द इन पांचों को ब्रह्मानन्द के भीतर माना है ज्ञान मुक्ति का साक्षात् कारण है इसके सिवाय अन्य जप तप योगादि परम्परा सम्बन्ध से मोक्ष के साधन हो सकते हैं पर साक्षात् साधन नहीं इस सिद्धान्त की पुष्टि

'ज्ञाना देवतु कैवल्यम्' 'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः' 'ज्ञात्वा देवं सर्व पाशापहानिः' 'तमेव विदित्वाति मृत्युमेतिनान्यः पंथाविद्यतेऽयन्याय'

आदि अनेक श्रुतियां हैं। इस बात के ज्ञाता उदासीन महात्मा से उपदेश प्राप्त कर साधन द्वारा आत्म ज्ञानी तत्त्व वेत्ता को पुनः जन्म मरण की निवृत्ति रूप अनावृत्ति ही होती है।

'अनावृत्ति शब्दा दनावृत्तिः शब्दात्' (ब्रह्म सूत्रम्)

यही बात गीता में भी आती है।

तद्बुद्धयस्तदात्मान स्तं निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्य पुनरावृत्तिं ज्ञान निर्धूत कल्मषाः ।१७। } गीता ० अ० ५

॥ शरीर जन्म कारण ॥

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ।१४। } गीता अ० ३

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोरसोऽपामोषधयारस । औषधीनां पुरुषोरसः पुरुषस्य वाग्रसः वाच ऋकूरसः ऋचस्सामरसः साम्न उद्गीथो रसः ॥२॥

अर्थ—इन जीवों का पृथ्वी रस है पृथ्वी से जल रस, जल से औषधि रस, ओषधि का पुरुप रस, पुरुष से वाक् रस, वाक् से ऋक रस ऋचा से सामरस साम से उद्गीथ रस ॥

नारी पुरुष संसर्गात् रजोवीर्यंऽच पिण्डकम् ।
पृथिव्यादि महाभूतैरात्मारूपस्य धारकः ॥१०५॥

अर्थ—पुरुष नारी के सम्बन्ध से रज वीर्य का पिण्ड बन जाता है पृथ्वी जल वायु आकाश अग्नि इन महाभूतों को आत्मा धारण करता है ऋतुकाल* के समतिथियों में पुत्र, विषम तिथियों में कन्या उत्पन्न होती है, वृहस्पति मुनि कहते हैं कि स्त्री का रज अधिक हो तो कन्या और पुरुष का वीर्य अधिक हो तो पुत्र होता है। प्रयोग पारिजात में लिखा है कि गर्भाधान के दूसरे या तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार होना चाहिये। काल विधान में कहा है कि गर्भाधन के ॥६-७-८ वें महीने में सीमन्तोनयन संस्कार करते हैं इस संस्कार में गर्भिणी को अच्छे २ स्वादिष्ट भोजन कराये जाते हैं गर्भिणी को हरप्रकार संयम से रहना चाहिए ॥१०५॥

इन्द्रियाणि मनः प्राणो ज्ञानं दुःखं सुखन्तथा ।
इच्छाद्वेषा ह्यहंकारा पदार्था जीव मूलगाः ॥१०६॥

---

* स्त्री को रजो दर्शन के उपरान्त १६ दिन ऋतुकाल कहलाता है ऋतु मती स्त्री को धर्म शास्त्र और आयुर्वेद के अनुसार रजो दर्शन के उपरान्त तीन दिन तक ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना चाहिये। पति को छूना या किसी के सामने निकलना, विशेष रोना, हसना, नाखून काटना बोझा उठाना दौड़ना कूदना आदि सब मना है। चटाई बिछाकर भूमि पर सोना उचित है चौथे दिन स्नान करके सुन्दर वस्त्र भूषण पहिन सुगन्धादि लगाय प्रसन्न मन से पति की सेवा में उपस्थित होय ऋतु काल के ही १६ दिन में स्त्री गर्भ धारण के योग्य होती है इनमें प्रथम ४ दिन ११ वां और १३ वां दिन गमन में वर्जित है। समझदार पुरुष अपनी पत्नि से ऋतु काल में ही गमन करते हैं—

ऋतु कालाभिगामी स्यात् स्वदार निरतः सदा ।
पर्व वर्जं व्रजेच्चैनां तद् व्रतो रति काम्यया ॥

प्रातः सायं मध्याह्न दिन में स्त्री प्रसङ्ग करना अत्यन्त हानिकारक है रात्रि का तीसरा पहर बड़ा ही अच्छा है स्त्री प्रसङ्ग के घंटा भर बाद स्नान अवश्य करना चाहिये इससे शक्ति नहीं घटती।

अर्थ—इन्द्रियां मन प्राण ज्ञान सुख दुःख इच्छा द्वेष आदि अहङ्कार यह पदार्थ जीव मूलग है ॥१०६॥

जीवात्मनः प्रकाशेन सर्वे तिष्ठन्ति नित्यशः ।
सार्द्रश्च प्रथमे मासि बुद्बुदाकार एव हि ॥१०७॥

अर्थ—जीवात्मा के प्रकाश से सब रहते हैं प्रथम में सर्द्र बुद् बुदाकार रहते हैं ॥१०७॥

द्वितीयेमासि कठिनः तृतीयेऽङ्गेन्द्रियादिकम् ।
चतुर्थेमास्यङ्गपुष्टिः पञ्चमे रुधिरादिकम् ॥१०८॥

अर्थ—दूसरे मास में वह कठिन हो जाते हैं तीसरे मास में अङ्ग इन्द्रियाँ बनती हैं चौथे मास में अङ्ग पुष्ट होता है पञ्चम मास में रुधिर होता है ॥१०८॥

षष्टे च नख रोमादि प्राणोवातादि सप्तमे ।
मनश्चैतन्य रूपञ्च अष्टमे धौत धारकः ॥१०६॥

अर्थ—छठे मास में नख रोम आदि होते हैं प्राणवायु सप्तम मास में होता है चैतन्य मन अष्टम मास में होता है धौत धार कभी आठवे में होता है ॥१०६॥

नवमेऽधिकशक्तिश्च एष एव सुनिर्णयः ।
अस्थिषष्ट्युत्तर शतत्रयं धरति बालकः ॥११०॥

अर्थ—नवममास में अधिक शक्ति वाला होता है यही जन्म काल का निर्णय है, तीन सौ साठ अस्थियां बालक में होती हैं ॥११०॥

शिरोदेहस्य धमनी द्वयोर्नाड्योश्च मेलने ।
युक्तां संख्या प्रवक्ष्यामि सर्वेषां ज्ञान वृद्धये ॥१११॥

अर्थ—शिरा धमनी दोनों नाड़ियों के मिलने से सब के ज्ञान बृद्धि के लिये युक्त संख्या बताता हूँ ॥१११॥

द्वयोर्नाड्योश्शास्त्र संख्या २६ लक्ष ६५६ श्मश्रुमुच्छ शिर ३ लक्ष लोमानि १०७ मर्मस्थलम् २०० द्विशत्योरसनोर्मेलः स्वेद स्थान सहिता संख्या शरीरे ५४ कोटि ६७ लक्षम् ५० सहस्र रोमाणि ।
शरीरमेतद् मलमूत्र गेहमात्मा च शुद्धो विपिन प्रसेवी ।
क्षुधा पिपासाकिल प्राण धर्मश्शोकश्चमूर्च्छामनसश्च धर्मः ॥११२॥

अर्थ—यह शरीर मलमूत्र का घर है आत्मा शुद्ध है निर्लेप है क्षुधा पिपासा प्राण का धर्म है शोक मूर्छा मन का धर्म है ॥११२॥

जरा च मृत्युश्च शरीर धर्म आत्मा च निर्धूत तमश्च साक्षी।
भूतात्मनामा च महान् विवेकी मह्यादि भूताच्च पृथक् स्वरूपः ॥११३॥

अर्थ—जरा मृत्यु शरीर का धर्म है आत्मा निर्मल है भूत नाम धारी है पृथ्वी आदि से अलग है ॥११३॥

अचिन्त्य मव्यक्तमनादि रूपं प्रपञ्च भावा दहितन्त्व गम्यम्।
सुखं लभन्ते परमार्थ वृत्तास्सनातनोऽयं भगवान् विभुश्च ॥११४॥

अर्थ—अचिन्त्य है अव्यक्त है अनादि है प्रपञ्चों से अलग है परमार्थी सुखी पुरुष होते हैं आत्मा सनातन है व्यापक है ॥११४॥

नोट—आत्मा का प्रमाण* कई प्रकार से उदासीन महात्मा बताते हैं जितना अणु होता है उतना आत्मा है, झरोखे की संधि द्वारा सूर्य की किरण जब किसी स्थान विषे प्राप्त होती हैं तिस में जो दृष्टि आते हुये सूक्ष्म २ रज के कण हैं उनका नाम त्रिसरेणु है तिस त्रिस रेणु के छठवें हिस्से का नाम अणु है। कोई कहता है कि जितनी देह है उतना आत्मा है कोई व्यापक बताते हैं, कठवल्ली उपनिषद् में आत्मा को अणु से भी अणु बताया है, मुण्डकोपनिषद में अणुरूप बताया है कैवल्योपनिषद् में सूक्ष्म से सूक्ष्म बताया है श्रुति कहती है—

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहतो गुहायाम्
तमक्रतुं पश्यति बीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्

इस श्रुति का यह अर्थ है पृथ्वी से जल सूक्ष्म है और व्यापक है, जल से तेज सूक्ष्म है और व्यापक है, तेज से वायु सूक्ष्म है और व्यापक है, वायु से आकाश सूक्ष्म है और व्यापक है, आकाश से माया सूक्ष्म है और व्यापक है, माया से आत्मा सूक्ष्म है और व्यापक है और भी सूक्ष्मता बताते हैं—

वालाग्रशत भागस्य शतधा कल्प तस्य च
भागो जीवस्सविज्ञेय स्सचानन्त्यायकल्पते

* प्रमाण के षट् भेद होते हैं—१ प्रत्यक्ष २ अनुमान ३ शब्द ४ उपमान ५ अर्थापत्ति ६ अनुपलब्ध प्रमाण,

अर्थ—बाल के अग्र भाग का सौभाग करके पुन: उसके एक भाग को सौभाग करो वह जितना एक भाग हो उतना आत्मा है* । इस आत्मा के अपरोक्ष ज्ञान होने में अविचार प्रति वन्धक है, अविचार विचार से नाश होता है, विचार से और कोई अपरोक्ष ज्ञान का कारण नहीं जितने समय तक अपरोक्ष ज्ञान ब्रह्म आत्मा को एकता रूप प्राप्त न हो जावे उस समय तक बारम्बार विचार करना उचित है।

मुख्यात्मा सबके अन्तर होने से साक्षि है पुत्रादिकों में गौण आत्मा है इससे पुत्र में और अपने में प्रत्यक्ष भेद दृष्टि आता है स्थूल शरीर मिथ्यात्मा है।

॥ प्रारब्ध कर्म ॥

प्रारब्धं सञ्चितं चैव क्रिया माणमथापिहि ।
नित्यं नैमित्यकश्चैव काम्यं च पर योजितम् ॥११५॥
सप्त कर्माणिमनुजे भोज्ञानि कथितानि च ।
मनीषिभिः प्रसिध्यैश्च वर्णितानि मतानि च ॥११६॥

अर्थ—छान्दोग्योपनिषद् ५ अध्याय खण्ड १ में इन्द्रियों से बड़ा प्राण को लिखा है इन्द्रियों केनिकल जाने पर प्राण अपना काम शरीर में करता रहता है, जैसे किसी प्राणी की चक्षु इन्द्रिय नहीं है परन्तु प्राण से वह जीवित है कोई गूँगा, लंगड़ा, लूला होने पर भी प्राणों से वह जीवित रहता है, परन्तु प्राण के निकलते ही इन्द्रियाँ सब नष्ट हो जाती हैं, इसलिये प्राण इन्द्रियों से बड़ा है। प्राण का भोग पदार्थ अन्न जल वस्त्र पहुँचाने की सेवा इन्द्रियों को करनी पड़ती है। ज्ञानी के शारीरिक व्यवहार का नियम नहीं रह जाता, कारण ज्ञानी को व्यवहार में अज्ञान और तिसका कार्य भेद भ्रान्तिक और इसके कार्य राग द्वेष तो होते नहीं परन्तु फिर भी ज्ञानी काप्रारब्ध कर्म शेष रह जाता है वही उसके व्यवहार का निमित्त बनता, है उस प्रारब्ध कर्म ने ज्ञानी के शरीर का आरम्भ किया है वही प्रारबध कर्म शरीर के स्थित के हेतु भोजनादि में प्रवृत्ति कराता है, यहाँ पर यदि कोई यह शंका करे कि प्रारब्ध कर्म ही मनुष्य को कुत्सित मार्गों में भी लगाता रहता है सो भाई यह शंका उसकी बनती नहीं। कारण कुत्सित कर्मों का उत्पादक जो प्रारब्ध कर्म है वह ज्ञान का प्रतिबन्धक † है। ज्ञान की उत्पत्ति से प्रथम जिज्ञासा काल में विषय वासनाओं

*देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि अज्ञान और शून्य से भिन्न अकर्ता अभोक्ता असङ्ग व्यापक चेतन यह आत्मा का स्वरूप है।

†विषयों में आसक्ति बुद्धि मंदता, भेद वादियों के वचन में विश्वास ज्ञान के प्रति बन्धक कहे गये हैं।

में दोष दृष्टि से वैराग्य के पश्चात् ज्ञान के होने पर विषयों में मिथ्या बुद्धि हो जाती है, अपरोक्ष रूप से मिथ्या निश्चय किये पदार्थों में सत्य बुद्धि नहीं होती, बगैर सत्य बुद्धि हुये विषयों में राग होता नहीं। राग के विना प्रवृत्ति होनो असंभव है शरीर निर्वाहक भोजन आदि तो विना राग के प्रारब्धवश मिल जाता है। यह कर्म तीन प्रकार का होता है संचित आगामी और प्रारब्ध। भूत शरीरों में किये कर्म फलारम्भ रहित सञ्चित कहाते हैं। भविष्य कर्म आगामी कहाता है, भूत शरीरों में किया वर्तमान शरीर का हेतु प्रारब्ध कहा जाता है। संचित कर्म का ज्ञान से नाश हो जाता है तथा ज्ञानी को आत्मा में कर्तृत्व की भ्रान्ति नहीं इससे उसके आगामी कर्म का होना बनता नहीं तथा जिस प्रारब्ध कर्म ने शरीर का आरम्भ किया है वही प्रारब्ध कर्म शरीर स्थिति का हेतु भोजनादि में प्रवृत्ति कराता है। यह प्रारब्ध कर्म भोगे विना क्षय नहीं होता। इसी प्रारब्ध कर्म के लिये कहा है—

अवश्य मेव भोक्तव्यं कृतंकर्म शुभाशुभम्।
पूर्वं जन्मार्जितस्यापि कर्मणा सकलं फलम्
जीवश्च देहवान्मुक्तेभुक्त्वा कायान्तरं व्रजेत् ॥११७॥

प्रारब्धं यस्य यादृक्य तादृशं भलमश्नुते।
वैदिकः कर्म मार्गश्च कथितो मुनि पुङ्गवैः ॥११८॥

फल को जो आरम्भ करता है वह प्रारब्ध कहाता है। इस लिये जहाँ अनेक शरीर का उत्पादक एक कर्म हो वहां अन्त के शरीर में ज्ञान उत्पन्न होता है ज्ञानी के प्राण किसी लोक में भी अन्य शरीर में गमन नहीं करते। उसी स्थान में अन्तः करण इन्द्रिय सहित लीन हो जाते हैं। प्राण गमन के बिना अन्य शरीर की प्राप्ति होनी बनती नहीं, ज्ञान के होते ही अज्ञान की निवृत्ति हो प्रारब्ध भोग के अनन्तर स्थूल सूक्ष्म शरीराकार अज्ञान का चेतन में लय होना ही विदेह मोक्ष कहाता है स्वरूप विषे स्थित का नाम मोक्ष है। प्रारब्ध कर्म को दूर करने में कोई समर्थ नहीं, ज्ञानी और अज्ञानी में भेद केवल इतना है ज्ञानवान प्रारब्ध कर्म को भोगता हुआ जगत को मिथ्या जान भोगों में दोष दृष्टि रखने से आस्था न उत्पन्नहोने कर हर्ष शोक नहीं मानता, और अज्ञानी जगत को सत्य मानता हुआ सुखी दुःखी होता है। ईश्वर भी प्रारब्ध कर्म को दूर करने में समर्थ नहीं है। गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है हे अर्जुन जैसा जिसका प्रारब्ध कर्म होता है वैसाही उसकी प्रवृत्तिहोती है सम्पूर्ण प्राणी अपने २ प्रारब्ध कर्म भोगते हैं, तीव्र प्रारब्ध कर्म किसी के निवारण करने का पदार्थ नहीं है यदि कभी निवारण किया जा सकता तो युधिष्ठिर, रामचन्द्र नल आदि कष्ट न उठाते, यह प्रारब्ध कर्म की मर्य्यादा ईश्वर ने ही बनाई है देवी भागवत के पञ्चम स्कंध के चौथे अध्याय में बृहस्पति

जी इन्द्र से भी यही बात कह रहे हैं कि हे सुरेश्वर बिना भोगे प्रारब्ध कर्मों का नाश नहीं होता। वेद की श्रुति भी ऐसे ही कहती है "प्रारब्ध भोग तो नष्येत्" इसीकर हिन्दुओं का यह सिद्धा त अटल सिद्धान्त है।

वत्स तस्माद्विजानी हि, श्रुति वाक्याद्गुरोर्मुखात्।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या ततो मोक्ष मवाप्स्यसि ॥११९॥

अर्थ—हे वत्स इस प्रकार का ज्ञान जो जानता है वह संसार में सुखी होता है। श्री गुरु देवजी के मुखार्विन्द से श्रुति वाक्य सुन के श्री गुरुदित्ता जी ब्रह्म को सत्य जगत को मिथ्या जानते भये जो मोक्ष का देने वाला है ॥११९॥

इति विरमति चन्द्रे पाद संवाह सक्तः,
गुरुमति गुरुभक्तो जात वोधो विरक्तः।
नयन सलिल मोक्षैः चालयन् पाद पद्मं,
प्रणमति गुरुदित्तो मोक्ष मार्गोऽप्रमत्तः ॥१२०॥

अर्थ—ऐसा कह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी जब चुप होगये तब श्रीगुरुदित्ता जी जो बड़े गुरु भक्त थे, जिनको सुन्दर बोध हुआ था जो संसार से विरक्त थे, वह श्री गुरु जी के पादपद्मों को बड़े प्रेम से दाबते हुये अपने नेत्रों के प्रेमाश्रु से महाराज के चरण कमल को धोते भये, पुनः प्रणाम कर मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त हो गये ॥१२०॥

इति श्री साधु बेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्ति सक्खर नगरे श्री मद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्राशीर्वाद से श्री हरिगोविन्द छठी पातशाही जी को पुत्र प्राप्ति, श्री गुरुदित्ता चेला करण एवं आत्मोपदेश प्रसंग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी द्वेचत्वारिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥४२॥

॥ त्रि चत्वारिन्शत्तमा किरण प्रारम्भः ॥

॥ मन्त्र योगः ॥

उदासीन वेषस्य मन्त्रश्च कः कोविधिर्मन्त्रयोगः क्रियान् धर्ममूर्ते।
कृपां धार्मिकीत्वम्विधायाशुवाच्यमिदं प्रश्न तत्वं मदीयन्त्विदानीम् ॥१॥

अर्थ—श्री गुरुदित्ता जी ने हाथ जोड़ प्रणाम कर पूछाकि हे धर्म मूर्ते श्री गुरु देव जी उदासीन भेष का कौन मन्त्र है, कौन विधि है मन्त्र योग कितने हैं कृपा करके हमको बतलाइये।१।

निशम्यैव वाक्यं महा प्राज्ञवर्य्योऽतिगूढाति गूढं रहस्यं जगाद।
अयन्नैत्यिकस्सम्प्रदाये गुरोश्च विचार प्रचारस्सदाचार एव ॥२॥

अर्थ—श्री गुरु दित्ताजी का यह प्रश्न सुनकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ महा बुद्धिमान श्री गुरुवर श्रीचन्द्र जी ने अत्यन्त गूढ़ रहस्य को बताया ॥२॥

ॐ सोहमिति मन्त्रश्च चतुर्भागेन वर्णितः।
हठ योगोमन्त्रयोगो लययोगस्तथैव च ॥३॥

अर्थ—यह श्रौत उदासीन सम्प्रदाय का मन्त्र ॐ सोऽहम् सेही हमारे पिता श्री गुरु नानक भेषोदासीन जी ने "१ ॐ सत्तिनाम करता पुरुष निर भव निरवैर अकाल मूरति अयोनी सैभंग गुरु प्रसाद जप" तक बनाके नाम गुरु मंत्र रख दिया है। सो यह ॐ सोऽहम् मंत्र की साधन प्रणाली चार भागों में विभक्त है मंत्र योग १ हठयोग २ राजयोग ३ लययोग ४, ॥३॥

राजयोगः कला क्रान्त इति शास्त्र विचारणा।
ॐकारऐश्वरो मन्त्रो दिव्यंनाम प्रकीर्तितम् ॥४॥

अर्थ—समस्त कलाओं से विभूषित यह शास्त्र सिद्धान्त है ॐ सोऽहं ईश्वर का मंत्र है इसी मंत्र को शास्त्र कारों ने दिव्य (प्रणव) नाम से कहा है ॥४॥

प्रकृते प्रथमोरच्ये ॐ वीज निस्सृतश्च सत्।
वीज मन्त्राष्टकश्चैव ओमष्ट प्रकृते मतम् ॥५॥

अर्थ—प्रकृति के प्रथम रचना में ॐ वीज रूप से उत्पन्न हुआ पीछे इसी ओंकार से अष्ट प्रकृति हुई ॥५॥

ततो भूमि र्जलं वायुरग्नि राकाश मेव च।
मनोबुद्धि रहंकार ऐश्वरी शक्तिरेव हि ॥६॥

अर्थ—जिनका नाम भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार ॥६॥

अष्ट भागे विभक्ताश्च पदार्था इति धारणा।
सर्वे शब्दाश्च वर्णश्च ओंकारात्प्रभवन्ति हि ॥७॥

अर्थ—ईश्वरीय शक्ति आठ भागों में विभक्त है पदार्थ ऐसी धारणा है सब शब्द और वर्ण ओंकार से पैदा होते हैं ॥७॥

प्रथमः प्रणवोनादः कुल कुण्डलिनीजकः ।
तत एव महा शब्दादीडा नाडी प्रभावजा ॥८॥

अर्थ—प्रथम नाद कुण्डलिनी से होता है तिस महा शब्द से इड़ा नाड़ी होती है ॥८॥

पिङ्गलाच सुषुम्नेति ताल्वादि स्थान वाहिनी ।
सर्वे शब्दास्समुत्पद्य वाह्यदेशानु गामिनः ॥९॥

अर्थ—पिङ्गला, सुषुम्ना नाड़ी तालु मूर्द्ध दन्तादि स्थान वहन करने वाली है इन्हीं से सब शब्द पैदा होकर वाह्य देश में सुनाई देते हैं ॥९॥

॥ चार प्रकार के वाक् ॥

परावाङ् मूलं चक्रस्था पश्यन्ती नाभि संस्थिता ।
हृदिस्था मध्यमाज्ञेया वैखरी कण्ठ देशगाः ॥१०॥

अर्थ—(१) परा (२) पश्यन्ती (३) मध्यमा (४) वैखरी परावाक् मूल चक्र में रहने वाला है, पश्यन्ती नाभी देश में रहता है, मध्यमावाक् हृदय में रहता है, वैखरीवाक् कण्ठदेशमें रहता है ॥१०॥

वैखर्य्यादि कृतोनादः पर श्रवण गोचरः ।
मध्यमया कृतोवाद, स्फोट व्यञ्जक उच्यते ॥११॥

अर्थ—वैखरी आदिका किया जो नाद है वह श्रवण और दृष्टि से अगोचर है, मध्यमनाद अन्दर से बाहर स्पष्ट सुनाई देता है, इसको शब्द शक्ति कहते हैं यह शब्द शक्ति कई प्रकार की होती है ॥११॥

गुरुणामुपदेशाच्च मन्त्रयोगे प्रधानता ।
षोडशाङ्गानुसारेण समाधिर्निर्विकल्पकः ॥१२॥

अर्थ—श्री गुरुदेव की कृपा से मन्त्र योग में प्रधानता है, षोडश अङ्गानुसार निर्विकल्पक समाधि होती है ॥१२॥

अङ्गानि मन्त्र योगस्य क्रियन्ति प्रभुतोक्तये ।
गुरो निवेदयाश्वेन तेन तुष्यन्ति देवताः ॥१३॥

अर्थ—श्री गुरुदित्ता जी ने हाथ जोड़कर पूछा हे गुरुदेव जी मन्त्र योग के कितने अङ्ग हैं सो बताइये ॥१३॥

भक्तिश्शुद्धि रासनश्च पञ्चाङ्गी सेवनन्तथा ।
आचारो धारणं दिव्यं देवसेवन मेव च ॥१४॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी उत्तर देते भये कि भक्ति १ शुद्धि २ आसन ३ पञ्चांगी सेवन ४ आचार ५ धारणा ६ दिव्यदेव सेवन ७, ॥१४॥

प्राणक्रिया च मुद्रा च चिह्नश्च हवनन्तथा ।
वलिर्यज्ञो जपश्चैव समाधि ध्यान मेवच ॥१५॥

अर्थ—प्राण क्रिया ८ मुद्रा ६ चिन्ह १० हवन ११ वलि १२ यज्ञ १३ जप १४ ध्यान १५ समाधि १६ इन सब का खुलासा विवरण संक्षिप्त से नीचे लिखा जाता है ॥१५॥

नोट—(१) भक्ति—जिस भक्ति के प्रताप से भक्त को भगवान् सर्वत्र दृष्टि गोचर आते हैं, वह भक्त अपनी सब आकांक्षायें भगवान् पर निर्भर कर आध्यात्मिक लाभ उठाकर अपने तात्विक पदार्थ को जान जाता है जिससे परम ज्ञान (आत्मज्ञान) का प्रादुर्भाव होता है ।

(२) शुद्धि—तनशुद्धि-स्नान से, स्थान-शुद्धि-लीपने पोतने से, बचन शुद्धि-सत्य बोलने से, मन शुद्धि-उत्तम संकल्प से, व्यवहार शुद्धि-निष्कपटता से, होती है ।

(३) आसन—आसन वह कहा जाता है जिसको नीचे विछाके उसके ऊपर बैठ के पाठ, पूजा, ध्यान, किया जाता है, उसे आसन कहते हैं वह आसन कम्वल, कुशासन, बाघाम्बर, मृगछाला आदि का बनता है, आसन पर बैठते समय उदासीनों को यह मन्त्र जपना चाहिये तब आसन का बैठना सिद्ध होगा

॥ अथ मन्त्र आसन का ॥

ॐ आसन ब्रह्मा आसन इन्द्र । आसन बैठे गुरु गोविन्द ॥
सारङ्ग कमली औ मृगछाला । आसन बैठे श्रीचन्द्र वाला ॥
आसन बैठे त्रिकुटी माला । कनक कामिनी से रहे निराला ॥
आसन बैठे जाय संताप । आसन बैठ पछाने आप ॥
आसन बैठे हनुमत वाला । आसन बैठ जपे गुरु माला ॥
आसन बैठ के जपिये जाप । जन्म जन्म के उतरें पाप ॥
तले धरती ऊपर आकाश । पिण्ड प्राण संतगुरु के पास ॥
आसन बैठ सिंहासन बैठे । बैठे गुरु की छाया ॥

७८

पंच शब्द ले आसन बैठे। सति गुरु शब्द सुनाया॥
जो न जाने आसन का जाप। ताके मुख दिठ्ठे लागे पाप॥
पढ़ि शब्द जो आसन वहै। यह मन्त्र गुरु श्रीचन्द्र कहै॥

(४) पञ्चाङ्ग सेवन-गुरु मन्त्र, मात्रा, गीता, सन्ध्या* और गुरु प्रणाली को पञ्चाङ्ग कहा गया है, इन पांचों का नियम से पाठ करना पञ्चाङ्ग सेवन कहाता है। सो इसका पाठ नित्य करने से उदासीन महात्मा मन्त्र योगी कल्मष रहित होता हुआ सर्व सिद्धि को प्राप्त कर जगत पूज्य होता है।

(५) आचार—सदैव दुराचार से बचकर सदाचार रखने को आचार कहते हैं।

(६) धारणा की सिद्धि श्रद्धा और विश्वास से होती है।

(७) दिव्य देव सेवन—देव पूजन, अपने२ गुरु का पूजन साधु पूजन अतिथि पूजन करना ही दिव्य देव सेवन है।

(८) प्राण क्रिया— मन प्राण और वायु इन तीनों का एक दूसरे से सम्बन्ध है

(९) मुद्रा— गुरु पूजन, गुरु मन्त्र का जप, इष्ट और गुरु का ध्यान, मात्रा का जप, गुरु प्रणाली का पढ़ना, मुद्रा कहा जाता है।

(१०) चिन्ह—उदासीन भेष के चिन्ह सेली टोपी, भगवा वस्त्र, चिप्पी, कमंडल,

---

* यह संन्ध्या संस्कृत के दो शब्द से बनती है 'सम' और ध्या सम का अर्थ अच्छा ध्या का अर्थ ध्यान सो अच्छा ध्यान भगवान् से अधिक किसका किया जा सकता है। तथा सन्ध्या का अर्थ सन्धि दिन और रात्रि की होती है जो दिन रात्रि में दो दफे होती है।

शास्त्रों में कहा है कि रात्रि का अन्तिम एक दण्ड और दिन का पहला एक दण्ड ए दोनों मिलाकर प्रातः सन्ध्या, तथा दिन का अन्तिम एक दण्ड और रात्रि का पहिला एक दण्ड ए दोनों मिलाकर सायं सन्ध्या काल माना है इसी से एक सूर्योदय एक सूर्यास्त तथा मध्याह्न को भी सन्ध्या की जाती है। देखो मनुस्मृति अ० २ श्लोक १०१॥

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्री मार्क दर्शनात्।
पश्चिमांतु समासीनः, साम्य ऋक्ष विभावनात्॥

अर्थ—प्रातःकाल को सन्ध्या पूर्वाभि मुख बैठ कर मन्त्र जपता हुआ सूर्योदय पर्यन्त स्थिर रहे और सायंकाल को सन्ध्या को पश्चिमाभि मुख गायत्री के साथ २ गुरु मन्त्र जपता हुया नक्षत्रों के भली प्रकार निकलने तक करे। सन्ध्योपासन का संक्षेप विधान इस प्रकार है स्नान कर आसन बिछाय पद्मासन या सिद्धासन लगाय गुरु और परमात्मा का चिन्तन करता हुआ अङ्गन्यास करन्यास षडङ्ग न्यासादि कर गायत्री मन्त्र या जो अपने गुरु का दिया गुरुमंत्र हो वह जपना चाहिये जप के साथ प्राणायाम भी अवश्य करना चाहिये।

फहुड़ी, चिमटा, आसा मृगान, ऊन और रुद्राक्ष की माला, सिमरणी, तूम्बा, धूना, विभूति, ब्रह्म अचला गाती, खफनी, लम्बा चोला, कोपीन, लंगोट।

(११) हवन— अग्नि पूजन उदासीनो का हवन कहाता है।

(१२) बलि-नाम भाग का है सो भोजन करने से प्रथम साथ के साधुओं को खिला के खाना उदासीनों का बलि कहाता है।

(१३) याग— अंतर्याग, बहिर याग भेद से दो प्रकार का है अंतर्याग आत्मचिन्तन सद्विचार सत्यासत्य का निर्णय सर्वोपर कहा गया है, बहिर्याग (बाह्य पूजा) में प्रथम अपने गुरु मन्त्र का उच्चारण करके अपने इष्ट और गुरू का ध्यान करना चहिये, फिर अपने २ इष्टानुसार प्रतिमा की तथा गुरू की पूजा करना उदासीन मुनियों ने वर्णन किया है।

(१४) जप—मनन करने से जो त्राण (रक्षा) करता है उसकोमन्त्र कहते हैं, जप करने का स्थान गोबर से लीप गङ्गा जल छिड़क प्रथम शुद्ध करना, पुनः स्नान कर वस्त्र बदल मोक्षाभिलाषी पुरुष एकान्त गङ्गातट, देवस्थान, देहधारी गुरु स्थान, साधु स्थान, जङ्गल तीर्थादि प्रदेशों में अपने २ गुरुओं के बताये मन्त्र का जाप करे।

(१५) ध्यान—अपने २ इष्ट पौर गुरू का करना उत्तम है ध्यान के वगैर इष्ट की प्रत्यक्ष प्राप्ति नहीं होती।

(१६) समाधि—मन चंचलता से शान्त तदाकार हो निश्चल भाव से इष्ट के ध्यान में लगजावे उसे समाधि कहते हैं।

षोडशाङ्गानि प्रोक्तानि ह्युदासीन मतानुगैः।
मन्त्र योगश्चतंसिद्ध सविधं गुरु रुच्यते ॥१६॥

अर्थ—इस प्रकार उदासीन श्रौत चतुर्थाश्रमो वैदिक सम्प्रदाय के १६ अङ्ग सविधि करने पर मन्त्र योग सिद्ध होता है जो तुम्हारे प्रति संक्षिप्त से कथन किया गया है ॥१६॥

स्वभावेऽस्यगतेन्यूने परमायुः प्रवर्द्धते।
आयु क्षयोऽधिकेप्रोक्तो मारुते चान्तराङ्गते ॥

अर्थ—स्वास की स्वभाविक गति रोकने से आयु बढ़ती है, तथा तीव्र चलाने से घटती है। स्वास की गति का चलना प्रायः इस प्रकार माना जाता है, बैठने की दशामे स्वास शरीर से बाहर नाशिका द्वारा १२ अङ्गुल लम्बा जाता है, भोजन और वमन काल में १८ अंगुल, गाने और रोने में २० अङ्गुल, मार्ग चलते समय २४ अङ्गुल, निद्रा, में ३० अङ्गुल, दौड़ने और व्यायाम करने में ४८ अङ्गुल, और मैथुन समय ६५ अङ्गुल लम्बा जाता है। इस प्रकार स्वास खर्च होता है, विशेष स्वास खर्च होने वाले कार्य जितने

कम किये जाँय उतनी ही आयु की वृद्धि होती है। इस लिये योगी और वीर्य रोकने वाले ब्रह्मचारी यति की आयु अधिक हुआ करती है।

उदासीनों का सिद्धान्त क्या है पूछा सो उदासीनों का भक्ति ज्ञान परोपकार, सदाचार और हिन्दू धर्म के प्रचार में लगे रहना यह सिद्धान्त है जैसा कि नादविन्दूपनिषद् में आता है।

उदासीनस्ततोभूत्वा सदाभ्यासेन संयमी ॥४०॥

इसी के आधार पर यह उदासीन सम्प्रदाय सृष्टि प्रारम्भ काल से लेकर आजतक जगत का प्यारा होता चला आया है और चलता रहेगा, यह भेष भूत, पाखण्ड, स्वार्थ, अभिमान, मद, मत्सर, निन्दा प्रपञ्च के त्यागने का समर्थक रहा है और रहेगा।

॥ अष्टोत्तर शत माला मणि निर्णयः ॥

गुरुदित्तः पुनः प्राह वद्धाञ्जलिर्नताननः।
अष्टोत्तर शतीमाला क्रियतेकेन हेतुनः ॥१७॥
ग्रहाश्च नव संख्याका राशयो द्वादशाभिधा।
तेषान्नवनवा कारा अष्टोत्तर शताभिधा ॥१८॥

अर्थ—पुनः श्री गुरुदित्ता जी ने हाथ जोड़ प्रणाम कर पूछा कि हे भगवन् माला में जो एक सौ आठ (१०८) दाने रखे गये हैं इसका क्या मतलब है। तब श्री गुरु देव जी ने उत्तर दिया कि माला में १०८ दाने रख के भगवद्भजन का गूढ़ रहस्य हमारे उदासीन मुनियों ने समझाया है, उदासीन मुनियों के गूढ़ सिद्धान्त (फिलासफी) को साधारण मनुष्य जल्दीं २ नहीं समझ सकता है अब हम तुमको खोल के समझाते हैं। ९ ग्रह १२ राशियाँ बारहनवाँ (१२×९) १०८ हुये ॥१७॥१८॥

अथवा ब्रह्मशब्दे च वार्णीश्चत्वार एव हि।
वकारश्च रकाश्च हकारश्च मकारकः ॥१९॥
त्रयो विंशो वकारश्च रकारस्सप्तविंशकः।
त्रयस्त्रिंशो हकारश्च मकारः पञ्च विंशकः ॥२०॥
वर्णमाला क्रमे सिद्धे संख्येयं परिकीर्तिता।
एतत्संख्यानुसारेण ब्रह्ममाला मणिर्मतः ॥२१॥

अर्थ—(दूसरा अर्थ) 'ब्रह्म', ब्रह्म का व अक्षर का अंक २३ अर्थात् वर्णमाला के

हिसाब से ब तेइसवाँ अक्षर है इसी प्रकार र अक्षर के अंक २७ हैं, और म अक्षर के २५ अंक हैं, और ह के ३३ अंक हैं कुल मिला कर १०८ हुये इसको एक माला जाप करने से ब्रह्म का जाप हो जाता है (ब्रह्म शब्द में ब, र, ह, म,) इस प्रकार चार अक्षरों से चारों वेद बने हैं ॥१९॥२०॥२१॥

अथवा शास्त्र सिद्धान्तो वेदाश्चत्वार एवहि ।
वर्णयुगा द्वादशेति संख्या सिद्धा मनोरमा ॥२२॥
तेषान्नवनवा कारा ह्यष्टोत्तर शता मता ।
एवन्तात्पर्य वृत्यैव मणि संख्या च वैदिकी ॥२३॥

अर्थ—(तीसरा अर्थ) चार वेद, चार वर्ण, चार युग, ए सब मिलाकर १२ भये बारह नवाँ १०८ हुआ ॥२२॥२३॥

अथवा प्रबलाकारो ज्ञान कर्मेन्द्रियाणि च ।
पञ्च प्राणाश्च संयोज्यास्तेषां सतत्व धारणाः ॥२४॥
पञ्चोत्तरशहो सिद्धे त्रयो देवास्समीडिता ।
अष्टोत्तरशता संख्या कथिता ब्रह्म वित्तमैः ॥१५॥

अर्थ—(चौथा अर्थ) पांच ज्ञान इन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच प्राण, तीनों मिलाकर पन्द्रह हुये । पन्द्रह सते १०५ हुआ इसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं को मिला देने से १०८ हुए ॥२४॥२५॥

सप्तर्षयस्सप्त सन्ति त्रयस्त्रिंशच्च देवताः ।
एकोन पञ्चाशत् प्रोक्ता वायवस्सृष्टिगास्तदा ॥२६॥

अर्थ – (पांचवां अर्थ) सप्त ऋषि, तेतीस देवता, उन्चास पवन यह तीनों मिला देने से १०८ हुए ॥२६॥

एतासामपि संख्यानां योगे पञ्च म सिद्धयः ।
चतुराशीति योनिश्च लोकास्सन्ति चतुर्दशाः ॥२७॥
मान्यावताराश्च दश माला संख्यातु सिद्ध्यति ।
चतुराशीति नरकाण्याहुर्वेद पुराणगाः ॥२८॥

अर्थ—(छठवां अर्थ) चौरासी दाने चौरासी लक्ष जीवों के बोधक हैं चौदह दाने

चौदह लोक के बोधक हैं, दश दाने दश अवतार के स्मारक हैं, तीनों संख्या जोड़ देने से १०८ होते हैं ॥२७-२८॥

चतुर्विंशति संख्या का अवतारा यथार्थतः ।
एतासामपि शंयोगे माला मणि सुसिद्धिताः ॥२६॥

अर्थ—(सातवाँ अर्थ) चौबीस दाने चौबीस अवतार के बोधक हैं, चौरासी दाने चौरासी नरक से बचाने के बोधक हैं, इस प्रकार जोड़ने से १०८ होते हैं। इस प्रकार एक माला जपने से समस्त विश्व व्यापी परमात्मा का जाप हो जाता है जिससे सर्व प्रकार के दुष्ट ग्रह का प्रकोप (रोग, दोष, पाप, दुख,) नाश हो मनो कामना सिद्ध हो परमगति की प्राप्ति होती है ॥२६॥

साधको मुक्ति माप्नोति निर्वाण पथगस्तथा ।
निर्धूतकल्मषाश्चैव योगी राज पद प्रभाक् ॥३०॥

अर्थ—इस प्रकार साधन करने वाला उदासीन साधु सकल पाप रहित निर्वाण पद प्राप्त कर योगिराज हो मुक्ति प्राप्त करता है ॥३०॥

॥ उदासीन सम्प्रदाय में चेला बनाने की रीति ॥

पुनः जगद्गुरो प्रोह वेष मर्य्याद धार्मिकः
गुरु चर्णोदकं मन्त्रं प्रदानं शिष्य सद्गुरुम् ॥३१॥

अर्थ—(१) पुनःश्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले कि गुरु अपने चरण धुआय चेले को चरणामृत देते हैं जो जल में बतासा पाके बनाते हैं, उसी अमृत को देते हुये गुरु गुरु मन्त्र उच्चारण कराते हैं गुरु का चरणोदक गंगा जल के समान होने से अमृत कहाता है गुरु गीता में लिखा है ॥३१॥

शोशणं पाप पङ्कस्य दीपनं ज्ञान तेजसः ।
गुरुपादोदकं सम्यक् संसारार्णव तारणम् ॥१॥

अर्थ—पाप रूप कीचड़ का सुखाने वाला ज्ञान दीपक का जलाने वाला गुरू का चरणोदक संसार सागर से तारने वाला है ॥१॥

सर्वतीर्थावगाहस्य संप्राप्नोति फलंनरः ।
गुरुपादोदकं पीत्वा शेषं शिरसिधारयेत् ॥२॥ } गुरु गीता

अर्थ—जो गुरु के चरणोदक को पान कर बाकी का बचा हुआ जल शिर पर धारण करते हैं वह सर्व तीर्थों के स्नान के फल को प्राप्त होते हैं ॥२॥

नोट—चरणामृतगुरु की आज्ञा से चेला और उदासियों का भी लेता है। लंगोटा बांध भस्मी चढ़ाय विभूति का तिलक दे सेली❀ टोपी ब्रह्म अचला धारण कराते हैं कोई कोई कफनी चोला भी पहराते है।

(२) गुरु मन्त्र† सुनाते हैं।

(३) चोटी के ढ़ाई बाल काटते हैं शिखा काटने में देखो प्रमाण शाम्ब पुराण पत्रा ३६ अ० ५५ श्लो० ६३ गुरु शिष्य को सन्मुख बैठावे श्लोक ॥९६॥

(४) मात्रा और गुरु प्रणाली पढ़ाते और कण्ठ कराते हैं।

(५) उदासीन साधुओं के दो रूप होते हैं एक परमहंस दूसरा निर्वाण जटा धारी।

(६) चेले का नाम जो गुरु अपने मुख से रख देता है वही नाम भेष तथा सर्वत्र देश में माना जाता है गुरु अपना सीत प्रसादी भी खिलाता है।

(७) भगवा वस्त्र देते हैं जिससे चेला समस्त आयु भगवा वस्त्र धारण करता है।

(८) रोट प्रसाद कढ़ा प्रसाद भंडारा कर उदासीन साधुओं को खिलाते हैं प्रसाद सेवकों को भी देते हैं।

(९) कोई २ गुरु अपने चेले को धूनी और समाधों को नमस्कार भी कराते हैं।

(१०) गुरु अपने चेले को विद्या पढ़ाता उपदेश कथा व्याख्यान करना सिखाता है सदाचार से रहना आदर्शी बनाना सत्य अदम्भी परोपकारी हिन्दूधर्म रक्षक उदार बांट के खाना आदि २ सर्व दैवी गुण सिखाता है। तभी गुरु उदासीन सम्प्रदाय का संगठन यश, मान प्रताप, बना हुआ है।

(११) चेला अपने गुरु की पूजा तन मन धन से करता हुआ गुरु की आज्ञा में रह शुद्ध भावना से सेवा करता रहता है तभी संसार में मान पाता है यह प्राचीन प्रथा है।

(१२) चेला हो जाने के पश्चात् वह अपने माता पिता कुटुम्ब से पुनः सम्बन्ध नहीं रखता।

❀ सेली टोपी उदासीन सम्प्रदाय की निशानी है इस बात का प्रमाण "उदासीन मत प्रदीप पञ्चमी शिखा श्लोक २३३" तथा "गुरुमत निरणै सागर" द्वितीयवार का छपा पृष्ठ ६२१ में पं० तारा सिंह जी लिखते हैं।

† गुरु मन्त्र सिद्धमन्त्र साध्यमन्त्र शुद्धिमन्त्र अरिमन्त्र इस प्रकार से पांच प्रकार के मन्त्र होते हैं, मन्त्र उसको कहते हैं जो मनन करने पर अपने फल को दिखावे। मन्त्रों का मनन एकाग्र मन से करना तभी फल दायक होता है मन्त्र की सिद्धि वही प्राणी शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं जिन्होंने सर्व प्रकार से इन्द्रियों को वश में किया होगा गुरु पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास होगा।

(१३) गुरु और चेले का सम्बन्ध मानसिक है अर्थात् श्रद्धा विश्वास भावना से सम्बन्ध है, चेला बनने बनाने कर शारीरिक पुत्र की न्याई यह मानसिक शिष्य कहे जाते हैं तभी पुत्रों के समान* ही गुरु के बाद शिष्य का हक (दर्जा) होता है गुरु चेला दोनों को आत्म शिक्षा देने और लेने की इच्छा रखने से ही उदासीनों का अच्युत गोत्र कहा जाता है, यह अच्युत नाश से रहित अविनाशी है।

॥ उदासीन साम्प्रदायिक चिन्ह ॥

अथ श्रौत परिव्राजकस्यो दासीन सम्प्रदायस्य ।
देवर्षि नारदो धीमान् चिन्हानिस्वशिष्यं कपिलंब्रूते ॥३२॥

अर्थ—अब श्रौत परिव्राजक उदासीन सम्प्रदाय के चिन्ह श्री नारद जी उदासीन महाराज जो बड़े बुद्धिमान हैं उन्हूंने अपने शिष्य कपिल मुनि उदासीन को बताये थे अब वही हम तुम्हें बताते हैं ॥३२॥

ध्यानं च शिरसि प्रोक्तं सहस्त्र दल पंकजे ।
सत्य खण्डं हि धामश्च प्रोक्ता विष्णुरुपासना ॥३३॥

अर्थ—शिर में स्थित सहस्त्र दल पङ्कज (कमल) विराजमान है जिसमें ध्यान किया जाता है इसी को सच्च खण्ड परम धाम कहा है विष्णु की उपासना करनी ॥३३॥

ओंकार सहितो वेदो हिन्दू जाति पुरातनी ।
सनातनश्च धर्मः स्यादजपा जप मेव ही ॥३४॥

अर्थ—ॐ सहित वेद पढ़ना, हिन्दू जाति जो प्राचीन है इसी हिन्दू जाति में चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय जिनका सनातन धर्म है अजपा जाप जपते हैं ॥३४॥

अच्युत गोत्र युक्ताश्च हंसवर्णाऽचला ध्वजाः ।
निरासामठ युक्ता ए आत्म तीर्थाङ्गतापराः ॥३५॥

अर्थ—उदासीनों का अच्युत गोत्र, हंसवर्ण, अचल ध्वजा, निराशमठ, आत्म तीर्थ होता है। इसी से उदासीन भेष परम आदर्णीय है ॥३५॥

---

*यथा पुत्रस्तथा शिष्यो न भेदः पुत्र शिष्ययोः ।
तर्पणे पिण्डदानेच पालने परिपोषणे ॥
यथाग्निदाता पुत्रश्च तथा शिष्यश्च निश्चितम् ॥
} ब्रह्म पुराण श्री कृष्ण जन्म खण्ड ६१ अ०, शब्द कल्पद्रुम पञ्चम काण्ड पृष्ठ १०२

ज्ञान क्षेत्रं भवेत्तेषा ममरा पुर वस्तिनाम् ।
डंका अनाहदः प्रोक्तः सर्व व्यापी स्वरूपिणाम् ॥३६॥

अर्थ—ज्ञान क्षेत्र अमरापुर वस्ति अनाहद डंका सर्व व्यापी स्वरूप आसन है ॥३६॥

काषाया मथवस्त्रं स्या दमृतं भोजनं रसः ।
कंथाच अंचला चोला वस्त्रै रेतै रलंकृताः ॥३७॥

अर्थ—काषाय (भगवा) वस्त्र अमृत भोजन गोदड़ी, अचला चोला आदि वस्त्र धारण करते हैं इसका रहस्य हम (जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान) ने अपनी मात्रा में खोल के लिख दिया है ॥३७॥

परमहंस निर्वाणः जटाभिश्च प्ररोचकाः ।
अखण्ड भस्म युक्ताश्च शेली टोपी युताः पुनः ॥३८॥

अर्थ—परमहंस और निर्वाण दो प्रकार का स्वरूप होता है निर्वाण जटा धारी अखण्ड विभूति से युक्त शेली टोपी सत्र उदासीन पहरते हैं ॥३८॥

तूम्बा दण्ड मृग छाला श्चिप्पी कोपीन मेखलाः ।
धूणी पाणी युक्त स्थान मन्विष्य विचरन्तिये ॥३९॥

अर्थ—तूम्बा, दण्ड, मृगछाला, विभूति, गोला साहब चिप्पी, कोपीन (लंगोटी) मेखला (यज्ञोपवीत) धूणी पानी में संयुक्त स्थल सोधके विचरते हैं ॥३९॥

माला तिलक छत्रेच रणसिंहोऽपि चामरः ।
विभूति पिण्ड युक्तास्ते चिन्हानि वैसमासतः ॥४०॥

अर्थ—माला तिलक छत्र रणसिंहा चमर विभूति (ऐश्वर्य) आदि चिन्ह से सम्पन्न गुरु उदासीन होते हैं ॥४०॥

दीक्षिताय स्वशिष्याय उदासीनस्तु साधुवः ।
दत्वाच चरणामृतं पिलूनन्ति शिखांततः ॥४१॥

अर्थ— उदासीन गुरु अपने शिष्य को दीक्षा दे उदासीन साधु बनाते हैं पुनः चरणामृत पिला के शिखा छेदन करते हैं ॥४१॥

जप तप समैर्युक्ता सदाचार समर्चकाः ।
धर्म मुपदि शान्ति ते विद्याध्ययन तत्पराः ॥४२॥

अर्थ—जप, तप, से युक्त सदाचार सम्पन्न धर्मादि की व्याख्या करते शान्ति से विद्याध्ययन में उदासीन साधु तत्पर (लगे) रहते हैं ॥४२॥

स्थानेष्वपि वसन्तिये निर्मतेषु वहिर्गताः ।
यूथवद्धाः पुनराते अटन्ति नु इतस्ततः ॥४३॥

अर्थ— स्थान बना के रहते हैं तथा बाहर भी जमात (मण्डली) बांध के या पृथक २ भी घूमते हुये हिन्दू धर्म का प्रचार करते रहते हैं ।.४२॥

भविष्य दश शाखास्तो ह्यनन्तास्तेतु कल्पिताः ।
विस्तरेणतु विज्ञेयाः कथितात्र समासतः ॥४४॥

अर्थ— आगे चलके दश शाखा (चार धूने छः वक्शीश) से अनन्त शाखा उदासीन सम्प्रदाय में विस्तार पावैंगी जो विज्ञ (विद्वान) कही और मानी जाँयगी ॥४४॥

युगो युग समावेष विशेषतः कलियुगे ।
विद्या अर्थ प्रभुत्वादि उदासीनोन्नति करः ॥४५॥

अर्थ—उदासीन सम्प्रदाय युग २ में रहा है तथा विशेष कर कलियुग में विद्या, अर्थ और प्रभुत्व की यह उन्नति करता है ॥४५॥

चरणामृत मेतेष मुदासीन तपस्विनाम् ।
पानं परम कर्तव्यं सेवकानां विशेषताः ॥४६॥

अर्थ—उदासीन महात्माओं का चरणामृत पीना सेवकों के लिये परम कर्तव्य विशेष कर है ॥४६॥

॥ उदासीनों की अन्तिम संस्कार विधि ॥

औदासीने सम्प्रदाये शास्त्र सिद्धान्त संमताः ।
देहा वसान समये क्रियन्ते हि शुभाः क्रियाः ॥४७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कहते हैं कि हे गुरुदित्ता जी उदासीन सम्प्रदाय में शास्त्र सिद्धान्त भली प्रकार से सोच विचार कर स्थिर किया हुआ मतानुसार देह छूटने समय मृतक संस्कार किया जाता है ॥४७॥

गङ्गा जलञ्च गीतायाः पाठश्च तुलसी दलम् ।
चन्द्र देवस्य भूतिश्च पावनानि तथेतरम् ॥४८॥

अर्थ—मरणोन्मुख महात्मा के चेले अपने गुरु के पास गीता, रामायण, उपनिषद्, मात्रादि ग्रन्थ का पाठ कराते गंगाजल, तुलसीपत्र, स्वर्ण डाल विभूतिका तिलक लगाते हैं ॥४८॥

दहनं दहने वापि सलिलेवा निमज्जनम् ।
यथा देशं यथा कालंयथा शक्ति विधीयते ॥४६॥

अर्थ—प्राण त्यागने के बाद जगह को गोबर का चौका दे कुशा रक्ख शव को स्नान कराय, आसन बिछाय, चौकड़ी (पञ्जथी) मार के बैठाते हैं, नवीन लँगोटी, कफनी, अचला, साफा, भगवा, सेली, टोपी पहिराय विभूति का तिलक दे वैरागन के सहारे बैठाते हैं, पश्चात् घड़ी, घण्टा बजाते शब्द कीर्तन करते विमान उठाय श्मशान में ले जाय अग्नि में दग्ध करते हैं, अथवा जल में प्रवाह करते हैं जैसा देश काल होता है वैसा विधान करते हैं ॥४६॥

गरुड़ हरिवंशादि पुराणानां कथास्तथा ।
द्वादशे दिवसे मृत्योः शौचं वेद विधानतः ॥५०॥

अर्थ—जिनका श्मशान में दाह संस्कार किया जाता है उनका तीसरे दिन पुष्प (अस्थि) चुन के कुछ श्री गंगा जी पहुँचाते हैं कुछ अपने स्थान में स्मारक वास्ते जमीन में गाड़ ऊपर थला या मन्दिर बना देते हैं इसे समाधि कहते हैं । समाधि होने से स्थान पर अपना हक (कब्जा) बना रहता है, हिन्दू धर्म शास्त्रानुसार चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय में सूतक पातक नहीं होता जग मर्यादा रखने वास्ते सब कुछ किया जाता है। पश्चात् गरुड़, हरिवंश, गीतादि हिन्दूधर्म ग्रन्थों का पाठ कराय बारहवें दिन यथा शक्ति भण्डारा देते हुए महन्त स्थापित करते हैं ॥५०॥

कृत्वा सर्वे महात्मानः सङ्गताः शिष्य मुत्तमम् ।
यथा चारं प्रतिनिध्ये स्थापयन्त मठाधिपम् ॥५१॥

अर्थ—उदासीन सम्प्रदाय के महात्मा लोग उसे महन्ती का तिलक देते हैं, यह सब क्रिया वेद विधान से होती है, उदासीन महात्मा अपने उदासीन सम्प्रदाय के नियमानुसार सदैव चलते हुये सबका हित करते में तत्पर रहा करते हैं, तथा अपने उदासीन भेष की टकशाल मर्यादा को सदासुरक्षित रखते हैं, ऐसे उदासीन महात्मा देश में आदर पाय अन्त में ब्रह्म लीन हो जाते हैं ऐसे उदासीन महात्मा नरक में नहीं जाते यही बात यमराज नारद प्रति भी कहते हैं ॥५१॥

ज्ञान वंतोद्विजायेच येच विद्या परांगतः } वारा पु० नचकेता
उदासीना नगच्छान्ति स्वाम्यर्थे च हतानरः } ख्यान अ० २०७

अर्थ—वाराह पुराण में एक कथा आती है एक समय नारद मुनि उदासीन महात्मा ने यमराज से पूछा "केन गच्छन्तिनरकं" नरक में कौन २ नहीं जाता, तब यमराज उत्तर देते हैं, ज्ञानवान द्विज (ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य) तथा पूर्ण विद्वान् सदाचारी स्त्री पुरुष हिन्दूमात्र कोई भी हो, और उदासीन महात्मा तथा स्वामी के लिये प्राण त्याग करने वाला सेवक ये लोग कभी नरक में नहीं जाते।

नोट—प्रत्येक उदासीन महात्मा को स्मरण करना चाहिये कि जब अपने बड़ों की समाधि बनावें तब उस समाधि में उन महात्मा जी का नाम जिनकी समाधि बनती हो और चेले होने महन्त बनने तथा शरीर छोड़ने की तिथि सम्वत महीना अवश्य लिखवा देना चाहिए। यदि और सम्वत मिति न मालूम हो तो देव लोक वाला सम्वत महीना तिथि अवश्य लिखना चाहिये।

॥ उदासीन सम्प्रदाय में महन्त बनाने के नियम ॥

निर्वाण द्वादशे वारे महन्ती वेष तत्परः।
सर्व रीत विधानेन वेद सम्मत लोकयः ॥५२॥

अर्थ—देव लोक होने वाली तिथि से ठीक बारह्वे दिन गरुड़ पुराण हरि वंशादि ग्रन्थ का भोग पवाय के यथा शक्ति भण्डारा होता है, भण्डारे में आये श्री महन्त महन्त मुहांडा टिकानेदार अभ्यागत मण्डलेश्वर, सब मिल के मृत महात्मा के चेले को महन्तो का तिलक करते हुये चद्दर या अचला भगवा ओढ़ाते हैं। प्रथम तिलक श्री महन्त करते हैं पीछे महन्त इनके पीछे मुहांड़ा टिकानेदार अभ्यागत मण्डलेश्वर और पीछे गृहस्थ सेवक लोग पूजा करते हैं। पश्चात भण्डारा वर्ताया जाता है, इस भण्डारे में रोट प्रसाद अवश्य बनता है, और वस्तु यथा शक्ति बनाई जाती हैं। पीछे पूजा विदाई दी जाती है, साधारण साधु से प्रतिष्ठित की अधिक उससे उदासीन पण्डित टिकानेदार मुहांडा महन्त श्री महन्त की पूजा उत्तरोत्तर अधिक, होती है। यदि इस अवसर पर गुरु उदासीन पंचायती अखाड़े वालों को बुलाया हो तो उनकी पूजा सब से भिन्न अखाड़े की मर्यादानुसार होगी तथा महन्तो का तिलक भी अखाड़े का महन्त मण्डल के श्री महन्त से प्रथम देगा कारण पञ्च सबसे पूज्य होने से बड़ा माना है।५२॥

नोट—अपने २ स्थान की मर्यादानुसार सब कृत्य करते हैं उदासीन महन्त के शरीर त्यागने पर महन्त के चेले को महन्त की गद्दी पर बैठाने का हक्क उदासीन भेष को ही है अन्य किसी को नहीं (यह फैसला पञ्जाब हाई कोर्ट ने माणिक वाले स्थान के मुकदमे में सन् १९२५ ई० को किया है) उदासीन भेष की मर्य्यादा भी यही आदि काल से चली आती है जो सर्वत्रमान्य है

नोट—महन्त के स्थान और मठ में महन्त का लायक (योग्य) चेला ही मालिक बनता है, कई चेले होने पर गुरु जिसको अपने पीछे उत्तराधिकारी बना जाय, भेष उसी को महन्ती देता है। चेला न होने पर भेष कोई न कोई योग्य व्यक्ति को उसी गद्दी का चेला बनाके महन्त बना देता है जो वह चेला उसी मृत महन्त का माना जाता है। पुनः उस स्थान और मठका वही मालिक गिना जाता है। यदि महन्त बन के पीछे स्थान की जायदाद इत्यादि को अपनी अयोगता (नालायकी) से खराब करने लग जावे तो भेष उसे समझावे यदि न माने तो उसे महन्ती से हटा के उसके अन्य लायक चेले को महन्त बना सकता है; भेष मण्डल महन्त के गुरु भाई को भी महन्ती दे सकता है, अथवा जिसको भेष ने मिलके महन्त बना दिया वही मालिक होता है। भेष मृतक महन्त का नया चेला भी बना सकता है उदासीन भेष के सिवाय इस कार्य में अन्य मतावलम्बी या गृहस्थ को हस्ता क्षेप करने का कोई अधिकार नहीं यह धर्म शास्त्र तथा सरकारी फैसला है जो समस्त भारत में माना जाता है।

नोट—जिस भेष का जो महन्त होगा वह अपने गुरु का दिया स्थान या स्थान की कोई भी सम्पति या अपने बनाये स्थान और स्थान की सम्पति सिवाय अपने चेले को अन्य भेष को नहीं दे सकता, यह समस्त भेष का रवाज है इसीसे स्थान की सम्पति बटती (विभाजन) नहीं होती।

उदासीन—दान उदासीन को ही दे सकता है न किसी और को, कारण दान अपने से बड़े को दिया जाता है सो उदासीन चतुर्थाश्रमी से बड़ा कोई और है नहीं इस लिये उदासीन उदासीन को ही दान देता है उदासीन लोग उदासीन के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को भी अन्न वस्त्र देते हैं, वह परवरती के नजर से न दान समझके, उदासीनो को छः कर्म इस प्रकार कहे हैं ईस्वर भजन आप करना औरों से कराना, विद्याध्ययन आप करना औरों को कराना, सदाचारी आप होना औरों को बनाना।

उदासीन लोग अपने पूर्वजों के मृत तिथि पर अपने पूर्वजों की यादगीरी में अपने उदासीनों को खिलाते हैं, अलबत भन्डारे का प्रसाद सब को देते हैं, जो लोग बड़े प्रेम और श्रद्धा से लेते हैं अथवा खाते हैं कारण यज्ञ (भण्डारे) के प्रसाद की बड़ी उपमा शास्त्रों में लिखी है पुराणों के पढ़ने से पता लगता है नारद जो प्रथम दासी के पुत्र थे और साधु महात्माओं का प्रसाद खाते रहे उस प्रसाद के भक्षण के प्रताप से दूसरे जन्म में ब्रह्मा के पुत्र हुये और उदासीनाचार्य कहाये। उदासीन महात्मा सदैव ही अपने चेलों को दैवी गुणों की शिक्षा के साथ साथ सर्व प्रकार की बुराइयों से बचे रहने का उपदेश दिया करते हैं जिससे उदासीनों में राग द्वेष के स्थान पर अनुराग परस्पर का प्यार, त्याग, क्षमा, विद्या के साथ २ निरभिमानता आती है।

उदासीन साधु संत वर्णानुसार जनेऊ और चोटी रखते हैं चतुर्थाश्रमी अवस्था में नहीं भी रखते (सिन्ध पञ्जाब पूर्वादि सर्व देश में यही प्रथा है) शास्त्र विधि अनुसार चतुर्थाश्रमी परमहंसावस्था में जनेऊ चोटी नहीं रखते इस प्रसङ्ग को हम प्रथम सप्रमाण विस्तार से लिख आये हैं उदासीन साधु तीर्थों पर हिन्दू शास्त्रानुसार जाते स्नानादि कर साधु भोजन कराते हैं इस प्रकार सब बातें समझा कर।

चन्द्र वसु रसेन्दौ च कार्तिके पूर्णिमा दिने।
नूतनं कारयामास चन्द्रः कर्तृपुरे मठम् ॥५३॥

अर्थ—वि० सं० १६८१ कार्तिक पूर्णिमा के दिन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने अपने कर्तारपुर वाले आश्रम का ॥५३॥

गुरु दित्तं मठा धीशं चक्रे तत्र सुनिष्ठतम्।
प्रदाय सर्व विद्याश्च शिक्षयित्वा समाः कलाः ॥५४॥

अर्थ—अपने चेले श्री गुरु दित्ता जी को महन्त बनाय गद्दी का तिलक दे सर्व प्रकार की विद्या और शक्ति सम्पन्न कर हिन्दू धर्म के प्रचार की शिक्षा दे कर्तारपुर भेज दिया ॥५४॥

दत्वा च शिष्ययानुगान् उपदिश्य पुनः पुनः।
धर्म संरक्षणार्थश्च प्रेषयामास भूतले ॥५५॥
सर्व धर्मोपदेशांस्तु स हि चक्रे महामतिः।
शिष्यास्तथा प्रशिष्याश्च ययुस्तेनैव वर्त्मना ॥५६॥

अर्थ—श्री गुरु दित्ता जी महाराज अपने हिन्दू धर्म रक्षण के उपदेश देने में बड़े चतुर गुरु सेवी उदार दयालु तपस्वी ऋद्धि सिद्धि के धनी कोमल भाषी थे उस स्थान में उनके शिष्य प्रशिष्य होते चले आ रहे हैं ॥५५॥५६॥

ब्रह्मावतार सिद्धश्च गुरुदित्तो विदां वरः।
नाना चरित्रवाल्लोके कीर्त्यात्वद्यापि राजते ॥५७॥

अर्थ—श्री महन्त गुरु दित्ता जी ब्रह्मा जी के अवतार बड़े विद्वान् सिद्ध पुरुष थे जिन के अनेक प्रकार के चरित्र लोक में आज भी कीर्ति युक्त विराज रहे हैं ॥५७॥

वेदाङ्क रस चन्द्रे श्री वैक्रमे ह्याश्विने सिते।
दशम्यां रवि वारे च ब्रह्म लोकं गतो बुधः ॥५८॥

अर्थ—वि० सं० १६६४ आश्विन सुदी १० रविवार को महन्त श्री गुरु दित्ता जी यहीं पर ब्रह्म में लीन हो गये आप ब्रह्मा जी के अवतार थे इस लिये अन्त में ब्रह्मा जी में जाकर लीन हो गये ॥५८॥

कर्तृपुरे समाधिश्च पूज्यतेऽद्यापि सेवकैः।
उदासीना महात्मनः मठाधीशा भवन्ति हि ॥५६॥

अर्थ—यहीं कर्तारपुर में आपकी समाधि बनी जिसकी सब कोई पूजा करता है जिस स्थान के उदासीन महात्मा महन्त (मालिक) आज तक बराबर चले आते हैं ॥५६॥

नोट—इस स्थान को रावी नदीने अपने जल की बाढ़ से कुछ दिन हुये बहा दिया था, वर्तमान स्थान वहाँ से तीन कोस दूरी पर पुनः बनाया गया है।

इत्थं चन्द्र चरित्र चित्रित महा काव्ये रसोदन्वति,
स्नात्वाऽस्मिन् मनुजा भवन्तु विमलाश्चन्द्र प्रसादात्क्षणात्।
श्रुत्वा वा पठनेनवाऽपचितिभिः पापानि दग्ध्वाऽञ्जसा,
सायुज्यं सुजना लभध्वमधुना श्रीचन्द्र मौलौ परम् ॥६०॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का यह विमल चरित्र जो महाकाव्य में बनाया गया है वह अमृत रूपी रस से भरा हुआ है उसमें जो पुरुष स्नान करेगा वह श्री गुरु जी की कृपा से क्षण मात्र में विमल हो जायगा। इसे जो चित्त लगा कर सुनेगा या पढ़ेगा उसके सब पाप दग्ध हो जायेंगे और वह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी में अभेद हो जायगा ॥६०॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धुगंगामध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्री मद् उदासीन वर्य परम हंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकाय मान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे श्री गुरुदित्तोपदेश, मन्त्र योग, अष्टोत्तरशत माला मणिनिर्णय उदासीन सम्प्रदाय में चेला बनाने की रीति, साम्प्रदायिक चिन्ह, अन्तिम संस्कार, महन्त बनाने के नियम प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी त्रिचत्वारिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥४३॥

॥ चतुश्चत्वारिंशत्तमा किरण प्रारम्भः ॥

द्वात्रिंशदुत्तर शतैक समामवस्थां,
धर्म प्रचार ममलंभुवने चकार।
श्रीचन्द्र देव समये जगती तलेऽस्मिन्,
श्री रामराज्य वद भूत्सकलं चरित्रम् ॥१॥

अर्थ—जगत उद्धारक हिन्दू धर्म रक्षक आचार्य प्रवर महाप्रभु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने इस पृथ्वी तलपर १३२ वर्ष तक पूर्णतया धर्म प्रचार किया। जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के समय में इस संसार में श्री रामचन्द्रजी के राज्य की तरह सम्पूर्ण चरित्र थे ॥१॥

ना विद्यया कलुषितानि मनांसि नृणां,
नापूजका गुरु जनस्य जना बभूवुः।
ना कालिकं मरणमेव निरीक्ष्यतेस्म,
नापीति भीति विधुरा प्रकृति र्बभूव ॥२॥

अर्थ—ऐसा मनुष्य कोई न था जिसका मन अविद्या से कलुषित हो अर्थात् प्रत्येक मनुष्य विद्या में चित्त देता था। तथा ऐसा जन (मनुष्य) कोई नथा जो कि गुरु जन को न पूजता हो, और अकाल मृत्यु के तो दर्शन तक न होते थे तथा प्रजा को अति वृष्टि अनावृष्टि आदि षट् प्रकार ईति का भी भय नथा, तात्पर्य यह है कि प्रजा को सब प्रकार से सुखानुभव होता था ॥२॥

श्रीचन्द्र देव कृपया विषयानपास्य,
नारायणाङ्घ्रि कमलं सुजनोऽनुरक्तः।
शुष्कं विवादमपहाय मनीषि लोकः,
गोष्ठीषु सच्छ्रुतिमतं दृढ मा ललम्बे ॥३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र देव जी की कृपा से विषय भोगों को छोड़कर सुजन लोग प्रभुनारायण जी के चरण कमलों में अनुरक्त थे। तथा बुद्धिमान् विद्वज्जन शुष्क विवादों को छोड़कर गोष्ठी करते समय वेदों के पक्षको दृढ़तया आलम्बन करते थे ॥३॥

नारीजनो हृदय वल्लभ दत्त चित्तः,
स्वप्नोऽपि नान्य पुरुषंमनसानुमेने।
नाज्ञां गुरोः शिशुजनो विफलां चकार,
विद्यावधूर्विनय भूषण भूषिताऽभूत् ॥४॥

अर्थ—उस समय स्त्रियां अपने प्राण प्रिय पतिदेव के चरणों में चित्त लगाये हुये होती थीं, तथा स्वप्न में भी अन्य पुरुष का अनुमान तक न करती थीं। तथा छात्र वृन्द गुरु जी की आज्ञा को कदापि विफल न करते थे। और विद्या रूपी वधू सदा विनय रूपी भूषण से भूषित रहती थी, अर्थात विद्या पढ़ा हुआ प्रत्येक नर नारी नम्र होता था ॥४॥

नासीत्तपः कलुषितं मृगतृष्णि कायाः,
नाभूरिदक्षिणसवा न सभा न वृद्धा ।
नाखर्व गर्व मलिनं धनिनां चरित्रं,
नोत्कोचवृश्चिक हतोऽप्यधिकारि वर्गः ॥५॥

अर्थ—उनके समय में ऐसी तपस्या कोई न थी जो मृग तृष्णा से भरी होती, ऐसा यज्ञ नथा जिसमें थोड़ी दक्षिणा होती और ऐसी सभा भी न होती थी जिसमें वृद्ध न होते थे। धनियों के मन में गर्व (अभिमान) नाम भर को भी न था, तथा अधिकारी लोगों को रिश्वत रूपी बिच्छू ने नहीं काटा था अर्थात् वह लोग रिश्वत बिल्कुल न लेते थे ॥५॥

तीर्थानि शान्त मृग पक्षि निषेवितानि,
संकीर्ण वर्ण रहितश्च कुलञ्च काव्यम् ।
राष्ट्राणि नीति निपुणैः सचिवैर्युतानि,
ब्रह्मैक दर्शन परा यतयोऽप्य भूवन् ॥६॥

अर्थ—जहाँ पर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बैठे थे वह स्थान शान्त तीर्थरूप मृग पक्षियों से सेवित संकीर्णता रहित कुल को कीर्ति देने वाला राष्ट्र नीति में निपुण मन्त्रियों को कराने वाला केवल एक ब्रह्म दर्शन कराने वाला था जिसे प्राप्त कर के पृथ्वी में गिरने का भय मिट जाता था ॥६॥

एवं व्यवस्थितं लोकं दृष्ट्वा हृष्टमना विभुः ।
अशेषितश्च कर्तव्यं कृत कृत्यः कृती बभौ ॥७॥

अर्थ—इस प्रकार लोक की व्यवस्था सुन्दर देख कर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अपने मन में प्रसन्न हो कैलाश धाम की यात्रा करने का विचार करते भये कि अब हमारा यहाँ पर कोई काम बाकी नहीं है ॥७॥

शिष्यान् प्रशिष्यानन्यांश्च धर्म गुप्तौ नियोज्यतान् ।
सञ्जिहीर्षु र्लोकयात्रां टाली साहबतोऽचलत् ॥८॥

अर्थ—अपने शिष्य प्रशिष्यों को धर्म के प्रचार कार्य में नियोजित कर अपनी जीवन यात्रा को समाप्त करने के विचार से टाली साहब वाले अपने स्थान से चलते भये ॥८॥

ततः पाठीन कोटञ्च समायातः शनैः शनैः ।
गुरु दासपुराऽदूरे ममूनं ग्रामागतः ॥९॥

अर्थ—गुरुदास पुर से कुछ आगे पाण्डव कोट (पठान कोट) से आगे २॥ मील पर ममून ग्राम पहुँचते भये ॥९॥

अश्वत्थ पादपं शुष्कं नगराद्वहि राश्रितः ।
सहसा हरितं चक्रे रम्यं चल दलं पुनः ॥१०॥

अर्थ—यहाँ पर नगर के बाहर एक पीपल का वृक्ष बहुत दिनों से सूखा खड़ा था उसके नीचे आप के विराजमान होते भये आप के बैठते ही एकदम वह वृक्ष हरा भरा हो लह लहाय उठा ॥१०॥

मूर्ध्नाम्भः कुम्भमादाय सुदूरादागतां स्त्रियम् ।
पिपासाकुलितश्चन्द्रः ययाचे स्वल्पकं जलम् ॥११॥

अर्थ—इतने में कुछ मातायें अपने शिर पर जल का भरा कलश लिये दूरसे आ रहीं थीं उनसे श्री ११०८ जगदगुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने पीने वास्ते थोड़ा जल मांगा ॥११॥

भद्रे का त्वं द्विजातिश्चेत् स्वल्पं मे जलमर्पय ।
दूरादहं समायातः पानीयं नागतं पथि ॥१२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी कहते हैं हे भद्रे क्या तुम द्विजाति (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) यों में से हो तो हमे थोड़ा पीने के लिये जल देवो हम दूर से आ रहे हैं पंथ में पानी नहीं मिला ॥१२॥

भगवन् नीयतामुक्त्वा सा देवी दीन मानसा ।
मूर्ध्नोऽ वतारयामास कलशं जल संभृतम् ॥१३॥

अर्थ—यह बात सुन उन माताओं में से एक माता नमस्कार कर नीचे मुख किये दीन भाव से शिर का घड़ा उतार पृथ्वी पर रख दिया ॥१३॥

हस्ताभ्यां नयनाभ्याञ्च जलमश्रुजलञ्चतत् ।
तुम्बिकायां मुमोचासौ चन्द्र देवस्य सादरम् ॥१४॥

अर्थ—उसके हाथ तथानेत्र अश्रुजल से भीगे हुये थे वह श्री ११०८ जगद्गुरु श्री श्रीचन्द्रभगवान् की तूम्बी में आदर सहित जल डालती भई ॥१४॥

मातः का ते व्यथा चित्ते साधुशीले स्फुटं वद ।
अपनीय पुरा दुःखं पास्याम्येष ततः पयः ॥१५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रभगवान् बोले हे माता तुम लोगों के चित्त में क्या व्यथा है सो हमारे समक्ष सुनाओ ॥१५॥

महात्मन् पीयतां वारि दुःखं नो नापमीयते ।
यद्दैवादागतं तस्य प्रतीकारो न विद्यते ॥१६॥

अर्थ—यह सुन एक माता बोली हे भगवन् यहां पीने के जल का बड़ा कष्ट है जो कथन से बाहर है इस दुःख का अन्त देखने में नहीं आता ॥१६॥

दूरादानीयते वारि ग्रामेऽस्मिन् देवमातृके ।
गर्भवत्य इमा नार्यः ग्लायन्ते हन्त ! का गतिः ॥१७॥

अर्थ—हे देव बहुत दूर से जल लाना पड़ता है ग्राम में माइयों को बहुत कष्ट है गर्भवती स्त्रियों के कष्ट का क्या कहना है कारण वह दूरसे जल लाने में असमर्थ होती हैं ॥१७॥

रात्रौ न शक्यते गन्तुं भूतप्रेतभयात्प्रभो ।
प्रायः पिपासिता मर्त्याः गावश्चान्ये चतुष्पदाः ॥१८॥

अर्थ—रात्रि को भी जल लाने जाना अशक्य है कारण भूत प्रेत का भय होता है, हे प्रभो इस कर प्रायः प्यासेही रहना पड़ता है तथा गऊ आदि सर्व पशु प्यासे ही मर जाते हैं ।१८।

कणे हत्य क्रियाः कर्तुं न शक्याः कर्मकाण्डिभिः ।
कथञ्चिन्निर्वहन्त्येते जीवितं धन्व देशवत् ॥१९॥

अर्थ—जलके बिना सर्व क्रिया दुस्तर हो रही हैं कर्म काण्ड नहीं निबहता ऐसे देशमें हम लोगों का जीवन वृथा ही है ॥१९॥

भीष्मे ग्रीष्मे समायाते विकला महिला इमाः ।
विलपन्ति तपस्विन्यः वात्यातप निपीडिताः ॥२०॥

अर्थ—बड़ी तीव्र गर्मी में जल भरने जाना हम अबलाओं को बिकल कर देता है, हे तपस्वी महाराज गरम हवा से पीड़ित हो हम लोग रोया करती हैं ॥२०॥

वरन्नो देहि दीनाभ्यः रचितोऽयं तवाञ्जलिः ।
देयाद्दैवं नात्र वासं, भगवन् नान्यजन्मनि ॥२१॥

अर्थ—हे दीनों पर दया करने वाले आपके अञ्जलि से कृपारूपी जल मिल जाय तो उत्तम है नहीं तो हम सब लोगों का जन्म वृथा ही है, आप साधुमहात्मा परोपकारी हैं अपनी

करामात से यहीं जल उत्पन्न कर सकते हैं जिससे सबका कष्ट सदा के लिये मिट सकता है आप के लिये असम्भव भी सम्भव करना खेलसा है ॥२१॥

यामो वयं मङ्गलन्ते नूनं दैव हताः स्त्रियः ।
इत्युक्त्वा घटमुत्थाप्य गन्तुकामा ननाम सा ॥२२॥

अर्थ—इस प्रकार उन्हें प्रार्थना करते जब दो याम (पहर) बीत गये किन्तु भगवान् का जब कोई उत्तर न मिला तब सब स्त्री हताश हो अपना २ घट उठा के चलती भईं ॥२२॥

दयाद्रुतमनाः श्रीमान् सदयं ता उवाच सः ।
पृष्ठतो दृश्यतां देव्यः विमलायं महासरः ॥२३॥

अर्थ—यह देख श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जगत के हर्ता कर्ता धर्ता ज्ञान स्वरूप का हृदय शीघ्र दया से भर गया तुरत ही उनको बुलाके उन माइयों की मुखिया को कहा हे देवी तुम लोग इतना क्यों घबड़ाती हो तुम्हारे पीछे ही तो विमल जल का स्रोत बह रहा है जरा घूम के देखो तो सही ॥२३॥

आपेदिरे विस्मयंता इति दृष्ट्वा महासरः ।
सानन्दं गृहमायाताः नत्वा स्तुत्वा मुहुर्मुहुः ॥२४॥

अर्थ—ऐसा सुन्दर जल का स्रोत देख सब विस्मित हो बारम्बार नमस्कार कर आनंद पूर्वक अपने २ आवास को जाती भईं ॥२४॥

ग्रामीणाश्च समायाताः द्रष्टुं पूजयितुं च तम् ।
आप्तकामा जलं दृष्ट्वा भृशं मुमुदिरे जनाः ॥२५॥

अर्थ—यह खबर ग्राम के लोगों ने जब सुनी तब सब श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास आय २ विविध प्रकार से पूजन कर अत्यन्त प्रेम से पूर्ण काम हो जलाशय को देख बड़े आनन्दित होते भये ॥२५॥

कूपो महा कूपतमश्चतत्र जनाश्च सर्वे सुखिनो बभूवुः ।
अश्वत्थवृक्षोऽप्यतिसार्द्र भूतश्चिरन्तनास्तिष्ठति साम्प्रतश्च ॥२६॥

अर्थ—वही चश्मा आज तक कूप के रूप में विद्यमान है जो उसी हरे किये हुये पीपल के वृक्ष के पास में है, जिसके नीचे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बैठे थे वही अकेला कूप ग्राम भर के ४०० घर की क्षुधा तृषा मिटाता है ॥२६॥

सिद्ध कामाभिधं तीर्थं सेवन्ते सिद्धिकामुकाः ।
तस्यां तिथौ महामेला प्रतिवर्षञ्च जायते ॥२७॥

अर्थ—वह स्थल तीर्थ रूप सर्व कामों को पूरण करता है प्रतिवर्ष जहाँ पर मेला लगता है, जिस पीपल के वृक्ष के नीचे श्री ११०८ जगद्गुरू श्रीचन्द्र भगवान् बैठे थे उसकी पूजा सभी लोग आज तक करते हैं ॥२७॥

गच्छन्ति भक्त्या च जनाश्च तत्र मनोरथस्सिद्ध तमः प्रयाति ।
इच्छन्ति यद्यच्च विशाल वृत्तं श्रीचन्द्र देवो भगवान्ददाति ।२८।

अर्थ—वड़े २ लोग भक्ति वश जो कामना चाहते हैं वहां जाने से सिद्धि पाते हैं, श्री गुरु देव श्रीचन्द्र की कृपा से उस जगह की बड़ी महिमा हो गई ॥२८॥

कतिपयान्यहान्यत्र सुखं तस्थौ सुपूजितः ।
प्रतस्थेऽसौ ततः श्रीमान् चम्बाराज्य दिदृक्षया ॥२९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वहाँ से पूजित हो चम्बा राज्य देखने की इच्छा से आगे चलते भये ॥२९॥

इरावत्यास्तटे तत्र सिद्धगन्धर्व सेविते ।
स्वासनं कल्पयामास सुख स्पर्शे च मारुति ॥३०॥

अर्थ—चम्बाराज्य सिद्धि गन्धर्वों से सेवित इरावती (रावी) के तट पर स्थित है। राजा का सुशासन सुन्दर है जहां पर सुख को देने वाली हवा चलती है ॥३०॥

वेत्तावल ग्रामसमाधिशान्तः कालत्रयेऽप्य प्रतिम प्रभावः ।
स धर्म चित्तस्सच कर्म चित्तस्स हिन्दु चित्तत्वति कोमलाङ्गः ॥३१॥

अर्थ—सब के जाननेवाले तीनों काल में अनुपम प्रभाव रखने वाले धर्म कर्म तथा हिन्दू कौम की उन्नति में दत्त चित्त कोमलाङ्ग ॥३१॥

पारं प्रगन्तुश्च निषाद राजं कैवर्तनाम्ना प्रथिते जगत्याम् ।
आह्वानयामास जगद्धितैषी जाते विलम्बे च दयार्द्रचित्तः ॥३२॥

अर्थ—रावी नदी के पार जाने के लिये केवट राज को बुला के जगत् हितकारी जिनका चित्त दया से आर्द्र (पिघल जाने वाला) होने वाला ऐसे श्रीचन्द्र भगवान् बोले कि हमको इस नदी के पार पहुँचा दो विलम्ब हो रहा है ॥३२॥

निषाद राजः समुवाच वाक्यं साधु प्रवीरा भव सागराच्च ।
पारं प्रगन्तु नितरां समर्था अस्याश्च नद्यास्तरणे न चित्रम् ।३३।

अर्थ—यह बात सुनके मल्लाह आपका तेजस्वी मुखारविन्द देख के बोला कि आप साधु महात्मा औरों को भवसागर से पार करने वाले होते हैं आपको यह छोटी नदी पार करने के लिये नौका माँगना मेरे को आश्चर्य में डाल रहा है ॥३३॥

संयाचसे नाव मिदं न युक्तं सिद्धाति सिद्धः प्रतिभासिमेत्वम् ।
बुद्ध्वांच भावं गुरु देव देवस्तदानुकूलाङ्कृतिमा ततान ॥३४॥

अर्थ—इस लिए आपका नौका माँगना ठीक नहीं जंचता, आप सिद्धों के भी सिद्ध देखने में आते हैं, यह बात उस मलाह की सुन उसके मन का भाव करामात देखने का जान कर श्री गुरुदेव देवों के भी देव ने उसके ही इच्छानुसार लीला कर दिखाई ॥३४॥

शिलां स्थूलां कूले ललित तरु मूलेऽवि निवसन्,
सलीलं तामाह प्रचल सलिले त्वं प्लवमयी ।
सकल्लोलां लोलां परिहसित दोलां खलु नदीं,
अतीतो रोलम्बाञ्चित नलिन जम्बाल जटिलाम् ॥३५॥

अर्थ—जिस शिला पर नदी के किनारे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बैठे थे वह बड़ी विशाल शिला थी जिस पर बड़े २ सुन्दर बृक्ष लगे थे उसको महाराज ने अपनी आज्ञा से जल में तैराय पार उतर गये, वह शिला नदी के जल में नौका के समान चलती भई। वह सुन्दर नदी दोनों कूलों पर उछलने लगी और उस शिलारूपी नौका को नदी के पार करने में विलम्ब न लगा, जो नदी चौड़ी और कमलिनी तथा सेवार से भरी हुई थी ॥३५॥

विशाल शिलया तीर्णं दृष्ट्वा कूलंकषां जना ।
आश्चर्य चकिता भूत्वा साष्टाङ्गः ते ववन्दिरे ॥३६॥

नत्वा स्तुत्वा परिक्रम्य त इमां वाच मूचिरे ।
नायं साधारणः साधुः सिद्धो नूनं न संशयः ॥३७॥

अर्थ—उस विशाल शिला को नदी के इस पार पहुँची देख लोग आश्चर्य में भर चकित हो श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के पास आय २ परिक्रमा कर साष्टांग दण्डवत कर परस्पर बोलते भये कि यह साधारण साधु नहीं हैं यह सिद्ध हैं इसमें कोई संशय नहीं है ॥३६॥३७॥

मन्यामहे भगवतोऽवतारो भूतलेऽभवत् ।
अलं लीलामिमां कर्तुं कोवा साधारणो जनः ॥३८॥

अर्थ—भगवत् का अवतार साक्षात् शङ्कर पृथ्वी पर आये हुये हैं जिन्होंने यह विशाल लीला कर दिखाई है क्या वह साधारण पुरुष हो सकते हैं ॥३८॥

श्री कामदेवञ्च जयस्वरूपं भस्मासुरं दुष्टतमञ्च दैत्यम् ।
संहारयामास विशेष कार्य कर्ता महानादि सुसृष्टिकारी ॥३९॥

अर्थ—श्री काम देव तथा भस्मा सुर को इन्होंने ही नाश किया था सृष्टि कर्ता यही हैं जो संसार में विलक्षण चरित्र है वह सब इन्हीं का है ॥३९॥

यद्यच्चरित्रं परमञ्चलोके तनोति सर्वं गुरु देव देवः ।
विज्ञाश्च प्राज्ञास्सु भणन्तिगुप्तमेतद्रहस्यन्त्वधिकं प्रशस्तम् ।

अर्थ— बड़े २ बुद्धिमान लोग इस चरित्र को जानते हैं अज्ञानी नहीं जान सकते उनके लिए यह रहस्य गुप्त है ॥४०॥

साधारणी सान शिलाऽधिमाना स्थूलाच दीर्घा त्वधि भारधत्रौ ।
विशिष्ट रूपात्वति दर्शनीयं प्रौढा चसा भूधर सन्निभाच ॥४१॥

अर्थ—वह शिला जिस पर श्री गुरुदेव जी चढ़ के पार उतरे थे वह मामूली न थी किन्तु बहुत बड़ी पहाड़ के समान थी उसके ऊपर बहुत घर अब बने हैं ॥४१॥

इति नानाविधाभिस्ते सामग्री भिर पूजयन् ।
शिलामपि च तां धन्यां मन्य माना ववन्दिरे ॥४२॥

अर्थ—इस प्रकार अनेकों उपमावाले शब्द बोलते हुये श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के समक्ष आय पूजन कर शिक्षा लेकर अपने २ गृह जाते भये ॥४२॥

साशिलाऽद्यापि महती धारयन्ती गृहाम् वहून् ।
भ्राजते तीर्थभूताच पूज्यमाना मनस्विभिः ॥४३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के प्रताप से वह महती शिला जिस पर अनेक घर बने हैं परम पावन तीर्थ हो रही है जिसकी पूजा मान्यता सब करते हैं ॥४३॥

बाहुवसुरसेन्दौच वैक्रमे मार्ग शीर्षके ।
चम्बाराज्ये पूर्णिमायामुपदेशानदत्तसः ॥४४॥

अर्थ—यह दिन वि० सं० १६८२ मार्ग शीर्ष पूर्णिमा का था सवा पहर दिन चढ़ चुका था चम्बा राज्य में उपदेश देने के निमित्त आप पहुँचते भये ॥४४॥

वरमोराभि धायाञ्च राज धान्यां तदाधिपः ।
बल वर्म्मा सूर्य वंश्यः धार्मिकोऽभूत्पराक्रमी ॥४५॥

अर्थ—उस समयचम्बा राज्य की राज धानी का नगर वरमौर था जहां का राजा बलभद्र वर्मा सूर्य वंशी उदयपुर की शाखा में से था वह बड़ा धार्मिक तथा पराक्रमी राजा था ॥४५॥

स चन्द्रं पूजयामास सामात्यः स बलः शुचिः ।
सोऽपि तस्मै नीति विद्यां तुष्टचित्तोपिदेश ताम् ॥४६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का आगमन सुन अपने आत्मात्यों सहित जाय सविधि पूजन किया। उसको श्री गुरु जी महाराज संतुष्ट चित्त से सुन्दर उपदेश नीति और विद्या से युक्त देते बोले ॥४६॥

॥ जगद्गुरु श्रीचन्द्र उवाच ॥

इज्यन्तां देवताः सर्वाः पूज्यन्तां साधवो द्विजाः ।
हूयतां विधिना त्रेता धूयन्तां विजयध्वजाः ॥४७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बोले हे राजन् ? तुम धर्म यज्ञ करते हुये पञ्च देवताओं का पूजन साथ ही साधु पूजन भी करते रहना साधु ब्राह्मणों की मान्यता तथा उनका आवाहन पूजन करने से तुम्हारी विजय ध्वजा फहराती रहेगी ॥४७॥

सत् क्रियन्तां गुरुजनाः पाल्यन्तां धर्मतः प्रजाः ।
स्नाप्यन्तां शिवलिङ्गानि स्थाप्यन्तां विविधाः सभाः ॥४८॥

अर्थ—गुरुजनों का सत्कार करना, प्रजा को धर्मानुसार पालना भगवान् शंकर और विष्णु की पूजा करते हुये विविध प्रकार से हिन्दुओं की सभा का स्थापन करो जिससे हिन्दू जाति बलवान हो ॥४८॥

उत्सार्यन्तां कण्टकाश्च विस्तार्यन्तां यशांसि च ।
दीयन्तां सर्वदानानि नीयन्तां न्यायतः कराः ॥४९॥

अर्थ—उत्साही बनों जिससे सर्व प्रकार के कण्टक नाश हों, यश का विस्तार हो, हिन्दू गरीबों को दान दिया करो, नीति पूर्वक न्याय करते रहना ॥४९॥

सञ्चीयन्तां महाकोषाः विनीयन्तां समुद्धताः ।
निगृह्यन्तां सर्वे चौराः विगृह्यन्तां महाऽहिताः ॥५०॥

अर्थ—अपने खजाने में धन का संग्रह करो, बड़ों से विनीत भाव रखो, चोरों को यथोचित दण्ड दो, इससे तुम्हारा बड़ा हित होगा ॥५०॥

दीक्ष्यन्तां यायजूकाश्च शिक्ष्यन्तां सर्वबालकाः ।
उच्यन्तां वेदमन्त्राश्च मुच्यन्तां वीत दूषणाः ॥५१॥

अर्थ—सर्व बालक बालिकाओं को शिक्षा दीक्षा युक्त करो, जो वेद मन्त्रों का उच्चारण करें जिससे उनके सर्व मूर्खता वाले दूषण निवृत्त हो जावें ॥५१॥

जायन्तामन्न सत्राणि विरच्यन्तां तथाप्रपाः ।
आरोप्यन्तां महा रामाः खन्यन्तां कूप वापिकाः ॥५२॥

अर्थ—अन्नक्षेत्रादिक लगाओ, अपने पास सेना में वीर पुरुष रखो, बाग बगीचा लगाओ कूप बावड़ी खुदवाओ जिससे लोगों को सुख मिले ॥५२॥

संस्क्रियन्तां राजमार्गाः विन्यस्यन्तां चतुष्पथाः ।
उद्ध्रियन्तां जीर्णगेहाः सङ्गोप्यन्ताञ्च नैगमाः ॥५३॥

अर्थ—राज मार्ग खुले बनवाओ जिसपर पशु आदि भली भांति चल सकें पुराने घरों का जीर्णोद्धार करो वेदों का सांगोपाङ्ग अध्ययन कराओ ॥५३॥

दंड्यन्तां भिन्न मर्यादाः खण्ड्यन्तां चण्डवादिनः ।
मण्ड्यन्तां विमलाचाराः गण्ड्यन्तां कीर्तिशालिनः ॥५४॥

अर्थ—जो मर्यादा से भिन्न चलें उन्हें दंड दो जो तीव्र बोलने वाले हों उनका खण्डन करना चाहिये, विमल आचार वालों का मण्डन करना चाहिये, कीर्तिशाली पुरुषों को ग्रहण करना चाहिये ॥५४॥

उन्नीयन्तामवनताः उन्नतश्च विनीयताम् ।
गर्विताश्चावधूयन्तां विनाश्यन्ताञ्च नास्तिकाः ॥५५॥

अर्थ—अवनत पुरुषों को उन्नत करो और उन्नत पुरुषों में विनीत भाव पैदा करो, गर्वितों का अभिमान तोड़ो नास्तिकों की नास्तिकता का विनाश करो ॥५५॥

सेव्यन्तां सर्व तीर्थानि प्रवर्तन्ताश्च सत्क्रियाः ।
कथ्यन्ताश्च कथाः पुण्याः स्थाने स्थाने गृहे गृहे ॥५६॥

अर्थ—सर्व तीर्थों में सेवा भाव रखो अर्थात् यात्रा करो, सत्क्रियाओं में प्रवृत्त हो घर २ स्थान २ में पुण्य कथाओं (भगवत् कथाओं) का प्रचार करो ॥५६॥

भारतं भातु सर्वत्र पुराणं पठ्यतां सदा ।
कथयन्तु कथा दक्षा रम्यां रामायणी कथाम् ॥५७॥

अर्थ—रामायण, महाभारत की कथा तथा पुराणों की कथा सदैव कुशल पुरुषों से कराना चाहिये ॥५७॥

राजन्निदानीश्च महोपदेशा न्यायेन सर्वं परिपालनीयम् ।
एवञ्च भूयोऽपि विशिष्ट धर्मोपदेश मार्गं परिवोध्य योगी ॥५८॥

अर्थ—हे राजन् जो मैंने तुम को हितकर परम सुन्दर शास्त्र सम्मत पवित्रोपदेश सुनाया है उसी अनुसार धर्मपरायण हो सदा न्याय से प्रजा पालन करते रहना ॥५८॥

एवमाभाष्य भगवाञ्छ्रीचन्द्रो वदतां वरः ।
तूष्णीं तस्थौ सुधर्मायां सुराचार्यो यथा सुधीः ॥५९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् राजा को इस प्रकार धर्म का उपदेश दे चुप हो गये वहाँ पर बैठे आप ऐसे शोभा पारहे थे जैसे सुधर्मासभा के बीच देवताओं के आचार्य बृहस्पति मुनि शोभा पाते हैं ॥५९॥

अथ तं पूजियामासुः सदस्याः सकला अपि ।
वलभद्रा तथा चक्रे राज्यं प्राज्यं सधर्मतः ॥६०॥

अर्थ—फिर राजा ने अपने सदस्यों के समेत श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान की पूजा किया, राजा वलभद्र वर्मा तब से अपने राज्य में प्रजा को धर्म पूर्वक पालता हुआ सुख से रहा ॥६०॥

श्रीचन्द्रो भगवांस्तत्र स्थित्वा पञ्चैव वासरान् ।
चचाल नरशार्दूलः सहस्ये पञ्चमीतिथौ ॥६१॥

अर्थ—नरों में शार्दूल श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने वहाँ ५ दिन निवास किया पुनः पौषवदी ५ तिथि रविवार को प्रातःकाल चलने का विचार किया ॥६१॥

प्रविश्य च महाटव्यां वृक्षमूलेऽति मञ्जुले ।
बद्धपद्मासनस्तस्थौ निश्चलो गिरिसन्निभः ॥६२॥

अर्थ—राजधानी से चल घोर जङ्गल में प्रवेश कर एक सुन्दर पीपल के वृक्ष के नीचे पद्मासन बाँध के पर्वत समान अचल होकर बैठ गये ॥६२॥

जगद्गुरोश्च श्रीचन्द्रः साक्षाच्छङ्कर रूपिणः ।
तद्व कैलाश गमनं च दृष्ट्वा दर्शन कांक्षया ॥६३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो साक्षात् भगवान् शङ्कर का रूप थे उनका कैलाश गमन करने का इरादा देख के दर्शन करने की इच्छा से ॥६३॥

ब्रह्मा विष्णु महेशश्च नारदः सनकादयः ।
वृहस्पतिश्च शुक्रश्च इन्द्रः साक्षाच्छचीपतिः ॥६४॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नारद सनकादि (चारोमहामुनि) देव गुरु वृहस्पति मुनि, दैत्य गुरु शुक्र मुनि, सची पति राजा इन्द्र ॥६४॥

विश्वामित्रो वशिष्ठश्च वाल्मीकिर्जमदग्निजः ।
पुलस्त्यश्च महाप्राज्ञः शुनश्शेफश्च गालवः ॥६५॥

अर्थ—विश्वामित्र, वशिष्ठ, वाल्मीक, जमदग्नि, पुलस्त्य शुनःशेफ, गालवादि उदासीन महामुनि जो बड़े बुद्धि मान थे ॥३५॥

गार्ग्यः कुवेर अग्निश्च आगतौ चन्द्रभास्करौ ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव सर्वे सिध्दाः प्रमोदयः ॥६६॥

अर्थ—गार्गमुनि तथा धनाधिप कुबेर जी, अग्निदेव, चन्द्रमा सूर्य गन्धर्व, अप्सरा, सिद्धादि सर्व प्रसन्न हो अन्त समय उदासीन स्वरूप श्रीचन्द्र भगवान् का दर्शन करने आते भये ॥६६॥

साष्टाङ्गं न्यसनं प्रीतिं प्रणपत्य गुरोऽब्रवीत् ।
जन्मश्च सफलं मन्ये पश्यामि भवतं मुदा ॥६७॥

अर्थ—श्री गुरु श्रीचन्द्र भगवान् सब को साष्टाङ्ग प्रणाम करते प्रसन्न हो बोले आप सब के एक साथ दर्शन होने से मैं अपना जन्म सफल मानता हूँ ॥६७॥

एवमुक्त्वा महाराज श्रीपद्मासनसुस्थिरा ।
ध्यानावस्थितकैवल्य स्व सरूप समागता ॥६८॥

अर्थ—ऐसा कह महाराज श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् पद्मासन बैठ ध्यानावस्थित हो योग मार्ग द्वारा सशरीर अन्तर्धान होगये अर्थात् स्वस्वरूप में समा (मिल) गये, बहुतों का मत है कि महाराज चिरञ्जीवी अजर अमर हैं योगीराज सर्वत्र व्यापक हैं ॥६८॥

कैलाशलोके परमे पवित्रे गोलोक देशे किल सत्यलोके ।
शिव स्वयं योग कलाकदम्बै स्सायुज्य मुक्तिं समलञ्चकार ॥६६॥

अर्थ—कैलाशलोक, परम पवित्र गोलोक तथा सत्य लोक के सदृश्य है जहाँ पर स्वयं शिवजी योग कला सम्पन्न सायुज्य मुक्ति के देने वाले निवास करते हैं ॥६६॥

समस्त देवता सिद्धः यक्ष गन्धर्व किन्नराः ।
गच्छध्वं मुनयः सर्वे स्वस्व स्थान निवासतः ॥७०॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को अपने शिव स्वरूप में लीन होता देख सब देवता सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, मुनीश्वर लोग अपने २ आवासों में जाकर निवास करते भये ॥७०॥

बदंतिवहुला ल्लोगा श्रीचन्द्रो भगवान्मुनिः ।
अजरं अमरं योगी चिरञ्जीवीसनातनः ॥७१॥

अर्थ—बहुत लोगों का यह कहना है कि श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् अजर, अमर, योगीराज चिरञ्जीवी सदा अपने भक्तों को दर्शन देने वास्ते विद्यमान हैं योगी तपस्वी इच्छानुसार कलेवर बदलता रहता है ॥७१॥

इदं चरित्रं किल चन्द्रमौलेः गोप्यं मया लोक हिताय साधुः ।
प्रकाशितं सर्व जनाः पठन्तु धर्मार्थ कामांश्च सुखं लभन्ताम् ।

अर्थ—११०८ उदासीनाचार्य्य साधुप्रवर गुरुवर महाप्रभु हिन्दू धर्म रक्षक जग उद्धारक, जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का पावन चरित्र परमगुह्य था उसे हमने यथामति लिखके जगहितार्थ प्रकाश करना उत्तम कार्य समझा है, इसे जनता पढ़तो हुई धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त करती सुख पायेगी ॥७२॥

महात्म्यमेतस्य यथार्थतस्तु वक्तुं न शक्ता खलु शारदापि ।
शेषोऽथवाकैव कथा नराणां येषामवस्थानलिनी जलाभा ॥७३॥

अर्थ—इस चरित्र का माहात्म्य वर्णन करने में सरस्वती या शेष भगवान् भी अपनी असमर्थता दिखाते हैं तो मनुष्य की क्या कथा है जिसकी अवस्था जल के कमल सदृश्य है ॥७३॥

व्यासीय माहात्म्य कथा समानं पठन्ति शृण्वन्ति भवे जना ये ।
ते कोटि संख्यैः स्वकुलैस्समेताः प्रयान्ति कैलास शिवस्वरूपम् ।७४।

अर्थ—यह कथा व्यास की कथा के तुल्य माहात्म्य रखती है संसार में जो इसको पढ़े या सुनेगा वह एक करोड़ कुल के सहित पवित्र कैलाश में वासकर शिव स्वरूप हो जायेगा ॥७४॥

इदन्तु माहात्म्यमति प्रगूढ़ पठन्ति भक्त्याश्च कलौयुगेऽस्मिन् ।
शरीर सत्वे च फलं समग्रमन्ते च सायुज्य मवाप्नु वन्ति ॥७५॥

अर्थ—इस चरित्र का माहात्म्य बड़ा उत्तम है जो भक्ति से पढ़ेगा वह इस लोक तथा परलोक में अत्यन्त सुखी होगा ॥७५॥

वेदेषु शास्त्रेषु पुराणमात्रे फलन्तु यद्वै कथितं मुनीन्द्रैः ।
तद्वत्फलं दृष्टिपथं प्रयाति सत्यश्च सत्यन्त्वति सत्यमस्ति ॥७६॥

अर्थ—वेद शास्त्रों पुराणों के पढ़ने से जो पुण्य मुनि लोग बताते हैं वह पुण्य इस चरित्र के पढ़ने से होता है यह बात सत्य है सत्य है सत्य है ॥७६॥

न निष्फलं वेद समस्तवाक्यं न निष्फलं धर्म कथा स्वरूपम् ।
न निष्फलं कर्म सुभक्ति वेषं न निष्फलं भारतवर्ष मेतत् ।७७।

अर्थ—जिस प्रकार वेद पुराणादि समस्त वाक्य निष्फल नहीं, धर्म कथा निष्फल नहीं, भगवान् की भक्ति भी निष्फल नहीं, इस प्रकार यह कथा भी भारतवर्ष में निष्फल नहीं है।।७७।।

न निष्फलं श्री गुरु देववाक्यं श्रीचन्द्रदेवेन यदुक्त मस्ति ।
वसुन्धरेयं विपरीत वृत्ता जले निमग्नाः शरणाऽसतीच ॥७८॥

अर्थ—श्री गुरु देव जी का वाक्य निष्फल नहीं है जो कुछ भी श्री महाप्रभु श्रीचन्द्र देव जी ने उच्चारण किया है वह चाहे पृथ्वी उलट जाय चाहे जल में निमग्न हो जाय तब भी वह सत्य ही होगा । ७८॥

उदेति भानु र्भगवान्कदा चित्तां पश्चिमावारुणिकां दिशश्च ।
अग्निश्च शान्तो जलशक्तिशाली विन्ध्याद्रयस्ते प्रचलन्ति नित्यम् ।

अर्थ—चाहे सूर्य देव पश्चिम में उदित हो जायँ, अग्नि शीतल हो जाय विन्ध्यादि पर्वत चलने लगें ॥७९॥

आश्चर्य युक्तं सकलं भुविस्यात्तथापि वाक्यं सकलञ्च कृत्यम्।
ध्रुवञ्च नित्यन्त्वचलं चलायमानं कदाचिन्न गुरु प्रवाक्यम्।८०।

अर्थ—ऐसा अन होना आश्चर्य चाहे हो जाय परन्तु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का देवोक्त वचन मिथ्या नहीं हो सकता है। पृथ्वी में सब आश्चर्य हो जाय अचल ध्रुव चलने लगे परन्तु श्री गुरुदेव जी का वाक्य अचल ही जानो ॥८०॥

श्रीचन्द्रदेवेपि समस्त कर्म तथापि वाक्यं सकलञ्च गुप्तः।
ध्रुवंञ्च नित्यंत्वचलं चलायमानं कदाचिन्न गुरु प्रवाक्यम्॥८१॥

अर्थ—समस्त देश के हिन्दुओं को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का चरित्र हो अपने हिन्दू धर्म में जगा रहा है यह श्री गुरुदेव वाक्य सफल जानो यह सत्य सत्य कोटि सत्य प्रतिज्ञा है ॥८१॥

वैयासकी वेयमतीव पुण्या कथा जगत्यां जनतां पुनाति।
पठेदिमां यः शृणुयादथापि स मोक्ष भागी नियतं मनुष्यः।८२।

अर्थ—श्री व्यास भगवान् की कथा के समान अतीव पुण्य दायक यह कथा जगत को पुनीत करने वाली है जो इसे पढ़ैया सुनैगा वह निश्चत मोक्ष का भागी होगा ॥८२॥

श्रेयांसि सर्वाणि जगत्यधीत्य यशांसि विस्तार्य निवार्य बाधाम्।
एनांसि दग्ध्वा विमलान्तरात्मा ब्रह्मात्मतामेति पठंश्चरित्रम्।८३।

अर्थ—जो इस कथा को पढ़ेगा व सुनैगा उन सब के लिए यह चरित्र कल्याणकारी यश विस्तारने वाला सर्वबाधा विनाशक पापों को जलाने वाला आत्मा को विमल कर ब्रह्म में मिलाने वाला होगा ॥८३॥

क्षेत्रञ्च नेत्रञ्च मनः पवित्रं पुत्रं कलत्रं हितकारि मित्रम्।
स्तोत्रं हि चन्द्रस्य पठन् मनुष्यः लभेत सौख्येन धनं विचित्रम्।

अर्थ—जो मनुष्य इसको पढ़ेगा सुनेगा उसका स्थान, नेत्र और मन को पवित्र पुत्र कलत्र (स्त्री) और मित्रों का हितकारी होगा और वह सर्व प्रकार के विभव धन सम्पन्न होगा ॥८४॥

वेदेषु वेदाङ्ग चये पुराणे स्मृतौ तथान्येष्वपि तन्त्रकेषु।
यद्यत्फलं शास्त्रविदो वदन्ति तत्सर्वमस्याध्ययनेन लभ्यम्॥८५॥

अर्थ—वेद, वेदाङ्ग, पुराण, स्मृति तथा अन्य धर्म ग्रन्थ तन्त्र आदि सुनने का जो फल शास्त्रों में कहा गया है वह सर्व फल इस ग्रन्थ अध्ययन करने से मिलते हैं ॥८५॥

यज्ञेषु यद्दानेषु समर्चनासु शिक्षा सु दीक्षासु तितिक्षतासु ।
स्नानेषु सन्ध्यासु च वन्दनासु यद्यत्फलं तत्खलु सर्वमत्र ।८६।

अर्थ—यज्ञ,दान, सर्व प्रकार के अर्चन करने का शिक्षा, दीक्षा तितीक्षा, स्नान, संध्या बन्दन का जो फल होता है वह इसकेपढ़ने से मिलता है ॥८६॥

श्री गुरोश्च महाख्यानं यः पठेत्सु समाहितः ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्न नाशो न संशयः ॥८७॥

अर्थ—श्री गुरुदेव जी का यह परम पावन जीवन चरित्र जो मनुष्य एकाग्रमन से दिन या रात्रि में कभी भी पढ़ेगा उसके सर्व बिघ्न विनाश हो जायेंगे इसमें कोई संशय नहीं है यह सत्य जानना ॥८७॥

नरो नारी युवा वृद्धो सर्व दुःख विनाशनम् ।
ऐश्वर्य मतुलं तेषां यश आरोग्य वर्द्धनम् ॥८८॥

अर्थ—यह कथा का पढ़ने सुनने वाला नर हो या नारी युवा हो या वृद्ध सब के सर्व दुःख विनाश हो अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर संसार में सुयश प्राप्त करता आरोग्य रहेगा ॥८८॥

ग्रह नक्षत्रजाः पीडास्तस्कराग्नि समुद्भवाः ।
ताः सर्वाः प्रशमं यान्ति दिव्य लोकं गमिष्याति ॥८९॥

अर्थ—क्रूर ग्रह तथा नक्षत्र की पीड़ा दुःख चोर अग्नि आदि के समस्त भय नाश हो जाते हैं अन्त में दिव्य लोक में वह पुरुष जाता है ॥८९॥

नरानरेन्द्रः पशवो मृगेन्द्रा वने च ये कीट पतङ्ग भृङ्गा ।
भूताः पिशाचाः खलुयोगनी च गुरु प्रसादोन्नहि वाधकास्ते ।९०।

अर्थ—श्री गुरुदेव की कृपा से नर या राजा का तथा पशुओं में मृगेन्द्र का अथवा बनचारी समस्त जीवों का कीट पतंग भृङ्ग भूत पिशाच योगिनी आदि की कोई भय वाधा नहीं रह जाती ॥९०॥

श्रीचन्द्रदेव शरदं वर कान्ति कान्तं,
पादारविन्द मकरन्द जुषाम्भवान्तम् ।
नानावतार हृत भूमि भरं कृतान्तं,
लोके महा हितकरं मुनिमाश्रयामि ॥९१॥

अर्थ—गुरु श्रीचन्द्रदेव शरद् ऋतु के आकाश के चन्द्रमा सदृश्य कान्ति के धारने वाले हैं जिनके पादारविन्द के मकरन्द की श्रेष्ठ सुगन्धि में भक्त लोगों का मन भवर सदा ही रस लेने में संलग्न बना रहता है, उनके नानावतार पृथ्वी के भार उतारने निमित्त हुआ करते हैं, जिससे लोक का अत्यन्त हित होता है जिसके आश्रित मुनिलोग रहते हैं। ऐसे कल्याणकारी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥६१॥

॥ उपसंहार ॥

उदासीन मत श्रौतं सृष्टिकालान्निरन्तरम् ।
हिन्दूधर्म हिन्दूजाति हिन्दु संस्कृति रक्षणम् ॥६२॥

अर्थ—प्यारे पाठकों यह श्रौत चातुर्थाश्रमी जगत मान्य उदासीन महात्मा लोग आदि काल ही से अपने हिन्दू सनातन धर्म रक्षार्थ प्रचार कार्य करने में असाधारण कर्म वीर होते आये हैं। जिन्होंने देश जाति तथा हिन्दूधर्म रक्षार्थ अपना शरीर अपनी आकांक्षाओं अपना मन और अपना धन सब कुछ ईश्वर का समझते हुये अर्पण करते विलम्ब न किया ॥६२॥

त्यागेनैव समस्त लोक जनता मान्याति मान्यो मुनिः,
सद्धर्मं प्रबली करोति नितरां नृणांयां हितार्थं सदा ।
बुध्वा शास्त्र रहस्यमेव मखिलं त्यक्त्वा गृहस्थाश्रमं,
कृत्वा योग कलाभिरामरमणं संसेवितस्संसदि ॥६३॥

अर्थ—साधुओं के इस प्रवल त्याग के प्रताप से समस्त लोक की जनता इन्हें मानती और पूजती रहती है, हम लोग सदा जनता को सद्धर्म की ओर प्रेरित करते रहते हैं, न्याय और नीति की रक्षा का ध्यान बनाये रखना मुख्य कर्तव्य समझते हैं, सर्व शास्त्रों के रहस्य को श्रवण करके गृहत्याग श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय में आय जप तप योग का सेवन करते हुये अपने उपदेश से सब का भला करते रहते हैं ॥९३॥

उदासीना घोरकष्टं सहमाना निरन्तरम् ।
हिन्दू धर्मं वेद सिद्धं रक्षुर्मुनि पुङ्गवः ॥६४॥

अर्थ—यह उदासीन सम्प्रदाय श्रौत चतुर्थाश्रमी सृष्टि प्रारम्भ काल से अपने हिन्दू जाति हिन्दू धर्म संस्कृति और हिन्दूस्तान के उन्नति के साथ २ रक्षा का प्रचारक रहा है, और आगे भी रहेगा, इसने अनेक आपदायें सहीं विषम से विषम परिस्थिति से सामना किया, किन्तु अपने हिन्दू धर्म को सुरक्षित रक्खा। यह विशेषता साधु लोगों में ही पाई जाती है, उदासीन साधुओं का सर्व प्रथम कार्य ही यह है कि अपनी सर्व कामनाओं पर विजय प्राप्त करने उद्यम करना। इतनी योग्यता होने पर भी उदासीन साधुओं में नम्रता, दया, निरभिमानता और सुहृदता

होने का मुख्य कारण यह है कि इनमें असधारण स्वाभिमानता होने की वजह से अपनी आत्मा को मलीन नहीं होने देते तभी उदासीनों में आलसी कम दृष्टि गोचर होते हैं। देश समाज धर्मोन्नति के पथ पर उदासीनों का पैर सदैव आगे ही पड़ता आया है, अवसर पड़ जाने पर शरीर को मिथ्या जानने वाले उदासीन साधु कभी कायरता नहीं दिखाते, तभी आज ऐसे भयङ्कर समय में भी उदासीन साधुओं में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सदाचारी विद्वान् जपी तपी देश सुधार के प्रचारक साधु सन्त महन्त विरक्त अवधूत मण्डलेश्वर अनेक विद्यमान हैं ॥९४॥

धृत्वा तान्नियमां हि योगकुशलास्त्यागाख्यचक्रंदधुः,
त्यागेनैव सनातनश्चभगवान् देवस्तु सुरक्षिताः।
हिन्दू रक्षण हेतवे प्रतिपलं त्यागश्च कायस्य चेत्,
विष्णोश्चक्र शुदर्शनेन सदृशं त्यागाख्य चक्रं भुवि ॥९५॥

अर्थ—इस त्याग का कठिन नियम को ध्यान रखने वाले कुशल उदासीन महात्मा भगवान् तथा देवतों से सुरक्षित रह अपने हिन्दू धर्म रक्षा के हेतु को पलपल में विचार करते हैं, इनका यह विचार त्यागरूपी चक्रभगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र के अनुसार दुष्टों को दमन करता है ॥९५॥

कृत्वा सेना दलंसाधो कुरुते च करिष्यति ।
अनेक विपदं भुक्त्वा हिन्दू हिन्दी विवृद्धये ॥९६॥

अर्थ—उदासीन साधु अपनी जमात बाँध के घूमते अनेक विपदायें भोगते हुये भी हिन्दी हिन्दू और हिन्दुस्तान की रक्षा करते रहे हैं और रहेंगे ॥९६॥

हिन्दौतिष्ठति हिन्दुत्वं हिन्दुस्थानं तथैवच्च ।
ज्ञात्वोदासीन मुनयो गुरुत्वेन प्रशस्सिताः ॥९७॥

अर्थ—यही कारण है कि उदासीन महात्माओं के हृदय में आज भी यह भाव दृढ़ है कि हिन्दू जाति विद्यमान् है तो हिन्दुस्तान भी है, यदि हिन्दू ही न रहें तो हिन्दुस्तान किसका बन के रहेगा, देश जाति के पीछे रहा करता है, जाति जीवित रहने से देश जीता रहता है, यह जान के उदासीन महात्मा सदा देश रक्षा करने के ध्यान से हिन्दू जाति की रक्षा का उपाय करते हुये किसी को बुरा नहीं कहते, तभी संसार में उदासीन साधु पूज्य आदर की दृष्टि से गुरू करके माने जाते हैं ॥९७॥

उदासीन भेषोगुरुणांस्वरूपो सदानित्यनित्यः सदा शङ्कराख्यः ।
सदारक्षको भक्तवृन्दस्यलोके सदा हिन्दूधारा कला वर्द्धकश्च ।९८।

अर्थ—उदासीन सम्प्रदाय जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का रूप है शरीर है आत्मा है प्राण है विम्ब है प्रति विम्ब है, उनका बढ़ाया हुआ अमर वृक्ष संसार को मनवांछित फल प्रदाता है, भगवान् श्रीचंन्द्र जी साक्षात् शङ्कर जी के अवतार शिवरूप, भक्त रक्षक सदा विरक्त रहने वाले हिन्दूकौम को बढ़ा के नित्य धर्म जो सनातन धर्म है उसके संस्थापक हुये हैं ॥९८॥

यत्कीर्तनं सकलपापहरं तुरंतं यद्वन्दनं सकल सौख्यचमेवलोके ।
यात्रापि यंप्रति सुरैरपि पूजनीया तादृङ् महान्भवति श्रीशशिदेव देवः

अर्थ—जिसके नाम का कीर्तन करने से सकल पाप तुरन्त ही नाश हो जाते हैं जिसके वन्दन करने से सर्व प्रकार के सुखऐश्वर्य इस लोक में अनायास प्राप्त हो जाते हैं, जिनकी यात्रा भी देवतों से पूजनीय है, ऐसे प्रवल प्रतापी देवों के देव श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य हुये हैं ॥९९॥

तस्योपदेशो जगतोहिताय समस्त देशे भ्रमणोपदेशे ।
चरित्र सर्वं प्रवदामि भूयः सनकादि योगी बड़भाग्यशाली ॥१००

अर्थ—जिनका उपदेश जगत् के हितवाला था उन्होंने समस्त देशों में भ्रमण करके अपना उपदेश रूपी चक्र चलाया है, हे सनकादि मुनिओं उनका समस्त चरित्र मैंने आप लोगों के समक्ष संक्षिप्त में सुनाया है आप बड़े भाग्य शाली हैं ॥१००॥

मनसा कर्मणावाचा ये स्मरन्ति च सद्गुरुम् ।
पुत्र पौत्र धनं लब्ध्वा अन्ते मोक्षञ्च सद्गतिम् ॥१०१॥

अर्थ—मन कर्म वाणी से जो श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का ध्यान करते हैं वह पुत्र पौत्र धन को प्राप्त कर अन्त में मोक्ष रूपी सद्गति को प्राप्त करते हैं ॥१०१॥

श्रीचन्द्रेति सदा ध्यानं श्रीचन्द्रेति सदा जपः ।
श्रीचन्द्रेति सदानाम कीर्तनं निसिवासरम् ॥१०२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी का सदा ध्यान जप नाम कीर्तन रात्रि दिन करने वाले के ॥१०२॥

श्रीचन्द्रदेव विभवे जगरक्षताय तापत्रयोपशमनाय भवौषधाय ।
दानाय पुण्याय फलाय ददाति सौख्यं क्लेश व्ययाय हरये गुरुवे नमस्ते

अर्थ—श्री गुरुदेव श्रीचन्द्र जी के आशीर्वाद से समस्त विभवों की रक्षा होती है, उसके तीनों ताप शमन होते हैं, भव (संसार) रूपी रोग के खण्डन करने को औषध है, दान

पुण्य सौख्य के देने वाले एवं क्लेश नाशक जो श्री गुरु महाराज हैं उनको मेरी बारम्बार नमस्कार है ॥१०३॥

स्रष्टा स्वयंभूर्भुवनत्रयस्य त्राता महेशो हरते जनार्तिम्।
श्रीचन्द्रदेवो गुरुधर्ममूर्तिस्तस्मैनमः शङ्कर रूप धात्रे ॥१०४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जो सत्, चेतन, आनन्द घन, विज्ञानानन्द मय पूर्ण अज अविनाशी, भूत भविष्य वर्तमान सुख दुःख में एक रस, अनादि सृष्टि उत्पन्न पालन लय करता, परमोद्धार धर्मोंपदेष्टा शिवजी का अवतार शिवस्वरूप थे। जो अजन्मा होकर भी हिन्दू कौम के उद्धार के लिये जन्म धारण करते भये, वह अपनी सत्ता से सर्वदा सर्वत्र एक रस विद्यमान रहने वाले हैं, हम सबके अंग संग सदा रक्षक हैं उनको हमारी बारम्बार नमस्कार है ॥१०४॥

नोट—पूज्य पाद प्रात स्मरणीय शिवावतार हिन्दू धर्म रक्षक महा प्रभु, आचार्य प्रवर, दीन दयाल, अशरण शरण, भक्त भय हारी, उदासीनाचार्य श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का थोड़ा सा चरित्र (उपदेश) लिखकर पाठकों के लाभार्थ उपस्थित किया गया है। आपके उपदेश तथा जीवन घटना गुरु श्रीचन्द्र भाष्य, गुरु श्रीचन्द्र सूत्र, गुरु श्री चन्द्रोपनिषद्, गुरु श्रीचन्द्र पुराण, गुरु श्रीचन्द्राख्यान, गुरु श्रीचन्द्र दिग्विजय, गुरु श्रीचन्द्र की मात्रा हिन्दू धर्म व्यवस्था गुरु उदासीन मत दर्पण, श्रौत मुनि चरितामृत, उदासीन मञ्जरी गुरु श्रीचन्द्रप्रकाश, संदेह-सागर, गुरु श्रीचन्द्र जीवनी, जगतगुरु कासतोपदेश, प्राचीन मुनियों का पुरुषार्थ आदि आदि अनेक ग्रन्थ में लिखा मिलता है ॥

इति श्री साधु बेलातीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्तिसक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी वनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे ममून होते चम्बा में शिला तैराय एवं श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रभगवान् सशरीर अन्तर्धान प्रसङ्ग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी चतुश्चत्वा रिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगवा॥४४॥

॥ पञ्च चत्वारिन्शत्तमा किरण प्रारम्भः ॥

आद्यस्य शंकर गुरोरपरावतार माचार्यवर्य गवनेरमिति प्रभावं।
उदासीन वेषं समोचित भक्त रक्षा श्रीचन्द्रदेव मुनियं नतपादपद्म।१।

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् आदि देव महादेव का अवतार, गुरुओं के गुरु, आचार्यप्रवर, अमितप्रभावशाली उदासीन वेषधारी अपने भक्तरक्षा करने में समर्थ, समयोचित उपदेश देने वाले थे, ऐसे श्री गुरुदेव जो मुनियों के मुनि महामुनि हैं उनके पावन पाद पद्मों में मेरा वारम्बार प्रणाम है ॥१॥

चित्रितं चन्द्रदेवस्य चरित्रं स्वल्प तन्मया ।
तस्य शिष्य प्रशिष्याणां श्रूयतामुच्यतेऽघना ॥२॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का चरित्र आप लोगों के समक्ष थोड़ा सा रखा गया, अब उनके शिष्य (चेले) प्रशिष्य (परचेलों) का हाल थोड़ा सा सुनिये, जिसके सुनने से समस्त पाप नाश हो जाते हैं ॥२॥

श्रीचन्द्रदेवो भगवान् शशांको जगद्गुरुर्वैदिकधर्म चित्तः ।
हिन्दूपकृत्यैभ्रमणप्रवाहैः शिष्यं प्रसिद्धं गुरुभक्त संख्यम् ॥३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र देव जो साक्षात् भगवान् शङ्कर का अवतार थे, जिन्होंने वैदिक जो हिन्दू सनातन धर्म है उसके रक्षार्थ देश विदेश में भ्रमण कर अन्त में अपने सब शिष्य (चेले) जो भक्ति पूर्वक गुरु सेवा करने में प्रसिद्ध हैं उन्हें भी यही ॥३॥

आज्ञापयश्चाख्ससमाधिनिष्ठः शिष्यस्तदाज्ञावशकर्मकर्ता ।
एतच्चरित्रं परमं च पूर्वं प्रोक्तुं त्विदानी क्रमवंशवृत्तिः ॥४॥

अर्थ—आज्ञा दे आप असार संसार से कैलाश लोक में चले गये उनके पश्चात् उनके शिष्य (चेला) वर्ग उसी आज्ञानुसार कार्य करते रहे यह सब चरित्र मैं पूर्व आपलोगों को क्रमवद्ध श्रवण करा आया हूँ ॥४॥

चत्वारो गुरुदित्तस्य शिष्याधर्म धुरन्धराः ।
अलमस्तो वालु हासा गोविंद साहबस्तथा ॥५॥
फूलसाहब नामा च मुनियो धार्मिका भुवि ।
उदासीन प्रसिद्धैश्च शिष्यैरेभिः सुरक्षणम् ॥६॥

अर्थ—श्री महन्त गुरु दित्ता जी के चार चेले (अलमस्त जी, वालूहसना जी, गोविन्द साहब, फूल साहब) जो यह उदासीन सम्प्रदाय में चार धूने के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिन से हिन्दू जाति की रक्षा का प्रचार सुचारु रूप से हुआ है, अब इनका जीवन चरित्र संक्षिप्त रूप से थोड़ा २ सुनाना अच्छा समझता हूँ। बाद में छः बकशीश तथा उपबकशीश और उदासीन भेष के पूज्य अखाड़े तथा उदासीन पण्डितों की नामावली भी सुनाऊँगा, जिसके पढ़ने और सुनने से हिन्दू लोगों का सर्व प्रकार से भ्रम निवारण होलोकपरलोकसुखरेगा ॥५॥६॥

॥ श्री गुरु अलमस्त जी उदासीन ॥

काश्मीर श्री नगर्याम गौड़ ब्राह्मण सद्गृहे ।
आविर्वभूव भगवान लमस्तु जितेन्द्रियः ॥७॥

अर्थ—श्री अलमस्त जी का जन्म काश्मीर प्रान्त श्री नगर शहर में गौड़ ब्राह्मण के घर में हुआ ॥७॥

खे चन्द्र रस चन्द्रेश्च सम्मिते वैक्रमे शुभे ।
कार्तिके कृष्ण पक्षे च वाणतिथ्यां वुधे तथा ॥८॥

अर्थ—वि० सं० १६१० कार्तिक कृष्ण ५ बुद्धवार इनके जन्म का दिन था ॥८॥

माता प्रभावती देवी पिता च हरदत्तकः ।
श्याम कौलो जन्म नाम वेद ज्ञाता महामतिः ॥६॥

अर्थ—माता का नाम प्रभावती तथा पिता का नाम पं० हरदत्त जी था, आपका जन्म नाम श्याम कौल था, आप समस्त वेदोंके ज्ञाता बड़े बुद्धिमान कट्टर सनातन धर्मी पक्के हिन्दूधर्म रक्षक थे। किन्तु मुसलमानी अत्याचारों से बहुत घबड़ा कर मन ही मन परमात्मा से मनाया करते थे कि कोई इस समय इस घोर संकट से हिन्दू जाति के बचाने की सहायता करै, परमात्मा सदा दुखियों की पुकार सुनता आया है तभी उसका नाम भक्तवत्सल, दीनबंधु, अशरण शरण गरीब निवाजादिक है, जिस समय पं० श्याम कौल जी इस प्रकार की चिन्ता में चिन्तित हृदय हो रहे थे ठीक उसी समय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् काश्मीर में दूसरी वार पधारे और अपनी चमित्कारी शक्ति से वहाँ के अत्याचारों का समन कर दिया यह अद्वतीय प्रभाव आपका देख पं० श्यामकौल जी का मन भ्रमर श्रीगुरु देव, जी के पाद पद्मों में रम गया ॥९॥

चन्द्रराम रसैश्चन्द्रे स्सम्मिते वैक्रमे शुभे ।
जेष्ठ कृष्ण प्रतिपदि श्रीचन्द्र समुपागमत् ॥१०॥

अर्थ—पं० श्यामकौल जी पंजाब आय वि० सं० १६३१ जेष्ठ कृष्ण १ से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास चरण सेवा में रहते हुये वेदान्त, छन्द, न्याय, मीमांसा, योगादिक का अध्ययन किया करते थे ॥१०॥

अङ्कराम रसैश्चन्द्रे मिते चैत्रे च शुक्ल के ।
पूर्णिमायां कीर्तिपुरे ह्युदासीनेन संस्कृतः ॥११॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की आज्ञा से श्रीगुरु गुरुदित्ता जी ने पं० श्यामकौल जी को जिनका नाम श्री गुरु श्रीन्चद्र भगवान् ने कमलिया रख छोड़ा था उन्हें वि० सं० १६६३ चैत्र शुक्ल १५ को कीर्तिपुर में उदासीन भेष मर्य्यादानुसार अपना चेला बनाय नाम अलमस्त जी रखा ॥११॥

गुरुणा गुरुदित्तेन धार्मिकेण महात्मना ।
सिद्धेन योगिराजेन धीमता परमार्थिना ॥१२॥

अर्थ—श्री गुरु गुरुदित्ता दीन दुनी का टिक्का जी ने श्री अलमस्त जी को समयोचित सुन्दर उपदेश दिया जो बड़े धार्मिक सिद्ध योगीराज धीर परमार्थी महात्मा हुये हैं ॥१२॥

नानक मतं स्थानमति प्रसिद्धं हिन्दुत्व रक्षा परिचालकञ्च ।
महन्त नामा गुरुदेवकस्य जग्राह धीरो ह्यलमस्त नामः ॥१३॥

अर्थ—श्री गुरुदित्ता जी ने अपने चेले श्री अलमस्त जी को वि० सं० १६६३ दिवाली के दिन नानकमते का महन्त बनाय हिन्दूधर्म रक्षा करते रहने की शिक्षा दे वहाँ भेज दिया इसका कारण यह था कि उस समय नानकमते का उदासीनाश्रम खाली पड़ा था ॥१३॥

नोट—नानकमते की कथा इस प्रकार है । पूर्व काल में इस स्थान पर मतङ्ग मुनि उदासीन महात्मा बैठ के तपस्या करते हुये यहाँ रहा करते थे, इस कर लोगों ने इस स्थल का नाम मतङ्गाश्रम रख दिया था, जो पीछे से मत्तानाम से कहा जाता रहा (मतङ्ग मुनि उदासीन का नाम गुरु प्रणाली में आता है देखो पृष्ठ १०७ में । कुछ काल पीछे इस स्थान पर श्री गोरखनाथ ने अपना नाम जोड़ के मत्ता से गोरख मता रख दिया । एक समय श्री गुरु नानक भेषोदासीन से और श्री गोरखनाथ जी से आपस में ज्ञान गोष्ठी हुई जिसका उचित उत्तर मिलने कर नाथ मण्डली आपस में प्रणाम करके चली गई, तब से लोगों ने यहाँ का नाम नानकमता प्रसिद्ध कर दिया, यह प्रसङ्ग विस्तार से बाले वाली जन्म साखी, नानक प्रकाश, गुरु उदासीन मतदर्पण, और हिन्दू धर्म व्यवस्था में आता है । श्री गुरुनानकदेव जी उदासीन के चले जाने तथा इस स्थान पर अपना कोई उदासीन साधुन छोड़ जाने के कारण यह जगह पुनः उजाड़ (निर्जन) हो गई तथा मेले में और नाथों ने यहाँ आय पुनः इसका नाम नानकमता हटाय गोरख मता प्रसिद्ध कर दिया; कारण उस समय इस इलाके में गोरखनाथ जी की सिक्खो सेवकी बहुत थी, उस समय तक श्री गुरुनानक देवजी का प्रभाव लोगोंपर अधिक नहीं पड़ा था । श्रीमान् पूज्यपाद श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जब यात्रा करते हुये यहाँ आये उस समय लोग महाराज की दिव्य मनोहर मूर्ति देख मन हरण हित कर बचन सुन सिद्धि देख चरणों में प्रणाम कर बैठ अनेक प्रकार की पूजा भेट चढ़ाने लगे । इस प्रकार लोगों को महाराज के पास आते देख नाथों ने

आपस में सलाह कर सद्गुरु जी को यहाँ से उठाने निमित्त अपनी सिद्धि के बल से ऐसी प्रवल आँधी उत्पन्न कर दिया कि हाथ पसारे न दृष्टि आता था, समस्त मेले के प्राणी व्याकुल हो उठे, जिस वट वृक्ष के नीचे महाराज श्रीचन्द्र जी बैठे थे वह भी उखड़के गिरने लगा, लोगों ने महाराज से घवड़ा के कहा कि ऐसी विकट आँधी तो हमने कभी नहीं देखी, यह विशाल वृक्ष गिर के हमारे और आपके प्राण लेने ही चाहता है, अब आप कृपा करके इस बलाय से हम सब की रक्षा कीजिये। यह उन लोगों के वेदना भरे दीन बचन सुन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी मन ही मन नाथों की लीला जान मन्द२ मुस्क्याते बोले आप सब लोग अपनी २ आँखेंबन्द करलें। आँख खोलते ही सब अपने २ स्थलों में बैठे पाते भये यह देख सब आश्चर्य में भर गये आँधी का कहीं नाम तक नथा, यह प्रताप देख नाथों ने आयके महाराज श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी से अपनी भूल वक्शाते परस्पर प्रेम भरे वार्तालाप कर चले जाते भये।

तब लोगों ने महाराज के बैठे हुये स्थान पर एक आश्रम बनवाया और उसमें श्री ११०८ जगद्गुरु श्री चन्द्र भगवान् की चरण पादुका रख के नित्य दर्शन पूजन करने लगे और वह उदासीन स्थान नानकमता के नाम से पुनः प्रसिद्ध हुआ। कुछ काल के पीछे श्री गुरुदित्ता जीने अपने चेले श्री अलमस्त जी उदासीन को जो बड़े ऋद्धि सिद्धि के भण्डार थे उनको वि० सं० १६६४ दिवाली के मेले पर भेज दिया उन्होंने वहाँ जाय के अनेक करामात दिखाय अपना स्थान फिर से बसाते भये साथ ही नित्य।

वर्णाश्रमाणांपरिवर्धकञ्च कृपा वसात्धर्म कथा निमग्नः।
गया समीपे शुभ वृक्ष एको ह्यस्वत्थनामातितराम्प्रशुष्कः ॥१४॥

अर्थ—अपने हिन्दू धर्म की वर्द्धक कथा भी किया करते थे यहाँ गद्दी के समीप एक पीपल का बड़ा वृक्ष था जो बहुत दिनों से सूखा पड़ा था ॥१०॥

दृष्ट्वा जनानां हृदये च दुःखं सञ्जायते सत्य तरा व्यवस्था।
जगद्गुरोः पूजनशेष चन्दनेनाऽभिषिच्यापि विशिष्ट वृक्षम् ॥१५॥
सार्द्र चकाराखिल धर्मवेत्ता धर्मानुरागी ह्यलमस्त रामः।
श्रुत्वा च दृष्ट्वा विमलां च सिद्धिम् जनाश्च सर्वे सुखिनो वभूवुः ॥१६॥

अर्थ—लोगों के हृदय का खेद विचार के (लोगों के हृदय में खेद होने का कारण यह था कि इस पीपल के नीचे श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् बैठ के लोगों को उपदेश दिया करते थे तब पीपल का वृक्ष हरा था पीछे से कुछ काल के बाद कारण वसात् सूख गया यह देख श्री गुरुदेव के बैठने का स्थल विचार लोगों के हृदय में दुःख हो रहा था) इसको नाथों ने

भी हरा करना चाहा था, किन्तु न भया इसी को श्री महन्त अलमस्त जो उदासीन ने पूज्य पाद ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का नाम ले गुरु श्रीचन्द्र जी का चढ़ा हुआ चन्दन छिड़क दिया जो तुरन्त ही हरा हो गया यह देख सब प्रसन्न हो गये। इस पीपल में आजतक जो पत्ता निकलता है उसमें चन्दन की छींटें लगी रहती हैं, यह उदासीनों की करामात का प्रत्यक्ष प्रमाण आज तक उपस्थित है। गुरु विलास छै पातशाही अ० ६ में लिखा है कि इस स्थान में श्री हरिगोबिन्द जी आकर अलमस्त जी को बैठा गये और यह पीपल भी हरा कर गये सो यह लिखना सिक्खों की भूल है, जिसको आज कल के सिक्ख अखबार भी मान रहे हैं कि सिक्ख इतिहास* गलत हैं। इस पीपल का हरा करना समस्त उदासीन भेष में श्री अलमस्त जी का ही माना जाता है और वहाँ के राजा ने १२ ग्राम श्री अलमस्त जी उदासीन के नाम से लगा दिये जो आज तक उदासीन भेष की मिल्कियत में चले आ रहे हैं ।१५-१६।

अलंमस्तं प्रतिष्ठाप्य महान्यं तत्र भूपतिः ।
आदिशद् द्वादश ग्रामान्सत्कर्तुमतिथीन्सदा ॥१७॥
अलंमस्तस्य शाखैका नानकस्यमतेऽभवत् ।
उदासीनस्त दीयाच प्रचन्ति समन्ततः ॥१८॥
शून्यशून्यर्षि चन्द्रश्च सज्जिते वैक्रमे शुभे ।
जेष्ठ शुक्ल हरेस्तिथ्यां सत्य लोकं गतो गुरुः ॥१९॥

अर्थ—श्री अलमस्त जी यहीं निवास करते हुये वि० सं० १७०० जेष्ठ सुदी ११ को देवलोक पधारे। आपके बाद आपके चेले मखूचन्द जी महन्त हुये इनके शिष्य प्रशिष्य (चेले पर चेले) वंश परम्परानुसार आजतक नानकमते में उदासीन महन्त होते चले आरहे हैं और आगे भी होते चलेंगे इस स्थान पर हक्क उदासीन भेष का ही है। यदि कोई अपनी गलती से उदासीनों के

*देखो खालसों का मुख्य अखबार "प्रेम प्रचारक" हैद्राबाद सिन्धु ८ अक्टूबर सन् १६२७ के हेडिंग "सिक्ख इतिहास गलत हैं। तथा "हम हिन्दू नहीं" और 'भगवती प्रवोध, नामक ट्रेक्ट में जो खालसा पंथ के मुख्य लीडर कान्ह सिंह तथा पञ्च खालसा दिवान अर्थात् खालसा पार्लिमेन्ट ने बना के अमृत सर में छपवा के प्रकाशित कराया है इन दोनों ट्रेक्टों में सिक्खों ने अपने इतिहास झूठे ही सावित किये हैं।

†श्री महन्त अलमस्त जी के चेले बाबा गरीबदास जी हुये हैं जिनकी परम्परा से श्रीमान् ध्यान दास जी उदासीन हुये हैं जिन्हों ने आके मुलतान शहर कनक मण्डी में अपना स्थान बनाया, जिनके वर्तमान महन्त श्रीमान् यमुना दास जी उदासीन हैं।

हाथ से अधिकार छीनेगा तो न्यायप्रिय राजा को चाहिये जिसकी चीज़ हो उसी को दिलावे न अन्य को ॥१७। १८। १६॥

॥ श्री गुरुदास जी दक्षिणी उदासीन ॥

मखूचन्द महन्ताश्च तस्य शिष्यश्च धार्मिकान् ।
मीठा राम भवेत्साधु तद्गुरुदास दक्षिणी ॥२०॥

अर्थ—श्री मखूचन्द जी के चेले श्री मीठाराम जी उदासीन बड़े सिद्ध करामाती विद्वान् महात्मा हुये हैं आपकी अनेक करामात प्रसिद्ध हैं। श्री मीठा राम जी के चेले श्री गुरुदास जी दक्षिणी हुये हैं ॥२०॥

रस शून्यर्षि चन्द्रैश्च सम्मिते माघ कृष्णके ।
चतुर्थ्यां हैदराबादे दक्षिणस्यां महाजनः ॥२१॥

अर्थ—आप का जन्म वि० सं० १७०६ माघ वदी ४ को हैदराबाद दक्षिण श्रेष्ठ गृह में हुआ आप का जन्म नाम श्रीरंगानम् था ॥२१॥

तैलङ्ग ब्राह्मण गृहे जन्मे श्रीगुरुदासकः ।
दीक्षायोग्य सुकालेतु सर्व कर्म सुसंस्कृते ॥२२॥

अअर्थ—तैलङ्ग ब्राह्मण के घर श्रीगुरु दास जी जन्मे थे तभी दक्षिणी करके पुकारे जाते थे मुण्डन जनेऊ आदि सर्व दीक्षा से संस्कृत हो विद्याध्यन करते भये ॥२२॥

शून्य युग्मर्षि चन्द्रेश्च सम्मिते श्रावणे शुभे ।
वाणतिथ्यां शुभेस्थाने मीठा राम प्रपूजितः ॥२३॥

अर्थ—कुछ दिन पीछे तीर्थ यात्रा करते हुये जब नानक मता आये और यहाँ पर श्री महन्त मीठा राम जी से समागम हुआ तब आपका मन मान गया पीछे वि० सं० १७२० श्रावण सुदी ५ को श्री महन्त मीठा राम जी ने अपना चेला बनाय नाम गुरु दास रखा ॥२३॥

उदासीन वेषदीक्षां धारयामास धार्मिकः ।
वेद वेदाङ्ग शास्त्राणि पठित्वा यत्न पूर्वकम् ॥२४॥

अर्थ—उदासीन भेष की दीक्षा के साथ २ धार्मिक शिक्षा वेद वेदाङ्गषड्शास्त्रों की दे पूर्ण विद्वान् पण्डित बना दिया ॥२४॥

बाण युग्मर्षि चन्द्रे च भाद्रे कृष्णे विधौ तिथौ।
नानक मत मठा धीशः गुरो राज्ञा वशाद् भूत् ॥२५॥

अर्थ—वि० सं० १७२५ भाद्र वदी १ को श्री महन्त मीठा राम जी उदासीन ने अपने चेले गुरु दास जी उदासीन को अपने स्थान नानकमते की गद्दी दे महन्त बनादिया, श्री महन्त गुरु दास जी उदासीन ने अपने श्री गुरु देव की आज्ञानुसार ॥२५॥

गुरुदासेन वहवः ग्रन्था विरचिताः शुभाः।
औदास मात्रा मात्रन्तु लभ्यते साम्प्रतं परम् ॥२६॥

अर्थ—श्री गुरुदास जी ने हिन्दू धर्म प्रचारार्थ बहुत से ग्रन्थ निर्माण किये उनमें "उदासीन मात्रा" संसार प्रसिद्ध है ॥२६॥

सनातनस्य धर्मस्य प्रचारोऽति महान् कृतः।
तद्वरादेव हकीकत् रायो लेभे जन्म भुवि ॥२७॥

अर्थ—आपने समस्त भारतवर्ष का भ्रमण कर अपने हिन्दू धर्म का अच्छा प्रचार किया आप के ही प्रबल प्रताप के वरदान से हकीकत राय का जन्म संसार में हुआ ॥२७॥

हिन्दूधर्म प्रचारेण हकीकत् राय जन्मनः।
बभूव भक्तो धीमाश्च हिन्दूरक्षण तत्परः ॥२८॥

जहौ प्राणां कदाचित्सः हिन्दू रक्षाऽभिवृद्धये।
एतेन सदृशः केचित् नैवास्ति धरणी तले ॥२९॥

अर्थ—आपके ही आशीर्वाद के प्रताप से हिन्दू धर्म प्रेमी हकीकत राय का जन्म हुआ था, जिसने अपने परम प्यारे प्राणों की आहुति अत्याचारियों की प्रचण्ड अग्नि में दे दी किन्तु अपना प्यारा हिन्दू धर्म न छोड़ा ॥२८॥२९॥

यश्च धर्मैक निरतः धर्म वीरो महा मतिः।
अभिमन्युरिवा क्षोभ्यः धीरो राम इवात्मवान् ॥३०॥

अर्थ—जिसकी धर्म वीरता महाबुद्धिमत्ता अभिमन्यु के समान न क्षोभ खाने वाली थी और आत्मा भगवान् श्री राम के समान धैर्य सम्पन्न थी ॥३०॥

शिखा सूत्रादि रक्षार्थं म्लेच्छ कोपानले सुखम्।
प्राणाञ्जुहाव कीर्तिं च कौमुदीमिव चातनोत् ॥३१॥

अर्थ—शिखा सूत्र के रक्षार्थ अपने सर्व सुख प्राणों के सहित म्लेच्छ (मुसलमान) के कोप रूपी अग्नि में दग्ध कर दिया प्राण चले गये परन्तु कीर्ति रूपी कौमुदी आज तक संसार में प्रकाश कर रही है ॥३१॥

नोट—धर्म वीर हकीकत राय की कथा इस प्रकार आती है।

॥ हिन्दू वीर हकीकतराय ॥

एक समय श्री गुरु दास जी दक्षिणी उदासीन महात्मा अपनी मण्डली समेत प्रचार करते पञ्जाब शियाल कोट में आके ग्राम के बाहर ठहरे हुये थे, आपकी कथा और व्याख्यान का सुयश चौतर्फ छा रहा था, साथ ही आपकी ऋद्धि सिद्धि का चमत्कार भी फैल गया था, इसका कारण यह था कि यहाँ एक वैश्य का इक लौता पुत्र मृत्यु के मुख में चला गया था, घर में रुदन कोहराम मच रहा था संयोग से श्री महन्त गुरु दास जी अपनी मण्डली समेत कहीं उसी के पड़ोस में भोजन पाने को गये थे, श्री महाराज ने पुत्र मरने का समस्त हाल तथा उसके माता पिता की समस्त करुणा कहानी सुन के दया सागर के चित्त में दया की तरङ्ग प्रवाहित हो उठी, झट से बोल उठे कि बचा मरा नहीं है हमारे पास उठा लावो बचा जी उठा फिर क्या था रुदन के स्थान पर आनन्द की बधाई बजने लगी।

यह खबर कहीं लाला बाघ मल खत्री को भी लगी उन्होंने अपनी धर्म पत्नी कौशल से जिकर किया, उसको पुत्र की इच्छा थी (कारण अभी तक इनके सन्तान न हुई थी) इस लिये दम्पति श्री गुरुदास जी के पास आय बहुत प्रार्थना करते बोले कि आप कृपा कर के आशीर्वाद देव जिससे मेरे गृह में पुत्र रत्न का प्रकाश हो, आप सर्व कला समर्थ हैं, महाराज इन दोनोंकी प्रार्थना सुन कुछ आश्चर्य भरे बचन बोले कि पुत्र तो तुम्हारे श्री ११०८ जगद्गुरुश्रीचन्द्र भगवान् के आशीर्वाद से ऐसा वीर बहादुर होगा जो हिन्दू धर्म की रक्षा में अपने परम प्यारे प्राणों की बाजी लगा देगा। किन्तु इतनी बात अवश्य है धर्मात्मा वीरों की सब जगह आवश्यकता रहा करती है, इसलिये वह एक जगह थोड़े ही काल निवास किया करते हैं। सज्जनों महात्मा जी के यह गूढ़ बचन तो दम्पति समझ न सके परन्तु पुत्र होने का आशीर्वाद मिलने से अत्यन्त प्रसन्न हो अपने घर आते भये। कुछ काल के पीछे वि० सं० १७६० माघ सुदी ११ को बाघमल के घर पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ इसी हिन्दू वीर हकीकतराय ने अपनी जान हिन्दू धर्म के रक्षार्थ न्यौछावर कर दिया। यद्यपि आज हकीकत राय प्रत्यक्ष में हमारे सामने नहीं है किन्तु हमारे ही क्या हिन्दू मात्र के बच्चे २ के हृदय में विराजमान है हकीकत राय का जीवन चरित्र इनकी जीवनी से प्रसिद्ध है।

॥ निर्वाण श्री कृपाल दास जी उदासीन ॥

गुरुदास गुरु भ्राता नन्दो नत्था तथैवच ।
उदासीनो मुनि प्राज्ञो धर्म कर्म विशारदो ॥३२॥

अर्थ—निर्वाण श्री कृपालदास जी उदासीन श्री गुरुदास जी दक्षिणी के गुरु भाई थे तथा श्री बाबा नन्द जी, बाबा नत्था साहब जी भी गुरु भाई थे यह उदासीन महात्मा बड़े प्राज्ञ (बुद्धिमान) धर्म कर्म विशारद थे ॥३२॥

कृपाल दासश्च महन्त नामा महात्मवर्य्यो महनीयकीर्ति ।
गोविन्द सिंहस्य सहायताञ्च चकार युद्धे समुपस्थितश्च ।३३।

अर्थ—श्री महन्त कृपाल दास जी बड़ीकीर्ति वाले महात्मा थे उन्होंने श्री गोविन्दसिंह जी को युद्ध समय जब खालसे श्री गोविन्द सिंह जी को युद्ध में अकेला छोड़ के भाग गये थे ऐसे विकटावस्था में सहायता दिया ॥३३॥

नागै रुदासीन पद प्रवाच्यै श्री वाण सातैः परि प्रहितश्च ।
महायशस्वी च तदा वभूव गोविन्द सिंहेन सुपूजितश्च ।३४।

अर्थ—आपने ५०० नागे उदासीन साधुओं समेत आकर सहायता की थी जिसका उपकार श्री गोविंद सिंह जी समस्त आयु नहीं भूले देखो अपने रचित दशम ग्रन्थ साहब में कितनी उपमा की है ॥३४॥

"कृपाल कोपियं कुतको सँभारी हठीखान हैय्यात के शीशझारी"

कृपालदासो विमलप्रभावः सत्कर्म सेवी च दृढ़ प्रतिज्ञ ।
अनाथ नाथ प्रभुतायुतश्च सहायका नाथ सहाय कोपि ॥३५॥

अर्थ—श्री महन्त कृपाल दास जी उदासीन बड़े विमल प्रभाव सतकर्म सेवी दृढ़ प्रतिज्ञ अनाथ नाथ प्रभुतायुक्त असहाय के सहायक बड़े वीर थे, धन्य है उदासीन महात्मा। आपका स्थान हेहर (हरीपुर) जिला फ़िरोजपुर में है वहाँ आपकी कुतक अभी तक रखी है ॥३५॥

ऋषि वाणर्षि चन्द्रैश्च सम्मिते श्रावणे शुभे ।
वाण तिथ्यां कृपालुश्च देवलोक मुपागमत् ॥३६॥

अर्थ—आप का देवलोक यहीं वि० सं० १७५७ श्रावण सुदी ५ को हुआ आप वीर भद्र जी का अवतार थे ॥३६॥

ढाकाख्य नगरे रम्ये वङ्ग प्रान्ते समुन्नते ।
नत्था साहबुदासीनः धर्मशाला प्रसिद्धमान् ॥३७॥

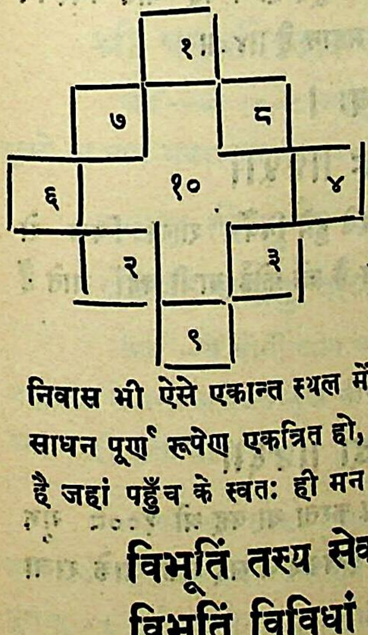
अर्थ—श्रीमान् नत्था साहब जी उदासीन महात्मा हिन्दूधर्म का प्रचार करते हुये जाके बङ्गाल प्रान्त ढाका नगर में अपना स्थान बनाया जो अभी तक नत्था साहब की धर्मशाला के नाम के प्रसिद्ध है ॥३७॥

॥ श्री गुरु बनखण्डी जी उदासीन ॥

बनखण्डीतिनाम्नैव विख्यातौ भूवि मण्डले।
झारी मोरङ्ग नाम्नैव ह्युदासीनोऽकरोत्तपः ॥३८॥

अर्थ—श्री गुरु बनखण्डी जी पृथ्वी मण्डल में विख्यात थे यह श्रीमान् नत्था साहब जी के शिष्य (चेले) थे नैपाल राज्य तिरहुत प्रान्त मोरङ्ग की झाड़ी में बैठकर तपस्या करते थे ॥३८॥

तपस्वि देव तपसा धूनाऽग्नि प्रवलस्सदा ।
अहिर्निशं चचलते तत्र नास्ति सहायकः ॥३९॥



अर्थ—यहाँ पर आपका धूना अखण्ड रात्रि दिन प्रज्वलित रहा करता है, और लकड़ी आपसे आप अग्निके तरफ खसकती जाती है, यह आश्चर्य करामात (चमत्कार) यात्रियों को वहाँपर आजभी प्रत्यक्ष देखने में आता है, यह ऐसे तपस्वियों के लिये कोई बड़ी बात नहीं है जिन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और मत्सर को दमन कर लिया है अर्थात इन षट विकारों को जलाके उसकी भस्म शरीर पर धारण किया है, तथा उसको निवास भी ऐसे एकान्त स्थल में करना पड़ता है जहां पर इन षट् विकारों के जलाने का साधन पूर्ण रूपेण एकत्रित हो, आज भी यह धूनी साहब वाली जगह ऐसे ही एकान्त स्थल में है जहां पहुँच के स्वतः ही मन स्थिर हो जाता है ॥३९॥

विभूतिं तस्य सेवन्ते ये जनाः श्रद्धयान्विताः ।
विभूतिं विविधां लब्ध्वा ते यान्ति परमां गतिम् ॥४०॥

अर्थ—उस धूनी की विभूति को जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक सेवन करते हैं उनको विविध प्रकार के धन प्राप्त हो अन्त में परम गति मिलती है ॥४०॥

अपुत्रा लभते पुत्रं निर्धनो धनमाप्नुयात् ।
आरोग्यं लभते रोगी मूढो बुद्धिमवाप्नुयात् ॥४१॥
अविद्यो लभते विद्या मनाजीवश्च जीविकाम् ।
अप्रतिष्ठः प्रतिष्ठाञ्च कुरूपो रूपमाप्नुयात् ॥४२॥
अस्त्रीकः स्त्रियमाप्नोति मनोज्ञां शील शालिनीम् ।
कन्या सर्व गुणोपेतं प्रियं वरमवाप्नुयात् ॥४३॥

अर्थ—अपुत्र को पुत्र मिले, निर्धन को धन, रोगी को आरोग्यता, मूढ़ पुरुष को बुद्धि, मूर्ख को विद्या, बे रोजगार वाले को रोजगार, अप्रतिष्ठित की प्रतिष्ठा, कुरूप को सुन्दर रूप, विना स्त्री वाले को आज्ञा कारिणी सुशील स्त्री, कन्या को सर्व गुण सम्पन्नवर की प्राप्ति होती है ऐसा उस धूने की विभूति का प्रत्यक्ष फल है ॥४१-४२-४३॥

यद्यत्कामयते लोकः तत्तदाप्नोति निश्चितम् ।
बनखण्ड्याग्नि कुण्डस्य विभूते र्महिमा महान् ॥४४॥

अर्थ—जो २ कामना मनुष्य करेगा वह २ उसका काम पूर्ण होगा यह बात निश्चय है श्री बनखण्डी देव जी के अग्नि कुण्ड की विभूति की महिमा महान् है ॥४४॥

यत्र सिंहादयो वन्याः विचरन्ति हि जन्तवः ।
बनखण्डि प्रभावेण, निर्वैराः शान्त चेतसः ॥४५॥

अर्थ—जिस धूने के ऊपर सिंह आय करके प्रणाम करते हुये निर्वैर शान्त चित्त से घूमते हैं यह १००८ सद्गुरु श्री बनखण्डी जी का प्रत्यक्ष प्रभाव है जो कोई यात्री वहाँ जाते हैं यह करामात नित्य देखते हैं ॥४५॥

तत्पार्श्ववर्त्ति गोस्वामी परसंताप कारकः ।
राज्ञः समीपं गत्वा तु जुगुप्साञ्चक्र के मुदा ॥४६॥

अर्थ—यहां से थोड़ी दूर पर एक गोशाईं महात्मा रहा करता था वह श्री १००८ गुरु बनखण्डी जी उदासीन महात्मा की विमल कीर्ति और तपस्या को देखकर न सह सका जाके राजा को अनेक प्रकार से चुगली करता भया ॥४६॥

शुश्राव वाक्यं न च राजवीरः श्री साधु सेवी प्रबल प्रतापः ।
सेव्यश्च साधुर्वहुधात्वमेव दण्ड्यश्च गोस्वामिपदाभिधेय ॥४७॥

अर्थ—किन्तु पेश एक न गई राजा ने गोशाईं को समझाया कि किसी की निन्दा न करनी चाहिए साधु की सेवा करनी, वह पूर्ण योगी राज हैं उनका कुछ नहीं बिगड़ता निन्दा करने वाला नरक में जाके दण्ड भोगता है ॥४७॥

आगत्य राजावनखण्डिदेवं वहूपचारैः परिपूज्य तत्र।
जातः स्वयं सेवक नाम धारी धन्यो महात्मा वनखण्डिदेवः ।४८।

अर्थ—ऐसा कह राजा श्री गुरु बनखण्डी देव जी के पास अपने सेवकों समेत आय बहुत प्रकार से पूजा कर गुरु मन्त्र ले सेवक बन १२ गाँव भेट चढ़ाता भया बोला हे श्री गुरु बनखण्डि देव जी आप धन्य हैं धन्य हैं ॥४८॥

अन्नसत्रं महीपालः स्थापयामास यात्रिणाम्।
अक्षुण्णधारया तत्र चलत्यद्यापि तत्तथा ॥४६॥

अर्थ—महाराज ने प्रसन्न हो उस द्रव्य को सदावर्त के काम में लगा दिया जो आज तक चल रहा है जो भी यात्री वहाँ जाता है वह हर समय भोजन के लिए अन्न (सीधा) पाता है। यह क्षेत्र उसी राजा के समय का श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डि साहब जी उदासीन की आज्ञा से लगाया आज तक चला आ रहा है ॥४६॥

जवराभवरानाम्ना प्रसिद्धौ सिद्धि मार्गिणौ।
श्री बनखण्डिदासस्य शिष्यौ भव्यौ वभूवतुः ॥५०॥

अर्थ—श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी देव जी के दो चेले थे एक का नाम जवरारामक्ष दूसरे का नाम भवराराम था ॥५०॥

एकदा तौ शुचौ मासि त्वाम्रचोषण लालसौ।
प्रकटी चक्रतु र्वाञ्छां सलज्जं गुरुसन्निधौ ॥५१॥

अर्थ—ये दोनों आम खाने की इच्छा कर एक समय अपने सद्गुरु बनखण्डि महाराज के पास लज्जित मुख नीचा किये अपनी इच्छा प्रकट करते भये कारण उस स्थल में आम नहीं होता था ॥५१॥

क्षवि० सं० १७६० फाल्गुण वदी १४ (शिवरात्रि) को पहिले जवरा राम पीछे भवरा राम दोनों साथ चेले बने। जवराराम का देव लोक वि० सं० १८२५ जेष्ठ सुदी ११ को हुआ, आपकी पूर्णायु ४५ वर्ष की थी। भवराराम का देवलोक वि० सं० १८२८ मघर सुदी ७ को हुआ आपकी पूर्णायु ५० वर्ष की थी।

बनखण्डी महासिद्धः शाल वृक्षेषु तत्क्षणम् ।
सरसानि रसालानां फलान्याविश्चकार सः ॥५२॥

अर्थ—सद्गुरु बनखण्डी देव महासिद्ध प्रसन्न हो वहीं पर तत्क्षण शाल के वृक्षों में आम तुरत भक्षण करने वाले अपनी शक्ति से लगे दिखलाये ॥५२॥

आलोक्य विस्मयं यातौ तौ शिष्यौ प्रतिमानसौ ।
फलानि तानि चा स्वाद्य कृत कृत्यौ वभूवतुः ॥५३॥

अर्थ—यह देख दोनों शिष्य (चेले) विस्मय तथा प्रसन्न हो गुरु जी को नमस्कार करते उनफलों को खाते भये जो बड़े स्वादिष्ट थे और अपने को कृत कृत्य मानते भये ॥५३॥

अन्यो वृक्षः फलश्चान्य दरयानी भयावहा ।
अद्याप्यालोक्यते लोकैः विस्मयान्वितमानसैः ॥५४॥

अर्थ—आज तक उन शाल के वृक्षों में आम के फल लगते चले आते हैं जिसे यात्री लोग वहाँ जाय के देख के विस्मित हो जाते हैं ॥५४॥

त्रिषु स्थानेषु योगीशस्तपो तप्त यथा यथा ।
प्रत्यहन्तान्प्रवक्ष्यामि श्रृणु शिष्य समाहितः ॥५५॥

अर्थ—अब जिस प्रकार तीन स्थानों में श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी महाराज प्रति दिन तपस्या किया करते थे सो तेरे को बतलाता हूँ तूँ इसे श्रवण कर ॥५५॥

तकिया साहिबाख्यन्तु प्रथम स्थान मीरतम् ।
धूनी साहिब विख्यातं द्वितीयं स्थानमद्भुतम् ॥५६॥

अर्थ—प्रथम पहिला स्थान का नाम तकिया साहब और द्वितीय दूसरे स्थान का नाम धूनी साहब है ॥५६॥

भेडियामठ विख्यातं स्थानमस्ति तृतीयकम् ।
त्रिस्थानेषु यथा चासीत् प्रत्यहन्तां स्थितं श्रृणु ॥५७॥

अर्थ—और जो तृतीय स्थान था उसका नाम भेड़िया मठ था इन तीनों स्थान में जिस तरह प्रति दिन श्री १००८ महाराज सद्गुरु बनखण्डी जी की स्थिति होती थी सो आगे मैं कथन करता हूँ तुम श्रवण करो ॥५७॥

आचतुर्वादनादूर्ध्वं भेडियामठ नामनि ।
वसुवादन पर्य्यन्तं तपोऽतप्तयतीश्वरः॥५८॥

अर्थ—प्रातः काल ४ बजे से लेकर आठ बजे तक भेड़िया मठ में श्री १००८ सद्गुरु वनखण्डी महाराज तपस्या करते थे ॥५८॥

अष्टवादन तश्चोर्ध्वं यावच्च सप्त वादनम् ।
धूनी साहिबआख्ये च तपोऽतप्त यतीश्वरः ॥५६॥

अर्थ—आठ बजे के बाद ७ बजे शाम तक धूनी साहिब में महाराज श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी तपस्या करते थे ॥५६॥

सप्तवादन तश्चोर्ध्वनक्तं यावन्त्रि वादनम् ।
तकिआ साहिबाख्ये च तपोऽतप्तैवमात्मवित् ॥६०॥

अर्थ—फिर ७बजे के बाद रात्रि के तीन बजे तक तकिया साहब में सद्गुरु बनखण्डी महाराज जी तपस्या करते थे, तीन बजे के बाद ४ बजे के मध्य १ घण्टे में अपनी शौचादिक क्रिया करते थे यह फलित कथन है ॥६०॥

एषां त्रयाणां स्थानं नां न्यूनञ्च योजनद्वयात् ।
अन्तरं नच कस्यापि स्थानस्य खलु विद्यते ॥६१॥

अर्थ—इन तीनों पूर्वोक्त (भेड़ियामठ, धूनी साहब, तकिया साहब) स्थानों में १३-१३ मील का अन्तर सबस्थानों से सब स्थान में है ॥६१॥

योगप्रभावद्योगीशः प्रत्यहं निल मत्रयम् ।
गत्वातयोऽद्भुतश्चक्रे यथो दृष्ट मया तथा ॥६२॥

अर्थ—परन्तु योग बल से तीनों स्थान में प्रत्येक समय महाराज श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी महाराज जी तपस्या करते हुये निवास करते थे, इससे महाराज जी में कितनी सामर्थ्य थी वह अपने मन ही से अनुमान कर लेना चाहिये ॥६२॥

शून्य युग्मर्षिचन्द्रैश्च भाद्र कृष्ण सुदिक् तिथौ ।
पाञ्चाल शुभदेशस्य पटियाला पुरं गतः ॥६३॥
सारस्वतो विप्रवर्यो बनखण्डी शुभनाम्नः ।
जन्म जातं देव तुल्यं प्रवदन्ति मणीषिणः ॥६४॥

अर्थ—श्री बनखण्डी जी का जन्म वि० सं० १७२० भाद्र वदी १० को रियासत पटियाला में सारस्वत ब्राह्मण के घर हुआ था ॥६३॥६४॥

अंकचन्द्रनागचन्द्रे राश्विने दृक् तिथौ तथा ।
मोरम् झाढ्यां देवलोक यात्रा तस्य वभूवतः ॥६५॥

अर्थ—वि०सं० १८१९ आश्विन वदी १० को नैपाल रियासत मोरम की झाड़ी में आपका देव लोक हुआ आप स्वामि कार्तिक के अवतार थे ॥६५॥

॥ श्री गुरु वालूहसना जी उदासीन ॥

सचालमस्तो जगतिप्रसिद्धः नाम्ना सदाचार परायणश्च ।
भ्राता तदीयः प्रबलानुरागी वालूहसन्नाम पवित्र कीर्ति ॥६६॥

अर्थ—श्री वालू हसना जी श्री महन्त अलमस्त जी के जन्म के छोटे भाई जगत्प्रसिद्ध सदाचार परायण विख्यात महात्मा थे ॥६६॥

चन्द्रैर्युगैश्चापि रसैश्च चन्द्रैः श्रीमार्गशीर्षे हि सुदिक् तिथौच ।
काश्मीर देशे शुभ जन्मलेभे चूड़ामणिर्जन्म सुनाम धेयम् ॥६७॥

अर्थ—आपका जन्म वि० सं० १६२१ मार्ग शीर्ष शुक्ल १० को काश्मीर प्रान्त श्री नगर में हुआ, जन्म नाम चूड़ामणि जी था जब से आपके बड़े भ्राता गृह छोड़ के चले गये थे तब से आप का मन भी गृह कार्यों में न लग उद्विग्न सा रहा करता था जब आपके तीन पुत्र हो गये तथा गृह कार्यों की संभाल करने लगे तब ।.६७॥

शून्यैश्च वाणै रसचन्द्र युक्तैर्युक्ते च पाञ्चाल शुभे प्रदेशे ।
समागमच्छ्री गुरु देव देवं सेवाभिलाषी शुभ भक्तिशाली ॥६८॥

अर्थ—वि० सं० १६५० में श्री चूड़ामणि जी पञ्जाब आय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की सेवा में रह बड़े प्रेम से सेवा करने लगे साथ ही ब्रह्म विद्या का अभ्यास भी करने लगे ॥६८॥

ब्रह्मविद्या समीचीन श्रीचन्द्र चरणौ मुदा ।
शिशेवे फुल्ल वदनः बालचन्द्र इवाद्भुतः ॥६९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास श्री चूड़ामणि आनन्द पूर्वक रहते हुये प्रेम से सेवा करते ब्रह्म विद्या का पूर्ण अभ्यास करते रहे, श्री चूड़ामणि जी का प्रसन्न वदन (मुख) बालचन्द्र के सदृश्य खिला रहता देख ॥६९॥

निश्शङ्कः शोक रहितः चिक्रीड बालवत्सदा ।
ततः श्रीचन्द्र भगवान् बालहासं बभाषतम् ॥७०॥

अर्थ—सदा निश्शंक शोकरहित बालकों के सदृश्य क्रीड़ा करते रहने कर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् चूड़ामणि का नाम बालहास (बालूहसना) कर बुलाते थे ॥७०॥

चम्बायात्रां करिष्यंच श्रीचन्द्रः सद्भिरर्चितः ।
दीक्षयितुं वालहासं गुरुदित्तं समन्वशात् ॥७१॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जब चम्बे जाने लगे तब अपने चेले श्री गुरु दित्ता जी को बालहास को चेला बनाने की आज्ञा देते गये थे ॥७१॥

रामाङ्क रासैश्च तथैवचन्द्रै र्मितेशुचौ पूर्णकला सुतिथ्याम् ।
बभूव शिष्यो गुरुदित्त नाम्नो महात्मनो योग धुरन्धरस्य ॥७२॥

अर्थ—वि० सं० १६६३ आषाढ़ सुदी १५ (गुरु पूजा) के दिन श्री गुरु दित्ता जी ने अपना चेला बनाय उदासीन भेष दे नाम बालूहसना रखा आप जप तप योग में पूर्ण धुरंधर अद्वितीय भजनीक महात्मा थे ॥७२॥

वेदाङ्क रसचन्द्रैश्च सम्मिते चैत्र शुक्लके ।
रामजन्म नवम्याहि गुरुदित्तस्स्वयं प्रभुः ॥७३॥
डेरानानक गद्याश्च महन्त पदवीं ददौ ।
वालहासाय शिष्याय धर्ममार्गानुशारिणे ॥७४॥

अर्थ—वि० सं० १६९४ चैत्र सुदी ९ को श्री गुरु गुरु दित्ता जी ने अपने द्वितीय नम्बर के शिष्य श्री वालू हसना जी को डेरा बाबा नानक की अपनी गद्दी का महन्त बना के आप कीर्तिपुर चले आये ॥७३॥७४॥

वालूहसंदेव महन्तनामा गद्दीं स्वकीयां विमलां समर्प्य ।
श्रीलालदासाय सुवेषिताय स्वमण्डलीभिस्सहितो महात्मा ॥७५॥

अर्थ—कुछ दिन पश्चात् याने वि० सं० १६९८ कार्तिक सुदी १५ को श्री वालूहसना जी अपने चेले लाल दास को अपने स्थान का महन्त बनाय आप पंजाब में हिन्दू धर्म का प्रचार करने को उदासीन साधुओं की जमात साथ ले निकल पड़े ॥७५॥

उदासीन तत्वं स्वकीय प्रचारै र्विचारैः सदाचार शिष्यप्रकारैः ।
प्रसार्य्याखिलेशो महाधर्ममूर्तिर्यशोलब्धवान् देवलोके स्वलोके ।७६।

अर्थ—उदासीन तत्वों का अपने प्रचार द्वारा विचार तथा सदाचार से अपने शिष्य (चेलों) समेत बढ़ाते हुये तभी संसार के मालिक महाधर्म मूर्ति यशस्वी यहाँ से लेकर देव लोक तक बने ॥७६॥

हिन्दूपरक्षां नितरां प्रकुर्वन् संतोषयन्दीन जनान्नितान्तम् ।
श्री देहरादूनपदे विचित्रे समाजगामापि महा प्रतापी ॥७७॥

अर्थ—हिन्दुओं की रक्षा नित्य करते थे तथा गरीब अनाथ हिन्दू भाईयों को अन्न वस्त्र विद्या से तृप्त (संतुष्ट) करते धीरे २ आप हरिद्वार होते देहरादून आके विराजते भये ॥७७॥

ऋषिचन्द्रर्षिचन्द्रेच मार्गशीर्षे रवौ दिने ।
एकादश्यां शुक्लपक्षे स्व स्वरूपाश्च लीनयः ॥७८॥

अर्थ—वि० सं० १७१७ मार्ग शुक्ल ११ रविवार को यहीं पर आप अपने स्वस्वरूप में लीन हो गये (अर्थात् शरीर छोड़ते भये) ॥७८॥

जहौ स्वां लौकिकीं यात्रां सनकादे न्यलीनयः ।
समाधिस्तस्य तत्रैव पूज्यतेऽद्यापि पूरुषैः ॥७९॥

अर्थ—जहाँ पर श्री वालू हसना जी उदासीन ने सनकादिकों में लीन हो शरीर छोड़ा था समाधि भी वहीं बनी जिसकी अब तक पूजा होती है ॥७९॥

उदासीना महन्तश्च जायन्ते तत्र धार्मिकाः ।
यत्र धर्म कथा नित्या धर्म विज्ञै विधीयते ॥८०॥

अर्थ—उस समाधि वाले स्थान के उदासीन महात्मा महन्त हैं जहाँ पर नित्य हिंदू धर्म कार्य, धर्म की कथा, धर्म के ज्ञाता, धर्म को बढ़ाते रहते हैं ॥८०॥

॥ श्रीगुरु गोविन्ददेवजी उदासीन ॥

रसवाहु रसेन्दौ च वैक्रमे ह्याश्विनेऽसिते ।
पञ्चम्यां रविवारे च काश्मीर श्री पुरे शुभे ॥८१॥

अर्थ—श्री गुरु गोविन्द देव जी उदासीन का जन्म वि० सं० १६२६ आश्विन वदी ५ रविवार के दिन काश्मीर प्रांत श्री नगर में हुआ ॥८१॥

जयदेवात्सुभद्रायां जज्ञे गोविन्द साहबा ।
प्रतापके धने धन्ये क्षत्राणां विमले कुले ॥८२॥

अर्थ—इनके पिता श्री जयदेव जो माता श्री मती सुभद्रा देवी थीं, वीरक्षत्रिय वंश में थे धन धान्य से भर पूर प्रतापी विमल कुल मे उत्पन्न हुये थे ॥८२॥

जन्म नाम तु तस्या भूत्सहदेव इति श्रुतम् ।
पुत्रे विन्यस्य गार्हस्थ्यं स्वयं सन्यस्तवान् कृती ॥८३॥

अर्थ—जन्म नाम सहदेव सिंह था आपके हृदय में भी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की करामात देख कर तथा उदासीन भेष का महत्व सुन इसे धारण करने की अत्यन्त लालसा लहलहायउठी थी, परन्तु घर का प्रवन्ध करने वाला कोई न था, यह सोच मन मार के रह गए, कुछ काल के बीतने पर जब घर के सम्भालने योग्य सन्तान होगई तब हाथ से छूटे तीर के सदृश्य तुरन्त वहाँ से चल ॥८३॥

बाण बाण रसेन्दौ च फाल्गुने शुक्ल पूर्णिमा ।
श्रीचन्द्र देव शरणे सहदेवः समागतः ॥८४॥

अर्थ—वि० सं० १६५५ फाल्गुन सुदी १५ को श्री सहदेव सिंह जी अशरण शरण भक्त प्रतिपालक अधम उद्धारण शिवावतार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के शरण आय सेवा में रहने लगे ॥८४॥

सेवमानश्च तं तत्र न्यवसत्सुचिरं सुखी ।
एकदा जलमानेतुं कूपं प्रति जगाम सः ॥८६॥

अर्थ—वहाँ रहके सेवा करते बड़े आनन्द से समय बिताने लगे एक दिन प्रातः ४बजे सहदेव सिंह श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रभगवान् के स्नानार्थ जल से गागर भर के आ रहे थे ॥८५॥

भित्तिपातमृतं मार्गे बालकं ससहायनम् ।
जीवयन्तञ्च श्रीचन्द्रं दृष्ट्वा तत्रैव तस्थिवान् ॥८६॥

अर्थ—वर्षा होने से मार्ग में एक मकान की दीवार गिर पड़ी थी जिसके नीचे मकान मालिक का बालक दब के मर गया था, जिसकी आयु ६-७ वर्ष की होगी, श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् वहां पर उस मृत बालक को निकलवा रहे थे यह देख सहदेव भी वहीं खड़ा हो गया, बच्चे की देह में जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का आशीर्वादी हाथ लगते ही जीवित हो तुरन्त उठ बैठा, यह देख सब घर वाले धन्य सद्गुरु श्रीचन्द्र जी धन्य सद्गुरु श्रीचन्द्र उच्चारण करने लगे ॥८६॥

विलम्बमाने तस्मिंश्च शिष्योऽन्यः समुपागतः ।
तमाकारयितुं सद्यः श्रीचन्द्रेणैव नोदितः ॥८७॥

अर्थ—सहदेव को जब पानी लाने में देर हुई विचार उधर से दूसरा सेवक सहदेव को बुलाने आता है ॥८७॥

तत्र चन्द्रं पुनर्दृष्ट्वा विस्मयान्वित मानसः ।
सहदेवं स सम्बोध्य समबोचत्कुतूहली ॥८८॥

अर्थ—तो वह भी यह घटना देख के तथा घटना स्थल में जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी को खड़े देख के मन में हैरान होता हुआ सहदेव से कहता है कि मैं तो महाराज जी को आसन पर ही बैठे छोड़ के आया हूँ यहाँ पर महाराज कैसे पहुँच गये ॥८८॥

गुरुणाप्रेषितोऽस्म्येष भद्रं चिरयति त्वयि ।
कथमत्र स भगवान् मत्तः पूर्वं समागतः ॥८९॥
स चोवाच चिरादेश मयात्रैव विलोकितः ।
मठे गत्वा च तौ भूयः व्यलोकेतां तथास्थितम् ॥९०॥

अर्थ—तब सहदेव कहता है कि मैं तो बड़ी देर से यहीं इसलिये खड़ा हो गया कि जब महाराज जी चलेंगे तब साथ ही चलूंगा, यह सुन नवीन आगन्तुक और भी आश्चर्य में पड़ बोला भाई तुम क्या कहते हो मैं तो महाराज को आसन पर ही छोड़ के आया हूँ, न मानो तो वहाँ के लोगों से पूछलेना, सहदेव कहता है जब प्रत्यक्ष हो महाराज यहाँ खड़े हैं तब पूछने की क्या आवश्यकता है। महाराज जी इन दोनों का कथनोपकथन सुन बोले चलो तुम आसन पर हम पीछे से आते हैं। यह दोनों आके देखते हैं तो महाराज आसन पर ही विराजमान हैं, पूछने पर विदित हुआ महाराज आसन पर से उठे ही नहीं। सहदेव के जल लाने में बिलम्ब हुआ विचार तुम्हारे को सहदेव को बुलाने वास्ते भेजा था, तब उन्होंने मार्ग की बीती हुई सब घटना सुनाई, यह सुन के सब आश्चर्य में आर महाराज की लीला समझ चरणों में प्रणाम करते भये, भगवान् श्रीचन्द्र जी ने स्नान किया ॥८९॥९०॥

एवं श्रीचन्द्रदेवस्य नवान्येव दिने दिने ।
विचित्राणि चरित्राणि समभूवन्मनस्विनः ॥९१॥

अर्थ—इस प्रकार, से अनेक नये से नये विचित्र चरित्र श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज के नित्य हुआ करते थे ॥९१॥

रामाङ्क रसचन्द्रे च नवम्यां चैत्र शुक्ल के ।
गुरुदित्तो गुरोर्वाक्यात्सहदेवमदीक्षयत् ॥६२॥
गोविन्ददास नाम्ना च शिष्यं तं समभूषयत् ।
कीर्तिपुर मठेभूयः महन्तं कृतवान् स्वयम् ॥६३॥
तस्मैदत्ताः सर्व विद्याः स रहस्या विधानतः ।
अङ्गन्यासः करन्यासः हृदयन्यास एव च ॥६४॥
अन्ये मन्त्राश्च तन्त्राणि यन्त्राण्यपिच सर्वशः ।
गुरु प्रणाली गायत्री सर्वं तस्मै स दत्तवान् ॥६५॥

अर्थ—वि० सं० १६६३ चैत्र सुदी ९ को श्री गुरुदित्ता जी से सहदेवसिंह ने उदासीन भेष धारण किया तब से आपका नाम गोविन्द साहब प्रसिद्ध हुआ। आपको कीर्तिपुर के स्थान का महन्त बनाय श्री गुरुदित्ता जी ने अपने हिन्दू धर्म रक्षा करने का उपदेश दे मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र का भेद बताय अङ्ग न्यास, हृदयन्यास, करन्यास, गुरु प्रणाली, गुरु गायत्री, का सविधि पाठ बताया ॥६२-६३-९४-६५॥

॥ अथ अङ्ग न्यासः ॥

स्नान कर आसन में बैठ पूर्वाभिमुख हो आचमन करके जपे "ॐ अस्यश्री द्वादशाक्षर (ॐ सद्गुरु श्रीचन्द्र देवाय नमः) महा मन्त्रस्य नारद मुनि ऋषी, श्रीमन् नारायणो देवता श्री गुरु गायत्री छन्दः, सोऽहम् बीजम् अनाहद शक्तिः सत्येति हृदयम् मौनं कीलकम् पञ्च तत्वम तत्वम्, अन्तरात्मा परब्रह्म प्रत्यर्थे जपे विनियोगः ॐ मस्तके सोऽहम् बीजाय नमः ॐ शिरशि सनकादिक मुनियो नमः, ॐ नेत्रयो नारद मुनियो नमः, ॐ मुखये कपिल मुनिये नमः, ॐ कर्णौ विश्वामित्र मुनिये नमः, ॐ हृदये प्रणवेनमः, ॐ उदरे दुर्वासा मुनिये नमः, ॐ पादयौ विष्णु कीलकायेनमः, इति अङ्ग न्यासः ।

॥ अथ हृदयादि न्यासः ॥

ॐ गु हृदयाय नमः, ॐ रु शिरसे स्वाहा, ॐ श्री शिखायवषट्, ॐ चं कौचायहुँ, ॐ द्र नेत्राय वषट्, ॐ अस्त्राय फट्, इति हृदयादि न्यासः

॥ अथ कर न्यासः ॥

ॐ सत्यरूपः अङ्गुष्ठाभ्यांनमः, ॐ गुतर्जनीभ्यांनमः ॐ रु मध्यमा भ्यांनमः, ॐ श्री अनामिका भ्यांनमः, ॐ च कनिष्टकाभ्यां नमः, ॐ न्द्र करतल कर पृष्ठा भ्यांनमः, श्री गुरु श्रीचन्द्र प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

विलम्बमाने तस्मिंश्च शिष्योऽन्यः समुपागतः ।
तमाकारयितुं सद्यः श्रीचन्द्रेणैव नोदितः ॥८७॥

अर्थ—सहदेव को जब पानी लाने में देर हुई विचार उधर से दूसरा सेवक सहदेव को बुलाने आता है ॥८७॥

तत्र चन्द्रं पुनर्दृष्ट्वा विस्मयान्वित मानसः ।
सहदेवं स सम्बोध्य समबोचत्कुतूहली ॥८८॥

अर्थ—तो वह भी यह घटना देख के तथा घटना स्थल में जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी को खड़े देख के मन में हैरान होता हुआ सहदेव से कहता है कि मैं तो महाराज जी को आसन पर ही बैठे छोड़ के आया हूँ यहाँ पर महाराज कैसे पहुँच गये ॥८८॥

गुरुणाप्रेषितोऽस्म्येव भद्रं चिरयति त्वयि ।
कथमत्र स भगवान् मत्तः पूर्वं समागतः ॥८९॥
स चोवाच चिरादेश मयात्रैव विलोकितः ।
मठे गत्वा च तौ भूयः व्यलोकेतां तथास्थितम् ॥९०॥

अर्थ—तब सहदेव कहता है कि मैं तो बड़ी देर से यहीं इसलिये खड़ा हो गया कि जब महाराज जी चलेंगे तब साथ हो चलूंगा, यह सुन नवीन आगन्तुक और भी आश्चर्य में पड़ बोला भाई तुम क्या कहते हो मैं ता महाराज को आसन पर ही छोड़ के आया हूँ, न मानो तो वहाँ के लोगों से पूछलेना, सहदेव कहता है जब प्रत्यक्ष हो महाराज यहाँ खड़े हैं तब पूछने की क्या आवश्यकता है। महाराज जी इन दोनों का कथनोपकथन सुन बोले चलो तुम आसन पर हम पीछे से आते हैं। यह दोनों आके देखते हैं तो महाराज आसन पर ही विराजमान हैं, पूछने पर विदित हुआ महाराज आसन पर से उठे ही नहीं। सहदेव के जल लाने में बिलम्ब हुआ विचार तुम्हारे को सहदेव को बुलाने वास्ते भेजा था, तब उन्होंने मार्ग की बीती हुई सब घटना सुनाई, यह सुन के सब आश्चर्य में आ महाराज की लीला समझ चरणों में प्रणाम करते भये, भगवान् श्रीचन्द्र जी ने स्नान किया ॥८९॥९०॥

एवं श्रीचन्द्रदेवस्य नवान्येव दिने दिने ।
विचित्राणि चरित्राणि समभूवन्मनस्विनः ॥९१॥

अर्थ—इस प्रकार, से अनेक नये से नये विचित्र चरित्र श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज के नित्य हुआ करते थे ॥९१॥

रामाङ्करसचन्द्रे च नवम्यां चैत्र शुक्ल के ।
गुरुदित्तो गुरोर्वाक्यात्सहदेवमदीक्षयत् ॥६२॥
गोविन्ददास नाम्ना च शिष्यं तं समभूषयत् ।
कीर्तिपुर मठेभूयः महन्तं कृतवान् स्वयम् ॥६३॥
तस्मैदत्ताः सर्व विद्याः स रहस्या विधानतः ।
अङ्गन्यासः करन्यासः हृदयन्यास एव च ॥६४॥
अन्ये मन्त्राश्च तन्त्राणि यन्त्राण्यपिच सर्वशः ।
गुरु प्रणाली गायत्री सर्वं तस्मै स दत्तवान् ॥६५॥

अर्थ—वि० सं० १६६३ चैत्र सुदी ६ को श्री गुरुदित्ता जी से सहदेवसिंह ने उदासीन भेष धारण किया तब से आपका नाम गोविन्द साहब प्रसिद्ध हुआ। आपको कीर्तिपुर के स्थान का महन्त बनाय श्री गुरुदित्ता जी ने अपने हिन्दू धर्म रक्षा करने का उपदेश दे मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र का भेद बताय अङ्ग न्यास, हृदयन्यास, करन्यास, गुरु प्रणाली, गुरु गायत्री, का सविधि पाठ बताया ॥६२-६३-९४-६५॥

॥ अथ अङ्ग न्यासः ॥

स्नान कर आसन में बैठ पूर्वाभिमुख हो आचमन करके जपे "ॐ अस्यश्री द्वादशाक्षर (ॐ सद्गुरु श्रीचन्द्र देवाय नमः) महा मन्त्रस्य नारद मुनि ऋषी, श्रीमन् नारायणो देवता श्री गुरु गायत्री छन्दः, सोऽहम् बीजम् अनाहद शक्तिः सत्येति हृदयम् मौनं कीलकम् पञ्च तत्वम तत्वम्, अन्तरात्मा परब्रह्म प्रप्त्यर्थे जपे विनियोगः ॐ मस्तके सोऽहम् बीजाय नमः ॐ शिरशि सनकादिक मुनियो नमः, ॐ नेत्रयो नारद मुनियो नमः, ॐ मुखये कपिल मुनिये नमः, ॐ कर्णौ विश्वामित्र मुनिये नमः, ॐ हृदये प्रणवेनमः, ॐ उदरे दुर्वासा मुनिये नमः, ॐ पादयौ विष्णु कीलकायेनमः, इति अङ्ग न्यासः ।

॥ अथ हृदयादि न्यासः ॥

ॐ गु हृदयाय नमः, ॐ रु शिरसे स्वाहा, ॐ श्री शिखायवषट्, ॐ चं कौचायहुँ, ॐ द्र नेत्राय वषट्, ॐ अस्त्राय फट्, इति हृदयादि न्यासः

॥ अथ कर न्यासः ॥

ॐ सत्यरूपः अङ्गुष्ठाभ्यांनमः, ॐ गुतर्जनीभ्यांनमः ॐ रु मध्यमा भ्यांनमः, ॐ श्री अनामिका भ्यांनमः, ॐ च कनिष्टकाभ्यां नमः, ॐ न्द्र करतल कर पृष्ठा भ्यांनमः, श्री गुरु श्रीचन्द्र प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

॥ अथ गुरु गायत्री ॥

"ॐ काराय विद्महे श्री गुरु श्रीचन्द्राय धीमही तन्नो प्रचोदयात्,,

॥ अथ ध्यानम् ॥

सदा शान्तो दान्तो मुदित वदनो मङ्गल वपुः,
समाधिस्थो नित्यं सुरनर मुनीन्द्रोऽखिल प्रभुः ।
अकामो निष्कामो जनगण हितैषी पर तरः,
गुरुः श्री श्रीचन्द्रो नमतु तवचर्णौ मुनिवरः ॥६६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कैसे हैं सर्वदा शान्त प्रसन्न वदन, मङ्गलमय स्वरूप, इन्द्रियजित, समाधि में स्थित, सुरनर मुनिजनों के संरक्षक, अखिल विश्व के आत्मा, सर्व कामनाओं से रहित, निष्काम कर्म करने वाले, अपने भक्तों के परम हितैषी, लोक परलोक के सुख प्रदाता, ऐसे मुनियों में श्रेष्ठ मुनीश्वर श्री गुरु जी के चरण कमलों को मैं नमस्कार करता हुआ ध्यान करता हूँ ॥६६॥

श्रीचन्द्र पादं प्रणमामि नित्यं, निर्वाण मुख्यान् प्रवरान् गुरुञ्च ।
उदासीन वेषं प्रबधाय शक्तिं, रक्षे सदा धर्म मुनि मुनीशः ॥६७॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पावन पाद पद्मों में प्रणाम करता हूँ कैसे श्री गुरू जी हैं निर्वाणों में श्रेष्ठ साधु शिरोमणि उदासीन सम्प्रदाय की शक्ति बढ़ाने वाले सर्वदा हिन्दू धर्म रक्षक मुनियों में श्रेष्ठ महामुनि हैं ॥६७॥

नोट—उपरोक्त बताये विधान से जो इसका जप और पाठ श्रद्धा विश्वास से नियम पूर्वक रोज करेगा उसको धन धान्य पुत्र पौत्रादि सर्व सुख की प्राप्ति हो अन्त में सद्गति होगी। ऐसा कह श्री गुरुदित्ता जी महाराज परमधाम पधार जाते भये ।

गोविन्दोऽपि महासिद्धः श्रुत्वा तेषामिदं वचः ।
ज्ञातभावस्तथा चक्रे येन ते विस्मिता ययुः ॥६८॥
यथा पूर्वं सधर्मात्मा कृत्वा सर्वाः शुभाः क्रियाः ।
विस्तार्य विमलां कीर्तिं प्रतिष्ठाप्य च शिष्यकान् ॥६६॥

अर्थ—श्री गोविन्द साहब जी महासिद्ध प्रेममय दयामय दृढ़कर्मी वेदशास्त्र धर्म के पूर्णज्ञाता और उपदेष्टा थे आपका सतोपदेश प्राणीमात्र को लाभ प्रद था। आपने अपने स्थान कीर्तिपुर में पाठशाला तथा अन्न क्षेत्र खोल रक्खा था आप के अन्नदान और विद्यादान की कीर्ति दूर २ तक प्रसिद्ध हो गई थी इसकर इस ग्राम का नाम कीर्तपुर पड़ा हुआ था ॥६८॥६६॥

एवञ्चकाले चलते कदाचित् समागता साधु सुमण्डली च।
प्रश्नं चकाराखिलदेव पार्श्वे ज्ञानंतथान्नंभगवन्प्रदेयम् ॥१००॥

अर्थ—एक दिन प्रातः काल का समय था मन्द २ शीतल हवा चल रही थी, पक्षिगण अपने नाना प्रकार के कलरव करने में मस्त थे, गोइन्द साहेब जी अपना नित्य नेम करके निवृत ही हुये थे कि इतने में सामने से कुछ साधु महात्मा आते दिखाई दिये, श्री गोइन्द साहब जी ने बड़े आदर सत्कार द्वारा उनका स्वागत किया आपस में प्रेम भरे वार्तालाप (ज्ञान गोष्ट) करने के उपरान्त चलने को तय्यार हुये ही थे, कि इतने में एक साधु जो आये साधुओं का सङ्गी था, बोला भगवन् हम सब लोग आप के पास ज्ञान चर्चा करने तथा भोजन पाने वास्ते यहाँ आये थे कारण आपका नाम अन्न देने में बड़ा प्रसिद्ध है ऐसा हम लोग सुन चुके हैं। सो आप से ज्ञान चर्चा कर आप के शास्त्रोक्त स प्रमाण उत्तरों को सुन हम सब निरुत्तर हो बड़े प्रसन्न हुये, किन्तु अब क्षुधा बहुत सता रही है, सो इसी समय तुरन्त भोजन कराके निवृत्त कीजिये कारण कलियुग में अन्न में ही प्राण रहते हैं, इसीलिये छान्दोग्योपनिषद में अन्न को ब्रह्म रूप जान के उपासना करनी लिखी है, गीता में श्री कृष्ण जी अन्न से ही सृष्टि उत्पन्न होना बताते हैं। इस समय क्षुधा के मारे हम लोग अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, इस लिये हम आप से लज्जा छोड़ के भोजन मांग रहे हैं "क्षुधातुरानां न भयं नलज्जा" और भी कहा है ॥१००॥

आदौरूप विनासिनी कृश करी कामस्य विध्वंसनी,
ज्ञानोच्छेदकरी तपः क्षयकरी धर्मस्य निर्मूलनी।
पुत्र भ्रात्र कलत्र भेदनकरी लज्जाकुलच्छेदनी,
सामांपीड़ित सर्वदोष जननी प्राण प्रहारी क्षुधा॥

अर्थ—इसलिये आप सब बातों को छोड़ प्रथम भोजन कराने का प्रसंग चलाइये।

दत्त्वान्नकूटं विमलोपदिव्यं योगक्रिया तत्व कलाभि मृष्टम्।
सन्तर्पयामासि च साधु वृन्द मातिथ्य धर्मो वहुशक्तिशाली ॥१०१॥

अर्थ—जब इस प्रकार साधुओं ने कहा तब महन्त श्री गोइन्द साहब जी तुरन्त समझ गये, कि यह लोग उदासीन सम्प्रदाय की करामात देखना चाहते हैं, यह विचार बड़े प्रसन्नता से कहा आप पंगत लगा के बैठिये, पूज्यपाद श्री १००८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का भण्डार हर समय तैयार रहता है, इसमें किसी समय कोई भी न्यूनता नहीं आती, अभी आप सब को भोजन मिलता है, यह सुन साधु लोगों ने अपनी सिद्धि का वल दिखाने निमित्त कई सौ की गिनती में पंगत लगा के बैठ गये, यह देख महन्त गोइन्द जी महाराज वहीं खड़े २ ही थाल के थाल

(जिनमें भोजन का समान परोसा हुआ था) मँगा के उनके सामने रखने लगे उन चांदी सोने के थालों में सुरदुर्लभ स्वादिष्ट गर्मागर्म भोजन को देख मन ही मन उदासीन भेष की शक्ति सब प्रकार से अधिक जान साधुलोग बारम्बार प्रणाम करके चले जाते भये ।।१०१।।

रसैश्चशून्यैः ऋषिचन्द्रमानैः स आश्विनेवाण तिथौ च कृष्णे ।
सायुज्यमुक्तिं सम वायधीरो साधु प्रवीरो जनता हितैषी ।१०२।

अर्थ—वि० सं० १७०६ आश्विन वदी ५ को श्री महन्त गोइन्द साहब जी उदासीन महात्मा जो जनता के अत्यन्त हितैषी थे वह सायुज्यमुक्ति प्राप्त करतें भये अर्थात् अपने स्वस्वरूप में मिल गये ।।१०२।।

पाञ्चल देशीय जलंधरीय फिलौर नाम्ना प्रथिते मठे च ।
वेत्ता ह्युदासीन महन्तनामा हिन्दूपकृत्यै च कृत प्रयत्नः ।।१०३।।

अर्थ—पञ्जाव प्रान्त जलन्धर जिला फिलौर ग्राम में परम प्रसिद्ध उदासीन मठ आप का है जहाँ पर हिन्दू उपकार का काम सदैव होता रहता है ।।१०३।।

।। श्री गुरु फूल साहब जी उदासीन ।।

गुरुर्गरीयान्महतो महीयान् श्री पुष्प देवोऽधिक बुद्धिमांश्च ।
शून्यैश्च रामै रस चन्द्र मानै र्मिते च सफाल्गुण कृष्ण पक्षे ।।१०४।।

अर्थ—श्री पुष्पदेव (फूलसाहब) जी बड़े बुद्धिमान गुरु रूप शिष्यों को उत्कृष्ट से उत्कृष्ट ज्ञान बताने वाले थे, आप का जन्म वि० सं० १६३० फाल्गुन कृष्ण ।।१०४।।

श्री नाग तिथ्यामति संप्रशस्ते काश्मीर देशे शुभ जन्म लेभे ।
गोविंद शाहस्य कनिष्ट वन्धुः दीवान चन्द्रेति तदीय नाम ।।१०५।।

अर्थ—५ को श्री नगर काश्मीर प्रदेश में हुआ था आप जन्म के श्री गोइन्द साहब के कनिष्ट (छोटे) भ्राता थे जन्म नाम दीवान चन्द्र था ।।१०५।।

विहाय कार्यं सकलं गृहस्थं स्वभ्रातृवच्छ्री गुरुदेव यामा ।
दत्वा च सेवां शुभ शिष्य वृत्या चकार नाश्चर्य्यमिदं हि किञ्चित् ।।

अर्थ—आप भी जेष्ठ भ्राता के अनुसार गृह के सब काम काजों से उपराम हो गृह-त्याग पञ्जाब में आय श्री ११०८ जगद्गुरु महाप्रभु अधम उधारण श्रीचन्द्र भगवान् की सेवा में वि० सं० १६६१ चैत्र शुक्ल १५ से रहने लगे। आप की उमाति उम

तपश्चर्या के साथ २ विनम्र भाव से श्रद्धा पूर्वक सेवा करते देख श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् प्रसन्न हो अपने चेले गुरुदित्ता जी को आज्ञा दे जाते भये कि इनको अपना चेला बनाकर श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय से सुसज्जित कर देना यह आज्ञा मान श्री गुरुदित्ता जी ने ॥१०६॥

रामाङ्क रासैः शुभचन्द्र मानै मिते च माघे शुभ शुक्ल के च ।
श्री वाणतिथ्याश्च वसन्त काले वभूव शिष्यो गुरु दित्तनाम्नः ॥१०७॥

अर्थ—वि० सं० १६६३ माघ सुदी ५ वसन्त काल में अपना चेला बनाय नाम पुष्पदेव (फूल साहब) रखा ॥१०७॥

वेदाङ्क रासै शुभचन्द्र मानै मिते च सद्विक्रम नामधेय ।
स आश्विने शुक्लतिथौ नवम्यां वहादुराख्यस्य पुरे विचित्रे ॥१०८॥

अर्थ—वि० सं० १६६४ आश्विन सुदी ६ को वहादुर पुर जिला हुसियार पुर के स्थान का आप को महन्त वना के श्री गुरुदित्ता जी ने भेज दिया ॥१०८॥

मठस्य जातो विमलो महन्तो गुरु प्रवीरेण नियोजितश्च ।
कथा प्रचारः सुलभस्तदीयः श्रुत्वा जनास्तृप्ति मवाप्नुवन्ति ॥१०६॥

अर्थ—आप मठ को आदर्श रूप में चलाते हुये विमल बुद्धि गुरु दिक्षा शिक्षा देने में प्रवीण, कथा व्याख्यान में निपुण, कुशाग्र बुद्धि, व्यवहार चतुर-महन्त थे, आप के मीठे सार गर्भित सत्य सरल बचनों के साथ उपदेश श्रवण करके जनता का मन मुग्ध हो आनन्द से भर जाता था, आप की सिद्ध वाणी थी जो मुख से उच्चारण करते थे वही होता था, इसका पता इस घटना से लगता है ॥१०६॥

वने कदाचि च तदीय धेनुः श्री धर्म रूपा चरतीति तत्र ।
आगत्य सिंहोऽपिजिहिंस गाञ्च पश्चाद्गुरोस्त पुरतः कथेयम् ॥११०॥

अर्थ—एक समय आपका आदमी आपकी धेनु (गऊ) जङ्गल में चरारहा था इतने में एक बिकराल जीव हिंसक पञ्चानन आके एक गऊ को मार देता भया यह वार्ता श्री पुष्पदेव जी को दासों ने आकर कही ॥११०॥

गुरुस्तपस्वी यति राज राज उवाच वाक्यं शुभ शिष्य वृन्दे ।
मृतश्चसिहोऽपिच तत्रलभ्यो गत्वा च सर्वैः परिदृश्य ताञ्च ॥१११॥

अर्थ—श्री गुरु फूलसाहब जी तपश्चर्य्या में पूर्ण यतिराज राज सहज ही अपने सेवकों से बोले कि गऊ का घात करने वाला वह शेर भी वहीं मृतक पड़ा होगा आदमियों ने जाकर देखा तो गऊ के समीप वह शेर भी मरा पड़ा है ॥१११॥

वशम्वदास्ते गमनञ्चशीघ्रं कृत्वा च सर्वैर्ददृशुर्विचित्रम् ।
शव द्वयं दृष्टि पथं प्रयाति धन्यो महात्मा कथिता वभूवुः ।११२।

अर्थ—यह देख सब परमाश्चर्यित हो कहने लगे कि महात्मा धन्य हैं जिनके वचन शक्ति से दोनों की लहाश एक ठिकाने पड़ी दृष्टि आ रही है ॥११२॥

वाणाकाश ऋषैश्चन्द्र आषाढ़ पूर्णिमा शुभा ।
गुरु पूजा समारम्भा आगता सेवका जनाः ॥११३॥

अर्थ—वि० सं० १७०५ अषाढ़ सुदी १५ (गुरु पूजा) (यह दिन गुरु पूजा का होता है) वर्ष के आरम्भ में सब से प्रथम अपने २ गुरु की पूजा करने का यह दिन निश्चित है, इससे इस दिन का नाम गुरु पूजा कहा जाता है) को दूर २ से सेवक लोग आय २ के अपने गुरु देव का पूजन कर रहे थे, साथ ही उपदेशामृत का रसा स्वादन लेना भी न भूले थे एक दिन साम को जब कथा हो चुकी तब एक सत्संगी ने हिन्दू धर्म का रहस्य समझाने की प्रार्थना किया ॥११३॥

॥ हिन्दूधर्म रहस्यम् ॥

सर्वेभ्यो वै महानेष हिन्दु धर्मः प्रकीतितः ।
सर्वेभ्यः प्रथमो वृद्धः अत एव सनातनः ॥११४॥

अर्थ—श्री फूलसाहब जी बोले हिन्दू धर्म संसार में सब से बड़ा और श्रेष्ठ धर्म है यह सबसे प्रथम का होने से पुराना (बड़ा) है इसी से इसे सनातन धर्म कहा जाता है ॥११२॥

हिनस्ति दुष्टान् यो ह्यत्त स हिन्दु परिकीर्तितः ।
रक्ष्यते वै स्वयं धर्मो हिन्दु जातेः सुरक्षया ॥११५॥

अर्थ—हिन्दु शब्द श्रेष्ठ संस्कृत शब्द है जैसे कि जो दुष्टों का नाश करता है वह (हिन्+दुः) हिन्दू कहा जाता है हिन्दू जाति की रक्षा करने से हिन्दू धर्म की रक्षा आप से आप होती है ॥११५॥

परेहलोको हि तदैव सिद्धौ देवाश्च देव्यश्च प्रसन्नचित्ताः ।
यज्ञञ्च श्राद्धादिकमेव तावत् यावन्मनुष्योऽत्र भवेद्धि हिन्दुः ।

अर्थ—तभी लोक परलोक दोनों सुधरते हैं देवी देवते श्राद्ध यज्ञादि तभी होंगे जब तक हिन्दु बना रहेगा ॥११६॥

हिन्दुत्वञ्च यदानैव शिष्टं स्याज्जनमानसे ।
देवी देवांश्च विप्रांश्च साधून् वा कोहि मंस्यते ॥११७॥

अर्थ—जब हिन्दुत्वपना मनुष्य के हृदय से निकल जायगा तब देवी देवते ब्राह्मणों और साधु महात्माओं को कौन मानेगा ॥११७॥

सदैव धर्म इहमानसेन सम्बध्यते नैव शरीर मात्रम् ।
स्वधर्म रक्षार्थ मतो हिहिन्दु र्दृढी करोतु निज मानसं वै ॥११८॥

अर्थ—धर्म का सम्बन्ध मनुष्य के हृदय के साथ न होकर अन्तः करण से है इसलिये प्रत्येक हिन्दू को अपने अन्तः करण को हर प्रकार से हिन्दू धर्म रक्षा करने में सुदृढ़ बनाना चाहिये ॥११८॥

कार्येऽत्रनार्यः सफलाभवन्ति सदैव चापीह नृणामपेक्षया ।
यतो हि माता स्व सुते तु कुर्यात् हिन्दुत्व धर्मस्य दृढ़ास्तु भावः ।११६।

अर्थ—इस कार्य में पुरुषों की अपेक्षा मातायें अधिक सफलता प्राप्त कर सकती हैं कारण कि मातायें अपने बच्चों को प्रथम से ही हिन्दू धर्म की भावनायें दृढ़ करा सकती हैं ॥११६॥

श्रद्धालुकः स्याद् यदि हिन्दुधर्मे तदा पुनर्वै स तु सर्वमायुः ।
विभीषितो वा भृश च्यावितोऽपि कदाचिद्धिन्दुत्व मथो न त्यक्ता।१२०।

अर्थ—और यदि वह बच्चा हिन्दूपने (व धर्म) में अच्छी तरह पक्का विश्वासी हो जाय तो वह समस्त आयु किसी के भी बहकाये फुसलाये पर और डराने पर अपना हिन्दू धर्म नहीं त्याग सकता ॥१२०॥

विदुःस्म निज संस्कृति रक्षणस्य महत्वतां सुष्ठु हि नः पुरोजाः ।
आसन्नतोहि जगति प्रसिद्धास्ते हिन्दुवीरा निज जाति शोभाः ॥१२१

अर्थ—हमारे पूर्वज अपनी हिन्दू संस्कृत को सुरक्षित रखने के महत्व को भली प्रकार से जानते थे तभी उनका विश्व में बोल वाला था, और वे जाति को शोभित करते थे ॥१२१॥

हिन्दुत्वभावस्य तथोत्पादिका हिन्द्येव चास्त्यस्मिन्मातृ भाषा ।
ज्ञानं हि भक्ति जप पूजनेच तपः सदाचार सुहृद्यप्रेम्णी ॥१२२॥

देव पूजनादिश्च गुणो हि सर्वस्तदैव वो वै सफलो भवेत्सः ।
हिन्दुत्वमात्रमिहहिन्दुभ्रातुः स्थिरां विधातु यदि तत्पराः स्यात् ॥१२३॥

अर्थ—तथा हिन्दुत्व भाषा की उत्पादक हमारी मातृ भाषा हिन्दी विद्या है ज्ञान, भक्ति, भजन, पूजन, जप, तप, सदाचार, प्रेम, स्वुहृदयता और देव पूजादि सभी तब तुम्हारे सफल होंगे, जब आप लोग अपने हिन्दू भाई को हिन्दू बनाये रखने में कटिबद्ध होकर तत्पर रहेंगे ॥१२२॥१२३॥

निपत्य ये पावन हिन्दुधर्मात् मिथ्या विवेकः सुखमानिनश्चेत् ।
प्रच्यावनाल्लोभ भयादिभ्यश्च कश्चित्त्यजेच्चेदिह हिन्दु धर्मम् ॥१२४॥

अर्थ—जो लोग पवित्र हिन्दू धर्म से पतित होकर अपने को सुखी मानते हैं वह उनकी अत्यन्त भूल है (मिथ्या विवेक है), किसी के बहकाये या लोभ मोह भय से कोई हिन्दू अपने हिन्दू धर्म से पतित हो गया हो अर्थात् हिन्दू धर्म छोड़कर अन्य धर्मी बन गया हो ॥१२४॥

शास्त्राज्ञया सपुनरेव हिन्दु धर्मे मिलाप्यः सहि हिन्दुभ्राता ।
समस्तमेवेह नृणां समाजं नो हिन्दु धर्मः सन्मार्गदर्शकः ॥१२५॥

अर्थ—तो उसे पुनः हिन्दू धर्म में मिलाने की हमारे शास्त्रों में खुली आज्ञा है, हमारा हिंदु धर्म समस्त मानव समाज को सत्पथ पर लगाने वाला है ॥१२५॥

क्षितौ सदा दुर्बल जीव रक्षाऽत्याचारिणे दण्डमथो बलाच्च ।
अखण्डितं वैच्च जरामरञ्च ज्ञात्वा तथाऽऽत्मानमनश्वरंहि ॥१२६॥
कार्यो न मोहोऽत्र विनाशि देहे सुहिन्दुधर्मस्य रहस्यमेतत् ।
तथा प्रणामो न विधेय एव ऋते स्वधर्मं क्वचिदन्यमत्र ॥१२७॥

अर्थ—दुर्बल की रक्षा करना, प्रबल से प्रबल अत्याचारी को दण्ड देना, आत्मा को अजर अमर अविनाशी और अखण्ड समझकर नश्वर शरीर का मोह न करना, हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म के सामने सिर न झुकाना, यह हिंदू धर्म का मुख्य रहस्य है ॥१२६॥१२७॥

राज्यस्य यश्चेह वशं हि गत्वा यश्चाप्यथो रूप्यक लोभतोवा ।
यदि त्यजेत्स्नेहमिहात्मधर्मं न हिन्दुरस्त्येष क्वचिद्धि हिन्दुः ॥१२८॥

अर्थ—वह हिन्दू हिन्दू नहीं जो कुछ चाँदी के टुकड़ों के लोभ में या हुकूमत के वशीभूत होके अपने हिन्दू भाइयों के सङ्ग प्यार करना छोड़ बैठता है ॥१२८॥

रक्षेत्सदा निर्धन हिन्दु बन्धु दैंयाच्चदानं निज हिन्दु भ्रात्रे ।
स्वहिन्दुदेवालयमत्र त्यक्त्वा गच्छेन्न चाऽन्यत्र कचिद्धि हिन्दुः ॥१२९॥

अर्थ—हिन्दू हिन्दू गरीब की सब प्रकार से रक्षा करे हिन्दू हिन्दू को दान दे अपने हिन्दू देव स्थान को छोड़ कर अन्यत्र कहीं न जाये ॥१२९॥

यज्ञोपवीतञ्च शिखाञ्च साधुं गाञ्चापि तिलकं स्वधनं च सन्तम् ।
रक्षेत्सदा हीदृश हिन्दु धर्मं गायन्ति वेदा हि स शास्त्रका वै ॥१३०॥

अर्थ—हिन्दू अपनी चोटी, जनेऊ, तिलक, देवस्थान, साधु, सन्त गौ गरीब की रक्षा करे ऐसे हिन्दू धर्म की वेद शास्त्र सब उपमा गाते हैं ॥१३०॥

गुरुर्हि वैतेगबहादुरोऽसौ स्वहिन्दु धर्मस्य हि रक्षणाय ।
तत्याज प्राणान् स हि धर्मवीरोह्यन्ये तथैतांश्च समर्पयन्वै ॥१३१॥

अर्थ—सन्त उदासीन श्री तेगबहादुर जी ने अपने हिन्दू धर्म की रक्षार्थ प्राणों को दें दिया तथा औरों ने भी अपने प्राण समर्पित किये । १३१॥

गोविन्द दासस्य सुतौप्रवीरौम्लेच्छैगृहीतौ भृशपीडितौतौ ।
भित्तौचित्तौ काममनुष्यैस्तैः सत्य प्रतिज्ञौ जहतुर्न धर्मम् ॥१३२॥

अर्थ—सन्तोदासीन दशवें पातशाह गोविन्द दास (सिंह) जी के छोटे २ बच्चे जिन्दा जी दीवारों में चिनवा दिये गये पर हिन्दू धर्म न छोड़ा ॥१३२॥

हकीकतोऽसौच प्रतापराणा धर्मे तथा छत्र पतिः शिवश्च ।
बन्दाभिधोऽसौच बहादुरो वैदुर्गावती पद्मिनी तारदेवी ॥१३३॥

अर्थ—धर्म वीर हकीकत महाराणाप्रताप छत्र पति शिवा जी वन्दा वहादुर रानी पद्मिनी, तारावाई, दुर्गावती आदि २ ॥१३३॥

जाति प्रिया नारिनरास्तथान्येऽत्याचार वह्नौ निज प्राण होमम् ।
कृत्वाऽमरां ते व्यदधन्त्स्व जातिं या ह्यद्य विश्वेरविवत्प्रकाशे ॥१३४॥

अर्थ—अनेक हिन्दू जाति के लाड़ले नर नारी जगमगाते, अपने आपको अत्याचारियों के अत्याचार की अग्नि में अपने प्यारे प्राणों की आहुति देते हुये अपनी प्यारी "हिन्दु जाति" को जीती जागती अमर बना गये जिससे हिन्दू जाति वर्तमान में सूर्य के सदृश संसार में प्रकाश कर रही है ॥१३४॥

पवित्र वलि दानानामेषां परिणामेषयत् ।
नाविभ्यन् हिन्दवोनैव घृणाञ्चक्रुस्तथाऽन्यतः ॥१३५॥

अर्थ—इन पवित्र बलिदानों का परिणाम यह हुआ कि कभी हिन्दुओं ने किसी शक्ति से भय नहीं किया और कभी घृणा नहीं की ॥१३५॥

समुज्ज्वलं भूतमभूच्च हिन्दु जातेर्यतस्तत्र गुणाहमेऽभवन् ।
ज्ञानं सुविज्ञान कला च धर्मा नीतिस्तथा राज्यकनीति वीर्यौ ॥१३६॥
वलंदया शौच क्षमे तथा चै वास्तिक्यता नारिजनस्य चादरः ।
पितृन् गुरोविप्र महात्मनां गो सेवा तथा भ्रातृकप्रेम चासीत् ॥१३७॥

अर्थ—हिन्दू जाति का भूत काल सर्वरूपेण इतना समुज्वल इसी लिये था कि हिन्दुओं में धर्म नीति राजनीति वीर्यवल ज्ञान दया शौच कला कौशल क्षमा आस्तिक्यता विज्ञान स्त्री समाज का आदर माता पिता गुरु ब्राह्मण महात्मा और गौ की सेवा के साथ २ सब में भ्रातृ प्रेम बढ़ा चढ़ा था ॥१३६-१३७॥

गृहे गृहे संस्कृत हिन्दि भाषा प्रचारमासीदिह सुष्ठुरूपम् ।
अनुसृत्य वै धर्म प्रचारिणश्चोदासीन साधुन् सुखिनो हिलोकाः ॥१३८॥

अर्थ—अपनी मातृभाषा संस्कृत हिन्दी विद्या का प्रचार घर २ था उदासीन साधु महात्मा अपने हिन्दूधर्म का प्रचार गाँव २ नगर २ किया करते थे लोग प्रेम से उनके उपदेशानुसार चलते हुये सब प्रकार सुखी होते थे ॥१३८॥

गृहे गृहे भागवतं मानसौ वै मनुस्मृति भारत कृष्णगीताः ।
प्रसङ्ग एषां चलितः सदाऽऽसीदत्रैव हिन्दुप्रिय भारतेऽस्मिन् ॥१३९॥

अर्थ—घर २ रामायण (रामचरितमानस) भागवत, महाभारत, गीता, मनुस्मृति के प्रसंग की चर्चा थी ॥१३९॥

परन्तु विश्वं परिवर्ति चैतद् यथा हि सूर्यस्य त्रिकालरूपता ।
अधनो नृपाद्धे च नृपोऽधनाश्च दुःखं सुखाश्चैव दुःखात् सुखञ्च ॥
कस्यापि नास्ति सदृशं दशामे षोऽस्ति सहजः प्रकृतेः स्वभावः ।
समग्रतोऽस्यास्ति नरः न कोऽपि संसार केऽस्मिन् हि समुच्चशीर्षः

अर्थ—परन्तु संसार परिवर्तन शील है जैसे एक दिन में सूर्य के कई नमूने बदल जाते हैं, प्रातःकाल शुभ्र भास्कर चढ़ते हुये मध्याह्न में अपने प्रबल प्रचण्ड प्रताप को दिखाते हुये सायङ्काल में धीरे २ शान्त हो जाता है, इसी प्रकार किसी को भी एक जैसी दशा नहीं रहती राजा से रङ्क, रङ्क से राजा, सुःखी को दुःखी, दुःखी को सुखी करते रहना प्रकृतिका सहज स्वाभाव है, इसके सामने सब को सिर झुकाना पड़ता है अर्थात् इसके सामने संसार में किसी का भी सिर उन्नत नहीं हो सकता है ॥१४०॥१४१॥

विवर्दि भतेर्क्लि याहि जातिः संसारिकायां न शुभा दशायाम् ।
परत्रलोके च तथा सुखं वै तस्याः कथं लेत्स्याति पारमार्थिकम् ।१४२।

अर्थ—यह बात मानी हुई है कि जिस जाति की सांसारिक अवस्था अच्छी न होगी वह अपने पारमार्थिक (जिससे पर लोक को प्राप्ति होती है) क्या सुधारेगी, ॥१४२॥

अतो हि हिन्दुश्च परस्परं वैमार्गान् निजापत्ति विदारकान् वै ।
सम्मेलनाच्चैह विचारयन्तु सङ्घेऽस्ति शक्ति हि कलौयुगेऽस्मिन् ॥१४३॥

अर्थ—इस लिये हिन्दूमात्र को आपस में मिलकर और प्रेम भाव बढ़ा कर अपने कष्टों से उद्धार पाने के उपाय सोचने चाहिये । कलियुग के बीच सङ्गठन की ही शक्ति काम आती है । "सङ्घे शक्ति कलौयुगे" ॥१४३॥

सु हिन्दु धर्मस्य रहस्यमेतद् ज्ञास्यत्यदो बोधयिता चयोऽन्यान् ।
व्यतीत्य सर्वं सुखिनं हि जीवनं परत्र गन्ता प्रभु धाम निश्चितम् ॥

अर्थ—उपरोक्त हिन्दूधर्म रहस्य को जो हिन्दू भली प्रकार से समझ के औरों को समझायेगा वही संसार में सुख से जीवन व्यतीत कर अन्त में भगवान् के धाम को जायेगा ॥१४४॥

उपदेशमिदं श्रुत्वाऽभूवन् हिन्दु सुसेवकाः ।
मलावाशाह सहिताः प्रसन्ना धन्य वादिनः ॥१४५॥

अर्थ—यह उत्तम उपदेश श्रवण कर मलावाशाह के समेत सभी हिन्दू सेवक बड़े प्रसन्न हो धन्य २ करने लगे ॥१४५॥

शून्यैश्च युग्मैः ऋषि चन्द्र माने मिते शुचौ वेद तिथौ च कृष्णे ।
वहादुरस्यैव पुरे महात्मा कैलास वासी च बभूव योगी ॥१४६॥

अर्थ—श्री फूल साहब जी उदासीन का देवलोक वि० सं० १७२० आषाढ़ वदी ४ को बहादुर पुर में ही हुआ यह आप का विशाल स्थान बहादुर पुर में आज तक विद्यमान है ॥१४६॥

चत्वार एते विमलावतारा महामुनीनां सनकादिकानाम् ।
सत्प्राणिवर्यैं र्नितरां प्रपूज्या लोके चतुर्धूनपदा भिलाप्याः ॥१४७॥

अर्थ—इस प्रकार उदासीनों के चारो धूनों का संक्षिप्त विवरण आप लोगों को सुनाया गया जो जगत्पूज्य थे, यह चारो महात्मा सनकादिक का अवतार थे। देखो मात्रा काशीराम उदासीन जी की ॥१४७॥

सनकादिक चारो अवतारा। श्री नगर काश्मीर में धारा
श्री अलमस्त औ बालूहसना। गौड़ विप्रसुत जानो जसना
पिता नाम हरदत्त कहायो। माता नाम प्रभा अस गायो
गोइन्द फूल खत्री सुत जानों। श्री नगर के शहर बखानों
पिता नाम जय देव कहायो। माता नाम सुभद्रा भायो
चारो ए सनकादिक आये। गुरुदित्ता तेहि उपदेश सुनाये
चार सम्प्रदा इनकी चाली। चारो युग की कथा निराली

और भी लिखा है जिसके पढ़ने से संशय दूर हो जाता है।

गुरुदित्ता चेले चार कर साख चलाई चार।
अलमस्त बालूहसना गोइंद फूल विचार ॥
चारो धूने गुरू के गुरु दित्ते के जान।
गुरुदित्ता श्रीचन्द्रका चेला निश्चय मान ॥
(मात्रा निर्वाण सन्तरेण जी उदासीन की)

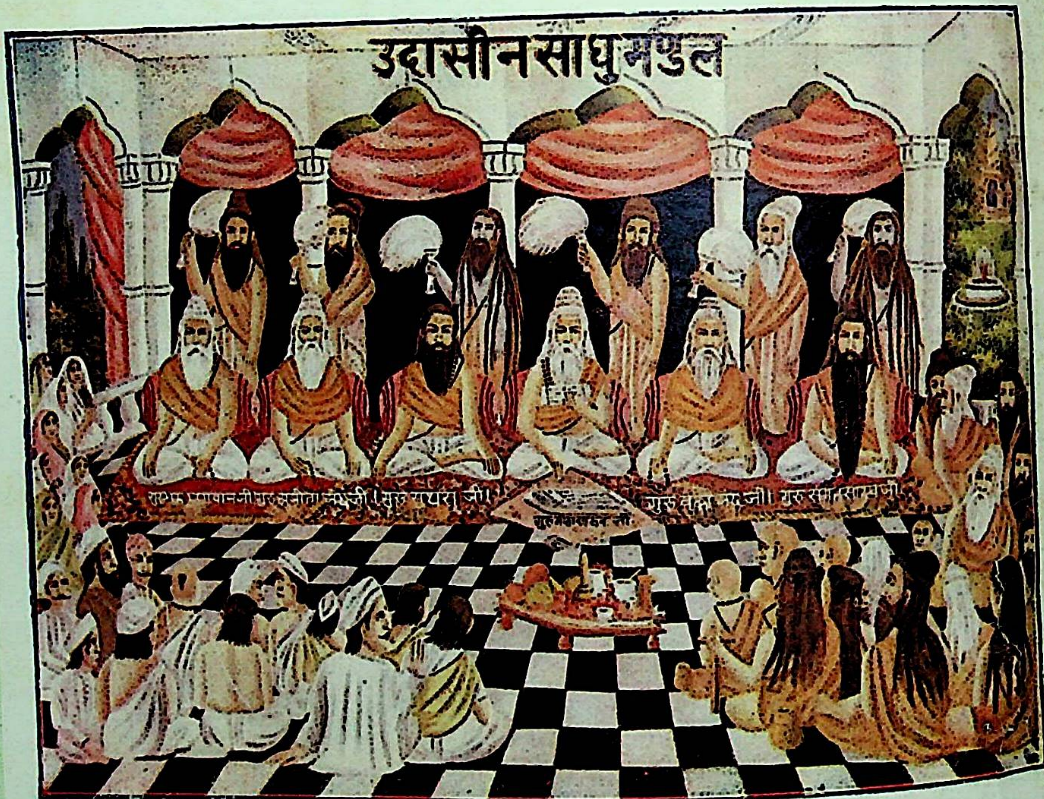
स्वांशैरेवावताराव स्वांशेष्येव प्रलीनता।
हिन्दू रक्षाऽभिधानार्थः क्रमश्चैव सनातनः ॥१४८॥

अर्थ—हे मुनीश्वरों आप लोगों ने ही हिन्दू धर्म रक्षणार्थ अपने अंश से चार धूने के नाम से संसार में अवतार लिया यह कार्य आप लोगों का नया न होकर सनातन है पुनः आप अपने रूप में आकर समा गये ॥१४८॥

चतुर्धून महात्मानः सनकाद्य पराभिधाः।
स्वांशेषु ते प्रलीयन्ते कर्मनामस्म केवलम् ॥१४९॥

अर्थ—आप के अवतार लेने से ही संसार में चार धूने प्रसिद्ध रहेंगे आप की कीर्ति सदा अटल रहेगी ॥१४९॥

उदासीन छः बख्शीश (क) श्री गुरु भगत भगवान जी उदासीन, (ख) श्रीगुरु अजीतानन्दजी उदासीन, (ग) श्रीगुरु सुथरासाहबजी उदासीन, (घ) श्री गुरु मीहा साहब जी उदासीन (ङ) श्री गुरु वक्तानन्द जी उदासीन, (च) श्री गुरु संगत साहब जी उदासीन,



Udasin 6 Bakhshish (A) Shri Guru Bhagat Bagwanji Udasin (B) Shri Guru Ajitanandji Udasin (C) Shri Guru Suthra Sahibji Udasin (D) Shri Guru Miha Sahibji Udasin (E) Shri Guru Vaktanandji Udasin (F) Shri Guru Sangat Sahibji Udasin

शशि कलाधर शिष्य गुणाञ्चितं, चरित मेतद धीतवतां नृणाम् ।
कलुषितं हृदयं विमलं भवेत, सदयते ननु चन्द्र महामुनिः ॥१५०॥

अर्थ—महामुनि श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो कलाधर शंकर के अवतार हैं उनके शिष्यों (चेलों) के गुणों का थोड़ा सा चरित्र यहाँ पर दिया है जो धीर पुरुषों को आनन्ददायक कलुषित हृदयों को विमल करने वाला है ॥१५०॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धुगंगामध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परम हंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकाय मान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे चार धूना एवं हिन्दू धर्म रहस्य प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी पञ्चचत्वा रिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥४५॥

॥ षट् चत्वारिन्शत्तमा किरण प्रारम्भः ॥

॥ षट् बक्शीश ॥

षट् पुरष्कार संबद्धाः श्रूयन्तां साम्प्रतं कथा ।
प्रथमां विस्तराद्वद्यै पञ्च संक्षेपतः पुनः ॥१॥
गुरु श्री भक्त भगनान्नाम्नो देव मतेः पुरा ।
चरितं कथयाञ्चक्रे ततोद्रष्टं महामुनिः ॥२॥

अर्थ—श्री भक्त भगवान् बड़े बुद्धिमान जपी तपी महात्मा हुये हैं जो षट बखशीश में प्रथम बक्शीश माने जाते हैं उनका चरित्र प्रथम आपलोगों को २०वीं किरण में श्रवन करा आये हैं, श्री गुरु भगत भगवान् जी उदासीन के ३६० चेले थे, उनमें मुख्य २ के नाम यह हैं, टीकाराम, जी, बद्रीदास जी, पुष्पदास जी, रामसहाय जी, नारायण दास जी, बखतमल जी, दुर्गादास जी तुलसीदास जी, लालदास जी, संतदास जी, संगतदास जी, जगतराम जी और श्यामदास जी उपरोक्त सभी महात्मा उदासीन सम्प्रदाय मानवर्धक थे सब ने ही सर्वत्र भ्रमण कर स्थल २ में अपने आश्रम मठ बनाय उनमें अपने सुयोग्य चेलों को महन्त बनाय के हिन्दू कोम सनातन धर्म के उत्थान का पूर्ण रूप से साधन बना गये जिससे हिन्दू जाति की कुम्हलाई हुईलता पुनः लहलहा उठी वाकी अब पांच बक्शीशों का जीवन संक्षिप्त में आपको श्रवण कराते हैं ॥१॥२॥

॥ (२) श्री गुरु अजीतानन्द जी उदासीन ॥

युग्मैर्बाण रसैश्चन्द्रे स्सम्मिते कार्तिके शुभे ।
शुक्लाङ्क तिथ्यांपाञ्चाले फतेपुर शुभाभिधे ॥३॥

अर्थ—श्री अजीतानंद जी उदासीन का जन्म वि० सं० १६५२ कार्तिक सुदी ६ को फतेपुर पञ्जाब प्रांत में हुआ ॥३॥

जनकश्चदयाराम धर्म मार्ग प्रचर्चकः ।
निहालकौरातन्माता जातो राम कुमारकः ॥४॥

अर्थ—पिता दयाराम जी सोढ़ी खत्री थे माता निहाल कौर जी थीं जन्म नाम राम कुमार था ॥४॥

यज्ञोपवीत संस्कारे शास्त्राध्ययन तत्परः ।
पित्रो राज्ञां पुरस्कृत्य श्रीचन्द्रस्य पुरोऽगमत् ॥५॥

अर्थ—यज्ञोपवीत संस्कार के बाद विद्याध्ययन हुआ पिता माता की आज्ञा से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचंद्र भगवान् की सेवा में आये ॥५॥

राम कुमारो जनकेन सहिते नगराद्वहि ।
एकदा गच्छति स्माऽसौ द्रष्टुं पैतृक भूमिकाम् ॥६॥

अर्थ—इसका प्रकरण यों है एक बार रामकुमार अपने पिता के साथ नगर से बाहर अपने पिता की जमींदारी देखने जा रहा था ॥६॥

पङ्गुमेंकञ्च सोऽपश्यत् कथयन्तमिती दृशम् ।
पश्चात्तप्स्यसि रे मूढ़! रामं भज भवेत् सुखी ॥७॥

अर्थ—मार्ग में उसने एक लूले (जिसके हाथ पांव न थे) को यह कहते देखा कि "भज राम २ सुख पावेगा, नहीं पड़ा २ पछतावेगा" ॥७॥

सोऽचिन्तयच्च श्रुत्वैतत् सत्य मुक्तमनेन वै ।
रामस्य भजं नायैव नरदेहमिदं सतम् ॥८॥

अर्थ—यह सुन कर रामकुमार अपने मन में विचार करता है कि यह सच ही कहता है यह मनुष्य शरीर तो केवल राम भजन के लिये ही मिला है ॥८॥

प्राप्स्यन्त्यन्य शरीरेषु कार्याण्यन्यानि सर्वदा ।
रामस्य भजनं किन्तु नृदेहे एव जायते ॥९॥

अर्थ—अन्य सर्व कार्य तो अन्य देहों में भी हो सकेंगे परन्तु राम भजन तो मनुष्य देह में ही हो सकता है ॥९॥

मयाऽपि कार्यं भजनं प्रभोर्वै परं न जानेऽस्य विधिः कथं स्यात् ।
इत्येव सञ्चिन्तित मानसोऽसौ जगाम मौनं निशि स्वाप गेहम् ॥१०॥

अर्थ—मैं भी भगवान् का भजन करूँ पर वह कैसे किया जाता है इस बात का मुझे ज्ञान तक नहीं है, इन विचारों में मस्त वह चुपचाप रात्रि को सोने के कमरे (Bedroom) में जाकर सो गया ॥१०॥

उद्विग्नमनसाभूत्वा बालोरामकुमारकः ।
मलीनेन मुखं दृष्ट्वा माता विह्वल मानसः ॥११॥

अर्थ—अपने पुत्र राम कुमार बालक का मलीन मुख उद्विग्न मन हुआ देख माता का मन भी विह्वल हो उठा कारण मातृ स्नेह बड़ा प्रबल होता है ॥११॥

तदाऽपृच्छन्माता किमिव सुतहे त्वं हि विकलः ।
कथं वा स्वास्थ्यं ते किमिव मुखपद्मं विलुलितम् ॥
प्रकाशस्त्वं मेऽक्ष्णोः कथय किमिदं पुत्र विहितम् ।
निशम्येत्थं मातृ प्रिय गदितमाहेति वचनम् ॥१२॥

अर्थ—उसे इस प्रकार देख माता ने पूछा कि हे पुत्र तू आज उदास क्यों है तेरा स्वास्थ आज कैसा है, तेरा मुख कुम्हलाया हुआ क्यों है, ऐ मेरे नेत्रों के प्रकाश बता आज क्या बात है ? इस प्रकार माता की मधुर वाणी को सुन कर रामकुमार ने कहा ॥१२॥

भजनं क्रियते हि कथं जननि वद मार्गम्मुष्य च मे जननि ।
सुनशम्य वचो निजगाद हि सा सुतः वेद लदेति हि सन्त जनः ।

अर्थ—हे माता ? राम का भजन कैसे किया जाता है ? इसलिये माता मुझे उसका मार्ग बतला । पुत्र की यह बात सुन माता बोली कि हे पुत्र इन बातों को तो साधु महात्मा ही जानते हैं ॥१३॥

वयं गृहस्थास्तु कथं विदाम कालो न शिष्येद् गृह कार्यतो नः।
कुतो विधौ नो भजनं प्रभोश्च श्रुत्वेत्यसौ मातरमाह भूरि ॥१४॥

अर्थ—हम गृहस्थाश्रमी हैं घर के कामों से ही समय नहीं मिलता राम का भजन करना हमारे प्रारब्ध में कहां है माता के इन वचनों को सुनकर राम कुमार ने फिर माता से कहा ॥१४॥

ब्राह्मे समुत्थाय तथा च स्नात्वा त्वया हि जाप्यं कर मालया यत्।
पाठे सुश्रद्धा च हि पुस्तकस्य किन्नैव मात भजनं प्रभोस्तत् ॥१५॥

अर्थ—हे माता! तुम जो प्रातः ४ बजे से उठकर स्नान करके माला फेरती हो तथा पीछे किसी पोथी का पाठ भी करती हो तो यह भजन नहीं है ॥१५॥

तदाह सा पुत्र ब्रवीषि सत्यं स्नान मे ह्यस्ति निजाघ्र क्षालनम्।
जप्यन्तु मे वो हि शिवाय याञ्च पाठश्च पूर्वज गौरव स्मृतिः ॥१६॥
यस्मान्न हेयाम स्वजातिमानं नैवापमानञ्च सहाय पुत्र।
अद्यास्य हंजगत सुधन्य भागा पुत्रे हि यस्या भजनानुरागः ॥१७॥

अर्थ—माता ने कहा तू सत्य कहता है परन्तु मेरा नहाना अपने पापों का धोना है तथा माला फेरना तुम्हारे पिता और तुम्हारे कल्याण कामना निमित्त प्रार्थना है, तथा पोथी का पाठ करना अपने बड़ों की यादगीरी करनी है जिससे पूर्वजों का गुण गौरव स्मरण बना रहे जिससे हम कभी अपनी इज्जत को न गवां बैठें और अपमान न पावें। हे पुत्र आज मैं अपने को बड़ी धन्य भागिनी समझ रही हूँ कि जिसका पुत्र राम भजन करने का मार्ग ढूँढ रहा है ॥१६॥१७॥

कोऽप्याह स्वप्ने निशि मां महात्मा यत्तेऽस्ति पुत्रो वरुणावतारः।
चतुर्थके चाश्रमे एष धृत्वोदासीन वेषं निजहिन्दुजातेः ॥१८॥
भविता भविष्यत्यपि राम भक्तः तस्मात्त्वमेनं परित्यज्यमोहम्।
श्रीचन्द्र पार्श्वे नयवै शुभस्ते साक्षाद्धियोऽस्तीह शिवावतारः ॥१९॥

अर्थ—बेटा आज रात को स्वप्न में एक महात्मा ने मुझे दर्शन देके कहा है कि तेरा पुत्र वरुण देवता का अवतार है, यह संसार में चतुर्थाश्रमी उदासीन भेष धारण कर अपनी हिन्दु जाति का रक्षक होगा, और पक्का राम भक्त होगा सो तू मोह त्याग अपने पुत्र को

श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो साक्षात् शंकर जी के अवतार हैं उनके पास भेज दे इसी में तेरा कल्याण है ॥१८॥१६॥

मया सुत श्रावित एष स्वप्नस्तुभ्यं तथा ते जनकाय चैव ।
तथा च स्वप्नस्य हि सत्यतायाः परिचायि तेप्रभुभक्तिलीना ॥२०॥

अर्थ—सो हे बेटा यह रात का स्वप्न मैंने तेरे पिता को भी और तुझे भी सुना दिया है, तथा तेरे मन में राम भजन की लगन जो एकाएक उत्पन्न हो उठी है यह भी उसी स्वप्न की सत्यता की परिचायिका है ॥२०॥

श्रुत्वैतद्वचनं मातुः कुमारो राम पूर्वकः ।
पित्राज्ञां हि गृहीत्वासौ श्री श्रीचन्द्रमुपागमत् ॥२१॥

अर्थ—इस प्रकार राम कुमार माता तथा पिता की सम्मति से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जी के पास पहुँचा ॥२१॥

तं सेवमानः कृपयैव ज्ञात्वा भजनं तितिक्षा जपदेश सेवाम् ।
उपासनादिं सहि प्रार्थयच्चो दासीन वेषं हि गृहीतुमेतम् ॥२२॥

अर्थ—और उनकी सेवा करता हुआ भजन तितिक्षा जप देश सेवा और उपासनादि के रहस्य को महाराज की कृपा से समझ गया, तथा महाराज से चतुर्थाश्रमी उदासीन भेष धारण कराने की प्रर्थाना की ॥२२॥

युग्मैश्चर्षि रसैश्चन्द्रै स्सम्मिते राध मासके ।
चतुर्थ्यां शुक्लपक्षस्य गुरोः शिष्योऽभवन्मुदा ॥२३॥

अर्थ—तब श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज ने कृपा करके वि० सं० १६७२ वैसाख सुदी ४ को अपना चेला बनाय श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय के समस्त गुरु शिष्य के भाव बता दिये ॥२३॥

अजीतानन्द नामेति गुरु र्नाम दधारच ।
उदासीनकला क्रान्तो योगिराजो जितेन्द्रियः ॥२४॥

अर्थ—नाम अजीता नन्द श्री गुरु देव जी ने रखा जो उदासीन सम्प्रदाय के बड़े प्रसिद्ध योगीराज जितेन्द्रिय महात्मा हुये हैं ॥२४॥

श्रीचन्द्रदेवोदयनीय कर्मा मुख्ये च तस्यैव निधाय शंखम् ।
दध्मौ समाशीर्वचनं विशालं वेदाङ्ग षट् शास्त्र कला कुलीनः॥२५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी महाराज दया सागर ने कृपा करके अजीतानन्द के मुख में अपना शङ्ख छुआ दिया, तथा अपने गले की माला उसके गले में पहराते हुये आशीर्वाद दिया कि तेरे को आज से समस्त वेद वेदाङ्ग षट् दर्शन पुराण इतिहास आदि ॥२५॥

स्यास्त्वश्च शिष्येति समस्त विद्यां जग्राह साधु गुरुभक्ति शाली ।
वाक्यं त्वदीयं सफलं सदा स्यात् नत्वा हशस्यापि पुरश्च कश्चित्॥२६॥

अर्थ—समस्त विद्या का पूर्ण ज्ञान होगा तुमने गुरु भक्ति के प्रताप से हीं यह आशीर्वाद प्राप्त किया आतसे तुम्हारा बचन सत्य होगा ॥२६॥

नोट—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के वर्दान (वक्शीश) देने से ही श्री अजीतानन्द जी उदासीन सम्प्रदाय में छः वक्शीशों में दूसरी बक्शीश माने जाते हैं । आपकी गद्दी फतेपुर में ही है ।

उदासीन वेष प्रसिद्धो महात्मा जितानन्द नामा सदानन्दकारी ।
परार्दिर्यालु स्सदाहिन्दुरक्षा प्रचारेनुरक्तो महा सौख्य धारी ॥२७॥

अर्थ—उदासीन भेष में परम प्रसिद्ध अजीतानन्द जी जो सदा आनन्द कारी बड़े दयालु सदा हिन्दू जाति के रक्षा वाले प्रचार को उत्साह पूर्वक करने वाले हैं ॥२७॥

प्रचारी सुधारी सदा शास्त्रलीला विसारी जनानन्द वारी सुखारी ।
सुशिक्षानुरागी समैश्चिन्तनीयो महाप्राज्ञवर्यो महा ध्यान शीला ॥२८॥

अर्थ—सदा ही शास्त्रानुसार प्रचार द्वारा सुधार करने वाले श्रेष्ठ विद्यानुरागी समयोचित व्यवहार चतुर बड़े बुद्धिमान ध्यान शील महात्मा थे ॥२८॥

वेदोपवेदै ऋषि चन्द्रमानै र्मितेचसन्फाल्गुन कृष्ण पक्षे ।
फतेपुरे श्री गुरु देव देव सम्मण्डयामास शिवाख्य लोके ॥२९॥

अर्थ—आप का देव लोक वि० सं० १७४४ फाल्गुन वदी १ को फतेपुर में हुआ ॥२९॥

नोट—आप वरुण देवता के अंश से अवतीर्ण हुये थे । यह अजीता नन्द जी तथा गुरु नानक देव जी के अजीता नन्द प्रथक २ थे ।

॥ (३) श्री गुरु सुथराशाह उदासीन ॥

वसुराम रसेन्दौ श्री वैंक्रमे भाद्र शुक्ल के ।
वहिराम पुरेरम्येसप्तम्यां शुक्रवासरे ॥३०॥

अर्थ—श्री सुथराशाह उदासीन का जन्म वि० सं० १६३८ भाद्रों सुदी ७ शुक्रवार को बहिराम पुर (पञ्जाब) में ॥३०॥

नन्दराम गृहे जज्ञे सुथरा राम उत्तमः ।
हास्यपूर्ण चरित्रञ्च ख्यापयामास भूतले ॥३१॥

अर्थ—नन्द राम क्षत्री के घर हुआ आप बड़े बुद्धिमान् प्रसन्नबदन जग विख्यात पूर्ण विद्वान् पृथ्वी पर हुये हैं ॥३१॥

रसचन्द्र ऋषीन्दौ च फाल्गुने शुक्ल पक्षके ।
दीक्षयामासतं धर्मात् नत्थादासः सतां गतिः ॥३२॥

अर्थ—वि० सं० १७१६ फाल्गुन सुदी १५ को श्री नत्था साहब श्री सुथरा साहब को अपना चेला बनाय सुन्दर शिक्षा देते भये ॥३२॥

नत्था साहब नामको गुरुवरोदासीन सिद्धान्तकः,
शिक्षां मन्त्र मयी ददौ कृतिवरः श्री धार्मिकोमार्मिकः ।
आर्षैश्चन्द्रसमार्ष चन्द्र लसिते श्री पूर्णमायां तिथौ,
आयातो गुरु देव देव सदनः श्रीचन्द्र देवो महान् ॥३३॥

अर्थ—श्री नत्था साहब जी जो गुरुवर उदासीन सिद्धान्तों के परममर्मज्ञ थे उन्होंने सुथरा साहब को चेला बनाय सर्व हिन्दू धर्म के मार्मिक भाव बता के अनुष्ठान पूर्वक मन्त्र बताया जिस अनुष्ठान के करने से श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र देव जी ने आके सुथरा साहब को स्वप्न में दर्शन वि० सं० १७१७ माघ सुदी १५ की रात्रि को दिया ॥३३॥

साक्षाच्छम्भु कलाभिमान रसिकः आशी प्रपुञ्जन्ददः,
वाक् सिद्धिः शुभकामभाव निपुणास्यात्ते मुखे नित्यशः ।
हिन्दूनां परिरक्षणाय विमलां सिद्धिं स्वकीयां मताम्,
संदर्श्यापिच दुष्ट मण्डलगणो सम्मोहिता नास्तिका ॥३४॥

अर्थ—साक्षात् शङ्कर जी सर्व कलाओं के जो रसिक (मरमज्ञ) थे उनका अवतार श्रीचन्द्र गुरुदेव जी ने सर्व प्रकार से बचन सिद्ध तथा करामत का मालिक होने का आशीर्वाद* मिलने का पता सुथरेशाह की

* गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की दया का अर्थात् आशीर्वाद मात्रा से लगता है, सुथरा जी अपनी मात्रा के अन्त में लिखते हैं "गुरु नानकसुत भये कृपाल, सुथरे पर तब नदर निहाल।"

दिया, और कहा जाओ तुम्हारी मनोकमना सफल होगी। यह वर्दान दे महाराज वहीं के वहीं अन्तर्धान हो गये। श्री सुथराशाह (सुथरानन्द) जी उसी रात के सवेरे ही दिल्ली जाय बादशाह के दर्बार में अपने मन्त्रबल के प्रभाव से ऐसी दृष्टि बन्दी करदी की इनके मस्तक में केशर का तिलक लगा था, परन्तु दर्बार के मुसलमानों को विष्टा का लगा तिलक नजर आया इसी प्रकार जनेऊ भी सूत्र का था परन्तु दर्बारियों को सुअर के तांत का जनेऊ दृष्टि पड़ा, यह देख सब दर्बारी घबड़ा उठे, उस समय मुसलमान लोग हिन्दुओं का तिलक चाट २ जनेऊ तोड़ रहे थे, तभी सुथराशाह जी ने अपनी यह करामात दिखा के दर्बार में उच्च स्वर से कहा कि आवो मेरा तिलक चाटो तथा जनेऊ तोड़ों जब कोई मुसलमान समीप नहीं आया तब सुथरेशाह जी कहते हैं यदि तुम लोग तिलक नहीं चाटते तथा जनेऊ नहीं तोड़ते तो आज से नियम बनावो कि कोई मुसलमान किसी हिन्दू का तिलक और जनेऊ नहीं तोड़ेगा ॥३४॥

तत्कालात्सकलाश्च दुष्टगणकानोपद्रवं चक्रुः,
सम्राट स्थान सुरक्षणाय नगरे स्थाप्य योग्य करं।
कीर्तिं सम्प्रति धार्मिकीञ्च लभते गायन्ति सत्साधवः,
भक्तोऽयं खलु साधु सेवन परो धर्मानुरागी मुदा ॥३५॥

अर्थ—जब यह नियम राज आज्ञा के रूप में बन गया, तब सुथरेशाह जी औरङ्गजेब के दर्बार से बाहर आये। फिर एक दिन श्री सुथरेशाह ने सवा गज की लम्बी जूती रात को जाके उस मस्जिद में रख आये, जिसमें काजी तथा बादशाह नित्य निमाज पढ़ा करते थे। सवेरे जब काजियों ने जाके मस्जिद में एक विचित्र नमूने की इतनी बड़ी जूती पड़ी देखी तब अपनी अज-मत प्रसिद्ध करने को यह प्रसिद्ध किया कि रात खुदा ताला यहाँ आये थे, उनके पैर की एक जूती रह गई है, यह बात काजियों की सत्य जान बादशाह तक उस जूती को चूम २ शिजदा कर आये दो चार दिन के बाद सुथराशाह जी उसी प्रकार की दूसरे पैर की जूती एक सोंटी में लट काय बाजार में पुकारते फिरते थे, कि भाई हमारे एक पैर की जूती कोई उठा ले गया है, पता होय तो बतादो। यह हल्ला सुन के बादशाह ने सुथरेशाह जी को पास में बुलाय पूछा क्या बात है, तब उन्होंने अपनी जूती गुम होने को बात सुनाई। बादशाह तथा सब दर्बारी वह जूती तथा मस्जिद वाली जूती एक नमूने की देख के हैरान रह गये, तब बादशाह ने कहा कि इतना बड़ा जूता आपके पैर में कैसे आयेगा, श्री सुथरा जी ने कहा आप हमारी दूसरी जूती मंगादे तब हम पहन के बताते हैं जब वह जूता मस्जिद से आया तब श्री सुथरे शाह ने दोनों अपने पैर में पहिन के दिखा दिया, बादशाह तथा सर्व दरबारी आश्चर्य में आ के कहने लगे बेशक यह करा-माती हिन्दू उदासीन फकीर है, तथा बादशाही हुकम नामा लिख दिया कि दुकान पीछे एक पैसा सुथरेशाह का कर है जो आज तक सुथरे बाजारों में एक पैसा प्रति दूकान वसूल करते हैं॥ ३५॥

श्रीचन्द्रस्य प्रसादेन सुथरा धरणी तले ।
अमोघवागविचित्राणि चरित्राणि समातनोत् ॥३६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के प्रताप (कृपा) से श्री सुथराराम जी उदासीन धरणी तल में रामबाण के सदृश अमोघ वाणी वाले करामाती हो विचित्र कर्म कर हिन्दू धर्म के बचाने वाले हुये हैं ॥३६॥

वसुराम ऋषीन्दौच शिवरात्र्यां शिवानुगः ।
सुथरा लोकयात्रां हि समाप्तिमनयत् सुखम् ॥३७॥

अर्थ—श्री मान् सुथरा राम जी का देवलोक वि० सं० १७३८ फाल्गुन वदी १४ शिव रात्रि को हुआ, आप अग्नि का अवतार थे इस लिये अंत में जाके अग्नि में समा गये ॥३७॥

॥ (४) श्री गुरु मीहा साहब जी उदासीन ॥

मीहां साहब नाम को गुरुवरः ख्यातस्त्रिलोक्यां महान्,
ध्याता योग परायणो मुनिवरोदासीन मार्गानुगः ।
सद्विद्या परिरागरागरसिकः श्री धार्मिको बुद्धिमान्,
शून्यैः शून्यमहर्षि चन्द्र गणनामानैर्मिते विक्रमे ॥३८॥

अर्थ—श्री मीहां साहब जी श्रेष्ठ त्रैलोक में विख्यात ध्यान योगपरायण महा मुनि उदासीन सम्प्रदायानुरागी सद्विद्या जो ब्रह्म विद्या है उस में विचार मग्न, बुद्धिमान, धार्मिक क्रिया निष्ठ महात्मा थे । आप का जन्म वि० सं० १७०० भाद्र शुक्ल ६ को धम धान नगर पञ्जाब प्रांत में मीहां जाति के हिन्दू क्षत्रि के घर हुआ आपका जन्म नाम राम सिंह था ॥३८॥

जज्ञेयं गुरुनाम देवक सुधीश्शान्तोपकारी कले,
शून्यै युग्म महर्षि चन्द्रविभवै र्मानैर्मिते कार्तिके ।
श्री दर्शाख्यतिथौ सुपर्वणि मुदा शिष्यश्च जातो भुवि,
पूज्य श्री गुरु नन्द लाल सोहना श्री राम देवस्य च ॥३९॥

अर्थ—आप अच्छे होनहार बुद्धिमान भाग्यशाली व्यक्ति थे, वि० सं० १७२० कार्तिक दिवाली के दिन श्री नन्दलाल सोहना जी ने उदासीन भेष का गुरु मन्त्र दे चेला बनाय नाम रामदेव रखा, किन्तु आप आज तक समस्त उदासीन सम्प्रदाय में मीहां साहब के नाम से ही प्रसिद्ध हैं, क्योंकि आप जहाँ जल की आवश्यकता देखते थे वहाँ मेह बरसाते थे ॥३९॥

एकदा चिन्तया तस्य लब्ध निद्रस्य धीमतः ।
मात्रानुष्ठीय तां भद्र दर्शनन्ते प्रदास्यति ॥४०॥

अर्थ—श्री रामदेव जी जब से उदासीन साधुबने तब से मन में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के दर्शन करने की बड़ी उत्कण्ठा थी, आप रात्रि दिन इसी विचार में रहा करते थे कि किस प्रकार भगवान् श्रीचन्द्रजी का दर्शन हो। एक दिन आप इसी चिन्ता में मग्न थे कि निद्रा लग गई, तब कोई स्वप्न में आप से कहता है कि तुम श्री ११०८ भगवान् श्रीचन्द्र जी की मात्रा का पाठ सवा लाख अनुष्ठान पूर्वक करो तुम्हारी मनो कामना सिद्ध होगी। श्री मीहां साहब जी ने भी इसी प्रकार किया ॥४०॥

रासै राम महर्षि चन्द्र कलया क्रान्ते च सद्विक्रमे,
वैसाखे सुदिने मुहूर्त फलिते प्रातः जगद्धारकः ।
श्रीचन्द्रो भगवान् गुरुः शिव शिवम्मन्त्रं समाराधयन्,
नागत्याऽपि स शिष्य पेशल मठे दत्वा समाशीर्वचः ॥४१॥

अर्थ—अनुष्ठान पूर्ण होने ही वाला था कि वि० सं० १७३६ वैसाखी के दिन प्रातः काल आपके सामने एक १२-१३ वर्ष के आयु का बालक साधु स्वरूप, निर्वाण जटाधारी, अखण्ड विभूति चढ़ाये, दिव्य ज्योति मन मोहक, प्रभावशाली, मुखारविन्द, सूर्य सम प्रकाश वाला महात्मा को देख, मीहां साहब जी समझ गये कि यही हमारे आराध्य देव जगत के तारने वाले, विश्वम्भर हिन्दू जाति के आधार, शङ्करावतार, श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् हैं ॥४१॥

आनन्दं समवाप धर्म सदनः श्री देव देवशिवः,
तत्कालाद्गुरु देव वाक्य विभवाद्ध ऋद्धिस्समृद्धिः सती
नित्यं तिष्ठति साधु सेवन परानृणां हितार्थं तथा,
ह्यौदासीन पथस्य शङ्कर कला भूतेः प्रचारस्सदा ॥४२॥

अर्थ—यह देख आनन्द से भर पूर हो धर्म के स्थान श्री गुरु देव के झट चरणों में पड़ जाते भये, भगवान् ने आप के शिर में बड़े प्रेम से अपना आशीर्वादी हाथ रक्ख आशीर्वाद दिया, कि तुम्हारे चेलों में (अर्थात् शाखा पर शाखा में) अच्छे २ होने हर महात्मा उत्पन्न होगें। जिनसे उदासीन भेष हिन्दू सनातनी भाइयों को बहुत ही लाभ होगा, ऐसा कह ऋद्धि सिद्धि का धनी होने का वर्दान दे उदासीन पथ के आधार भगवान् शंकर स्वरूप श्रीचन्द्र जी अपनी कला में लीन (अन्तर्धान) हो गये ॥४२॥

स्थाने तत्र विलक्षणे शुभकरे ह्यायान्ति हिन्दू जना,
गार्हस्थ्यं विमलञ्च धर्ममनिशं श्रुत्वा कृतार्थं गताः ।
नैतादृग् जगतीतले च विभुता युक्तश्च सिद्धोमहान्,
कोप्यस्तीति विशेष वाक्य कथनं कुर्वन्ति भक्ता नराः ॥४३॥

अर्थ—श्री गुरु मीहां साहब जी के सुन्दर सदोपदेश श्रवण करने जनता आप के स्थान में दूर २ से आया करती थी। एक दिन श्री गुरु मीहां साहब जी सायं काल को जब कथा कर चुके तब एक सत्सङ्गी ने हाथ जोड़ के प्रश्न किया कि हे भगवन् हिन्दू धर्म में गृहस्थ मार्ग के कौन कौन से नियम उत्तम लाभ दायक रक्खे गये हैं, आप उन्हें संक्षेप में हम लोगों को श्रवण कराइये, जिनकी समता में आजतक अन्य धर्मी नहीं पहुँच सके। यह सुन गुरु मीहां साहब बोलते भये हे भाइयों हिन्दूधर्म के नियमों को ब्रह्मा ने ऐसाही बनाया है। जिसकी समता में आज तक कोई नहीं पहुँच सका, इसके प्रत्येक नियम गूढ़ सिद्धांतसे भरेपड़े हैं। अब हम आपलोगों को गृहस्थों के करने योग्य कर्म बताते हैं ध्यान लगाके सुनो,जिसको जान के उसके अनुसार चलने पर सब हिन्दुओं का कल्याण होगा। प्रत्येक गृहस्थको अपने मातापिता वाली कुल मर्यादा पर चलने का अभ्यासी होना चाहिये "कुल धर्माः सनातनाः" कुल का धर्म ही सनातन धर्म कहाता है। सच की कमाई द्वारा धनोपार्जन करके उस धन से श्रद्धा पूर्वक देवता, पितर, साधु गऊ गरीब हिन्दू की पालना करते हुये अपने कुटुम्ब के शुभ खर्च में लगावे। इससे अधिक लाभ हो तो अपने गरीब हिन्दू भाईयों के हित तथा उन्नति के कार्य (औषधालय, विद्यालय, धर्मशाला, कुँआ आदि) में खर्च करे। जो हिन्दू गृहस्थ अपने जीवन में सुख और सुयश प्राप्त कर अन्त में सद्गति की चाहने वाला हो उसको अपने कुटुम्ब को प्रसन्न रखते हुये कुसङ्ग, चोर, जुआरी, नशाई, व्यभिचारी, निन्दक हिन्दूधर्म से रहित तथा हिन्दू धर्म घात करने वाले का सङ्गत्याग आप भी बचे औरों को भी बचावे। इन बुरे कर्मों से सदैव यत्नपूर्वक सावधान हो के बचे रहना उचित है। पुरुष के नाश होने के पूर्व निमित्त ये आठ हैं, साधुओं से वैर, साधु का धन हरण, साधु का वध करना, या कराने का प्रयत्न, साधु की निन्दा, साधु को दुर्वचन कहना, साधु की कीर्तिहत कर के अपमान करना, साधु को अपने धन मद के कारण उसकी हँसी करना इत्यादि आठ बातें त्याग देना चाहिये। साधु महात्मा को अपनी शक्ति अनुसार हमेशा, अन्न, वस्त्र, पुस्तकादि से नम्रतापूर्वक सत्कार करना, कारण हिन्दू धर्म के उपदेष्टा, हिन्दू जाति के रक्षक सर्व काल में साधु महात्मा ही होते आये हैं और अब भी हैं आगे भी रहेगें। हिन्दू जाति को बलवती बनाने वाले हिन्दू इतिहासों की कथा हमेशा सुनना और करना प्राण से भी अधिक प्यारी अपने हिन्दू जाति की रक्षा करने में कभी आलस न करना। अपने बाल बालिकाओं को हिन्दी

विद्या पढ़ानी उनमें हिन्दुत्व रने का भाव दृढ़ करके वीर, धीर, साहसी, उद्योगी, बनाना। यह उत्तमो त्तम हिन्दू धर्म के नियम गृहस्थियों को करने योग्य हिन्दू धर्म शास्त्र में कहे गये हैं जिसके करने से हिन्दू सद्गृहस्थ अपना लोक परलोक सुधारता हुआ सब का प्यारा बन संसार में सुयश प्राप्त करता है, यह उपदेश श्रवण कर सब सत्संङ्गी बड़े प्रसन्न हो महाराज के श्री चरणों में प्रणाम कर गुरु मन्त्र लै सेवक बन अपने २ आवासों में जाते भये। इस प्रकार के नित्य उपदेश हिन्दू जाति के लाभ दायक श्री मीहां साहब जी उदासीन हिन्दू जनता को सुनाया करते थे, जिससे आप का सुयश देश देशान्तरों तक खूब फैल गया था ॥४३॥

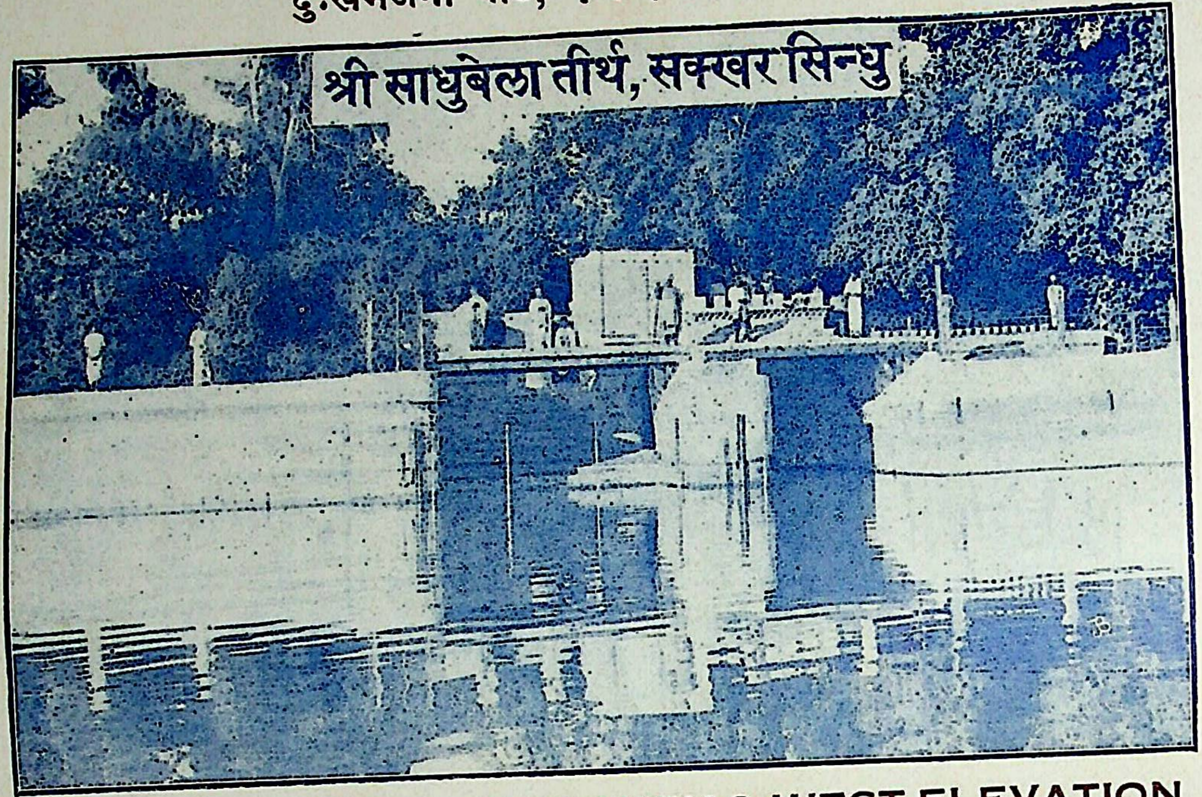
कार्यश्चास्यमहात्मनः प्रतिदिनं धर्म प्रचाराऽधिकं,
नक्कारस्य महाध्वनिः प्रतिपलं सञ्जायते नित्यशः।
सहाय्येन विनैव साधु महिमायागर्ज्यते भारते,
ह्यन्नक्षेत्र मति प्रशस्त विभवं चाचाल्यते धर्मतः ॥४४॥

अर्थ—श्री गुरु मीहां साहब जी बड़े करामाती और प्रतापवान महात्मा थे राजसी ठाठ से रहा करते थे, इनका नगारा आप से आप बजता चलता था तथा झण्डा आगे २ अपने आप ही चलता था, यह झण्डा भगवे रङ्ग का था। यह था योग शक्ति का प्रभाव, कई जगह आपने सूखती खेती को देख गरीब किसानों पर कृपा करके जल वर्षा कराई, और भी कई करामातें आप की प्रसिद्ध हैं। आप में दया वैराग्य सच्चा परोपकार देश अनुराग निष्पक्ष, न्याय, भीतर बाहर एक रस दृष्टि वाला सुभाव अर्थात् जो बात हृदय में आती थी वह बाहर कह देते थे, शौर्य और पुरुषार्थादि सर्व गुण अलौकिक थे। आपने सिन्ध पञ्जाब तथा अवध प्रान्त में अपने हिन्दू सनातन धर्म के रक्षा के साथ २ उदासीन भेष का भी अच्छा प्रचार किया। आप का अन्न दान जल दान बहुत प्रसिद्ध था जहाँ जाते थे वहाँ खुल्ला भण्डार लगाते थे ॥४४॥

चन्द्रैरार्ष समार्षचन्द्रकलिते श्री कार्तिके मासि वै,
श्रीमत् पूर्ण कला कला कल कला श्री पूर्णिमायां तिथौ।
त्यक्त्वाऽयश्च जलावतार तरणिः शास्त्रे प्रसिद्धम्मतम्,
वेदे श्री वरुणस्य लोक महिमा गारं गतो योगिराट् ॥४५॥

अर्थ—इस प्रकार भारत वर्ष में आप हिन्दू धर्म का प्रचार करते हुये वि० सं० १७७१ कार्तिक सुदी १५ को शरीर त्याग वरुणलोक पधारे। आप की समाधि ग्राम मस्ता जिला सियालकोट पञ्जाब में है ॥४५॥

दुःखभंजनी घाट, दक्षिण दिशा का चित्र



DUKH BHANJNI GHAT, SOUTH & WEST ELEVATION
OF
SHRI SADHUBELLA TIRATH SUKKUR (SIND)

मल्लः सन्तोष दासश्च द्वौ शिष्यौ तस्य विश्रुतौ ।
तस्यां परम्परायान्तु बनखण्डी समुद्भवौ ॥४६॥

अर्थ—श्री गुरु मीहां साहब जो के बड़े चेले बाबा मल्ल साहबजी हुये हैं आप का स्थान कहीड़ कोरु माजरा जिला अम्बाला पञ्जाब में है। आप के चेले बाबा सन्तोषी दास जी हुये इनके शिष्य परम्परा में महन्त श्याम दास जी निर्वाण ने फुल्लेली ग्राम रियासत पटियाला में स्थान बनाया, इन्ही महन्त श्याम दास जी ने अपना दूसरा स्थान कुरु क्षेत्र (थानेश्वर) में बना के अपने बड़े चेले भगत राम जी को यहाँ का महन्त बना दिया, श्रीमान् भगतराम जी के चेले श्री मान मेलाराम जी उदासीन बड़े महात्मा हुये हैं जिनके परम सुयोग्य शिष्य (चेला) जगत् प्रसिद्ध श्री १००८ सद्गुरु वनखण्डी जी उदासीन सिद्धेश्वर योगी राज हुये हैं ॥४६॥

॥ श्री साधु बेला तीर्थ ॥

श्री साधुबेला महातीर्थं सर्व जीवोपकारिनः ।
बनखण्डि निभो देवो न भूतो न भविष्यति ॥४७॥

अर्थ—श्री साधुबेला बड़ा तीर्थ है जहाँ पर सब जीवों का उपकार हुआ करता है श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी देव जी ऐसा देवता न भूतो न भविष्य ॥४७॥

शून्ये युगै नाग विधु प्रसंख्या मितेच सद्विक्रम नाम धेये ।
आविर्बभूवाखिल लोक तोष्टा पोष्टा भवाब्धेस्तरणि स्वरूपा ॥४८॥

अर्थ—श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी साहब जी का जन्म वि० सं० १८२० चैत्र सुदी ७ सोमवार को अखिल लोक के तुष्ट करने को हुआ जो संसार सागर से पार जाने को नौका रूप थे ॥४८॥

रामचन्द्रो पितानाम माता देवी मनोरमा ।
गौड़ विप्र भवेद्वंश कुरुक्षेत्रोस्थलोशुभः ॥४९॥

अर्थ—कुरु क्षेत्र पवित्र स्थल में गौड़ ब्राह्मण पं० रामचन्द्र शर्मा के घर माता मनोरमा के पवित्र कुक्ष से प्रगट हुये ॥४९॥

थानेश्वर महातीर्थे भाल चन्द्रे यशश्विनः ।
मेलारामो गुरुस्तस्य ह्युदासीन मतानुगा ॥५०॥

अर्थ—थानेश्वर का नगर कुरुक्षेत्र तीर्थ में प्रसिद्ध था वहीं आप का जन्म हुआ। जन्म नाम भाल चन्द्र जी था आपको श्री गुरुमेला राम जी उदासीन महात्मा ने ॥५०॥

आकाश गुण नागश्च सोम वैक्रम सम्वतः।
वैसाख शुक्ल तृतिया गुरु मन्त्रश्च धारिणः ॥५१॥

अर्थ—वि० सं० १८३० वैसाख सुदी ३ को गुरु मन्त्र दे उदासीन भेष धारण कराया, नाम बनखण्डि रख दिया ॥५१॥

अटन् समग्रं पृथवीस्थतीर्थं समण्डली श्री बनखण्डि देवः।
योग क्रियायां कुशलश्च शास्त्रे वेदे पुराणेचतथेतिहासे ॥५२॥

अर्थ—श्री १००८सद्गुरु बनखण्डी जी अपने साधु मण्डली के साथ पृथ्वी स्थित समग्र तीर्थों में घूमते हुये, जो योग क्रिया में कुशल वेद पुराण शास्त्र पाराङ्गत थे सब जगह अपने हिन्दू धर्म का प्रचार करते हुये ॥५२॥

नभनाग नागश्च चन्द्र विक्रम सम्मतः।
वैसाख कृष्ण द्वितियां साधुवेलाश्च निर्मिता ॥५३॥

अर्थ—वि० सं० १८८० वैसाख कृष्ण २ को सिन्धु देश रोहड़ी सक्खर के मध्य श्री सिन्धु गङ्गा के गर्भ मे श्री साधु बेलानाम से अपना आश्रम बनाय रहते भये इस से इस स्थान को सद्गुरु बनखण्डी आश्रम भी कहते हैं ॥५३॥

श्री सिन्धु देशे सकले च कीर्ति श्श्री योगि राजस्य प्रसिद्धमाय।
तद्दर्शनार्थं वहु संख्यकाश्च जनास्समायान्ति सुकाम सिद्ध्यै ॥५४॥

अर्थ—समस्त सिन्धु देश में श्री योगीराज महाराज बनखण्डी जी की किर्ति फैल गई बहुत संख्या में लोग आपका दर्शन करने आने लगे जिनके सर्व मनोरथ सिद्ध होते थे ॥५४॥

तपश्चचाराखिल वेद वक्ता जगद्गुरोर्द्धर्म धुरं धरस्य।
श्रीचन्द्र देवो भगवान् प्रसन्नः स्वयं समागत्य च कोटितीर्थे॥

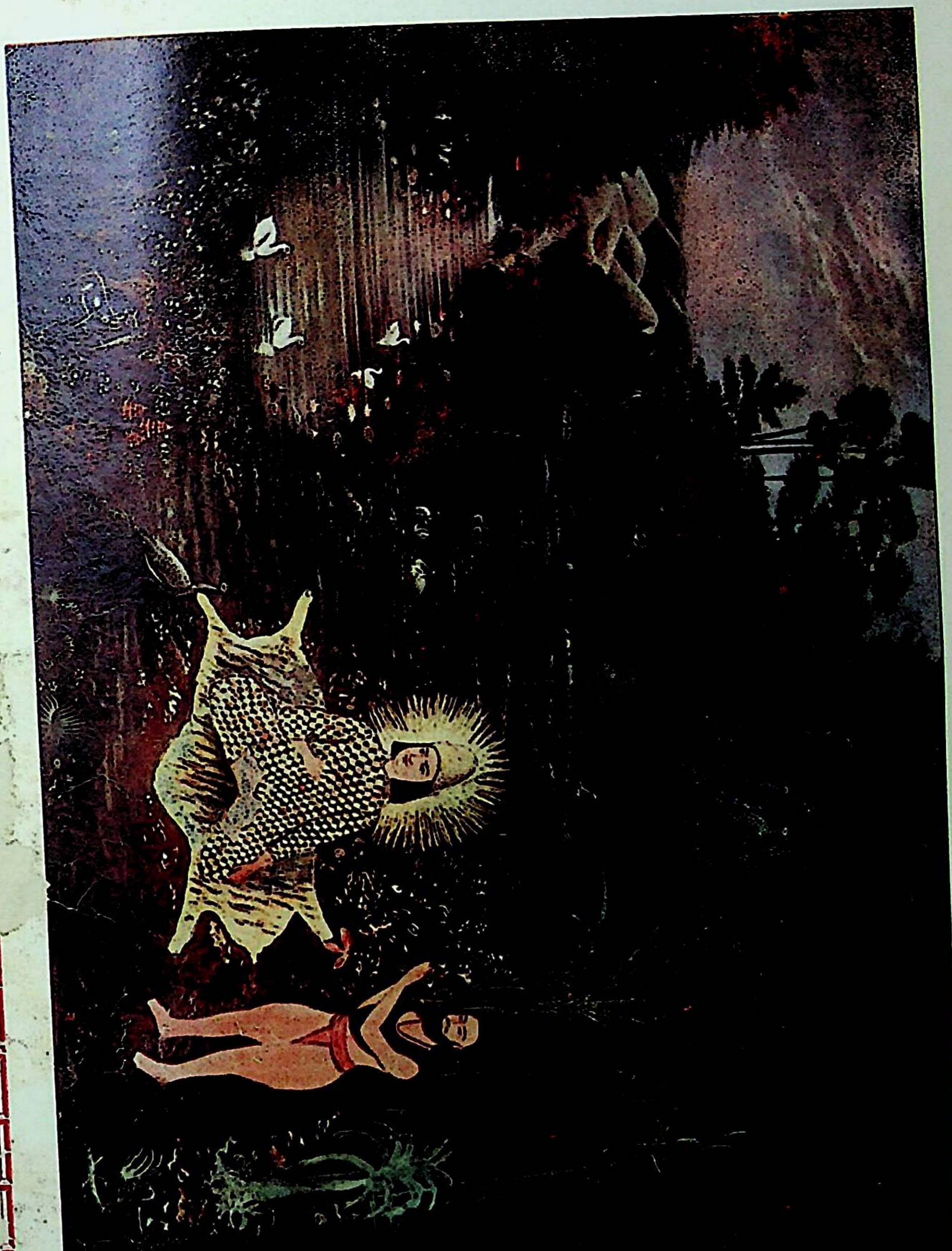
अर्थ—यहाँ रहते हुये श्री निरङ्कारी बनखण्डी देव ने कठिन तपस्या की जिससे प्रसन्न होके श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने स्वयं कोटि तीर्थ (इस स्थान) में आके दर्शन दे वर्दान दे गये ॥५५॥

श्री स्वामि पादो बनखण्डदेवो देव्यास्समाराधनतत्परश्च।
वभूव शीघ्रं भगवत्यनादि देव्यन्न पूर्णा स्वयमाजगाम ॥५६॥

अर्थ—पीछे १००८ सद्गुरु श्री स्वामी बनखण्डी देव जी देवी जी की आराधना वा तप करने लगे जिससे शीघ्र ही देवी अन्नपूर्णा जी प्रसन्न होके स्वयं दर्शन देती भईं ॥५६॥

श्री १००८ आचार्यप्रवर महाप्रभु पूज्यपाद वनखण्डी
जी महाराज उदासीन

सद्गुरु बनखण्डी आश्रम श्री साधुबेला तीर्थ (सक्खर-सिन्धु)
आपके चेले श्री १०८ निर्वाण स्वामी हरिनारायणदासजी उदासीन



SHRI 1008 SWAMI BANKHANDIJI MAHRAJ UDASIN
SHRI SWAMI HARNARAINDASJI UDASIN

उवाच वाणीं च वरं यथेच्छं वाक्ञ्च बुद्ध्वा बनखण्डिदेवः ।
जगाद हे देवि विशाल तीर्थेऽस्मिनन्नसत्रमचलं प्रतिष्ठम् ॥५७॥

अर्थ—देवी अन्न पूर्णा प्रसन्न हो बोली हे बनखण्डी जी जो आप की इच्छा हो वह वर्दान मांग लो तब गुरु बनखण्डी देव जी बोले कि हे देवि इस विशाल तीर्थ (श्री साधुबेला तीर्थ) में हमेसा अन्न का अखण्ड भण्डारा चलता रहे ॥५७॥

अम्बाच सा प्रार्थनयाऽनुकूला कमण्डलं सिद्ध फलं तदाऽदात् ।
क्षतिर्नचान्नस्य भवेत्कदाचित्कमण्डलोरस्य महा प्रतापः ॥५८॥

अर्थ—देवी माता यह प्रार्थना सुन एक हड़का कमण्डल देती बोली इसके प्रताप से कभी अन्न की त्रुटि न आवेगी ॥५८॥

श्री साधु बेलेति सुतीर्थ देशे तस्थौ च नित्यं शुभ सं हिताय ।
श्रीमान् प्रतापी बनखण्डिदेवः कमण्डलुन्तं परिपूज्य वेदः ॥५९॥

अर्थ—श्री साधु वेला जो वड़ा श्रेष्ठ तीर्थ है उसमें तब से लेकर आज तक कमण्डलु की पूजा बराबर होती चली आ रही है ऐसे प्रतापी महापुरुष श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डि देव जी उदासीन महात्मा हुये हैं ॥५९॥

महोदारो धीरो मददमन वीरो मुनिवरः
तपस्वी सिद्धेशो बहु रुचिर वेशो यतिवरः
महामोहातीतः विगत भवबाधो नरवरः
उदासीनाचार्यो जयतु बनखण्डी गुरुवरः ॥६०॥

अर्थ—परम उदारात्मा, धीर, कामदेव को जीतने वाले, मुनियों में श्रेष्ठ, तपस्वी, सिद्धों के पथ प्रदर्शक, मोहिनी मूर्ति, यतिवर, संसार के तमाम माया जाल और हरेक प्रकार की बाधाओं पर विजय पाने वाले श्री उदासीनाचार्य गुरुवार श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी महाराज की जय हो ॥६०॥

हृषीकेशः शान्तः विमल हृदयो योग कुशलः
कृपासिन्धुर्बन्द्यो विवुध बुधमान्यः सुचरितः
महाज्ञानी ध्यानी परममतिदानी क्षिति तले
उदासीनाचार्यो जयतु बनखण्डी गुरुवरः ॥६१॥

अर्थ—जितेन्द्रिय, शान्त शुद्ध हृदय, योगक्रिया विद्वान्, दया के सागर, प्रातःस्मरणीय विद्वन्मण्डली में प्रतिष्ठित, सच्चरित्र, ज्ञानी, ध्यानी, ज्ञानसुधावर्षक श्री उदासीनाचार्य गुरुवर श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी महाराज की जय हो ॥६१॥

तपः पुञ्जः शान्तः वनविभवरूपः मुनिनुतः
शरण्यो दीनानाम् बुधजन वरेण्यो गतभयः
महीपालेर्मान्यः श्रुतिविहित राद्धान्त पथिकः
उदासीनाचार्यो जयतु बनखंडी गुरुवरः ॥६२॥

अर्थ—तपस्वरूप,शान्तस्वभाव, तपोवन के वैभव, मुनियों द्वारा स्तुत्य, दीनों का सहारा, विद्वन्मण्डली के परमाराध्य सदैव निर्भय भूपति मण्डल के माननीय सदैव श्रौत स्मति मार्ग का अवलम्बन करने वाले उदासीनाचार्य गुरुवर श्री १००८ सद्गुरु श्री बनखण्डी जी महाराज की जय हो ॥६२॥

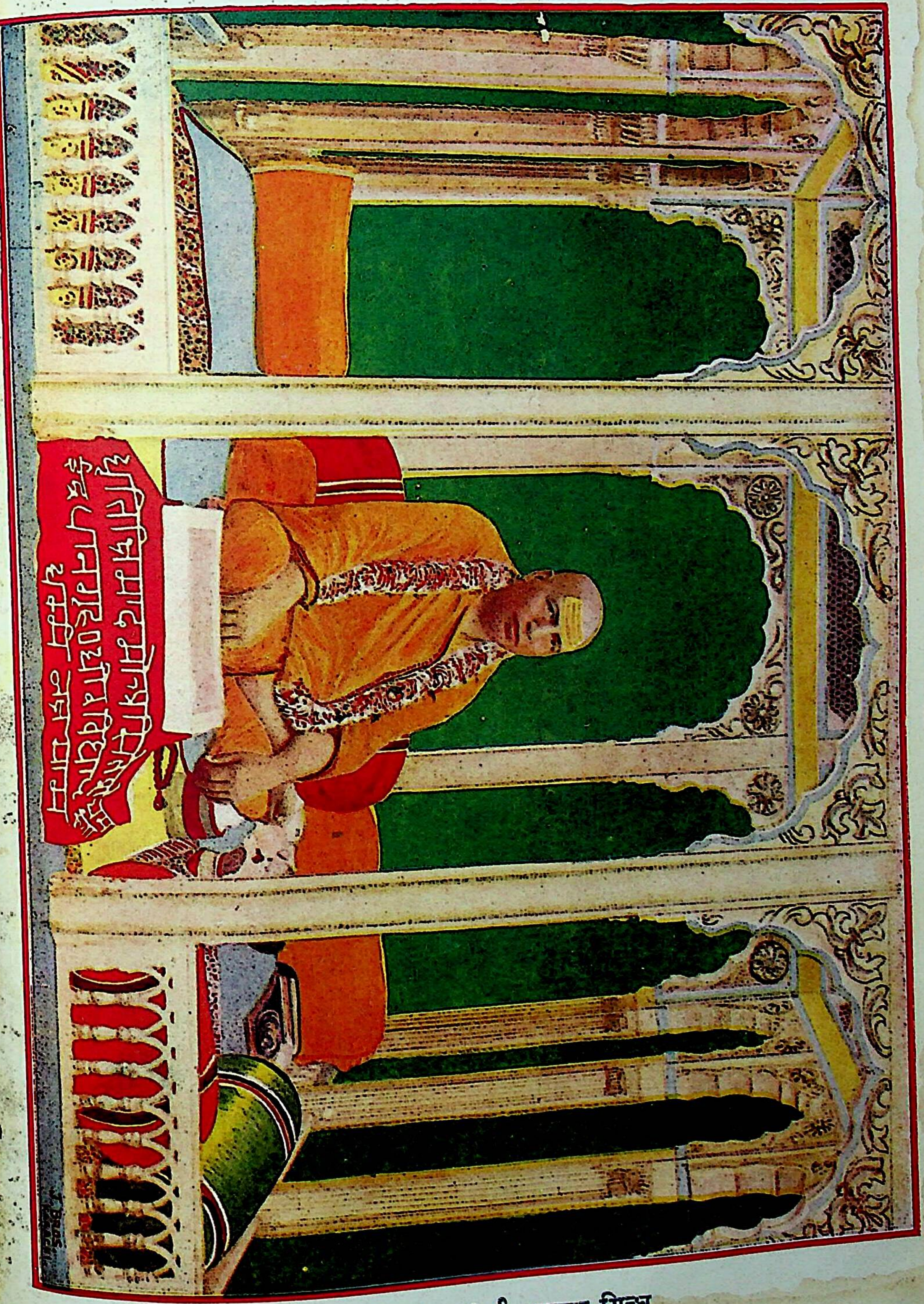
यदाहिन्दुर्जातिः यवननृप राज्ये गतवती
तदोदासीनैको श्रुति विहित बोधे पटुतरः
निजैः सिद्धे तत्वैः नुत यवन राजोहत भयः
उदासीनाचार्यो जयतु बनखखंडी गुरुवरः ॥६३॥

अर्थ—जब भारत में सर्वत्र यवन (मुसलमान) राज्य छा गया तब उदासीन महात्मा योगिराज श्री बनखण्डी जी महाराजने अपना अलौकिक चमत्कार दिखाकर यवन सम्राट को अपने चरणों में झुकाया और हिन्दू जाति को निर्भय किया। ऐसे योगीराज उदासीनाचार्य श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी महाराज की जय हो ॥६३॥

कृत्वाभारत तीर्थराजिममलाम् मन्वागतो योगिभिः।
श्रद्धां सिन्धु निवासि लोक विमलां दृष्ट्वा स सिन्ध्वन्तरे।
चक्रेयो गिरिखंड मुन्नततरम् श्री साधुबेलाश्रमम्।
हिन्दूनामुपकारको विजयते श्री साधुबेलाधिपः ॥६४॥

अर्थ—श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी महाराज ने भारत के समस्त तीर्थों का पवित्र दर्शन पैदल भ्रमण करके किया। जब वे भारत की यात्रा में थे तो उनके साथ में अनेक सिद्ध महात्मा पीछे २ चला करते थे। भ्रमण करते २ जब वे सिन्धु देश में पहुँचे तो सिन्धु देश के लोगों की अनन्य श्रद्धा पर वे मुग्ध हो गये। तब महाराज जी ने सप्त सिन्धु के बीच में एक ऊँची सुन्दर

श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन, महन्त



श्री साधुबेलातीर्थ, सक्खर सिन्धु

पवित्र चट्टान देखकर, उसपर श्री साधुबेलाश्रम की नींव डाल निवास करते हुये अपने उपदेश और अलौकिक चमत्कारों द्वारा हिन्दू जाति का कल्याण करने लगे, ऐसे गुरुवर उदासीनाचार्य योगीराज श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी महाराज की जय हो ॥६४॥

अत्रासौ निवसन्ततान भ्कटिति श्री योग शिक्षावलिं ।
नानादेश समागतै मुनिवरैः दीक्षा गृहीता ततः ।
दृष्ट्वाऽलौकिक सिद्धि कीर्तिलतिकां आपेदिरे भूभुजः ।
हिन्दूनामुपकारको विजयते श्री साधुबेलाधिपः ॥६५॥

अर्थ—सप्तनद सिन्धु गंगा के मध्य में श्री साधुबेला तीर्थ की स्थापना करके महाराजजी ने योगाभ्यास की शिक्षा देनी आरम्भ की। तत्र योगशिक्षा में आपकी प्रसिद्ध होने से देश देशान्तरों से साधु महात्मा और सद्गृहस्थ योग सीखने के लिये आने लगे, आपके अद्भुत अलौकिक चमत्कारों की पुण्य गाथायें सुन २ कर आपके पवित्र दर्शनों के लिये राजा महाराजा आने लगे। आपके इस श्री साधुबेला तीर्थ की स्थापना से हिन्दू जाति का महोपकार होने लगा ऐसे उदासीनाचार्य गुरुवर श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी महाराज की सदैव जय हो ॥६५॥

सिद्धिप्रदो योगकर्त्ता प्रवीणः हिन्दूसमाजोन्नति दत्तचितः
उदासीवर्यो मुनिमाननीयः श्री साधुबेलाश्रम यत्र चक्रे ॥६६॥

अर्थ—आपके पास जो कोई भक्त दर्शनार्थ आता था उसका मनोरथ पूर्ण करके निहाल कर देते थे। समस्त सिद्धियों के दाता थे। आप योग शिक्षण के साथ २ हिन्दू समाज की धार्मिक और नैतिक दशाका बड़ा ख्याल रखते थे। आप उदासीन महात्मा होते हुये भी षट्दर्शन साधुओं से सत्कार पाते थे क्योंकि आपकी दृष्टि में साधु मात्र श्रेष्ठता से पूर्ण था। हिन्दू जातिके उद्धार के लिये और साधु समाज द्वारा उदासीन सम्प्रदाय के प्रचारार्थ आपने श्री साधुबेला तीर्थ की स्थापना अपनी इच्छा से स्वयं की अतः आपकी सदैव जय हो ॥६६॥

शून्यैर्युगैरङ्क चन्द्रै स्समिते वैक्रमे शुभे ।
आषाढ़ कृष्ण द्वित्याञ्च बुधवार दिवंगतः ॥६७॥

अर्थ—श्री १००८ बनखण्डी जी इस प्रकार ४० वर्ष श्री साधुबेला तीर्थ में निवास करते हुये हिन्दू जाति का परम कल्याण कर वि० सं० १६२० आषाढ़ बदी २ बुधवार को इस असार संसार से पयान कर ब्रह्म लीन होते भये ॥६७॥

पवित्र चट्टान देखकर, उसपर श्री साधुबेलाश्रम की नींव डाल निवास करते हुये अपने उपदेश और अलौकिक चमत्कारों द्वारा हिन्दू जाति का कल्याण करने लगे, ऐसे गुरुवर उदासीनाचार्य योगीराज श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी महाराज की जय हो ॥६४॥

अत्रासौ निवसन्ततान झटिति श्री योग शिक्षावलिं।
नानादेश समागतै मुनिवरैः दीक्षा गृहीता ततः।
दृष्ट्वाऽलौकिक सिद्धि कीर्तिलतिकां आपेदिरे भूभुजः।
हिन्दूनामुपकारको विजयते श्री साधुबेलाधिपः ॥६५॥

अर्थ—सप्तनद सिन्धु गंगा के मध्य में श्री साधुबेला तीर्थ की स्थापना करके महाराजजी ने योगाभ्यास की शिक्षा देनी आरम्भ की। तब योगशिक्षा में आपकी प्रसिद्ध होने से देश देशान्तरों से साधु महात्मा और सद्गृहस्थ योग सीखने के लिये आने लगे, आपके अद्भुत अलौकिक चमत्कारों की पुण्य गाथायें सुन २ कर आपके पवित्र दर्शनों के लिये राजा महाराजा आने लगे। आपके इस श्री साधुबेला तीर्थ की स्थापना से हिन्दू जाति का महोपकार होने लगा ऐसे उदासीनाचार्य गुरुवर श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी महाराज की सदैव जय हो ॥६५॥

सिद्धिप्रदो योगकर्ता प्रवीणः हिन्दूसमाजोन्नति दत्तचितः
उदासीवर्यो मुनिमाननीयः श्री साधुबेलाश्रम यत्र चक्रे ॥६६॥

अर्थ—आपके पास जो कोई भक्त दर्शनार्थ आता था उसका मनोरथ पूर्ण करके निहाल कर देते थे। समस्त सिद्धियों के दाता थे। आप योग शिक्षण के साथ २ हिन्दू समाज की धार्मिक और नैतिक दशा का बड़ा ख्याल रखते थे। आप उदासीन महात्मा होते हुये भी षट्दर्शन साधुओं से सत्कार पाते थे क्योंकि आपकी दृष्टि में साधु मात्र श्रेष्ठता से पूर्ण था। हिन्दू जाति के उद्धार के लिये और साधु समाज द्वारा उदासीन सम्प्रदाय के प्रचारार्थ आपने श्री साधुबेला तीर्थ की स्थापना अपनी इच्छा से स्वयं की अतः आपकी सदैव जय हो ॥६६॥

शून्यैर्युगैरङ्क चन्द्रै स्समिते वैक्रमे शुभे।
आषाढ़ कृष्ण द्वित्यांश्च बुधवार दिवंगतः ॥६७॥

अर्थ—श्री १००८ बनखण्डी जी इस प्रकार ४० वर्ष श्री साधुबेला तीर्थ में निवास करते हुये हिन्दू जाति का परम कल्याण कर वि० सं० १९२० आषाढ़ बदी २ बुधवार को इस असार संसार से पयान कर ब्रह्म लीन होते भये ॥६७॥

नभ युगमाङ्क चन्द्रे वैक्रमे शुभ सम्मते ।
जेष्ठ शुक्ल द्वितीयायां युवराजो नियोजितः ॥६८॥

अर्थ—श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डि महाराज ने वि० सं० १६२० जेष्ठ कृष्ण २ को अपने शिष्य को युबराज पद पर नियोजित किया ॥६८॥

श्री हरिनारायण दास नामा तिर्थाधिराजेऽपि सुराजराज्यम् ।
तद्योग्यशिष्यः जयरामदासः गद्दी नशीनों जपयोग सिध्दः ।६६।

अर्थ—उनका नाम स्वामी हरिनारायण दास जी था जो तीर्थों में अधि पति सदस्य श्री साधुबेला तीर्थ के सम्पूर्णकार्य सुचारु रूप से संभालते थे, इन्होंने अपने छोटे गुरु भाई स्वामी हरि प्रसाद जी को स्थानापन्न (महन्त) बनाया, स्वामी हरिप्रसाद जी के पोछे आप (स्वामी हरिनारायण दास जी) के परम सुयोग्य शिष्य श्री १०६ स्वामो जय राम दास जी महाराज श्री साधु बेला तीर्थ के महन्त हुये हैं जो जप योग में पूर्ण सिद्ध करामात के धनी थे ॥६६॥

श्री शून्यवाणाङ्क विधुप्रमाणऽषाढ़ प्रथमाऽसित पक्ष श्रेष्ठः ।
दुर्गा तिथौ वासर बुद्धनामा राज्यासने श्री हरिनाम दासः ।७०।

अर्थ—वि० सं० १६५० प्रथम आषाढ़ वदी ८ बुधवार को हम (स्वामी हरिनाम दास जी) श्री साधुबेला तीर्थ के गद्दी पर बैठे ॥७०॥

सप्तर्षिरामाङ्क विधु प्रयुक्ते मितेच सद्विक्रम जन्म लेवा ।
पौषेच मासे शुभ कृष्णपक्षे तिथौ दशम्यां रविवासरेच ॥७१॥

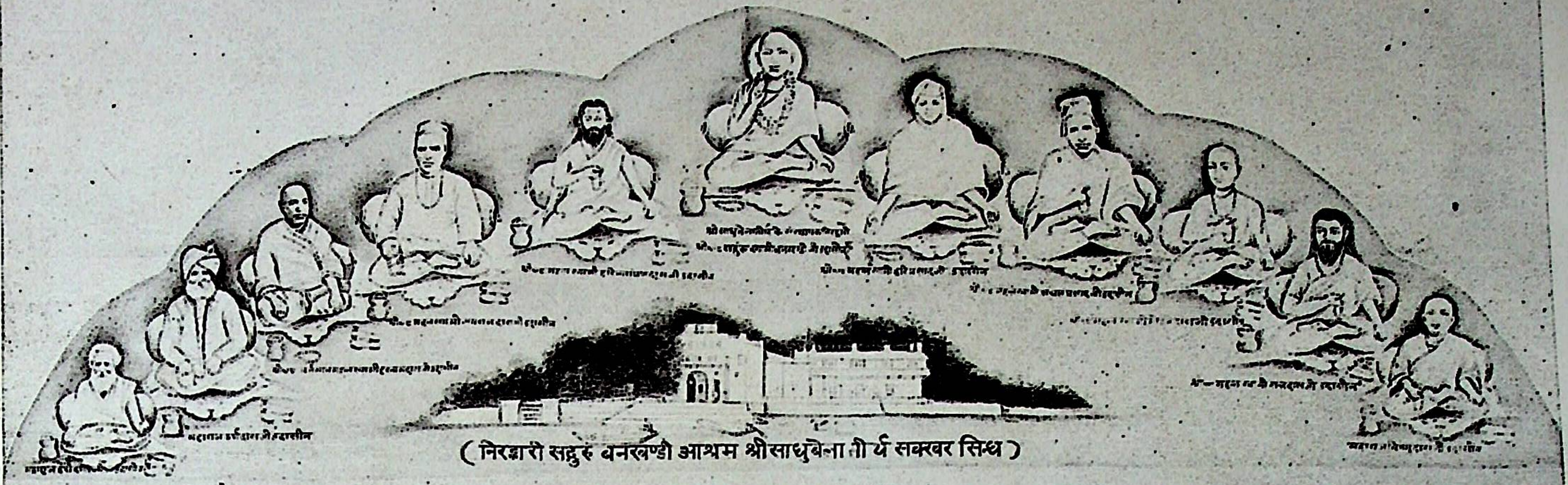
अर्थ—मेरा जन्म सक्खर नगर सिन्धु देश में वि० सं० १९३७ पौषकृष्ण १० रविवार को हुआ ॥७१॥

वेदवेदाङ्क विधुना आश्विन्यां पूर्णिमातिथौ ।
श्री जयरामदासस्य गुरुमन्त्र ददाम्यहम् ॥७२॥

अर्थ—बि० सं० १९४४ आश्विन सुदी १५ को श्री साधु बेला तीर्थ के महन्त श्री १०९ स्वामी जयराम दास जी महाराज से गुरु मन्त्र ले उदासीन भेष धारण किया नाम हरि नाम दास रखा गया ॥७२॥

॥ (५) श्री गुरु वक्ता नन्द जी उदासीन ॥

वक्तानन्द गुरुस्सदा विजयते श्री वेद सिद्धान्तग,
औदासीन समस्त भाव विभवैराविष्कृतौ देव धीः ।



(निरङ्कारी सद्गुरु बनखण्डी आश्रम श्रीसाधुबेला तीर्थ सक्खर सिन्ध)

शास्त्रानन्द तरङ्ग तारतरणि जातो महात्मा सुधी,
चन्द्रैरङ्क रसैश्च चन्द्र गणना क्रान्ते शुभे श्रावणे ॥७३॥

अर्थ—श्री गुरु वक्ता नन्द जी सदा ही वेदों के सिद्धान्तानुसारउदासीन सम्प्रदाय के समस्त भावों का प्रचार करने वाले देवतों के समान सम्पत्ति शाली शास्त्र के अनेक तरंग परिपूर्ण महात्मा का जन्म वि० सं० १६६१ श्रावण सुदी ३ को ॥७३॥

डरोली नाम्नि ग्रामेच फिरोजपुर मण्डले ।
ब्राह्मे सारस्वते वंशे वेदवेदाङ्ग पारगे ॥७४॥

अर्थ—डरौली ग्राम जिला फिरोजपुर पञ्जाब प्रान्त में सारस्वत ब्राह्मण के घर हुआ इनके वंशज वेद वेदाङ्ग पाराङ्गत थे ॥७४॥

अम्बावत्यां श्यामलाला च्छिवलालो व्यजायत् ।
गर्भाधानादि संस्कारैः संस्कृतं पोषितं सुखम् ॥७५॥

अर्थ—माता का नाम अम्बावती पिता का नाम पं० श्यामलाल था आप का जन्म नाम शिवलाल था । आप का गर्भाधानादि संस्कार आनन्द पूर्वक वेद विधान से किया गया ॥७५॥

उपनीतमधीतञ्च पितरावति वत्सलौ ।
तमेकादशवर्षीयं हित्वा स्वर्गमुपेयतुः ॥७६॥

अर्थ—मुण्डन यज्ञोपवीत के पश्चात् विद्याध्ययन प्रारम्भ हुआ विद्याध्ययन चल ही रहा था कि अकस्मात् आप के पिता आप को ११ वर्ष की अवस्था में छोड़कर स्वर्ग सिधार गये ॥७६॥

सोऽप्यौर्ध्व देहिकं कृत्वा पित्रोर्वेद विधानतः ।
विलपन्गेह मुज्झित्वा काशीं विद्यार्थमाश्रयत् ॥७७॥

अर्थ—पिता की वेद विधान से अन्तिम क्रियादि संस्कार कर घर त्याग के शिवलाल विद्याध्ययन करने निमित्त काशी जाकर वहाँ पढ़ने लगे ॥७७॥

अनाथस्य च दीनस्य साहाय्यं कोऽपि नाचरत् ।
खिन्न चेताश्च तां त्यक्त्वा बभ्राम धरणी तलम् ॥७८॥

अर्थ—किन्तु इस कार्य में आप को साधन पूर्ण रूप से न मिलने कर पढ़ाई ठीकन हो सकी। आप लाचार खेदित हृदय से काशी छोड़ तीर्थाटन करने लगे किन्तु मन बड़ा उदास रहा करता था ॥७८॥

उदासीन महात्मा च सुविद्योदीन वत्सलः ।
कामरूपेषु तं चक्रे सकामं शान्त मानसम् ॥७६॥

अर्थ—घूमते २ आसाम देश में आप को एक उदासीन महात्मा मिले उन्होंने आप को विद्या में पूर्ण कर पीछे आत्म बोध कराय मन की शान्ति कराई कारण आप (उदासीन महात्मा) बड़े दीनवत्सल थे ॥७६॥

तदाज्ञां शिरसाऽऽदाय नयपालेषु सञ्चरन् ।
आससाद कर्तृरायं मण्डली मण्डितं पुनः ॥८०॥

अर्थ—पुनः उदासीन महात्मा जी की आज्ञा से शिवलाल जी ने आय के नैपाल की तराई में मण्डलेश्वर श्री कर्ताराय जी उदासीन का दर्शन किया जो मण्डलेश्वर जी अपनी मण्डली सहित यहाँ पर हिन्दू धर्म का प्रचार कर रहे थे ॥८०॥

बाहु चन्द्रर्षि चन्द्रे च सप्तम्यां कार्तिकेऽसिते ।
नाम्ना तं समलङ्कृत्य वक्ता नन्द इति श्रुतम् ॥८१॥

अर्थ—वि० सं० १७१२ कार्तिक कृष्ण ७ को श्री कर्ताराय उदासीन महात्मा ने शिवलाल को अपना चेला बनाय गुरु दीक्षा देकर नाम वक्तानन्द रखा ॥८१॥

उदासीने सम्प्रदाये कर्तृरायो विदांवरः ।
सर्व साधन सम्पन्नः दीक्षयामास सुव्रतम् ॥८२॥

अर्थ—उदासीन सम्प्रदाय का सर्व भेद बताते हुये योगाभ्यास जिसमें समाधि लगानी (प्राणायाम के जरिये प्राण चढ़ाना) उतारना नेती, धोती आदि समस्त साधन सम्पन्नकर देते भये ॥८२॥

ततः परं तुतेनासौ शिक्षितः सर्वतः शुचिः ।
पप्रच्छ चैकदा नम्रं श्रद्धा भक्ति युतोऽनघः ॥८३॥

अर्थ—जब सर्व प्रकार से शिक्षा में वक्तानन्द जी उत्तीर्ण हो गये तब एक दिन अपने गुरु जी से बड़ी श्रद्धा और भक्ति से नमस्कार कर हाथ जोड़ पूछा ॥८३॥

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि श्रीचन्द्रं शिवरूपिणम् ।
यतोऽहंदर्शनं कुर्यामुपायं वक्तुमर्हसि ॥८४॥

अर्थ—हे भगवन् कृपा करके यह बताइये कि कौन उपाय करने से प्रातः स्मरणीय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र महाराज का दर्शन हो, मेरे मन में उनके दर्शन करने की बड़ी उत्कण्ठा लगी है, कारण आप ने कई दफे बताया है कि वह भगवान् शङ्कर जी का अवतार भक्तवत्सल सर्वज्ञ अन्तर्यामी हिन्दू धर्म रक्षक थे यदि यह सब बातें ठीक हैं तो वह मेरे को दर्शन अवश्य देंगे यह मेरा दृढ़ विश्वास है ॥८४॥

कर्तृरायस्ततः प्राह साधु वत्स वदाम्यहम् ।
जप्यो जप गुरोर्मन्त्रः श्रद्धयाञ्च विधानतः ॥८५॥

अर्थ—यह बात सुन कर श्री कर्तांराय जी बोलते भये कि हे वत्स तुमने बड़ी सुन्दर बात पूछी है, तुम्हें हम गुरु मन्त्र का जप अनुष्ठान पूर्वक बताते हैं जब वह जप पूर्ण होगा ॥८५॥

परिपूर्णे जपे नुनं दर्शनं ते प्रदास्यति ।
भक्ताधीनः सदादेवः भक्तिस्तस्माद्गरीयसी ॥८६॥

अर्थ—तब उसके कृपा से तुम्हें दर्शन हो जायगा, कारण देवता सदैव भक्त के आधीन हुआ करते हैं, इस लिये उनकी भक्ति करना चाहिये, हम आशीर्वाद देते हैं कि तुम अपने कार्य में सफलता पाओ ॥८६॥

वक्तानन्द महामुनेः शुभकरे स्थाने च गङ्गातटे,
नित्यं श्री गुरु मन्त्रदेव जपनाच्छ्रीचन्द्र देवः शिवः ।
नेता धर्म विवर्धकश्शिवशिवः शान्तं स्वयं भूर्महान्,
गत्वा तत्रशुभाभिषेचनपर आशीः प्रपुञ्जन् ददौ ॥८७॥

अर्थ—श्री महात्मा वक्ता नन्द जी ने गुरु मन्त्र का सविधि गंगा तट पर आय एकान्त स्थलपर बैठ अनुष्ठान युक्त जप करना प्रारम्भ कर दिया। भगवान् श्रीचन्द्र देव जी शंकर का अवतार धर्म के नेता कल्याण करने वाले शान्त स्वरूप जिसको किसी ने पैदा नहीं किया, वह आकर आशीर्वाद देने का बिचार करते भये ॥८७॥

ततः पूर्णे जपे चन्द्रः चन्द्र तुल्याननो विभुः ।
वक्तानन्दाय भजते ददौ दर्शनमद्भुतम् ॥८८॥

अर्थ—वह अनुष्ठान बराबर एक वर्ष में पूर्ण हुआ जिस दिन अनुष्ठान पूर्ण हुआ है, उसीदिन सवेरे बालावस्था के निर्वाण चन्द्र के समान मुख वाले श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने वक्ता नन्द जी को अपना अद्भुत दर्शन दिया ॥८८॥

वक्ता नन्दश्च तंदेवं प्रणिपातैश्च पूजनैः ।
सुतरां नन्दया मास निश्छलैश्चरितैः शुभैः ॥८६॥

अर्थ—वक्ता नन्द जी अपने आराध्यदेव को समक्ष उठ साष्टांग प्रणाम कर पूजन किया और बड़े प्रसन्न होते भये जिनकी भक्ति निश्छल थी ॥८६॥

तस्मै भक्ति वरं दत्वा समाश्वास्य पुनः पुनः ।
पश्यतस्तस्य पुरतः स्वयमन्तर्दधे बिभुः ॥६०॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी ने प्रसन्न हो भक्ति का वर्दान दिया और बारम्बार अंग संग रहने का आश्वासन दिया और उनके देखते देखते ही आप अन्तर्धान हो गये ॥६०॥

सन्तोषमत्रैव हि पश्य सज्जन् ! कीदृग् ह्युदासीन महात्मनोऽस्ति।
साक्षात् कृत्वाऽपि तपः परिश्रमात् न प्रार्थयत् किञ्चिदपि प्रभुयः ॥

अर्थ—सज्जनों देखो उदासीन महात्माओं का सन्तोष, कितने परिश्रम से तपस्या करके भगवान् को साक्षात्कार किया पर मांगा कुछ भी नहीं ॥६१॥

धन्यास्त एते हि महात्मनो ये भूता ह्युदासीन पथो विभूषणः ।
येषां प्रतापेन हि भारतस्य समुन्नतं शीर्षमिहाद्य यावत् ॥६२॥

अर्थ—धन्य हैं ऐसे (उदासीन पथ के भूषण) महात्मा जिनके प्रताप से आज भी भारत-का सिर ऊँचा है ॥६२॥

सदावक्तानन्दो व्यचरदवधूतो जगति सः ।
निरिच्छोह्यानन्दी मधुर वचनह्यत्र भवतः ।
अलौक्यं वक्तृत्वं बहु हि जनतायां प्रभवति,
प्रभावी गम्भीरं भवति किल भाषित्वमथ वै ॥६३॥

अर्थ—श्री वक्तानन्द जी अपने आनन्द में विगत काम अवधूत रूप से विचरा करते थे, आप की अलौकिक वक्तृत्व शक्ति प्रचार शैली और मधुर वार्तालाप का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। आपका भाषण अत्यन्त गम्भीर तथा प्रभाव शाली होता था ॥६३॥

व्याख्यानके श्रौत स्वधर्मकस्य न खण्डितः कोपि मतोऽन्य धर्मिणः ।
शङ्का समाधान समं ह्यकुर्वन् विद्वेषिणश्चापि स्व भक्त रूपम् ॥९४॥

अर्थ—सब से अधिक आप में यह गुण था कि जब अपने श्रौत धर्म की व्याख्या करने लगते तब किसी के मत का खण्डन न होता था, शंकाओं का इस प्रकार समाधान करते कि द्वेषी भी आप का भक्त बन जाता था ॥९४॥

सुदर्शनादेव विपद्य श्रद्धाङ्पास्ता भवानत्र सुधर्मरक्षकः ।
हेराधिवासीह कृपालुदासो भवाँस्तथा प्राचरतां सहैव ॥९५॥

अर्थ—विवादियों की अश्रद्धा तो आपके दर्शन मात्र से भाग जाती थी आप अपने हिन्दूधर्म के पक्के रक्षक थे। निर्वाण महंत कृपाल दास जी हेरा वाले और आप दोनो ने इकठ्ठे रह कर कुछ दिन प्रचार कार्य किया था ॥९५॥

रामाश्वहयचन्द्रमिते च वैक्रमे मेवाड़मागाद् भ्रमणं विधाय ।
संग्राम सिंहश्च तदा हि राजाऽत्रोदयपुरस्येह नराधिराणा ॥९६॥

अर्थ—श्री वक्तानन्द जी वि० सं० १७७३ में भ्रमण करते हुये मेवाड़ पहुँचे थे। उस समय मेवाड़ (उदय पुर) की गद्दी पर राणा संग्राम सिंह जी बैठे हुये थे ॥९६॥

तैमूरवन्शान्तिम इन्द्रप्रस्थे महमूदशाहश्च हि भूप आसीत् ।
निः शक्तमासीच्च मुगल्लराज्यमाक्रान्तमासीद्धि पराधिराजैः ॥९७॥

अर्थ—और दिल्ली के सिंहासन पर तैमूर वंश का अंतिम बादशाह महमूद शाह था, इस समय मुगलराज्य अत्यन्त शक्ति हीन हो रहा था समस्त हाकिमों ने शाही इलाकेदबा रक्खे थे ॥९७॥

संग्राममबोधयदेष वक्ता नन्दो ह्यतीवाक्रमणाय दिल्लीम् ।
क्राम्यस्व दिल्लीं सहितः स्वसेनया सुपूर्ववत्त्वं विजयी भविष्यसि ।९८।

अर्थ—श्री वक्ता नन्द जी उदासीन ने राणा संग्राम सिंह को बहुत समझाया कि यह उपयोगी समय आप हाथ से न जाने दें तुरन्त देहली पर अपनी सेना लेकर चढ़ाई कर दो आप अवश्य विजय पावोगे। जैसे पहले आप कई समर विजय कर चुके हो ॥९८॥

परं नृपो भाग्य वशाद सौ वै स्वराज्य केऽतुष्यदथाऽत्रस्वेच्छया ।
तत्तस्य वैचास्ति महापराधो नष्टो हि सन्तुष्ट महीपति र्यत् ॥९९॥

अर्थ—किन्तु होनहार बस राजा ने अपने ही राज्य पर सन्तोष रखना पसन्द किया यह राजा ने बड़ी भूल की चाणक्य नीति मे सच्च कहा है कि—"असन्तुष्टो द्विजो नष्ट: सन्तुष्टश्च मही पति" ॥६६॥

चन्द्रवस्वृषि चन्द्रे च पञ्चम्यां कार्तिके सिते ।
रोदयन् सकलान् लोकान्स्वरितः सिद्ध पूजितः ॥१००॥

अर्थ—वि० सं० १७८१ कार्तिक सुदी ५ को श्री वक्तानन्द जी का देवलोक हुआ जिससे सब लोग रोने लगे और कहते थे कि बड़े पूजनीक महात्मा थे ॥१००॥

तस्य शिष्य प्रशिष्येषु परमानन्द आत्मवान् ।
राज्ये श्री पटियालायां कारयामास स्वंमठम् ॥१०१॥

अर्थ—उनके शिष्य प्रशिष्यों में स्वामी परमानन्द जी हुये हैं जिन्होंने ग्राम कोल रियासत पटियाला में मकान बनाया है ॥१०१॥

नानकदास प्रणाल्यांतु भावलपुर वरेमठम् ।
चक्रे आत्म स्वरूपश्च सर्वलक्षण संयुतः ॥१०२॥

अर्थ—श्री गुरु वक्ता नन्द जी के चेले नानकदास जी हुये हैं जिनकी परम्परा से महन्त आत्म स्वरूप जी उदासीन ने अपना स्थान भावलपुर शहर में बनाया है ॥१०२॥

॥ (६) श्री गुरु संगत देव (साहब) जी उदासीन ॥

लोके संगतदेव साहब सुधीः श्री सद्गुरु र्धार्मिकः ।
गिर्य्यङ्कै सचन्द्रमान लसितैः श्री वैक्रमे संस्तते ।
आषाढ्यांशुभ पूर्णिमाख्य सुतिथौ श्री वाहुजानां गृहे,
जज्ञे श्री गणनाथ देव विभवे र्चावतारो भुवि ॥१०३॥

अर्थ—लोक में श्री सद्गुरु सङ्गत साहब जी बड़े धार्मिक प्रसिद्ध हुये हैं आपका जन्म वि० सं० १६६७ आषाढ़ सुदी १५ को हुआ है आप गणेश जी के अवतार थे ॥१०३॥

श्री पाञ्चालेशुभेदेशे जगविख्यात धार्मिकः ।
डरोलीत्य भिधे ग्रामे फिरोजपुर मण्डले ॥१०४॥

अर्थ—आप जगविख्यात धार्मिक पाञ्चाल प्रदेश जिला फीरोज पुर डरोली ग्राम में प्रकट होते भये ॥१०४॥

विजयराय इत्येव जन्मनामस्य धीमतः ।
सप्तवर्षीय एवासा वुपनीतो विधानतः ॥१०५॥

अर्थ—आप के पिता का नाम विनयराय था उपल जाति के क्षत्रिय थे जन्म नाम विजय राय था आप बड़े बुद्धिमान थे सात वर्ष की अवस्था में आप का यज्ञोपवीत विधान पूर्वक हुआ ॥१०५॥

अध्येतुं सकला विद्याः ब्रह्मचर्याश्रमे स्थितः ।
ययौ गुरुकुले गुर्व्या बुद्ध्या विस्मापयञ्जनान् ॥१०६॥

अर्थ—ब्रह्मचर्याश्रम में स्थित होकर गुरु कुल में रहते हुये सब विद्याओं का अभ्यास किया । आप की पूर्व संस्कार से बुद्धि कुछ ऐसी विलक्षण थी जिसको देखकर लोग विस्मित हो जाते थे ॥१०६॥

कतिपयै रहोभिश्च वेदवेदाङ्ग पारगः ।
सर्वकला कलापश्च लीलयाधीतवान्सुधी ॥१०७॥

अर्थ—थोड़े ही दिन में अच्छी प्रकार वेद वेदाङ्ग षट्शास्त्र में पारांगत सर्व कला में प्रवीण हो अपने खेल में कई लोगों को ऐसी बातें बताईं जिससे उनके उलझे हुये कार्य सुलझ गये ॥१०७॥

जडामूढाक्रोधिनश्च दुराचाराः कुबुद्धयः ।
स्वप्रकृतिं जहुः सर्वे तत्सङ्गाद्ब्रह्मचारिणः ॥१०८॥

अर्थ—विजय राय के पास कोई झगडालू क्रोधी दुराचारी कुबुद्धि लड़का आता था उसको अपनी सङ्गति से अपनी प्रकृति का कर दिया करते थे ॥१०८॥

कुजनान्सुजनत्वेन परिवर्तं यतो जनाः ।
परिवर्तक इत्येवं यथार्थं नाम चक्रिरे ॥१०९॥

अर्थ—कुजन को सुजन कर देता था यह परिवर्तन देख के लोगों ने इनका नाम फेरूमल रख दिया था जैसा नाम था तैसा ही गुण भी था ॥१०९॥

तस्मैलवपुरे ग्रामः पित्रा क्रीतो यशस्विने ।
तन्नाम्नैवागमत्ख्यातिं सचाद्यापि विराजते ॥११०॥

अर्थ—इनके पिता ने जिला लाहौर में एक ग्राम खरीदा था वह भी इनके नाम करा दिया गया था जो आज तक फेरूग्राम के नाम से विद्यमान है ॥११०॥

रञ्जयामास पितरौ स च सर्व गुणाकरः ।
अन्ये जनांश्च तं दृष्ट्वा निर्वैरा मोदमाभजन् ॥१११॥

अर्थ—बिजय राय के स्वभाव में कोमलता सुहृदयता आदि सर्व गुण देख के उनके माता पिता प्रसन्न रहा करते थे तथा और भी लोग इसको देख कर आनन्दित होते थे वैरी भी आनन्दित हो वैर त्याग देते थे ॥१११॥

न्यायतः पालयामास ग्रामं ग्रामजनाश्च सः ।
मुमुदे च सदागत्या पितृभक्तो जितेन्द्रियः ॥११२॥

अर्थ—ग्राम २ के लोग आय कर इससे न्याय कराय प्रसन्न हो अपने घर चले जाते थे यह पितृ भक्त और जितेन्द्रिय थे ॥११२॥

एवं याते कियत्काले कर्तृ रायः समण्डली ।
तत्रा जगाम देवेन चक्रे चित्राः कथास्तथा ॥११३॥

अर्थ—इस प्रकार कुछ काल बीतता भया एक समय महा मण्डलेश्वर श्री कर्त्ताराय जी उदासीन महात्मा अपनी मण्डली सहित इनके ग्राम में आते भये ॥११३॥

शुश्रूषां च यथोचितांसुविभवै श्री पुण्य भाग् भिर्जनैः,
सम्पाद्यापि सुजन्म कर्म सफलं लब्धं सुभक्त्या मुदा ।
सर्वोत्कृष्टतरश्च सेवक वरो नाम्ना विजयरायकः,
दृष्ट्वा तस्य विलक्षणाश्च प्रतिभां जातः प्रसन्नो गुरुः ॥११४॥

अर्थ—श्रीमान् मण्डलेश्वर कर्त्ताराय जो उदासीन महात्मा की विद्वता भाषणशैली कथा करने की उत्तमता का सुयश चौतर्फ प्रखरित हो रहा था, हिन्दू धर्म की रक्षा करने में अद्वितीय माने हुये थे, विजयराय ने भी अपने पिता से उनके सन्मानार्थ पूछा, यह सुन पिता बड़े प्रसन्न हो पुत्र की प्रशंसा करते अपनी सम्मति देते भये । तब विजय राय ने मण्डली की अच्छी सेवा शुश्रूषा की, भली प्रकार से पक्के भण्डारे सहित दक्षिणा के करे, तथा औरों से भी कराय पुण्य का भागी आप भी बना औरों को भी बनाया, यही श्रेष्ठ पुरुषों का उत्तम कर्म होता है, अपना जन्म सफल करते हुये औरों का भी करते रहते हैं । श्री स्वामी कर्ताराय जी विजय राय की सर्वोत्कृष्ट सेवा तथा विलक्षण बुद्धि को देख प्रसन्न होते भये ॥११४॥

शिष्यार्थन्त्यति भावुकं शुभकला युक्तश्चबालं पितुः,
याचित्वाऽपि स्वदेश रक्षणहिते पुत्रं ददौ ना तथा ।

ज्ञात्वा तत्वमिदं महामति मतामग्रेसरः श्री शिवः,
पित्रोस्तस्य गृहे विलक्षणकलं प्रादर्शयत्मोदयम् ॥११५॥

अर्थ—श्री स्वामी कर्त्तारराय जी ने अपने तप बल से विजयराय को होनहार बालक देख इससे देश और जाति को सेवा अधिकाधिक होना बिचार उनके माता पिता से उनकी याचना करते बोले कि अपने देश की रक्षा करने निमित्त हमको अपना पुत्र देवो। तुमने भो अपने घर में इसके अनेक विलक्षण चरित्र देखे हैं जो इसने सब को आनन्द देने वास्ते दिखाये हैं। हमने भी विजय राय का यश सुन के ही तुम से तुम्हारे पुत्र की याचना की है आप हम को दें ॥११५॥

विजयस्य यशः श्रुत्वा पितरं तस्य सोऽब्रवीत् ।
पुत्रास्ते बह वः सन्ति विजयं देहि मे सुतम् ॥११६॥
एष सर्व गुणोपेतः धर्म रक्षण तत्परः ।
हिन्दूनां हित सिद्ध्यर्थं युक्तं मन्ये सुतं तव ॥११७॥

अर्थ—तुम्हारा पुत्र सर्व गुण सम्पन्न हिन्दूधर्म रक्षण में तत्पर है हिन्दुओं के हित करने में सिद्ध कार्य होगा यह बात जानके तुम अपना पुत्र हमको देवो ॥११६॥११७॥

कौमुदी मिव ते कीर्तिं लोकत्रय प्रसारिणीम् ।
ममते स्वस्य मातुश्च जनयिष्यति निर्मलाम् ॥११८॥

अर्थ—तुम्हारे पुत्र विजय राय की कीर्ति कौमुदी का प्रसार तीनों लोक में हो जायगा तुम्हारे और भी कई पुत्र हैं। यद्यपि हम जानते हैं कि पुत्र का स्नेह माता पिता को अपने से पृथक नहीं करने देता तथापि हमने परोपकार के लिये ही आपको कष्ट देना अच्छा समझा है एक आप के कष्ट उठाने से बहुतों का भला होना है ॥११८॥

याचितः कौशिकेनासौ राजा दशरथो यथा ।
स्वीकर्तुञ्च न कर्तुञ्च न शशाक स धार्मिकः ॥११९॥

अर्थ—जैसे राजा दशरथ से विश्वामित्र जी ने देश सुरक्षा के लिये रामचन्द्र जी को मांगा था राजा देने न देने की चिंता में पड़ गये थे उसी प्रकार विजयराय के पिता भी संशय में पड़ हां, नां कुछ न कर सके ॥११९॥

सत्यामपि हि वाञ्छायां विजयस्य मनस्विनः ।
नानु मेने कर्तृ रायः पितु राज्ञां विना सुधीः ॥१२०॥

अर्थ—विजय राय की इच्छा श्री मुनीश्वर जी के संग जाने को थी तथा श्री मुनि जी से अपनी इच्छा प्रगट भी की, किन्तु पिता की आज्ञा विना श्री मुनीश्वर जी लेजाने को तय्यार न भये ॥१२०॥

समाश्वास्य च तान् सर्वानन्येद्युः कल्प एव सः ।
प्रयाणं मण्डलीं नीत्वा चक्रे धर्मो द्दिधीर्षया ॥१२१॥

अर्थ—श्रीमान् कर्त्ताराय जी महामण्डलेश्वर विजय राय का समाधान कर हिंदू धर्मोद्धार करने के लिये अपनी मण्डली सहित आगे को पयान करते भये ॥१२१॥

सुपुत्रस्त्वदीयो गणेशावतारोह्युदासीन मार्गानु रागी विवेकी ।
पुरै तादृशो ज्ञान मार्गानुकूलो मदिच्छानुसारा दयान्ते गृहेऽस्ति ।

अर्थ—दूसरे दिन विजय राय के माता पिता को रात्रि को स्वप्ना आया कि तुम अपने पुत्र विजय राय को जो गणेश का अवतार हमारी इच्छा से तुम्हारे घर में आकर उत्पन्न हुआ है, वह प्रथम भी उदासीन था और अब भी उदासीन साधु ही बन के रहेगा ॥१२२॥

न चेद्दास्यते पुत्रमेनं विशालं सदा हिन्दुरक्षा भिधानार्थ मेव ।
अयं श्री गणेशो गणेशश्च सत्यः प्रभूयैवलोके मृतस्तेचपुत्रः ।१२३।

अर्थ—यदि अपने पुत्र को हिन्दू जाति सनातन धर्म रक्षार्थ तुम नहीं भेजोगे तो हम अपना अंश हटा लेंगे, अर्थात् लड़का मर जायगा, कारण हमने मृत्यु लोक में उसको इसीलिये भेजा है, वह हमारा पुत्र गणेश का अवतार है और हमारा नाम शंकर है, तुम हमारे उपासक थे तभी हमने अपना लड़का गणेश को तुम्हारे घर प्रकट होने को भेजा है, यह प्रथम भी उदासीन था और अब भी उदासीन हो के रहेगा । गणेश जी के उदासीन होने में देखो शिव पुराण कोटि रुद्र संहिता ॥१२३॥

भक्ता धीन तया सोथ शिवपुत्रोब्रवीत्तदा ।
उदासीनेन मनसा तानृषीन्दुष्टसे मुखीन् ॥२५ अ० २५

अर्थ—ऋषियों के द्वारा वर मांगे जानेपर अपने भक्तों के वश में रहने वाले शिव जी के पुत्र गणेश जी उदासीन भाव से बोलते भये । इस श्लोक से स्पष्ट है कि इन दुष्ट सुभाव वालों का भी कार्य करने को गणेश जी मन से उदासीन थे ॥२५॥

इममेव च सुस्वप्नं तन्मातापि व्यलोकयत् ।
पत्यौ निवेदयन्त्याश्च न्यपतत्पादयोः सुतः ॥१२४॥

अर्थ—ऐसा बचन स्वप्न में सुन जाग के विजय राय के पिता ने अपनी स्त्री को समस्त बातें सुनाईं तब स्त्री ने अपने पति से कहा कि पुत्र को शीघ्र मुनी जी के पास भेज के मरने से बचाना चाहिये ॥१२४॥

अश्रुकण्ठी तमालिङ्ग्य मूर्ध्न्युपाघ्राय वत्सला ।
संवेश्याङ्के परामृश्या तदङ्गानि पुनः पुनः ॥१२५॥

अर्थ—ऐसा कह पुत्र स्नेह से माता के आखों में जल भर आया गला गद्‌गद्‌ होगया, पुत्र को अपने अंक में लगाय मस्तक पर हाथ बारम्बार फेरती हुई श्री मुनीश्वरजी के पास भेजने की आज्ञा देती भई ॥१२५॥

तं स्वप्नं श्रावयामास हर्ष शोकान्तरङ्गता ।
मुहुश्चुचुम्बसा वत्सं सरोमाञ्चा स्नुतस्तनी ॥१२६॥

अर्थ—ऐसा स्वप्न का हाल सुन हर्ष तथा शोक के तरंगों में लहराते माता पिता दोनों ने बालक का बारम्बार मुख चूमा उनकी रोमा वली खड़ी हो गई तथा माता के स्तन से दुग्ध चल पड़ा ॥१२६॥

पितापि तं परिस्वज्य समाघ्राय च मूर्धनि ।
श्रावयित्वा निजं स्वप्नं तमवादीत्सधैर्यवान् ॥१२७॥
वत्स याहि व्यथा माभूत्कुलमुज्वलयाशु नः ।
लघु तत्कुरु यत्कर्तु मवतीर्णो महीतले ॥१२८॥

अर्थ—माता पिता अपने पुत्र को रात्रि वाला स्वप्न सुनाते हुये धैर्यधारण कर कहा कि हेवत्स यद्यपि तुम्हारे जाने से हम को महान् क्लेश होगा तथापि तुम्हारा अवतार पृथ्वी तल में अपने हिन्दू धर्म रक्षार्थ तथा वृद्धि करने को हुआ है इसलिये तुम जाओ कुल को उज्वल करो तुम्हारा कल्याण हो और चिरायु हो यह हमारा आशीर्वाद है ॥१२७-१२८॥

सफलोनौमर्त्यभावः दाम्पत्यं सफलं भुवि ।
धन्यो वंशो यत्र जातः पार्वतीनन्दनः स्वयम् ॥१२९॥

अर्थ—तुम्हारा जन्म धन्य है तथा तुम्हारे जन्म लेने से हम दोनों भी सफल हो गये वंश भी धन्य हुआ जहाँ पर पार्वती पुत्र गणेश ने आकर स्वयं जन्म लिया ॥१२९॥

इत्युक्त्वा चाशिषं दत्वा कृत्वा स्वस्त्ययनं शुभम् ।
वारं वारं परिस्वज्य बिधायानु चरान् बहून् ॥१३०॥

मात्रामित्रैश्चानुगत सर्वैर्ग्राम जनै स्तथा ।
ग्रामाद्वहिः समानीय विससर्ज सुतं पिता ॥१३१॥

अर्थ—ऐसा कह आशीर्वाद दे ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराय बरम्बार छातीसे लगाय माता पिता तथा सब मित्रादि मिल ग्राम के बाहर तक पहुँचाय सब खिन्न हृदय से लौटे ॥ १३०-१३१ ॥

बाष्पोदकं जनाः सर्वे ददुस्तस्मै प्रवत्स्यते ।
पाथेयं स्नेह जं खिन्नाः सागरा इव वार्मुचे ॥१३२॥
म्लान कान्ति जनैर्जुष्टं नरराज तदा पुरम् ।
मेरु शृङ्गं गते चन्द्रे नक्षत्रै रम्बरं यथा ॥१३३॥

अर्थ—सबके नेत्रों से आंशुओं का जल ऐसा तीव्र प्रवाहित हो रहा था जैसे वर्षा काल में नदी का जल समुद्र की ओर वहता है, विजय राय के वियोग से सबके मुखऐसे मलीन पड़ गये जैसे मेरुशृङ्ग पर जाने से चन्द्रमा मलीन हो जाता है अथवा सूर्य के उदय होने पर जिस प्रकार नक्षत्र मलीन हो जाते हैं ॥१३२—१३३॥

कर्तृरायान्तिकं यातः स च सिद्ध मनोरथः ।
आचचक्षे निजं सर्वं समाचारं प्रसन्नधीः ॥१३४॥

अर्थ—विजय राय धीरे २ चल श्री कर्तारायं जी के पास पहुँचा उन्हें देख अपना मनो-रथ सिद्ध हुआ विचार सामने आय प्रणाम कर सब हाल प्रसन्न मन से निवेदन करदिया ।१३४।

तेनासितः सेवमानः तम व्याजं स सादरम् ।
तस्थौ बहुतिथं कालं तपस्यन्मधुरं तपः ॥१३५॥

अर्थ—श्री मण्डलेश्वर कर्त्तारायं जी उदासीन के पास कुछ काल रह सेवा करते हुये तितिक्षा युक्त तप तपते हुये विजय राय को श्री कर्त्ता राय जी ने जब परीक्षा में सर्व प्रकार से उत्तीर्ण पाया तब ॥१३५॥

वाणचन्द्रर्षि चन्द्रैश्च संस्कृते वैक्रमे शुभे ।
आश्विने शुक्लदिक् तिथ्यां कर्त्तारायो गुरुर्महान् ॥१३६॥
गुरु मन्त्रं ददौ तस्मै ह्युदासीन मतानुगम् ।
संगत देव नामापि सर्व सिद्धि समन्वितः ॥१३७॥

अर्थ—वि० सं० १७१५ आश्विन शुक्ल १० को अपना चेला बनाय गुरुमन्त्र दे उदासीन सम्प्रदाय के समस्त सिद्धान्त समझा के नाम संगत देव रख १३६-१३७।

शून्यैश्च युग्मैः ऋषिचन्द्रमानै राषाढ़ शुक्ले गुरुपूर्णिमायाम् ।
श्रीमण्डलेशो विमलश्चकर्त्तारायो गुरु र्हिन्दु विशेष धामाः ॥१३८॥
समण्डयामास महन्तनाम्ना शिष्यो महान्संगत देव नामा ।
अयं तपस्वी यतिराराजराजो योगक्रियायां कुशलेऽति धीरः ॥१३९॥

अर्थ—वि० सं० १७२० आषाढ़ सुदी १५ को श्री कर्त्ताराय जी मण्डलेश्वर ने संगत साहब अपने शिष्य को ग्राम फेरू के स्थान का महन्त बना दिया। श्री संगत साहबजी बड़े तपस्वी यति राज योग क्रिया में पूर्ण धीर वीर महात्मा थे आप की दिव्य शक्तियों की प्रतिभा ने संसार को आश्चर्य में डाल दिया था ॥१३८-१३९॥

स्मृत्वा तदीयं चरितं तपोभि रुग्रंमहोग्रं प्रथितं त्रिलोक्याम् ।
नागैश्चवाणैः ऋषि चन्द्रमाने मेषार्क तिथ्यां शुभ वासरेच ॥१४०॥

अर्थ—श्री संगत साहब जी को जब उग्र से उग्र तपस्या करते १२ वर्ष का समय बीता और अनुष्ठान समाप्त होने ही वाला था कि वि० सं० १७५८ वैसाखी के दिन ॥१४०॥

समागत श्री गुरु देव देवः शिवः स्वयं श्री नर रूपधारी ।
श्रीचन्द्र देवो भगवान्प्रभुश्च ददौ शुभाशीर्वचनं प्रसन्नः ॥१४१॥

अर्थ—अशरण शरण भक्त भय हारी साधु सुखकारी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् शिवावतार स्वप्न में दर्शन दे सच्ची दाढ़ी का वर्दान देते बोले ॥१४१॥

वत्स ते विमला कीर्तिः प्रसरिष्यति भूतले ।
देहावसान समये स्वस्वरूपमवाप्स्यसि ॥१४२॥

अर्थ—हे वत्स तुम समस्त ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न हो अपनी विमल कीर्ति को भूतल में दिन प्रति दिन प्रखरित कर अन्त में अपने स्वरूप में लीन होगे ॥१४२॥

प्रमृज्य वत्सलोदेवः तच्छिरो निज पाणिना ।
समाश्वास्य च तं भूयः तत्रैवान्तर्दधेप्रभुः ॥१४३॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् कहते हैं कि मैं अपने परम प्यारे उदासीन सम्प्रदाय के अंग संग सदैव रहा करता हूँ यह मेरा बचन है, उदासीन भेष का प्रताप दिन २ बढ़ेगा, इसकी जड़ को भगवान् सनकादिक नारद पराशर विश्वामित्रादि बड़े २ उदासीन महात्मा अपने पुरुषार्थ से सुदृढ़ करके मजबूत बना गये हैं। जिसका विस्तार मैंने

भारतवर्ष में १३१ वर्ष रह के किया अब उसी का प्रचार तुम भी कर के अपने हिन्दू भाइयों को सहायता पहुँचाओ। यह कह श्री ११०८ जगतद्गुरु भगवान् श्रीचन्द्र जी महाराज वहीं के वहीं अन्तर्धान हो गये ॥१४३॥

नागे रार्ष समार्ष चन्द्र लसिते श्री श्रावणे मासि च,
गत्वाऽयश्च गणेश लोक गणयो भूत्वा च सायुज्य भाक् ।
नैतादृक् धरणी तले शुभमति र्वक्तामनुष्यो महान्,
कोप्यस्तीति विचार धारणपरास्स्तुन्वन्ति सर्वेजनाः ॥१४४॥

अर्थ—हम ऊपर लिख आये हैं कि आप की तपस्या तथा न्याय-परायणतादि समस्त गुणों की प्रशंसा दूर दूर तक फैल चुकी थी, आप के गुण से मुग्ध हो एक समय आप को श्री गोविन्द सिंह जी भी बड़े आदर से अपने साथ ले गये और अपने पास बड़े सत्कार से टिकाय कथा व्याख्यानादि से हिन्दूधर्म का प्रचार अपने भक्तों में कराया था, तेल डाल के फूकते हुये मसंदों को आपने बचाया, जो श्री गोविन्द सिंह जी की आज्ञा से जलाये जाते थे। आप का देवलोक वि० सं० १७७८ श्रावण सुदी ५ को हुआ। आप की समाधि यहीं बनी जो आज तक बाबा फेरू के नाम से जिला लाहौर ग्राम भाई फेरू में प्रसिद्ध है, रेलवे स्टेसन छांगा मांगा है जिसस्थान के उदासीन साधु मालिक हैं ॥१४४॥

॥ हिन्दू वीर (बहादर) बाबा बन्दा ॥

ऋषि भुज ऋषीन्दौ श्री वैक्रमे कार्तिके सिते ।
तिथौ प्रतिपदायाश्च पुन्स राज्ये मनोहरे ॥१४५॥
राजौरनाम्नि नगरे क्षात्रे वंशे पराक्रमी ।
बन्दावीरो जनिं लेभे जन्म भूमिं विभूषयन् ॥१४६॥

अर्थ—हिन्दू वीर (बहादुर) बाबा बन्दा का जन्म पुन्स रियासत पहाड़ी इलाका के ग्राम राजोर में राजपूत क्षत्री के घर वि० सं० १७२७ कार्तिक सुदी १ को हुआ, जन्म नाम लक्ष्मण देव था। मुण्डन जनेऊ विद्याध्ययन शस्त्र विद्या शिकार खेलना आदि सब क्षत्रियोचित कर्म पिता ने भली प्रकार से सिखाये थे। एक समय आपने एक हरिण का शिकार किया वह प्राण छोड़ते समय बुरी तरह छटपटाने लगा, यह देख आप के मन में इस कार्य से ऐसी घृणा आई कि तुरन्त घर बार छोड़ सांसारिक भोगों को लात मार जाय पञ्चवटी के वन में एक बैरागी महात्मा के वि० सं० १७५० में चेले बन तपस्या करने लगे, अब आपका नाम माधोदास पड़ गया था ॥१४५-१४६॥

वन्दा वीर बहादुरो बहुकला संसेवमानो महान् ,
हिन्दू नामतिरक्षको विपुलया दुष्टप्रणाशी कलौ ।
जातोयञ्च समस्त प्राणि पवने निर्धूत विद्यावह ,
युद्धे धीर समीर पुत्र सदृशो वैराग्यशाली कृती ॥१४७॥

अर्थ—वैरागी वन्दा वीर बहादुर युद्ध की सर्व कला का ज्ञाता हिन्दू जाति का रक्षक अधिकतया दुष्ट विनाशी, नीति सम्पन्न गरीब रक्षक था, भाग्य मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ता मनुष्य कितना ही उससे भागे किन्तु वह साथ दे के ही रहता है, यही बात श्री माधो दास जी की भी थी, घर से राज पाट त्याग आय बन में तपस्या करने लगे, धीरे २ उनकी योग्यता पर लोग मुग्ध हो समूह के समूह अपना गुरु धारण कर २ पदार्थ भेंट करने लगे, धीरे २ कीर्ति के साथ साथ धन भी एक राजा से अधिक एकत्र हो गया, श्री माधोदास दक्षिण में अवतारी पुरुष के समान पूजे जाते थे ॥१४७॥

गोविन्दस्य रणेयेन रामस्येव हनूमता ।
शत्रूणां संक्षयं कृत्वा कृता मुख्या सहायता ॥१४८॥

अर्थ—इसी समय श्री गोविन्द सिंह जी पञ्जाब से कष्ट पाय के दक्षिण पहुँचे, और वैरागी महन्त का सुयश मार्ग में दादू पन्थी नारायण दास साधु से सुन ही चुके थे, इस लिये आपसे मिलने में देरी न हुई। यह भेंट वि०सं० १७६४ आषाढ़ बदी १ को हुई, इसने बातचीत में विद्युत का सा चमत्कार कर दिखाया, कि तुरन्त माधोदास जी वैरागी पञ्जाब में हिन्दू धर्म रक्षा करने को साथ ही श्री गोविन्द सिंह जी के बचों का बदला लेने को उद्यत हो गया, मातृ भूमि का जोश जाग उठा, माधोदास श्री गोविन्द सिंह जी का कहा मान उसी क्षण पञ्जाब को रवाना हो गये, इस कहे को मान लेने पर ही सिक्खों ने मिथ्या गढ़ मारा, कि वैरागी गोविन्द सिंह जी का सिक्ख बन गया, वैरागी न कभी सिक्ख बना, न हुआगे बनेगा, देवता सरूप भाई परमानन्दजी अपने रचित वीर वैरागी पुस्तक में लिखते हैं इसके साथ कुछ सिक्खभी आयेथे,यह गुरु के सिक्ख थे किन्तु इनके दिलसे लालच दूर न हुआ था रास्ते में रुपया खर्च हो गया इन्होंने (सिक्खोंने) वैरागी को रुपये के लिये दिक्क करना शुरू किया, क्यों कि संतोष इनसे परे था भरतपुरमें पंजाबी व्यापारी हिन्दुओं ने वैरागीको लम्बी रकम भेंट की वैरागी ने वह सिक्खों में बाँट दी,इससे सिक्ख वैरागी के संग हो गये, माधोदास पंजाब पहुँच इसी सम्वत् अर्थात वि० सं० १७६४ माघ बदी ११ को लड़ाई प्रारम्भ कर उस्मान खाँ को मार मुसलमानों के पैर उखाड़ दिये, वि० सं० १७६५ जेष्ठ में मुसलमानी दूसरी सैना ने आकर तोपोंकी मार से पृथ्वी कँपा दी,

जिससे महात्मा माधोदास जी ने अपने सिक्ख (खालसे) बनाये, जो बन्दई सिक्ख के नाम से आज तक प्रसिद्ध हैं, यह दिन वि० सं० १७६५ आश्विन सुदी १० का था, बैरागी तुरन्त घोड़े पर सवार हो अपनी तलवार से शत्रु सैना गाजर मूली की तरह काटता हुआ वजीरखाँ को मार यमलोक पठाता भया, धीरे २ श्री माधोदास जी ने ५२ इलाकों पर अपना अधिकार कर लिया लोग इन्हें ग्यारवां गुरु कहने लगे, संसार बिजई के पीछे लगता है, इतना होने पर भी माधो दास में सबसे बढ़कर यह बात देखी गई जो मनुष्य को सर्वोच्च बनाती है वह यह थी कि इतनी विजय प्राप्त करते हुये भी बैरागी माधोदास ने अपना साधु बाना न छोड़ा था। युद्ध के साथ २ अपना पाठ पूजा का नित्य नेम भी करता था। वि० सं० १७६८ मण्डीनरेश सुधर सैन श्री माधोदास जी को अपनी राज धानी में लाय उनसे गुरु मन्त्र ले सेवक बनता भया। इधर वैरागी वीर के विना सिक्खों के लिये राज प्रबन्ध करना बड़ा कठिन हो गया, मुसलमानों ने अच्छा मौका विचार फिर से युद्ध छेड़ दिया, और वैरागी के सब जीते स्थानों पर पुनः अधिकारी बन बैठे। महन्त माधोदासजी को यह खबर कुल्लू में लगी, उन्हें बड़ा दुःख हुआ आप तुरन्त वहाँ से आय वह हाथ दिखाये कि मुसलमानों से भागते भी न बना, अर्थात् बहुत मारे गये, वैरागी के बिना सिक्ख ऐसे हो जाते थे जैसे दूल्हे के विना बरात। बादशाह को सिक्खों में दूरदर्शिता के न होने का पूर्ण ज्ञान था, इस लिये भेद नीति चलाई और उसमें सफल हुआ, सिक्ख तथा श्री गोविन्द सिंह जी की स्त्री उनके चाल में आ माधो दास जी के विरुद्ध हो बादशाह से मिल गये और मुसलमानी सेना के साथ हो सिक्खों ने बन्दा बहादुर को पकड़ा दिया। वह बुरी तरह गर्म लोहों की शीखों द्वारा छेद छेद कर मारा गया, किन्तु सिक्खों के साथ भी मुसलानों ने वही भलाई की जो हिन्दूवीर बाबा बन्दा के साथ हुई। वि० सं० १७८२ में वीर वैरागी महन्त माधोदास जी धर्म पर बलिदान हुये, उनकी इस वीरता और साहस पर लोग मुग्ध होकर उन्हें बाबा बन्दा या बन्दा बहादुर कहा करते थे। इसलिये यह पञ्जाब में बाबा बन्दा के नाम से अभी तक पूजे जाते हैं ॥१४८॥

❀ ॥ शिष्य और सिक्ख शब्द का भेद ॥

४	॥।	ऽ	११
ऽ	५	४	६
०	०	६	८
०१	५	१॥	॥

(क) जो गृहस्थ आके उदासीन महात्मा से चरण पाहुल के साथ २ गुरुमन्त्र लेता है वह पञ्जाब सिन्ध काश्मीर और सीमा प्रान्त में सिक्ख तथा पूर्वादि देश में सेवक कहाता है सिक्ख शब्द द-ती 'स, कार तथा कंठ स्थानी क ख मिला के बनता है।

❀ इस यंत्र को आम के पत्ते पर लिखकर "ॐ गुरु श्री[illegible] नमो आदेश गुरु के भूत

(ख) शिष्य वह कहा जाता है जो व्यक्ति उदासीन सम्प्रदाय का चेला बनके उदासीन भेष धारण कर गृहकुटुम्ब से सम्बन्ध त्याग उदासीन भेष से सम्बन्ध रखता है। शिष्य में तालवी (श) कार तथा अर्धमूर्धनी (ष) कार आता है यह शब्द शिष्य में लगता है, कंठस्थानादि प्रथक २ होने से शब्द भी प्रथक २ होने से वस्तु भिन्न २ होजाता है इससे अर्थ भी अलग २ हो जाता है, मतलब शिष्य और और सिक्ख (सेवक) भिन्न २ हैं।

नोट—श्री गुरु सङ्गत साहब जी और बाबा बन्दा जी आपस में बहुत मिलते जुलते रहा करते थे, तथा बन्दा जी को युद्ध में गुरु सङ्गत साहब जी से अच्छी सहायता मिला करती थी, इसी पर वीर बहादुर बन्दा जी गुरु सङ्गत साहब जी को अपने बड़ों के सदृश्य मानते थे। श्री गुरु संगत साहब जी के परम्परा से बहुत उदासीनाश्रम भारत में बने हैं।

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धु गङ्गामध्य वर्त्तिसक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परमहन्सावतंस ब्रह्म निष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगी राज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्रांकिते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे षट् वक्शीश एवं बाबा बन्दा प्रकरण वर्णनं सकल कलि कल्मष नासिनी षड् चत्वारिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥४६॥

॥ सप्तचत्वारिन्शत्तमा किरण प्रारम्भः ॥

॥ उदासीन महात्माओं के जीवन चरित्र की आवश्यकता ॥

चतुर्धूनवक्शीश तुल्याः प्रपूज्यास्तथैवोपवक्शीश नाम प्रसिद्धाः।
उदासीन देवा गुरु प्राण भद्रा महामान्य मान्या महन्ताशरण्याः ॥१॥

अर्थ—पहिले उदासीन सम्प्रदाय के चार धूने छः वक्शीशों का वृत्तान्त सुनाया गया अब अवान्तर याने उपवक्शीशों उदासीन महात्माओं के नाम नीचे लिखे जाते हैं यह उपवक्शीशों की शाखा किसी न किसी धूने या वक्शीश में जाके मिल जाती है, इस लिये इनका

प्रेत यक्ष राक्षस डाकनी आदि सर्व भागो घर से भागो जन से भागो २ श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं फट् फट् स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़ता हुआ धूप (वास) देकर अग्नि में डाले इससे समस्त भूत प्रेत योगिनी आदि की बाधा दूर होती है, यदि गृह में भूत बाधा हो तो इस यन्त्र को लिखके रोहणी नक्षत्र में गृह के द्वार पर बांधके लटका दे तो गृह की सब बाधा मिट के गृह शुद्ध हो जायगा, श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की पूजा करे रोट प्रसाद का भोग लगा के बांटे।

लम्बा चौड़ा प्रकरण यहाँ पर न लिखा जायगा। हाँ इतनी प्रार्थना हम फिर भी उदासीन महात्माओं के आगे करते हैं, कि वह अपने २ पूर्वज महात्माओं का जीवन चरित्र अवश्य लिख केप्रकाशित करें, जिससे उनके जन्म कर्म सिद्धि तपस्या और प्रचार का पता जनता को लगे, तभी हम आप लोगों का गुण गौरव प्रताप संसार में पूर्ववत् स्थिर रह सकता है ॥१॥

जगत्यान्त्वसिद्धास्तथा सिद्धरूपाः बभूवुः सदाहिन्दु रक्षा विवृद्धै ।
तदीयोप शिष्याश्च शिष्या अनेके भ्रमन्तोऽपि संदीपयन्ते स्वदेशम् ।२।

अर्थ—उदासीन सम्प्रदाय जगत में मान्य तथा प्रसिद्ध करामाती सिद्ध स्वरूप सदा हिन्दूधर्म रक्षाकार्य में संलग्न है। उदासीन महात्मा चाहे मकान में रहें चाहे भ्रमण करते रहें प्रचार कार्य इनका सर्वत्र चलता रहता है तभी ये सर्वत्र प्रकाशित रहा करते हैं ॥२॥

खाद्यतु भू कार्तिक पूर्णिमायां शिष्यावकार्षीत्स हि धर्मचन्द्रः ।
सहैकतोमाणिक् मिहिरचन्द्रौ पुनर्भवाद्याष्टि मितेतु वैक्रमे ॥३॥

अर्थ—श्री माणिक चन्द्र और मेहर चन्द्र जी दोनों का जन्म सम्बत् पहले इस पुस्तक के पृष्ठ १५८ में बताया गया है, वि० सं० १६२० कार्तिक शुक्ल १५ को श्री महन्त धर्म चन्द्र जी उदासीन ने दोनों को एक ही दिन अपना चेला बनाय उदासीन भेष में सुसज्जित किया ॥३॥

कृतौ ह्यथाषाढ़िक पूर्णिमायां श्रीचन्द्र केणापि च सादिका भिधौ ।
रामातु षड्भ्वाश्विनदिक् तिथौ च डेरेह्यथो बाबा नानकस्यच ॥४॥
धर्मेण गद्या मुपवेशितोऽसौ माणिक्य चन्द्रो ह्यथ मिहिरचन्द्रः ।
बाणर्तुषट् चान्द्रिक ज्येष्ठ दिक्तिथौ ह्युपवेशितोऽसौ ननकाण मध्ये ।५।

अर्थ—फिर वि० सं० १६५६ आषाढ़ शुक्ल १५ को माणिक चन्द्र और मेहर चन्द्र बारठ ग्राम में प्रातः स्मरणीय श्री ११०८ जगद्पूज्य श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य के सादिक चेले बन बावा की पदवी का बरदान प्राप्त किया तभी से आज तक वेदी साहिब जादे श्री ११०८ जगत्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की पूजा करते हुये सेली पहिरते हैं और बाबे बोले जाते हैं। श्रीमान् महन्त धर्म चन्द्र जी ने वि० सं० १६६३ आश्विन शुक्ल दशमी को 'डेरा बाबा नानक" देहरे (स्थान) की गद्दी पर माणिक चन्द्र को साधु उदासीन बनाकर बैठाया तथा वि० सं० १६६५ ज्येष्ठ शुक्ल १० को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की आज्ञा से ननकाणे वाले अपने स्थान का महन्त मेहर चन्द्र जी को साधु उदासीन बना के बैठाया ॥४-५॥

नवाश्रुषड् भूमित माघनेत्रे तिथौ हि सुरलोकमगात स माणिकः ।
बाणाष्ट षड् भूमित्ते चैत्रमासेऽष्टम्यां च सुरलोक मगात्स मिहिरः ॥

अर्थ—वि० सं० १६७९ माघ शुक्ल २ को माणिक चन्द्र जी देव लोक पधारे तथा वि० सं० १६८५ चैत्र शुक्लाष्टमी को मेहर चंद्र जी देवलोक पधारे इन दोनो का विस्तार हाल देखो गुरु उदासीन मत दर्पण पहिला भाग पृष्ठ ३८७ से ३८६ तक ॥६॥

सोढ़ी धीर मलो जातः करतार पुरे शुभे ।
रामाष्टतु भुवि माघे प्रविष्टे त्रयोदशे शनौ ॥७॥

अर्थ—सोढ़ी धीरमल जी का जन्म करतार पुर में वि० सं० १६८३ माघ प्रविष्टे १३ शनिवार को हुआ ॥७॥

वेदाङ्क रस भूमि मिते हि माध्वे शिष्यः कृतोऽग्नि तिथौ गुरुदित्तकेन्
वह्वयश्वयभ्वाश्विनदिक्तिथौ च धीरोहि सुरलोकमगान्महन्तः ॥८॥

अर्थ—श्री महन्त गुरु दित्ता जी ने सोढ़ी धीर मल जी को अपना चेला वि० सं० १६६४ वैशाख सुदी ३ को बनाकर इसी दिन करतार पुर का महंत बना दिया, वि० सं० १७७३ आश्विन सुदी १० को धीर मल उदासीन देवलोक सिधारे ॥८॥

नेत्र चन्द्रर्तु भूम्यब्दे पञ्चम्यांमार्ग शीर्षके ।
धर्म चन्द्रस्य शिष्योऽभूत निरञ्जनराय एष वै ॥६॥

अर्थ—निरंजनराय (हिंदालदास) वि० सं० १६१२ मार्ग शीर्ष शुक्ल पंचमी को धर्म चद्र का चेला बना, महन्त धर्मचन्द्र जी उदासीन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चेले थे ॥६॥

बाणाग्नि रस भू मित् आश्विनेशुदौ जातो दिवाना हि द्वितीयकातिथौ ।
शून्यतुरस भू मित् कार्तिकेशु दौ शिष्यो ह्यभून्मेहरवान साधवः ॥

अर्थ—दिवाना साहिब जी उदासीन कां जन्म वि० सं० १६३५ आश्विन शुक्ल २ को हुआ, तथा वि० सं० १६६० कार्तिक शुक्ल १५ को निर्वाण मेहरवान उदासीन के चेले बने ॥१०॥

नेत्रर्तुरस भूमित् कार्तिके शुदौ श्रीचन्द्रदेवस्य च सादिकोऽभूत ।
शर शून्य हय भूमित् फाल्गुने शुदौ सुरलोक मगमद् ह्येकादशी दिने ।

अर्थ—तथा वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदी १५ को दिवाना साहिब जी उदासीन श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के पास आकर सादिक चेले बन ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न होने का वर दान प्राप्त किया। वि० सं० १७०५ फाल्गुन शुक्लैकादशी के दिन दिवाना साहिब जी उदासीन देव लोक सिधारे ॥११॥

वसु पञ्चरस भूमित् माघशुक्लेऽभून्मेहरवानः पृथिराय शिष्यः।
चन्द्रो ग्रहाद्याष्टि मिते च सादिक मकरोद्धय थाषाढ़िक पूर्णिमायाम्।
पृथिना स्वगद्दयामुपवेशिताच रामर्तुषड् भूमित माधवे वै।
परिथाप्य सेलीमथटोपिकाश्च मिहिरोहि भूनेत्र मिते प्रविष्टे ॥१३॥

अर्थ—श्री निर्वाण मेहरवान वि० सं० १६५८ माघ सुदी ५ को श्री पृथीराय जी उदासीन के चेले बने, तथा वि० सं० १६५६ आषाढ़ शुक्ल १५ को जाकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से सादिकी ले बरदान पाया। वि० स० १६६३ वैशाख २१ प्रविष्टे को श्री पृथिराय जी ने अपने शिष्य निर्वाण मेहरवान को सेली टोपी पहना कर अपने स्थान की गद्दी दे महन्त बनाया। यह स्थान अभी तक वर्तमान है ॥१२॥१३॥

स रामदासस्य च पुत्र एष चतुर्थराज्ञः प्रथिराय नामा।
नेत्राग्निषड् भूमित् माधवे वदौ श्रीचन्द्र शिष्योऽभवदेव साधुः ।१४।

रामर्तुरस भुम्यब्दे माधवे मासि चैवहि।
पृथीरायो गमत्स्वर्गं प्रविष्टे ह्येक विंशतौ ॥१५॥

अर्थ—श्री पृथीराय जी उदासीन चौथीपातशाही रामदास जी के पुत्र थे तथा श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के वि० सं० १६३२ वैशाख वदी १ को चेले बने तभी तो सोढियों और दिवानों के साधु सब अपना २ चलना श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी महाराज से मानते हैं, पृथीराय के उदासीन होने में लाहौर गुरुद्वारा ट्रिबुनल के जज्ज मुन्नालाल जी का फैसला देखो—"भाई पृथी विना सन्देह इक उदासीन सन" (पुस्तक उदासी सिक्खि नहीं" पृ० ३०) श्री पृथीराय जी उदासीन का देव लोक वि० सं० १६६३ वैशाख प्र० २१ को हुआ ॥१४॥१५॥

अचनेत्रा चि हय भूमित् माधवे शुदौह्यभूत्कन्हैया ह्यलमस्त शिष्यः।
हयशून्यहय भूमित पौष शुक्ले जातो हि स मिण्टगुमरी शरे तिथौ।

नवाष्टं हय भू शुक्ले आषाढ़े च ग्रहे तिथौ।
सुरलोकमगादेव तेग् बहादुर सेवकः ॥१७॥

अर्थ—कन्हैयालाल जी उदासीन वि० सं० १७२५ वैशाख सुदी ४ को श्री महन्त अलमस्त जी उदासीन महात्मा के चेले हुये आपका जन्म वि० सं० १७२७ पोष सुदी ५ को (साहीवाल मिण्ट गुमरी) में हुआ। तथा देव लोक वि सं० १७८९ आषाढ़ शुक्ल ६ को हुआ

आप के साधु अड्डुन साही कहे जाते हैं श्री कहैन्यालाल जी उदासीन की रहायस अधिकतर श्रीतेगबहादुर या श्रीगोविन्दसिंह जी के पास हुआ करती थी ॥१६-१७॥

रसाव्हिय भूमितूकार्तिके वदौ ह्यभूतसेवादासोऽलमस्त शिष्यः ।
षऽष्टर्षि आषाढ़ शुदौ हया तिथौ सेवा हि सुरलोकमगाद्धि दासः ॥

अर्थ—सेवा दास जी उदासीन वि० सं १७२६ कार्तिक कृष्ण ५ को श्री महन्त अल-मस्त साहब जी उदासीन के चेले बने । इनके सम्प्रदाय के साधु सेवा पन्थी उदासीन कहे जाते हैं, सेवा दास जी भी अधिकतर श्री तेगबहादुरजी के साथ रहा करते थे । वि० सं० १६८६ आषाढ़ सुदी ७ को सेवा दास जी देवलोक पधारे ॥१८॥

नोट—श्री तेगबहादुर जी के साथ उदासीन साधुओं का रहना तथा अपनी जाति की रक्षा के वास्ते प्रेम से जेल जाना सिक्ख भी स्वीकार करते हैं । देखो अखबार बब्बर शेर "अमृत सर ता० १७ जुलाई सन् १६२५ ई० पर्चा न० ७२-७३ के पत्र ६ कालम ३ के हैडिंग 'दुलयाल दा गुरु मत" दुरियाले ग्राम में मतिराम उदासी गुरु के साथ २ गुरु तेगबहादुर जी के संग ५ उदासीन दिल्ली जेल गये हुये थे ।

हरि गोविन्द सुतस्तेग् बहादुर नाम को ह्यम् ।
श्रीचन्द्रस्य शिष्योऽयं गृहस्थऽपरि कीर्तितः ॥१६॥

अर्थ—श्री तेग बहादूर जी श्री हरि गोन्विद जी के पुत्र तथा बाबा गुरुदित्ता जी के जन्म के छोटे भाई थे, जब श्री गुरुदित्ताजी को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने अपना चेला बनाया था तब श्री तेग बहादुर जी भी श्री ११०८ सद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के गृहस्थ चेले बने थे ॥१६॥

अतएव ह्युदासीन साधुभिः प्रेम सत्कृती ।
अत एव च ते सर्व मायुरे त्समहावसन् ॥२०॥
मतिराम उदासीन कारावासेऽवसत्सह ।
न त्यागे च स्वधर्मस्य मृत्यु दण्डेन दण्डितः ॥२१॥

अर्थ—श्री तेग बहादर जी संतोदासीन को तभी तो अपने साथ बड़े सत्कार पूर्वक उदासीन साधुओं के रखने का प्रेम था । यही कारण था कि उदासीन साधु समस्त आयु इनके साथ रहे यहाँ तक कि दिल्ली जेल जाते समय*मतीराम उदासीन साथ थे, जो अन्त में अपने

* अखबार संत समाचार अमृतसर वर्ष ७ तारीख ३ जुलाई सन् १६२८ ई० पत्रे ६ कालिम दो धर्मशाला बाबा मती दास शहीद डरोली कला जिला जालंधर में है ।

वसु पञ्चरस भूमित् माघशुक्लेऽभून्मेहरवानः पृथिराय शिष्यः।
चन्द्रो ग्रहाचाष्टि मिते च सादिक मकरोद्धृय थाषाढ़िक पूर्णिमायाम्।
पृथिना स्वगद्दयामुपवेशिताच रामर्तुषड् भूमित माधवे वै।
परिथाप्य सेलीमथटोपिकाञ्च मिहिरोहि भूनेत्र मिते प्रविष्टे ॥१३॥

अर्थ—श्री निर्वाण मेहरवान वि० सं० १६५८ माघ सुदी ५ को श्री पृथीराय जो उदासीन के चेले बने, तथा वि० सं० १६५६ आषाढ़ शुक्ल १५ को जाकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् से सादिकी ले बरदान पाया। वि० स० १६६३ वैशाख २१ प्रविष्टे को श्री पृथिराय जी ने अपने शिष्य निर्वाण मेहरवान को सेली टोपी पहना कर अपने स्थान की गद्दी दे महन्त बनाया। यह स्थान अभी तक वर्तमान है ॥१२॥१३॥

स रामदासस्य च पुत्र एष चतुर्थराज्ञः प्रथिराय नामा।
नेत्राग्निषड् भूमित् माधवे वदौ श्रीचन्द्र शिष्योऽभवदेव साधुः ।१४।
रामर्तुरस भुम्यब्दे माधवे मासि चैवहि।
पृथीरायो गमत्स्वर्ग प्रविष्टे ह्येक विंशतौ ॥१५॥

अर्थ—श्री पृथीराय जी उदासीन चौथीपातशाही रामदास जी के पुत्र थे तथा श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के वि० सं० १६३२ वैशाख वदी १ को चेले बने तभी तो सोढियों और दिवानों के साधु सन्न अपना २ चलना श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी महाराज से मानते हैं, पृथीराय के उदासीन होने में लाहौर गुरुद्वारा ट्रेवुनल के जज्ज मुन्नालाल जी का फैसला देखो—"भाई पृथी विना सन्देह इक उदासीन सन" (पुस्तक उदासी सिक्खि नहीं" पृ० ३०) श्री पृथीराय जी उदासीन का देव लोक वि० सं० १६६३ वैशाख प्र० २१ को हुआ ॥१४॥१५॥

अचनेत्रा चि हय भूमित् माधवे शुदौह्यभूत्कन्हैया ह्यलमस्त शिष्यः।
हयशून्यहय भूमित पौष शुक्ले जातो हि स मिएट गुमरी शरे तिथौ।
नवाष्टं हय भू शुक्ले आषाढ़े च ग्रहे तिथौ।
सुरलोकमगादेव तेग् बहादुर सेवकः ॥१७॥

अर्थ—कन्हैयालाल जी उदासीन वि० सं० १७२५ वैशाख सुदी ४ को श्री महन्त अलमस्त जी उदासीन महात्मा के चेले हुये आपका जन्म वि० सं० १७२७ पोष सुदी ५ को (साहीवाल मिएट गुमरी) में हुआ। तथा देव लोक वि सं० १७८६ आषाढ़ शुक्ल ६ को हुआ

आप के साधु अड्डन साही कहे जाते हैं श्री कहैन्यालाल जी उदासीन की रहायस अधिकतर श्रीतेगबहादुर या श्रीगोविन्दसिंह जी के पास हुआ करती थी ॥१६-१७॥

रसाब्धिहय भूमितुकार्तिके वदौ ह्यभूतसेवादासोऽलमस्त शिष्यः ।
षऽष्टर्षि आषाढ़ शुदौ हया तिथौ सेवा हि सुरलोकमगाद्धि दासः ॥

अर्थ—सेवा दास जी उदासीन वि० सं १७२६ कार्तिक कृष्ण ५ को श्री महन्त अलमस्त साहब जी उदासीन के चेले बने। इनके सम्प्रदाय के साधु सेवा पन्थी उदासीन कहे जाते हैं, सेवा दास जी भी अधिकतर श्री तेगबहादुरजी के साथ रहा करते थे। वि० सं० १६८६ आषाढ़ सुदी ७ को सेवा दास जी देवलोक पधारे ॥१८॥

नोट—श्री तेगबहादुर जी के साथ उदासीन साधुओं का रहना तथा अपनी जाति की रक्षा के वास्ते प्रेम से जेल जाना सिक्ख भी स्वीकार करते हैं। देखो अखबार बब्बर शेर "अमृत सर ता० १७ जुलाई सन् १६२५ ई० पर्चा न० ७२-७३ के पत्र ६ कालम ३ के हैडिंग 'दुलयाल दा गुरु मत" दुरियाले ग्राम में सतिराम उदासी गुरु के साथ २ गुरु तेगबहादुर जी के संग ५ उदासीन दिल्ली जेल गये हुये थे।

हरि गोविन्द सुतस्तेगु बहादुर नाम को ह्यम् ।
श्रीचन्द्रस्य शिष्योऽयं गृहस्थऽपरि कीर्तितः ॥१६॥

अर्थ—श्री तेग बहादुर जी श्री हरि गोविन्द जी के पुत्र तथा बाबा गुरुदित्ता जी के जन्म के छोटे भाई थे, जब श्री गुरुदित्ताजी को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् ने अपना चेला बनाया था तब श्री तेग बहादुर जी भी श्री ११०८ सद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के गृहस्थ चेले बने थे ॥१६॥

अतएव ह्युदासीन साधुभिः प्रेम सत्कृती ।
अत एव च ते सर्व मायुरे त्समहावसन् ॥२०॥
मतिराम उदासीन कारावासेऽवसत्सह ।
न त्यागे च स्वधर्मस्य मृत्यु दण्डेन दण्डितः ॥२१॥

अर्थ—श्री तेग बहादर जी संतोदासीन को तभी तो अपने साथ बड़े सत्कार पूर्वक उदासीन साधुओं के रखने का प्रेम था। यही कारण था कि उदासीन साधु समस्त आयु इनके साथ रहे यहाँ तक कि दिल्ली जेल जाते समय*मतीराम उदासीन साथ थे, जो अन्त में अपने

* अखबार संत समाचार अमृतसर वर्ष ७ तारीख ३ जुलाई सन् १६२८ ई० पत्रे ६ कालिम दो धर्मशाला बाबा मती दास शहीद डरोली कला जिला जालंधर में है।

हिन्दू धर्म न छोड़ने की सजा में अपने धर्म रक्षा के जोश में आ बादशाह के समक्ष अपना शिर आरे से चिरवा डाला, परन्तु अपना हिन्दू धर्म न छोड़ा, देखो खालसा तवारीख पत्रा १३७४, धन्य हैं हिन्दूवीर उदासीन लोग जिन्हें अपना हिन्दुत्व प्राणों से भी अधिक प्यारा है ॥२०॥२१॥

उच्यते रामदासीया बाबा वृद्धस्य सन्ततिः ।
ज्येष्ठस्य कृष्ण पञ्चम्यां जातो वेदाष्टबाणभू ॥२२॥
वस्वष्ट शर भूमितु नानकस्य शिष्यो हि दीपावलिकादिनेऽभूत् ।
भ्वष्टतु भ्वाषाढ़िक पूर्णिमायां श्रीचन्द्रदेवस्य च सादिकोऽभूत् ॥२३॥

अर्थ—रामदासिये बाबा बुड्ढा जी की सन्तान से सन्त उदासीन हैं। बाबा बुढ्ढा जी का जन्म वि० सं० १५८४ ज्येष्ठ वदी ५ को हुआ। वि० सं० १५८८ कार्तिक दिवाली के दिन श्री गुरु नानक देव जी उदासीन के चेले बने तथा वि० सं० १६८१ आषाढ सुदी पूर्णिमा को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के सादिक चेले बने थे ॥२२॥२३॥

कोऽपिनाप्नोति गद्दीं वै ऋते ह्यस्याभिषेचनात् ।
हर गोविन्द पर्यन्त मेष एवाभ्यषिञ्चयत् ॥२४॥
वस्वष्टरसभूमितमार्ग शीर्षे नाकं हि राम दास पुरादगामात् ।
रघुवीरोऽस्ति च महन्त कोऽधुना वृद्धस्य सुत पौत्रिक सन्ततोहि ॥

अर्थ—श्री बाबा बुढ़ा जी सन्तोदासीन को श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीन चार्य जी के अशीर्वाद से यह अधिकार प्राप्त था कि जब तक यह तिलक न करें तब तक किसी पातशाही को गुरु आई की गद्दीन प्राप्त होती थी, छठी पातशाही श्री हरिगोविन्द जी तक बाबा बुड्ढा सन्त उदासीन जी तिलक देते रहे। पश्चात् आप के पुत्र पौत्रों के हाथ से तिलक देने की मर्यादा चलती रही, बाबा बुढ्ढाजी का देवलोक वि० सं० १६८८ मार्गशीर्ष सुदी ३ को रामदास पुर में हुआ यहीं आप की समाधि बनी। यह रामदास पुर लाहौर के समीप है बाबा बुढ्ढा साहब की गद्दीपर वर्त्तमान महन्त रघुबीरदास जी सन्त उदासीन हैं। इनके पुत्र पौत्र सन्तति इस प्रकार हैं—बाबा बुढ्ढा जी का पुत्र भानाराम, इसका श्रवण राम, इसका पुत्र भागचन्द, इसका जलाल राम, इसका झण्डा राम, इसका गुरु दित्ता, (यह दूसरा गुरुदित्ता था) इसके रामकुँवर जी थे जो दशम पातशाही को हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों की कथा सुनाया करते थे यह सब उदासीन सन्त हैं ॥२४॥२५॥

शून्याब्धि हय भू मधुपूर्णिमायां जज्ञास्यहि भू तुलसी दास शिष्यः।
तुलसी च दर्गाह प्रवानकस्य श्रीचन्द्र देवस्य प्रवान कश्चकः ॥२६॥

अर्थ—उदासीन जज्ञासी राम निर्वाण श्री गुरु तुलसी दास जी उदासीन के चेले वि० सं० १७२० चैत्रबदी १५ को बने थे। जज्ञासो राम के सम्प्रदाय वाले गृहस्थ सन्त उदासीन अधिक तया सिन्धु में निवास करते हैं, श्री तुलसी दास जी गुरु भक्त भगवान् दर्गाह परवान के चेले थे, श्रीभक्त भगवान् श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य के चेले थे ॥२६॥

गुण खाश्वभ्वाषाढ़िक् शुक्ल प्रतिपद् रामरायकः कीर्ति पुरे हि जातः।
कल्याणि माताऽस्यस चवै पितास्य गुरुदित्त शिष्यो हरिरायनामा ।२७।

अर्थ—श्री रामराय जी उदासीन का जन्म वि० सं० १७०३ आषाढ़ सुदी १ को पिता श्री हरिराय जी और माता श्रीमती कोट कल्याणी जी से कीर्तपुर में हुआ। आप के पिता श्री हरिराय जी उदासीन श्री गुरु दित्ता जी के पुत्र तथा चेले भी थे। श्री गुरुदित्ता जी श्री ११०८ जगतगुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चेले थे ॥२७॥

तिथ्यश्वभू माधव शुक्ल रामाः तिथाभूद्बालु हसनस्यशिष्यः।
गत्वा हि दिल्लीमवरङ्ग जेवं व्यस्मापयद्धिभिः रामरायः ॥२८॥

अर्थ—श्री गुरु रामराय जी श्री गुरु बालू हसना जी उदासीन के चेले वि० सं० १७१५ वैशाख शुक्ल ३ को बन कर सब ऋद्धि सिद्धियों के धनो हुये। आपने दिल्ली जाकर बादशाह औरङ्गजेब को अनेक करामात दिखाई और अपने हिन्दू धर्म का महत्व सर्वोच्च बनाया, जिन करामातों को देख औरङ्गजेब जैसा कट्टर मत पक्षी भी आप के आगे शिर झुकाकर मान गया कि उदासीन साधु यथार्थ में पहुंचे हुये खुदा के प्यारे करामात के धनी होते हैं ॥२८॥

ततः कुरुक्षेत्र मितश्च दूने स्थापितो देहर हतीव नाम्ना।
वेदाब्धि हय भूमित् भाद्रशुक्ले रवौ हि सुलोकमगाच्च रामः ॥२९॥

अर्थ—श्री गुरु रामराय जी उदासीन दिल्ली से चल कुरुक्षेत्र हरिद्वार होते आय दून में डेरा लगाकर स्थान बनाया। तब से इस नगर का नाम देहरादून पड़ गया। आपका देव लोक वि० सं० १७४४ भाद्र शुक्ल ८ रविवार को यहीं हुआ। आप की समाधि भी यहीं बनी ॥२९॥

श्रीन्द्रेश चरणोहि महन्तकोऽधुना स साधु सेवीहि उदार चित्तः।
बचनाम्ना च द्वितीय देहरा यत्रत्यको बचनदास महन्तः ॥३०॥

अर्थ—श्री गुरु रामराय जो उदासीन के पश्चात् एक से एक प्रभाव शाली महन्त इस स्थान में होते चले आये हैं। वर्तमान महन्त श्री लक्ष्मण दास जी उदासीन के चेले श्री महन्त इन्द्रेश चरण दास जी एम० ए० बड़े भद्र पुरुष प्रसन्न बदन साधु सेवी उदारात्मा सरल हृदय हैं। आप की शाखा का दूसरा स्थान लाहौर छावनी के पास चबच्चा साहिब के नाम से प्रसिद्ध है जिसके वर्तमान महन्त बचन दास जी उदासीन सर्व गुण निधान हैं ॥३०॥

नोट—श्री गुरु राम राय जी उदासीन के देहरे मन्दिर के मध्य निवार की खाट उस पर सुच्चे कपड़े बिछे नीचे चौड़ी समाधि बनी है। देहरे की विभूति बिछाई शरीर के माफिक लम्बी चौड़ी बैठने का थला बड़ा ३ फुट चौड़ा ४॥ फुट लम्बा १ फुट ऊँचा है इसी की यहाँ पूजा होती है। समाधि को ही देहरा कहते हैं।

थानदास उदासीनो दया रामस्य शिष्यकः।
अलमस्तस्य च पद्धत्या भवानस्ति न संशयः ॥३१॥

भवत्प्रणाल्या च हि केशवानन्द विद्यानिधिश्च भारत भूषणोऽस्ति।
द्वारे हरे वैं मुनिमंडलाश्रमम् निर्मापयद् यत्र ह्य चलो महन्तः ॥

अर्थ—श्रीमान् थानदास जी उदासीन चेला बाबा दया राम जी के थे, आप श्री अलमस्त जी की पद्धति से हैं, आप की ही परम्परा (पद्धति) से श्रीमान् भारत भूषण विद्या दिवाकर पं० केशवा नन्द जी उदासीन हुये हैं, जिन्हों ने अपना स्थान मुनिमण्डल, आश्रम हरिद्वार (कनखल) में बनाया जो अब तक विद्यमान है ॥३१॥३२॥

चतुर्धूनकाः षड्बक्शीश नामा तथोपबक्शीश महात्म रूपाः।
सर्वेह्युदासीनक पञ्चकायत् अखाड़ मध्ये मिलिता हि सन्ति ॥३३॥

सर्वाह्युदासीन् महात्म विस्तृतिः श्रीचन्द्र कस्योद्यम रूपिणीयम्।
यो हिन्दुजातिं सुखितां व्यधाच्चात्याचारिणोऽप्यत्र पराङ्मुखांश्च ॥३४॥

अर्थ—उपर्युक्त सभी चार धूने ६ बक्शीश तथा उपबक्शीश सब गुरु उदासीन पञ्चायती अखाड़े के भीतर सम्मिलित हैं। अर्थात् उपर्युक्त सर्व उदासीन महात्माओं के शिष्य वंश घर उदासीन पञ्चायती अखाड़े की पूजा करते हुये उदासीन भेष मर्यादा भीतर चलते हैं। यह सब श्रौत उदासीन मुनि और ऋषियों का वर्त्तमान् विस्तार एक कर्म वीर पूज्य चरण आचार्य प्रवर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के प्रवल पुरुषार्थ का प्रताप है जो उन्होंने हिन्दू धर्म रक्षार्थ स्थल २ में प्रचार केन्द्र बनाय उनमें विद्वान् प्रचारक उदासीन महात्माओं को बैठाय सर्वत्र अपने प्रचार के जरिये अत्याचारियों का मुख मोड़ फिर से हिन्दू

धर्म और जाति को दिगन्त व्यापी कर सुख के सिंहासन पर चढ़ाय अपना कर्तव्य पालन किया ॥३३-३४॥

॥ उदासीन साधु हिन्दू हैं ॥

"वेदं चतुर्विंशावतारांश्च मुनिगुरु मन्येत् हिन्दुत्त्वम्"

उदासीन साधु सदा हिन्दु रूपा धराधर्म धारी कदा न चलन्ति।
भवेन्न्यायवार्ता यथार्थ स्वकीय जई धर्म सत्यं सदा सत्य सत्यम्॥३५॥

(क) भावार्थ—चार वेद चौबीस औतार में एक भी अवतार जो माने अथवा मुनि (साधु) गुरु को माने अथवा साकार निराकार दोनों को माने सो हिन्दू है। अथवा ऊपर लिखी सभी वार्तों को माने वह हिन्दू है।

भावार्थ—वेदप्रतिपादित निराकार साकार के मानने वाले वर्णाश्रमी सब हिन्दू हैं चौबीस अवतार मानने वाले सनातनी जैनी बौद्ध आस्तिक नास्तिक जो गुरु को मानते हों वह सब हिन्दू ही हैं, बौद्ध लोग बुद्ध मुनि को मानते हैं सो भी हिन्दू ही हैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी, देवते, गऊ, वेद, तीर्थ, राम, कृष्ण, साधु, ब्राह्मण, साकार निराकार को मानने वाले सब हिन्दू ही हैं अन्य नहीं, हिन्दू धर्म में गुरु का पद सबसे ऊँचा माना गया है, हिन्दुओं के अनुसार ही अन्यधर्मी भी अपने २ गुरु (उस्ताद) का आदर करते चले आये हैं, हिन्दू जाति (कौम Caste or Kind) सब कौमों के प्रथम की होने कर बड़ी और प्राचीन है, तभी सब अन्य जातियें इसके पवित्र सिद्धान्तों का अनुकरण करती चली आ रही हैं, इसी हिन्दू जाति के भीतर उदासीन सम्प्रदाय औत चतुर्थाश्रमी सृष्टि आदि काल से चला आ रहा है जिसका प्रसङ्ग हम इस पुस्तक में प्रथम बहुत स्थानों में सप्रमाण लिख आये हैं, जो संसार में प्रसिद्ध वार्ता है किसी के छिपाये नहीं छिप सकती है। इतना जानते हुये भी कुछेक लोग उदासीन सम्प्रदाय की चढ़ती कला को न सहन कर सकने के कारण अथवा अपने मत के बढ़ाने के लोभ में आके उदासीन साधुओं के प्रताप रूपी सूर्य को अपने द्वेष रूपी मिट्टी से भर शक्ति छिपाने का विफल प्रयत्न किया करते हैं, जिससे उदासीन सम्प्रदाय को हर प्रकार से हानि पहुँचती रहती है किन्तु "काँचों काँचः मणि मणिः" वत् मुख्य बात सच आकाश में भी जाय के नहीं छिपती।

उदासीन साधुओं को हर प्रकार का डर लोभ दिया गया लेकिन उदासीन साधुओं ने अपने हिन्दूधर्म के बाहर होना न पसन्द किया, अन्त में मुकदमे बाजी भी हुई पर यहाँ पर भी हाई कोर्ट पञ्जाब ने माणिकवाले केस में यही फैसला दिया कि उदासीन हिन्दू हैं तथा उदासीनों की सम्पत्ति में अन्य मत का कोई अधिकार नहीं है अदालत ट्रिब्यूनल लाहौर (Tribunal Court) वाली ने ता० ११ फरवरी १९३३ ई० को पुनः इस तौर पर फैसला किया "सिक्ख

और उदासीन अलग अलग हैं।" इसलिये किसी भी उदासी को अकालियों के साथ फैसला करने का कोई हक नहीं है। जो भी महन्त अकालियों के साथ राजीनामा करेगा वह बेकानूनी होगा। हिन्दू उदासीन फिरका सिक्खों से जुदा है, उदासी के स्थान में यदि श्री ग्रंथ साहब पढने के लिये रक्खा है इससे उदासी स्थान सिक्ख गुरु द्वारा नहीं बन सकता देखो नं० १८६ अपील साल १६३८ ई० लाहौर हाईकोर्ट की जिसका फैसला ता० १२ जनवरी १९३३ ई० को हुआ। अखबार महात्मा समाचार ता० २८ फरवरी सन् १६३३ ई० सफा २ में उपरोक्त फैसला ता० १२ फरवरी वाला लिखा है।

उदासीन पंथ वाले हिन्दू हैं (India Law Report 15 Lahore year 1934 page 247 and All India Report 1934 Lahore page 13. यही फैसला) प्रीवी कौंसिल लंदन नं० १०, १०८, १०६ साल १६३२ के अपील की ता० २१ जनवरी सन् १६३६ ई०, में हुआ कि उदासी हिन्दू हैं। मनुष्य गणना के समय भी सरकार की ओर से उदासीन साधु सन्त हिन्दू लिखे गये (देखो मनुष्य गणना की रिपोर्ट सैन्सस ऑफ इन्डिया Census of India 1931, 40 e. i. India part 1 Report पृष्ठ ३८८ पैराग्राफ १६४ में वाई० जे० एच हटन साहब अंग्रेज लिखते हैं कि उदासीन साधू हिन्दू हैं। ये सब प्रबल प्रमाणों से सिद्ध है कि उदासीन साधु प्रारम्भ काल से ही हिन्दू थे और अभी तक हैं, अनेक प्रकार की धन जन की क्षति सहन करते हुये भी उदासीन साधुओं ने अपने हिन्दू धर्म को स्थित बनाये रखा, उदासीन साधुओं के स्थान का प्रबन्ध उदासीन भेष वाले हो कर सकते हैं न दूसरा कोई दूसरे के मजहबी स्थान में दूसरा प्रबन्धक नहीं बन सकता, देखो फैसला कलकत्ता डिवीजन बेंच हाई कोर्ट नं० ६३ C. A. L. ३३६ में कहा गया है कि एक मजहब के स्थान का इन्तजाम दूसरे मजहब वाले के हाथ में नहीं दिया जा सकता, दूसरे मजहब पर दूसरे का हक कोई नहीं हो सकता, देखो कानून वहवज जायदाद तारुल मजहब ऐक्ट नं० २१ सन् १८५० तथा फैसला फनासिल (फैनेन सियल) कमिश्नर पंजाब नं० ६ सन् १८७२ ई० फैसला दिवानी चीफ कोर्ट पंजाब नं० ६७ सन् १८६७ ई० फैसला नं० १२ सन् १८७२ ई० इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि कानून के तरीके के मुताबिक उदासीन जायदाद पर दूसरा अधिकारी नहीं हो सकता ॥३५॥

इति श्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धुगंगामध्यवर्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परम हंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकाय मान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे उपबक्शीर्शे एवं उदासीन सम्प्रदाय हिन्दू धर्मानुयायी न्यायालय से सिद्ध करण प्रसंग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी सप्त चत्वारिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥४७॥

॥ अष्ट चत्वारिंशत्तमः किरण प्रारम्भः ॥

॥ निर्वाण श्रीप्रीतम दासजी उदासीन ॥

निर्वाणः कलि कल्मषघ्न पदवी माश्रित्य लोके प्रभुः,
शान्तः क्षान्ततमः कृती प्रियतमो दासो महान्धार्मिकः ।
आर्षै शर्ष समर्ष चन्द्रगणना कान्ते शुचौ जज्ञ के,
पाञ्चाले हुसिया पुरे सुवदनः सारस्वतो ब्राह्मणः ॥१॥

अर्थ—पूज्यपाद निर्वाण श्री प्रीतमदास जी उदासीन महात्मा विद्वद्वरिष्ठ, निखिल-शास्त्राधीत, वृहत्त्वाराधिष्ठ, कलि कल्मषघ्न विनाशन, शान्त क्षमावान्, बड़े धार्मिक थे, आप का जन्म वि० सं० १७७७ आषाढ सुदी १५ को पञ्जाब प्रान्त हुशियार पुर में सारस्वत ब्राह्मण के घर हुआ था ॥१॥

युग्माङ्कैः ऋषि चन्द्रमान लसिते भाद्रेऽसिते वार्षिके,
अष्टम्याञ्च वरः सुधासर इति प्रख्यातिमायातियत् ।
तत्रैवापि महन्त संङ्गत मुनेर्दासस्य शिष्यो यतिः,
नाम्ना प्रीतमदास देव इति वै दक्षावतारो कलौ ॥२॥

अर्थ—वि० सं० १७९२ भाद्र कृष्ण ८ को अमृतसर में प्रख्यात महन्त संगत दास जी से उदासीन वेष धारण कर चेले बने, आपका नाम प्रीतमदास जी रखा गया, आप इस कलि काल में दक्ष प्रजापति के अंश से आविर्भूत हुये थे ॥२॥

मीहां साहब पद्धते रनुसरः निर्वाण वाणाङ्कितः,
विद्या वारिध वेद शास्त्र निपुणस्साहित्य काव्यानुगः ।
ऐक्यं साधु जने मुनि प्रलसिते स्यादेतदर्थं च सः,
कृत्वा चैव विचारणां वहुमतिं गत्वा तपो लब्धये ॥३॥

अर्थ—आप श्री मीहां साहब जी की पद्धति से हैं, आप छोटी ही अवस्था में न केवल संस्कृत जैसी महान् विद्या में ही किन्तु उसके सम्पूर्ण साहित्य काव्यों के प्रत्येक विभाग में पूर्णदक्षता प्राप्त कर चुके थे और कुशाग्र बुद्धि प्रथम से ही थे जब अपने गुरुदेव के पास वेदाध्ययन विधि पूर्वक समाप्त कर चुके तब आप के श्रीगुरुदेव जी ने प्रसन्न हो के आपको विद्वद्वरिष्ठ निखिल शास्त्राधीत वृहत्त्वाराधिष्ठ की उपाधि (टायटल) प्रदान की । एक समय आपके मन में अपने उदासीन सम्प्रदाय को संगठित रूप में करने का विचार

विचार उत्पन्न हुआ। इस कार्य क्रम में प्रथम उदासीन भेष की एक पंचायत बनाई जाय जिसकी आवाज समस्त भेष की आवाज समझी जाय, इसके जरिये हिन्दूधर्म का प्रचार भी सरलता से होगा और प्रभाव भी अधिक पड़ेगा कारण कलियुग में संगठन शक्ति ही काम आती है। परन्तु इस कार्य के करने में अधिक शक्ति और सहायता की आवश्यकता है, खाली विद्यासे ही काम न चलेगा, कुछ तप बल की आवश्यकता भी आवश्यकीय है, कारण तपबल बड़ा बल है तप के ही बल से भगीरथ गङ्गा जी लाये, तप बल से पार्वती ने शंकर को पाया, तप बल से ध्रुव को अटल राज मिला, तप बल से ब्रह्मा सृष्टि रचता हैं, तप (पुरुषार्थ) बल से ही संसार में कठिन से कठिन कार्य सुलभ हो जाया करते हैं ॥३॥

आर्षैरिङ्क सर्मर्षिचन्द्र वितते श्री वैक्रमे मानिते ,
धीरः सोऽप्यगमत् महामुनिमते स्थाने वने शोभिते ।
धाम्नि श्रीबनखण्डिदेवक मुनैश्वक्तिश्च सम्बृद्धये ,
आशीर्वाद युतं वचश्च मुनिराट् दत्वास्मसंशोभते ॥४॥

अर्थ—ऐसा विचार आप धीरे २ नैपाल राज्य के जङ्गल में जहां श्री १००८ सिद्धेश्वर बनखण्डी साहबजी उदासीन महात्मा तप करते थे उनके पास वि० सं० १७६७ को पहुँच प्रणाम कर अपने मन का समस्त संकल्प बड़े नम्र भाव से सुनाते भये, जिसे सुनके श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डि महाराज परोपकारी कार्य विचार के बड़े प्रसन्न हो आशीर्वाद देते बोले कि तुम यहीं रह के तपिस्या करो, श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् तुम्हारा मनोरथ सफल करेंगे। यह आशीर्वाद और आज्ञा श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी महाराज की पाय श्री प्रीतम दास जी उदासीन महात्मा वहीं रह गुरुतर (बड़ी कठिन) तपस्या करने लगे साथ ही निर्वाण सिद्धेश्वर बनखण्डी साहब की सेवा भी करते रहे ॥४॥

समाप्ते द्वादशे वर्षे बनखण्डी तपो धनः ।
सर्वान्कामांश्च सिद्धन्ति जपत्वा गुरुमन्त्र कम् ॥५॥

अर्थ—इस प्रकार जब १२ वर्ष व्यतीत हुये और तप का अनुष्ठान भी पूरा हुआ, तब श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी साहब जी ने आशीर्वाद दिया कि आप अपने मनोरथ में सफल कार्य होंगे, आपका यश सर्वत्र भारत में चिर स्थाई होगा, आपके उपकार को हिन्दू जनता में उदासीन महात्मा गायन किया करेंगे, जिसके श्रवण से सब का कल्याण होगा, यह उदासीन सम्प्रदाय सृष्टिप्रारम्भ काल से ही परोपकारी जगत हित रक्षक चला आरहा है, और आगे घोर से घोर कलियुग आने पर भी अखंड धारा से इसी प्रकार चलता रहेगा ॥५॥

महा निर्वाण तन्त्र में लिखा है

ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति वानप्रस्थोऽपन प्रिये
गार्हस्थ्यो भैक्षुकश्चैव आश्रमौद्वौकलौयुगे ॥८॥ } महानिर्वाण तन्त्र अष्टम उल्लास

अर्थ—भगवान् शंकर जी कहते हैं हे पार्वती घोर कलियुग में जब ब्रह्मचर्य्याश्रम तथा वानप्रस्थाश्रम न रहि जांयगे तब भी गृहस्थ तथा भिक्षुक (उदासीन) यह दोनों आश्रम रहेंगे इसी के आधार पर उदासीन मतप्रदीप पञ्चमी शिखा पृष्ठ ५२ में लिखा है

वानप्रस्थस्तथान्यासः कलौशास्त्रे न वर्जितः
औदासीन्यात्मकोन्यासः परंश्रेयस्करंमतम्

इसकी पुष्टि भविष्य पुराण में इस प्रकार होती है

तस्मिन् काले कलौघोरे सम्प्रदायो भविष्यति
उदासीन साधुवश्चापि गृहस्थाश्चद्विधा भवेत्
कुटुम्ब भरणेभक्तः पूजांचासोगृही भवेत्
एकाकी यस्तुविचरे दुदासीनः सभिक्षुकः } भविष्य पुराण पूर्वार्द्ध अ० ३३

नोट—ऐसा समझाके पुनः श्री १००८ सद्गुरु सिद्धेश्वर बनखण्डि जी प्रसन्न हो के बोले कि तुमने जो उदासीन सम्प्रदाय को सङ्गठित करके उसकी शक्ति बढ़ाने का विचार किया है।

सम्वृद्धि सिद्धि सहितः महा कुम्भ सुपर्वणि।
विजयध्वजया युक्तो स्थानं अन्न क्षेत्र सह ॥६॥

अर्थ—सो अति उत्तम कार्य विचारा है आप ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न हो के जहाँ २ कुम्भमहापर्व लगते हैं वहाँ २ अपनी विजयनी पता का (ध्वजा) खड़ी करके अन्न क्षेत्र भी लगावो साथ ही साधुओं के निवासार्थ मकान भी बनाओ ॥६॥

मनोरथश्च सकला सिद्धस्स्यादिति मे मतिः।
तवैव पुरुतः कश्चिद्द स्थातुं शक्नोति नैव हि ॥७॥

अर्थ—हमारे आशीर्वाद से तुम्हारे सर्व मनोरथ सिद्ध होंगे आप अपने कार्य में निश्शङ्क हो के लग जाओ ऐसा कह ॥७॥

९२

अङ्क शून्यै नाग चन्द्रै स्सजितं वैक्रमे शुभे ।
श्रीमद् प्रीतम दासाय ददौ गोलाम्महा मुनिः ॥८॥

अर्थ—वि० सं० १८०९ को अपने हाथ से प्रीतम दास जी के शिर में श्री गुरु बनखण्डि देव जी ने सिद्ध बबुरान (जटा) को वट के बाँध मांथे में विभूति का तिलक दे कहा जाओ आप जमात फेरो इस गोले की पूजा आप भी करना तथा औरों से भी कराना ॥८॥

नोट—प्यारे हिन्दू वीरो उदासीन साधुओं में त्रिभूति का गोला अनादि काल से चला आता है यह उदासीनों की मात्रा से प्रसिद्ध है। ब्रह्मा से ब्राह्मण,विष्णु से उदासीन शिव से सन्यासी और नाथ अपना चलना मानते हैं। उपरोक्त सभी विभूति के पूजक हैं अग्नि होत्र करते हैं। ॐ का जप भी सभी करते हैं सभी में त्यागी विरक्त सदाचारी साधु होते हैं, अग्नि होत्र का ही नाम धूना साधुओं में कहा जाता है, धूने की ही विभूति से गोला बनाया जाता है, इसकी पूजा करते और मस्तक में चढ़ाते (लगाते) हैं, तथा इसी सिद्ध विभूति को जब किसी पर किसी प्रकार का कष्ट आजाता है तब खाने लगाने को देते हैं। इसके प्रताप से सब रोग दोष दूर हो जाते हैं, तथा भावना रखने वाले सद्गृहस्थों को सन्तान और सम्पदा भी मिलती रहती है। विभूति का गोला यज्ञ पुरुष की प्रसादी उदासीन साधु मानते हैं।

ततोऽसौ मण्डली नीत्वा मह्यां धर्म प्रचारणम् ।
कुर्वन् बभ्राम दिग्वासा दिक्षु कीर्तिञ्च विक्षिपन् ॥९॥

अर्थ—महाराज श्री गुरु बनखण्डि देव जी से ऐसा वदान पाय निर्वाण प्रतीम दास जी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् का ध्यान धर उदासीन साधुओं की जमात ले ॥९॥

श्रीमान् प्रीतमदासस्य तथा संतोष दासकः ।
तीर्थ राज प्रयागे च आगतः कुम्भ पर्वनि ॥१०॥
रस रामै नाग चन्द्रै संस्कृते वैक्रमे तदा ।
ध्वजाया स्थापनं पूर्वं चक्राते धार्मिकौ यतौ ॥११॥

अर्थ—श्रीमान निर्वाण प्रीतम दास जी अपने साथ में महाराज संतोष दास जी उदासीन को लै दोनों महात्मा साधुओं की जमात को अपने साथ रख देशान्तरों में भ्रमण करते को वि० सं० १८१० में निकले। आपने प्रचार द्वारा जगत में हिन्दू धर्म के उन्नति का डङ्का अखंडबजा दिया, तभी जगत में प्रसिद्ध हुए। आप लोग प्रचार करते २ कुम्भ पर्व पर प्रयाग राज आय वि० सं० १८३६ में प्रथम ध्वजा खड़ी की ॥१०-११॥

ततोऽमृत सरः प्राप्य वसुरामवसौ विधौ ।
साधूनां सन्निवासार्थं चक्रे सङ्गल मठं शुभम् ॥१२॥

अर्थ—श्री निर्वाण प्रीतम दास जी प्रयागराज से अमृत सर आये और यहाँ वि० सं० १८३८ में साधुओं के निवासार्थं मकान बनाया जो सङ्गल वाले अखाड़े के नाम से आज तक प्रसिद्ध है ॥१२॥

चक्रे सन्तोषदासोऽपि ब्रह्मबूटाभिधं मठम् ।
सन्तोषसर इत्येव सरः खानितवान् महान् ॥१३॥

अर्थ—इसी प्रकार श्री निर्वाण सन्तोष दास जी ने भी अपना मकान अमृतसर में बनाया जो ब्रह्मबूटे के नाम से आज तक प्रसिद्ध है तथा अपने नाम से एक बड़ा तालाब खुदवाया जिसको सन्तोषसर कहते हैं इस स्थान के मालिक उदासीन महात्मा हैं ॥१३॥

ताभ्यामठ द्वयं योग्यं निर्माप्य विधि पूर्वकम् ।
व्यासाख्यनद्या नहर मानयामासतु र्महत् ॥१४॥

सुधा सरसि संयोज्य लेभाते विपुलं यशः ।
महात्मनस्तयो लोके कीर्तिं गायन्ति पण्डिताः ॥१५॥

अर्थ—दोनों ने अपने २ मकान बनाने के पीछे वि० सं० १८४०—१८४१ में व्यास नदी से नहर लाय के श्री प्रीतम दास जी उदासीन तथा श्री सन्तोष दास जी उदासीन दोनों महात्मा ने तालाब अमृतसर में डाली, इस नहर का नाम हँसुली नहर है, इस देश हितकारी कार्य से संसार में आप लोगों का विपुल यश पण्डित लोग गायन करने लगे ॥१४-१५॥

सुधा सरसि दिव्यञ्च निर्वाण सर एवहि ।
उदासीनाश्रमस्त्येवं विख्यातं भुवि धार्मिकम् ॥१६॥

अर्थ—श्री निर्वाण प्रीतम दास जी ने वि० सं० १८४५ में अमृतसर शहर में एक तालाब खुदवाया, जो निर्वाण सर के नाम से प्रसिद्ध है, यहां पर उदासीनाश्रम बना है जिसके मालिक उदासीन महात्मा हैं ॥१६॥

तौ हैदराबाद प्रितष्ठते च प्रान्ते प्रयाणं खलु चक्र तुश्च ।
हिन्दूपदेशार्थ कृत प्रयत्नौ समण्डली कौ हि समागतौ च ॥१७॥

अर्थ—श्री निर्वाण प्रीतम दास जी तथा निर्वाण सन्तोष दास जी दोनों साथ में उदा-

सीन साधुओं की जमात ले हिन्दू धर्म का प्रचार करते करते दक्षिण हैदराबाद में आते भये, यहां आप के प्रचार का अच्छा प्रभाव पड़ा, बहुत जनता आपकी सेवक बनी ॥१७॥

श्री चन्दुलाल किल नानकश्च भक्त प्रवीरावति धार्मिकौ च।
भक्त्या तदानी नवलक्षमुद्रां समर्पयामासतु रेवताभ्याम् ॥१८॥

अर्थ—आप लोगों ने अपने धर्म उपदेश से राजा चन्दूलाल को सेवक बनाया जहां पर निर्वाण जी बैठे थे वह स्थल निर्वाण गंज अखाड़ा करके अभी तक प्रसिद्ध है। उदासीन महन्त उसके मालिक हैं, चन्दूलाल के चाचा नानक चन्द ने निर्वाण जी के कार्य की पूर्ति के लिये उदारचित्त से धन दिया, जिस धन को तथा नानक चन्द को साथ ले निर्वाण श्री प्रीतम दास जी जमात समेत प्रयागराज में आय सर्व उदासीन सम्प्रदाय के साधु संत महन्तों को एकत्र करके सबकी सलाह लेके उदासीन पंचायती अखाड़ा निर्माण किया ॥१८॥

॥ श्री गुरु उदासीन पंचायती अखाड़ा ॥

उदासीन पञ्चायती सा अखाड़ा सुनिर्मापिता लोककल्याण वृद्धये।
सुवेदैश्चवेदै स्तथा नाग चन्द्रैर्मिते ह्याश्विनेऽह्यङ्क तिथ्यां प्रसन्नौ ॥१९॥

अर्थ—इसके सर्वदा सुरक्षित रहने निमित्त सर्व उदासीन सम्प्रदाय ने मिल के मिती आश्विन बदी ९ वि० सं० १८४४ को आठ रुपये के स्टाम्प पर नीचे लिखे महन्तों ने इकरारनामा लिख के देदिया है। हम चारों धूने तथा बक्शीशों के महन्तान आपके सामने आये हैं गुरु साहब महन्त प्राग दास जी शाकिन पटियाला, म० नेतानन्द व श्यामदास अमृतसर, महन्त गुरु नारायण दास लखनऊ, महन्त भगवान दास अयोध्या, महन्त नारायण दास हैदराबाद दक्षिण, निर्वाण अखाड़ा, महन्त गुरुमुख दास जमसेर, महन्त गङ्गा प्रसाद फुलेली, महन्त मनसा राम सर कड़ी परगना नजीमाबाद, म० हरिदास डेरा बाबा नानक, महन्त स्वरूप दास देहरादून, म० सहजादा बक्शर, म० गोपाल दास जैपाल, म० विष्णु दास कीरत पुर, म० गुरुमुख दास मोरां, म० ब्रह्मलाल रोही, म० नानक बक्श जबालखुर्द, म० नानक बक्श अमृतसर, म० राम प्रसाद उमाया, म० मखनी राम मुकाम हीरा, म० कर्णदास नानकमता,। म० लक्ष्मण दास लखनऊ म० विष्णु दास खैराबाद, म० आत्माराम वैरो, म० साधूराम बलाड़ी, म० सुन्दर दास नदेड़, म० प्रीतम दास नकोरवां, म० हरियस धाँके, म० श्यामदास म० रामसरण अमृतसर, म० हरप्रसाद अब्यलवाल, म० रामप्रसाद लखनऊ, श्री महन्त पूर्णदास पटना अजीमाबाद, म० मानदास सोलाना, म० रामशरण जोनला, म० रामशरण गुजरात, म० निहाल दास बिनौड़, म० गुरुमुख दास हुशियारपुर, म० सन्त दास कीरत पुर, म० जैपाल दास चीन घाटी, म० हरसरण दास व म० ब्रह्मगणेश फगवाड़ा, म० कृष्ण दास जलालपुर, म० भगत राम रोपड़,

वाबा गुरुपत दास खैराबाद, म० कृष्णदास पटियाला, म० गोविन्द दास हैदराबाद दक्षिण।

उपरोक्त हम सब महन्त अफसर उदासीन हर एक देश के हैं, इकरार करते है कि अखाड़ा पञ्चायती उदासीन महन्त सन्त साधु अफसर महन्त रामप्रसाद, महन्त हरिदास, महन्त ज्ञान प्रकाश म० ब्रह्मनारायण की सेवा टहल में हैं और रहेंगे, क्यों कि हमारी यह बड़ी कमेटी है जो हमारी रक्षा करेगी इसमें हमारे ही साधु सम्मलित हो के कार्यकर्ता बनेंगे। वि० सं० १८४५ में इलाहाबाद में अखाड़े का मकान बनाया। इस प्रकार अखाड़ा बनाय इसके उद्देश्य बनाये गये वह उद्देश्य नीचे दिये जाते हैं।

(१) जो पूँजी महन्त और सन्त उदासीन तथा गृहस्थ ने अखाड़े को खैराती कार्य के लिये देके इस पंचायती अखाड़े को बनाया है वह पूंजी (धंन) का सुप्रबन्ध करना और जो रकम मिलती है तथा मुनासिब तौर से बढ़ती है उसकी रक्षा करना साथ ही अखाड़े की मान मर्यादा स्थिर रखते हुये उसकी उन्नति करना।

(२) अखाड़े के स्थान में कहीं बाहर से उदासीन साधु सन्त महन्त कोई भी आजावे तो उसके रहने भोजन आदि का प्रबन्ध करना इसी प्रकार किसी जगह पर साधु समागम आदि होता हो तो वहाँ भी भोजनादि का प्रबन्ध करना।

(३) मठ स्थान (संगत) जिनका सम्बन्ध अखाड़े से पृथक है उसमें महन्त बनाना या उन बने महन्तों की निगरानी रक्षा का प्रबन्ध करना या उसमें कोई अन्य आदमी हस्तक्षेप करता हो तो उस स्थान की हस्ती और इज्जत सुरक्षित रखने की पैरवी करनी।

नोट—उपरोक्त तीन नम्बर के कायदे की पालना अखाड़े में कम हुई, नहीं तो उदासीन भेष के लक्षों रुपये की आमदनी भेष से हट के गैरों के हाथ न चली जाती।

इस अखाड़े में चार पंगत के चार महन्त इस प्रकार होते हैं अलमस्त जी का एक, गोइन्द साहब जी का एक, तथा बालूहसना जी का एक एक महन्त बनाया, फूल साहब के धूने का साधु उस समय वहाँ पर उपस्थित न होने कर चौथा महन्त भगत भगवान् जी की पद्धति में से नियत किया, कारण यह सब से प्रथम की बक्शीश थी, श्री निर्वाण जी के चार महन्त बनाने का यह अभिप्राय था कि चार दिशा हैं उनमें चार ही धाम हैं, ब्रह्मा के मुख चार हैं, वेद भी चार हैं, युग भी चार हैं, वर्ण भी चार हैं, आश्रम भी चार हैं, इसलिये महन्त भी चार ही उत्तम होंगे। जैसे चारो सनकादिक उदासीन मुनि अमर हैं इसी प्रकार चार महन्त रखने से यह संस्था भी अमर रहेगी। ऐसा बिचार चार महन्त रख पांचवे की जगह गोला साहब स्थापित कर नियम उपनियम बना के भारतवर्ष पर बड़ा उपकार किया। अखाड़े का सदर स्थान श्रीप्रयागराज (इलाहाबाद) है, तथा गोपीगंज, असरगंज, काशी, गया, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, अमृतसर, उज्जैन, दक्षिण हैदराबाद, त्रिम्बक, शिवकाश्री, गंदूर, पटियाला, और हरिद्वार आदि

में शाखा स्थान हैं। सब जगह जमात की तरफ से नियत किये हुये उदासीन मुकामी साधु महात्मा रहा करते हैं।

अखाड़ा त्वियम्मन्न सत्रादि धर्म प्रचारे सदाध्यान चित्ता प्रसिद्ध।
सदालोक कल्याण कर्त्री चधर्त्री न चैतादृशी कापि संस्था जगत्याम्॥
शिवो देव देवो महादेव देवो स्वयं शङ्करः सद्गुरुः सेव्य सेव्यः
सदा भारते मण्डलीकाय धर्मा प्रचारार्थ मेवं प्रयत्नं विधत्ते ॥२१॥

अर्थ—उदासीन जमात पंचायती अखाड़े की जिसमें महन्त, कुठारी कारबारी पुजारी, भण्डारी आदिर सब साथ होतें हैं। यहलोग पैदल समस्त भारतवर्ष में घूमते हुये हिन्दू सनातन धर्म का प्रचार करते हैं। साथ ही उदासीन भेष के स्थान धारियों से पूजा भी लेते हैं, साथ में हाथी घोड़ा ऊँट भी होते हैं, पूजा में गोला साहब के साथ ठाकुर जी की प्रतिमा भी होती है वेदादि ग्रन्थ भी साथ होते हैं, जमात के साधु भोजन अपने हाथ का बना के खाते हैं, पवित्र क्रिया रखते हैं, जो उदासीनों की प्राचीन प्रथा है अखाड़े में सब जटाधारी निर्वाण रहते हैं, सिया हुआ वस्त्र पहिरने की मर्य्यादा नहीं है ऐसी सुंदर यह संस्था है ॥२०॥२१॥

वसुत्रय चन्द्रमिते दीपावल्याश्च वैक्रमे।
दिवं प्रियतमो दासः प्रयातो यति पुङ्गवः ॥२२॥

अर्थ—वि० सं० १८८८ कार्तिक वदी १५ दिवाली के दिन श्री निर्वाण प्रीतमदास जी उदासीन अमृतसर में भारत वर्ष से अन्तर्धान (मृत्यु होना) हो अपने स्वरूप याने दक्ष में जाके समागये कारण आप दक्ष प्रजा पति के अवतार थे यतियों में श्रेष्ठ नर पुङ्गव थे ॥२२॥

समा धैस्तस्य तत्रैव सुरम्ये सङ्गले मठे।
निर्मितः पूज्यतेऽद्यापि श्रद्धा भक्ति युतैर्जनैः ॥२३॥

अर्थ—श्री निर्वाण प्रीतम दास जी की समाधि भी अमृतसर शहर अपने स्थान सङ्गल वाले अखाड़े में बनी जो सुन्दर रम्य स्थान है जिसकी श्रद्धा भक्ति से लोग पूजा करते हैं ॥२३॥

॥ श्री गुरु उदासीन पञ्चायती नया अखाड़ा ॥

भुजाकाशांक चन्द्रेतु वैमनस्यं परस्परम्।
जातं तेन सभाभिन्ना प्रयागे नूतनाऽभवत् ॥२४॥

अर्थ—वि० सं० १९०२ में उदासीन महात्माओं में आपस के वैमनस्य हो जाने से कई महंतों ने मिलके प्रयाग राज के बांधवाले सूरदास जी की सहायता से अलग जमात बांधी और

इसका नाम उदासीन पंचायती नया अखाड़ा रखा तब से पहिले अखाड़े का नाम उदासीन पञ्चायती बड़ा अखाड़ा पड़ गया उदासीन पञ्चायती नये अखाड़े का मुख्य स्थान हरिद्वार है तथा प्रयाग, गया, कुरुक्षेत्र, काशी आदि२ में भी हैं कायदा मर्य्यादा रीत रवाज सब बड़े अखाड़े सदृश ही है इसमें केवल सङ्गत साहब जी के पद्धति वाले उदासीन महात्मा सम्मिलित हैं तथा बड़े में उदासीन मात्र ॥२४॥

राम चन्द्रांक चन्द्रे च तस्याः परषदः पुनः ।
राजकार्यालये जातः नामोल्लेखो यथा विधि ॥२५॥

अर्थ—सन् १६१३ ई० जून ६ को श्री गुरु उदासीन पञ्चायती नया अखाड़ा सरकार में यथा विधि रजिष्टर हुआ ॥२५॥

निहालश्चेतनोऽनन्तः ब्रह्मनारायणः सुधीः ।
वीरमो मौजदरिया सन्तो गुरु प्रसादयः ॥२६॥

एते महान्तो दासान्ताः तत्र स्वां सम्मतिं ददुः ।
नामावल्यां पुनश्चक्रुः स्वानि हस्ताक्षराणि ते ॥२७॥

अर्थ—इसमें निम्नलिखित आठ महन्तों की सही पड़ी है (१) महन्त निहाल दास जी (२) महन्त चेतन दास जी (३) महन्त अनन्त दास जी (४) महन्त ब्रह्मनारायणदास जी (५) महन्त वीरम दास जी (६) महन्त मौजदरियाव दास जी (७) महन्त सन्त दास जी (८) महन्त गुरु प्रसाद जी हैं ए सब महन्तों ने अपनी २ सम्मति (हस्ताक्षर) देकर जमात बांधी ॥२६-२७॥

उदासीन पञ्चायती धर्म रूपा नवीना अखाड़ा प्रसिद्धा भुविते,
सदा हैन्दवानाञ्च कर्ष प्रचारेऽनुरक्ताऽनुरक्ता प्रपूज्याजनैश्च ॥२८॥
न चैतादृशी धार्मिकी सत्प्रताकाऽवतारावता रैर्नवीनं युगञ्च,
विधत्ते विधत्ते महापूर्णरूपा पर ब्रह्मपूर्ण प्रवाहे प्रवृद्धा ॥२९॥

अर्थ—यह उदासीन नवीन पञ्चायती अखाड़ा संसार में प्रसिद्ध है यह सदा हिन्दू धर्म प्रचार में अत्यन्त ही अनुरक्त रहता है। इस प्रकारकी धार्मिक पताका (सम्प्रदाय) इस कलियुग में यही है जो कि पूर्ण रूप से नियमित है और पर ब्रह्म के प्रवाह मे बढ़ती दिखाई देती है। इनकी भी जमात पैदल समस्त भारतवर्ष में भ्रमण करती रहती है। अपनी एक ही पद्धति (श्री गुरु संगत साहब) से चार महन्त बनाते हैं गोला साहबकी पूजा करते हैं हाथी घोड़े ऊँट सब वही बड़े अखाड़े का नमूना और वही कायदा रखते हैं कोई भेद भाव नहीं है ॥२८-२९॥

नोट—हर कुम्भों पर दोनों अखाड़ों की शाही (जुलूस) निकलती हैं उपरोक्त उदासीन भेष के दोनों अखाड़े समस्त उदासीन भेष के प्रतिनिधि हैं, अखाड़े की आवाज समस्त उदासीनों की आवाज मानी जाती है। उदासीन सम्प्रदाय के महन्त मण्डल के श्री महंतादि सब मिलके अखाड़े की बे इन्तजामी का सुधार करा सकते हैं।

॥ श्री निर्वाण सन्तोष दास जी उदासीन ॥

वसु रस ऋषि चन्द्रे श्रावणे शुक्ल पक्षे,
शुभ दिवस दशम्यां रम्य पञ्चाम्बुदेशे।
नरतनुरलकाया वल्लभो श्री कुवेरः,
जनुरनु भवतिस्म प्रेमि सन्तोषदासः ॥३०॥

अर्थ—निर्वाण सन्तोषदास जी उदासीन महात्मा का जन्म वि० सं० १७६८ श्रावण सुदी १० को पञ्जाब प्रान्त जलन्धर शहर में हुआ आप श्री कुवेर देवता का अवतार मनुष्य शरीर में आये थे मनुष्यों में आप के प्रेम तथा नम्रता का सुयश छाया था ॥३०॥

सर्व संस्कार सम्पन्नः कृत विद्या स सन्ततिः।
दैवाद्वैराग्यमापन्नः दारागारादिकं जहौ ॥३१॥

अर्थ—मुण्डन यज्ञोपवीतादि हो विद्याध्ययन विवाह के पश्चात् तीव्र वैराग्य की अधिकता वश स्त्री घर आदि सब त्याग कर निकल पड़े ॥३१॥

चन्द्राकाशवसौ चन्द्रे वैशाखी दिवसे शुभे।
हरिद्वारे पुण्यतीर्थे गुरियातो महात्मनः ॥३२॥

अर्थ—वि० सं० १८०१ वैसाखी के अवसर पर हरिद्वार में श्री गुरिया साहब जी उदासीन महात्मा से उदासीन भेष की दीक्षा ली नाम संतोषदास रखा गया ॥३२॥

तीव्र वैराग्य सम्पन्नः तपस्वी दान्त मानसः।
उत्तितीर्षुर्भवाम्भोधेः दीक्षां लेभे यथा विधिः ॥३३॥

अर्थ—श्री निर्वाण सन्तोष दास जी उदासीन ने तीव्र बैराग्य के प्रभाव वश शान्त मन से बड़े तपश्चर्यापूर्ण संसार समुद्र से पार होने वाले विधान पूर्वक दीक्षा ली थी ॥३३॥

तितीक्षतस्तपसायुक्तः सर्व भूत हिते रतः।
सत्कर्माणि सदा चक्रे भ्राम्यन् भूमण्डलं मुहुः ॥३४॥

अर्थ—श्री नर्वाण संतोष दास जी तितिक्षापूर्ण तपस्या करते सबके हित में सत्कर्मी पृथवी पर भ्रमण कर अपने हिन्दू धर्म प्रचार का डंका बजाते भये ॥३४॥

उदासीन वेषे यति प्राण देवः प्रसिद्धस्सदैवोपकारी महात्मा ।
सदादेश मात्रे प्रचारोपचारैः यशोधारणं देशकालानु कूलम् ॥३५॥

अर्थ—उदासीन सम्प्रदाय के प्राणवत् प्रसिद्ध परोपकारी महात्मा सदा देश के प्रचार करने में देश कालानुसार तत्पर रहने वाले श्री संतोष दास जी २२ वर्ष घूमते हुये प्रशन्सनीय हिन्दू धर्म को उन्नत कर दिखाया, जिसका उपकार हिन्दू जनता के समक्ष नित्य नया दृष्टि गोचर आता हुआ सुख शांति का विषय बना रहेगा ॥३५॥

शून्यवाणैर्नाग चन्द्रै दीपावल्याश्च सम्मिते ।
कुवेरांशश्च कौवेरं गतौलोकं स्वयं यतिः ॥३६॥

अर्थ—निर्वाण श्री संतोष दास जी का वि० सं० १८५० दिवाली के दिन अमृतसर में देव लोक हुआ आप कुवेर में जा मिले आप की समाधि भी आपके मकान ब्रह्मबूटा स्थान अमृतसर में ही बनी ॥ ·६॥

॥ उदासीन सम्प्रदाय विद्वन्नामावली ॥

उदासीन सिद्धान्तमार्गे विरक्ता महा पण्डिता धर्म निष्ठा अनेके ।
यथा नारदोदेवलो गौतमश्च वशिष्ठश्च वाल्मिक नामा मुनिश्च ॥३७॥
अगस्त्यश्च यास्कोमहा पण्डितश्च इदानीन्तने सन्ति विद्वद्वरेण्याः ।
न तेषाञ्च सम्वर्णने शक्तिशाली कविः काव्य कर्तानकोप्यऽस्ति लोके ।

अर्थ—हम ऊपर बता आये हैं कि उदासीन सम्प्रदाय प्रारम्भ से ही धर्मनिष्ठ विरक्त और विद्याभ्यासी रहा है, जिसमें सनकादिनारद, परशुराम, देवल, भरद्वाज, वाल्मीक, वशिष्ठ, गौतम, विश्वामित्र, दुर्वासा आदि २ विद्या मार्तण्ड उदासीन महात्मा हो गये हैं, उनके नाम तथा संक्षिप्त जीवन से आप लोगों को प्रथम परिचित कराचुका हूँ, जिस भेष के महात्मा ने ज्योतिष ग्रन्थ बनाये हैं (नारद मुनि), जिस भेष के महात्मा ने धनुर्विद्या का प्रचार बढ़ाया हो (विश्वा-मित्र), जिस भेष के महात्मा ने समुद्र को उठा कर पान कर लिया हो (अगस्त्य मुनि), जिस भेष के महात्मा ने नई सृष्टि बनाने का साहस कर दिखाया हो (विश्वा मित्र), जिस भेष के महात्मा ने निरुक्त ऐसा ग्रन्थ बनाया (यास्क मुनि), जिस भेष के महात्मा ने न्याय दर्शनसांख्य दर्शन (गौतम कपिल), रचे हों जिस भेष के महात्मा ने शिला तैराई हो (श्री चन्द्र भगवान), भला

उस भेष के पण्डितों की संख्या कौन कहकर पार पा सकता है हम पहिले भी कह आये हैं कि उदासीन भेष का समस्त हाल कोई भी नहीं लिख सकता है ॥३७॥३८॥

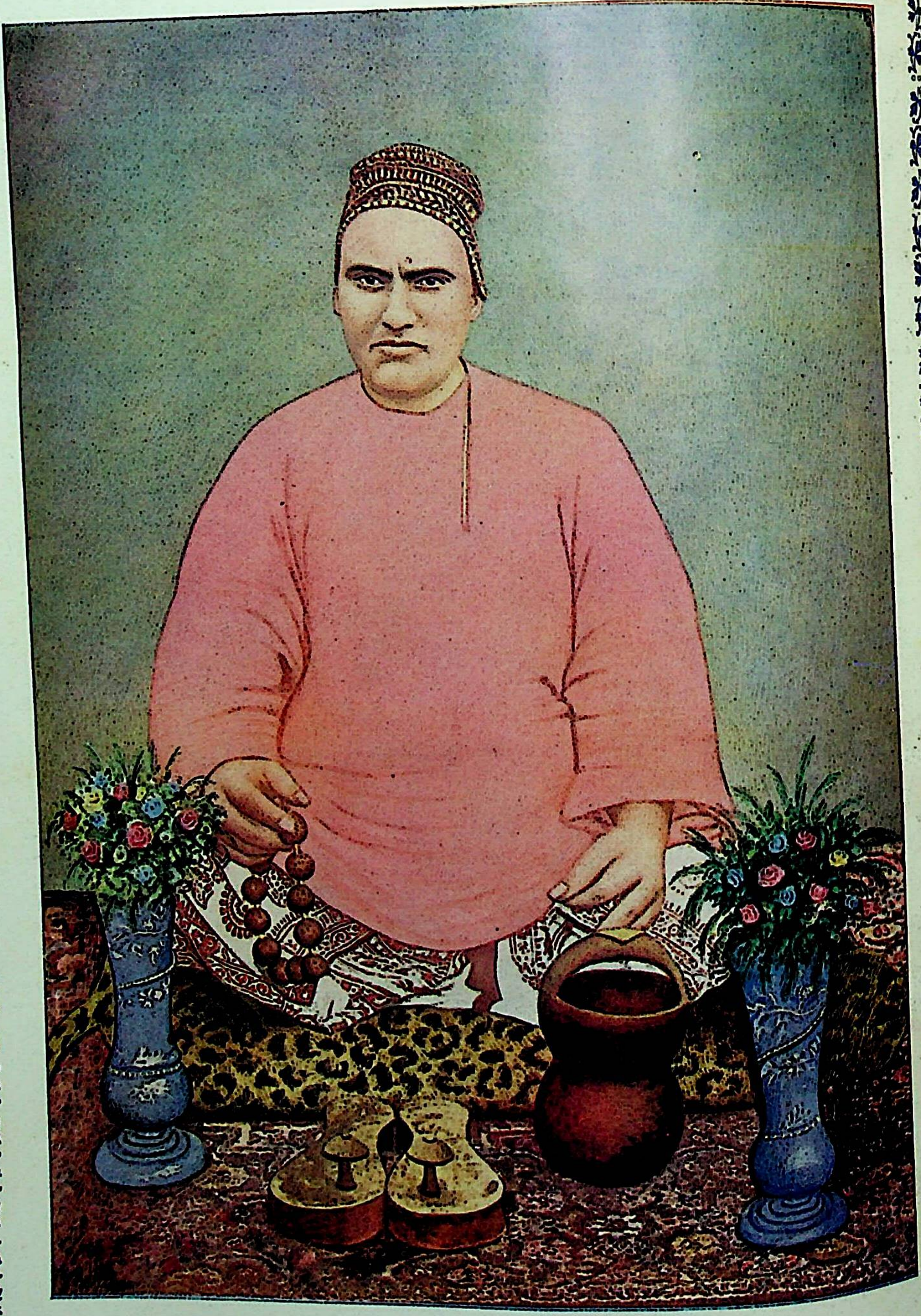
अगाधं मतं सम्प्रदाय स्वरूपं महा पण्डिता योगि राजा भवन्ति।
महा ग्रन्थ निर्माण कर्तोपिकर्त्ता सदाऽध्यायने दत्त चित्ताः प्रसिद्धाः॥

अर्थ—यह उदासीन सम्प्रदाय का इतिहासपरम अगाध है जितना भी लिखा गया है वह ताम्र पत्र तीर्थों के पण्डों की वही गुरु प्रणाली, मात्रा, और कुछ हस्त लिखित पुस्तकों के आधार पर हमें पूर्ण आशा है कि कोई उदासीन महात्मा हम से अधिक खोज करेगा वह और भी सविस्तार उदासीनों का चरित्र लिख सकेगा, इतिहास यह बताता है कि उदासीन भेष का महात्मा आगे कोई भी मूर्ख कायर, अज्ञानी नहीं हुआ सभी एक से एक बढ़ चढ़ के विद्वान कर्म निष्ठ, जपी, तपी, ज्ञानी ध्यानी हुआ करते थे, कारण उस समय भारत निवासी बच्चा २ विद्या प्रेमी था, परन्तु समय एक सा नहीं रहता इसी अनुसार जो भारत निवासी सर्व विद्याओं के भण्डार गिने और माने जाते थे वही भारत में आज सौ पीछे १० या १२ कठिनता से पण्डित निकलेंगे सूर्यकी गर्मी चन्द्रमा की शीतलता, वायु का झपेटा, सब को ही लगता है, इसी प्रकार समय का झपेटा (आक्रमण) भी सब को लगता है उस झपेटा में आकर उदासीनों ने भी बड़ी भारी हानि उठाई परन्तु फिर भी अपने पुरुषार्थ से उदासीनों ने अपने सम्प्रदाय से विद्या का महत्व जाने नहीं दिया तभी जगत प्रसिद्ध हो रहे हैं ॥३६॥

प्रयाणश्चकृत्वा मठा मन्दिराणि नवीना नवीनानि सम्यक् विधत्ते।
यथा सिन्धु नद्या यथा गङ्गिकाया प्रवहस्त्वविच्छिन्नवृत्तः प्रभाति।४०।
तथा सम्प्रदायश्च धारा अनन्ता सुयोगि प्रवीरैं र्वहन्ते जतन्ते।
अनेकैश्च सम्मर्दितं भारतन्तु समुज्वालयामास साधुमुनिश्च ॥४१॥

अर्थ—उदासीन महात्माओं ने अपने जप तप विद्या बल से भारतवर्ष में बड़े २ मठ मन्दिर निर्माण करे तथा कराये जिनमें हिन्दूधर्म रक्षा वाला पवित्र कार्य सिंधुगंगा के समान सदैव प्रवाहित हो रहा है, उन्हीं विद्या अनुरागी उदासीन पण्डितों की नामावली अब मैं यहाँ पर पाठकों की जानकारी के लिये उपस्थित करता हूँ जिनको संसार ने चारो वेद अथवा षट् शास्त्र वक्ता कह कर के पुकारा था। व्याकरण तथा भाषा के ज्ञाता तो उदासीन भेष में असंख्यात महात्मा हैं, उनका तो कोई अंत नहीं पा सकता। निम्न लिखित उदासीन सम्प्रदाय के पण्डितों की नामावली निर्वाण प्रीतम दास जी (उदासीन पञ्चायती बड़ा अखाड़ा बाँधने वालों) से पीछे हुये पण्डितों की है। क्या ही अच्छा हो जो कि कोई उदासीन महात्मा उद्यम करके इन पण्डितों का जीवन चरित्र लिखने की कृपा करे ॥४१॥

परमहंस परिब्राजकाचार्य्य श्रीगुरुउदासीनवर्य्य श्री १०९ पूज्यपाद
स्वामी जयरामदासजी महाराज पूर्व कालके महन्त
सद्गुरु वनखण्डी आश्रम श्री साधुबेला तीर्थ (सक्खर-सिन्धु)



Sqri 109 Swami Jairamdasji Mahraj Udasin

(Succeded the Gadi in [illegible] 1950)

पण्डित गङ्गा राम जी व्याकरणी हवेली काशी वाले, पण्डित आत्म स्वरूप जी भाषा
पञ्चदशी कर्त्ता, सरस्वती पुत्र स्वामी ज्योति स्वरूप जी काशी, पण्डित स्वामी गौड़ देव जी हर-
द्वार कनखल, पं० स्वामी जय राम दास जी पं० स्वामी हरिनाम दास जी दोनों शिकार पुरी थे
पं० स्वामी अमर दास जी वृद्ध कनखल वाले, पं० स्वामी अमर दास जी अस्सीघाट काशी, पं०
स्वामी मोहन लाल जी खाड़ी खण्डन खाद्य के ऊपर टिप्पणी कर्त्ता काशी, पं० स्वामी ब्रह्मानन्द
जी उदासीन पञ्चायती बड़े अखाड़े के पण्डित, तर्क वागीश पं० भट्टाचार्य जी ब्रह्म निष्ठ निखिल
शास्त्र निष्णात् पं० भोलाराम जी, पं० वृद्ध स्वामी त्रिलोकराम जी, इनके चेले पं० स्वामी अनन्ता
नन्द जी विरक्त, पं० स्वामी स्वरूप दास जी अमृतसर निवासी उदासीन पञ्चायती बड़े अखाड़े
के पण्डित, पण्डित स्वामी महन्त हरि प्रसाद जी श्री साधु बेला तीर्थ सक्खर, अखिल शास्त्र
निष्णात् पं० स्वामी बालराम जी मण्डलेश्वर, विद्या दिवाकर भारत भूषण दिग्विजयी पण्डित
स्वामी केशवानन्द जी मुनि मण्डलाश्रम कनखल, पण्डित स्वामी राम प्रकाश जी, पं० स्वामी
जगदीश्वरानन्द जी, पं० स्वामी कृष्णानन्द जी, दोनों मुरादाबाद निवासी, पं० स्वामी माधवा
नन्द जी, पं० स्वामी राम प्रसाद जी, पं० स्वामी महन्त प्रकाशानन्द जी चेले श्रीमान् पं० स्वामी
केशवानन्द जी, निर्वाण पं० नारायण दास जी, निर्वाण पं० यमुनादास जी, पं० स्वामी हरिनाम
दास जी ज्ञानी, पं० स्वामी आत्मानन्द जी, पं० स्वामी महन्त जय राम दास जी श्री साधुबेला
तीर्थ सक्खर वाले, पं० स्वामी आत्म स्वरूप जी गुरु मण्डलाश्रम हरिद्वार, पं० स्वामी स्वयं
ज्योतिर भिक्षु ऋषीकेश, पण्डित स्वामी विशुद्धानन्द जी रिविलगंज छपरा, पं० श्री स्वामी गोपालदास
जी वृन्दावनी, पं० स्वामी हरि प्रसाद जी, स्वामी आत्मा राम जी के शिष्य पं० स्वामी महन्त ब्रह्म
कुशलदास जी बरेली, पं० स्वामी अरविन्दानन्द जी (कमल दास जी) हरिद्वार, पं० संगत दास
जी खैर पुर मीरवाली (सिन्धु), पं० जुगत राम जी, इनके चेले पं० स्वामी सच्चिदानन्द जी
अस्सीघाट काशी, पं० अवधूत मया राम जी, पं० अवधूत चेतन देव की कुटिया उदासीनाश्रम
कनखल, पं० जगत राम जी का उदासीनाश्रम कनखल, पं० गुरु प्रसाद जी श्री साधुबेला तीर्थ
पं० जुहार दास जी अस्सी घाट काशी, अवधूत शालिग्राम जी, पं० स्वामी परमानन्द जी
पेशावर पं० स्वामी रघुनाथ दास जी षट् शास्त्री वरुणाघाट काशी, पं० चतुर दास जी, पं०
सुरेश्वरानन्द जी षट् शास्त्री, पं० सदा नन्द जी व्याख्यान कर्ता, पं० हरिनामदास* जी
दिन करीवाले, पं० हरिदास जी गिरधर कुण्डलिया वाले, पं० कृष्ण दास जी पटनावाले, पं०

*नामके पश्चात् दास पद लगाना परम उत्तम है देखो पराशरस्मृतिमें कहा है

यो जपेन्नाम दासान्तं भगवन्नाम पूर्वकम्।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्य भागी भवेन्नरः।

नानक प्रकाश जी, पं० भक्ता नन्द जी नाभावाले, पं० स्वामी पूर्णानन्द जी काशी उदासीन संस्कृत विद्यालय संस्थापक। वर्तमान में भी कई एक पं० उदासीन सम्प्रदाय में विद्यमान हैं।

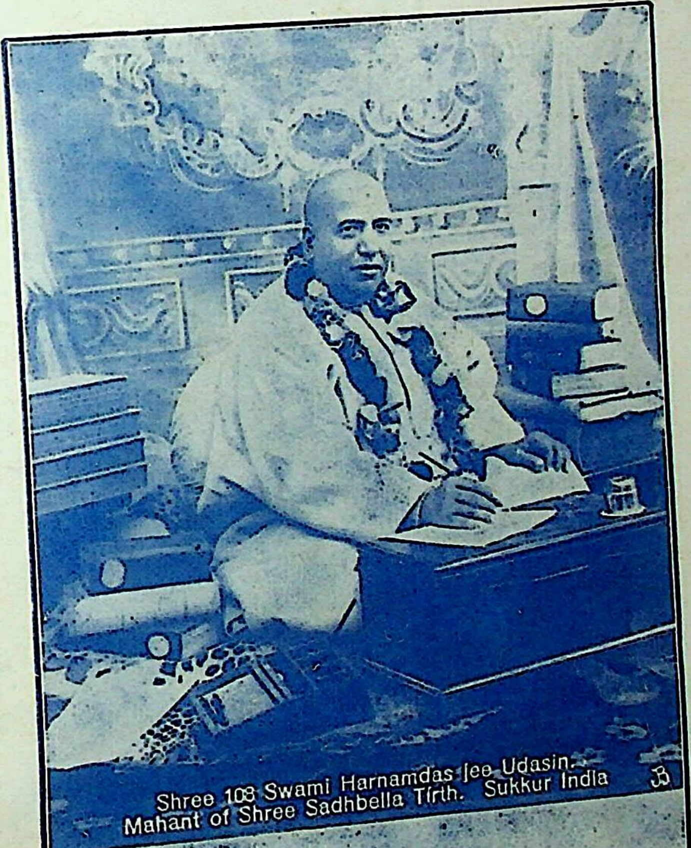
जैसे पण्डित हरीप्रसाद जी अमृतसरी, पं० स्वामी दर्शनानन्द जी गुरु श्रीचन्द्र कालेज काशी, श्रीमान् वेद दर्शनाचार्य्य पं० स्वामी गंगेश्वरानन्द जी मण्डलेश्वर, श्रीमान् नवीन प्राचीन न्यायाचार्य पं० स्वामी रत्न दास जी मण्डलेश्वर गुजरांवाले, पं० स्वामी शान्तानन्द जी, वेदान्ताचार्य्य प० असंगा नन्द जी मण्डलेश्वर, पं० स्वामी महन्त ईश्वरानन्द जी अकलियां, पं० स्वामी जीवन मुक्त जी चेले स्वामी गङ्गा राम जी, पं० स्वामी स्वरूपानन्द जी नैय्यायक, पं० स्वामी महन्त संतप्रसाद जी ब्राजटाऊन सक्खर (सिंधु), पं० स्वामी अनन्त देव जी मण्डलेश्वर, महन्त पं० स्वामी अद्वैतप्रकाश जी हरिद्वार, पं० स्वामी परमानन्द जी गुजरानवाले, पं० स्वामी परमानन्द जी डेराइसमाइलखान, पं० स्वामी हरिप्रसाद (वैदिक मुनि), पं० स्वामी कृष्णानन्द जी काशी, पं० स्वामी बुद्ध प्रकाश जी काशी, पं० स्वामी सर्वानन्द जी दर्शन रत्न, पं० महन्त स्वामी प्रभुदास जी शिकार पुर, पं० स्वामी साधु राम जी विरक्त, पं० स्वामी कवि अर्जुन मुनि जी पटियाला, पं० स्वामी परमात्मानन्द जी चेले निर्वाण रामदास जी, पण्डित स्वामी हरकेशवानन्द जी संचालक गुरु संगत साहब संस्कृत महाविद्यालय मीरघाट काशी, पं० स्वामी अद्वैतानन्द जी, पं० स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, पं०महन्त स्वामी हंस मुनि B.A. राजगृही (पटना), पं० अर्जुन मुनि, पं० महन्त कृष्णदास जी मांझी, महन्त पं० राम स्वरूप जी गुरु मण्डल आश्रम, पं० महन्त स्वामी राम स्वरूप जी भूतपूर्व सम्पादक सन्त समाचार लवाला, पं० स्वामी धर्मावतार, पं० स्वामी विशुद्धानन्द जी वेदान्ताचार्य, पं० स्वामी गोविन्दानंद जी काश्मीर वाले, पण्डित ध्यान स्वरूप जी, पं० गोविन्दानन्द जी, पं० कृष्णानन्द जी, पण्डित सुतीक्ष्ण मुनि हिन्दू सनातन धर्मोपदेशक अनेक ग्रन्थ रचियता, पं० स्वामी रामनारायण जी शास्त्री अमृतसर, पं० स्वामी सुरेश्वरानंद जी मण्डलेश्वर, पं० स्वामी योगीन्द्रानन्द जी शास्त्री, पं० स्वामी विशुद्धानन्द जी, पं० ब्रह्मदास जी शास्त्री, पं० ॐकार मुनि शास्त्री,

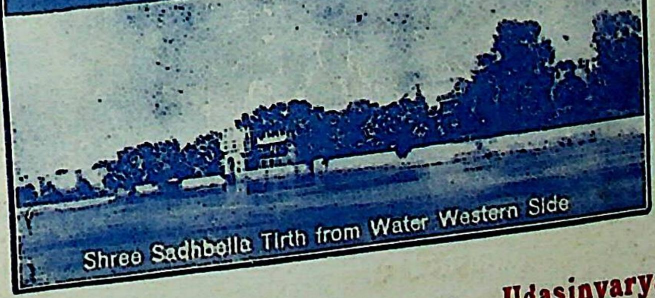
---

अर्थ जो भगवत् सम्बन्धी नाम के पीछे दास पद लगाता (जोड़ता या जपता) है उसके सर्व पाप विनाश हो जाते हैं और वह नर पुण्य का भागी बनता है इसीसे उदासीन महात्मा आदि में देव सम्बन्धी नाम रख के पुनः उसके आगे दास पद जोड़ते हैं, ऐसा करना भी उदासीन महात्माओं का एक प्रकार से हिन्दू जाति को उपदेश देना है कि साधुओं के इस कार्य को देख के गृहस्थी लोग भी अपनी संतान का नाम देव सम्बन्धी रख अन्त में दास शब्द को सम्मलित करें जिससे दास भावना से मन नम्र हो भगवत् परायण बना रहे जो सब दुःखक्लेश पाप ताप संताप विदारक लोक परलोक सुधारक है।

परमहंस परिव्राजकाचार्य्य उदासीनवर्य्य
श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी महाराज
सद्गुरू वनखण्डी आश्रम श्रीसाधुवेला तीर्थ के वर्तमान महन्त
(सक्खर सिन्धु)

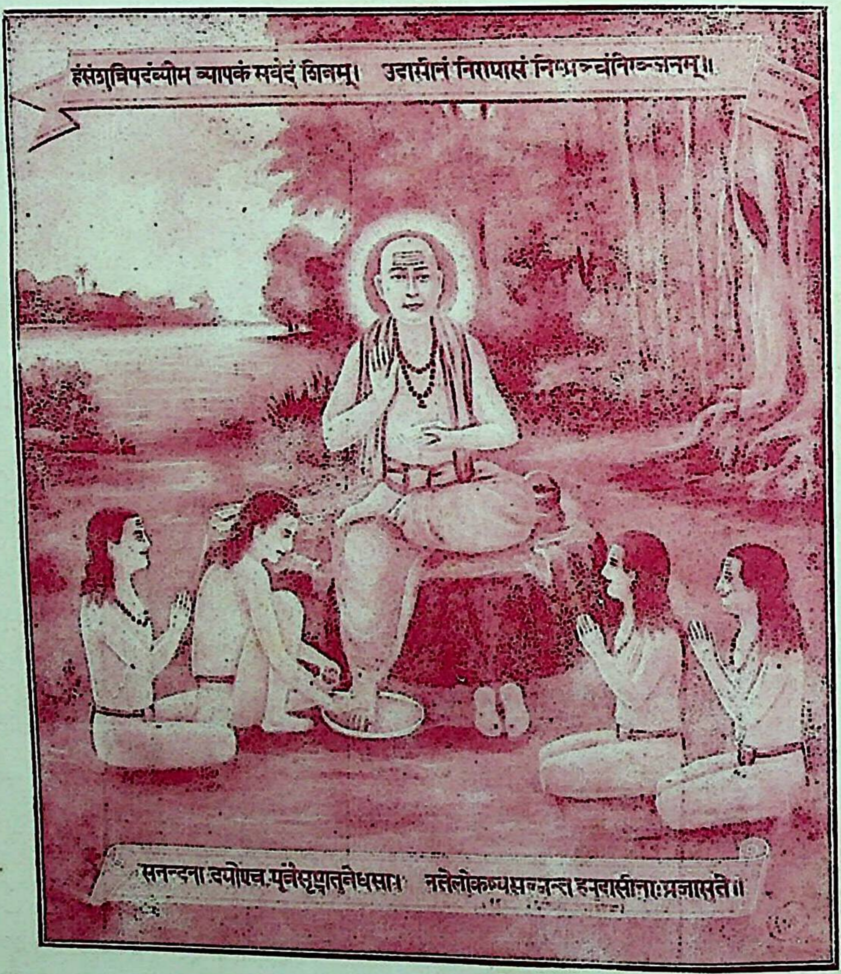
श्री स्वामीजी हिन्दू धर्म रक्षक उपदेश लिख रहे हैं ॥


Shree 108 Swami Harnamdas jee Udasin.
Mahant of Shree Sadhbella Tirth. Sukkur India


Shree Sadhbella Tirth from Water Western Side

Swamiji writing on preaching for safety of Hindu Dharma.

Parmahans, Paribrajkacharya, Udasinvarya
SHRI 108 SWAMI HARNAMDASJI MAHRAJ
Present Gaddidhar Satguru Bankhandi Ashram
SHRI SADHUBELLA TIRATH, SUKKUR, [Sind,]



श्री ११०८ उदासीनाचार्य्य भगवान हंसमुनिजी तथा इनके चेले चारो (सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार) मुनि उदासीन

पं० देवप्रकाश जी शास्त्री, पं० निगमानन्द जी शास्त्री कविकान्त, विद्यानन्द जी शास्त्री, पं० धर्म देव जी, आदि २ और भी बहुत से विद्वान् रत्न श्रौतचतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय में उपस्थित हैं।

इति श्री.साधुबेलातीर्थे सप्तनद-सिन्धु-गंगा-मध्य वर्त्ति-सक्खरनगरे श्रीमद् उदासीनवर्य्य परमहंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डि-देव गुरु चरणकमल चञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे निर्वाण श्री प्रीतमदास जी, निर्वाण श्री सन्तोष दास जी गुरु उदासीन पञ्चायती:दोनों अखाड़े एवं उदासीन विद्वन्नामा-वली प्रसङ्ग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी अष्ट चत्वारिंशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधि-गता ॥४८॥

॥ एकोनपञ्चाशत्तमा किरण प्रारम्भः ॥

॥ ग्रन्थ माहात्म्य ॥

सनकादि महात्मानो धर्मनिष्ठा जितेन्द्रियः ।
महकाव्याश्च माहात्म्यं पप्रच्छुश्च समादरात् ॥१॥

अर्थ—सनकादि उदासीन महात्मा जो बड़े जितेन्द्रिय तथा धार्मिक थे वह इस महाकाव्य ग्रन्थ का माहात्म्य आदर पूर्वक श्री हंसमुनि जी से पूछते भये ॥१॥

॥ सनकादिरुवाच ॥

भगवन्नस्य पुण्यस्य ग्रन्थस्य सुमहीयसः ।
वयं हि श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं वक्तुमर्हसि ॥२॥

अर्थ—हे भगवन् पृथ्वी मण्डल में जो यह पुण्यतम ग्रन्थ है इसके माहात्म्य सुनने की हम लोगों की बड़ी इच्छा है, आप कृपा करके कहिये ॥२॥

॥ श्री हंस मुनि रुवाच ॥

सनकाद्या महाभागाः माहात्म्यं श्रूयतामतः ।
श्रीचन्द्रस्य भगवतः चरित्रस्य शुभस्य हि ॥३॥

अर्थ—श्री हंस मुनि उदासीनाचार्य कहते हैं कि हे सनकादिक मुनियों आप लोग बड़े भाग्यवान् हैं जो इस ग्रन्थ के माहात्म्य सुनने की इच्छा प्रकट की है इसमें शङ्करावतार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के शुभ चरित्रों का वर्णन है ॥३॥

श्रीचन्द्र देवस्य जगद्गुरोश्च शिवावतारस्य शिवाभिधस्य।
सर्वावतारीय कला सुलीला हिन्दू पदेशादि समस्त वृत्तम् ॥४॥

अर्थ–श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् जो शिव जी का अवतार शिवस्वरूप अपनी लीला से अवतार धारने वाले हिन्दुओं के उपदेष्टा हैं उनकी पवित्र जीवन लीला इसमें वर्णन की गई है ॥४॥

पुरन्दर इवात्मवान् स खलु चन्द्रदेवो मुनिः,
ततान धरणी तले शुभ कृतीः सुधर्माश्रितः।
बृहस्पति बुधाश्रितो विपुल लोचनो गोचरः,
जगत्त्रि तय शासकः सुरभि नन्दनो नन्ददः ॥५॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रदेव मुनि इन्द्र के समान आत्मा वाले पृथ्वी मण्डल पर सुधर्म आश्रित हो शुभ कर्म करते, भये जैसे इन्द्र देव जी के बृहस्पति जी गुरु हैं वैसे ही श्रेष्ठ मनुष्यों में श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रजी गुरु हुये हैं। जैसे देवताओं के शासक इन्द्र अपने गुरु (बृहस्पति) को नमस्कार करता है वैसे पृथ्वी के शासक जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी को नमस्कार करते हैं ॥५॥

पर्यट्य सकलाल्लोकान् प्रवर्त्य विमलाः क्रियः।
संसेव्य सर्व तीर्थानि संस्थाप्य विविधान्मठान् ॥६॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् संसार में विमल क्रियाकर सर्व तीर्थों में घूम कर अपने सुन्दर स्थान स्थापित करते भये ॥६॥

स्वात्म तुल्याञ्छुचीञ्छिस्यान्स्वे कर्माणि नियम्य च।
आशिश्रिये शैलराजं नर विग्रह वान् हरः ॥७॥

अर्थ—अपनी आत्मा के तुल्य अपने शिष्यों को पवित्र बना कर अपने ही कार्य में नियत कर दिया और आप गुरु श्रीचन्द्र जी जो मनुष्यों का झगड़ा हरने वाले थे वह हिमालय में चले गये और वहाँ विराजते भये ॥७॥

हिन्दवो धार्मिका जाताः चन्द्र देवोपदेशतः।
त्यक्तवन्तः प्रेम मग्नाः पारस्परिक विग्रहम् ॥८॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के उपदेश से हिन्दुओं में धार्मिक भाव जागृत हो गया प्रेम भाव बढ़ गया परस्पर का विग्रह छूट गया ॥८॥

सञ्जीविता मृता बालाः बहवश्च चन्द्र मौलिना ।
अज्ञान ध्वान्त मग्नाश्च बोधिता ज्ञान भानुना ॥९॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र मौलिने मरे हुये बालकों को जिलाते हुये अपने उपदेश से अज्ञान रूपी अँधेरे में जो पड़े थे उनके हृदय में ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश कर दिया ॥९॥

दैवीं प्रकृति मास्थाय धर्मोद्धारः कृतो महान् ।
साम्येन शासितो लोको न कृता पक्ष पातिता ॥१०॥

अर्थ—आपनें सब जगह दैवी प्रकृति की स्थापना करा के हिन्दू धर्म का उद्धार किया यह महान् कार्य था आप का उपदेश पक्ष पात रहित था ॥१०॥

अत्यऽद्भुता श्री गुरु देव लीला श्रीचन्द्र देवस्य परम्परायाम् ।
शक्ति श्चमूले खलु या दृशी च शाखा सुसाधावति नित्यमेव ।११।

अर्थ—प्रातः स्मरणीय श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् उदासीनाचार्य ने अपने आचार्यत्व काल में समस्त पृथ्वी मण्डल के हृदय पटल पर हिन्दू जाति के रक्षणार्थ अपनी विजयनी शक्ति का प्रभुत्व स्थापन करने में जो प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की उसकी तुलना आज तक ढूंढने पर भी कोई नहीं मिल सकी। आपकी निष्काम बुद्धि अखण्ड बह्मचर्य और उत्कट तपोबल का पूरा २ पता आपके गम्भीर और तेजस्वी चेहरे से सहज में ही लग जाता था। अनेक विचित्र घटनाओं के द्वारा हिन्दू मुसलमानों के हृदय श्री ११०८ भगवान् श्रीचन्द्र महाप्रभु ने अपनी ओर खींच लिये थे । लोगों को यह निश्चय हो गया था कि भगवान् श्रीचन्द्र महाराज की आज्ञा ही हमारे को सब प्रकार से कल्याणकारी है। तभी आपस का विरोध मन्द पड़ गया था। आपके उपदेश में अद्भुत नवीनता थी मुख्य हितैषिता का आकर्षण था एक विचित्र ओज था सारगर्भित गम्भीरताथी। साधारण मनुष्यों से राग द्वेष अहंकारादि दोष वश अपनी बुद्धि की अल्पज्ञता के कारण उपदेश देने में गड़बड़ हो जाया करती है। परन्तु पूर्ण निष्पृही योगीराज महात्मा उपरोक्त दुर्गुणों का जिनमें लेश भी नहीं होवा उनका उपदेश निभ्रान्त शंकारहित ज्ञान और स्नेह से पूर्ण जगत हितकारी हुआ करता है तभी श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान उदासीनाचार्य का उपदेश सब को ही हितकर हुआ। आपका कोई विरोधी न बना ॥११॥

यावान्हिन्दु सुरक्षणाय भगवान् श्रीचन्द्र देवो मुनिः,
स्वातन्त्र्येण समस्त हिन्दुजनतां प्राणयन्तरं दुःखितम् ।

रचित्वा द्विजयं महा सुविजयं लब्ध्वा धरित्री तले,
नैतादृक् सवितेव पूजिततनु र्नाम्ना फलै र्द्योतते ॥१२॥

अर्थ—हिन्दू रक्षार्थ श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को इस अपने कार्य क्रम की पूर्ति के लिये शारीरिक बलका प्रयोग नहीं करना पड़ा, रक्तपात से पृथ्वी लाल नहीं की राज शक्ति काम में नहीं लाये, धन जन की सहायता नहीं ली, केवल अपने जप, तप, बुद्धि, विद्या और सब से महत्व पूर्ण आत्मबल के द्वारा ही इस रत्न गर्भा वसुन्धरा में हिन्दूधर्म रक्षा वाले कार्य में विजयी बने। संसार के अधिकांश पतित आत्माओं के चित्त भीतर बाहर से शुद्ध हो गये जैसे धोबी की भट्टी पर चढ़ के वस्त्र शुद्ध हो जाता है, पीछे वह अपने अपराधों की क्षमा मांगते हुये धर्मानुयायी बन गये। आपके उपदेश और करामात के आगे मुसलमानी पीर फकीरों के आडम्बरी जाल पवन में तृण समान उड़ गये। हिमायूँ, अकबर, जहांगीर ऐसे भारत के सम्राट महाराज के चरणों में पड़ दुआ मांगने से अपना कल्याण समझते थे ॥१२॥

सनाशयामास च नास्तिकानां यूथं प्रचण्डं बहुघात कञ्च।
श्री धर्म राज्येन समाजनाश्च जातास्तदानीञ्च गुरूपदेशात् ॥१३॥

अर्थ—नास्तिकों का मत मन्द पड़ उनके प्रचण्ड घातक यूथ श्री गुरु जी के उपदेश से दब के धर्म राज्य के अनुसार सब जनता खुश हो गई ॥१३॥

जगद्गुरूणाञ्च महोपदेशात् तपः प्रभावाज्ज्वलितात्समग्नेः।
दुष्टं समग्रं यवनस्य लोके तृणायते निष्फल मेव सर्वम् ॥१४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के 'महोपदेश, तथा तप के ज्वलन्त प्रभाव के समस्त समग्र दुष्टों का बल तृण के समान निष्फल हो गया ॥१४॥

सर्वाप्युदासीन कथा कथाङ्गम् श्रौतं महत्वं किल यच्च तत्र।
आचार्य्य कालान्नियमाश्चयेच तथा जगत्यां विजयोपियत्र ॥१५॥

अर्थ—साथ ही उदासीन सम्प्रदाय की कथा अङ्ग सहित श्रौत मुनियों का महत्व जो वेद सिद्ध है उनका आचार्य काल का नियम जगत को विजयी बनाने वाला है वह भी इस ग्रंथ में वर्णन किया गया है ॥१५॥

श्री मन्त्रसिद्धिश्च तथैव तन्त्र यन्त्रश्य सिद्धिस्त्वति सिद्ध सिद्धिः।
विषशेरूपै कथितास्ति सर्वा श्रीचन्द्र देवो महिमावतारः ॥१६॥

अर्थ—उदासीन सम्प्रदाय के मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र सब विशेष सिद्ध के देने वाले ज्ञान

कर ही इसमें लिखे गये हैं विशेष करके महिमा अवतार श्री ११०८ आचार्य प्रवर जगद्गुरु श्रीचन्द्र महा मुनि का जीवन तथा उनके उपदेश हिन्दू जाति की एक अनुपम और लोकोत्तर साहित्यिक निधि जीवन का सर्वस्व है, क्योंकि इसमें बहु संख्यक विषयों का समावेश है। जातीय दृष्टि से भी अत्युत्तम वस्तु है, कारण हिन्दू जाति में उदासीन सम्प्रदाय और चतुर्थाश्रमी ने शरीर में मस्तक, समान सुशोभित हो हिन्दू जाति (शरीर) को बचाया, जगाया, जीवन प्रदान किया, आध्यात्मिक तत्व दर्शा के निर्भीक बनाया ॥१६॥

अस्मिन् खलु महा काव्ये यथा स्थानं यथा रुचिः ।
यथा पात्रं यथा शक्ति यथा शास्त्रं यथोचितम् ॥१७॥

अर्थ—इसलिये यह महाकाव्य निश्चय करके यथा स्थान, यथारुचि, यथा पात्र, यथा शक्ति, यथा शास्त्र, यथा उचित सब को लाभ पहुँचाने वाला है इसमें रञ्चकमात्र फरक न समझना ॥१७॥

श्रुतयः स्मृतयः सांख्यं योगो वेदान्त एव च ।
एवमन्यानि तन्त्राणि संग्रहीतानि तत्त्वतः ॥१८॥

अर्थ—वेद शास्त्र, स्मृति, सांख्य योग, वेदान्त, न्याय, मीमांसा तन्त्र, मन्त्रादि सर्व ग्रन्थों का सार संक्षिप्त रूप से इस ग्रन्थ में लिखा गया है ॥१८॥

सदालोक मात्रे प्रचार्य्यं हिताय नृणामेव सत्यं त्रिसत्यं त्रिसत्यम् ।
यथालोक वृत्तिस्तथा सद्गुरूणां निवन्धस्य साफल्य युक्तस्सदैव ।१९।

अर्थ—इस लिये सदा ही लोक मात्र में इस लीला का प्रचार करना मनुष्यों में लाभ दायक होगा, यह मेरा कहना सत्य है अति सत्य है २ जैसी लोकों की वृत्ति होगी वैसे ही यह सद्गुरु का निवन्ध सदैव फल प्रदाता होगा ॥१९॥

यत् फलं सर्व शास्त्राणां पठने जायते नृणाम् ।
तत्फलं नूनमाप्नोतियोऽधीते चन्द्र जीवनीम् ॥२०॥

अर्थ—जो फल सर्व शास्त्रों के पढ़ने से मनुष्य पाता है वही फल इस पवित्र ग्रन्थ के पढ़ने और सुनने वाला पावेगा ॥२०॥

शमनं सर्व रोगाणां दमनं मनसो द्विषः ।
निदाघः पाप पङ्कस्य काव्यमेतद्विराजते ॥२१॥

९४

अर्थ—सर्व रोगों के नाश करने वाले, मन के द्वेष दमन करने वाले, पाप रूपी कीचड़ से छुड़ाने वाले सर्व गुण इस महाकाव्य में उपस्थित हैं ॥२१॥

भास्करो ऽज्ञान तमसः परशुर्भव शाखिनः ।
अगस्त्यो लोभजलधेः काव्यमेतद्विराजते ॥२२॥

अर्थ—अज्ञान रूपी अन्धकार को नाश करने को सूर्य सदृश्य, पारसमणि सदृश्य संसार लोह को स्वर्ण बनाने वाले लोभरूपी समुद्र को अगस्त्य मुनि के सदृश्य शोषण करने वाले, सर्व गुण इस महा काव्य में उपस्थित हैं ॥२२॥

यावच्चसूर्यः सकलश्चचन्द्रो यावच्च पृथ्वी गिरयश्च सर्वे ।
यावच्च वेदा यमुना च गङ्गा सिन्धु स्समुद्रः खलु सप्त संख्याः ॥२३॥

अर्थ—जब तक सूर्य्य नारायण गगन मण्डल में प्रकाशित रहेंगे तथा चन्द्रमा अपनी सर्व कला से प्रखरित होता रहेगा, पृथ्वी पर समस्त पर्वत विराजते रहेंगे चारो वेद यमुना गङ्गा सिंधु नदी तथा सप्त समुद्र स्थित रहेंगे ॥२३॥

स्मृतिः पुराणं शुभ दर्शनञ्च तावन्महाकाव्य मिदं चिरायुः ।
स्यादेतदर्थञ्च कवि प्रवीर वाक्ये मनोहारि तरञ्च सृष्टौ ॥२४॥

अर्थ—जब तक स्मृति, पुराण, एवं षट दर्शन संसार में विद्यमान् रहेंगे तब तक यह महाकाव्य चिरायु होगा इसके रचयिता महाकवि का वाक्य मन की समस्त दुर्वृत्तिका हरण करने वाला होगा ॥२४॥

समस्त वेदा न खिलान् हि धर्म ग्रंथान्महर्षि प्रवरै कृताश्च ।
श्री ग्रन्थ रत्नानि च दर्शनानि भाष्येण युक्तानि मुनि प्रवीरैः ।२५।

अर्थ—समस्त वेद तथा अखिल धर्म ग्रन्थ जो महर्षियों के बनाये हुये मान्य हैं, ग्रन्थों में रत्न तुल्य दर्शन जिन पर भाष्य मुनिवरों ने लिखे हैं ॥२५॥

प्रमथ्य दुग्धोदधि सन्निभानि धन्वन्तरिः काव्यमिदन्तु जातम् ।
महाऽमृतं काव्यमिदं पिवन्तु ते सर्वजीवा अमरा भवन्तु ॥२६॥

अर्थ—उन सर्व ग्रन्थों को मथ के सार अमृतरूप यह ग्रंथ बनाया गया है, जैसे क्षीर सागर को मथ के अमृत निकाला गया था, उसके पीने वाला अमर हो जाता है, वैसे ही इस काव्यरूपी अमृत के पीने वाले अमर हो जायेंगे ॥२६॥

इदन्तु काव्यं परमं पवित्र पठेच्च भक्त्या श्रृणु यान्नरो यः ।
सतां जनानां पुरतः प्रभाते सायन्निशीथे जनतानु कूले ॥२७॥

अर्थ—इस परम पवित्र महा काव्य को भक्ति पूर्वक प्रातः सायं एवं रात्रि को जो पढ़े या सुने श्रेष्ठ पुरुषों के सामने ॥२७॥

यः श्रावये देव च पाठयेच्च चतुस्पदार्थादि फलञ्चतस्मै ।
तपः फलं यच्च मुनि प्रदिष्ट योगक्रिया याश्च फलं समस्तम् ॥२८॥

अर्थ—जो पाठ करे या पढ़ावै उन सब को चार पदार्थ (धर्म अर्थ काम मोक्ष) का फल, तथा जो मुनियों की तपस्या का फल है, समस्त क्रिया सहित क्रिया योग का जो फल होता है, वह समस्त फल केवल इस महा काव्य के पठन पाठन से होता है ॥२८॥

समाधिधाराभि मुखं फलं यत्काव्यस्य पाठान्मनुजो लभेत ।
ज्ञानञ्च भक्तिश्च तथा विरागः सम्बर्धते पूर्ण कलावलोकात् ।२९।

अर्थ—समाधि आदिका सर्व फल इस काव्य के पाठ से मनुष्य पायेंगे, तथा ज्ञान, भक्ति, वैराग्य उसके सदैव बढ़ेंगे जो इस कला का पूर्ण अवलोकन करेगा ॥२९॥

दुःस्वप्न दुर्भिक्ष कुदुर्गतीनामुत्पात ताप विष भीतिपदाभिधानाम् ।
क्रूरग्रहार्ति दुरुपद्रव दुर्दिनानां दुर्दौर्मनस्य बहुतर्यक कर्मणाश्च ॥३०॥

अर्थ—दुःस्वप्न दुर्भिक्ष (अकाल), महा दुर्गति, उत्पात, तापविष, भीत (भय) क्रूरग्रह का दुःख, उपद्रव, खोटे दिन, दुःख फूटादि सर्व दुष्ट गृह दुष्टफल दुःखदोषनाश हो जाता है ॥३०॥

वेदादि पाठेच तथैव देव स्तोत्रादि पाठेतु मुहुस्सुपुण्यम् ।
भूमि प्रदाने च सुवर्णदाने शय्या प्रदाने च परोपकारे ॥३१॥

अर्थ—वेदादि पाठ का तथा स्तोत्रादि पाठ का जो पुण्य है भूमि सुवर्ण शय्यादि दान तथा परोपकार का जो पुण्य है ॥३१॥

शिक्षा प्रचारेच समस्त दाने यज्ञोपयज्ञे शुभ कर्म मार्गे ।
यज्जायते तादृश पुण्य राशिस्सम्वर्धते ग्रन्थ सुपाठनाच्च ॥३२॥

अर्थ—इस परम पावन महा चरित्र तथा उपदेश की शिक्षा का प्रचार करने वाले को समस्त दान करने का फल प्राप्त होगा, समस्त यज्ञों का फल शुभ कर्म के पथानुगामी जो फल प्राप्त करते हैं, वह फल और पुण्य इसके पाठ तथा प्रचार करने से प्राप्त होगा ॥३२॥

निन्दन्ति जे काव्य मिदं सुसिद्धं तेसाञ्च सर्वस्व तमस्य नाशः ।
अल्पायुरेवंमति मंद्यमेवं समस्त काये नरकं प्रयान्ति ॥३३॥

अर्थ—जो इस ग्रन्थ की निन्दा करेंगे वे सर्व प्रकार से नाश हो जायेंगे तथा अल्पायु होंगे वे महा पापी समस्त जीवन एवं जो भी शरीर धारण करेंगे उस में भी नरक जायेंगे ॥३३॥

इदं विशालं खलु पुस्तकन्तु गृहे मठे कोट किला सुयश्य ।
विराजते यस्य शिव स्वयंभू संतिष्ठते श्री नटराज राजः ॥३४॥

अर्थ—यह विशाल पुस्तक जिस गृह, मठ, किला, दुर्ग में विराजेगी (रहेगी) उस जगह साक्षात् नटराज राज शिव जी विराजमान रहेंगे ऐसा कह श्री हंस भगवान् चुप हो जाते भये ॥३४॥

हंसोमुनि र्गुरुर्वक्ता यशो लालित्य वर्णकः ।
पूजितो राजितश्चैव शिष्य वृन्दैश्च भावुकैः ॥३५॥

अर्थ—श्री हंस मुनि उदासीन गुरुजी ने यह परम पावन सुन्दर यश वर्णन करके जब सुनाया तब सनकादिक मुनियों ने उनकी बड़ी प्रसन्नता से पूजा की ॥३५॥

महा प्रसन्नो गुरु देव योगी हंसोप्युदासीन पथोप जुष्टः ।
विष्णवंशदेवस्त्वति वीतरागः जगाम विष्णोः शरणम्पवित्रम् ।३६।

अर्थ—श्री गुरु देव हंस मुनि उदासीन स्वरूप बड़े प्रसन्न हो अपने विष्णु अंश में जाके मिल गये अर्थात् अन्तर्धान हो गये ॥३६॥

सनकादि महात्मानो मुनयः सात्विकास्तथा ।
निशम्य चरितं सर्वं तृप्ति भावमुपागतः ॥३७॥

अर्थ—श्री सनकादिक महात्मा जो बड़े सात्विक सुभाव थे वह यह चरित्र सुनके बड़े तृप्त भाव को प्राप्त होते भये ॥३७॥

उदासीन सिद्धान्त वेतृ प्रवीरः मुनिप्राणवर्या यतीन्द्राधि देवः ।
सदा हिन्दु धर्मो ल्लसच्चञ्चरीका गताः स्वञ्च लोकं सुलोकातिलोकम् ॥३८॥

अर्थ—उदासीन सिद्धांत प्रवीण मुनि प्राणवर्य यतीन्द्र श्री सनकादिदेव हिन्दू धर्म रूपी कमल में सदा ही चंचरीक (प्रसन्न मन) अपने लोक में जाते भये जो वह लोक सब लोकों का अधिपति सत्य लोक था ॥३८॥

सनकः सनन्दनश्चैव सनातन पदाभिधः ।
सनत्कुमार इत्येवं नामान्येषां महात्मनाम् ॥३६॥

अर्थ—सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार मुनि ये चार सनकादिक कहाते थे यह चारो उदासीन थे इन्हीं से यह उदासी सम्प्रदाय संसार में प्रसरति हुआ है ॥३६॥

यद्यप्यऽनेकी शुभधर्म लेखा परिश्रमो निष्फलतान जानात् ।
द्राक्षा फले सत्यपिकिं रसज्ञै र्नास्वाद्यते ह्यश्चरसो रसालः ॥४०॥

अर्थ—संसार में यद्यपि अनेक एक से एक उत्तम धर्म ग्रन्थ लिखे उपस्थित जान के भी यह मेरा किया परिश्रम निष्फल नहीं जायगा, जैसे द्राक्षा फल के उपस्थित रहते भी लोग आम फल के रस को नहीं त्यागते, ऐसे ही इसको आधुनिक या अल्प व्यक्ति का लिखा हुआ समझ के गुण ग्राही पुरुष न त्याग करेंगे। इसमें जो श्रौत उदासीन सम्प्रदाय का महत्व पूर्ण विवेचन किया गया है यह शास्त्र सम्मत ही लिखा गया है ॥४०॥

लोके प्रमादात्स्खलनश्चगन्तुः सञ्जायते सृष्टि कला सुभावः ।
हसन्ति दुष्टा अतिदुस्स्वभावा समर्थयन्ते खलु पुण्य शीलाः ॥४१॥

अर्थ—मार्ग में चलता हुआ मनुष्य किसी असावधानता बश गिर पड़ता है यह सृष्टि का नियम है गिरे को देख के दुष्ट हँसते हैं, सज्जन उसके उठाने की सहायता करते हैं। इसी प्रकार भूल हो जाना मनुष्य से प्राकृतिक नियम है, किन्तु उस भूल पर हँसना दुष्टों का काम है, तथा भूल का सुधारना सज्जनों का काम है ॥४१॥

एतन्महाकाव्य महा निबन्धे ग्रन्थाच्चयस्माद्धि सहायतामे ।
नामापितस्यैव विशेषतश्च स्थले स्थले नापिच कस्यचिच्च ॥४२॥

अर्थ—इस महा काव्य में जिन २ धार्मिक पुस्तकों से सहायता ली गई है उनका उनका नाम उसी स्थल में दे दिया गया है, बहुत से ग्रंथों के नाम ग्रन्थ वृद्धि भय से नहीं भी दिये जासके ॥४२॥

विप्रोव्रजेत्प्रवणतां स्मरणे श्रुतीनाम् स्यात्क्षत्रियोऽन्यशरणे च रणेप्रवीणः ।
वैश्योभवेद्बहु धना ध्ययनोत्सुकोऽस्य श्रीचन्द्र चूड चरणे मरणे रतिर्मे ।

अर्थ—इस ग्रन्थ के अध्ययन से ब्राह्मण श्रुतियों के अध्ययन स्मरणादि में चतुर हो जायेगा। तथा क्षत्रि युद्ध में प्रवीण रहेगा और वैश्य बहु धनयुक्त हो जायेगा, मैं यही प्रार्थना

करता हूँ कि हे भगवन् मृत्यु के समय मेरा प्रेम श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के चरणों में हो ॥४३॥

श्री चन्द्रस्य गुणावली विलसितं सच्छास्त्र तत्त्वं परं,
श्रीचन्द्राञ्चितशेखरे स्मरहरे भक्तिं दृढ़ां भावयत् ।
श्रीचन्द्रोदयवत्समस्त धरणी माह्लादयज्ज्योत्स्नया,
श्रीचन्द्रोदय नाम काव्य ममलं भूयाद्भवे श्रेयसे ॥४४॥

अर्थ—श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के गुण समूह से परि पूरित तथा वेद सच्छास्त्रादि के तत्त्व से भरा हुआ यह जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदयम् नामक निर्मल महाकाव्य अपनी ज्योत्स्ना से चन्द्रोदय की तरह समस्त धरणी को आह्लादित करता हुआ तथा आचार्यप्रवर महाप्रभु श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रमौली भगवान् शङ्कर जी में भक्ति भावना को दृढ़ करता हुआ इस संसार में कल्याण प्रदायक हो ॥४४॥

बालर्क रश्मिदर पिङ्ग जटा कलापम्,
कुन्देन्दु मौक्तिक हिमामल काय कान्तिम् ।
श्रीचन्द्र देवमवलोक्य ललाम रूपम्,
जातं मनः प्रमुदितं वन देवतानाम् ॥४५॥

अर्थ—उदय कालीन सूर्य नारायण की किरणों के समान अरुण (सुनहरी) जटा धारी तथा चन्द्रमा मौक्तिक कमल और हिम की तरह निर्मल शरीर कान्ति वाले श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् के सुन्दर स्वरूप के दर्शन कर बन देवताओं का भी मन प्रमुदित हो गया ॥४५॥

श्री चन्द्र देव ममलं कमलाननं तम्,
नीलोत्पलाभ नयनं शशिखण्डभालाम् ।
दृष्ट्रा मृगा मृगधरं हरमाशुतोषम्,
जोषं स्थिता विपुल लोचन भाग्य भाजः ॥४६॥

अर्थ—तथा बन में कमल के सदृश सुन्दर मुख वाले और नीलोत्पल के समान नयन वाले, और चन्द्र खण्ड की तरह मस्तक वाले, श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् को आशुतोष महादेव जी जानकर भाग्यशाली पुरुष ऐसे प्रसन्न होते थे जैसे चन्द्रमा को देख कर चकोर प्रसन्न होता है ॥४६॥

श्रीचन्द्र चन्द्र कलयांऽमलया प्रसन्नं,
विद्योतिताऽखिल विशुद्ध पदार्थ सार्थम् ।
बाहौ विहायसि विहायसि बाहुमाने,
काव्यं समाप्ति मगमद्गुरु पूर्णिमायाम् ॥४७॥

अर्थ—इस प्रकार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् की निर्मल कथाओं से परिपूरित तथा सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करने वाला यह "श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदयम्" नामक संस्कृत ग्रन्थ अर्थ सहित वि० सं० २००२ गुरु पूर्णिमा (आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा) के दिन सामाप्त हुआ ॥४७॥

इति श्री साधु बेला तीर्थे सप्त नद सिन्धु गङ्गा मध्य वर्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीनवर्य परम हंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात् योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डि देव गुरु चरणकमलचञ्चरीकायमान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानस हंसे ग्रन्थ माहात्म्य वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी एकोनपञ्चाशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥४९॥

॥ पञ्चाशत् किरण प्रारम्भः ॥

॥ उप संहार ॥

आदे रुदासीनक साधवोऽत्र कालात्सदा हिन्दु सनातनस्य ।
रक्षार्थ मस्येह प्रचारणवै एते ह्यसाधारण कर्मवीराः ॥१॥

अर्थ—प्यारे पाठक वृन्द उदासीन महात्मा लोग आदिकाल से ही हिन्दू सनातन धर्म की रक्षार्थ प्रचार करने में असाधारण कर्म वीर होते आये हैं ॥१॥

ये हिन्दु धर्मस्य च देश जात्यो रक्षार्थमेते स्वमनः शरीरम् ।
वित्ताभिलाषादिक मर्पयन्ति ज्ञात्वा प्रभोस्तन्न विलम्बयन्ति ॥२॥

अर्थ—यह श्रौत चतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय देश जाति तथा हिन्दू धर्म रक्षार्थ अपनी आकांक्षायें अपना मन और अपना धन और अपना शरीर तक सब कुछ ईश्वर का समझते हुये अर्पण करते हुये विलम्ब नहीं करते ॥२॥

त्यागस्य शिक्षा हि प्रदीयतेऽस्मान् भवत्यतो ज्ञातमिदं हि साधून्।
यत्त्याग एवास्ति हि भूषणं नो ऋतेह्यदः सिद्धति नैव कार्यम् ।३।

अर्थ—हम साधुओं को शिक्षा ही त्याग की दी जाया करती है, इस लिये हम लोगों को विदित रहा करता है कि त्याग ही साधु का भूषण है इसके विना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ॥३॥

त्याज्या हि धर्माय च कुवासनावै दानाय द्रव्यं कपटञ्च मैत्रये।
स्वार्थाः परोपकार कृते तथा च तप से तथा वै सुखमिन्द्रियाणाम् ।४।

अर्थ—जैसे धर्म के लिये कुवासनाओं का त्याग दान के लिये द्रव्य का, मित्रता के लिये कपट का और परोपकार के लिये स्वार्थ का तथा तपस्या के लिये इन्द्रिय सुख का त्याग करना पड़ता है ॥४॥

ब्रह्मादि लोकाश्चहि मुक्तये यथा तथैव प्राणानिज देश जातये।
अशिक्षा पर्यँश्चेति हि नः पुरोजाः कृत्वाऽपिते चैव ह्यदर्शयंश्च ॥५॥

अर्थ—और जैसे मुक्ति के लिये प्राणों तक का त्याग करना पड़ता है इसी तरह देश और हिन्दू जाति सेवा के लिये प्राणों तक का त्याग करना हमारे पूर्वज लोग हम लोगो को सिखागये हैं केवल सिखा ही नहीं गये किन्तु करके दिखा गये हैं ॥५॥

स्वेन्द्रियेषु वश्येषुजगद्धि वश्यं जानन्त्युदासीन सुसाधवा इदम्।
दुर्योधनो विश्व जयीह सन्नपि दासः सदासीत् स हि वासनानाम् ॥

अर्थ—समझदार उदासीन महात्मा इस बात को बहुत अच्छो तरह जानते हैं कि इन्द्रियों को वश में करते ही समस्त विश्व वश में आजाता है। दुर्योधन चक्रवर्ती विश्वविजयिता होता हुआ भी अपनी वासनाओं का गुलाम बना रहा ॥६॥

सर्वं स्ववश्यं व्यदधद् जगाद्यः सैषां दमेऽशक्त इहैष रावणः।
विशेषतैषा तु हि साधु लभ्या तेषां ह्यदः प्राथमिकञ्च कार्यम् ॥७॥

अर्थ—समस्त सृष्टि को वश में करने वाला रावण भी अपनी वासनाओं के दमन करने में असमर्थ रहा। यह विशेषता साधु लोगों में ही पाई जाती है। उदासीन साधुओं का सर्व प्रथम कार्य ही यह है कि ॥७॥

उद्युज्यन्तु सदा ते वै कामना विजयाय हि।
उदासीन महात्मानो यदि ते स्वशुभेच्छुकाः ॥८॥

अर्थ—उदासीन महात्मा यदि अपना कल्याण चाहें तो उन्हें अपनी कामनाओं पर विजय पाने का उद्यम करना चाहिये ॥८॥

सत्यामथैष्विरथं योग्यतायां दयासहृद्यानभिमानकारणम् ।
नाऽऽलस्यताऽऽत्मा मलिनश्च न भवत्येषाम साधारण स्वाभिमान्यम् ।९।

अर्थ—इतनी योग्यता होने पर भी उदासीन महात्माओं में नम्रता दया सुहृदयता और अनभिमानता का मुख्य कारण यह है उन में असाधारण स्वाभिमानता होने के कारण अपनी आत्मा को मलीन नहीं होने देते। तभी तो उदासीनों में आलसी कम दृष्टि गोचर होते हैं ॥९॥

धर्मोन्नते देशसमाजयोश्चो दासीन का वै पथ्यग्रगामिनः ।
यद्यवसरः स्याद्थ् देह त्यागे नहि कायरा मिथ्या मानिनस्तत् ॥१०॥

अर्थ—देश समाज और धर्मोन्नति के पथ पर उदासीनों का पैर सदैव आगे ही पड़ता आया है, अवसर पड़ जाने पर शरीर को मिथ्या जानने वाले उदासीन साधु कायरता नहीं दिखाते ॥ १० ॥

अतो हि कालेऽद्य भयङ्करेऽप्यु दासीनकेष्वत्र हि सन्ति श्रेष्ठा ।
तपस्विनो देश सुधार विज्ञा विरक्ता महन्ता अवधूत् सन्ताः ।११।

अर्थ—तभी आज ऐसे भयङ्कर समय में भी उदासीन साधुओं में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सदाचारी, विद्वान, जपी, तपी, देशसुधारक और धर्म प्रचारक, साधु सन्त, महन्त, विरक्त, अवधूत, मण्डलेश्वर, अनेक ज्ञानी गुणी विद्यमान हैं ॥११॥

मन्यन्तु चेत्तन्न समान बुद्धयस् तेषां न तर्हि निषेधमूल्यम् ।
परन्तु शैथिल्य प्रचारितायाः निष्कामणं शीघ्रतया विधीयाम् ।१२।

अर्थ—यदि सामान्य तथा अधम बुद्धि के लोग इन बातों को न माने तो उनके निषेध करने का कोई मूल्य नहीं, इतना तो हम अवश्य कहेंगे कि कुछ काल से उदासीन साधुओं में प्रचार की तरफ से शिथिलता अवश्य आ गई है जिसका शीघ्राति शीघ्र निकाल देना समझदार साधुओं का मुख्य कर्तव्य है ॥१९॥

सतीत्थमत्रापि महन्त सन्तैः प्रचार कार्यं तु समस्त्यस्ति ।
नरालाभमत्रानुभवन्ति चैव कुम्भादिकेष्वन्न प्रदत्वमेषाम् ॥१३॥

अर्थ—इतना होते हुये भी जितना उदासीन साधु, सन्त, महन्त, मण्डलेश्वरों के प्रचार

कार्य से जनता आज लाभ उठा रही है, वह सब के समक्ष है अन्नदान उदासीनों के जितना कहीं देखने में नहीं आता जिसे आज तक भी कुम्भादिक मेलों पर जनता देखती है ॥१३॥

गुण शून्य ख नेत्रेऽब्दे स्सम्मिते वैक्रमे शुभे ।
आषाढ़ कृष्ण पक्षेच द्वितीयायां रवे र्दिने ॥१४॥

अर्थ—वि सं० २००३ आषाढ़ कृष्ण २ रविवार श्री १००८ निरङ्कारी योगी राज सिद्धेश्वर बनखंण्डि देव श्री साधुबेलाधि पति के वर्षी वाले दिन ॥१४।

श्री श्रीचन्द्रोदयस्येह महाकाव्यस्य सुन्दरा ।
समाप्तिमगमट् टीका सदा शिव कृपावशात् ॥१५॥

अर्थ—"जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदयम्" नामक इस महाकाव्य की सुन्दर टीका श्री महादेव जी की कृपा से समाप्त हुई ॥१५॥

हंसो श्री सनकादि सर्व मुनयः श्रीचन्द्र देवो गुरुः,
औदासीन सुवेष धर्म धिषणाये सम्प्रदायेमता ।
नत्वातान्मुनि देव यूथपपतिं काव्यं समाप्नोति मे,
हिन्दूनामभितश्शमेव भवता दाशी प्रपुञ्जो वहेत् ॥१६॥

अर्थ—श्री हंस भगवान् एवं सनकादि मुनि से लेकर श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र भगवान् तक सर्व चतुर्थाश्रमी उदासीन मुनियों को तथा जितने भी श्रेष्ठ सुन्दर भेष धारी इस सम्प्रदाय के धारणे वाले हैं उन सब को तथा देवताओं के यूथ पति याने बड़े से बड़े (विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश, सूर्यादि) सबको नमस्कार करके इस महाकाव्य को समाप्त करता हुआ समस्त हिन्दू कौम का कल्याण होय यह शुभाशीर्वाद देता हूँ ॥१६॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु माकश्चिदुःखभाग्भवेत् ॥
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवा वशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

इतिश्री साधुबेला तीर्थे सप्तनद सिन्धुगंगामध्यवर्त्ति सक्खर नगरे श्रीमद् उदासीन वर्य परम हंसावतंस ब्रह्मनिष्ठ निखिल शास्त्र निष्णात योगीराज सद्गुरु श्री १००८ स्वामी बनखण्डिदेव गुरु चरण कमल चञ्चरीकाय मान मानस महन्त श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन विरचिते चन्द्राङ्किते जगद्गुरु श्रीचन्द्रोदये महाकाव्ये मुनिजन मानसहंसे उपसंहार प्रसंग वर्णनं सकल कलि कल्मष नाशिनी पञ्चाशत्तमा किरण सम्पूर्णता मधिगता ॥५०॥

MAP OF SHRI SADH BELA TIRTH

SHOWING ACTUAL CONSTRUCTIONS IN BLACK LINES

SCALE 40'=1"



TRACED BY
Lachmandass. M.B.
SURVEYOR
SUKKUR
DATE. 18-4-35

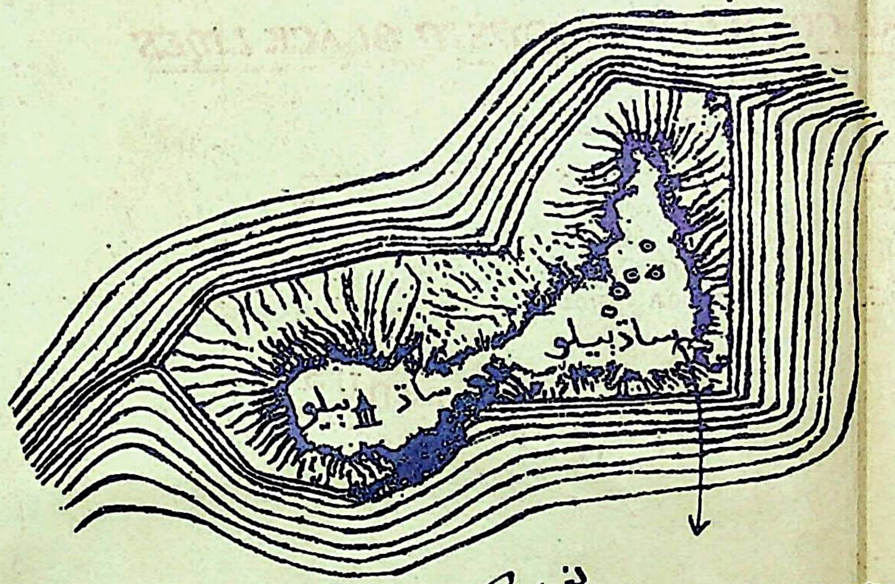
SURVEYED AND COMPLETED
BY
B.D. Bhopatkar
PRINCIPAL,
INDIAN ENGINEERING INSTITUTE,
SUKKUR.

नक्शा सत्गुरु बनखण्डी आश्रम श्री साधुबेला तीर्थ (सक्खर-सिन्धु)

MAP OF SATGURU BANKHANDI ASHRAM SHRI SADHUBELLA TIRATH SUKKUR [SIND.]

FOUNDED BY POOJYA SHREE SWAMI BANKHANDI SAHIB, HINDU UDASIN SADHU

नकशा सद्गुरु बनखण्डी आश्रम श्री साधुबेला तीर्थ, सक्खर (सिन्धु)



نوٽ
مهاراج وڪليزي صاحب ادا سين
هاڻوڪو مهنت سوامي هرنامداس.

ديه سکر شون
ٽپو سکر تعلقو سکر
ضلع سکر

پيمانو في انچ ١٠ گهنٽا
(هڪ گهنٽو = ٣٣ فوٽ)

٥ ١٠ ٢٠ ٣٠ ٤٠

اکرن ۽ انگن جي درستي مقابلو ڪندڙ
M. U. Narej 14.7.39.

سال ١٨٨٧-٨٨
١٨٩٢-٩٤ ۽ ١٩١٣ع
١٩٢٣-١٩٢٨ع، ١٩٣٦

هيڊ ڊرافٽسمن
هيڊ رڪارڊ آفيس
حيدرآباد سنڌ

MAP OF SATGURU BANKHANDI ASHRAM SHRI SADHUBELLA TIRATH SUKKUR SIND.